

Printed by R. Y. Shedge, at the Nirnaya-sagar Press,  
23, Kolbhat Lane, Bombay.



Published by Sha Revasbankar Jagajeevan Javeri Hon. Vyavastapak  
Shree Paramashruta Prabhavak Mandal, Javeri Bazar,  
Kharakuya, Bombay. No 2.

श्रीसर्वज्ञायनमः

अर्पणपत्रिका ।

श्रीरायचन्द्रजैनशास्त्रमाला ।



श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

प्रवचनसारः ।



आ पवित्र ग्रंथनी हिंदी भाषाटीकाना खर्च पेटे शा. पुंजाभाई

हिराचंद्र तरफथी तेमना पुत्र कचराभाईना स्मरणार्थ

रुपिआ २०० अंके बशो भेट आप्या छे.

ते मूल साथे श्रीरायचंद्र जैनशास्त्रमालाने अर्पण करेछे.



## विज्ञापन ।

विदित हो कि स्वर्गवासी तत्त्वज्ञाता शतावधानी कविवर श्रीरायचन्द्रजीने अतिशय उपयोगी और अलम्य ऐसे श्रीउमास्वाति ( मी ) मुनीश्वर, श्रीकुन्दकुन्दाचार्य, श्रीनेमिचन्द्राचार्य, श्रीअकलङ्कस्वामी, श्रीहरिभद्रसूरी, श्रीहेमचन्द्राचार्य आदि महान् आचार्योंके रचे-हुए जैनतत्त्वग्रन्थोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करनेकेलिये श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडलकी स्थापना कीथी; जिसके द्वारा उक्त कविराजके चिरकालस्मरणार्थ रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाके नामसे अतिशय प्राचीन ग्रन्थ प्रगट होकर आजपर्यंत तत्त्वज्ञानामिलापी भव्यजीवोंको आनंदित कर रहे हैं ॥

इस शास्त्रमालाकी योजना विज्ञपाठकोंको दिगम्बरीय तथा श्वेताम्बरीय उभयपक्षके ऋषिप्रणीत सर्वसाधारणोपयोगी उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके अभिप्राय विदित होनेकेलिये कीगई है । इसलिये आत्मकल्याणके इच्छुक भव्यजीवोंसे प्रार्थना है की इस पवित्र शास्त्रमालाके ग्रन्थोंके ग्राहक बनकर अपनी चललक्ष्मीको अचल करें और तत्त्वज्ञानपूर्ण जैनसिद्धान्तोंका पठन पाठन द्वारा प्रचारकर हमारी इस परमार्थयोजनाके परिश्रमको सफल करें । तथा प्रत्येक सरस्वतीमण्डार, सभा और पाठशालाओंमें इनका संग्रह अवश्य करना चाहिये ॥

इस शास्त्रमालाकी प्रशंसा मुनिमहाराजोंने तथा विद्वानोंने बहुत की है उसको हम स्थानाभावसे लिख नहीं सकते । और यह संस्था किसी स्वार्थकेलिये नहीं है केवल परोपकारकेवास्ते है । जो द्रव्य आता है वह इसी शास्त्रमालामें उत्तमग्रन्थोंके उद्धारकेवास्ते लगाया जाता है ॥ इति शम् ॥

### रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची ।

१ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भापाटीका यह श्रीअमृतचन्द्रस्वामी विरचित प्रसिद्ध शास्त्र है इसमें आचारसंवन्धी बडे २ गूढ रहस्य हैं विशेष कर हिंसाका स्वरूप बहुत खूबीकेसाथ दरसाया गया है, यह एक वार छपकर विकगयाथा इसकारण फिरसे संशोधन कराके दूसरीवार छपाया गया है । न्यों. १ रु.

२ पञ्चास्तिकाय भा. संस्कृ. टी. यह श्रीकुन्दकुन्दार्यकृत मूल और श्रीअमृतचन्द्रसूरीकृत संस्कृतटीकासहित प्रसिद्ध शास्त्ररत्न है. इसमें जीव, अजीव, धर्म, अधर्म और आकाश इन पांच द्रव्योंका तो उत्तम रीतिसे वर्णन है तथा कालद्रव्यका भी संक्षेपसे वर्णन किया गया है । इसकी भाषा टीका स्वर्गीय पांडे हेमराजजीकी भाषाटीकाके अनुसार नवीन सरल भाषाटीकामें परिवर्तन कीगई है । न्यों. १॥ रु.

३ ज्ञानार्णव भा. टी. इसके कर्ता श्रीशुभचन्द्रस्वामीने घ्यानका वर्णन बहुत ही उत्तम-तासे किया है । प्रकरणवश ब्रह्मचर्यव्रतका वर्णन भी बहुत दिखलाया है । न्यों. ४ रु.



सरल हिंदीभाषामें अविकल अनुवाद किया है अर्थात् संस्कृतके हरएक पदके पीछे 'कहिये' शब्दको डटाने और बदलेमें संस्कृतपदोंको कोष्ठकमें रखने तथा भावार्थको एक जगह करनेके सिवाय अपनी ओरसे अर्थमें कुछ भी न्यूनाधिक नहीं किया है। किंतु जहां २ मूलपाठ और अन्यव्यर्थमें लेखकोंकी भूलसे कुछ छूट गया है उसको मैंने संस्कृत टीकाके अनुसार शुद्ध कर दिया है।

इस ग्रन्थका जो उद्धार स्वर्गीय तत्त्वज्ञानी श्रीमान् रायचन्द्रजीद्वारा स्थापित धीपरमशुभ प्रभावक मंडलकी तरफसे हुआ है इसलिये उक्त मंडलके उरसाही प्रबन्धकर्ताओंको "जिन्होंने अत्यंत उरसाहित होकर ग्रंथ प्रकाशित करके भव्यजीवोंको महान् उपकार पहुंचाया है" कोटिशः धन्यवाद देता हूं। और श्रीजीसे प्रार्थना करता हूं की वीतरागदेवप्रणीत उच्च श्रेणीके तत्त्वज्ञानका इच्छित प्रसार करनेमें उक्त मंडल कृतकार्य होवे। द्वितीय धन्यवाद न्यायशीला गवर्नमेंटको दिया जाता है कि जिसने इस ग्रंथको अपने यूनिवर्सिटीके कोर्समें दाखिलकर इसका महत्त्व प्रगट किया है। अब मेरी अन्तमें यह प्रार्थना है कि जो प्रमादसे, दृष्टिदोषसे तथा ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी न्यूनतासे कहींपर अशुद्धियां रहगई होंवें तो पाठक मेरे ऊपर क्षमा करके शुद्ध करते हुए पढ़ें क्योंकि 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे' इस प्रसिद्ध वाक्यसे इस अध्यात्मिक ग्रंथमें अशुद्धियोंका रहजाना संभव है। इस तरह धन्यवादपूर्वक प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूं। अलं विद्महे।

लार्डगंज जैन पाठशाला—जबलपुर।

माघकृष्णा १३ सं० २४३८

जैनसमाजका सेवक

मनोहरलाल

पाठम (मैनपुरी) निवासी।



## अथ प्रवचनसारस्य विषयानुक्रमणिका ।



| विषय                                       | पृ. गा. | विषय                                       | पृ. गा. |
|--|---------|--|---------|
| मंगलाचरणपूर्वक ग्रंथकर्ताकी प्रतिज्ञा ...  | ३११     | अतीन्द्रिय ज्ञानको ही सब जाननेमें सामर्थ्य | ५४१४१   |
| <b>ज्ञानाधिकारः । १</b>                    |         | रागद्वेषपरिणामोंसे ही फसोंका बंध ...       | ५६१४३   |
| वीतराग सराग चारित्रके उपादेयहेयका          |         | अरहंतोंके पुण्यका उदय बंधका कारण           |         |
| कथन ... ..                                 | ७१६     | नहीं है यह कथन ... ..                      | ५८१४५   |
| चारित्रका स्वरूप ... ..                    | ८१७     | अतीन्द्रिय ज्ञान क्षायिक है ... ..         | ६०१४७   |
| चारित्र और आत्माकी एकताका कथन ...          | ९१८     | सबको न जाननेसे आत्माको नहीं                |         |
| आत्माके शुभादि तीन भावोंका कथन...          | १०१९    | जानना एक आत्मज्ञानाभावसे                   |         |
| शुभादि भावोंका फल ... ..                   | १३१११   | सबके जाननेका अभाव ... ..                   | ६२१४८   |
| शुद्धोपयोगवाले जीवका स्वरूप ...            | १६११४   | कमसे प्रवृत्त ज्ञानको सर्वगतपनेका          |         |
| शुद्धात्मस्वभावका लाभ कारकरहित ...         | १८११५   | अभाव तथा युगपत् प्रवृत्तको सर्व-           |         |
| शुद्धस्वभावको नित्य तथा उत्पादादि-         |         | गतपना ... ..                               | ६५१५०   |
| स्वरूप कथन ... ..                          | २३११७   | क्रियाका फल बंध नहीं है ... ..             | ६७१५२   |
| शुद्धात्माके इन्द्रियोंके विना ज्ञान सुख   |         | ज्ञानसे सुख अभिन्न है ... ..               | ६९१५३   |
| होते हैं... ..                             | २५११९   | अतीन्द्रियसुखका कारण अतीन्द्रियज्ञान       |         |
| अतीन्द्रिय ज्ञान होनेसे सर्वे प्रलक्ष      | ३०१२१   | उपादेय है यह कथन ... ..                    | ७११५४   |
| आत्मा ज्ञानके प्रमाण है यह कथन ...         | ३२१२३   | इन्द्रियसुखका कारण इन्द्रियज्ञान ...       | ७२१५५   |
| ज्ञानके प्रमाण आत्माको न माननेमें दूषण     | ३३१२४   | इन्द्रियज्ञानको हेयपना ... ..              | ७३१५६   |
| ज्ञानकी तरह आत्माको सर्वगतत्व ...          | ३५१२६   | परोक्षप्रलक्षका लक्षण ... ..               | ७५१५८   |
| आत्मा और ज्ञानकी एकता और अन्य-             |         | पूर्वोक्त प्रलक्ष वास्तवमें सुख है ... ..  | ७६१५९   |
| ताका कथन ... ..                            | ३६१२७   | केवलीको जाननेसे खेद नहीं होता ...          | ७८१६०   |
| ज्ञानज्ञेयका आपसमें गमनाभाव शक्तिकी        |         | केवलज्ञान सुखरूप है ... ..                 | ८०१६१   |
| विचित्रतासे ... ..                         | ३८१२८   | परोक्षज्ञानीको यथार्थ सुख नहीं है ...      | ८२१६३   |
| ज्ञानका अर्थोंमें पदार्थोंका ज्ञानमें रहना |         | शरीर सुखका कारण नहीं है ... ..             | ८४१६५   |
| दृष्टान्तपूर्वक ... ..                     | ४०१३०   | इन्द्रियोंके विषयभी सुखके कारण नहीं है     | ८६१६७   |
| आत्माका पदार्थोंसे प्रथक्पना ... ..        | ४२१३२   | सुख आत्माका स्वभाव है... ..                | ८७१६८   |
| केवलज्ञानी और श्रुतकेवलीमें अविशे-         |         | शुभोपयोगका स्वरूप ... ..                   | ९०१६९   |
| पता किसी अपक्षासे है ... ..                | ४३१३३   | शुभोपयोगसे इन्द्रियसुखप्राप्ति ... ..      | ९०१७०   |
| ज्ञानको श्रुतरूप उपाधिसे रहितपना ...       | ४५१३४   | इन्द्रियसुख यथार्थमें दुःख ही है ... ..    | ९११७१   |
| आत्मा ज्ञानमें कर्ता करण भेदका अभाव...     | ४६१३५   | शुभ और अशुभ दोनों उपयोगोंमें समानप-        |         |
| ज्ञान और ज्ञेयका स्वरूप... ..              | ४७१३६   | नेका कथन ... ..                            | ९२१७२   |
| असद्भूत पर्यायोंको किसी प्रकार सद्भूतपना   |         | पुण्य दुःखका कारण है ... ..                | ९४१७४   |
| तथा ज्ञानमें प्रलक्ष होना... ..            | ५११३८   | फिरभी पुण्यजन्य इन्द्रियसुखको दुःखरूप      |         |
| इन्द्रियज्ञानको भूतादि पर्यायोंके जाननेमें |         | होनेका कथन ... ..                          | ९६१७६   |
| असमर्थपना ... ..                           | ५३१४०   | पुण्य और पापमें समानता ... ..              | ९७१७७   |

| विषय   | पृ. गा. | विषय   | पृ. गा. |
|--|---------|--|---------|
| इन दोनोंमें समानता जाननेसे ही शुद्धोप-<br>योगकी प्राप्ति... .. १८१७८   | १८१७८   | सब विरोधोंको दूर करनेवाली सप्तभंगी-<br>नयका कथन ... .. १६११२३                        | १६११२३  |
| मौहादिके दूर करनेसेही आत्मलाभ ... १९१७९  | १९१७९   | मनुष्यादिपर्याय क्रियाफल होनेसे वस्तुस्व-<br>भावसे भिन्नका तथा क्रियाफलका कथन १६२१२४ | १६२१२४  |
| मोहकी सेनाके जीतनेका उपाय... .. १०११८०   | १०११८०  | मनुष्यादिपर्यायोंसे स्वभावका तिरोभाव १६६१२६  | १६६१२६  |
| प्रमादरूप चोरके कारण सावधान रहना<br>अपने स्वरूपका अनुभव करनेसेही मोक्षकी<br>प्राप्ति होती है ऐसा कथन ... .. १०३१८२ | १०३१८२  | जीवका पर्यायसे अनवस्थितपना ... १६७१२७  | १६७१२७  |
| शुद्धात्माके लाभका शत्रु मोह है ... १०५१८३   | १०५१८३  | अनवस्थितपनेमें हेतु ... .. १६९१२८  | १६९१२८  |
| मोहका क्षय कर्तव्य है ... .. १०६१८४  | १०६१८४  | आत्माका पुद्गलके साथ संबंध होनेका कथन १७०१२९   | १७०१२९  |
| मोहके तीन भावभी क्षय करने चाहिये... १०७१८५   | १०७१८५  | निश्चयसे आत्मा द्रव्यकर्मका अकर्ता है ... १७११३०                                     | १७११३०  |
| मोहके क्षय करनेका उपाय ... .. १०८१८६   | १०८१८६  | आत्माका परिणमन स्वरूप ... .. १७३१३१  | १७३१३१  |
| जैनमतमें पदार्थोंकी व्यवस्था ... .. १०९१८७   | १०९१८७  | ज्ञानादि तीन तरहकी चेतनाका स्वरूप ... १७३१३२   | १७३१३२  |
| मोहके नाशके उपायमें पुरुषार्थ कार्यकारी है ११११८८  | ११११८८  | द्रव्यसामान्यकथनका उपसंहार ... .. १७६१३४   | १७६१३४  |
| स्वपरभेद विज्ञानसे मोहका क्षय ... .. ११११८९  | ११११८९  | द्रव्यका विशेष कथन ... .. १७८१३५   | १७८१३५  |
| भेदविज्ञान आगमसे होता है ... .. ११२१९०   | ११२१९०  | लोकअलोकका लक्षण ... .. १८०१३६  | १८०१३६  |
| वीतरागकथित पदार्थोंके श्रद्धानविना आ-<br>त्मधर्मका लाभ नहीं होता ... .. ११४१९१                                     | ११४१९१  | कोंन द्रव्य क्रियावाले है ... .. १८३१३७  | १८३१३७  |
| आचार्यकी धर्ममें स्थित होनेकी प्रतिज्ञा... ११५१९२  | ११५१९२  | द्रव्यमें भेद गुणके भेदसे है ... .. १८२१३८   | १८२१३८  |
|  |         | मूर्त अमूर्त गुणोंका लक्षण ... .. १८३१३९   | १८३१३९  |
| <b>क्षेत्रतत्त्वाधिकारः २</b>  |         | पुद्गल द्रव्यके गुण... .. १८४१४०   | १८४१४०  |
| पदार्थोंको द्रव्यगुणपर्याय स्वरूप होना ... ११९११   | ११९११   | अमूर्त द्रव्योंके गुण ... .. १८८१४१  | १८८१४१  |
| स्वसमय परसमयका कथन ... .. १२२१२  | १२२१२   | द्रव्योंके प्रदेशी अप्रदेशी भेद ... .. १९०१४३  | १९०१४३  |
| द्रव्यका लक्षण ... .. १२३१३  | १२३१३   | द्रव्योंके रहनेका स्थान ... .. १९११४४  | १९११४४  |
| अस्तित्वके भेदोंका स्वरूप... .. १२६१४  | १२६१४   | कालाणुको अप्रदेशीपना ... .. १९४१४६   | १९४१४६  |
| द्रव्यसे अन्य द्रव्यकी उत्पत्तिका अभाव तथा<br>द्रव्यसे सत्ताके जुदेपनेका अभाव ... १३२१६                            | १३२१६   | कालपदार्थके पर्याय ... .. १९५१४७   | १९५१४७  |
| द्रव्यको सत्पनेका कथन ... .. १३४१७   | १३४१७   | प्रदेशका लक्षण ... .. १९८१४८   | १९८१४८  |
| उत्पादादिका आपसमें अविनाभाव ... १३६१८  | १३६१८   | कालपदार्थको प्रदेश मात्र होना ... .. २०४१५२  | २०४१५२  |
| उत्पादादिकोंका द्रव्यसे अभेद ... .. १३८१९  | १३८१९   | व्यवहार जीवपनेका कारण ... .. २०६१५३  | २०६१५३  |
| अनेक द्रव्योंके तथा एक द्रव्यके पर्यायोंद्वारा<br>उत्पादादिका कथन ... .. १४२१११                                    | १४२१११  | प्राणोंकी संख्या ... .. २०८१५४   | २०८१५४  |
| सत्ता और द्रव्यके एकत्वमें युक्ति ... १४४११३   | १४४११३  | प्राणोंके पुद्गलीकपनेकी सिद्धि ... .. २०९१५६   | २०९१५६  |
| भेदोंके भेदोंका लक्षण ... .. १४६११४  | १४६११४  | नवीन कर्मके कारण प्राण हैं ... .. २१०१५७   | २१०१५७  |
| सत्ता और द्रव्यका परस्पर गुणगुणीपना... १५२११७  | १५२११७  | प्राणोंकी उत्पत्तिका अंतरंग कारण ... २१११५८  | २१११५८  |
| गुण-गुणोंमें एकता ... .. १५३११८  | १५३११८  | प्राणोंकी संतानका नाशक अंतरंग कारण २१२१५९  | २१२१५९  |
| दो तरहके उत्पादोंमें अविरोध ... .. १५४११९  | १५४११९  | जीवके व्यवहार पर्यायका स्वरूप व भेदका<br>कथन ... .. २१३१६०                           | २१३१६०  |
| सद्गुणादिका पर्यायसे अभेद ... .. १५७१२०  | १५७१२०  | आत्माके स्वभावका कथन ... .. २१५१६२   | २१५१६२  |
| अगदगुणादिका पर्यायसे भेद ... .. १५८१२१   | १५८१२१  | परद्रव्यके संयोगका कारण ... .. २१६१६३  | २१६१६३  |
|  |         | शुभोपयोगका स्वरूप ... .. २१८१६५  | २१८१६५  |
|  |         | अशुभोपयोगका स्वरूप ... .. २१९१६६   | २१९१६६  |
|  |         | परसंयोगके कारणना विनाश २२०१६७  | २२०१६७  |
|  |         | शरीरादिपरमें मध्यस्थभाव ... .. २२११६८  | २२११६८  |

| विषय                                    | पृ. गा. | विषय  | पृ. गा. |
|---|---------|---|---------|
| शरीरादिको परद्रव्यत्वसिद्धि ...         | २२२।६९  | मुनिपदकी पूर्णताका कारण आत्मामें लीनपना   | २८७।१४  |
| परमाणुको पिंडरूप होनेका कारण ...        | २२४।७१  | सूक्ष्मपरद्रव्यमें भी रागका निषेध...  | २८८।१५  |
| आत्मा पुद्गलपिटका कर्ता नहीं है ...     | २२८।७५  | संयमके छेदका स्वरूप...  | २९०।१६  |
| कर्मरूप पुद्गलोंका भी अकर्ता ...        | २३१।७७  | छेदके भेद...  | २९१।१७  |
| शरीर भी जीवका स्वरूप नहीं है ...        | २३२।७९  | अंतरंग छेदका सर्वथा निषेध ...   | २९२।१८  |
| जीवका स्वरूपकथन ...                     | २३३।८०  | परिग्रहका निषेध ...   | २९४।१९  |
| आत्माके बंधका हेतु ...                  | २३६।८१  | अंतरंग छेदका निषेध ही परिग्रहका निषेध है यह कथन ...                                     | २९५।२०  |
| भावबंधद्रव्यबंधका स्वरूप ...            | २२३।८३  | अंतरंगसंयमके घातका हेतु परिग्रह ...   | २९७।२१  |
| बंधका स्वरूप ...                        | २४०।८५  | परिग्रहमें अपवादमार्ग ...   | २९८।२२  |
| द्रव्यबंधका कारण रागपरिणाम ...          | २४३।८८  | जिस परिग्रहका निषेध नहीं है उसका स्वरूप...  | ३००।२३  |
| जीवका अन्य द्रव्योंसे भेद ...           | २४५।९०  | उत्सर्गमार्ग ही वस्तुका धर्म है अन्य नहीं है  | ३०१।२४  |
| भेदविज्ञान होनेका कारण ...              | २४६।९१  | अपवादमार्गके भेद ...  | ३०२।२५  |
| आत्माका कार्य ...                       | २४७।९२  | शरीरमात्र परिग्रहके पालनकी विधि ...   | ३०६।२६  |
| पुद्गलकर्मोंके विचित्रपनेका हेतु ...    | २५०।९५  | योग्यआहार अनाहार तुल्य है ...   | ३०८।२७  |
| अभेदबंधरूप आत्मा है ...                 | २५१।९६  | योग्य आहारादिका स्वरूप ...  | ३०९।२८  |
| निश्चयव्यवहारका अविरोध ...              | २५२।९७  | उत्सर्ग और अपवादमार्गमें मैत्रीभाव होनेसे मुनिपदकी स्थिरता ...                          | ३१३।३०  |
| अशुद्धात्माके लाभका हेतु ...            | २५४।९८  | इन दोनोंमें विरोध होनेसे मुनिपदकी अस्थिरता ...  | ३१६।३१  |
| शुद्धात्माके लाभका हेतु ...             | २५५।९९  | मोक्षमार्गका मूलसाधन आगम ...  | ३१८।३२  |
| शुद्धात्मा उपादेय है ...                | २५६।१०० | आगमहीनके कर्मक्षयका निषेध...  | ३२१।३३  |
| आत्मासे अन्य हेय हैं ...                | २५८।१०१ | मोक्षमार्ग जीवोंको आगम ही नेत्र है यह कथन ...   | ३२३।३४  |
| शुद्धात्माकी प्राप्तिसे लाभ ...         | २५९।१०२ | आगमचक्षुसे ही सर्वका दीखना...   | ३२४।३५  |
| मोहप्रथिके खुलनेसे लाभ ...              | २६०।१०३ | आगमज्ञानादि तीनोंसे मोक्षमार्ग ...  | ३२५।३६  |
| ध्याताका स्वरूप...                      | २६१।१०४ | आत्मज्ञानको मोक्षमार्गमें मुख्य हेतुपना आत्मज्ञानसे रहित पुरुषके आगमज्ञानादि निष्फल ... | ३३०।३९  |
| सर्वज्ञानीके ध्यानका विषय ...           | २६३।१०५ | आत्मज्ञान आगमज्ञानादियाले पुरुषका स्वरूप  | ३३२।४०  |
| शुद्धात्माकी प्राप्ति मोक्षमार्ग है ... | २६५।१०७ | आत्मज्ञान आगमज्ञानादिकी एकता ही मोक्षमार्ग है ...                                       | ३३५।४२  |
| बंधकर्ताकी शुद्धात्मप्रवृत्ति ...       | २६७।१०८ | एकताके न होनेसे मोक्षमार्ग भी नहीं है   | ३३६।४३  |
|   |         | आगमज्ञानादिकी एकता ही मोक्षमार्ग है   |         |
|   |         | ऐसा सारांश कथन ...  | ३३७।४४  |
|   |         | शुभोपयोगीको मुनिपदसे जघन्यपना ...   | ३३८।४५  |
|   |         | शुभोपयोगी मुनिका लक्षण ...  | ३४०।४३  |
|   |         | शुभोपयोगीकी प्रवृत्ति ...   | ३४१।४७  |

चारित्र्याधिकारः ३

|   |        |
|---|--------|
| मंगलाचरणपूर्वक कर्तव्यकी प्रेरणा ...                          | २७०।१  |
| मुनिदीक्षाके पूर्व कर्तव्य ...                                | २७२।२  |
| धर्मणका लक्षण ...   | २७५।३  |
| द्रव्य-भावलिंगका लक्षण ...                                    | २७८।५  |
| आदिसे अंततक मुनिकी क्रियाओंके करनेसे मुनिपदकी सिद्धि ...      | २८०।७  |
| मुनि किसी समयमें छेदोपस्थापक है ...                           | २८१।८  |
| दीक्षा देनेवालेकी तरह छेदोपस्थापक दूसरे आचार्यभी होते हैं ... | २८३।१० |
| संयम मंग होनेपर उसके जोड़नेका विधान                           | २८४।११ |
| भंगका कारण परसंबंधका निषेध ...                                | २८६।१३ |

# रायचन्द्रजैनशास्त्रमालायाम् ।

| विषय                                     | पृ. गा.    | विषय                                  | पृ. गा.    |
|--|------------|---------------------------------------|------------|
| शुभोपयोगीके ही पूर्वोक्त प्रवृत्तियां    | ... ३४२।४९ | जो मुनि अधिक गुणवालेसे विनय चाहता     | ...        |
| संयमविरोधी प्रवृत्तिका निषेध ...         | ... ३४३।५० | है वह अनंतसंतारी है ...               | ... ३५७।६६ |
| परोपकारप्रवृत्तिके पात्र ...             | ... ३४४।५१ | अपनेसे गुणहीनकी विनयसेवा करनेसे भी    | ...        |
| प्रवृत्तिके कालका नियम ...               | ... ३४५।५२ | चारित्रका नाश                         | ...        |
| वैयावृत्त्यके कारण अज्ञानी लोकोसे भी वो- | ...        | कुसंगतिका निषेध...                    | ... ३५८।६७ |
| लना पड़ता है ...                         | ... ३४६।५३ | लौकिकजनका लक्षण ...                   | ... ३५९।६८ |
| शुभोपयोगके गौण मुख्य भेद ...             | ... ३४७।५४ | सत्संगति करने योग्य है...             | ... ३६०।६९ |
| शुभोपयोगके कारणविपरीत होनेसे फलमें       | ...        | संसारतत्त्वका कथन ...                 | ... ३६१।७० |
| विपरीतपना ...                            | ... ३४८।५५ | मोक्षतत्त्वका कथन ...                 | ... ३६२।७१ |
| उत्तम फलका कारण उत्तम पात्र है यह        | ...        | मोक्षतत्त्वके साधनतत्त्वका कथन        | ... ३६३।७२ |
| कथन ...                                  | ... ३५१।५९ | मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व सब मनोरथोंका | ... ३६४।७३ |
| उत्तम पात्रोंकी सेवा सामान्य विशेषपनेसे  | ...        | स्थान है ...                          | ... ३६५।७४ |
| दो तरहकी है...                           | ... ३५३।६१ | शिष्यजनोंको शास्त्रका फल दिलाकर       | ...        |
| भ्रमणाभासोंकी सेवाका निषेध ...           | ... ३५४।६३ | शास्त्रकी समाप्ति ...                 | ... ३६६।७५ |
| भ्रमणाभासका लक्षण ...                    | ... ३५५।६४ | आत्माकी पहचानके लिये ४७ नयोंका        | ...        |
| जो दूसरे मुनिको देख द्वेष करता है उसके   | ...        | कथन ...                               | ... ३६८।०  |
| चारित्रका नाश हो जाता है...              | ... ३५६।६५ | टीकाओंकी समाप्ति ...                  | ... ३७५।०  |
|  |            | टीकाकारोंकी प्रशस्तियां ...           | ... ३७६।०  |

इति विषयानुक्रमणिका ।



श्रीवीतरागाय नमः ।  
श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः  
प्रवचनसारः ।

( टीकात्रयोपेतः )

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिकृततत्त्वप्रदीपिकावृत्तिः ।

मंगलाचरणम् ।

सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने ।

स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नमः ॥ १ ॥

हेलोलुप्तं महामोहतमस्तोमं जयत्यदः ।

प्रकाशयज्जगत्तत्त्वमनेकान्तमयं महः ॥ २ ॥

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः ।

नमः परमचैतन्यस्वात्मोत्थसुखसम्पदे ।

परमागमसाराय सिद्धाय परमेष्ठिने ॥ १ ॥

अथ कश्चिदासन्नभव्यः शिवकुमारनामा स्वसंवित्तिसमुत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतवि-  
परीतचतुर्गतिसंसारदुःखभयभीतः, समुत्पन्नपरमभेदविज्ञानप्रकाशातिशयः, समस्तदुर्नयैकान्तनिरा-

श्रीपांडे हेमराजजीकृत वालावबोधभाषाटीका ।

मङ्गलाचरण, छप्पयच्छंद ।

स्वयंसिद्ध करतार, करै निजकरमसरमनिधि ।

आप हि करणसरूप, होइ साधनसाधै विधि ॥

संप्रदानता धरै, आपकौं आप समप्यै ।

अपादानतैं आप, आपकौं करि धिर थप्यै ॥

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम् ।

क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम् ॥ ३ ॥

अर्थ खलु कश्चिदासन्नसंसारपारावारः समुन्मीलितसातिशयविवेकज्योतिरस्तमितसम-  
स्तैकान्तवादविद्याभिनिवेशः पारमेश्वरीमनेकान्तविद्यामुपगम्य मुक्तसमस्तपक्षपरिग्रहतया-  
त्यन्तमध्यस्थो भूत्वा सकलपुरुषार्थसारतया नितान्तमात्मनो हिततर्मां भगवत्पञ्चपरमेष्ठि-  
प्रसादोपजन्यां परमार्थसत्यां मोक्षलक्ष्मीमक्षयामुपादेयत्वेन निश्चिन्वन् प्रवर्तमानतीर्थनायक-  
पुरःसरान् भगवतः पञ्चपरमेष्ठिनः प्रणमनवन्दनोपजनितनमस्करणेन संभाव्य सर्वारम्भेण  
मोक्षमार्गं संप्रतिपद्यमानः प्रतिजानीतेः—

कृतदुराग्रहः, परित्यक्तसमस्तशत्रुमित्रादिपक्षपातेनात्यन्तमध्यस्थो भूत्वा धर्मार्थकामेभ्यः 'सारभूताम-  
त्यन्तात्महितामविनश्वरां पञ्चपरमेष्ठिप्रसादोपज्ञां मुक्तिश्रियमुपादेयत्वेन स्वीकुर्वाणः, श्रीवर्द्धमानस्वामि-  
तीर्थकरपरमदेवप्रमुखान् भगवतः पञ्चपरमेष्ठिनो द्रव्यभावनमस्कारार्भ्यां प्रणम्य परमचारित्रमाश्र-  
यामीति प्रतिज्ञां करोतिः—

अधिकरज होइ आधार निज, वरतै पूरन ब्रह्मपर ।

पट्विधि कारकमयरहित, विविधि एकविधि अज अमर ॥ १ ॥

दोहा—महत्तत्त्व महनीय मह, महाधाम गुणधाम ।

चिदानंद परमात्मा, बंदौ रमताराम ॥ २ ॥

कुनय-दमनि सुवचन-अवनि, रमनि स्यातपद सुद्ध ।

जिनवानी भानी मुनिप, घटमें करहु सुबुद्धि ॥ ३ ॥

चौपाई—पंच इष्टपदके पद बंदौ । सत्वरूप गुरु गुण अभिनंदौ ।

प्रवचनसारग्रंथकी टीका । बालबोधभाषामय नीका ॥ ४ ॥

रचौ आपपरकौ हितकारी । भग्यजीव आनंद विधारी ।

प्रवचनजलधि अरथजल लैहै । मतिभाजनसमान जन पैहै ॥ ५ ॥

दोहा—अमृतचंदकृत संसकृत, टीका अगम अपार ।

तिस अनुसार फहीं फट्ट, सुगम अल्प विस्तार ॥ ६ ॥

श्रीकृंदकुंदाचार्य प्रथमटी ग्रन्थके आरंभमें मंगलाचरणकेलिये नमस्कार करते हैंः—

१ श्रीकृंदकुंदाचार्यः सकललोकोपकारकं मोक्षमार्गमध्यमनदचिदिनेमारुपरोनोपदर्शयितुकामो निर्विघ्नतः  
शास्त्रपरिणामात्सारिकं फलमभित्यपिष्टदेवताभिर्भेपं शायसादी नमस्तुतेप्राद ।

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं ।  
 पणमामि वह्णमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥ १ ॥  
 सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसव्भावे ।  
 समणे य णाणदंसणचरित्तववीरियायारे ॥ २ ॥  
 ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेयं ।  
 वंदामि य वट्ठंते अरहंते माणुसे ख्वेत्ते ॥ ३ ॥  
 किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं ।  
 अज्झावयवग्गाणं साहूणं चैव सव्वेसिं ॥ ४ ॥  
 तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज ।  
 उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥ ५ ॥ [ पणगं ]

एष सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितं धौतघातिकर्ममलम् ।  
 प्रणमामि वर्द्धमानं तीर्थं धर्मस्य कर्तारम् ॥ १ ॥  
 शेषान् पुनस्तीर्थकरान् ससर्वसिद्धान् विशुद्धसद्भावान् ।  
 श्रमणांश्च ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान् ॥ २ ॥

पणमामीत्यादिपदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते—पणमामि प्रणमामि । स कः ।  
 कर्ता एष एवोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमनाः स्वसंवेदनप्रत्यक्षः । कं वह्णमाणं अवसमन्तादृद्धं  
 वृद्ध मानं प्रमाणं ज्ञानं यस्य स भवति वर्द्धमानः ‘अवाप्योरलोपः’ इति लक्षणेन भव-  
 त्यकारलोपोऽवशब्दस्यात्र, तं रत्नत्रयात्मकप्रवर्तमानधर्मतत्त्वोपदेशकं श्रीवर्द्धमानतीर्थकरपरमदेवं ।  
 क प्रणमामि । प्रथमत एव । किं विशिष्टं सुरासुरमणुसिंदवंदिदं त्रिभुवनाराध्यानन्तज्ञाना-  
 दिगुणाधारपदाधिष्ठितत्वात्पदाभिलाषिभिस्त्रिभुवनाधीशैः सम्पगाराध्यपादारविन्दत्वाच्च सुरासु-  
 रमनुष्येन्द्रवन्दितं । पुनरपि किं विशिष्टं धोदघाइकम्ममलं परमसमाधिसमुत्पन्नरागादिमल-  
 रहितपारमार्थिकसुखामृतरूपनिर्मलनीरप्रक्षालितघातिकर्ममलत्वादन्येषां पापमलप्रक्षालनहेतुत्वाच्च  
 धौतघातिकर्ममलम् । पुनश्च किं लक्षणं तित्थं दृष्टश्रुतानुभूतविषयमुख्यभिलाषरूपनीरप्रवे-

[ एष अहं वर्द्धमानं प्रणमामि ] यह जो मैं “अपने अनुभवके गोचर ज्ञानदर्शन-  
 नस्वरूप” कुंदकुंदाचार्य हूं, सो वर्द्धमान जो देवाधिदेव परमेश्वर परमपूज्य अंतिमतीर्थ-  
 कर उनको नमस्कार करता हूं । कैसे हैं श्रीवर्द्धमानतीर्थकर [ सुरासुरमनुष्येन्द्र-  
 वन्दितं ] विमानवासी देवोंके पातालमें रहनेवाले देवोंके और मनुष्योंके स्वामि-  
 योंकर नमस्कार किये गये हैं इस कारण तीन लोककर पूज्य हैं । फिर कैसे हैं  
 [ धौतघानिकर्ममलम् ] धोये हैं चार घण्टियाकर्मरूप मैल जिन्होंने इस लिये अ-



तांस्तान् सर्वान् समकं समकं प्रत्येकमेव प्रत्येकम् ।

वन्दे च वर्तमानानर्हतो मानुषे क्षेत्रे ॥ ३ ॥

कृत्वाहृद्भयः सिद्धेभ्यस्तथा नमो गणधरेभ्यः ।

अध्यापकवर्गेभ्यः साधुभ्यश्चेति सर्वेभ्यः ॥ ४ ॥

तेषां विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं समासाद्य ।

उपसम्पद्ये साम्यं यतो निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ ५ ॥ [ पञ्चकम् ]

एष स्वसंवेदनप्रत्यक्षो दर्शनज्ञानसामान्यात्मात्माहं सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितत्वात्रिलोक-  
गुरुं, धौतघातिकर्ममलत्वाजगदनुग्रहसमर्थानन्तशक्तिपारमैश्वर्यं, योगिनां तीर्थत्वात्तारणसमर्थं,  
धर्मकर्तृत्वाद्बुद्धस्वरूपवृत्तिविधातारं, प्रवर्तमानतीर्थनायकत्वेन प्रथमत एव परमभट्टारक-  
महादेवाधिदेवपरमेश्वरपूज्यसुगृहीतनामश्रीवर्द्धमानदेवं प्रणमामि ॥ १ ॥ तदनु विशु-  
द्धसद्भावत्वाद्गुणात्तपाकोत्तीर्णजात्यकार्तस्वरस्थानीयशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावान् शेषानतीर्णती-  
र्थनायकान् सर्वान् सिद्धांश्च ज्ञानदर्शनचारित्र्यतपोवीर्याचारयुक्तत्वात्संभावितपरमशुद्धोप-

शरहितेन परमसमाधिपोतेनोत्तीर्णसंसारसमुद्रत्वात्, अन्येषां तरणोपायभूतत्वाच्च तीर्थम् । पुनश्च  
किं रूपं । धम्मस्स कत्तारं निहंपरागात्तत्त्वपरिणतिरूपनिश्चयधर्मस्योपादानकारणत्वात्  
अन्येषामुत्तमक्षमादिबहुविधधर्मोपदेशकत्वाच्च धर्मस्य कर्तारम् । इति क्रियाकारकसम्बन्धः । एव-  
मन्तिमतीर्थकरणमस्कारमुत्पत्तेन गाथा गता ॥ १ ॥ तदनन्तरं प्रणमामि । कान् सेसे पुण-  
तित्थयरे ससर्वसिद्धे शेषतीर्थकरान् । पुनः ससर्वसिद्धान् वृषभादिपार्श्वपर्यन्तान्  
शुद्धामोपलब्धिभ्रलक्षणसर्वसिद्धसहितानेतान् सर्वानपि । कथंभूतान् । विमुद्धसवभावे  
निर्मलामोपलब्धिबलेन विच्छेपिताखिलावरणत्वात्केवलज्ञानदर्शनस्वभावत्वाच्च विशुद्धसद्भावान् ।  
समणे च श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसाधूंश्च । किं लक्षणान् णाणदंसणचरित्तववी-

नंतचतुष्टय [ अनंतज्ञान, १ अनंतदर्शन २ अनंतवीर्यं ३ अनंतसुख ४ ] सहित हैं । फिर  
कैसे हैं [ तीर्थ ] तारनेमें समर्थ हैं अर्थात् भव्यजीवोंको संसारसमुद्रसे पार करने-  
वाले हैं । फिर कैसे हैं । [ धर्मस्य कर्तारम् ] शुद्ध आत्मीक जो धर्म उसके कर्ता  
अर्थात् उपदेश देने वाले हैं ॥ १ ॥ [ पुनः अहं ] फिर मैं कुंदकुंदाचार्य [ शेषान्  
तीर्थकरान् ससर्वसिद्धान् प्रणमामि ] शेष जो वचे, तेईस तीर्थकर समस्त अती-  
तकालके सिद्धोंसहित हैं, उनको नमस्कार करता हूं । कैसे हैं तीर्थकर और सिद्ध  
[ विशुद्धसद्भावान् ] निर्मल हैं ज्ञानदर्शनरूपस्वभाव जिनके । जैसे अन्तिम अ-  
प्रिकर तपाया हुआ मोना अत्यन्तशुद्ध होजाता है, उसी तरह निर्मल स्वभाव सहित हैं ।  
[ च श्रमणान् ] फिर आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार करता हूं ।

१ वर्द्धमानत्वान्तिर्णं प्रत्यहृतो धितित्पदसंनारिगुणग्रामेः प्रथमतर्णं नमस्तुत्यान्यान्यहंदादिपरमेष्ठिनो  
नमस्तुर्वाहः । २ गपुत्रके निरूपणपरमात्मनश्च इति पाठः ।

योगभूमिकानाचार्योपाध्यायसाधुत्वविशिष्टान् श्रमणाश्च प्रणमामि ॥ २ ॥ तदन्वेतानेव पञ्चपरमेष्ठिनस्तत्तद्भक्तिव्यापिनः सर्वानेव सांप्रतमेतत्क्षेत्रसंभवतीर्थकरासंभवान्महाविदेहभूमिसंभवत्वे सति मनुष्यक्षेत्रप्रवर्तिभिस्तीर्थनायकैः सह वर्तमानकालं गोचरीकृत्य युगपद्युगपत्प्रत्येकं प्रत्येकं च मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरायमाणपरमनैर्ग्रन्थ्यदीक्षाक्षणोचितमङ्गलाचारभूतकृतिकर्मशास्त्रोपदिष्टवन्दनाभिधानेन संभावयामि ॥३॥ अथैवमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व-

रियायारे सर्वविशुद्धद्रव्यगुणपर्यायात्मके चिद्रस्तुति यासौ रागादिविकल्परहितनिश्चलचित्तवृत्तिस्तदन्तर्भूतेन व्यवहारपञ्चाचारसहकारिकारणोत्पन्नेन निश्चयपञ्चाचारेण परिणतत्वात् सम्पन्नानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारोपेतानिति । एवं शेषत्रयोविंशतितीर्थकरणमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गता ॥२॥ अथ ते ते सद्ये तांस्तान्पूर्वोक्तानेव पञ्चपरमेष्ठिनः सर्वान् वंदामि य वन्दे, अहं कर्ता । कथं समगं समगं समुदायवन्दनापेक्षया युगपद्युगपत् । पुनरपि कथं पत्तयेमेव पत्तये प्रत्येकवन्दनापेक्षया प्रत्येकं प्रत्येकं । न केवलमेतान् वन्दे अरहंते अर्हतः । किंविशिष्टान् वदंते माणुसे खेत्ते वर्तमानान् । क? मानुषे क्षेत्रे । तथाहि—सांप्रतमत्र भरतक्षेत्रे तीर्थकराभावात् पञ्चमहाविदेहस्थितश्रीमन्दरस्वामितीर्थकरपरमदेवप्रमृतितीर्थकरैः सह तानेव पञ्चपरमेष्ठिनो नमस्करोमि । कथा । करणभूतया मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरमण्डपभूते जिनदीक्षाक्षणे मङ्गलाचारभूतया अनन्तज्ञानादिसिद्धगुणभावनारूपया सिद्धभक्त्या, तथैव निर्मलसमाधिपरिणतपरमयोगिगुणभावनालक्षणया योगभक्त्या चेति । एवं पूर्वविदेहतीर्थकरणमस्कारमुख्यत्वेन गाथा

कैसे हैं [ ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान् ] ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्य ये हैं आचरण जिनके अर्थात् ज्ञानादिमें हमेशा लीन रहते हैं इस कारण उत्कृष्ट शुद्धोपयोगकी भूमिको प्राप्त हुए हैं । इस गाथामें पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया है ॥२॥ [ च पुनः अहं ] फिर मैं कुंडकुंदाचार्य [ मानुषे क्षेत्रे वर्तमानान् ] मनुष्योंके रहनेका क्षेत्र जो ढाई द्वीप ( जम्पूद्वीप, धातकीखण्ड, और आधा पुष्कर ) उसमें रहने वाले जो जो अरहंत हैं [ तान् तान् सर्वानर्हतः ] उन २ सब अरहंतोंको [ समकं समकं प्रत्येकमेव प्रत्येकम् ] सबको एकही समय अथवा हरएकको कालके क्रमसे [ वन्दे ] नमस्कार करता हूं । भावार्थ—इस भरत क्षेत्रमें इससमय तीर्थकर मौजूद नहीं हैं, इस कारण जो महाविदेहमें तीर्थकर वर्तमान हैं उनको मन वचन कायसे शास्त्रके अनुसार नमस्कार करता हूं । वह नमस्कार दोतरहका है, द्वैत तथा अद्वैत, जो शरीरको नमायकर मस्तकको भूमिमें लगाकर अनेक स्तुतियोंसे पंचपरमेष्ठीको अष्टाङ्गनमस्कार करना है, वह द्वैत नमस्कार है । और जिस जगह भाव्य-भावकभावोंकी विशेषता ( उत्कटता ) से अत्यंत लीन होकर 'ये पञ्चपरमेष्ठी' 'यह मैं' ऐसा अपना और परका भेद मिट जाय, उस जगह अद्वैत नमस्कार कहा जाता है । अभ्यन्तरके परिणामोंको भाव्य तथा वचनोंके धोलने रूप बाह्यभावोंको भावक कहते

साधूनां प्रणतिवन्दनाभिधानप्रवृत्तद्वैतद्वारेण भाव्यभावकभावजृम्भितातिनिर्भरेतरेतरसंवलन-  
 चलविलीननिखिलस्वपरविभागतया प्रवृत्तद्वैतं नमस्कारं कृत्वा ॥४॥तेषामेवाहंतिस्त्रिद्व्याचार्यो-  
 पाध्यायसर्वसाधूनां विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधानत्वेन सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावात्मतत्त्वश्रद्धाना-  
 वबोधलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानसंपादकमाश्रमं समासाद्य सम्यग्दर्शनज्ञानसंपन्नो भूत्वा, जीवस्य  
 कषायकणतया पुण्यबन्धसंप्राप्तिहेतुभूतं सरागचारित्रं क्रमापतितमपि दूरमुत्क्रम्य सकल-  
 कषायकलिकलङ्कविचिक्ततया निर्वाणसंप्राप्तिहेतुभूतं वीतरागचारित्राख्यं साम्यमुपसंपद्ये ।  
 सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यात्मकैकाग्र्यं गतोस्मीति प्रतिज्ञार्थः । एवं तावदयं साक्षान्मो-  
 क्षमार्गं संप्रतिपन्नः ॥ ५ ॥

गतेत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥ अथ किञ्चा कृत्वा । कं । णमो नमस्कारं । केभ्यः । अरहंताणं  
 सिद्धाणं तह णमो गणहराणं अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव अहंतिस्त्रिद्व्यागणधरो-  
 पाध्यायसाधुभ्यश्चैव । कतिसंख्योपेतैभ्यः ? सव्वेसिं सर्वेभ्यः । इति पूर्वगाथात्रयेण कृतपञ्च-  
 परमेष्ठिनमस्कारोपसंहारोऽयम् ॥ ४ ॥ एवं पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा किं करोमि । उवसं-  
 पयामि उपसंपद्ये समाश्रयामि । किं । सम्मं शाम्यं चारित्रं । यस्मात् किं भवति । जंतो-  
 णिव्वाणसंपत्ती यस्मान्निर्वाणसंप्राप्तिः । किं कृत्वा । पूर्वं समासिज्ज समासाद्य प्राप्य । कम ।  
 विसुद्धणाणदंसणपहाणासमं विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणप्रधानाश्रमं । केषां संबन्धित्वेन ।  
 तेषिं तेषां पूर्वोक्तपरमेष्ठिनामिति । तथाहि—अहमाराधकः, एते चार्हदादेव आराध्या इत्या-  
 राभ्याराधकविकल्परूपो द्वैतनमस्कारो भण्यते । रागाद्युपाधिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनात्मन्ये-  
 वाराभ्याराधकभावः पुनरद्वैतनमस्कारो भण्यते । इत्येवं लक्षणं पूर्वोक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण  
 पञ्चपरमेष्ठिसम्बन्धिनं द्वैताद्वैतनमस्कारं कृत्वा । ततः किं करोमि । रागादिभ्यो भिक्षोऽयं स्वात्मो-  
 पधुस्वस्वभावः परमात्मेति भेदज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वमि-  
 त्युक्तलक्षणज्ञानदर्शनस्वभावं, मठचैत्याख्यादिलक्षणव्यवहारश्रमाद्विलक्षणं, भावाश्रमरूपं प्रधाना-  
 श्रमं प्राप्य । तत्पूर्वक्रमायातमपि सरागचारित्रं पुण्यबन्धकारणमिति ज्ञात्वा परिहृत्य निश्चल-

हं ॥ ३ ॥ [ अहं साम्यं उपसंपद्ये ] मैं ग्रन्थकर्ता द्रान्त भाव जो वीतरागचारित्र  
 उसको स्वीकार करता हूँ । क्या करके [ अहंद्भ्यः नमस्कृत्य ] अरहंत जो अन-  
 न्तचतुष्टयसहित जीवन्मुक्त जिनवर हैं, उनको पहिले कहा हुआ दोतरहका नमस्कार  
 करके [ तथा सिद्धेभ्यः ] और उसीप्रकार सिद्धोंको [ गणधरेभ्यः ] आचार्योंको  
 [ अध्यापकवर्गभ्यः ] उपाध्यायोंके समूहको [ च इति सर्वेभ्यः साधुभ्यः ]  
 और इमी प्रकार सब साधुओंको नमस्कार करके ॥ ४ ॥ फिर क्या करके शमपरि-  
 णामोंको स्वीकार करता हूँ । [ तेषां विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं ] उन पञ्च-  
 परमेष्ठियोंके निर्मल दर्शन, उपसुख्य भानकों [ समासाद्य ] पाकरके ।  
 [ यतो निर्वाणसंप्राप्तिः ] न-ज्ञानपरिणामोंके ही मोक्षकी प्राप्ति होती

अथायमेव वीतरागसरागचारित्रयोरिष्टानिष्टफलत्वेनोपादेयहेयत्वं विवेचयतिः—

संपज्जदि णिब्वाणं देवासुरमणुयरायविह्वेहिं ।

जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो ॥ ६ ॥

संपद्यते निर्वाणं देवासुरमनुजराजविभवैः ।

जीवस्य चरित्रादर्शनज्ञानप्रधानात् ॥ ६ ॥

संपद्यते हि दर्शनज्ञानप्रधानाचारित्राद्वीतरागान्मोक्षः । तत एव च सरागाद्देवासुरमनु-  
जराजविभवक्लेशरूपो बन्धः । अतो मुमुक्षुणेष्टफलत्वाद्दीतरागचारित्रमुपादेयमनिष्टफल-  
त्वात्सरागचारित्रं हेयम् ॥ ६ ॥

शुद्धात्मानुभूतिस्वरूपं वीतरागचारित्रमहमाश्रयामीति भावार्थः । एवं प्रथमस्थले नमस्कारमुत्पत्वेन  
गाथापञ्चकं गतम् ॥ ५ ॥ अथोपादेयभूतस्यातीन्द्रियसुखस्य कारणत्वाद्दीतरागचारित्रमुपादेयम्,  
अतीन्द्रियसुखापेक्षया हेयस्येन्द्रियसुखस्य कारणत्वात्सरागचारित्रं हेयमित्युपदिशतिः—संपज्जदि  
संपद्यते । किम् । णिब्वाणं निर्वाणं । कथम् । सह । कैः । देवासुरमणुवरायविह्वेहिं  
देवासुरमनुष्यराजविभवैः । कस्य । जीवस्स जीवस्य । कस्मात् । चरित्तादो चरित्रात् ।  
कथंभूतात् । दंसणणाणप्पहाणादो सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधानादिति । तद्यथा—आत्माधीनज्ञान-  
सुखस्वभावे शुद्धात्मद्रव्ये यन्निश्चलनिर्विकारानुभूतिरूपमवस्थानं तद्दृक्षणनिश्चयचारित्राज्जीवस्य

है । भावार्थ—सब उपाधियोंसे जुदा आत्माको जानना और वैसा ही श्रद्धान करना  
ये ही निर्मल दर्शन, ज्ञान पंचपरमेष्ठीके स्थान हैं । इनमें ही पंचपरमेष्ठी प्राप्त होते हैं ।  
इस तरह स्थानोंको मैं पाकर वीतरागचारित्रको धारण करता हूँ । यद्यपि गुणस्थानोंके  
चटनेके क्रममें सरागचारित्र जवरदस्ती अर्थात् चारित्र मोहके मन्द उदय होनेसे अपने  
आप आजाता है तौभी मैं उसको दूरहीसे छोड़ता हूँ, क्योंकि वह कपायके अंशोंसे मिला-  
हुआ है और पुण्यबन्धका कारण है । इस कारण समस्त कपाय कलंक रहित तथा  
साक्षात् मोक्षका कारण वीतरागचारित्रको अंगीकार करता हूँ ॥ ५ ॥

आगे श्रीकुंदकुंदाचार्य वीतराग-सरागचारित्रके उपादेय-हेयफलका खुलासा गाथासूत्रमें  
कहते हैंः—

[ जीवस्य चरित्रात् निर्वाणं संपद्यते ] जीवको चारित्रगुणके आचरणसे  
मोक्ष प्राप्त होती है । कैसे चारित्रसे ? [ दर्शनज्ञानप्रधानात् ] सम्यग्दर्शन-ज्ञान हैं मुख्य  
जिसमें । किन विभूतियोंसहित मोक्ष पाता है ? [ देवासुरमनुजराजविभवैः सह ]  
स्वर्गवासी देव, पातालवासी देव तथा मनुष्योंके स्वामियोंकी संपदा सहित ।  
भावार्थ—चारित्र दो प्रकारका है, वीतराग तथा सराग । वीतरागचारित्रसे मोक्ष

साधूनां प्रणतिवन्दनाभिधानप्रवृत्तद्वैतद्वारेण भाव्यभावकभावजृम्भितातिनिर्भरेतरेतरसंवलन-  
 धलविलीननिखिलस्वपरविभागतया प्रवृत्ताद्वैतं नमस्कारं कृत्वा ॥४॥तेषामेवाहंत्सिद्धाचार्यो-  
 पाध्यायसर्वसाधूनां विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधानत्वेन सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावात्मतत्त्वश्रद्धाना-  
 वंचोधलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानसंपादकमाश्रमं समासाद्य सम्यग्दर्शनज्ञानसंपन्नो भूत्वा, जीवस्य  
 कषायकणतया पुण्यबन्धसंप्राप्तिहेतुभूतं सरागचारित्रं क्रमापतितमपि दूरमुत्क्रम्य सकल-  
 कषायकलिकलङ्कविविक्ततया निर्वाणसंप्राप्तिहेतुभूतं वीतरागचारित्राख्यं साम्यमुपसंपद्ये ।  
 सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यात्मकैकाग्र्यं गतोस्मीति प्रतिज्ञार्थः । एवं तावदयं साक्षान्मो-  
 क्षमार्गं संप्रतिपन्नः ॥ ५ ॥

गतेत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥ अथ किञ्चा कृत्वा । कं । णमो नमस्कारं । केभ्यः । अरहंताणं  
 सिद्धाणं तह णमो गणहराणं अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव अहंत्सिद्धगणधरो-  
 पाध्यायसाधुभ्यश्चैव । कतिसंख्योपेतेभ्यः ? सव्वेसिं सर्वेभ्यः । इति पूर्वगाथात्रयेण कृतपञ्च-  
 परमेष्ठिनमस्कारोपसंहारोऽयम् ॥ ४ ॥ एवं पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा किं करोमि । उपसं-  
 पयामि उपसंपद्ये समाश्रयामि । किं । सम्मं शम्यं चारित्रं । यस्मात् किं भवति । जंतो-  
 णिव्वाणसंपत्ती यस्मान्निर्वाणसंप्राप्तिः । किं कृत्वा । पूर्वं समासिज्ज समासाद्य प्राप्य । कम् ।  
 विमुद्धणाणदंसणपहाणासमं विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणप्रधानाश्रमं । केषां संबन्धित्वेन ।  
 तेसिं तेषां पूर्वोक्तपरमेष्ठिनामिति । तथाहि—अहमाराधकः, एते चार्हदादय आराध्या इत्या-  
 राध्याराधकविकल्परूपो द्वैतनमस्कारो भण्यते । रागागुपाविविकल्परहितपरमसमाधिबलेनात्मन्ये-  
 वाराध्याराधकभावः पुनरद्वैतनमस्कारो भण्यते । इत्येवं लक्षणं पूर्वोक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण  
 पञ्चपरमेष्ठिसम्बन्धिनं द्वैताद्वैतनमस्कारं कृत्वा । ततः किं करोमि । रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वामो-  
 त्थमुखस्वभावः परमात्मेति भेदज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रुचिररूपं सम्यक्त्वमि-  
 त्युक्तलक्षणज्ञानदर्शनस्वभावं, मठचैत्यालयादिलक्षणव्यवहाराश्रमादिलक्षणं, भावाश्रमरूपं प्रधाना-  
 श्रमं प्राप्य । तत्पूर्वक्रमायातमपि सरागचारित्रं पुण्यबन्धकारणमिति ज्ञात्वा परिहृत्य निश्चल-

हं ॥ ३ ॥ [ अहं साम्यं उपसंपद्ये ] मैं ग्रन्थकर्ता शान्त भाव जो वीतरागचारित्र  
 उसको स्वीकार करता हूँ । क्या करके [ अहंद्भ्यः नमस्कृत्य ] अरहंत जो अन-  
 न्तचतुष्टयसहित जीवन्मुक्त जिनवर हैं, उनको पहिले कहा हुआ दोतरहका नमस्कार  
 करके [ तथा सिद्धेभ्यः ] और उसीप्रकार सिद्धोंको [ गणधरेभ्यः ] आचार्योंको  
 [ अध्यापकवर्गभ्यः ] उपाध्यायोंके समूहको [ च इति सर्वेभ्यः साधुभ्यः ]  
 और इसी प्रकार सब साधुओंको नमस्कार करके ॥ ४ ॥ फिर क्या करके शमपरि-  
 णामोंको स्वीकार करता हूँ । [ तेषां विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं ] उन पथ-  
 परमेष्ठियोंके निर्मल दर्शन, शानस्वरूप सुगम ध्यानको [ समासाद्य ] पाकरके ।  
 [ यतो निर्वाणसंप्राप्तिः ] क्योंकि इन शान्तपरिणामोंके ही मोक्षकी प्राप्ति होती

अथात्मनश्चारित्रत्वं निश्चिनोतिः—

परिणमदि जेण द्रव्यं तत्कालं तन्मयस्ति पण्णत्तं ।  
तस्मा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयद्भवो ॥ ८ ॥

परिणमति येन द्रव्यं तत्कालं तन्मयमिति प्रज्ञप्तम् ।  
तस्माद्धर्मपरिणत आत्मा धर्मो मन्तव्यः ॥ ८ ॥

यत्खलु द्रव्यं यस्मिन्काले येन भावेन परिणमति तत् तस्मिन् काले किलौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवत्तन्मयं भवति । ततोऽयमात्मा धर्मेण परिणतो धर्म एव भवतीति सिद्धमात्मनश्चारित्रत्वम् ॥ ८ ॥

तथाहि—शुद्धचित्स्वरूपे चरणं चारित्रं, तदेव चारित्रं मिथ्यात्वरगादिसंसरणरूपेण भावसंस्तारे पतन्तं प्राणिनमुद्भूय निर्विकारशुद्धचैतन्ये धरतीति धर्मः । स एव धर्मः स्वात्मभावनोत्थसुखामृतशीतजलेन कामक्रोधादिरूपाग्निजनितस्य संसारदुःखदाहस्योपशमकत्वात् शम इति । ततश्च शुद्धात्मश्रद्धानरूपसम्यक्त्वस्य विनाशको दर्शनमोहाभिधानो मोह इत्युच्यते । निर्विकारनिश्चलचित्तवृत्तिरूपचारित्रस्य विनाशकश्चारित्रमोहाभिधानः क्षोभ इत्युच्यते । तयोर्विध्वंसकत्वात्स एव शमो मोहक्षोभविहीनः शुद्धात्मपरिणामो भण्यत इत्यभिप्रायः ॥ ७ ॥ अथाभेदनयेन धर्मपरिणत आत्मैव धर्मो भवतीत्यावेदयतिः—परिणमदि जेण द्रव्यं तत्काले तन्मयस्ति पण्णत्तं परिणमति येन पर्यायेण द्रव्यं कर्तुं तत्कालेन तन्मयं भवतीति प्रज्ञप्तम् । यतः कारणात् तस्मा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदद्भवो ततः कारणात् धर्मेण परिणत आत्मैव धर्मो मन्तव्य इति । तद्यथा—निजशुद्धात्मपरिणतिरूपो निश्चयधर्मो भवति । पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिपरिणामरूपो व्यवहारधर्मस्तावदुच्यते । यतस्तेन तेन विवक्षिताविवक्षितपर्यायेण परिणतं द्रव्यं तन्मयं भवति,

अभिप्राय यह है कि, वीतराग चारित्र वस्तुका स्वभाव है । वीतरागचारित्र, निश्चयचारित्र, धर्म, समपरिणाम ये सब एकार्थवाचक हैं । और मोहकर्मसे जुदा निर्विकार जो आत्माका परिणाम स्थिररूप सुखमय वही चारित्रका स्वरूप है ॥ ७ ॥ आगे चारित्र और आत्माकी एकता दिखाते हैंः—

[ येन द्रव्यं परिणमति ] जिस वक्त जिस स्वभावसे द्रव्य परणमन करता है [ तत्कालं तन्मयम् ] उस समय उसी स्वभावमय द्रव्य हो जाता है [ इति प्रज्ञप्तम् ] ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है । जैसे लोहेका गोला जब आगमें डाला जाता है, तब उष्णरूप होकर परिणमता है अर्थात् उष्णपनेसे तन्मय हो जाता है, इसी तरह यह आत्मा जब शुभ, अशुभ, शुद्ध भावोंमेंसे जिस भावरूप परिणमता है, तब उस भावसे उसी स्वरूप होता है [ तस्माद्धर्मपरिणतः आत्मा ] इस कारण वीतराग-चारित्र ( समताभाव ) रूप धर्मसे परणमता यह आत्मा [ धर्मो मन्तव्यः ] धर्म

अथ चारित्रस्वरूपं विभावयति:—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्धिट्ठो ।  
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥ ७ ॥

चारित्रं खलु धर्मो धर्मो यः स शम इति निर्दिष्टः ।

मोहक्षोभविहीनः परिणाम आत्मनो हि शमः ॥ ७ ॥

स्वरूपे चरणं चारित्रं स्वसमयप्रवृत्तिरित्यर्थः । तदेव वस्तुस्वभावत्वाद्धर्मः । शुद्ध-  
चैतन्यप्रकाशनमित्यर्थः । तदेव च यथावस्थितात्मगुणत्वात्साम्यम् । साम्यं तु दर्शनचारि-  
त्रमोहनीयोदयापादितसमस्तमोहक्षोभाभावादत्यन्तनिर्विकारो जीवस्य परिणामः ॥ ७ ॥

समुत्पद्यते । किम् । पराधीनेन्द्रियजनितज्ञानसुखविलक्षणं, स्वाधीनातीन्द्रियरूपपरमज्ञानसुखल-  
क्षणं निर्वाणम् । सरागचारित्रायुनेदेवासुरमनुष्यराजविभूतिजनको मुख्यवृत्त्या विशिष्टपुण्यबन्धो  
भवति, परम्परया निर्वाणं चेति । असुरेषु मत्वे सम्यग्दृष्टिः कथमुत्पद्यते ? इतिचेत्—निदानबन्धेन  
सम्पत्त्वविराधनां कृत्वा तत्रोत्पद्यते इति ज्ञातव्यम् । अत्र निश्चयेन वीतरागचारित्रमुपादेयं सरागं  
हेयमिति भावार्थः ॥ ६ ॥ अथ निश्चयचारित्रस्य पर्यायनामानि कथयामीत्यभिप्रायं मनसि  
संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति, एवमपेऽपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि धृत्वाथवास्य सूत्रस्यापे सूत्रमिदमु-  
चितं भवत्येवं निश्चय सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्:—  
चारित्तं चारित्रं कर्तुं खलु धम्मो खलु स्फुटं धर्मो भवति । धम्मो जो सो समोत्ति  
णिद्धिट्ठो धर्मो यः स तु शम इति निर्दिष्टः । समो यस्तु शमः सः मोहक्खोहविहीणो  
परिणामो अप्पणो हु मोहक्षोभविहीनः परिणामः । कस्य । आत्मनः हु स्फुटमिति ।

होती है, इस कारण वीतराग चारित्र आप मोक्षरूप है और सरागचारित्रसे इंद्र  
धरणेंद्र, चक्रवर्तीकी विभूतिस्वरूप बंध होता है । क्योंकि सराग चारित्र कपायोंके  
अंशोंके मेलसे आत्माके गुणोंका घात करनेवाला है । इस कारण आप बंधरूप है ।  
इसीलिये ज्ञानी पुरुषोंको सरागचारित्र त्यागने योग्य कहा है, और वीतरागचारित्र  
ग्रहण करने योग्य कहा गया है ॥ ६ ॥

आगे निश्चयचारित्रका स्वरूप कहते हैं:—

[ खलु चारित्रं धर्मः ] निश्चयकर अपनेमें अपने स्वरूपका आचरणरूप जो  
चारित्र वह धर्म अर्थात् वस्तुका स्वभाव है । जो स्वभाव है वह धर्म है । इस कारण  
अपने स्वरूपके धारण करनेसे चारित्रका नाम धर्म कहा गया है । [ यः धर्मः  
तत्साम्यमिति निर्दिष्टम् ] जो धर्म है, वही सम भाव है । ऐसा श्रीवीतरागदेवने  
कहा है । वह साम्यभाव क्या है ? [ मोहक्खोभविहीनः आत्मनः परि-  
णामः ] उद्वेगपने ( चंचलता ) से रहित आत्माका परिणाम वही साम्यभाव है ।

अथात्मनश्चारित्रत्वं निश्चिनोतिः—

परिणमदि जेण द्रव्यं तत्कालं तन्मयमिति पण्णत्तं ।  
तह्मा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो ॥ ८ ॥

परिणमति येन द्रव्यं तत्कालं तन्मयमिति प्रज्ञप्तम् ।

तस्माद्धर्मपरिणत आत्मा धर्मो मन्तव्यः ॥ ८ ॥

यत्खलु द्रव्यं यस्मिन्काले येन भावेन परिणमति तत् तस्मिन् काले किलौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवत्तन्मयं भवति । ततोऽयमात्मा धर्मेण परिणतो धर्म एव भवतीति सिद्धमात्मनश्चारित्रत्वम् ॥ ८ ॥

तथाहि—शुद्धचित्स्वरूपे चरणं चारित्रं, तदेव चारित्रं मिथ्यात्वरगादिसंसरणरूपेण भावसंस्तारे पतन्तं प्राणिनमुद्बल्य निर्विकारशुद्धचैतन्ये धरतीति धर्मः । स एव धर्मः स्वात्मभावनोत्थसुखामृतशीतजलेन कामक्रोधादिरूपान्निजनितस्य संसारद्दुःखदाहस्योपशमकत्वात् शम इति । ततश्च शुद्धात्मश्रद्धानरूपसम्यक्त्वस्य विनाशको दर्शनमोहाभिधानो मोह इत्युच्यते । निर्विकारनिश्चलचित्तवृत्तिरूपचारित्रस्य विनाशकश्चारित्रमोहाभिधानः क्षोभ इत्युच्यते । तयोर्विध्वंसकत्वात्स एव शमो मोहक्षोभविहीनः शुद्धात्मपरिणामो भण्यत इत्यभिप्रायः ॥ ७ ॥ अथाभेदनयेन धर्मपरिणत आत्मैव धर्मो भवतीत्यावेदयतिः—परिणमदि जेण द्रव्यं तत्काले तन्मयमिति पण्णत्तं परिणमति येन पर्यायेण द्रव्यं कर्तुं तत्कालेन तन्मयं भवतीति प्रज्ञप्तम् । यतः कारणात् तह्मा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो ततः कारणात् धर्मेण परिणत आत्मैव धर्मो मन्तव्य इति । तद्यथा—निजशुद्धात्मपरिणतिरूपो निश्चयधर्मो भवति । पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिपरिणामरूपो व्यवहारधर्मस्तावदुच्यते । यतस्तेन तेन विवक्षिताविवक्षितपर्यायेण परिणतं द्रव्यं तन्मयं भवति,

अभिप्राय यह है कि, वीतराग चारित्र वस्तुका स्वभाव है । वीतरागचारित्र, निश्चयचारित्र, धर्म, समपरिणाम ये सब एकार्थवाचक हैं । और मोहकर्मसे जुदा निर्विकार जो आत्माका परिणाम स्थिररूप सुखमय वही चारित्रका स्वरूप है ॥ ७ ॥ आगे चारित्र और आत्माकी एकता दिखाते हैंः—

[ येन द्रव्यं परिणमति ] जिस वक्त जिस स्वभावसे द्रव्य परणमन करता है [ तत्कालं तन्मयम् ] उस समय उसी स्वभावमय द्रव्य हो जाता है [ इति प्रज्ञप्तम् ] ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है । जैसे लोहेका गोला जब आगमें डाला जाता है, तब उष्णरूप होकर परिणमता है अर्थात् उष्णपनेसे तन्मय हो जाता है, इसी तरह यह आत्मा जब शुभ, अशुभ, शुद्ध भावोंमेंसे जिस भावरूप परिणमता है, तब उस भावसे उसी स्वरूप होता है [ तस्माद्धर्मपरिणतः आत्मा ] इस कारण वीतराग-चारित्र ( समताभाव ) रूप धर्मसे परणमता यह आत्मा [ धर्मो मन्तव्यः ] धर्म



अथ जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वं निश्चिनोतिः—

जीवो परिणमति जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।

सुद्वेण तदा सुद्धो हवति हि परिणामस्वभावो ॥ ९ ॥

जीवः परिणमति यदा शुभेनाशुभेन वा शुभोऽशुभः ।

शुद्धेन तदा शुद्धो भवति हि परिणामस्वभावः ॥ ९ ॥

यदाऽयमात्मा शुभेनाशुभेन वा रागभावेन परिणमति तदा जपातापिच्छरागपरिणत-  
स्फटिकवत् परिणामस्वभावः सन् शुभोऽशुभश्च भवति । यदा पुनः शुद्धेनारागभावेन परि-  
णमति तदा शुद्धारागपरिणतस्फटिकवत्परिणामस्वभावः सन् शुद्धो भवतीति सिद्धं जी-  
वस्य शुभाशुभशुद्धत्वम् ॥ ९ ॥

ततः पूर्वोक्तधर्मद्वयेन परिणतस्तत्तायःपिण्डवदभेदनयेनात्मैव धर्मो भवतीति ज्ञातव्यम् । तदपि  
कस्मात्? उपादानकारणसदृशं हि कार्यमिति वचनात् । तच्च पुनरुपादानकारणं शुद्धाशुद्ध-  
भेदेन द्विधा । रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानमागमभाषया शुद्धध्यानं वा केवलज्ञानोपत्तौ  
शुद्धोपादानकारणं भवति । अशुद्धात्मा तु रागादिना अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानकारणं भवतीति  
सूनार्थः ॥ ८ ॥ एवं चारित्रस्य संक्षेपसूचनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ शुभ-  
शुभशुद्धोपयोगत्रयेण परिणतो जीवः शुभाशुभशुद्धोपयोगस्वरूपो भवतीत्युपदिशतिः—जीवो  
परिणमति जदा सुहेण असुहेण वा जीवः कर्ता यदा परिणमति शुभेनाशुभेन वा परि-  
णामेन सुहो असुहो हवति तदा शुभेन शुभो भवति, अशुभेन वाऽशुभो भवति । सुद्वेण  
तदा सुद्धो हि शुद्धेन यदा परिणमति तदा शुद्धो भवति हि स्फुटम् । कथम्भूतः सन् ।

जानना । भावार्थ—जब जिस तरहके भावोंसे यह आत्मा परिणमन करता है तब  
उन्हीं स्वरूप ही है, इस न्यायसे वीतरागचारित्ररूप धर्मसे परिणमन करता हुआ वीतराग  
चारित्र धर्म ही होजाता है । इसलिये आत्मा और चारित्रके एकपना है । आत्माको  
चारित्रभी कहते हैं ॥ ८ ॥

आगे आत्मके शुभ, अशुभ तथा शुद्ध भावोंका निर्णय करते हैं—

[ यदा जीवः ] जब यह जीव [ शुभेन अशुभेन वा परिणमति ] शुभ  
अथवा अशुभ परिणामों कर परिणमता है [ तदा शुभ अशुभो भवति ] तब यह  
शुभ वा अशुभ होता है । अर्थात् जब यह दान, पूजा, व्रतादिरूप शुभपरिणामोंसे परि-  
णमता है, तब उन भावोंके साथ तन्मय होता हुआ शुभ होता है, और जब विषय,  
क्रपाय, अग्रतादिरूप अशुभभावोंकर परिणत होता है, तब उन भावोंके साथ उन्हीं  
स्वरूप हो जाता है । जैसे स्फटिकमणि फाले फूलका संयोग मिलने पर काली ही  
होजाती है । क्योंकि स्फटिकमणि फाली परिणमन स्वभाव है । उसीप्रकार जीवका भी  
समझना । [ शुद्धेन तः ] जब यह जीव आत्मीक वीतराग शुद्धभावस्वरूप

अथ परिणामं वस्तुस्वभावत्वेन निश्चिनोतिः—

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो ।

दब्बगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थिस्तण्णिवत्तो ॥ १० ॥

नास्ति विना परिणाममर्थोऽर्थं विनेह परिणामः ।

द्रव्यगुणपर्यायस्योऽर्थोऽस्तित्वनिर्वृत्तः ॥ १० ॥

न खलु परिणाममन्तरेण वस्तु सत्तामालम्बते । वस्तुनो द्रव्यादिभिः परिणामात् पृथगुपलम्भाभावान्निःपरिणामस्य खरश्चङ्गकल्पत्वाद् दृश्यमानगोरसादिपरिणामविरोधाच्च ।

परिणामसत्त्वभावो परिणामसद्भावः सन्निति । तथा-यथा स्फटिकमणिविशेषो निर्मलोऽपि जपापुष्पादिरक्तकृष्णश्वेतोपाधिवशेन रक्तकृष्णश्वेतवर्णो भवति, तथाऽयं जीवः स्वभावेन शुद्ध-बुद्धैकस्वरूपोपि व्यवहारेण गृहस्थापेक्षया यथासम्भवं सरागसम्यक्त्वपूर्वकदानपूजादिशुभानु-ष्ठानेन, तपोधनापेक्षया तु मूलोत्तरगुणादिशुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य इति । मिथ्या-त्वाविरतिप्रमादकपाययोगपञ्चप्रत्ययरूपशुभोपयोगेनाशुभो विज्ञेयः । निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन परिणतः शुद्धो ज्ञातव्य इति । किञ्च जीवस्यासंख्येयलोकमात्रपरिणामाः सिद्धान्ते मध्यमप्रति-पत्या मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानरूपेण कथिताः । अत्र प्राभृतशास्त्रे तान्येव गुणस्थानानि संक्षेपेण शुभाशुभशुद्धोपयोगरूपेण कथितानि । कथमिति चेत्—मिथ्यात्वसादादनमिश्रगुण-स्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः तदनन्तरमसंयतसम्बन्धदृष्टिदेशविरतप्रमतसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकपायान्तगुणस्थानपट्टे तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः ॥ ९ ॥ अथ निर्लोकान्त-क्षणिककान्तनिवेधार्थं परिणामपरिणामिनोः परस्परं कथञ्चिदभेदं दर्शयतिः—णत्थि विणा परिणामं अत्थो मुक्तजीवे तावत्कथ्यते—सिद्धपर्यायरूपशुद्धपरिणामं विना शुद्धजीवपदार्थो

परिणमता है, तब शुद्ध होता है । जैसे स्फटिकमणि जब पुष्पके संबंधसे रहित होती है, तब अपने शुद्ध ( निर्मल ) भावरूप परिणमन करती है । ठीक उसीप्रकार आत्माभी विकार-रहित हुआ शुद्ध होता है । इसप्रकार आत्माके तीनभाव जानना ॥ ९ ॥

आगे वस्तुका स्वभावपरिणाम वस्तुसे अभिन्न ( एकरूप ) है यह कहते हैंः—

[ परिणामं विना अर्थः नास्ति ] पर्यायके विना द्रव्य नहीं होता है । क्योंकि द्रव्य किसी समयभी परिणमन किये विना नहीं रहता ऐसा नियम है । जो रहै तो गधेके सींगके समान असंभ्रम समझना चाहिये । जैसे गोरसके परिणाम दूध, इही, घी, तक्र ( छांछ ) इत्यादि अनेक हैं । इन निजपरिणामोंके विना गोरस जुदा नहीं पाया जाता । जिस जगह ये परिणाम नहीं होते, उस जगह गोरसकी भी सत्ता ( मौजूदगी ) नहीं होती । उसी तरह परिणामके विना द्रव्यकी सत्ता ( मौजूदगी ) नहीं होती है ।

अथ जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वं निश्चिनोतिः—

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।

शुद्धेण तदा शुद्धो हवदि हि परिणामसञ्भावो ॥ ९ ॥

जीवः परिणमति यदा शुभेनाशुभेन वा शुभोऽशुभः ।

शुद्धेन तदा शुद्धो भवति हि परिणामस्वभावः ॥ ९ ॥

यदाऽयमात्मा शुभेनाशुभेन वा रागभावेन परिणमति तदा जपातापिच्छरागपरिणत-  
स्फटिकवत् परिणामस्वभावः सन् शुभोऽशुभश्च भवति । यदा पुनः शुद्धेनारागभावेन परि-  
णमति तदा शुद्धारागपरिणतस्फटिकवत्परिणामस्वभावः सन् शुद्धो भवतीति सिद्धं जी-  
वस्य शुभाशुभशुद्धत्वम् ॥ ९ ॥

ततः पूर्वोक्तधर्मद्वयेन परिणतस्तायाःपिण्डवदभेदनयेनात्मैव धर्मो भवतीति ज्ञातव्यम् । तदपि  
कस्मात्? उपादानकारणसदृशं हि कार्यमिति वचनात् । तच्च पुनरुपादानकारणं शुद्धाशुद्ध-  
भेदेन द्विधा । रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानमागमभाषया शुक्लध्यानं वा केवलज्ञानोत्पत्तौ  
शुद्धोपादानकारणं भवति । अशुद्धात्मा तु रागादिना अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानकारणं भवतीति  
सूत्रार्थः ॥ ८ ॥ एवं चारित्रस्य संक्षेपसूचनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ शुभा-  
शुभशुद्धोपयोगत्रयेण परिणतो जीवः शुभाशुभशुद्धोपयोगस्वरूपो भवतीत्युपदिशतिः—जीवो  
परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा जीवः कर्ता यदा परिणमति शुभेनाशुभेन वा परि-  
णामेन सुहो असुहो हवदि तदा शुभेन शुभो भवति, अशुभेन वाऽशुभो भवति । शुद्धेण  
तदा शुद्धो हि शुद्धेन यदा परिणमति तदा शुद्धो भवति हि स्फुटम् । कथम्भूतः सन् ।

जानना । भावार्थ—जब जिस तरहके भावोंसे यह आत्मा परिणमन करता है तब  
उन्हीं स्वरूप ही है, इस न्यायसे वीतरागचारित्ररूप धर्मसे परिणमन करता हुआ वीतराग  
चारित्र धर्म ही होजाता है । इसलिये आत्मा और चारित्रके एकपना है । आत्माको  
चारित्रभी कहते हैं ॥ ८ ॥

आगे आत्माके शुभ, अशुभ तथा शुद्ध भावोंका निर्णय करते हैं—

[ यदा जीवः ] जब यह जीव [ शुभेन अशुभेन वा परिणमति ] शुभ  
अथवा अशुभ परिणामों कर परिणमता है [ तदा शुभ अशुभो भवति ] तब यह  
शुभ वा अशुभ होता है । अर्थात् जब यह दान, पूजा, व्रतादिरूप शुभपरिणामोंसे परि-  
णमता है, तब उन भावोंके साथ तन्मय होता हुआ शुभ होता है, और जब विषय,  
कषाय, अग्रतादिरूप अशुभभावोंकर परिणत होता है, तब उन भावोंके साथ उन्हीं  
स्वरूप हो जाता है । जैसे स्फटिकमणि काले फूलका संयोग मिलने पर काली ही  
होजाती है । क्योंकि स्फटिकका ऐसाही परिणमन स्वभाव है । उमीप्रकार जीवका भी  
सामाना । [ शुद्धेन तदा शुद्धो भवति ] जब यह जीव आत्मीक वीतराग शुद्धभावस्वरूप

अथ परिणामं वस्तुस्वभावत्वेन निश्चिनोतिः—

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो ।

द्रव्यगुणपञ्जयत्थो अत्थो अत्थिस्तणित्त्वत्तो ॥ १० ॥

नास्ति विना परिणाममर्थोऽर्थं विनेह परिणामः ।

द्रव्यगुणपर्ययस्थोऽर्थोऽस्तित्वनिर्वृत्तः ॥ १० ॥

न खलु परिणाममन्तरेण वस्तु सत्तामालम्बते । वस्तुनो द्रव्यादिभिः परिणामात् पृथगुपलम्भाभावान्निःपरिणामस्य खरशृङ्गकल्पत्वाद् दृश्यमानगोरसादिपरिणामविरोधाच्च ।

परिणामसम्भावो परिणामसद्भावः सन्निति । तद्यथा—यथा स्फटिकमणिविशेषो निर्मलोऽपि जपापुष्पादिरक्तकृष्णश्वेतोपाधिवशेन रक्तकृष्णश्वेतवर्णो भवति, तथाऽयं जीवः स्वभावेन शुद्धबुद्धैकस्वरूपोपि व्यवहारेण गृहस्थापेक्षया यथासम्भवं सरागसम्यक्त्वपूर्वकदानपूजादिशुभानुष्ठानेन, तपोधनापेक्षया तु मूलोत्तरगुणादिशुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य इति । मिथ्यात्वात्रिरतिप्रमादकपाययोगपञ्चप्रत्ययरूपपाशुभोपयोगेनाशुभो विज्ञेयः । निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन परिणतः शुद्धो ज्ञातव्य इति । किञ्च जीवस्यासंख्येयलोकमात्रपरिणामाः सिद्धान्ते मध्यमप्रतिपत्त्या मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानरूपेण कथिताः । अत्र प्राभृतशास्त्रे तान्येव गुणस्थानानि संक्षेपेण शुभाशुभशुद्धोपयोगरूपेण कथितानि । कथमिति चेत्—मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमतसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकपायान्तगुणस्थानपट्टे तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः ॥ ९ ॥ अथ नित्यैकान्त-क्षणिकैकान्तनिषेधार्थं परिणामपरिणामिनोः परस्परं कथञ्चिदभेदं दर्शयतिः—णत्थि विणा परिणामं अत्थो मुक्तजीवे तावत्कथ्यते—सिद्धपर्यायरूपशुद्धपरिणामं विना शुद्धजीवपदार्थो

परिणमता है, तब शुद्ध होता है । जैसे स्फटिकमणि जब पुष्पके संबंधसे रहित होती है, तब अपने शुद्ध ( निर्मल ) भावरूप परिणमन करती है । ठीक उसीप्रकार आत्माभी विकार-रहित हुआ शुद्ध होता है । इसप्रकार आत्माके तीनभाव जानना ॥ ९ ॥

आगे वस्तुका स्वभावपरिणाम वस्तुसे अभिन्न ( एकरूप ) है यह कहते हैंः—

[ परिणामं विना अर्थः नास्ति ] पर्यायके विना द्रव्य नहीं होता है । क्योंकि द्रव्य किसी समयभी परिणमन किये विना नहीं रहता ऐसा नियम है । जो रहै तो गधेके सींगके समान असंभ्रम समझना चाहिये । जैसे गोरसके परिणाम दूध, दही, घी, तक्र ( छांछ ) इत्यादि अनेक हैं । इन निजपरिणामोंके विना गोरस जुदा नहीं पाया जाता । जिस जगह ये परिणाम नहीं होते, उस जगह गोरसकी भी सत्ता ( मौजूदगी ) नहीं होती । उसी तरह परिणामके विना द्रव्यकी सत्ता ( मौजूदगी ) नहीं होती है ।

अथ जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वं निश्चिनोतिः—

जीवो परिणमति जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।

सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसम्भावो ॥ ९ ॥

जीवः परिणमति यदा शुभेनाशुभेन वा शुभोऽशुभः ।

शुद्धेन तदा शुद्धो भवति हि परिणामस्वभावः ॥ ९ ॥

यदाऽयमात्मा शुभेनाशुभेन वा रागभावेन परिणमति तदा जपातापिच्छरागपरिणत-  
स्फटिकवत् परिणामस्वभावः सन् शुभोऽशुभश्च भवति । यदा पुनः शुद्धेनारागभावेन परि-  
णमति तदा शुद्धारागपरिणतस्फटिकवत्परिणामस्वभावः सन् शुद्धो भवतीति सिद्धं जी-  
वस्य शुभाशुभशुद्धत्वम् ॥ ९ ॥

ततः पूर्वोक्तधर्मद्वयेन परिणतस्ततायःपिण्डवदभेदनयेनात्मैव धर्मो भवतीति ज्ञातव्यम् । तदपि  
कस्मात्? उपादानकारणसदृशं हि कार्यमिति वचनात् । तच्च पुनरुपादानकारणं शुद्धाशुद्ध-  
भेदेन द्विधा । रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानमागमभाषया शुद्धध्यानं वा केवलज्ञानोत्पत्तौ  
शुद्धोपादानकारणं भवति । अशुद्धात्मा तु रागादिना अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानकारणं भवतीति  
सूत्रार्थः ॥ ८ ॥ एवं चारित्रस्य संक्षेपसूचनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ शुभा-  
शुभशुद्धोपयोगत्रयेण परिणतो जीवः शुभाशुभशुद्धोपयोगस्वरूपो भवतीत्युपदिशतिः—जीवो  
परिणमति जदा सुहेण असुहेण वा जीवः कर्ता यदा परिणमति शुभेनाशुभेन वा परि-  
णामेन सुहो असुहो हवदि तदा शुभेन शुभो भवति, अशुभेन वाऽशुभो भवति । सुद्धेण  
तदा सुद्धो हि शुद्धेन यदा परिणमति तदा शुद्धो भवति हि स्फुटम् । कथम्भूतः सन् ।

जानना । भावार्थ—जब जिस तरहके भावोंसे यह आत्मा परिणमन करता है तब  
उन्हीं स्वरूप ही है, इस न्यायसे धीतरागचारित्ररूप धर्मसे परिणमन करता हुआ धीतराग  
चारित्र धर्म ही होजाता है । इसलिये आत्मा और चारित्रके एकपना है । आत्माको  
चारित्रभी कहते हैं ॥ ८ ॥

आगे आत्माके शुभ, अशुभ तथा शुद्ध भावोंका निर्णय करते हैं—

[ यदा जीवः ] जब यह जीव [ शुभेन अशुभेन वा परिणमति ] शुभ  
अथवा अशुभ परिणामों कर परिणमता है [ तदा शुभ अशुभो भवति ] तब यह  
शुभ वा अशुभ होता है । अर्थात् जब यह दान, पूजा, व्रतादिरूप शुभपरिणामोंसे परि-  
णमता है, तब उन भावोंके साथ तन्मय होता हुआ शुभ होता है, और जब विषय,  
कराय, अग्रतादिरूप अशुभभावोंकर परिणत होता है, तब उन भावोंके साथ उन्हीं  
स्वरूप हो जाता है । जैसे स्फटिकमणि फाले फूलका संयोग मिलने पर फाली ही  
होजाती है । क्योंकि स्फटिकका ऐसाही परिणमन स्वभाव है । समीपकार जीवका भी  
सममना । [ शुद्धेन तदा शुद्धो भवति ] जब यह जीव आत्मीक धीतराग शुद्धभावस्वरूप

अथ परिणामं वस्तुस्वभावत्वेन निश्चिनोतिः—

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो ।

द्व्यगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थिस्तण्णिवत्तो ॥ १० ॥

नास्ति विना परिणाममर्थोऽर्थं विनेह परिणामः ।

द्रव्यगुणपर्ययस्थोऽर्थोऽस्तित्वनिर्वृत्तः ॥ १० ॥

न खलु परिणाममन्तरेण वस्तु सत्तामालम्बते । वस्तुनो द्रव्यादिभिः परिणामात् पृथगुपलम्भाभावान्निःपरिणामस्य खरभृङ्गकल्पत्वाद् दृश्यमानगोरसादिपरिणामविरोधाच्च ।

परिणामसम्भावो परिणामसद्भावः सन्निति । तथा—यथा स्फटिकमणिविशेषो निर्मलोऽपि जपापुष्पादिरक्तकृष्णश्वेतोपाधिवशेन रक्तकृष्णश्वेतवर्णो भवति, तथाऽयं जीवः स्वभावेन शुद्धबुद्धैकस्वरूपोपि व्यवहारेण गृहस्थापेक्षया यथासम्भवं सरागसम्यक्त्वपूर्वकदानपूजादिशुभानुष्ठानेन, तपोधनापेक्षया तु मूलेत्तरगुणादिशुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य इति । मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकपाययोगपञ्चप्रत्ययरूपाशुभोपयोगेनाशुभो विज्ञेयः । निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन परिणतः शुद्धो ज्ञातव्य इति । किञ्च जीवस्यासंख्येयलोकमात्रपरिणामाः सिद्धान्ते मध्यमप्रतिपत्त्या मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानरूपेण कथिताः । अत्र प्राभृतशास्त्रे तान्येव गुणस्थानानि संक्षेपेण शुभाशुभशुद्धोपयोगरूपेण कथितानि । कथमिति चेत्—मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमतसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्रीणकपायान्तगुणस्थानपट्टे तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः ॥ ९ ॥ अथ नित्यैकान्तक्षणिकैकान्तनिषेधार्थं परिणामपरिणामिनोः परस्परं कथञ्चिदभेदं दर्शयतिः—णत्थि विणा परिणामं अत्थो मुक्तजीवे तावत्कथ्यते—सिद्धपर्यायरूपशुद्धपरिणामं विना शुद्धजीवपदार्थो

परिणमता है, तब शुद्ध होता है । जैसे स्फटिकमणि जत्र पुष्पके संबंधसे रहित होती है, तब अपने शुद्ध ( निर्मल ) भावरूप परिणमन करती है । ठीक उसीप्रकार आत्माभी विकाररहित हुआ शुद्ध होता है । इसप्रकार आत्माके तीनभाव जानना ॥ ९ ॥

आगे वस्तुका स्वभावपरिणाम वस्तुसे अभिन्न ( एकरूप ) है यह कहते हैंः—

[ परिणामं विना अर्थः नास्ति ] पर्यायके विना द्रव्य नहीं होता है । क्योंकि द्रव्य किसी समयभी परिणमन किये विना नहीं रहता ऐसा नियम है । जो रहै तो गधेके सींगके समान असंभव समझना चाहिये । जैसे गोरसके परिणाम दूध, दही, घी, तक्र ( छांछ ) इत्यादि अनेक हैं । इन निजपरिणामोंके विना गोरस जुदा नहीं पाया जाता । जिस जगह ये परिणाम नहीं होते, उस जगह गोरसकी भी सत्ता ( मौजूदगी ) नहीं होनी । उसी तरह परिणामके विना द्रव्यकी सत्ता ( मौजूदगी ) नहीं होती है ।

अन्तरेण वस्तु परिणामोपि न सत्तामालम्बते । स्वाश्रयभूतस्य वस्तुनोऽभावे निराश्रयस्य परिणामस्य शून्यत्वप्रसङ्गात् । वस्तु पुनरूर्ध्वतासामान्यलक्षणे द्रव्ये सहभाविशेषलक्षणेपु, क्रमभाविशेषलक्षणेपु पर्यायेषु व्यवस्थितमुत्पादव्ययधौव्यमयास्तित्वेन निर्वर्तितं निर्वृत्तिमच्च । अतः परिणामस्वभावमेव ॥ १० ॥

नास्ति । कस्मात् । संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावात् । अर्थं विणेह परिणामो मुक्तात्मपदार्थं विना इह जगति शुद्धात्मोपलम्भलक्षणः सिद्धपर्यायरूपः शुद्धपरिणामो नास्ति । कस्मात् । संज्ञादिभेदेपि प्रदेशभेदाभावात् । द्रव्यगुणपञ्जयत्थो आत्मस्वरूपं द्रव्यं तत्रैव केवलज्ञानादयो गुणाः सिद्धरूपः पर्यायश्च, इत्युक्तलक्षणेपु द्रव्यगुणपर्यायेषु तिष्ठतीति द्रव्यगुणपर्यायस्यो भवति । स कः कर्ता । अत्थो परमात्मपदार्थः, सुवर्णद्रव्यपीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायस्यसुवर्णपदार्थवत् । पुनश्च किरूपः । अत्थित्तणिव्वत्तो शुद्धद्रव्यगुणपर्यायाधारभूतं यच्छुद्धास्तित्वं तेन निर्वृत्तोस्तित्वनिर्वृत्तः, सुवर्णद्रव्यगुणपर्यायास्तित्वनिर्वृत्तसुवर्णपदार्थवदेवेति । अयमत्र तात्पर्यार्थः । यथा—मुक्तजीवे द्रव्यगुणपर्यायत्रयं परस्परविनाभूतं दर्शितं तथा संसारिजीवेपि मतिज्ञानादिविभावगुणेपु नरनारकादिविभावपर्यायेषु नयविभागेन यथासम्भवं विज्ञेयम्, तथैव पुद्गलादिष्वपि । एवं शुभाशुभशुद्धपरिणामव्याख्यानमुल्लवत्वेन तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम्

कोई ऐसा समझे कि, द्रव्यके विना परिणाम होता होगा सो भी नहीं होता [ अर्थं विना परिणामो न ] द्रव्यके विना परिणामभी नहीं होता । क्योंकि परिणामका आधार द्रव्य है । जो द्रव्यही न होवै, तो परिणाम किसके आश्रय रहै । यदि गोरस ही न होवै, तो दूध, दही, घी, तक्र इत्यादि पर्यायें कहाँसे होवें, इसी प्रकार द्रव्यके विना परिणाम अपनी मौजूदगीको नहीं पासकता है । तो कैसा पदार्थ अपने अस्तित्वके पासकता है ? [ द्रव्यगुणपर्यायस्थः अर्थः ] जो द्रव्यगुणपर्यायोंमें रहता है, वह पदार्थ [ अस्तित्वनिर्वृत्तः ] अस्तित्वके ( मौजूदगी ) से सिद्ध होता है । भावार्थ—जिसजगह द्रव्यगुणपर्यायोंकी एकता हो, वहाँ पर ही द्रव्यका अस्तित्व है । जो इन तीनोंमेंसे एक भी कम होवै, तो पदार्थही न कहलावै । जैसे सुवर्ण द्रव्य है और उसमें पीतादिगुण हैं तथा कुण्डलादि पर्याय हैं । जो इनमेंसे एककी भी कमी होती है, तो सोनेका अभावही होजाता है, ठीक इसीप्रकार दूसरे पदार्थोंमेंभी ऐसा ही स्वरूप समझना । इससे यह बात सिद्ध हुई कि, परिणाम द्रव्यका पर्याय है । इसके विना द्रव्यका अभाव होजाता है । यहाँपर इतनी विशेषता औरभी समझना कि, जहाँ जैसा द्रव्य होता है वहाँ पर वैसेही गुणपर्याय होते हैं, इस न्यायसे शुद्ध आत्माके शुद्धगुणपर्याय और अशुद्ध आत्माके अशुद्धगुणपर्याय होते हैं । जहाँ यह आत्मा शुभ-अशुभपरिणामरूप परिणमता है, वहाँ इन अपने परिणामोंसे व्याप्य व्यापकरूप होता हुआ उमी स्वरूप हो जाना है । जब शुद्धपरिणामों रूप परिणमन करता है, तब उन्हीं

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कसम्भवतोः शुद्धशुभपरिणामयोरुपादानहानाय फलमालोचयतिः—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो ।

पावदि णिब्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं ॥ ११ ॥

धर्मेण परिणतात्मा आत्मा यदि शुद्धसंप्रयोगयुतः ।

प्राप्नोति निर्वाणसुखं शुभोपयुक्तो वा स्वर्गसुखम् ॥ ११ ॥

यदायमात्मा धर्मपरिणतस्वभावः शुद्धोपयोगपरिणतिमुद्ब्रहति तदा निःप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणसमर्थचारित्रः साक्षान्मोक्षमवाप्नोति । यदा तु धर्मपरिणतस्वभावोपि शुभोपयोगपरिणत्या संगच्छते तदा सप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणसमर्थः कथंचिद्विरुद्धकार्यकारिचारित्रः शिक्षितसघृतोपसिक्तपुरुषो दाहदुःखमिव स्वर्गसुखवन्धमवाप्नोति । अतः शुद्धोपयोग उपादेयः शुभोपयोगो हेयः ॥ ११ ॥

॥ १० ॥ अथ वीतरागसरागचारित्रसंज्ञयोः शुद्धशुभोपयोगपरिणामयोः संक्षेपेण फलं दर्शयतिः—धम्मेण परिणदप्पा अप्पा धर्मेण परिणतात्मा परिणतस्वरूपः सन्नयमात्मा जदि सुद्धसंपयोगजुदो यदि चेच्छुद्धोपयोगाभिधानशुद्धसंप्रयोगपरिणामयुतः परिणतो भवति पावड् णिब्वाणसुहं तदा निर्वाणसुखं प्राप्नोति । सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं शुभोपयोगयुतः परिणतः सन् स्वर्गसुखं प्राप्नोति । इतो विस्तरम्—इह धर्मशब्देनाहिंसावृक्षणः सागारानगाररूपस्तथोत्तमक्षमादिवृक्षणो रत्नत्रयात्मको वा, तथा मोहक्षोभरहित आत्मपरिणामः शुद्धवस्तुस्वभावश्चेति गृह्यते । स एव धर्मः पर्यायान्तरेण चारित्रं भण्यते । “चारित्तं खलु धम्मो” इति वचनात् । तच्च चारित्रमपहृतसंयमोपेक्षासंयमभेदेन सरागवीतरागभेदेन वा शुभोपयोगशुद्धोप-

स्वरूप होजाता है । क्योंकि परिणाम द्रव्यका स्वभाव है ॥ १० ॥

आगे शुभपरिणाम और शुद्धपरिणाम ये दोनों चारित्र हैं इनके फलको कहते हैं;—

[ यदि आत्मा शुद्धसंप्रयोगयुतः तदा निर्वाणसुखं प्राप्नोति ] जब आत्मा शुद्ध उपयोगसहित होता है तब मोक्षसुखको पाता है । [ वा शुभोपयुक्तः ] और जब शुभोपयोगरूप भावोंमें परिणमता है, तब [ स्वर्गसुखं ] स्वर्गके सुख पाता है । कैसा है यह आत्मा [ धर्मपरिणतात्मा ] धर्मसे परिणमा है स्वरूप जिसका । **भावार्थ**—वीतराग सराग भावोंकर धर्म दो प्रकारका है । जब यह आत्मा वीतराग आत्मीक धर्मरूप परिणमता हुआ शुद्धोपयोग भावोंमें परिणमन करता है, तब कर्मोंसे इसकी शक्ति रोकी नहीं जासकती । अपने कार्य करनेको समर्थ होजाता है इसकारण अनन्त अखण्ड निजसुख जो मोक्षसुख उसको स्वभावहीसे पाता है । और जब यह आत्मा दान, पूजा, व्रत, संयमादिरूप सरागभावोंकर परिणमता हुआ शुभोपयोग



अथ चारित्रपरिणामसंपर्कासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभपरिणामस्य फलमालोचयति;—

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।

दुखसहस्रसेहिं सदा अभिधुदो भमइ अच्चंतं ॥ १२ ॥

अशुभोदयेनात्मा कुनरस्तिर्यग्भूत्वा नैरयिकः ।

दुःखसहस्रैः सदा अभिधृतो भ्रमत्यत्यन्तम् ॥ १२ ॥

यदायमात्मा मनागपि धर्मपरिणतिमनासादयन्नशुभोपयोगपरिणतिमालम्बते तदा कु-  
मनुष्यतिर्यङ्गारकभ्रमणरूपं दुःखसहस्रवन्धमनुभवति । ततश्चारित्रलवस्याप्यभावादत्य-

योगभेदेन च द्विधा भवति । तत्र यच्छुद्धसंप्रयोगशब्दवाच्यं शुद्धोपयोगस्वरूपं वीतरागचारित्रं तेन  
निर्वाणं लभते । निर्विकल्पसमाधिरूपशुद्धोपयोगशक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूपसरागचारि-  
त्रेण परिणमति तदा पूर्वमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतमाकुलत्वोत्पादकं स्वर्गसुखं लभते ।  
पश्चात् परमसमाधिसामग्रीसद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः ॥ ११ ॥ अथ चारित्रपरि-  
णामासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभोपयोगस्य फलं दर्शयति:—असुहोदयेण अशुभोदयेन आदा  
आत्मा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो कुनरस्तिर्यङ्गारको भूत्वा । किं करोति । दुःखसह-  
स्रसेहिं सदा अभिधुदो भमइ अच्चंतं दुःखसहस्रैः सदा सर्वकालमभिधृतः कदर्थितः

परिणतिको धारण करता है, तब इसकी शक्ति कर्मोंसे रोकी जाती है । इसलिये मोक्ष-  
रूपी कार्य करनेको असमर्थ हो जाता है । फिर उस शुभोपयोग परिणमनसे कर्मबन्ध-  
रूप स्वर्गके सुखोंको ही पाता है । यद्यपि शुभोपयोग चारित्रका अंग है, तौभी अपने सुखसे  
उलटा परके आधीन संसारसंबन्धी इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखका कारण है ।  
क्योंकि यह राग-कपायसे मिला हुआ है । और जो इन्द्रियजन्य सुख है, वह वास्तवमें  
दुःखही है । जैसे कोई पुरुष गरम धी अपनी देहपर डालता है, तो उससे दाहके  
दुःखको पाता है । ऐसे धीके भी लगनेसे कुछ शांतपना नहीं होता । जिसतरह केवल  
आगके जलनेसे दुःख होता है, वैसा ही दुःख इस गरम धीसे भी होता है । इसलिये  
इन्द्रियजनित सुखको गरम धीके समान जानना चाहिये । अर्थात् यह शुभोपयोग भी  
संसारके फलको देता है, इस कारण अशुभोपयोगके समान त्यागने योग्य है, और  
शुद्धोपयोग, आत्मीकसुखको 'कि जिसमें किसी तरहकी भी आकुलता नहीं है' देता है ।  
इसलिये उपादेश है ॥११॥ आगे बिलकुल त्यागने योग्य और चारित्रका घात करनेवाला  
जो अशुभोपयोग है, उसके फलको दिग्गते हैं:—[ अशुभोदयेन आत्मा अत्यन्तं  
भ्रमति ] अगृत, विषय, कपायरूप अशुभोपयोगोंसे परिणमता यह आत्मा अर्थात् धर्मसे  
यदिमुंय मंतारीजीव है, यह घटकालतक मंसारमें भटकता है । कैसा होता हुआ ?  
[ कुनरः निर्यगैरयिकः ] दा अभिधुनः ] खोटा (दुःखी-दरिद्री)मनुष्य,

न्तहेय एवायमशुभोपयोग इति । एवमयमपास्तसमस्तशुभाशुभोपयोगवृत्तिः शुद्धोपयोगवृत्ति-  
मात्मसात्कुर्वाणः शुद्धोपयोगाधिकारमारभते ॥ १२ ॥

तत्र शुद्धोपयोगफलमात्मनः प्रोत्साहनार्थमभिष्टौतिः—

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं ।

अव्युच्छिन्नं च सुखं सुदुवओगप्सिद्धानं ॥ १३ ॥

अतिशयमात्मसमुत्थं विपयातीतमनौपम्यमनन्तम् ।

अव्युच्छिन्नं च सुखं शुद्धोपयोगप्रसिद्धानाम् ॥ १३ ॥

आसंसारदपूर्वपरमाद्भुतहादरूपत्वादात्मानमेवाश्रित्य प्रवृत्तत्वात्पराश्रयनिरपेक्षत्वादत्य-  
न्तविलक्षणत्वात्समस्तायतिनिरपायित्वात्रैरन्तर्यप्रवर्तमानत्वाच्चातिशयवदात्मसमुत्थं विपया-  
तीतमनौपम्यमनन्तमव्युच्छिन्नं शुद्धोपयोगनिःपन्नानां सुखामृतं तत्सर्वथा प्रार्थनीयम् ॥ १३ ॥

पीडितः सन् संसारे अत्यन्तं भ्रमतीति । तथाहि—निर्विकारशुद्धात्मतत्त्वरुचिरूपनिश्चयसम्य-  
वत्त्वस्य तत्रैव शुद्धात्मन्यविक्षिप्तचित्तवृत्तिरूपनिश्चयचारित्रस्य च विलक्षणेन विपरीताभिनिवेशज-  
नकेन दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियविपयाभिलाषतीव्रसंक्षेशरूपेण चाशुभोपयोगेन यदुपाजितं पापकर्म  
तदुदयेनायमात्मा सहजशुद्धात्मानन्दैकलक्षणपारमार्थिकमुखविपरीतेन दुःखेन दुःखितः सन्  
स्वस्वभावभावनाच्युतो भूत्वा संसारेऽत्यन्तं भ्रमतीति तात्पर्यार्थः ॥ एवमुपयोगत्रयफलकधनरूपेण  
चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥ १२ ॥ अथ शुभाशुभोपयोगद्वयं निश्चयनयेन हेयं ज्ञात्वा  
शुद्धोपयोगाधिकारं प्रारभमाणः, शुद्धात्मभावनामात्मसात्कुर्वाणः सन्, स्वस्वभावजीवस्य प्रोत्सा-  
हनार्थं शुद्धोपयोगफलं प्रकाशयति । अथवा द्वितीयपातनिका—यद्यपि शुद्धोपयोगफलमग्रे ज्ञानं  
सुखं च संक्षेपेण विस्तरेण च कथयति तथाप्यत्रापि पीठिकायां सूचनां करोति । अथवा  
तृतीयपातनिका—पूर्वं शुद्धोपयोगफलं निर्वाणं भणितमिदानीं पुनर्निर्वाणस्य फलमनन्तसुखं कथय-  
तीति पातनिकात्रयस्यार्थं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयतिः—अइसयं आसंसारदेवेन्द्रादि-

तिर्यच तथा नारकी होकर हजारों दुःखोंसे हमेशा दुःखी होताहुआ संसारमें भ्रमण  
करता है । भावार्थ—शुभोपयोग किसी एक व्यवहारनयके अंगसे धर्मका अंग है, परंतु  
यह अशुभोपयोग तो धर्मका अंग किसी तरह भी नहीं है । इसलिये यह अत्यंत ही हेय  
है । और जो इसमें लगे रहते हैं, वे खोटे मनुष्य, तिर्यच, नारकी इन तीन गतियोंमें  
अनेक दुःखोंसे क्लेशरूप होतेहुए सदाकाल भटकते हैं ॥ १२ ॥ आगे अत्यंत उपादेय  
शुद्ध उपयोगका फल दिखाते हैंः—[ शुद्धोपयोगप्रसिद्धानां एतादृशं सुखं ]  
वीतराग—परमसामायिक चारित्रसे उत्पन्न हुए जो अरहंत और सिद्ध हैं उनके ही ऐसा  
सुख विद्यमान है । कैसा है सुख । [ अतिशयम् ] सबसे अधिक है । क्योंकि अनादिका-  
लसे लेकर ऐसा सुख कभी इन्द्र वगैरहकी पदवियोंमें भी अपूर्व आश्चर्य करनेवाला परम-

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभपरिणामस्य फलमालोचयति;—

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।

दुःखसहस्सेहिं सदा अभिंधुदो भमइ अचंतं ॥ १२ ॥

अशुभोदयेनात्मा कुनरस्तिर्यग्भूत्वा नैरयिकः ।

दुःखसहस्रैः सदा अभिधृतो भ्रमत्यत्यन्तम् ॥ १२ ॥

यदायमात्मा मनागपि धर्मपरिणतिमनासादयन्नशुभोपयोगपरिणतिमालम्बते तदा कु-  
मुप्यतिर्यङ्गारकभ्रमणरूपं दुःखसहस्रबन्धमनुभवति । ततश्चारित्रलवस्याप्यभावादत्य-

योगभेदेन च द्विधा भवति । तत्र यच्छुद्धसंप्रयोगशब्दवाच्यं शुद्धोपयोगस्वरूपं धीतरागचारित्रं तेन  
निर्वाणं लभते । निर्विकल्पसमाधिरूपशुद्धोपयोगशक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूपसरागचारि-  
त्रेण परिणमति तदा पूर्वमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतमाकुलत्वोत्पादकं स्वर्गसुखं लभते ।  
पश्चात् परमसमाधिसामग्रीसद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः ॥ ११ ॥ अथ चारित्रपरि-  
णामासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभोपयोगस्य फलं दर्शयति:—असुहोदयेण अशुभोदयेन आदा  
आत्मा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो कुनरस्तिर्यङ्गारको भूत्वा । किं करोति । दुःखस-  
हस्सेहिं सदा अभिंधुदो भमइ अचंतं दुःखसहस्रैः सदा सर्वकालमभिधृतः कदर्थितः

परिणतिको धारण करता है, तब इसकी शक्ति कर्मोंसे रोकी जाती है । इसलिये मोक्ष-  
रूपी कार्य करनेको असमर्थ हो जाता है । फिर उस शुभोपयोग परिणमनसे कर्मबन्ध-  
रूप स्वर्गके सुखोंको ही पाता है । यद्यपि शुभोपयोग चारित्रका अंग है, तौभी अपने सुखसे  
उलटा परके आधीन संसारसंबन्धी इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखका कारण है ।  
क्योंकि यह राग-कपायसे मिला हुआ है । और जो इन्द्रियजन्य सुख है, वह वास्तवमें  
दुःखही है । जैसे कोई पुरुष गरम धी अपनी देहपर डालता है, तो उससे दाहके  
दुःखको पाता है । ऐसे धीके भी लगनेसे कुछ शांतपना नहीं होता । जिसतगह केवल  
आगके जलनेसे दुःख होता है, वैसा ही दुःख इस गरम धीसे भी होता है । इसलिये  
इन्द्रियजनित सुखको गरम धीके समान जानना चाहिये । अर्थात् यह शुभोपयोग भी  
संसारके फलको देता है, इस कारण अशुभोपयोगके समान त्यागने योग्य है, और  
शुद्धोपयोग, आत्मीकमुग्धको 'कि जिममें किमी तरहकी भी आकुलता नहीं है' देता है ।  
इसलिये उपादेय है ॥११॥ आगे बिलकुल त्यागने योग्य और शान्तिका प्राप्त करनेवाला  
जो अशुभोपयोग है, उसके फलको दिग्गते है:—[ अशुभोपयोग आत्मा अत्यन्त  
भ्रमन्ति ] अशुभ, विषय, कपायरूप अशुभोपयोगी  
वदिमुग्ध संसारीजीव है, वह बहुतकालकर्मों  
[ कुनरः निर्यगैरयिकः भूत्वा मदा अ

न्तहेय एवायमशुभोपयोग इति । एवमयमपास्तसमस्तशुभाशुभोपयोगवृत्तिः शुद्धोपयोगवृत्ति-  
मात्मसात्कुर्वाणः शुद्धोपयोगाधिकारमारभते ॥ १२ ॥

तत्र शुद्धोपयोगफलमात्मनः प्रोत्साहनार्थमभिष्टौतिः—

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं ।

अव्युच्छिन्नं च सुहं सुहृवओगप्पसिद्धानं ॥ १३ ॥

अतिशयमात्मसमुत्थं विपयातीतमनौपम्यमनन्तम् ।

अव्युच्छिन्नं च सुखं शुद्धोपयोगप्रसिद्धानाम् ॥ १३ ॥

आसंसारादपूर्वपरमाद्भुतहादरूपत्वादात्मानमेवाश्रित्य प्रवृत्तत्वात्पराश्रयनिरपेक्षत्वादत्य-  
न्तविलक्षणत्वात्समस्तायतिनिरपायित्वाच्चैरन्तर्यप्रवर्तमानत्वाच्चातिशयवदात्मसमुत्थं विपया-  
तीतमनौपम्यमनन्तमव्युच्छिन्नं शुद्धोपयोगनिःपन्नानां सुखामृतं तत्सर्वथा प्रार्थनीयम् ॥ १३ ॥

पीडितः सन् संसारे अत्यन्तं भ्रमतीति । तथाहि—निर्धिकारशुद्धात्मतत्त्वरुचिरूपनिश्चयसम्य-  
क्त्वस्य तत्रैव शुद्धात्मन्यविक्षिप्तचित्तवृत्तिरूपनिश्चयचारित्रस्य च विलक्षणेन विपरीताभिनिवेशज-  
नकेन दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियविपयाभिलाषतीव्रसंक्लेशरूपेण चाशुभोपयोगेन यदुपार्जितं पापकर्म  
तदुदयेनायमात्मा सहजशुद्धात्मानन्दैकलक्षणपारमार्थिकमुखविपरीतेन दुःखेन दुःखितः सन्  
स्वस्वभावभावनाच्युतो भूत्वा संसारेऽत्यन्तं भ्रमतीति तात्पर्यार्थः ॥ एवमुपयोगत्रयफलकथनरूपेण  
चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥ १२ ॥ अथ शुभाशुभोपयोगद्वयं निश्चयनयेन हेयं ज्ञात्वा  
शुद्धोपयोगाधिकारं प्रारम्भमाणः, शुद्धात्मभावनामात्मसात्कुर्वाणः सन्, स्वस्वभावजीवस्य प्रोत्सा-  
हनार्थं शुद्धोपयोगफलं प्रकाशयति । अथवा द्वितीयपातनिका—यद्यपि शुद्धोपयोगफलमग्रे ज्ञानं  
सुखं च संक्षेपेण विस्तरेण च कथयति तथाप्यत्रापि पीठिकायां सूचनां करोति । अथवा  
तृतीयपातनिका—पूर्वं शुद्धोपयोगफलं निर्वाणं भणितमिदानीं पुनर्निर्वाणस्य फलमनन्तसुखं कथय-  
तीति पातनिकात्रयस्यार्थं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयतिः—अइसयं आसंसारादेवेन्द्रादि-

तिर्यंच तथा नारकी होकर हजारों दुःखोंसे हमेशा दुःखी होताहुआ संसारमें भ्रमण  
करता है । **भावार्थ**—शुभोपयोग किसी एक व्यवहारनयके अंगसे धर्मका अंग है, परंतु  
यह अशुभोपयोग तो धर्मका अंग किसी तरह भी नहीं है । इसलिये यह अत्यंत ही हेय  
है । और जो इसमें लगे रहते हैं, वे खोटे मनुष्य, तिर्यंच, नारकी इन तीन गतियोंमें  
अनेक दुःखोंसे हेहरूप होतेहुए सदाकाल भटकते हैं ॥ १२ ॥ आगे अत्यंत उपादेय  
शुद्ध उपयोगका फल दिखाते हैंः—[ शुद्धोपयोगप्रसिद्धानां एतादृशं सुखं ]  
वीतराग—परमसामायिक चारित्रसे उत्पन्न हुए जो अरहंत और सिद्ध हैं उनके ही ऐसा  
सुख विद्यमान है । कैसा है सुख । [ अतिशयम् ] सबसे अधिक है । क्योंकि अनादिका-  
लसे लेकर ऐसा सुख कभी इन्द्र वगैरहकी पदवियोंमें भी अपूर्व आश्चर्य करनेवाला परम-

अथ शुद्धोपयोगपरिणतात्मस्वरूपं निरूपयतिः—

सुविदिदपदत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो ।

समणो समसुखदुःखो भणितो सुद्धोवओगोत्ति ॥ १४ ॥

सुविदितपदार्थसूत्रः संयमतपःसंयुतो विगतरागः ।

श्रमणः समसुखदुःखो भणितः शुद्धोपयोग इति ॥ १४ ॥

सूत्रार्थज्ञानबलेन स्वपरद्रव्यविभागपरिज्ञानकारणात्, विधानसमर्थत्वात्सुविदितपदार्थ-  
सूत्रः। सकलपण्डजीवनिकायनिशुम्भनविकल्पात्पञ्चेन्द्रियाभिलाषविकल्पाच्च व्यावर्त्यात्मनः शु-

सुखेभ्योऽप्यपूर्वाद्भुतपरमाह्लादरूपत्वादतिशयस्वरूपं, आदसमुत्थं रागादिविकल्परहितस्वशुद्धा-  
त्मसंवित्तिसमुत्पन्नत्वादात्मसमुत्थं, विसयातीदं निर्विषयपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतपञ्चेन्द्रियवि-  
पयातीतत्वाद्विपयातीतं, अनौपम्यं निरुपमपरमानन्दैकलक्षणत्वेनोपमारहितत्वादानुपमं, अणंतं  
अनन्तागामिकाले विनाशाभावादप्रमितत्वाद्वाऽनन्तं, अब्बुच्छिण्णं च असातोदयाभावान्नि-  
रन्तरत्वादविच्छिन्नं च सुहं एवमुक्तविशेषणविशिष्टं सुखं भवति । केपाम् । सुद्धुवओगप्प-  
सिद्धाणं धीतरागपरमसामायिकशब्दवाच्यशुद्धोपयोगेन प्रसिद्धा उत्पन्ना येऽर्हस्तिद्धास्तेपामिति ।  
अत्रेदमेव सुखमुपादेयत्वेन निरन्तरं भावनीयमिति भावार्थः ॥ १३ ॥ अथ येन शुद्धोपयोगेन  
पूर्वोक्तसुखं भवति तत्परिणतपुरुषलक्षणं प्रकाशयति—सुविदिदपदत्थसुत्तो सुष्ठु संशयादिर-  
हितत्वेन विदिता ज्ञाता रोचिताश्च निजशुद्धात्मादिपदार्थास्तत्प्रतिपादकसूत्राणि च येन स सुविदि-

आनंदरूप नहीं हुआ । फिर कैसा है ? [ आत्मसमुत्थं ] अपने आत्मासे ही उत्पन्न  
हुआ है, पराधीन नहीं है । फिर कैसा है ? [ विपयातीतं ] पांच इंद्रियोंके स्पर्श,  
रस, गंध, रूप, शब्दस्वरूप जो विषय-पदार्थ उनसे रहित है, संकल्प-विकल्परहित अ-  
तीन्द्रियसुख है । फिर कैसा है ? [ अनौपम्यं ] उपमासे रहित है अर्थात् तीन लोकमें  
जिस सुखके बराबर दूसरा सुख नहीं है । इस सुखकी अपेक्षा दूसरे सब सुख दुःखही  
स्वरूप हैं । फिर कैसा है ? [ अनन्तं ] जिसका नाश नहीं होता सदा ही नित्य है ।  
फिर कैसा है ? [ अब्बुच्छिण्णं ] बाधरहित-हमेशा एकसा रहता है । ऐसा सुख  
शुद्धोपयोगकाही फल है । इससे यह अभिप्राय निकला कि, शुद्धोपयोग सर्वप्रकारसे  
उपादेय है और शुभ, अशुभोपयोग हेय हैं । इन दोनोंमें व्यवहारनयसे किसीतरह  
शुभोपयोग तो उपादेय है परन्तु अशुभोपयोग तो सर्वधाही हेय है ॥ १३ ॥ आगे  
शुद्धोपयोगसहित जीवका स्वरूप कहते हैं—[ एतादृशः श्रमणः शुद्धोपयोगः  
इति भणितः ] ऐसा परम मुनि शुद्धोपयोगभावस्वरूप परिणमता है । इसप्रकार धीतराग-  
देयने कहा है । कैसा है यह श्रमण अर्थात् मुनि । [ सुविदितपदार्थसूत्रः ] अच्छी-  
रितिसे जानलिये हैं जीवादि नव पदार्थ तथा इन पदार्थोंका कहनेवाला सिद्धांत जि-

द्वस्वरूपे संयमनात्, स्वरूपविश्रान्तनिस्तरङ्गचैतन्यप्रतपनाच्च संयमतपःसंयुतः । सकल-  
मोहनीयविपाकविवेकभावनासौष्ठवस्फुटीकृतनिर्विकारात्मस्वरूपत्वाद्विगतरागः । परमकला-  
वलोकनाननुभूयमानसातासातवेदनीयविपाकनिर्वर्तितसुखदुःखजनितपरिणामवैषम्यात्सम-  
सुखदुःखः श्रमणः शुद्धोपयोग इत्यभिधीयते ॥ १४ ॥

तपदार्थसूत्रो भण्यते । संजमतवसंजुदो वाद्ये द्रव्येन्द्रियव्यावर्तनेन पञ्जीवरक्षणेन चाभ्यन्तरे  
निजशुद्धात्मसंवित्तिबलेन स्वरूपे संयमनात् संयमयुक्तः, बाह्याभ्यन्तरतपोबलेन कामक्रोधादि-  
शत्रुभिरखण्डितप्रतापस्य स्वशुद्धात्मनि प्रतपनाद्विजयनात्तपःसंयुक्तः । विगदरागो वीतरागशुद्धा-  
त्मभावनाबलेन समस्तरागादिदोषरहितत्वाद्दीतरागः । समसुहृदुक्खो निर्विकारनिर्विकल्पसमा-  
धेरुद्रता समुत्पन्ना तथैव परमानन्तमुखरसे लीना तल्लया निर्विकारस्वसंवित्तिरूपा या तु परमकला  
तदवष्टम्भेनेष्टानिष्टेन्द्रियविषयेषु हर्षविपादरहितत्वात्समसुखदुःखः समणो एवं गुणविशिष्टः श्रमणः  
परममुनिः भणिओ सुद्धोवओगोत्ति शुद्धोपयोगो भणित इत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥ एवं  
शुद्धोपयोगफलभूतानन्तसुखस्य शुद्धोपयोगपरिणतपुरुषस्य च कथनरूपेण पञ्चमस्थले गाथाद्वयं  
गतम् ॥

( अथास्यान्तराधिकारस्योपोद्घातः )—अथ प्रवचनसारव्याख्यायां मध्यमरुचिशिष्यप्रति-  
बोधनार्थायां मुख्यगौरुपेणान्तस्तत्त्वत्रहिस्तत्त्वप्ररूपणसमर्थायां च प्रथमत एकोत्तरशतगाथा-  
भिर्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं त्रयोदशाधिकशतगाथाभिर्दर्शनाधिकारः, ततश्च सप्तनवतिगाथा-  
भिश्चारित्राधिकारश्चेति समुदायेनैकादशाधिकत्रिशतप्रमितसूत्रैः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपेण महाधि-  
कारत्रयं भवति । अथवा टीकाभिप्रायेण तु सम्यग्ज्ञानज्ञेयचारित्राधिकारचूलिकारूपेणाधिकारत्रयम् ।  
तत्राधिकारत्रये प्रथमतस्तावज्ज्ञानाभिधानमहाधिकारमध्ये द्वासप्ततिगाथापर्यन्तं शुद्धोपयोगाधिकारः  
कथ्यते । तासु द्वासप्ततिगाथासु मध्ये “एस सुरासुर—” इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्द-  
शगाथापर्यन्तं पीठिका । तदनन्तरं सप्तगाथापर्यन्तं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिः, तदनन्तरं त्रयस्त्रिंश-

सने । अर्थात् जिसने अपना और परका भेद भले प्रकार जान लिया है, श्रद्धान किया है  
तथा निजस्वरूपमें ही आचरण किया है, ऐसा मुनीश्वरही शुद्धोपयोगवाला है । फिर कैसा  
है ? [ संयमतपःसंयुतः ] पांच इन्द्रिय तथा मनकी अभिलाषा और छह कायके  
जीवोंकी हिंसा इनसे आत्माको रोककर अपने स्वरूपका आचरण रूप जो संयम, और  
बाह्य तथा अंतरंग वारह प्रकारके तपके बलकर स्वरूपकी स्थिरताके प्रकाशसे ज्ञानका  
तपन ( वैदीप्यमान होना ) स्वरूप तप, इन दोनों कर सहित है । फिर कैसा है !  
[ विगतरागः ] दूर हुआ है परद्रव्यसे रमण करना रूप परिणाम जिसका । फिर  
कैसा है [ समसुखदुःखः ] समान हैं सुख और दुःख जिसके अर्थात् उत्कृष्ट-  
ज्ञानकी कलाकी सहायताकर इष्ट वा अनिष्टरूप इन्द्रियोंके विषयोंमें हर्ष तथा  
खेद नहीं करता है, ऐसा जो श्रमण है वही शुद्धोपयोगी कहा जाता है ॥ १४ ॥

अथ शुद्धोपयोगलाभान्तरभावविशुद्धात्मस्वभावलाभमभिनन्दति:—

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ ।

भूदो सयमेवादा जादि परं णेयभूदानं ॥ १५ ॥

उपयोगविशुद्धो यो विगतावरणान्तरायमोहरजाः ।

भूतः स्वयमेवात्मा याति परं ज्ञेयभूतानाम् ॥ १५ ॥

यो हि नाम चैतन्यपरिणामलक्षणोपयोगेन यथाशक्ति विशुद्धो भूत्वा वर्तते स

द्राधापर्यन्तं ज्ञानप्रपञ्चः। तंतश्चाष्टादशगाथापर्यन्तं सुखप्रपञ्चश्चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन शुद्धोपयोगाधिकारो भवति । अथ पञ्चविंशतिगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारश्चेत्यधिकारद्वयेन, तदनन्तरं स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन चैकोत्तरशतगाथाभिः प्रथममहाधिकारे समुदायपातनिका ज्ञातव्या ॥

इदानीं प्रथमपातनिकाभिः प्रथमतः पञ्चगाथापर्यन्तं पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारादिप्ररूपणप्रपञ्चः, तदनन्तरं सप्तगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयपीठिकाव्याख्यानां क्रियते, तत्र पञ्चस्थलानि भवन्ति तेष्वादौ नमस्कारमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं, तदनन्तरं चारित्रसूचनमुख्यत्वेन “संपज्जइ णिव्वाणं” इति प्रभृति गाथात्रयमथशुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुख्यत्वेन “जीवो परिणमदि” इत्यादिगाथासूत्रद्वयमथ तत्फलकथनमुख्यतया “धम्मणं परिणहप्पा” इति प्रभृति सूत्रद्वयम् । अथ शुद्धोपयोग्यातुः पुरुषस्य प्रोत्साहनार्थं शुद्धोपयोगफलदर्शनार्थं च प्रथमगाथा, शुद्धोपयोगिपुरुषलक्षणकथनेन द्वितीया चेति ‘अइसयमादसमुत्थं’ इत्यादि गाथाद्वयम् । एवं पीठिकाभिधानप्रथमान्तराधिकारे स्थलपञ्चकेन चतुर्दशगाथाभिस्तमुदायपातनिका प्रोक्ता ॥

इति चतुर्दशगाथाभिः स्थलपञ्चकेन पीठिकाभिधानः प्रथमोन्तराधिकारः समाप्तः ॥

तदनन्तरं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिर्ज्ञानविचारः संक्षेपेण शुद्धोपयोगफलं चेति कथनरूपेण गाथासप्तकम् । तत्र स्थलचतुष्टयं भवति, तस्मिन् प्रथमस्थले सर्वज्ञस्वरूपकथनार्थं प्रथमगाथा, स्वप्नभूकथनार्थं द्वितीया चेति “उवओगविसुद्धो” इत्यादि गाथाद्वयम् । अथ तस्यैव भगवत उत्पादव्यपप्रौढ्यस्थापनार्थं प्रथमगाथा, पुनरपि तस्यैव दृढीकरणार्थं द्वितीया चेति “अंगविहीणो” इत्यादि गाथाद्वयम् । अथ सर्वज्ञप्रदानेनानन्तमुखं भवतीति दर्शनार्थं “तं सव्वरथवरिद्धं” इत्यादि सूत्रमेकम् । अथातीन्द्रियज्ञानसौख्यपरिणमनकथनमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, केवलिगुक्तिनिराकरणमुख्यत्वेन द्वितीया चेति ‘पक्खीणघाइकम्मो’ इति प्रभृति गाथाद्वयम् । एवं द्वितीयान्तराधिकारे स्थलचतुष्टयेन समुदायपातनिका ॥ तत्रथा—अथ शुद्धोपयोगलाभा-

भागे शुद्धोपयोगके लाभके याद ही शुद्ध आत्मस्वभावकी प्राप्ति होती है ऐसा कहते हैं:—

[ यः उपयोगविशुद्धः स आत्मा ज्ञेयभूतानां पारं याति ] जो आत्मा शुद्धो-

बलु प्रतिपदमुद्भिद्यमानविशिष्टविशुद्धिशक्तिरुद्ग्रन्थितासंसारवद्दृढतरमोहग्रन्थितयात्यन्तनि-  
र्वेकारचैतन्यो निरस्तसमस्तज्ञानदर्शनावरणान्तराया निःप्रतिष्विजृम्भितात्मशक्तिश्च स्वय-  
मेव भूतो ज्ञेयत्वमापन्नानामन्तमवाप्नोति । इह किलात्मा ज्ञानस्वभावो ज्ञानं तु ज्ञेयमात्रं  
ततः समस्तज्ञेयान्तर्वर्तिज्ञानस्वभावमात्मानमात्मा शुद्धोपयोगप्रसादादेवासादयति ॥१५॥  
अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्य कारकान्तरनिरपेक्षितयाऽत्यन्तमात्मापत्तत्वं  
श्रीतयतिः—

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो ।  
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभुत्ति णिदिद्वो ॥ १६ ॥

नन्तरं केवलज्ञानं भवतीति कथयति । अथवा द्वितीयपातनिका—श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवाः  
सम्बोधनं कुर्वन्ति, हे शिवकुमारमहाराज ! कोप्यासन्नभयः संक्षेपरुचिः पीठिकाव्याख्यानेमेव  
श्रुत्वात्मकार्यं करोति, अन्यः कोपि पुनर्विस्तररुचिः शुद्धोपयोगेन संजातसर्वज्ञस्य ज्ञानसुखादिकं  
विचार्य पश्चादात्मकार्यं करोतीति व्याख्याति;—उवओगविसुद्धो जो उपयोगेन शुद्धोपयोगेन  
परिणामेन विशुद्धो भूत्वा यतते यः विगदावरणंतरायमोहरओ भूदो विगदावरणान्तराय-  
मोहरजोभूतः सन् । कथम् । सयमेव निश्चयेन स्वयमेव आदा स पूर्वोक्त आत्मा जादि  
याति गच्छति । किं परं पारमवसानम् । केपाम् । णेयभूदाणं ज्ञेयभूतपदार्थानाम् । सर्वं  
जानातीत्यर्थः । अतो विस्तरः—यो निर्मोहशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणेन शुद्धोपयोगसंज्ञेनागमभाषया  
पृथक्तवितर्कवीचारप्रथमशुद्धव्यानेन पूर्वं निरवशेषमोहक्षपणं कृत्वा तदनन्तरं रागादिविकल्पो-  
पाधिरहितस्वसंवित्तिलक्षणेनैकत्ववितर्कवीचारसंज्ञद्वितीयशुद्धव्यानेन क्षीणकपायगुणस्थानेन्तर्मु-  
हूर्तकालं स्थित्वा तस्यैवान्यसमये ज्ञानदर्शनावरणवीर्यान्तरायाभिधानघातिकर्मत्रयं युगपद्दिनाश-  
यति । स जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तवस्तुगतानन्तधर्माणां युगपत्प्रकाशकं केवलज्ञानं प्राप्नोति ।  
ततः स्थितं शुद्धोपयोगात्सर्वज्ञो भवतीति ॥ १५ ॥ अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभाव-

पयोगसे निर्मल हो गया है वही आत्मा सब पदार्थोंके अंतको पाता है अर्थात् जो  
शुद्धोपयोगी जीव है वही तीनकालवर्ती समस्त पदार्थोंके जाननेवाले केवलज्ञानको  
प्राप्त होता है । कैसा होता हुआ कि [ विगतावरणान्तरायमोहरजाः स्वयमेव  
भूतः सन् ] दूर हुई है ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, तथा मोहनीय कर्मरूप  
धूलि (मल) जिससे ऐसा आपही होता हुआ । भावार्थ—जो शुद्धोपयोगी जीव है वह  
गुणस्थान गुणस्थान प्रति शुद्ध होता हुआ बारहवें गुणस्थानके अन्तमें संपूर्ण चार घातिया  
कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञानको पाता है । और आत्माका स्वभाव ज्ञान है ज्ञान ज्ञेयके  
प्रमाण है ज्ञेय तीनों कालोंमें रहनेवाले सब पदार्थ हैं इसलिये शुद्धोपयोगके प्रसादसे ही  
यह आत्मा सब ज्ञेयोंको जाननेवाले केवल ज्ञानको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ आगे  
शुद्धोपयोगका फल जो केवल ज्ञानमय शुद्धात्माका लाभ वह जिस समय इस आ-





दानत्वमुपादानः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावस्याधारभूतत्वादधिकरणत्वमात्मसात्कुर्वाणः, स्वयमेव प्रट्टारकीरूपेणोपजायमानः, उत्पत्तिव्यपेक्षया द्रव्यभावभेदभिन्नघातिकर्माण्यपास्य स्वयमेवाविर्भूतत्वाद्वा स्वयंभूरिति निर्दिश्यते । अतो न निश्चयतः

जातः । कथम् । सयमेव निश्चयेन स्वयमेवेति । तथाहि—अभिन्नकारकचिदानन्दैकचैतन्यस्व-स्वभावेन स्वतन्त्रत्वात् कर्ता भवति । नित्यानन्दैकस्वभावेन स्वयं प्राप्यत्वात् कर्मकारकं भवति । शुद्धचैतन्यस्वभावेन साधकतमत्वात्करणकारकं भवति । निर्विकारपरमानन्दैकपरिणतिलक्षणेन शुद्धात्मभावरूपकर्मणा समाश्रियमाणत्वात्संप्रदानं भवति । तथैव पूर्वमत्यादिज्ञानविकल्पविनाशे-

अब पट्कारक दिखाते हैं—कर्ता १ कर्म २ करण ३ संप्रदान ४ अपादान ५ अधिकरण ६ ये छह कारकके नाम हैं । और ये सब दो २ तरहके हैं एक व्यवहार दूसरा निश्चय । उनमें जिस जगह परके निमित्तसे कार्यकी सिद्धि की-जाय वहां व्यवहार पट्कारक होती हैं, और जिस जगह अपनेमें ही अपनेको उपादान कारण कर अपने कार्यकी सिद्धि कीजावै वहां निश्चय पट्कारक हैं । व्यवहार छह कारक, उपचार असद्भूतनयकर सिद्ध की जाती हैं इस कारण असत्य हैं, निश्चय छह कारक, अपनेमें ही जोड़ी जाती हैं इसलिये सत्य हैं । क्योंकि वास्तवमें कोई द्रव्य किसी द्रव्यका कर्ता व हर्ता नहीं है इसलिये व्यवहारकारक असत्य है, अपनेको आपही करता है इस कारण निश्चय-कारक सत्य है । जो स्वाधीन होकर करै वह कर्ता, जो कार्य किया जावै वह कर्म, जिसकर किया जावै वह करण जो कर्मकर दिया जावै वह संप्रदान, जो एक अवस्थाको छोड़ दूसरी अवस्थारूप होवै वह अपादान, जिसके आधार कर्म होवै वह अधिकरण कहा जाता है । अब दोनों कारकोंका दृष्टांत दिखलाते हैं । उनमें प्रथम व्यवहारकर इस तरह है—जैसे कुम्भकार ( कुम्हार ) कर्ता है, घड़ारूप कार्यको करता है इससे घट कर्म है, दंड चक्र चीवर ( डोरा ) आदिकर यह घट कर्म सिद्ध होता है इसलिये दंड आदिक करण कारक हैं, जल बगैरके भरनेकेलिये घट दिया जाता है इस वास्ते संप्रदानकारक है, मट्टीकी पिंडरूपादि अवस्थाको छोड़ घट अवस्थाको प्राप्त होना अपादान कारक है, भूमिके आधारसे घटकर्म किया जाता है बनाया जाता है इसलिये भूमि अधिकरणकारक समझना, इस प्रकार ये व्यवहार कारक हैं । क्योंकि इनमें कर्ता दूसरा है कर्म अन्य है करण अन्यही द्रव्य है दूसरेहीको देना दूसरेसे करना । आधार जुदा ही है ॥ निश्चय छह कारक अपने आपहीमें होते हैं जैसे—मृत्तिका—द्रव्य ( मट्टी ) करता है, अपने घट परिणाम कर्मको करता है इसलिये आपही कर्म है, आपही अपने घट परिणामको सिद्ध करता है इसलिये स्वयं ही करण है, अपने घट परिणामको करके अपनेकोही सोंप देता है इस कारण आपही संप्रदान है ।

तथा स लब्धस्वभावः सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितः ।

भूतः स्वयमेवात्मा भवति स्वयम्भूरिति निर्दिष्टः ॥ १६ ॥

अयं स्वत्वात्मा शुद्धोपयोगभावानुभावप्रत्यस्तमितसमस्तघातिकर्मतया समुपलब्धशुद्धानन्तशक्तिचित्स्वभावः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावेन स्वतत्रत्वाद्गहीतकर्तृत्वाधिकारः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन प्राप्यत्वात् कर्मत्वं कलयन्, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन साधकतमत्वात् करणत्वमनुविभ्राणः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन कर्मणा समाश्रियमाणत्वात् संप्रदानत्वं दधानः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनसमये पूर्वप्रवृत्तिकलज्ञानस्वभावापगमेपि सहजज्ञानस्वभावेन ध्रुवत्वावलम्बनादपा-

लाभस्य भिन्नकारकनिरपेक्षत्वेनात्माधीनत्वं प्रकाशयति;—तह सो लब्धसंहावो यथा निश्चय-  
रत्नत्रयलक्षणशुद्धोपयोगप्रसादात्सर्वं जानाति तथैव सः पूर्वोक्तलब्धशुद्धात्मस्वभावः सन् आदा  
अयमात्मा ह्वदि सयंभुत्ति णिद्दिष्टो स्वयम्भूर्भवतीति निर्दिष्टः कथितः । किं विशिष्टो  
भूतः । सब्रण्हू सब्रलोयपदिमहिदो भूदो सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितश्च भूतः सं-

त्माको होता है तब कर्ता—कर्मादि छह कारकरूप आपही होता हुआ स्वाधीन होता है और किसी दूसरे कारकको नहीं चाहता है यह कहते हैं;—[ तथा स आत्मा स्वयम्भूः भवति इति निर्दिष्टः ] जैसे शुद्धोपयोगके प्रभावसे केवलज्ञानादि गुणोंको प्राप्त हुआ था उसी प्रकार वही आत्मा “स्वयंभू” नामवालाभी होता है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है । तात्पर्य यह है कि जो आत्मा केवलज्ञानादि स्वाभाविक गुणोंको प्राप्त हुआ हो उसीका नाम स्वयंभू है । क्योंकि व्याकरणकी व्युत्पत्तिसेभी जो ‘स्वयं’ अर्थात् आपहीसे अर्थात् दूसरे द्रव्यकी सहायताविना ही ‘भवति’ अर्थात् अपने स्वरूप होवै इस कारण इसका नाम स्वयंभू कहा गया है, यह आत्मा अपने स्वरूपकी प्रातिके समय दूसरे कारककी इच्छा नहीं करता है । आप ही छह कारकरूप होकर अपनी सिद्धि करता है क्योंकि आत्मामें अनंत शक्ति है । कैसा है वह । [ लब्धस्वभावः ] प्राप्त किया है घातिया कर्मोंके नाशसे अनंतज्ञानादिशक्तिरूप अपना स्वभाव जिसने । फिर कैसा है । [ सर्वज्ञः ] तीन कालमें रहनेवाले सब पदार्थोंको जाननेवाला है । फिर कैसा है स्वयंभू आत्मा । [ सर्वलोकपतिमहितः ] तीनों भुवनोंके स्वामी इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती इनकर पूजित है । फिर कैसा है । [ स्वयमेव भूतः ] अपने आपही परकी सहायताके विना अपने शुद्धोपयोगके बलसे अनादि अविद्यासे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके बन्धोंको तोड़कर निश्चयसे इस पदवीको प्राप्त हुआ है अर्थात् मकल सुर, अमुर, मनुष्योंके स्वामियोंसे पूज्य सर्वेश वीतराग तीन लोकका स्वामी शुद्ध अपने स्वयंभूपदको प्राप्त हुआ है ॥

अथ स्वायम्भुवस्यास्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्यात्यन्तमनपायत्वं कथंचिदुत्पादव्ययध्रौ-  
व्ययुक्तत्वं चालोचयतिः—

**भंगविहीणो य भवो संभवपरिवर्जितो विणाशो हि ।**

**विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवायो ॥ १७ ॥**

भङ्गविहीनश्च भवः संभवपरिवर्जितो विनाशो हि ।

विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः ॥ १७ ॥

अस्य खल्वात्मनः शुद्धोपयोगप्रसादात् शुद्धात्मस्वभावेन यो भवः स पुनस्तेन रूपेण  
प्रलयाभावाद्भङ्गविहीनः । यस्त्वशुद्धाभावेन विनाशः स पुनरुत्पादाभावात्संभवपरिवर्जितः ।  
अतोस्य सिद्धत्वेनानपायित्वम् । एवमपि स्थितिसंभवनाशसमवायोस्य न विप्रतिषिध्यते,  
भङ्गरहितोत्पादेन संभववर्जितविनाशेन तद्व्याधारभूतद्रव्येण च समवेतत्वात् ॥ १७ ॥

॥ १६ ॥ एवं सर्वज्ञमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । स्वयंभूमुख्यत्वेन द्वितीया चेति प्रथमस्थले गाथा-  
द्वयं गतम् ॥ अथास्य भगवतो द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेनानित्यत्वमुपदि-  
शतिः—भंगविहीणो य भवो भङ्गविहीनश्च भवः जीवितमरणादिसमताभावलक्षणपरमोपे-  
क्षासंयमरूपशुद्धोपयोगेनोत्पन्नो योसौ भवः केवलज्ञानोत्पादः । स किं विशिष्टः । भङ्गविहीनो  
विनाशरहितः । संभवपरिवर्जितो विणाशोऽपि योसौ मिथ्यात्वरगादिसंसारणरूपसंसार-  
पर्यायस्य विनाशः स किं विशिष्टः । संभवहीनः निर्विकारात्मतत्त्वविलक्षणरागादिपरिणामाभावा-  
दुत्पत्तिरहितः । तस्माज्जायते तस्यैव भगवतः सिद्धस्वरूपतो द्रव्यार्थिकनयेन विनाशो नास्ति ।  
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसम-  
वायः, तस्यैव भगवतः पर्यायार्थिकनयेन शुद्धव्यञ्जनपर्यायापेक्षया सिद्धपर्यायेणोत्पादः, संसारपर्या-  
येण विनाशः, केवलज्ञानादिगुणाधारद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति । ततः स्थितं द्रव्यार्थिकनयेन नि-

है वहां स्वरूपकी प्राप्ति नहीं इस कारण परकी सहायता विनाही आत्मा निराकुल होता  
है, इसी दशामें अपनी सहायतासे आपको पाता है । इसवास्ते निश्चय करके आपही  
पदकारक है । जो अपनी अनंत शक्तिरूप संपदासे परिपूर्ण है तो वह दूसरेकी इच्छा क्यों  
रखे अर्थात् कभी नहीं ? ॥ १६ ॥ आगे इस स्वयंभू प्रभूके शुद्धस्वभावको नित्य दिख-  
लाते हैं और किसीप्रकारसे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य अवस्थाभी दिखलाते हैंः—[ तस्य  
आत्मनः भंगविहीनः भवः विद्यते ] जो आत्मा शुद्धोपयोगके प्रसादसे स्वरू-  
पको प्राप्त हुआ है उस आत्माके नाशरहित उत्पाद है । अर्थात् जो इस आत्माके  
शुद्धस्वभावकी उत्पत्ति हुई फिर उसका नाश कभी नहीं होता [ च संभवपरिव-  
र्जितः विनाशः ] और विनाश है वह उत्पत्तिकर रहित है, अर्थात् अनादिकालकी  
अविद्या ( अज्ञान ) से पैदा हुआ जो विभाव ( अशुद्ध ) परिणाम उसका एकदके

परेण सहात्मनः कारकत्वसम्बन्धोस्ति, यतः शुद्धात्मस्वभावलाभायसामग्रीमार्गेणव्यग्रतया परतंत्रैर्भूयते ॥ १६ ॥

प्यखण्डितैकचैतन्यप्रकाशेनाविनश्वरत्वादपादानं भवति । निश्चयशुद्धचैतन्यादिगुणस्वभावात्मनः स्वयमेवाधारत्वादधिकरणं भवतीत्यभेदपट्टकारकीरूपेण स्वत एव परिणममाणः सन्नयमात्मा परमात्मस्वभावकेवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे यतो भिन्नकारकं नापेक्षते ततः स्वयंभूर्भवतीति भावार्थः

अपनी सृष्टिपट्ट अवस्थाको छोड़ अपनी घट अवस्थाको करता है इसलिये आपही अपादान है । अपनेमें ही अपने घटपरिणामको करता है इसवास्ते आपही अधिकरण है । इस तरह ये निश्चय पट्टकारक हैं, क्योंकि किसीभी दूसरे द्रव्यकी सहायता नहीं है इस कारण अपने आपमें ही ये निश्चयकारक साधे जाते हैं । इसीप्रकार यह आत्मा संसार अवस्थामें जब शुद्धोपयोगभावरूप परिणमन करता है उस समय किसी दूसरेकी सहायता ( मदत ) न लेकर अपनीही अनंत शुद्धचैतन्यशक्तिकर आपही छह कारकरूप होके केवलज्ञानको पाता है इसी अवस्थामें 'स्वयंभू' कहा जाता है । शुद्ध अनंतशक्ति तथा ज्ञायकस्वभाव होनेसे अपने आधीन होता हुआ यह आत्मा अपने शुद्ध ज्ञायक स्वभावको करता है इसलिये आपही 'कर्ता' है, और जिस शुद्धज्ञायकस्वभावको करता है वह आत्माका कर्म है, सो वह कर्म आपही है क्योंकि शुद्ध-अनंतशक्ति, ज्ञायक स्वभावकर अपने आपकोही प्राप्त होती है वहां यह आत्मा ही 'कर्म' है, यह आत्मा अपने शुद्ध आत्मीक परिणामकर स्वरूपको साधन करता है वहांपर अपने अनंतज्ञान-कर 'करणकारक' होता है, यह आत्मा अपने शुद्धपरिणामोंको करता हुआ अपनेको ही देता है उस अवस्थामें शुद्ध अनंतशक्ति ज्ञायकस्वभाव कर्मकर आपको ही स्वीकार करता हुआ 'संप्रदानकारक' होता है, यह आत्मा जब शुद्ध स्वरूपको प्राप्त होता है उससमय इस आत्माके सांसारिक अशुद्ध-क्षायोपशमिक मतिआदिज्ञानका नाश होता है उसी अवस्थामें अपने स्वाभाविक ज्ञानस्वभावकर स्थिरपनेको धारण करता है तब 'अपादान कारक' होता है । यह आत्मा जब अपने शुद्ध अनंतशक्ति ज्ञायकस्वभावका आधार है उस दशामें 'अधिकरणकारक'को स्वीकार करता है । इस प्रकार यह आत्मा आपही पट्टकारकरूप होकर अपने शुद्ध स्वरूपको उत्पन्न ( प्रगट ) करता है तभी स्वयंभू पदवीको पाता है । अथवा अनादिकालसे बहुत मजबूत बंधे हुए पातियाकर्मोंको ( ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ मोहनीय ३ अन्तराय ४ ) नाशकरके आपही प्रगट हुआ है दूसरेकी सहायता कुछभी नहीं ली इस कारण स्वयंभू कहा जाता है ॥ यहां पर कोई प्रश्न करे कि परकी सहायतासे स्वरूपकी प्राप्ति क्यों नहीं होती ? उसका समाधान-कि जो यह आत्मा पराधीन होवे तो आकुलता सहित होजाय और जिस जगह आकुलता

च विनाशः । पीततादिपर्यायेण तूभयत्राप्युत्पत्तिविनाशावनासादयतः ध्रुवत्वम् । एव-  
मखिलद्रव्याणां केनचित्पर्यायेणोत्पादः केनचिद्विनाशः केनचिद्भ्रौव्यमित्यवबोद्धव्यम् ।  
अतः शुद्धात्मनोप्युत्पादादित्रयरूपं द्रव्यलक्षणभूतमस्तित्वमवश्यं भावि ॥ १८ ॥

अथास्यात्मनः शुद्धोपयोगानुभावात्स्वयंभुवो भूतस्य कथमिन्द्रियैर्विना ज्ञानानन्दाविति  
संदेहमुदस्यति;—

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो ।

जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि ॥ १९ ॥

वति तथैव केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारपर्यायस्योत्पादश्च भवति, तथाप्युभयप-  
र्यायपरिणतात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यत्वं पदार्थत्वादिति । अथवा ज्ञेयपदार्थाः प्रतिक्षणं भङ्गत्रयेण  
परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छिद्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमति । पटस्थानगतागुरुलघुकगुण-  
वृद्धिहान्यपेक्षया वा भङ्गत्रयमवबोद्धव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ १८ ॥ एवं सिद्धजीवे द्रव्यार्थिकन-

पर्यायसे ध्रुवपना सब पदार्थोंमें है । जब सब पदार्थोंमें तीनों अवस्था हैं तब आत्मा-  
मेंभी अवश्य होना सम्भव है । जैसे सोना कुंडल पर्यायसे उत्पन्न होता है पहली  
कंकण ( कड़ा ) पर्यायसे विनाशको पाता है और पीत, गुरु, तथा खिग्ध ( चिकने )  
आदिक गुणोंसे ध्रुव है इसी प्रकार यह जीवभी संसारअवस्थामें -देव आदि पर्यायकर  
उत्पन्न होता है, मनुष्य आदिक पर्यायसे विनाश पाता है और जीवपनेसे स्थिर है ।  
मोक्ष अवस्थामेंभी शुद्धपनेसे उत्पन्न होता है अशुद्ध पर्यायसे विनाशको प्राप्त होता है  
और द्रव्यपनेसे ध्रुव है । अथवा आत्मा सब पदार्थोंको जानता है ज्ञान है वह ज्ञेय  
( पदार्थ )के आकार होता है इस लिये सब पदार्थ जैसे २ उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप  
होते हैं वैसा २ ज्ञानभी होता है, इस ज्ञानकी अपेक्षाभी आत्माके उत्पाद, व्यय,  
ध्रौव्य जान लेना, तथा पटगुणी हानि वृद्धिकी अपेक्षाभी उत्पाद आदिक तीन आ-  
त्मामें हैं । इसी प्रकार और बाकी द्रव्योंमें उत्पाद आदि सिद्ध करलेना ॥ यहांपर  
किसीने प्रश्न किया कि द्रव्यका अस्तित्व ( मौजूद होना ) उत्पाद वगैरः तीनसे क्यों  
कहा है एक ध्रुवहीसे कहना चाहिये क्योंकि जो ध्रुव (स्थिर) होगा वह हमेशा मौजूद  
रहसक्ता है ? इसका समाधान इसतरह है—जो पदार्थ ध्रुवही होता तब मट्टी सोना  
दूध आदि सब पदार्थ अपने सादा आकारसेही रहते घड़ा, कुंडल, दही वगैरः भेद  
कभी नहीं होते परंतु ऐसा देखनेमें नहीं आता । भेद तो अवश्य देखनेमें आता है  
इस कारण पदार्थ अवस्थाकर उपजताभी है और नाशभी पाता है इसीलिये द्रव्यका  
स्वरूप उत्पाद, व्ययभी है । अगर ऐसा न माना जावे तो संसारकाही लोप होजावे  
इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि पर्यायसे उत्पाद तथा व्यय सिद्ध होते हैं और द्रव्य-  
पनेसे ध्रुव सिद्ध होता है इन तीनोंसेही द्रव्यका अस्तित्व ( मौजूदगी ) है ॥ १८ ॥

आगे कहते हैं कि यह आत्मा शुद्धोपयोगके प्रभावसे स्वयंभू तो हुआ परंतु इन्द्रि-

अथोत्पादादित्रयं सर्वद्रव्यसाधारणत्वेन शुद्धात्मनोप्यवश्यं भवतीति विभावयति:—

उत्पादो य विणासो विज्जदि सच्चस्स अत्थजादस्स ।

पज्जाएण दु केणवि अत्थो खलु होदि सच्चदो ॥ १८ ॥

उत्पादश्च विनाशो विद्यते सर्वस्यार्थजातस्य ।

पर्यायेण तु केनाप्यर्थः खलु भवति सद्भूतः ॥ १८ ॥

यथाहि जाल्यजाम्बूनदस्याङ्गदपर्यायेणोत्पत्तिर्दृष्टा । पूर्वव्यवस्थिताङ्गुलीयकादिपर्यायेण

खत्वेपि पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयं संभवतीति ॥ १७ ॥ अथोत्पादादित्रयं . यथा सुवर्णादिमूर्तपदार्थेषु दृश्यते तथैवामूर्तेषु सिद्धस्वरूपे विज्ञेयं पदार्थत्वादिति निरूपयति:—उत्पादो य विणासो विज्जदि सच्चस्स अट्टजादस्स उत्पादश्च विनाशश्च विद्यते तावत्सर्वस्यार्थजातस्य पदार्थसमूहस्य । केन कृत्वा । पज्जाएण दु केणवि पर्यायेण तु केनापि विवक्षितेनार्थव्यञ्जनरूपेण स्वभावविभावरूपेण वा । स चार्थः किं विशिष्टः । अट्टो खलु होइ संभूदो अर्थः खलु स्फुटं सत्ताभूतः सत्ताया अभिन्नो भवतीति । तथाहि—सुवर्णगोरसमुत्तिकापुरुषादिमूर्तपदार्थेषु यथोत्पादादित्रयं लोके प्रसिद्धं तथैवामूर्तेषु मुक्तजीवे । यद्यपि शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिलक्षणस्य संसारावसानोत्पन्नकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशो भ-

नाश हुआ फिर वह नहीं उत्पन्न होता है इससे तात्पर्य यह निकला कि जो इस भगवान ( ज्ञानवान ) आत्माके उत्पाद है वह विनाशरहित है और विनाश उत्पत्तिरहित है तथा अपने सिद्धिस्वरूप कर ध्रुव ( नित्य ) है अर्थात् जो यह आत्मा पहले अशुद्ध हालतमें था वही आत्मा अब शुद्धदशामें मौजूद है इसकारण ध्रुव है । [ तस्यैव पुनः स्थिति-संभचनाशसमवायः ] फिर उसी आत्माके ध्रौव्य उत्पत्ति नाश इन तीनोंका मिलाप एकही समयमें मौजूद है क्योंकि यह भगवान एकही वक्त तीनों स्वरूप परिणमता है अर्थात् जिस समय शुद्धपर्यायकी उत्पत्ति है उसी वक्त अशुद्ध पर्यायका नाश है और उसी कालमें द्रव्यपनेसे ध्रुव है दूसरे समयकी जरूरतही नहीं है इस कहनेसे यह अभिप्राय हुआ कि द्रव्यार्थिकनयसे आत्मा नित्य होनेपरभी पर्यायार्थिकनयसे उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य, इन तीनों सहितही है ॥ १७ ॥ आगे उत्पाद आदिक द्रव्यका स्वरूप है इस कारण सब द्रव्योंमें है तो फिर आत्मामेंभी अवश्य है यह कहते हैं ।

[ केनापि ] किसी एक [ पर्यायेण ] पर्यायसे [ सर्वस्य अर्थजातस्य ] सब पदार्थोंकी [ उत्पादः ] उत्पत्ति [ च विनाशः ] तथा नाश [ विद्यते ] मौजूद है [ तु ] लेकिन [ खलु ] निश्चयसे [ अर्थः ] पदार्थ [ सद्भूतः ] सत्तास्वरूप [ भवति ] है । भावार्थ—पदार्थका अस्तित्व ( होना ) सत्तागुणसे है और मत्ता उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप है सो किसी पर्यायसे उत्पाद तथा किसी पर्यायसे विनाश और किसी

च विनाशः । पीततादिपर्यायेण तूभयत्राप्युत्पत्तिविनाशवनासादयतः ध्रुवत्वम् । एव-  
मखिलद्रव्याणां केनचित्पर्यायेणोत्पादः केनचिद्विनाशः केनचिद्भौव्यमित्यवबोद्धव्यम् ।  
अतः शुद्धात्मनोप्युत्पादादित्रयरूपं द्रव्यलक्षणभूतमस्त्वमवश्यं भावि ॥ १८ ॥

अथास्यात्मनः शुद्धोपयोगानुभावात्स्वयंभुवो भूतस्य कथमिन्द्रियैर्विना ज्ञानानन्दाविति  
संदेहमुदस्यति;—

पक्व्रीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो ।

जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि ॥ १९ ॥

वति तथैव केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारपर्यायस्योत्पादश्च भवति, तथाप्युभयप-  
र्यायपरिणतात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यत्वं पदार्थत्वादिति । अथवा ज्ञेयपदार्थाः प्रतिक्षणं भङ्गत्रयेण  
परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छित्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमति । पट्स्थानगतागुरुलघुकगुण-  
वृद्धिहान्यपेक्षया वा भङ्गत्रयमवबोद्धव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ १८ ॥ एवं सिद्धजीवे द्रव्यार्थिकन-

पर्यायसे ध्रुवपना सब पदार्थोंमें है । जब सब पदार्थोंमें तीनों अवस्था हैं तब आत्मा-  
मेंभी अवश्य होना सम्भव है । जैसे सोना कुंडल पर्यायसे उत्पन्न होता है पहली  
कंकण ( कड़ा ) पर्यायसे विनाशको पाता है और पीत, गुरु, तथा स्निग्ध ( चिकने )  
आदिक गुणोंसे ध्रुव है इसी प्रकार यह जीवभी संसारअवस्थामें-देव आदि पर्यायकर  
उत्पन्न होता है, मनुष्य आदिक पर्यायसे विनाश पाता है और जीवपनेसे स्थिर है ।  
मोक्ष अवस्थामेंभी शुद्धपनेसे उत्पन्न होता है अशुद्ध पर्यायसे विनाशको प्राप्त होता है  
और द्रव्यपनेसे ध्रुव है । अथवा आत्मा सब पदार्थोंको जानता है ज्ञान है वह ज्ञेय  
( पदार्थ )के आकार होता है इस लिये सब पदार्थ जैसे २ उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप  
होते हैं वैसा २ ज्ञानभी होता है, इस ज्ञानकी अपेक्षाभी आत्माके उत्पाद, व्यय,  
ध्रौव्य जान लेना, तथा पट्गुणी हानि वृद्धिकी अपेक्षाभी उत्पाद आदिक तीन आ-  
त्मामें हैं । इसी प्रकार और वाकी द्रव्योंमें उत्पाद आदि सिद्ध करलेना ॥ यहांपर  
किसीने प्रश्न किया कि द्रव्यका अस्तित्व ( मौजूद होना ) उत्पाद वगैरः तीनोंसे क्यों  
कहा है एक ध्रुवहीसे कहना चाहिये क्योंकि जो ध्रुव (स्थिर) होगा वह हमेशा मौजूद  
रहसक्ता है ? इसका समाधान इसतरह है—जो पदार्थ ध्रुवही होता तब मट्टी सोना  
दूध आदि सब पदार्थ अपने सादा आकारसेही रहते घड़ा, कुंडल, दही वगैरः भेद  
कभी नहीं होते परंतु ऐसा देखनेमें नहीं आता । भेद तो अवश्य देखनेमें आता है  
इस कारण पदार्थ अवस्थाकर उपजताभी है और नाशभी पाता है इसीलिये द्रव्यका  
स्वरूप उत्पाद, व्ययभी है । अगर ऐसा न माना जावे तो संसारकाही लोप होजावे  
इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि पर्यायसे उत्पाद तथा व्यय सिद्ध होते हैं और द्रव्य-  
पनेसे ध्रुव सिद्ध होता है इन तीनोंसेही द्रव्यका अस्तित्व ( मौजूदगी ) है ॥ १८ ॥

आगे कहते हैं कि यह आत्मा शुद्धोपयोगके प्रभावसे स्वयंभू तो हुआ परंतु इंद्रि-



अथोत्पादादित्रयं सर्वद्रव्यसाधारणत्वेन शुद्धात्मनोप्यवश्यं भवतीति विभावयति:—

उत्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अत्थजादस्स ।

पज्जाएण दु केणवि अत्थो खलु होदि सव्वभूदो ॥ १८ ॥

उत्पादश्च विनाशो विद्यते सर्वस्यार्थजातस्य ।

पर्यायेण तु केनाप्यर्थः खलु भवति सद्भूतः ॥ १८ ॥

यथाहि जात्यजाम्बूनदस्याङ्गदपर्यायेणोत्पत्तिर्दृष्टा । पूर्वव्यवस्थिताङ्गुलीयकादिपर्यायेण

त्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयं संभवतीति ॥ १७ ॥ अथोत्पादादित्रयं . यथा सुवर्णादिमूर्तपदार्थेषु दृश्यते तथैवामूर्तेषु सिद्धस्वरूपे विज्ञेयं पदार्थत्वादिति निरूपयति;—उत्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्टजादस्स उत्पादश्च विनाशश्च विद्यते तावत्सर्वस्यार्थजातस्य पदार्थसमूहस्य । केन कृत्वा । पज्जाएण दु केणवि पर्यायेण तु केनापि विवक्षितेनार्थव्यञ्जनरूपेण स्वभावविभावरूपेण वा । स चार्थः किं विशिष्टः । अट्टो खलु होइ संभूदो अर्थः खलु स्फुटं सत्ताभूतः सत्ताया अभिन्नो भवतीति । तथाहि—सुवर्णगोरसमृत्तिकापुरुषादिमूर्तपदार्थेषु यथोत्पादादित्रयं लोके प्रसिद्धं तथैवामूर्तेषु मुक्तजीवे । यद्यपि शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिलक्षणस्य संसारावसानोत्पन्नकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशो भ-

नाश हुआ फिर वह नहीं उत्पन्न होता है इससे तात्पर्य यह निकला कि जो इस भगवान ( ज्ञानवान ) आत्माके उत्पाद है वह विनाशरहित है और विनाश उत्पत्तिरहित है तथा अपने सिद्धिस्वरूप कर ध्रुव ( नित्य ) है अर्थात् जो यह आत्मा पहले अशुद्ध हालतमें था वही आत्मा अब शुद्धदशामें मौजूद है इसकारण ध्रुव है । [तस्यैव पुनः स्थिति-संभवनाशसमवायः ] फिर उसी आत्माके ध्रौव्य उत्पत्ति नाश इन तीनोंका मिलाप एकही समयमें मौजूद है क्योंकि यह भगवान एकही वक्त तीनों स्वरूप परिणमता है अर्थात् जिस समय शुद्धपर्यायकी उत्पत्ति है उसी वक्त अशुद्ध पर्यायका नाश है और उसी कालमें द्रव्यपनेसे ध्रुव है दूसरे समयकी जरूरतही नहीं है इस कहनेसे यह अभिप्राय हुआ कि द्रव्यार्थिकनयसे आत्मा नित्य होनेपरभी पर्यायार्थिकनयसे उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य, इन तीनों सहितही है ॥ १७ ॥ आगे उत्पाद आदिक द्रव्यका स्वरूप है इस कारण सय द्रव्योंमें है तो फिर आत्मामेंभी अवश्य है यह कहते हैं ।

[ केनापि ] किसी एक [ पर्यायेण ] पर्यायसे [ सर्वस्य अर्थजातस्य ] सब पदार्थोंकी [ उत्पादः ] उत्पत्ति [ च विनाशः ] तथा नाश [ विद्यते ] मौजूद है [ तु ] लेकिन [ खलु ] निश्चयमे [ अर्थः ] पदार्थ [ सद्भूतः ] सत्तास्वरूप [ भवति ] है । भावार्थ—पदार्थका अस्तित्व ( होना ) मत्तागुणसे है और मत्ता उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप है सो किसी पर्यायसे उत्पाद तथा किसी पर्यायमे विनाश और किसी

भावमात्मानमासादयन् स्वयमेव स्वपरप्रकाशकत्वलक्षणं ज्ञानमनाकुलत्वलक्षणं सौख्यं च भूत्वा परिणमते । एवमात्मनो ज्ञानानन्दौ स्वभाव एव । स्वभावस्य तु परानपेक्षत्वादिन्द्रियैर्विनाप्यात्मनो ज्ञानानन्दौ संभवतः ॥ १९ ॥

अथानिन्द्रित्वादेव शुद्धात्मनः शरीरं सुखदुःखं नास्तीति विभावयति;—

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं ।

जम्हा अदिदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं ॥ २० ॥

क्लृप्तलक्षण आत्मा जातः संजातः । कथंभूतः । अणिंदियो अनिन्द्रिय इन्द्रियविषयव्यापार-रहितः । अतीन्द्रियः सन् किं करोति । णाणं सोक्खं च परिणमदि केवलज्ञानमनन्तसौख्यं च परिणमतीति । तथाहि—अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति, आत्मा तावन्निश्चयेनानन्त-ज्ञानसुखस्वभावोऽपि व्यवहारेण संसारावस्थायां कर्मप्रच्छादितज्ञानसुखः सन् पश्चादिन्द्रियाधारेण किमप्यल्पज्ञानं सुखं च परिणमति । यदा पुनर्निर्विकल्पस्वसंवित्तिवलेन कर्माभावो भवति तदा क्षयोपशमाभावादिन्द्रियाणि न सन्ति स्वकीयातीन्द्रियज्ञानसुखं चानुभवति । तदपि कस्मात् । स्वभावस्य परापेक्षा नास्तीत्यभिप्रायः ॥ १९ ॥ अथातीन्द्रियत्वादेव केवलिनः शरीराधारोद्भूतं भोजनादिसुखं क्षुधादिदुःखं च नास्तीति विचारयति;—सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणा-णिस्स णत्थि सुखं वा पुनर्दुःखं वा केवलज्ञानिनो नास्ति । कथंभूतम् । देहगदं देहगतं देहाधारजिह्वेन्द्रियादिसमुत्पन्नं कवलाहारादिसुखम्, असातोदयजनितं क्षुधादिदुःखं च । कस्मान्नास्ति । जम्हा अदिदियत्तं जादं यस्मान्मोहादिघातिकर्माभावे पञ्चेन्द्रियविषयसुखाय

रूप प्रकाश जिसके अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके जानेसे अनंतज्ञान, अनंतदर्शनमयी है । और समस्त मोहनीय कर्मके नाशसे स्थिर अपने स्वभावको प्राप्त होगया है । **भावार्थ**—इस आत्माका स्वभाव ज्ञान—आनंद है परके अधीन नहीं है इस लिये निरावरण अवस्थामेंही इन्द्रियविना ज्ञान, सुख स्वभावसेही परिणमते हैं । जैसे सूर्यका स्वभाव प्रकाश है वह मेघपटलोंकर ढंक जानेसे हीन प्रकाश होजाता है, लेकिन मेघसमूहके दूर होजानेपर स्वाभाविक प्रकाश होजाता है, इसी प्रकार इस आत्माकेभी इन्द्रिय-आवरण करनेवाले कर्मोंके दूर होजानेसे स्वाभाविक ( किसीके निमित्तविना ) ज्ञान तथा सुख प्रगट होजाता है ॥ १९ ॥

आगे जबतक आत्मा इंद्रियोंके अधीन है तबतक शरीरसंबंधी सुख, दुःखका अनुभव करता है । यह केवलज्ञानी भगवान् अतीन्द्रिय है इस कारण इसके शरीर-इस भी सुख, दुःख नहीं है ऐसा कहते हैं;—[ केवलज्ञानिनः ] केवल ज्ञानीके स्वरूप उत्पन्नम् ] शरीरसे उत्पन्न हुआ [ सौख्यं ] भोजनादिक सुख [ वा पुनः दुःखं ] इसलिये यह वगैरःका दुःख [ नास्ति ] नहीं है [ यस्मात् ] इसी कारणसे इस केवली पनेसे ध्रुव सिद्ध अतीन्द्रियत्वं जातं ] इन्द्रियरहित भाव प्रगट हुआ [ तस्मान्नु ] इसी-  
आगे कहते

प्रक्षीणघातिकर्मा अनन्तवरवीर्योऽधिकतेजाः ।

जातोतीन्द्रियः स ज्ञानं सौख्यं च परिणमते ॥ १९ ॥

अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोगसामर्थ्यात् प्रक्षीणघातिकर्मा, क्षायोपशमिकज्ञानदर्शनासंपृ-  
क्तत्वादतीन्द्रियो भूतः सन्निखिलान्तरायक्षयादनन्तवरवीर्यः, कृत्स्नज्ञानदर्शनावरणप्रलया-  
दधिककेवलज्ञानदर्शनाभिधानतेजाः, समस्तमोहनीयाभावादत्यन्तनिर्विकारशुद्धचैतन्यस्व-

येन नित्यत्वेऽपि विवक्षितपर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्यस्थापनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयं गतम् ।  
अथ तं पूर्वोक्तसर्वज्ञं ये मन्यन्ते ते सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, परम्परया मोक्षं च लभन्त इति  
प्रतिपादयति;—

‘तं सव्वद्वरिदं इदं अमरासुरप्पहाणेहिं ।

ये सहहंति जीवा तेसिं दुक्खाणि खीयंति ॥ १ ॥

तं सव्वद्वरिदं तं सर्वार्थवरिदं इदं इष्टमभिमत्तम् । कैः । अमरासुरप्पहाणेहिं अ-  
मरासुरप्रधानैः । ये सहहंति ये श्रद्धति रोचन्ते जीवा भव्यजीवाः । तेसिं तेषाम् । दु-  
क्खाणि दुःखानि । खीयंति विनाशं गच्छन्ति, इति सूत्रार्थः ॥ १ ॥ एवं निर्दोषिपरमा-  
त्मध्यानान्मोक्षो भवतीति कथनरूपेण तृतीयस्थले गाथा गता ॥ अथास्यात्मनो निर्विकारस्व-  
संवेदनलक्षणशुद्धोपयोगप्रभावात्सर्वज्ञत्वे सतीन्द्रियैर्विना कथं ज्ञानानन्दाविति पृष्टे प्रत्युत्तरं  
ददाति—पक्खीणघाइकम्मो ज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयस्वरूपपरमात्मद्रव्यभावनालक्षणशुद्धोपयोग-  
वलेन प्रक्षीणघातिकर्मा सन् । अणंतवरवीरियो अनन्तवरवीर्यः । पुनरपि किं विशिष्टः ।  
अहियतेजो अधिकतेजाः । अत्र तेजःशब्देन केवलज्ञानदर्शनद्वयं ग्राह्यम् । जादो सो सं पूर्वो-

योंके विना ज्ञान और आनंद इस आत्माके किस तरह होता है, ऐसी शंकाको दूर  
करते हैं अर्थात् ये अज्ञानी जीव इन्द्रियविषयोंके भोगनेमेंही ज्ञान, आनंद मान बैठे हैं  
उनके चेतायनेके लिये स्वभावसे उत्पन्न हुए ज्ञान तथा सुखको दिखाते हैं;—[ सः ]  
यह स्वयंभू भगवान् आत्मा [ अतीन्द्रियः जातः ‘सन्’ ] इन्द्रिय ज्ञानसे रहित  
होता हुआ [ ज्ञानं सौख्यं च ] अपने और परके प्रकाशने ( जानने )वाला ज्ञान  
तथा आकुलता रहित अपना सुख, इन दोनों स्वभावरूप [ परिणमति ] परिणमता है ।  
कैसा है भगवान् । [ प्रक्षीणघातिकर्मा ] सर्वथा नाश किये हैं चार घातिया  
कर्म जिसने अर्धान् जयतक घातियाकर्म सहित था तयतक क्षायोपशमिक मत्यादि ज्ञान  
तथा चक्षुरादि दर्शन सहित था । घातिया कर्मोंके नाश होतेही अतीन्द्रिय हुआ । फिर  
कैसा है । [ अनन्तवरवीर्यः ] मर्यादा रहित है उत्कृष्ट बल जिसके अर्धान् संस्तरायके  
दूर होनेसे अनन्तबलसहित है । फिर कैसा है । [ अधिकतेजाः ] अनंत है ज्ञानदर्शन-

१ इग गायासी धीमत अगृतचन्द्राचार्यने टीका नहीं की इग तात्पर्यवृत्तिमें ही इग हा व्याख्यान है  
इसकारण शेषक होनेका संदेह है ।

भावमात्मानमासादयन् स्वयमेव स्वपरप्रकाशकत्वलक्षणं ज्ञानमनाकुलत्वलक्षणं सौख्यं च मूत्वा परिणमते । एवमात्मनो ज्ञानानन्दौ स्वभाव एव । स्वभावस्य तु परानपेक्षत्वादिन्द्रियैर्विनाप्यात्मनो ज्ञानानन्दौ संभवतः ॥ १९ ॥

अथानिन्द्रित्वादेव शुद्धात्मनः शारीरं सुखदुःखं नास्तीति विभावयति;—

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं ।

जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं ॥ २० ॥

क्लृप्तक्षण आत्मा जातः संजातः । कथंभूतः । अणिंदियो अनिन्द्रिय इन्द्रियविषयव्यापाररहितः । अतीन्द्रियः सन् किं करोति । णाणं सोक्खं च परिणमदि केवलज्ञानमनन्तसौख्यं च परिणमतीति । तथाहि—अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति, आत्मा तावन्निश्चयेनानन्तज्ञानसुखस्वभावोऽपि व्यवहारेण संसारावस्थायां कर्मप्रच्छादितज्ञानसुखः सन् पश्चादिन्द्रियाधारेण किमप्यल्पज्ञानं सुखं च परिणमति । यदा पुनर्निर्विकल्पस्वसंवित्त्विलेन कर्माभावो भवति तदा क्षयोपशमाभावादिन्द्रियाणि न सन्ति स्वकीयातीन्द्रियज्ञानसुखं चानुभवति । तदपि कस्मात् । स्वभावस्य परापेक्षा नास्तीत्यभिप्रायः ॥ १९ ॥ अथातीन्द्रियत्वादेव केवलिनः शरीराधारोद्भूतं भोजनादिसुखं क्षुधादिदुःखं च नास्तीति विचारयति;—सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि सुखं वा पुनर्दुःखं वा केवलज्ञानिनो नास्ति । कथंभूतम् । देहगदं देहगतं देहाधारजिह्वेन्द्रियादिसमुत्पन्नं कवलहारादिसुखम्, असातोदयजनितं क्षुधादिदुःखं च । कस्मान्नास्ति । जम्हा अदिंदियत्तं जादं यस्मान्मोहादिघातिकर्माभावे पञ्चेन्द्रियविषयसुखाय

रूप प्रकाश जिसके अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके जानेसे अनंतज्ञान, अनंतदर्शनमयी है । और समस्त मोहनीय कर्मके नाशसे स्थिर अपने स्वभावको प्राप्त होगया है । भावार्थ—इस आत्माका स्वभाव ज्ञान—आनंद है परके अधीन नहीं है इस लिये निरावरण अवस्थामेंही इन्द्रियविना ज्ञान, सुख स्वभावसेही परिणमते हैं । जैसे सूर्यका स्वभाव प्रकाश है वह मेघपटलेंकर ढंक जानेसे हीन प्रकाश होजाता है, लेकिन मेघसमूहके दूर होजानेपर स्वाभाविक प्रकाश होजाता है, इसी प्रकार इस आत्माकेभी इन्द्रिय—आवरण करनेवाले कर्मोंके दूर होजानेसे स्वाभाविक ( किसीके निमित्तविना ) ज्ञान तथा सुख प्रगट होजाता है ॥ १९ ॥

आगे जयतक आत्मा इंद्रियोंके अधीन है तबतक शरीरसंबंधी सुख, दुःखका अनुभव करता है । यह केवलज्ञानी भगवान् अतीन्द्रिय है इस कारण इसके शरीरसंबंधी सुख, दुःख नहीं है ऐसा कहते हैं;—[ केवलज्ञानिनः ] केवल ज्ञानीके [ देहगतम् ] शरीरसे उत्पन्न हुआ [ सौख्यं ] भोजनादिक सुख [ वा पुनः दुःखं ] अथवा भूख वगैरका दुःख [ नास्ति ] नहीं है [ यस्मात् ] इसी कारणसे इस केवली भगवानके [ अतीन्द्रियत्वं जातं ] इन्द्रियरहित भाव प्रगट हुआ [ तस्मात् ] इसी—

सौख्यं वा पुनर्दुःखं केवलज्ञानिनो नास्ति देहगतम् ।

यस्मादतीन्द्रियत्वं जातं तस्मात्तु तज्ज्ञेयम् ॥ २० ॥

यत् एव शुद्धात्मनो जातवेदस इव कालायसगोलोत्कूलितपुद्गलाशेषविलासकत्पो

व्यापारहितत्वं जातम् । तस्माद्दुःखं तेषां तस्मादतीन्द्रियत्वाद्देहोत्तीन्द्रियमेव तज्ज्ञानं सुखं च ज्ञेयमिति । तद्यथा—लोहपिण्डसंसर्गाभावादग्निर्यथा घनघातपिट्टनं न लभते तथायमात्मापि लोहपिण्डस्थानीयेन्द्रियप्रामाभावात् सांसारिकसुखदुःखं नानुभवतीत्यर्थः । कश्चिदाह—केवलानां भुक्तिरस्ति, औदारिकशरीरसद्भावात् । असद्वेद्यकर्मोदयसद्भावाद्वा । अस्मदादिवत् । परिहारमाह—तद्भवतः शरीरमौदारिकं न भवति किन्तु परमौदारिकम्—शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजो-मूर्तिमयं वपुः । जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम् ॥ १ ॥ यच्चोक्तमसद्वेद्यो-दयसद्भावाच्च परिहारमाह—यथा व्रीह्यादिवीजं जलसहकारिकारणसहितमङ्कुरादिकार्यं जनयति तथैवासद्वेद्यकर्म मोहनीयसहकारिकारणसहितं क्षुधादिकार्यमुत्पादयति । कस्मात् । ‘मोहस्स बलेण घाददे जीवं’ इति वचनात् । यदि पुनर्मोहाभावेपि क्षुधादिपरीपहं जनयति तर्हि बध-रोगादिपरीपहमपि जनयतु न च तथा । तदपि कस्मात् । ‘भुक्त्युपसर्गाभावात्’ इति वचनात् । अन्यदपि दूषणमस्ति । यदि क्षुधाबाधास्ति तर्हि क्षुधाक्षीणशक्तेरनन्तवीर्यं नास्ति । तथैव क्षुधा-दुःखितस्यानन्तसुखमपि नास्ति । जिह्वेन्द्रियपरिच्छित्तिरूपमतिज्ञानपरिणतस्य केवलज्ञानमपि न संभवति । अथवा अन्यदपि कारणमस्ति । असद्वेद्योदयापेक्षया सद्वेद्योदयोऽनन्तगुणोस्ति । ततः कारणात् शर्कराराशिमध्ये निम्बकणिकावदसद्वेद्योदयो विद्यमानोपि न ज्ञायते । तथैवान्यदपि बाधकमस्ति—यथा प्रमत्तसंयतादितपोधनानां वेदोदये विद्यमानेपि मन्दमोहोदयत्वादखण्डब्रह्म-चारिणां स्त्रीपरीपहबाधा नास्ति । यथैव च नवग्रहैवकायहमिन्द्रदेवानां वेदोदये विद्यमानेपि मन्दमोहोदयेन स्त्रीविषयबाधा नास्ति, तथा भगवत्यसद्वेद्योदये विद्यमानेपि निरवशेषमोहभावात् क्षुधाबाधा नास्ति । यदि पुनरुच्यते भवद्भिः—मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवलपर्यन्तास्त्रयोदशगुण-स्थानवर्तिनो जीवा आहारका भवन्तीत्याहारकमार्गणायामागमे भणितमास्ते, ततः कारणात् केवलिनामाहारोस्तीति । तदप्युक्तम् । परिहारः—णोकम्म-कम्महारो कवल्लहारो य लेप्पमाहारो । ओजमणोवि य कमसो आहारो छच्चिहो णेयो ॥ १ ॥ इति गाथा-कथितक्रमेण यद्यपि पट्प्रकार आहारो भवति तथापि नोकर्माहारपेक्षया केवलिनामाहारकत्व-मवबोद्धव्यम् । न च कवल्लहारपेक्षया । तथाहि—सूक्ताः सुरसाः सुगन्धा अन्यमनुजानामसं-भविनः कवल्लहारं विनापि किञ्चिद्गुणपूर्वकोटिपर्यन्तं शरीरस्थितिहेतवः सप्तधातुरहितपरमौदारि-कशरीरान्नोक्तमार्गयोग्या लभान्तरायकर्मनिरवशेषक्षयात् प्रतिक्षणं पुद्गला आस्रयन्तीति नवके-

लिये [ तत् ज्ञेयम् ] तत् अर्थात् अतीन्द्रियरी ज्ञान और सुरा जानने चाहिये ।  
भावार्थ—जैसे आग लोहके गोलेकी संगति छूट जानेपर घनकी चोटको नहीं प्राप्त होती इसी प्रकार यह आत्माभी लोहके पिण्डगमान जो इन्द्रियज्ञान उसके अभावसे

नास्तीन्द्रियग्रामस्तत एव घोरघनघाताभिघातपरम्परास्थानीयं शरीरगतं सुखदुःखं न स्यात् ॥ २० ॥

अथ ज्ञानस्वरूपप्रपञ्चं सौख्यस्वरूपप्रपञ्चं च क्रमप्रवृत्तप्रचन्धद्वैधेनाभिदधाति, तत्र केवलिनोतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्वात्सर्वप्रत्यक्षं भवतीति विभावयति;—

वलिखण्डव्याख्यानकाले भणितं तिष्ठति । ततो ज्ञायते नोकर्माहारापेक्षया केवलिनामाहारकत्वम् । अथ मतम्—भवदीयकल्पनया आहारानाहारकत्वं नोकर्माहारापेक्षया, न च कवलाहारापेक्षया चेति कथं ज्ञायते । नैवम् । “एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः” इति तत्रार्थे कथितमास्ते । अस्य सूत्रस्यार्थः कथ्यते—भवान्तरगमनकाले विग्रहगतौ शरीराभावे सति नूतनशरीरधारणार्थं त्रयाणां शरीराणां पण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलपिण्डग्रहणं नोकर्माहार उच्यते । स च विग्रहगतौ कर्माहारे विद्यमानेष्वेकद्वित्रिसमयपर्यन्तं नास्ति । ततो नोकर्माहारापेक्षयाहाराणाहारकत्वमागमे ज्ञायते । यदि पुनः कवलाहारापेक्षया तर्हि भोजनकालं विहाय सर्वदैवानाहारक एव, समयत्रयनियमो न घटते । अथ मतम्—केवलिनां कवलाहारोऽस्ति मनुष्यत्वात् वर्तमानमनुष्यवत् । तदप्ययुक्तम् । तर्हि पूर्वकालपुरुषाणां सर्वज्ञत्वं नास्ति, रामरावणादिपुरुषाणां च विशेषसामर्थ्यं नास्ति वर्तमानमनुष्यवत् । न च तथा । किंच छद्मस्थतपोधना अपि सप्तधातुरहितपरमौदारिकशरीराभावे “छद्मोक्ति पढमसण्णा” इति वचनात् प्रमत्तसंयतपष्टगुणस्थानवर्तिनो यद्यप्याहारं गृह्णन्ति तथापि ज्ञानसंयमध्यानसिद्ध्यर्थं, न च देहममत्वार्थम् । उक्तं च—कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते । ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं सुखम् ॥ १ ॥ ण वला-उसाहणट्ठं ण सरीरस्स य चयट्ठ तेजट्ठं । णाणट्ठ संजमट्ठं ज्ञाणट्ठं चेव भुंजंति ॥ १ ॥ तस्य भगवतो ज्ञानसंयमध्यानादिगुणाः स्वभावेनैव तिष्ठन्ति न चाहारवलेन । यदि पुनर्देहममत्वेनाहारं गृह्णाति तर्हि छद्मस्यैभ्योऽप्यसौ हीनः प्राप्नोति । अथोच्यते—तस्यातिशयविशेषात्प्रकटा भुक्तिर्नास्ति प्रच्छन्ना विद्यते । तर्हि परमौदारिकशरीरत्वाद्भुक्तिरेव नास्त्ययमेवातिशयः किं न भवति । तत्र तु प्रच्छन्नभुक्तौ मायास्थाने दैन्यवृत्तिः, अन्येपि पिण्डशुद्धिकथिता दोषा वह्यो भवन्ति । ते चान्यत्र तर्कशास्त्रे ज्ञातव्याः । अत्र चाध्यात्मग्रन्थत्वान्नोच्यन्त इति । अयमत्र भावार्थः—इदं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यमत्राग्रहो न कर्तव्यः । कस्मात् । दुराग्रहे सति रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति ततश्च निर्विकारचिदानन्दैकस्वभावपरमात्मभावनाविवातो भवति ॥ २० ॥ एवमनन्तज्ञानसुखस्थापने प्रथमगाथा केवलिभुक्तिनिराकरणे द्वितीया चेति गाथाद्वयं गतम् ।

इति सप्तगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिनामा द्वितीयोन्तराधिकारः समाप्तः ॥२॥

( उपोद्घातः ) अथ ज्ञानप्रपञ्चाभिधानान्तराधिकारे त्रयस्त्रिंशद्गाथा भवन्ति । तत्राष्टौ स्थलानि ।

संसारसंबंधी सुखदुःखका अनुभव नहीं करता है । इस गाथामें केवलीके कवला-हारका निषेध किया है ॥ २० ॥

आगे केवलीको अतीन्द्रिय ज्ञानसेही सब वस्तुका प्रत्यक्ष होता है यह कहते हैं;—

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सच्चदच्चपज्जाया ।

सो णेव ते विजाणदि ओग्गहपुब्बाहिं किरियाहिं ॥ २१ ॥

परिणममानस्य खलु ज्ञानं प्रत्यक्षाः सर्वद्रव्यपर्यायाः ।

स नैव तान् विजानात्यवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः ॥ २१ ॥

यतो न खल्विन्द्रियाण्यालम्ब्यावग्रहेहावायपूर्वक्रमेण केवली विजानाति । स्वयमेवस-  
मस्तावरणक्षयक्षण एवानाद्यनन्ताहेतुकासाधारणभूतज्ञानस्वभावमेव कारणत्वेनोपादाय

तेष्व्यादौ केवलज्ञानस्य सर्वं प्रत्यक्षं भवतीति कथनमुख्यत्वेन 'परिणमदो खलु' इत्यादिगाथाद्वयम्, अथात्मज्ञानयोर्निधयेनासंख्यातप्रदेशत्वेपि व्यवहारेण सर्वगतत्वं भवतीत्यादिकथनमुख्यत्वेन "आदा णाणपमाणं" इत्यादिगाथापञ्चकम्, ततः परं ज्ञानज्ञेययोः परस्परगमननिराकरणमुख्यतया "णाणी णाणसहाओ" इत्यादिगाथापञ्चकम्, अथ निश्चयव्यवहारकेवलप्रतिपादनादिमुख्यत्वेन 'जो हि सुदेण' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं, अथ वर्तमानज्ञाने कालत्रयपर्यायपरिच्छित्तिकथनादिरूपेण "तक्कालिगेव सव्वे" इत्यादिसूत्रपञ्चकम्, अथ केवलज्ञानं बन्धकारणं न भवति रागादिविकल्प-रहितं छन्नस्थज्ञानमपि । किन्तु रागादयो बन्धकारणमित्यादिनिरूपणमुख्यतया "परिणमदि णेयं" इत्यादिसूत्रपञ्चकम्, अथ केवलज्ञानं सर्वज्ञानं सर्वज्ञत्वेन प्रतिपादयतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन "जं तक्कालियमिदरं" इत्यादिगाथापञ्चकम्, अथ ज्ञानप्रपञ्चोपसंहारमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, नम-स्कारकथनेन द्वितीया चेति "णवि परिणमदि" इत्यादि गाथाद्वयम् । एवं ज्ञानप्रपञ्चाभिधान-तृतीयान्तराधिकारे त्रयस्त्रिंशद्गाथाभिः स्वलाष्टकेन समुदायपातनिका । तद्यथा—अथातीन्द्रिय-ज्ञानपरिणतःवाकेवलिनः सर्वप्रत्यक्षं भवतीति प्रतिपादयति;—पच्चक्खा सच्चदच्चपज्जाया सर्वद्रव्यपर्यायाः प्रत्यक्षा भवन्ति । कस्य । केवलिनः । किं कुर्वतः । परिणमदो परिणममा-नस्य खलु सुट्टम् । किम् । णाणं अनन्तपदार्थपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानम् । तर्हि किं क्रमेण जानाति । सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुब्बाहिं किरियाहिं स च भगवानैव तान् जानात्यवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः, किन्तु युगपदित्यर्थः । इतो विस्तरः—अनाद्यनन्तमहेतुकं चिदानन्दैकस्वभाव निजशुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा केवलज्ञानोत्पत्तेर्बीजभूतेनागमभाषया शुक्लप्यान-

[ ज्ञानं परिणममानस्य ] केवल ज्ञानको परिणमता हुआ जो केवली भगवान है उसको [ खलु ] निश्चयसे [ सर्वद्रव्यपर्यायाः ] सब द्रव्य तथा उनकी तीनों-पालकी पर्यायें [ प्रत्यक्षाः ] प्रत्यक्ष अर्थान् प्रगट हैं । जैसे स्फटिकमणिके अंदर तथा याहिरमें प्रगट पदार्थ दीखते हैं । उसी तरह भगवानको सब प्रत्यक्ष हैं । [ सः ] यह केवली भगवान [ तान् ] उन द्रव्यपर्यायोंको [ अवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः ] अवग्रह आदि अर्थान् अवग्रह, ईश, अयाय, धारणारूप जो क्रिया हैं उनसे [ नैव विजानाति ] नहीं जानता है । सारांश यह है कि—जैसे फर्माके क्षयोपशमसे उत्पन्न

तदुपरि प्रविशत्केवलज्ञानोपयोगीभूय विपरिणमते । ततोस्याक्रमसमाक्रान्तसमस्तद्रव्य-  
क्षेत्रकालभावतया समस्तसंवेदनालम्बनभूताः सर्वद्रव्यपर्यायाः प्रत्यक्षा भवन्ति ॥ २१ ॥

अथास्य भगवतोतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्वादेव न किञ्चित्परोक्षं भवतीत्यभिप्रेति;—

णत्थि परोक्खं किञ्चिच्चि समन्तं सव्वक्खगुणसमिद्धस्स ।

अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स ॥ २२ ॥

नास्ति परोक्षं किञ्चिदपि समन्ततः सर्वाक्षगुणसमृद्धस्य ।

अक्षातीतस्य सदा स्वयमेव हि ज्ञानजातस्य ॥ २२ ॥

अस्य खलु भगवतः समस्तावरणक्षयक्षण एव सांसारिकपरिच्छित्तिनिष्पत्तिवलाधान-

संज्ञेन रागादिविकल्पजालरहितस्वसंवेदनज्ञानेन यदायमात्मा परिणमति, तदा स्वसंवेदनज्ञानफल-  
भूतकेवलज्ञानपरिच्छित्त्याकारपरिणतस्य तस्मिन्नेव क्षणे क्रमप्रवृत्तक्षायोपशमिकज्ञानाभावादक्रम-  
समाक्रान्तसमस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावतया सर्वद्रव्यगुणपर्याया अस्यात्मनः प्रत्यक्षा भवन्तीत्यभिप्रायः  
॥ २१ ॥ अथ सर्वं प्रत्यक्षं भवतीत्यन्वयरूपेण पूर्वसूत्रे भणितमिदानां तु परोक्षं किमपि ना-  
स्तीति तमेवार्थं व्यतिरेकेण दृढयति;—णत्थि परोक्खं किञ्चिच्चि अस्य भगवतः परोक्षं  
किमपि नास्ति । किञ्चिशिष्टस्य । समन्तं सव्वक्खगुणसमिद्धस्स समन्ततः सर्वात्मप्र-  
देशैः सामस्येन वा स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दपरिच्छित्तिरूपसर्वेन्द्रियगुणसमृद्धस्य । तर्हि किमक्षस-  
हितस्य । नैवम् । अक्खातीदस्स अक्षातीतस्येन्द्रियव्यापाररहितस्य, अथवा द्वितीयव्याख्या-  
नम्—अक्षोति ज्ञानेन व्याप्नोतीत्यक्ष आत्मा तद्गुणसमृद्धस्य । सया सर्वदा सर्वकालम् ।

हुए ज्ञानवाले, अवग्रह आदि जो मतिज्ञानकी भेदरूप क्रिया हैं उनसे जानते हैं वैसे  
केवली नहीं जानते । क्योंकि उन केवली भगवानके सब तरफसे कर्मोंके पड़दे दूर  
होजानेके कारण अखंड अनन्त शक्तिसे पूर्ण, आदि अन्त रहित, असाधारण, अपने आपही  
प्रगट हुआ केवल ज्ञान है इस कारण एकही समयमें सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव  
ज्ञानरूपीभूमिमें प्रत्यक्ष झलकते हैं ॥ २१ ॥

आगे इस भगवानके अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमन करनेसे कोईभी वस्तु परोक्ष नहीं है  
यह कहते हैं;—[ अस्य भगवतः ] इस केवली भगवानके [ किञ्चिदपि ] कुछभी  
पदार्थ [ परोक्षं नास्ति ] परोक्ष नहीं है । एकही समय सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भा-  
वको प्रत्यक्ष जानता है इस लिये परोक्ष नहीं । कैसे हैं वे भगवान । [ अक्षाती-  
तस्य ] इन्द्रियोंसे रहित ज्ञानवाले हैं अर्थात् इन्द्रिये संसारसंबंधी ज्ञानको कारण हैं ।  
और परोक्षरूप मर्यादालिये पदार्थोंको जानती हैं, इस प्रकारकी भाव इन्द्रिये भगवानके  
अव नहीं इसलिये सत् प्रत्यक्ष स्वरूप जानते हैं । फिर कैसे हैं । [ समन्ततः ]  
सब आत्माके प्रदेशों ( अंगों ) में [ सर्वाक्षगुणसमृद्धस्य ] सब इंद्रियोंके गुण जो



हेतुभूतानि प्रतिनियतविषयग्राहीष्यक्षीणि तैरतीतस्य, स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दपरिच्छेद-  
रूपैः समरसतया समन्ततः सर्वैरेवेन्द्रियगुणैः समृद्धस्य, स्वयमेव सामस्येन स्वपरप्रकाश-  
नस्य, स्वैरं लोकोत्तरज्ञानजातस्य, अक्रमसमाक्रान्तसमस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावतया न  
किञ्चनापि परोक्षमेव स्यात् ॥ २२ ॥

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वं ज्ञानस्य सर्वगतत्वं चोद्योतयति;—

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं ।

णेयं लोगालोगं तम्हा णाणं तु सव्वगयं ॥ २३ ॥

आत्मा ज्ञानप्रमाणं ज्ञानं ज्ञेयप्रमाणमुद्दिष्टम् ।

ज्ञेयं लोकालोकं तस्माज्ज्ञानं तु सर्वगतम् ॥ २३ ॥

आत्मा हि “समगुणपर्यायं द्रव्य”मिति वचनात् ज्ञानेन सह हीनाधिकत्वरहितत्वेन  
परिणतत्वात्परिमाणं, ज्ञानं तु ज्ञेयनिष्ठत्वाद्वादानिष्ठदहनवत्त्परिमाणं, ज्ञेयं तु लोकालो-

पुनरपि किंरूपस्य । स्वयमेव हि णाणजादस्स स्वयमेव हि स्फुटं केवलज्ञानरूपेण जातस्य  
परिणतस्येति । तथा—अतीन्द्रियस्वभावपरमात्मनो विपरीतानि क्रमप्रवृत्तिहेतुभूतानीन्द्रियाण्य-  
तिक्रान्तस्य जगन्नयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्प्रत्यक्षप्रतीतिसमर्थमविनश्वरमखण्डैकभासमयं  
केवलज्ञानं परिणतस्यास्य भगवतः परोक्षं किमपि नास्तीति भावार्थः ॥ २२ ॥ एवं केवलिनो  
समस्तं प्रत्यक्षं भवतीति कथनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथात्मा ज्ञानप्रमाणो भव-  
तीति ज्ञानं च व्यवहारेण सर्वगतमित्युपदिशति;—आदा णाणपमाणं ज्ञानेन सह हीनाधि-  
कत्वाभावादात्मा ज्ञानप्रमाणो भवति । तथाहि—“समगुणपर्यायं द्रव्यं भवती”ति वचनाद्वर्त-  
मानमनुष्यभवे वर्तमानमनुष्यपर्यायप्रमाणः, तदेव मनुष्यपर्यायप्रदेशवर्तमानज्ञानगुणप्रमाणश्च प्रत्य-

स्पर्शवगैरःका ज्ञान उस कर पूर्ण हैं अर्थात् जो एक एक इन्द्रिय एक एक गुणको ही  
जानती है जैसे आंख रूपको इसतरहके क्षयोपशमजन्यज्ञानके अभाव होनेपर प्रगट हुए  
केवलज्ञानसे वे केवली भगवान्, सब अंगों द्वारा सब स्पर्शादिविषयोंको जानते हैं ।  
फिर कैसे हैं । [ स्वयमेव ] अपने आपही [ हि ] निश्चय कर [ ज्ञानजातस्य ]  
केवल ज्ञानको प्राप्त हुए हैं । भावार्थ—अपने और पर वस्तुके प्रकाशनेवाला नाशरहित  
लौकिकज्ञानसे जुदा ऐसा अतीन्द्रियज्ञान ( केवलज्ञान ) जब प्रगट हुआ तब परो-  
क्षपना किसतरह हो सक्ता है ? ( नहीं होता ) ॥ २२ ॥

आगे आत्माको ज्ञानप्रमाण कहते हैं और ज्ञानको सर्वव्यापक दिखलाते हैं;—

[ आत्मा ] जीवद्रव्य [ ज्ञानप्रमाणं ] ज्ञानके बराबर है, क्योंकि द्रव्य अपने २  
गुणपर्यायोंके समान होता है, इसी न्यायसे जीवभी अपने ज्ञानगुणके बराबर हुआ ।  
आत्मा ज्ञानसे न तो अधिक न कम परिणमन करता है, जैसे सोना अपनी कड़े कुंठल

कविभागविभक्तानन्तपर्यायमालिकालीढस्वरूपसूचिता विच्छेदोत्पादध्रौव्या पद्द्रव्यी सर्व-  
मिति यावत् । ततो निःशेषावरणक्षयक्षण एव लोकालोकविभागविभक्तसमस्तवस्त्वाकार-  
पारमुपगम्य तथैवाप्रच्युतत्वेन व्यवस्थितत्वात् ज्ञानं सर्वगतम् ॥ २३ ॥

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वानभ्युपगमे द्वौ पक्षानुपन्यस्य दूपयतिः—

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा ।

हीणो वा अधिगो वा णाणादो हवदि धुवमेव ॥ २४ ॥

क्षेण दृश्यते यथायमात्मा, तथा निश्चयतः सर्वदेवाव्यावाधाक्षयसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतो योसौ  
केवलज्ञानगुणस्तत्प्रमाणोऽयमात्मा । णाणं णेयप्पमाणमुद्दिष्टं दाहानिष्ठदहनवत् ज्ञानं ज्ञेय-  
प्रमाणमुद्दिष्ट कथितम् । णेयं लोयालोकं ज्ञेयं लोकालोकं भवति । शुद्धबुद्धैकस्वभावसर्वप्रका-  
रोपादेयभूतपरमात्मद्रव्यादिपद्द्रव्यात्मको लोकः, लोकाद्बहिर्भागे शुद्धाकाशमलोकः, तच्च लोका-  
लोकद्वयं स्वकीयस्वकीयानन्तपर्यायपरिणतिरूपेणानित्यमपि द्रव्यार्थिकनयेन नित्यम् । तम्हा  
णाणं तु सच्चगयं यस्मान्निश्चयतत्रयात्मकशुद्धोपयोगभावनावलेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञानं तद्बुद्धो-  
त्कीर्णाकारन्यायेन निरन्तरं पूर्वोक्तज्ञेयं जानाति, तस्माद्भवहारेण तु ज्ञानं सर्वगतं भण्यते ।  
ततः स्थितमेतदात्मा ज्ञानप्रमाणं ज्ञानं सर्वगतमिति ॥ २३ ॥ अथात्मानं ज्ञानप्रमाणं ये न  
मन्यन्ते तत्र हीनाधिकत्वे दूपणं ददाति;—णाणपमाणं आदा ण हवदि जस्सेह ज्ञान-  
प्रमाणमात्मा न भवति यस्य वादिनो मतेऽत्र जगति तस्स सो आदा तस्य मते स आत्मा

आदिपर्यायोसे तथा पीलेवर्ण आदिक गुणोंसे कम अधिक नहीं परिणमता उसीप्रकार  
आत्माभी समझना । [ ज्ञानं ज्ञेयप्रमाणं ] और ज्ञान ज्ञेयके ( पदार्थोंके ) प्रमाण  
है ऐसा [ उद्दिष्टम् ] जिनेन्द्रदेवने कहा है, जैसे—ईंधनमें स्थित आग ईंधनके बरा-  
बर है, उसीतरह सब पदार्थोंको जानता हुआ ज्ञान ज्ञेयके प्रमाण है । [ ज्ञेयं लो-  
कालोकं ] ज्ञेय है वह लोक तथा अलोक है, जो भूत भविष्यत वर्तमानकालकी अनंत  
पर्यायोंसहित छह द्रव्य हैं उसको लोक और इस लोकसे बाहर अकेला आकाश  
उसको अलोक जानना, इन्हीं दोनोंको ज्ञेय कहते हैं । [ तस्मात् ] इसलिये [ ज्ञानं  
तु ] केवलज्ञान तो [ सर्वगतम् ] सब पदार्थोंमें प्रवेश करनेवाला सर्वव्यापक है  
अर्थात् सबको जानता है, इससे ज्ञान ज्ञेयके बराबर है ॥ २३ ॥

आगे जो मूढदृष्टि आत्माको ज्ञानके प्रमाण नहीं मानकर अधिक तथा हीन मानते  
हैं उनके पक्षको युक्तिसे दूषित करते हैं;—[ इह ] इस लोकमें [ यस्य ] जिस  
मूढबुद्धिके 'मतमें' [ आत्मा ] आत्मद्रव्य [ ज्ञानप्रमाणं ] ज्ञानके बराबर [ न  
भवति ] नहीं होताहै अर्थात् जो विपरीत बुद्धिवाले आत्माको ज्ञानके बराबर नहीं  
मानते [ तस्य ] उस कुमतीके मतमें [ स आत्मा ] वह जीवद्रव्य [ ज्ञानात् ]

हीणो यदि सो आदा तण्णाणमचेदणं ण जाणादि ।

अधिगो वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि ॥ २५ ॥ जुगलम् ।

ज्ञानप्रमाणमात्मा न भवति यस्मिन् तस्य स आत्मा ।

हीनो वा अधिको वा ज्ञानाद्भवति ध्रुवमेव ॥ २४ ॥

हीनो यदि स आत्मा तत् ज्ञानमचेतनं न जानाति ।

अधिको वा ज्ञानात् ज्ञानेन विना कथं जानाति ॥ २५ ॥ युगलम् ।

यदि खल्वयमात्मा हीनो ज्ञानादित्यभ्युपगम्यते, तदात्मनोतिरिच्यमानं ज्ञानं स्वाश्रय-  
भूतचेतनद्रव्यस्य समवायाभावादचेतनं भवद्रूपादिगुणकल्पतामापन्नं न जानाति । यदि  
पुनर्ज्ञानादधिक इति पक्षः कक्षीक्रियते तदावश्यं ज्ञानादतिरिक्तत्वात् पृथग्भूतो भवन्  
घटपटादिस्थानीयतामापन्नो ज्ञानमन्तरेण न जानाति ततो ज्ञानप्रमाण एवायमात्मान्यु-  
पगन्तव्यः ॥ २४ ॥ २५ ॥

हीणो वा अहियो वा णाणादो ह्वदि ध्रुवमेव हीनो वा अधिको वा ज्ञानात्सका-  
शाद् भवति निश्चितमेवेति ॥ २४ ॥ हीणो यदि सो आदा तं णाणमचेदणं ण जा-  
णादि हीनो यदि स आत्मा तदाग्नेरभावे सति उष्णगुणो यथा शीतलो भवति तथा स्वाश्र-  
यभूतचेतनात्मकद्रव्यसमवायाभावात्तस्यात्मनो ज्ञानमचेतनं भवत्सत् किमपि न जानाति ।  
अहियो वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि अधिको वा ज्ञानात्सकाशात्तर्हि यथो-  
ष्णगुणाभावेऽग्निः शीतलो भवन्सन् दहनक्रियां प्रत्यसमर्थो भवति तथा ज्ञानगुणाभावे स-  
त्यात्माप्यचेतनो भवन्सन् कथं जानाति न कथमपि । अयमत्र भावार्थः—ये केचनत्मान-

अपने ज्ञानगुणसे [ हीनो वा अधिको वा ] हीन ( कम ) अथवा अधिक ( बड़ा )  
[ ध्रुवमेव ] निश्चयसे [ भवति ] होता है अर्थात् उन्हें या तो आत्माको ज्ञानसे  
कम मानना पड़ेगा या अधिक मानना पड़ेगा । [ यदि ] जो [ स आत्मा ] वह  
जीवद्रव्य [ हीनः ] ज्ञानसे न्यून होगा [ तदा ] तो [ तद् ज्ञानम् ] वह ज्ञान  
[ अचेतनं ] अचेतन होनेसे [ न जानाति ] कुछभी नहीं जान सकेगा [ वा ]  
अथवा [ ज्ञानात् ] ज्ञानसे [ अधिकः ] अधिक होगा तो [ ज्ञानेन विना ] ज्ञान-  
के विना [ कथं जानाति ] कैसे जानेगा ? भावार्थ—जो आत्माको ज्ञानसे हीन  
माने तो ज्ञानगुण स्पर्श रस गंध वर्णकी तरह अचेतन हो जावेगा, और अचेतन (जड़)  
होनेसे कुछभी नहीं जानसकेगा, जैसे अग्निसे उष्णगुण अधिक माना जावे तो अधिक  
उष्णगुण अग्निके विना शीतल होनेसे जला नहीं सकता । और जो ज्ञानसे आत्मा  
अधिक होगा अर्थात् आत्माके ज्ञानहीन होगा तो घट वस्त्रादि पदार्थोंकी तरह आत्मा  
ज्ञान विना अचेतन होकर / न जान सकेगा, जैसे अग्नि उष्णगुणसे जितनी अधिक

अथात्मनोपि ज्ञानवत् सर्वगतत्वं न्यायायातमभिनन्दतिः—

सञ्चगदो जिणवसहो सञ्चेवि य तग्गया जगदि अट्ठा ।

णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा ॥ २६ ॥

सर्वगतो जिनवृषभः सर्वेपि च तद्गता जगत्पर्याः ।

ज्ञानमयत्वाच्च जिनो विषयत्वात्तस्य ते भणिताः ॥ २६ ॥

ज्ञानं हि त्रिसमयावच्छिन्नसर्वद्रव्यपर्यायरूपव्यवस्थितविश्वज्ञेयाकारानाक्रामत् सर्वगत-  
मुक्तं तथाभूतज्ञानमयीभूय व्यवस्थितत्वाद्भगवानपि सर्वगत एव । एवं सर्वगतज्ञानविषय-  
त्वात्सर्वेर्था अपि सर्वगतज्ञानान्व्यतिरिक्तस्य भगवतस्तस्य ते विषया इति भणितत्वात्तद्गता

मङ्गुष्ठपर्वमात्रं, श्यामाकतण्डुलमात्रं, षट्ककणिकादिमात्रं वा मन्यन्ते ते निपिद्धाः । येषि  
समुद्रातसप्तकं विहाय देहादधिकं मन्यन्ते तेषि निराकृता इति ॥ २५ ॥ अथ यथा ज्ञानं  
पूर्वं सर्वगतमुक्तं तथैव सर्वगतज्ञानापेक्षया भगवानपि सर्वगतो भवतीत्यावेदयति;—  
सञ्चगदो सर्वगतो भवति । स कः कर्ता । जिणवसहो जिनवृषभः सर्वज्ञः । कस्मात्  
सर्वगतो भवति । जिणो जिनः णाणमयादो य ज्ञानमयत्वाद्धेतोः सञ्चेवि य  
तग्गया जगदि अट्ठा सर्वेपि च ये जगत्पर्यास्ते दर्पणे त्रिम्बवद् व्यवहारेण तत्र भगवति गता  
भवन्ति । कस्मात् । ते भणिया तर्थास्तत्र गता भणिताः विसयादो विषयत्वात्परिच्छेद्यत्वाद्  
ज्ञेयत्वात् । कस्य । तस्स तस्य भगवतः इति । तथाहि—यदनन्तज्ञानमनाकुलत्वलक्षणान-  
न्तसुखं च तदाधारभूतस्तावदात्मा इत्यंभूतात्मप्रमाणं ज्ञानमात्मनः स्वस्वरूपं भवति । इत्थंभूतं  
स्वस्वरूपं देहगतमपरित्यजन्नेव लोकालोकं परिच्छिनत्ति । ततः कारणाद्द्वयवहारेण सर्वगतो

होगी उतनीही शीतल होनेके कारण ईंधनको नहीं जलासकती । इसकारण यह  
सिद्ध हुआ कि आत्मा ज्ञानकेही प्रमाण है कमती बढती नहीं है ॥ २४ । २५ ॥  
आगे जिसतरह ज्ञान सर्वगत है उसीतरह आत्माभी सर्वगत है ऐसा कहते हैं;—  
[ ज्ञानमयत्वात् ] ज्ञानमयी होनेसे [ जिनवृषभः ] जिन अर्थात् गणधरादिवेव  
उनमें वृषभ ( प्रधान ) [ जिनः ] सर्वज्ञ भगवान् [ सर्वगतः ] सब लोक अलोकमें  
प्राप्त हैं [ च ] और [ तस्य विषयत्वात् ] उन भगवानके जानने योग्य होनेसे  
[ जगति ] संसारमें [ सर्वेपि च ते अर्थाः ] वे सबही पदार्थ [ तद्गताः ] उन  
भगवानमें प्राप्त हैं ऐसा [ भणिताः ] सर्वज्ञने कहाहै ॥ भावार्थ—अतीत अनागत  
वर्तमान काल सहित सब पदार्थोंके आकारोंको ( पर्यायोंको ) जानता हुआ ज्ञान सर्व-  
गत कहा है और भगवान ज्ञानमयी हैं इसकारण भगवानभी सर्वगतही हैं । और जिस-  
तरह आरसीमें घटपटादि पदार्थ झलकते हैं वैसे ज्ञानसे अभिन्न भगवानमें भी सब  
पदार्थ प्राप्त हुए हैं, क्योंकि वे पदार्थ भगवानके जानने योग्य हैं । निश्चयकर ज्ञान

एव भवन्ति । तत्र निश्चयनयेनानाकुलत्वलक्षणसौख्यसंवेदनत्वाधिष्ठानत्वावच्छिन्नात्म-  
प्रमाणज्ञानस्वतत्त्वापरित्यागेन विश्वज्ञेयाकाराननुपगम्यावबुध्यमानोपि व्यवहारनयेन भग-  
वान् सर्वगत इति व्यपदिश्यते । तथा नैमित्तिकभूतज्ञेयाकारानात्मस्थानवलोक्य सर्वैर्धा-  
स्तद्वता इत्युपचर्यन्ते, न च तेषां परमार्थतोऽन्योन्यगमनमस्ति, सर्वद्रव्याणां स्वरूपनिष्ठ-  
त्वात् । अयं क्रमो ज्ञानेऽपि निश्चयः ॥ २६ ॥

अथात्मज्ञानयोरेकत्वान्यत्वं चिन्तयतिः—

णाणं अप्पत्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं ।

तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं च अण्णं वा ॥ २७ ॥

ज्ञानमात्मेति मतं वर्तते ज्ञानं विना नात्मानम् ।

तस्मात् ज्ञानमात्मा आत्मा ज्ञानं वा अन्यद्वा ॥ २७ ॥

यतः शेषसमस्ताचेतनवस्तुसमवायसंबन्धनिरुत्सुकतयाऽनाद्यनन्तस्वभावसिद्धसमवाय-

भण्यते भगवान् । येन च कारणेन नीलपीतादिवहिःपदार्था आदर्शं विन्ववत् परिच्छिन्ना-  
कारेण ज्ञाने प्रतिफलन्ति ततः कारणादुपचारेणार्थकार्यभूता अर्थाकारा अप्यर्था भण्यन्ते । ते  
च ज्ञाने तिष्ठन्तीत्युच्यमाने दोषो नास्तीत्यभिप्रायः ॥ २६ ॥ अथ ज्ञानमात्मा भवति, आत्मा  
तु ज्ञानं सुखादिकं वा भवतीति प्रतिपादयति;—णाणं अप्पत्ति मयं ज्ञानमात्मा भवतीति

आत्माप्रमाण है, क्योंकि निर्विकार निराकुल अनन्तसुखको आत्मामें आप वेदता है  
अर्थात् अनुभव करता है । ज्ञान आत्माका स्वभावरूप लक्षण है इसकारण वह अपने  
ज्ञानस्वरूप स्वभावको कभी नहीं छोड़ता । समस्त ज्ञेया ( पदार्थ ) कारणोंमें प्राप्त नहीं  
होता अपनेमेंही स्थिर रहता है । यह आत्मा सब पदार्थोंका जाननेवाला है इसलिये  
व्यवहार नयसे सर्वगत ( सर्वव्यापक ) कहा है निश्चयसे नहीं । इसीप्रकार निश्चयनयसे  
वे पदार्थभी इस आत्मामें प्राप्त नहीं होते क्योंकि कोई पदार्थ अपने स्वरूपको छोड़-  
कर दूसरेके आकार नहीं होता सब अपने २ स्वरूपमें रहते हैं । निमित्तभूत ज्ञेयके  
आकारोंको आत्मामें ज्ञेयज्ञायक संबन्धसे प्रतिबिंबित होनेसे व्यवहारसे कहते हैं कि सब  
पदार्थ आत्मामें प्राप्त होजाते हैं । जैसे आरसीमें घटादि पदार्थ प्रतिबिम्बनिमित्तसे प्रवेश करते  
हैं ऐसा व्यवहारमें कहा जाता है निश्चयसे वे अपने स्वरूपमेंही रहते हैं । इस कथनसे  
सारांश यह निकला कि निश्चयसे पदार्थ आत्मामें नहीं आत्मा पदार्थोंमें नहीं । व्यवहारसे  
ज्ञानरूप आत्मा पदार्थोंमें है पदार्थ आत्मामें हैं क्योंकि इन दोनोंका ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध  
दुर्निवार है ॥ २६ ॥ आगे ज्ञान और आत्मा एक है तथा आत्मा ज्ञानभी है और सुखादि-  
स्वरूपभी है ऐसा कहते हैं;—[ ज्ञानं ] ज्ञानगुण [ आत्मा ] जीवही है [ इति

संबन्धमेकमात्मानमाभिमुख्येनावलम्ब्य प्रवृत्तत्वात् तं विना आत्मानं ज्ञानं न धारयति । ततो ज्ञानमात्मैव स्यात् । आत्मात्वनन्तधर्माधिष्ठानत्वात् ज्ञानधर्मद्वारेण ज्ञानमन्यधर्मद्वारेणान्यदपि स्यात् । किं चानेकान्तोत्र बलवान् । एकान्तेन ज्ञानमात्मेति ज्ञानस्याभावोऽचेतनत्वमात्मनो विशेषगुणाभावादभावो वा स्यात् । सर्वथात्मा ज्ञानमिति निराश्रयत्वात् ज्ञानस्याभाव आत्मनः शेषपर्यायाभावस्तदविनाभाविनस्तस्याप्यभावः स्यात् ॥ २७ ॥

मतं सम्मतं । कस्मात् । वट्टइ णाणं विणा ण अप्पाणं ज्ञानं कर्तुं विनात्मानं जीवमन्यत्र घटपटादौ न वर्तते । तस्मात् णाणं अप्पा तस्मात् ज्ञायते कथंचिज्ज्ञानमात्मैव स्यात् । इति गाथापादत्रयेण ज्ञानस्य कथंचिदात्मत्व स्थापितम् । अप्पा णाणं च अण्णं वा आत्मा तु ज्ञानधर्मद्वारेण ज्ञानं भवति, सुखवीर्यादिधर्मद्वारेणान्यद्वा नियमो नास्तीति । तद्यथा—यदि पुनरेकान्तेन ज्ञानमात्मेति भण्यते तदा ज्ञानगुणमात्र एवात्मा प्राप्तः सुखादिधर्माणामवकाशो नास्ति । तथा सुखवीर्यादिधर्मसमूहाभावादात्माऽभावः, आत्मन आधारभूतस्वाभावादाधेयभूतस्य ज्ञानगुणस्याप्यभावः, इत्येकान्ते सति द्वयोरप्यभावः । तस्मात्कथंचिज्ज्ञानमात्मा न सर्वथेति । अयमत्राभिप्रायः—आत्मा व्यापको ज्ञानं व्याप्यं ततो ज्ञानमात्मा स्यात् । आत्मा तु ज्ञानमन्यद्वा भवतीति । तथाचोक्तं—“व्यापकं तदतन्निष्ठं व्याप्यं तन्निष्ठमेव च” ॥ २७ ॥

मतं ] ऐसा कहा है । [ आत्मानं विना ] आत्माके विना [ ज्ञानं ] चेतनागुण [ न वर्तते ] औरकिसी जगह नहीं रहता [ तस्मात् ] इसकारण [ ज्ञानं ] ज्ञानगुण [ आत्मा ] जीव है [ च ] और [ आत्मा ] जीवद्रव्य [ ज्ञानं ] चैतन्य गुणरूप है [ वा अन्यत् ] अथवा अन्यगुणरूपभी है ॥ भावार्थ—ज्ञान और आत्मामें भेद नहीं है दोनों एक हैं । क्योंकि अन्य सब अचेतन वस्तुओंके साथ संबंध न करके केवल आत्माकेही साथ ज्ञानका अनादिनिधन स्वाभाविक गटसंबंध है, इसकारण आत्माको छोड़ ज्ञान दूसरी जगह नहीं रहसकता । परंतु (लेकिन) आत्मा अनन्तधर्मवाला होनेसे ज्ञानगुणरूपभी है और अन्य सुखादि गुणरूपभी है अर्थात् जैसे ज्ञानगुण रहता है वैसे अन्यगुणभी रहते हैं । दूसरी बात यह है कि भगवन्तका अनेकान्तसिद्धान्त बलवान है । जो एकान्तसे ज्ञानको आत्मा कहेंगे तो ज्ञानगुण आत्मद्रव्य हो जावेगा और जब गुणही द्रव्य होजावेगा तो गुणके अभावसे आत्मद्रव्यके अभावका प्रसङ्ग आवैगा क्योंकि गुणवाला द्रव्यका लक्षण है वह नहीं रहा । और जो सर्वथा आत्माको ज्ञानही मानेंगे तो आत्मद्रव्य एक ज्ञानगुणमात्रही रहजावेगा सुखवीर्यादि गुणोंका अभाव होगा । गुणके अभावसे आत्मद्रव्यका अभाव सिद्ध होगा तब निराश्रय अर्थात् आधार न होनेसे ज्ञानकाभी अभाव होजाइगा । इसकारण सिद्धान्त यह निकला कि ज्ञानगुण तो आत्मा अवश्य है क्योंकि ज्ञान अन्यजगह नहीं रहता । परंतु, आत्मा ज्ञानगुणकी अपेक्षा ज्ञान है अन्यगुणोंकी अपेक्षा अन्य है ॥ २७ ॥

एव भवन्ति । तत्र निश्चयनयेनानाकुलत्वलक्षणसौख्यसंवेदनत्वाधिष्ठानत्वावच्छिन्नात्म-  
प्रमाणज्ञानस्वतत्त्वापरित्यागेन विश्वज्ञेयाकाराननुपगम्यावबुध्यमानोपि व्यवहारनयेन भग-  
वान् सर्वगत इति व्यपदिश्यते । तथा नैमित्तिकभूतज्ञेयाकारानात्मस्थानवलोक्य सर्वैर्था-  
स्तद्रता इत्युपचर्यन्ते, न च तेषां परमार्थतोन्नोन्नयगमनमस्ति, सर्वद्रव्याणां स्वरूपनिष्ठ-  
त्वात् । अयं क्रमो ज्ञानेपि निश्चयः ॥ २६ ॥

अथात्मज्ञानयोरेकत्वान्यत्वं चिन्तयतिः—

णाणं अप्पत्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं ।

तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं व अण्णं वा ॥ २७ ॥

ज्ञानमात्मेति मतं वर्तते ज्ञानं विना नात्मानम् ।

तस्मात् ज्ञानमात्मा आत्मा ज्ञानं वा अन्यद्वा ॥ २७ ॥

यतः शेषसमस्ताचेतनवस्तुसमवायसंबन्धनिरुत्सुकतयाऽनाद्यनन्तस्वभावसिद्धसमवायः

भण्यते भगवान् । येन च कारणेन नीलपीतादिवहिःपदार्था आदर्शे विम्बवत् परिच्छित्या-  
कारेण ज्ञाने प्रतिफलन्ति ततः कारणादुपचारेणार्थकार्यभूता अर्थाकारा अप्यर्था भण्यन्ते । ते  
च ज्ञाने तिष्ठन्तीत्युच्यमाने दोषो नास्तीत्यभिप्रायः ॥ २६ ॥ अथ ज्ञानमात्मा भवति, आत्मा  
तु ज्ञानं सुखादिकं वा भवतीति प्रतिपादयति;—णाणं अप्पत्ति मयं ज्ञानमात्मा भवतीति

आत्माप्रमाण है, क्योंकि निर्विकार निराकुल अनन्तसुखको आत्मामें आप वेदता है  
अर्थात् अनुभव करता है । ज्ञान आत्माका स्वभावरूप लक्षण है इसकारण वह अपने  
ज्ञानस्वरूप स्वभावको कभी नहीं छोड़ता । समस्त ज्ञेया ( पदार्थ ) कारणोंमें प्राप्त नहीं  
होता अपनेमेंही स्थिर रहता है । यह आत्मा सब पदार्थोंका जाननेवाला है इसलिये  
व्यवहार नयसे सर्वगत ( सर्वव्यापक ) कहा है निश्चयसे नहीं । इसीप्रकार निश्चयनयसे  
वे पदार्थभी इस आत्मामें प्राप्त नहीं होते क्योंकि कोई पदार्थ अपने स्वरूपको छोड़-  
कर दूसरेके आकार नहीं होता सब अपने २ स्वरूपमें रहते हैं । निमित्तभूत ज्ञेयके  
आकारोंको आत्मामें ज्ञेयज्ञायक संबंधसे प्रतिबिंबित होनेसे व्यवहारसे कहते हैं कि सब  
पदार्थ आत्मामें प्राप्त होजाते हैं । जैसे आरसीमें घटादि पदार्थ प्रतिबिम्बनिमित्तसे प्रवेश करते  
हैं ऐसा व्यवहारमें कहा जाता है निश्चयसे वे अपने स्वरूपमेंही रहते हैं । इस कथनसे  
सारांश यह निकला कि निश्चयसे पदार्थ आत्मामें नहीं आत्मा पदार्थोंमें नहीं । व्यवहारसे  
ज्ञानरूप आत्मा पदार्थोंमें है पदार्थ आत्मामें हैं क्योंकि इन दोनोंका ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध  
दुर्निवार है ॥ २६ ॥ आगे ज्ञान और आत्मा एक है तथा आत्मा ज्ञानभी है और सुखादि-  
स्वरूपभी है ऐसा कहते हैं;—[ ज्ञानं ] ज्ञानगुण [ आत्मा ] जीवही है [ इति

अथार्यैष्ववृत्तस्यापि ज्ञानिनस्तद्भृत्तिसाधकं शक्तिवैचित्र्यमुद्योतयतिः—

ण पविष्टो णाविष्टो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू ।

जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं ॥ २९ ॥

न प्रविष्टो नाविष्टो ज्ञानी ज्ञेयेषु रूपमिव चक्षुः ।

जानाति पश्यति नियतमक्षातीतो जगदशेषम् ॥ २९ ॥

यथाहि चक्षू रूपिद्रव्याणि स्वप्रदेशैरसंस्पृशदप्रविष्टं परिच्छेद्यमाकारमात्मसात्कुर्वन्न चाप्रविष्टं जानाति पश्यति च । एवमात्माप्यक्षातीतत्वात्प्राप्यकारिताविचारगोचरदूरता-  
मवाप्तो ज्ञेयतामापन्नानि समस्तवस्तूनि स्वप्रदेशैरसंस्पृशन्न प्रविष्टः शक्तिवैचित्र्यवशतो वस्तु-

अथ ज्ञानी ज्ञेयपदार्थेषु निश्चयनयेनाप्रविष्टोपि व्यवहारेण प्रविष्ट इव प्रतिभातीति शक्तिवैचित्र्यं दर्शयति;—ण पविष्टो निश्चयनयेन न प्रविष्टः, णाविष्टो व्यवहारेण च नाप्रविष्टः, किन्तु प्रविष्ट एव । स कः कर्ता । णाणी ज्ञानी । केषु मध्ये णेयेसु ज्ञेयपदार्थेषु । किमिव । रूव-  
मिव चक्खू रूपविषये चक्षुरिव । एवंभूतस्सन् किं करोति । जाणदि पस्सदि जानाति पश्यति च णियदं निश्चितं संशयरहितं । किं विशिष्टः सन् । अक्खातीदो अक्षातीतः । किं जानाति पश्यति । जगमसेसं जगदशेषमिति । तथाहि—यथा लोचनं कर्तृ रूपिद्रव्याणि यद्यपि निश्चयेन न स्पृशति तथापि व्यवहारेण स्पृशतीति प्रतिभाति लोके । तथायमात्मा मि-  
थ्यात्वरामाद्यास्त्रयाणामात्मनश्च संबन्धि यत्केवलज्ञानात्पूर्वं विशिष्टभेदज्ञानं तेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञान-  
दर्शनद्वयं तेन जगन्नयकालत्रयवर्तिपदार्थान्निश्चयेनास्पृशन्नपि व्यवहारेण स्पृशति, तथा स्पृशन्नपि ज्ञानेन जानाति दर्शनेन पश्यति च । कथंभूतस्सन् । अतीन्द्रियमुखास्वादपरिणतः सन्नक्षातीत

आगे निश्चयनयसे यद्यपि पदार्थोंमें आत्मा प्रवेश नहीं करता है तौभी व्यवहारसे प्रविष्ट (प्रवेश किया) सरीखा है, ऐसी शक्तिकी विचित्रता दिखलाते हैं;—[ अक्षातीतः ] इन्द्रियोंसे रहित अर्थात् अनंत अतीन्द्रियज्ञानसहित [ ज्ञानी ] आत्मा [ ज्ञेयेषु ] जानने योग्य अन्यपदार्थोंमें [ प्रविष्टः न ] पैठता नहीं है । और [ अविष्टः न ] नहीं पैठता ऐसाभी नहीं अर्थात् व्यवहार कर पैठासाभी है । वह [ रूपं ] रूपी पदार्थोंको [ चक्षुरिव ] नेत्रोंकी तरह [ अशेषं जगत् ] सब संसारको [ नियतं ] निश्चित अर्थात् ज्योंका त्यों [ जानाति ] जानता है और [ पश्यति ] देखता है । भावार्थ—अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञानसहित आत्मा निश्चयनयसे ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेश नहीं करता है परन्तु एकान्तसे सर्वथा ऐसाही नहीं है, व्यवहारनयसे वह ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेशभी करता है । और जैसे—नेत्र अपने प्रदेशोंसे रूपी-पदार्थोंका स्पर्श नहीं करता तथा रूपीपदार्थोंकाभी उस (नेत्र) में प्रवेश नहीं होता केवल उन्हें जानता तथा देखता है । परन्तु व्यवहारसे 'उन पदार्थोंमें दृष्टि है' ऐसा कहते



अथ ज्ञानज्ञेयोः परस्परगमनं प्रतिहन्तिः—

णाणी णाणसहावो अत्था णेयापगा हि णाणिस्स ।

रूवाणि व चक्खूणं णेवण्णोण्णेषु वट्टंति ॥ २८ ॥

ज्ञानी ज्ञानस्वभावोऽर्था ज्ञेयात्मका हि ज्ञानिनः ।

रूपाणीव चक्षुषोः नैवान्योन्येषु वर्तन्ते ॥ २८ ॥

ज्ञानी चार्थाश्च स्वलक्षणभूतपृथक्त्वतो न मिथो वृत्तिमासादयन्ति किन्तु तेषां ज्ञान-  
ज्ञेयस्वभावसंबन्धसाधितमन्योन्यवृत्तिमात्रमस्ति । यथा हि चक्षुषि तद्विषयभूतरूपि-  
द्रव्याणि च परस्परप्रवेशमन्तरेणापि ज्ञेयाकारग्रहणसमर्पणप्रवणान्येवमात्माऽर्थाश्चान्योन्य-  
वृत्तिमन्तरेणापि विश्वज्ञेयाकारग्रहणसमर्पणप्रवणाः ॥ २८ ॥

इत्यात्मज्ञानयोरेकत्वं, ज्ञानस्य व्यवहारेण सर्वगतत्वमित्यादिकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं  
गतम् । अथ ज्ञानं ज्ञेयसमीपे न गच्छतीति निश्चिनोति;—णाणी णाणसहावो ज्ञानी सर्वज्ञः  
केवलज्ञानस्वभाव एव । अट्ठा णेयप्पगा हि णाणिस्स जगन्नयकालत्रयवर्तिपदार्था ज्ञेयात्मका  
एव भवन्ति न च ज्ञानात्मकाः । कस्य ? ज्ञानिनः । रूवाणिव चक्खूणं णेवण्णोण्णेषु  
वट्टंति ज्ञानी पदार्थाश्चान्योन्यं परस्परमेकत्वेन वर्तन्ते । कानीव केषां संबन्धित्वेन ? रूपाणीव  
चक्षुषामिति । तथाहि—यथा रूपिद्रव्याणि चक्षुषा सह परस्परं संबन्धाभावेपि स्वाकारसमर्पणे  
समर्थानि । चक्षुषि च तथाकारग्रहणे समर्थानि भवन्ति, तथा त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थाः  
कालत्रयपर्यायपरिणता ज्ञानेन सह परस्परप्रदेशसंसर्गाभावेऽपि स्वकीयाकारसमर्पणे समर्था भ-  
वन्ति । अखण्डैकप्रतिभासमयं केवलज्ञानं तु तदाकारग्रहणे समर्थमिति भावार्थः ॥ २८ ॥

आगे निश्चयसे ज्ञान न तो ज्ञेयमें जाता है और न ज्ञेय ज्ञानमें आता है ऐसा कहते हैं;—

[ हि ] निश्चयकर [ ज्ञानी ] आत्मा [ ज्ञानस्वभावः ] ज्ञानस्वभाववाला है । तथा  
[ अर्थाः ] पदार्थ [ ज्ञेयात्मकाः ] ज्ञेयस्वरूप हैं । क्योंकि [ ज्ञानिनः ] ज्ञानीके  
[ ते अर्थाः ] वे पदार्थ [ चक्षुषां ] नेत्रोंके [ रूपाणि इव ] रूपीपदार्थोंके समान  
[ अन्योन्येषु ] आपसमें अर्थात् सब मिलके एक अवस्थामें [ नैव ] नहीं [ वर्तन्ते ]  
प्रवर्तते हैं । भावार्थ—यद्यपि आत्मा और पदार्थोंका स्वभावसेही ज्ञेयज्ञायक संबन्ध  
आपसमें है तो भी ज्ञानी आत्मा ज्ञानस्वरूप है ज्ञेयस्वरूप नहीं है और पदार्थ ज्ञेय (जा-  
नने योग्य) स्वरूप हैं ज्ञानस्वरूप नहीं अर्थात् अपने स्वरूपको छोड़कर एकरूप नहीं  
होते । जैसे कि नेत्र रूपीपदार्थोंमें प्रवेश किये बिनाही उन पदार्थोंके स्वरूप ग्रहण कर-  
नेको समर्थ हैं । और वे रूपीपदार्थभी नेत्रोंमें प्रवेश किये बिनाही अपना स्वरूप नेत्रोंके  
जनानेको समर्थ हैं । इसीप्रकार आत्माभी न तो उन पदार्थोंमें जाता है और न वे  
(पदार्थ) आत्मामें आते हैं अर्थात् ज्ञेयज्ञायक संबन्धसे सकल पदार्थोंमें प्रवेश किये  
बिनाही आत्मा सबको जानता है । और वे पदार्थभी आत्मामें प्रवेश नहीं करके  
अपने स्वरूपको जानते हैं । इसीकारण आत्माको व्यवहारसे सर्वगत कहते हैं ॥ २८ ॥

अथार्येण्वृत्तस्यापि ज्ञानिनस्तद्वृत्तिसाधकं शक्तिवैचिन्त्यमुद्योतयतिः—

ण पविष्टो णाविष्टो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू ।

जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं ॥ २९ ॥

न प्रविष्टो नाविष्टो ज्ञानी ज्ञेयेषु रूपमिव चक्षुः ।

जानाति पश्यति नियतमक्षातीतो जगदशेषम् ॥ २९ ॥

यथाहि चक्षू रूपिद्रव्याणि स्वप्रदेशैरसंस्पृशदप्रविष्टं परिच्छेद्यमाकारमात्मसात्कुर्वन्न चाप्रविष्टं जानाति पश्यति च । एवमात्माप्यक्षातीतत्वात्प्राप्यकारिताविचारगोचरदूरता-मवाप्तौ ज्ञेयतामापन्नानि समस्तवस्तूनि स्वप्रदेशैरसंस्पृशन्न प्रविष्टः शक्तिवैचिन्त्यवशतो वस्तु-

अथ ज्ञानी ज्ञेयपदार्थेषु निश्चयनयेनाप्रविष्टोपि व्यवहारेण प्रविष्ट इव प्रतिभातीति शक्तिवैचिन्त्यं दर्शयति;—ण पविष्टो निश्चयनयेन न प्रविष्टः, णाविष्टो व्यवहारेण च नाप्रविष्टः, किन्तु प्रविष्ट एव । स कः कर्ता । णाणी ज्ञानी । केपु मध्ये णेयेसु ज्ञेयपदार्थेषु । किमिव । रूव-मिव चक्खू रूपविषये चक्षुरिव । एवंभूतस्तन् किं करोति । जाणदि पस्सदि जानाति पश्यति च णियदं निश्चितं संशयरहितं । किं विशिष्टः सन् । अक्खातीदो अक्षातीतः । किं जानाति पश्यति । जगमसेसं जगदशेषमिति । तथाहि—यथा लोचनं कर्तुं रूपिद्रव्याणि यद्यपि निश्चयेन न स्पृशति तथापि व्यवहारेण स्पृशतीति प्रतिभाति लोके । तथायमात्मा मि-थ्यात्वरागाद्यास्त्रवाणामात्मनश्च संवन्धि यत्केवलज्ञानात्पूर्वं विशिष्टभेदज्ञानं तेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञान-दर्शनद्वयं तेन जगद्वयकालत्रयवर्तिपदार्थान्निश्चयेनास्पृशन्नपि व्यवहारेण स्पृशति, तथा स्पृशन्नपि ज्ञानेन जानाति दर्शनेन पश्यति च । कथंभूतस्तन् । अतीन्द्रियसुखास्वादपरिणतः सन्नक्षातीत

आगे निश्चयनयसे यद्यपि पदार्थोंमें आत्मा प्रवेश नहीं करता है तौमी व्यवहारसे प्रविष्ट (प्रवेश किया) सरीखा है, ऐसी शक्तिकी विचित्रता दिखलाते हैं;—[ अक्षातीतः ] इन्द्रियोंसे रहित अर्थात् अनंत अतीन्द्रियज्ञानसहित [ ज्ञानी ] आत्मा [ ज्ञेयेषु ] जानने योग्य अन्यपदार्थोंमें [ प्रविष्टः न ] पैठता नहीं है । और [ अविष्टः न ] नहीं पैठता ऐसाभी नहीं अर्थात् व्यवहार कर पैठासाभी है । वह [ रूपं ] रूपी पदार्थोंको [ चक्षुरिव ] नेत्रोंकी तरह [ अशेषं जगत् ] सब संसारको [ नियतं ] निश्चित अर्थात् ज्योंका त्यों [ जानाति ] जानता है और [ प-श्यति ] देखता है । भावार्थ—अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञानसहित आत्मा निश्चयनयसे ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेश नहीं करता है परन्तु एकान्तसे सर्वथा ऐसाही नहीं है, व्यव-हारतयसे वह ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेशभी करता है । और जैसे—नेत्र अपने प्रदेशोंसे रूपी-पदार्थोंका स्पर्श नहीं करता तथा रूपीपदार्थोंकाभी उस ( नेत्र ) में प्रवेश नहीं होता केवल उन्हें जानता तथा देखता है । परंतु व्यवहारसे 'उन पदार्थोंमें दृष्टि है' ऐसा कहते

वर्तिनः समस्तज्ञेयाकारानुन्मूल्य इव कवलयन्न चाप्रविष्टो जानाति पश्यति च । एवमस्य  
विचित्रशक्तियोगिनो ज्ञानिनोऽर्थेष्वप्रवेश इव प्रवेशोपि सिद्धिमवतरति ॥ २९ ॥

अथैवं ज्ञानमर्थेषु वर्तत इति संभावयति:—

रदणमिह इंद्रणीलं दुद्धज्झसियं जहा सभासाए ।

अभिभूय तंपि दुद्धं वट्टदि तह णाणमत्थेसु ॥ ३० ॥

रत्नमिहेन्द्रनीलं दुग्धाध्युपितं यथा स्वभासा ।

अभिभूय तदपि दुग्धं वर्तते तथा ज्ञानमर्थेषु ॥ ३० ॥

यथा किलेन्द्रनीलरत्नं दुग्धमधिवसत्त्वप्रभाभारेण तदभिभूय वर्तमानं द्रष्टुं, तथा संवे-  
दनमप्यात्मनोऽभिन्नत्वात् कर्त्रशेनात्मतामापन्नं करणांशेन ज्ञानतामापन्नेन कारणभूताना-  
मर्थानां कार्यभूतान् समस्तज्ञेयाकारानभिव्याप्य वर्तमानं कार्यकारणत्वेनोपचर्य ज्ञानम-  
र्थानभिभूय वर्तत इत्युच्यमानं न विप्रतिपिध्यते ॥ ३० ॥

इति । ततो ज्ञायते निश्चयेनाप्रवेश इव व्यवहारेण ज्ञेयपदार्थेषु प्रवेशोऽपि घटत इति ॥ २९ ॥  
अथ तमेवार्थं दृष्टान्तद्वारेण दृढयति:—**रयणमिह रत्नमिह जगति । किं नाम । इंद्रणीलं**  
**इन्द्रनीलसंज्ञं । किं विशिष्टं । दुद्धज्झसियं दुग्धे निक्षिप्तं जहा यथा सभासाए स्वकीयप्र-**  
**भया अभिभूय तिरस्कृत्य । किं । तंपि दुद्धं तत्पूर्वोक्तं दुग्धमपि वट्टइ वर्तते । इति दृष्टा-**  
**न्तो गतः । तह णाणमत्थेसु तथा ज्ञानमर्थेषु वर्तत इति । तद्यथा-यथेन्द्रनीलरत्नं कर्तृस्वकीय-**  
**नीलप्रभया कारणभूतया दुग्धं नीलं कृत्वा वर्तते, तथा निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमसामायिकसंयमेन**  
**यदुत्पन्नं केवलज्ञानं तत् स्वपरपरिच्छित्तिसामर्थ्येन समस्ताज्ञानान्धकारं तिरस्कृत्य युगपदेव सर्व-**  
**पदार्थेषु परिच्छित्त्वाकारेण वर्तते । अयमत्र भावार्थः—कारणभूतानां सर्वपदार्थानां कार्यभूताः**  
**परिच्छित्त्वाकारा उपचारेणार्था भण्यन्ते, तेषु च ज्ञानं वर्तत इति भण्यमानेपि व्यवहारेण दोषो**

है । इसीप्रकार आत्माभी ज्ञेयपदार्थोंमें निश्चयनयसे यद्यपि प्रवेश नहीं करता है तौभी  
ज्ञायकशक्ति उसमें कोई ऐसी विचित्र है । इसकारण व्यवहारनयसे उसका ज्ञेयपदार्थोंमें  
प्रवेशभी कहाजाता है ॥ २९ ॥ आगे व्यवहारसे आत्मा ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेश करता है  
यह बात दृष्टान्तसे फिर पुष्ट करते हैं:—[ इह ] इस लोकमें [ यथा ] जैसे [ दु-  
ग्धाध्युपितं ] दूधमें डुयाया हुआ [ इंद्रनीलं रत्नं ] प्रधान नीलमणि [ स्वभासा ]  
जपनी दीप्तिसे [ तत् दुग्धं ] उस दूधको [ अपि ] भी [ अभिभूय ] दूर करके  
अर्थान् अपनासा नीलवर्ण करके [ वर्तते ] वर्तता है । [ तथा ] उसीप्रकार [ अर्थेषु ]  
ज्ञेयपदार्थोंमें [ ज्ञानं ] केवलज्ञान प्रवर्तता है । भावार्थ—यदि दूधसे भरे हुए किसी  
एकवर्तनमें प्रधान नीलारत्न टालदें तो उस वर्तनका सय दूध नीलवर्ण दिखलाई देगा ।  
क्योंकि उस नीलमणिमें ऐसी एक शक्ति है कि जिसकी प्रभामे यह सारे दृष्टको

अथैवमर्था ज्ञाने वर्तन्त इति संभावयतिः—

जदि ते ण संति अत्था णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं ।

सव्वगयं वा णाणं कहं ण णाणट्टिया अत्था ॥ ३१ ॥

यदि ते न सन्त्यर्था ज्ञाने ज्ञानं न भवति सर्वगतम् ।

सर्वगतं वा ज्ञानं कथं न ज्ञानस्थिता अर्थाः ॥ ३१ ॥

यदि खलु निखिलात्मीयज्ञेयाकारसमर्पणद्वारेणावतीर्णाः सर्वेऽर्था न प्रतिभान्ति ज्ञाने तदा तत्र सर्वगतमभ्युपगम्यते । अभ्युपगम्येत वा सर्वगतं । तर्हि साक्षात् संवेदनमुकुरु-  
न्दभूमिकावतीर्णप्रतिबिम्बस्थानीयस्वीयस्वीयसंवेद्याकारकारणानि, परम्परया प्रतिबिम्बस्था-  
नीयसंवेद्याकारकारणानीति कथं ज्ञानस्थायिनोर्था निश्चीयन्ते ॥ ३१ ॥

नास्तीति ॥ ३० ॥ अथ पूर्वसूत्रेण भणितं ज्ञानमर्थेषु वर्तते व्यवहारेणात्र पुनरर्था ज्ञाने वर्तन्त इत्युपदिशन्ति;—जइ यदि चेत् ते अट्ठा ण संति ते पदार्थाः स्वकीयपरिच्छित्याकार-  
समर्पणद्वारेणादर्शं विम्बवन्न सन्ति यदि चेत् । क । णाणे केवलज्ञाने णाणं ण होइ सव्व-  
गयं तदा ज्ञानं सर्वगतं न भवति । सव्वगयं वा णाणं व्यवहारेण सर्वगतं ज्ञानं सम्मतं  
चेद्भवतां कहं ण णाणट्टिया अट्ठा तर्हि व्यवहारनयेन स्वकीयज्ञेयाकारपरिच्छित्तिसमर्पण-  
द्वारेण ज्ञानस्थिता अर्था कथं न भवन्ति किन्तु भवन्त्येव । अत्रायमभिप्रायः—यत एव व्यवहा-  
रेण ज्ञेयपरिच्छित्याकारप्रहणद्वारेण ज्ञानं सर्वगतं भण्यते, तस्मादेव ज्ञेयपरिच्छित्याकारसमर्पण-

कर देता है । इस क्रियामें यद्यपि निश्चयसे नीलमणि आपमेंही है परन्तु प्रकाशकी  
विचित्रताके कारण व्यवहारनयसे उसको सब दूधमें व्याप्त कहते हैं । ठीक ऐसीही  
ज्ञान और ज्ञेयों ( पदार्थों ) की दशा ( हालत ) है अर्थात् निश्चयनयसे ज्ञान आत्मामेंही  
है परन्तु व्यवहारनयसे ज्ञेयमेंभी कहते हैं । जैसे दर्पणमें घटपटादि पदार्थ प्रतिबि-  
म्बित होते हैं और दर्पण अपनी स्वच्छतारूप शक्तिसे उन पदार्थोंके आकार होजाता है,  
उसीप्रकार ज्ञानमें पदार्थ झलकते हैं और अपनी स्वच्छतारूप ज्ञायकशक्तिसे वह ज्ञेयाकार  
होजाता है अतएव व्यवहारसे ज्ञान पदार्थोंमें है ऐसा कहते हैं ॥ ३० ॥ आगे जैसे  
ज्ञेयमें ज्ञान है वैसेही व्यवहारसे ज्ञानमें ज्ञेय ( पदार्थ ) है ऐसा कहते हैं;—[ यदि ]  
जो [ ते अर्थाः ] वे ज्ञेयपदार्थ [ ज्ञाने ] केवल ज्ञानमें [ न सन्ति ] नहीं हों  
[ तदा ] तो [ सर्वगतं ज्ञानं ] सब पदार्थोंमें प्राप्त होनेवाला ज्ञान अर्थात् केवल-  
ज्ञानही [ न भवति ] नहीं होवे । और [ वा ] जो [ सर्वगतं ज्ञानं ] केवलज्ञान  
है ऐसा मानो तो [ अर्थाः ] पदार्थ [ ज्ञानस्थिताः ] ज्ञानमें स्थित हैं ( मौजूद हैं )  
ऐसा [ कथं न ] क्यों न होवे ? अवश्यही होवे । भावार्थ—यदि ज्ञानमें सब ज्ञेयोंके  
आकार 'दर्पणमें प्रतिबिम्बकी तरह' नहीं प्रतिभासें तो ज्ञान सर्वगतही नहीं ठहरै

अथैव ज्ञानिनोर्थैः सहान्योन्यवृत्तिमत्त्वेऽपि परग्रहणमोक्षणपरिणमनाभावेन सर्वं पश्य-  
तोऽध्यवस्यतश्चात्यन्तविविक्तत्वं भावयतिः—

गेण्हदि णेव ण मुंचदि ण परं परिणमदि केवली भगवं ।

पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं ॥ ३२ ॥

गृह्णाति नैव न मुञ्चति न परं परिणमति केवली भगवान् ।

पश्यति समन्ततः स जानाति सर्वं निरवशेषम् ॥ ३२ ॥

अयं स्वल्वात्मा स्वभावत एव परद्रव्यग्रहणमोक्षणपरिणमनाभावात्स्वतत्त्वभूतकेवल-  
ज्ञानस्वरूपेण विपरिणम्य निष्कम्पोन्मज्जज्ज्योतिर्जात्यमणिकल्पो भूत्वाऽवतिष्ठमानः स-

द्वारेण पदार्था अपि व्यवहारेण ज्ञानगता भण्यन्त इति ॥ ३१ ॥ अथ ज्ञानिनः पदार्थैः  
सह यद्यपि व्यवहारेण ग्राह्यग्राहकसम्बन्धोऽस्ति तथापि संश्लेषादिसम्बन्धो नास्ति, तेन कारणेन  
ज्ञेयपदार्थैः सह भिन्नत्वमेवेति प्रतिपादयति;—गेण्हदि णेव ण मुंचदि गृह्णाति नैव मुञ्चति  
नैव ण परं परिणमदि परं परद्रव्यं ज्ञेयपदार्थं नैव परिणमति । स कः कर्ता । केवली  
भगवं केवली भगवान् सर्वज्ञः । ततो ज्ञायते परद्रव्येण सह भिन्नत्वमेव । तर्हि किं परद्रव्यं  
न जानाति । पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं तथापि व्यवहारनयेन  
पश्यति समन्ततः सर्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्जानाति च सर्वं निरवशेषम् । अथवा द्वितीयव्याख्या-  
नम्—अभ्यन्तरे कामक्रोधादि बहिर्विषये पञ्चेन्द्रियविषयादिकं बहिर्द्रव्यं न गृह्णाति, स्वकीया-

क्योंकि जब आरसीमें स्वच्छपना है तब घटपटादि पदार्थ प्रतिविम्बित होते हैं उसी स-  
मय आरसी भी सबके आकार होजाती है । इसीप्रकार ज्ञान ज्ञेयको तब जानता है जब  
अपनी ज्ञायकशक्तिसे सब पदार्थोंके आकार होजाता है । और जब सब पदार्थोंके आकार  
हुआ तो सब पदार्थ उस ज्ञानमें स्थित क्यों न कहे जावेंगे ? व्यवहारसे अवश्यही कहे  
जावेंगे । इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान और पदार्थ दोनोंही एक दूसरेमें मौजूद  
हैं ॥ ३१ ॥

आगे आत्मा और पदार्थोंका उपचारसे यद्यपि आपसमें ज्ञेयज्ञायक संबंध है तौभी  
निश्चयनयसे परपदार्थके ग्रहण तथा त्यागरूप परिणामके अभावसे सब पदार्थोंको  
देखने जाननेपरभी अत्यंत श्रुधकपना है ऐसा दिखता है;—[ केवली भगवान् ]  
केवलज्ञानी सर्वज्ञ देव [ परं ] ज्ञेयभूत परपदार्थोंको [ नैव ] निश्चयसे न तो  
[ गृह्णाति ] ग्रहण करते हैं [ न मुञ्चति ] न छोड़ते हैं और [ न परिणमति ]  
न परिणामन करते हैं । [ सः ] वे केवली भगवान् [ सर्वं ] सब [ निरवशेषं ]  
कुछभी पायी नहीं ऐसे ज्ञेय पदार्थोंको [ समन्ततः ] सर्वांग ही [ पश्यति ]  
देखते हैं और [ जानाति ] जानते हैं । भावार्थ—जय यह आत्मा केवल ज्ञा-

मन्ततः स्फुरितदर्शनज्ञानशक्तिः, समस्तमेव निःशेषतयात्मानमात्मनात्मनि संचैतयते । अथवा युगपदेव सर्वार्थसार्थसाक्षात्करणेन ज्ञप्तिपरिवर्तनाभावात् संभावितग्रहणमोक्षणलक्षणक्रियाविरामः प्रथममेव समस्तपरिच्छेद्याकारपरिणतत्वात् पुनः परमाकारान्तरमपरिणममानः समन्ततोपि विश्वमशेषं पश्यति जानाति च विविक्तत्वमेव ॥ ३२ ॥

अथ केवलज्ञानिश्रुतज्ञानिनोरविशेषदर्शनेन विशेषाकाङ्क्षाक्षोभं क्षपयति;—

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण ।

तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा ॥ ३३ ॥

यो हि श्रुतेन विजानात्यात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन ।

तं श्रुतकेवलिनमृपयो भणन्ति लोकप्रदीपकराः ॥ ३३ ॥

यथा भगवान् युगपत्परिणतसमस्तचैतन्यविशेषशालिना केवलज्ञानेनानादिनिधननि-

नन्तज्ञानादिचतुष्टयं च न मुञ्चति यतस्ततः कारणादयं जीवः केवलज्ञानोत्पत्तिक्षण एव युगपत्सर्वं जानन्सन् परं विकल्पान्तरं न परिणमति । तथाभूतः सन् किं करोति । स्वतत्त्वभूतकेवलज्ञानज्योतिषा जात्यमणिकल्पो निःकम्पचैतन्यप्रकाशो भूत्वा स्वात्मानं स्वात्मना स्वात्मनि जानान्यनुभवति । तेनापि कारणेन परद्रव्यैः सह भिन्नत्वमेवेत्यभिप्रायः ॥ ३२ ॥ एवं ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न परिणमतीत्यादिव्याख्यानरूपेण तृतीयस्थले गाथापञ्चकं गतम् । अथ यथा निरावरणसकलव्यक्तिलक्षणेन केवलज्ञानेनात्मपरिज्ञानं भवति तथा सावरणैकदेशव्यक्तिलक्षणेन केवलज्ञानोत्पत्तिबीजभूतेन स्वसंवेदनज्ञानरूपभावश्रुतेनाप्यात्मपरिज्ञानं भवतीति निश्चिनोति । अथवा द्वितीयपातनिका—यथा केवलज्ञानं प्रमाणं भवति तथा केवलज्ञानप्रणीतपदार्थप्रकाशकं श्रुतज्ञानमपि परोक्षप्रमाणं भवतीति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—जो

नस्वरूप परिणमन करता है तब इसके निष्कंप ज्ञानरूपी ज्योति प्रगट होती है, जो कि उज्वल रत्नके अडोल प्रकाशके समान स्थिर रहती है । वह केवलज्ञानी पर ज्ञेयपदार्थोंको न ग्रहण करता है न छोड़ता है और न उनके रूप परिणमन करता है । अपने स्वरूपविये आप अपनेको ही वेदता है ( अनुभव करता है ) परद्रव्योंसे स्वभावसे ही उदासीन है । जैसे दर्पणकी इच्छाके बिनाही दर्पणमें घटपट वगैरः पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं उसीप्रकार जाननेकी इच्छाबिना ही केवलज्ञानीके ज्ञानमें त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं । इस कारण व्यवहारसे ज्ञाता द्रष्टा है । इससे यह सिद्ध हुआ कि यह ज्ञाता आत्मा परद्रव्योंसे अत्यन्त ( विलकुल ) जुदाही है व्यवहारसे ज्ञेय ज्ञायक संबंध है ॥ ३२ ॥ आगे केवल ज्ञानसे ही आत्मा जाना जाता है अन्यज्ञानसे क्या नहीं जाना जाता ? इसके उत्तरमें केवलज्ञानी और श्रुतकेवली इन दोनोंको बराबर दिखाते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ हि ] निश्चयसे [ श्रु-

ष्कारणासाधारणस्वसंचेत्यमानचैतन्यसामान्यमहिम्नश्चेतकस्वभावेनैकत्वात् केवलस्यात्मन  
आत्मनात्मनि संचेतनात् केवली, तथायं जनोपि क्रमपरिणममाणकतिपयचैतन्यविशेषशालिना  
श्रुतज्ञानेनानादिनिधननिष्कारणासाधारणस्वसंचेत्यमानचैतन्यसामान्यमहिम्नश्चेतक-  
स्वभावेनैकत्वात् केवलस्यात्मन आत्मनात्मनि संचेतनात् श्रुतकेवली । अलं विशेषाकांक्षा-  
क्षोभेण, स्वरूपनिश्चलैरेवावस्थीयते ॥ ३३ ॥

यः कर्ता हि स्फुटं सुदेण निर्विकारस्वसंवित्तिरूपभावश्रुतपरिणामेन विजाणदि विजानाति  
विशेषेण जानाति विषयसुखानन्दविलक्षणनिजशुद्धात्मभावनोत्थपरमानन्दैकलक्षणसुखरसास्वाद-  
नानुभवति । कम् । अप्पाणं निजात्मद्रव्यं । कथम्मूतं । जाणमं ज्ञायकं केवलज्ञानस्वरूपं ।  
केन कृत्वा । सहावेण समस्तविभावरहितस्वस्वभावेन तं सुयकेवलं तं महायोगीन्द्रं श्रुतके-  
वलिनं भणन्ति कथयन्ति । के कर्तारः । इसिणो ऋषयः । किं विशिष्टाः । लोयप्पदीव-  
यरा लोकप्रदीपकरा लोकप्रकाशका इति । अतो विस्तरः—युगपत्परिणतसमस्तचैतन्यशालिना  
केवलज्ञानेन अनाद्यनन्तनिष्कारणान्यद्रव्यासाधारणस्वसंचेत्यमानपरमचैतन्यसामान्यलक्षणस्य पर-  
द्रव्यरहितत्वेन केवलस्यात्मन आत्मनि स्वानुभवनाद्यथा भगवान् केवली भवति, तथायं गण-  
धरदेवादिनिश्चयरत्नत्रयाराधकजनोपि पूर्वोक्तलक्षणस्यात्मनो भावश्रुतज्ञानेन स्वसंचेत्यमाननिश्चयश्रुत-  
केवली भवतीति । किञ्च—यथा कोपि देवदत्त आदित्योदयेन दिवसे पश्यति, रात्रौ किमपि  
प्रदीपेनेति । तथादित्योदयस्थानीयेन केवलज्ञानेन दिवसस्थानीयमोक्षपर्याये भगवानात्मानं प-  
श्यति । संसारी विवेकिजनः पुनर्निशास्थानीयसंसारपर्याये प्रदीपस्थानीयेन रागादिविकल्परहि-  
तपरमसमाधिना निजात्मानं पश्यतीति । अयमत्राभिप्रायः—आत्मा परोक्षः, कथं ध्यानं क्रियते

तेन ] भावश्रुतज्ञानसे [ स्वभावेन ज्ञायकं ] अपने ही सहज स्वभावसे सबको  
जानलेवाले [ आत्मानं ] आत्माको अर्थात् अपने निजस्वरूपको [ विजानाति ]  
विशेषतासे जानता है [ तं ] उस भावश्रुतज्ञानीको [ लोकप्रदीपकराः ] समस्त-  
लोकके उद्योत करनेवाले [ ऋषयः ] श्रीवीतरागदेव [ श्रुतकेवलिनं ] श्रुतकेवली  
[ भणन्ति ] कहते हैं । भावार्थ—जिसप्रकार केवलज्ञानी एकही कालमें अनन्त  
चैतन्यशक्तियुक्त केवलज्ञानसे अनादि अनंत, कारणरहित, असाधारण, स्वसंचेत्यमान  
ज्ञानकी महिमाकर सहित, केवल आत्माको अपनेमें आप वेदता है; उसीप्रकार यह  
सम्यग्दृष्टिभी कितनीएक क्रमवर्ती चैतन्यशक्तियोंसहित श्रुतज्ञानसे केवल आत्माको आपमें  
आपसे वेदता है, इसकारण इसे श्रुतकेवली कहते हैं । वस्तुके स्वरूप जाननेकी अपेक्षा केव-  
लज्ञानी और श्रुतकेवली दोनों समान हैं । भेद केवल इतना ही है कि: केवलज्ञानी संपूर्ण अनंत  
ज्ञानशक्तियोंसे वेदता है, श्रुतकेवली कितनीएक शक्तियोंसे वेदता है । ऐसा जानकर जो सम्य-  
ग्दृष्टि है वे अपने स्वरूपको स्वसंचेत्यमान ज्ञानसे वेदते हैं, तथा आपमें निश्चल होकर स्थिर होते हैं ।  
और जैसे कोई पुरुष दिनमें सूर्यके प्रकाशसे देखता है वसी प्रकार केवलज्ञानी अपने केव-

अथ ज्ञानस्य श्रुतोपाधिभेदमुदस्यति;—

सुत्तं जिणोवदिट्ठं पोग्गलद्व्वप्पगेहिं वयणेहिं ।

तेज्जाणणा हि णाणं सुत्तस्स य जाणणा भणिया ॥ ३४ ॥

सूत्रं जिनोपदिष्टं पुद्गलद्रव्यात्मकैर्वचनैः ।

तद्ज्ञप्तिर्हि ज्ञानं सूत्रस्य च ज्ञप्तिर्भणिता ॥ ३४ ॥

श्रुतं हि तावत्सूत्रं । तच्च भगवदर्हत्सर्वज्ञोपज्ञं स्यात्कारकेतनं पौद्गलिकं शब्दब्रह्म । तज्ज्ञप्तिर्हि ज्ञानं । श्रुतं तु तत्कारणत्वात् ज्ञानत्वेनोपचर्यत एव । एवं सति सूत्रस्य ज्ञप्तिः श्रुतज्ञानमित्यायाति । अथ सूत्रमुपाधित्वाच्चाद्रियते ज्ञप्तिरेवावशिष्यते । सा च केवलिनः श्रुतकेवलिनश्चात्मसंचेतने तुल्यैवेति नास्ति ज्ञानस्य श्रुतोपाधिभेदः ॥ ३४ ॥

इति सन्देहं कृत्वा परमात्मभावना न स्याज्येति ॥ ३३ ॥ अथ शब्दरूपं द्रव्यश्रुतं व्यवहारेण ज्ञानं निश्चयेनार्थपरिच्छित्तिरूपं भावश्रुतमेव ज्ञानमिति कथयति । अथवात्मभावनारतो निश्चयश्रुतकेवली भवतीति पूर्वसूत्रे भणितम्, अयं तु व्यवहारश्रुतकेवलीति कथ्यते;—सुत्तं द्रव्यश्रुतं । कथम्भूतं । जिणोवदिट्ठं जिनोपदिष्टं । कैः कृत्वा । पोग्गलद्रव्यप्पगेहिं वयणेहिं पुद्गलद्रव्यात्मकैर्द्व्यध्वनिवचनैः तं जाणणा हि णाणं तेन पूर्वोक्त शब्दश्रुताधारेण ज्ञप्तिरर्थपरिच्छित्तिज्ञानं भण्यते हि स्फुटं सुत्तस्स य जाणणा भाणिया पूर्वोक्तद्रव्यश्रुतस्यापि व्यवहारेण ज्ञानव्यपदेशो भवति न तु निश्चयेनेति । तथाहि—यथा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवः पश्चाद्ब्रह्मवहारेण नरनारकादिरूपोपि जीवो भण्यते । तथा निश्चयेनाखण्डैकप्रतिभासरूपं समस्तवस्तुप्रकाशकं ज्ञानं भण्यते, पश्चाद्ब्रह्मवहारेण भेषपटलावृतादित्यस्यावस्थाविशेषवत्कर्मपट-

लज्ञानसे आपको देखते हैं । तथा जैसे कोई पुरुष रात्रिको दीपकके प्रकाशसे देखता है उसीप्रकार संसारपर्यायरूपरात्रिमें ये सम्यग्दृष्टि विवेकी भावश्रुतज्ञानरूप दीपकसे अपनेको देखते हैं । इसतरह केवली और श्रुतकेवली समान हैं ॥ ३३ ॥ आगे ज्ञानके श्रुतरूप उपाधिभेदको दूर करते हैं;—[ पुद्गलद्रव्यात्मकैः ] पुद्गलद्रव्यस्वरूप [ वचनैः ] वचनोंसे [ जिनोपदिष्टं ] जो जिनभगवानकर उपदेश किया हुआ है [ सूत्रं ] वह द्रव्यश्रुत है [ हि ] निश्चयकर [ तद्ज्ञप्तिः ] उस द्रव्यश्रुतका जानना वह [ ज्ञानं ] भावश्रुत ज्ञान है । [ च सूत्रस्य ] और द्रव्यश्रुतकोभी [ ज्ञप्तिः ] ज्ञान [ भणिता ] 'व्यवहारसे' कहा है । भावार्थ—द्रव्यश्रुत पुद्गलमय है क्योंकि वह वीतराग भगवानका अनेकान्तरूप वचन है । इस द्रव्यश्रुतको जो ज्ञान जानता है उसे निश्चयसे ज्ञान कहते हैं । परन्तु जो द्रव्यश्रुतको ही ज्ञान कहते हैं सो व्यवहारनयसे ज्ञानके उत्पन्न करनेमें कारणभूत होनेसे अन्नमें प्राणकी तरह कारणमें कार्यका व्यवहारकर कहते हैं, यथार्थमें द्रव्यश्रुतकी ज्ञानसंज्ञा नहीं है क्योंकि वचन जड़ पुद्गलमयी है तथा वह ज्ञानको उपाधिरूप है । और ज्ञान जानने मात्र है उसके कोई उपा-



अथात्मज्ञानयोः कर्तृकरणताकृतं भेदमपचुदति;—

जो जाणदि सो णाणं ण ह्वदि णाणेण जाणगो आदा ।

णाणं परिणमदि सयं अट्टा णाणट्टिया सञ्चे ॥ ३५ ॥

यो जानाति स ज्ञानं न भवति ज्ञानेन ज्ञायक आत्मा ।

ज्ञानं परिणमते स्वयमर्थो ज्ञानस्थिताः सर्वे ॥ ३५ ॥

अपृथग्भूतकर्तृकरणत्वशक्तिपारमैश्वर्ययोगित्वादात्मनो य एव स्वयमेव जानाति स एव ज्ञानमन्तर्लीनसाधकतमोष्णत्वशक्तेः स्वतन्त्रस्य जातवेदसो दहनक्रियाप्रसिद्धेरुष्णव्यपदेश-

लावृताखण्डैकज्ञानरूपजीवस्य मतिज्ञानश्रुतज्ञानादिव्यपदेशो भवतीति भावार्थः ॥ ३४ ॥ अथ भिन्नज्ञानेनात्मा ज्ञानी न भवतीत्युपदिशति;—जो जाणदि सो णाणं यः कर्ता जानाति स ज्ञानं भवतीति । तथाहि—यथा संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि सति पश्चादभेदनयेन दहनक्रियासमर्थोष्णगुणेन परिणतोऽग्निरप्युष्णो भण्यते, तथार्थक्रियापरिच्छित्तिसमर्थेन ज्ञानगुणेन परिणत आत्मापि ज्ञानं भण्यते । तथा चोक्तम्—‘जानातीति ज्ञानमात्मा’ ण ह्वदि णाणेण जाणगो आदा सर्वथैव भिन्नज्ञानेनात्मा ज्ञायको न भवतीति । अथ मतम्—यथा भिन्नदात्रेण

धिका कामही नहीं है । लेकिन ‘श्रुतज्ञान’ ऐसा कहनेका कारण यह है कि कर्मके संयोगसे द्रव्यश्रुतका निमित्त पाकर ज्ञान उत्पन्न होता है । यदि वस्तुके स्वभावका विचार किया जाय तो ज्ञान ज्ञानसे ही उत्पन्न होता है इसीलिये ज्ञानके कोई श्रुत वगैरः उपाधि नहीं है ॥ ३४ ॥ आगे कितनेही एकान्तवादी ज्ञानसे आत्माको भिन्न मानते हैं सो उनके पक्षको दूर करनेकेलिये आत्मा कर्ता है, ज्ञान कारण है ऐसा भिन्नपना दूर करके आत्मा और ज्ञानमें अभेद सिद्ध करते हैं;—[ यः ] जो आत्मा [ जानाति ] जानता है [ सः ] वह [ ज्ञानं ] ज्ञान है । [ ज्ञानेन ] ज्ञानगुणसे [ ज्ञायकः ] जाननेवाला [ आत्मा ] आत्मा अर्थात् चेतनद्रव्य [ न भवति ] नहीं होता । [ ज्ञानं ] ज्ञान [ स्वयं ] आपही [ परिणमते ] परिणमन करता है [ सर्वे अर्थाः ] और सब श्रेय पदार्थ [ ज्ञानस्थिताः ] ज्ञानमें स्थित हैं । भावार्थ—यद्यपि व्यवहारमें संज्ञा, संख्या, लक्षण प्रयोजनादि भेदोंसे ज्ञान और आत्माको वस्तुके समझनेके लिये भिन्न कहते हैं परन्तु निश्चयमें ज्ञान और आत्मामें भिन्नपना नहीं है, प्रदेशोंसे ज्ञान और आत्मा एक है । इसीकारण ज्ञानभावरूप परिणमता आत्मा ही ज्ञान है । जैसे अग्नि ज्वलनक्रिया करनेका कर्ता है और उष्णगुण ज्वलन क्रियाका कारण है । अग्नि और उष्णपना व्यवहारसे भिन्न हैं परन्तु यथार्थमें भिन्न नहीं है, जो अग्नि है वही उष्णपना है और इसलिये अग्निको उष्णमी कहते हैं । इसीप्रकार यह आत्मा जाननेरूप क्रियाका कर्ता है और ज्ञान जानन-क्रियाका साधन

वत् । न तु यथा पृथग्वर्तिना दात्रेण लावको भवति देवदत्तस्तथा ज्ञायको भवत्यात्मा । तथा सत्युभयोरचेतनत्वमचेतनयोः संयोगेपि न परिच्छित्तिनिष्पत्तिः । पृथक्त्ववर्तिनोरपि परिच्छेदाभ्युपगमे परपरिच्छेदेन परस्य परिच्छित्तिर्भूतिप्रभृतीनां च परिच्छित्तिप्रभृतिरनङ्कुशा स्यात् । किञ्च—स्वतोव्यतिरिक्तसमस्तपरिच्छेदाकारपरिणतं ज्ञानं, स्वयं परिणममानस्य कार्यभूतसमस्तज्ञेयाकारकारणीभूताः सर्वेर्था ज्ञानवर्तिन एव कथंचिद्भवन्ति, किं ज्ञातृज्ञानविभागक्लेशकल्पनया ॥ ३५ ॥

अथ किं ज्ञानं किं ज्ञेयमिति व्यनक्ति;—

तम्हा णाणं जीवो णेयं दब्बं तिधा समक्खादं ।

दब्बन्ति पुणो आदा परं च परिणामसंबद्धं ॥ ३६ ॥

लावको भवति देवदत्तस्तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञायको भवतु को दोष इति । नैवम् । छेदनक्रियाविषये दात्रं बहिरङ्गोपकरणं तद्भिन्नं भवतु, अभ्यन्तरोपकरणं तु देवदत्तस्य छेदनक्रियाविषये शक्ति-विशेषस्तच्चाभिन्नमेव भवति । उपाध्यायप्रकाशादिवहिरङ्गोपकरणं तद्भिन्नमपि भवतु दोषो नास्ति । यदि च भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवति तर्हि परकीयज्ञानेन सर्वेपि कुम्भस्तम्भादिजडपदार्था ज्ञानिनो भवन्तु न च तथा । **णाणं परिणमदि सयं** यत एव भिन्नज्ञानेन ज्ञानी न भवति तत एव घटोत्पत्तौ मृत्पिण्ड इव स्वयमेवोपादानरूपेणात्मा ज्ञानं परिणमति । अट्टा णाणट्टिया सब्बे व्यवहारेण ज्ञेयपदार्था आदर्शे विम्बमिव परिच्छित्त्याकारेण ज्ञाने तिष्ठन्तीत्यभिप्रायः ॥ ३५ ॥ अथात्मा ज्ञानं भवति शेषं तु ज्ञेयमित्यावेदयति;—**तम्हा णाणं जीवो** । यस्मादात्मैवोपादान-

है इसमें व्यवहारसे भिन्नपना ( भेद ) है वस्तुतः आत्मा और ज्ञान एक ही है । और जैसे कोई पुरुष लोहेके दांते ( हँसिये ) से घासका काटनेवाला कहलाता है उस तरह आत्मा ज्ञानसे जाननेवाला नहीं कहा जाता, क्योंकि घासका काटनेवाला पुरुष और घास काटनेमें कारण लोहेका दांता ये दोनों जैसे जुदे २ पदार्थ हैं उसप्रकार आत्मा और ज्ञानमें जुदापना नहीं है, क्योंकि आत्मा और ज्ञान, अग्नि और उष्णताकी तरह अभिन्नही देखनेमें आते हैं जुदे नहीं दीखते । और जो कोई अन्यवादी मिथ्यादृष्टि कहते हैं कि, आत्मासे ज्ञान भिन्न है ज्ञानके संयोगसे आत्मा ज्ञायक है । सो उन्हें “आत्मा अचेतन है ज्ञानके संयोगसे चेतन हो जाता है” ऐसा मानना पड़ेगा । जिससे धूलि, भस्म, घट, पटादि समस्त अचेतनपदार्थ चेतन होजावेंगे, क्योंकि जब ये पदार्थ जाने जाते हैं तब इन धूलि वगैरः पदार्थोंसे भी ज्ञानका संयोग होता है । इसकारण इस दोषके मॅटनेके लिये आत्मा और ज्ञान एक ही मानना चाहिये । और जैसे आरसीमें घटपटादि पदार्थ प्रतिविम्बरूपसे रहते हैं उसीप्रकार ज्ञानमें सब ज्ञेयपदार्थ आरहते हैं । इससे यह सारांश निकला कि आत्मा और ज्ञान अभिन्न हैं अन्यवादियोंकी तरह भिन्न नहीं हैं ॥ ३५ ॥ आगे “ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या

तस्मात् ज्ञानं जीवो ज्ञेयं द्रव्यं त्रिधा समाख्यातम् ।

द्रव्यमिति पुनरात्मा परश्च परिणामसंबद्धः ॥ ३६ ॥

यतः परिच्छेदरूपेण स्वयं विपरिणम्य स्वतश्च एव परिच्छिनत्ति ततो जीव एव ज्ञान-  
मन्यद्रव्याणां तथा परिणन्तुं परिच्छेत्तुं चाशक्तेः । ज्ञेयं तु वृत्तवर्तमानवर्तिष्यमाणविचि-  
त्रपर्यायपरम्पराप्रकारेण त्रिधाकालकोटिस्पर्शित्वादनाद्यनन्तं द्रव्यं, तत्तु ज्ञेयतामापद्यमानं  
द्वेधात्मपरविकल्पात् । इष्यते हि स्वपरपरिच्छेदकत्वावबोधस्य बोध्यस्यैवविधं द्वैविध्यम् ।  
ननु स्वात्मनि क्रियाविरोधात् कथं नामात्मपरिच्छेदकत्वं । का हि नाम क्रिया कीदृशश्च  
विरोधः । क्रियाद्यत्र विरोधिनी समुत्पत्तिरूपा वा ज्ञप्तिरूपा वा । उत्पत्तिरूपा हि  
तावन्नैकं स्वस्मात्प्रजायत इत्यागमाद्विरुद्धैव । ज्ञप्तिरूपायास्तु प्रकाशनक्रियैव प्रत्यव-

रूपेण ज्ञानं परिणमति तथैव पदार्थान् परिच्छिनत्ति, इति भणितं पूर्वसूत्रे । तस्मादात्मैव ज्ञानं  
ण्येयं द्रव्यं तस्य ज्ञानरूपस्यात्मनो ज्ञेयं भवति । किं । द्रव्यम् । तिहा समक्खादं तच्च  
द्रव्यं कालत्रयपर्यायपरिणतिरूपेण द्रव्यगुणपर्यायरूपेण वा तथैवोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण च  
त्रिधा समाख्यातम् । द्रव्यमिति पुनो आदा परं च तच्च ज्ञेयभूतं द्रव्यमात्मा भवति ।  
परं च । कस्मात् । यतो ज्ञानं स्वं जानाति परं चेति प्रदीपवत् । तच्च स्वपरद्रव्यं कथं-

है' इन दोनोंका भेद कहते हैं;—[ तस्मात् ] इसीकारणसे [ जीवः ] आत्मा  
[ ज्ञानं ] ज्ञानस्वरूप है । और [ त्रिधा समाख्यातं ] अतीत अनागत वर्तमान  
पर्यायके भेदसे अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्य भेदसे अथवा द्रव्य, गुण, पर्यायसे तीन प्रकार  
कहलानेवाला [ द्रव्यं ] द्रव्य है [ ज्ञेयं ] वह ज्ञेय है । [ पुनः ] फिर [ आत्मा ]  
जीव पदार्थ [ च ] और [ परं ] अन्य अचेतन पांच पदार्थ [ परिणामसंबद्धम् ]  
परिणमनसे बंधे हैं इसलिये [ द्रव्यमिति ] द्रव्य ऐसे पदको धारण करते हैं । भावार्थ—  
पहले गाथामें कहा है कि यह आत्मा ज्ञानभावसे आपही परिणमन करके परकी सहा-  
यता विना स्वाधीन जानता है, इसलिये आत्मा ही ज्ञान है । अन्य ( दूसरा ) द्रव्य  
ज्ञानभावपरिणमनके जाननेमें असमर्थ है । इसलिये अतीतादि भेदसे, उत्पादादिकसे,  
द्रव्यगुणपर्यायके भेदसे तीन प्रकार हुआ द्रव्य ज्ञेय है अर्थात् आत्माके जानने योग्य है ।  
और आत्मा दीपककी तरह आप तथा पर दोनोंका प्रकाशक ( ज्ञायक ) होनेसे ज्ञेयभी  
है ज्ञानभी है अर्थात् दोनों स्वरूप है । इससे यह सारांश निकला कि ज्ञेय पदार्थ स्व-  
ज्ञेय और परज्ञेय ( दूसरेसे जानने योग्य ) के भेदसे दो प्रकार हैं, उनमें पांच द्रव्य  
ज्ञेयही हैं इस कारण परज्ञेय हैं और आत्मद्रव्य ज्ञेय—ज्ञान दोनोंरूप है, इसकारण स्वज्ञेय  
है । यहांपर कोई प्रश्न करे कि आत्मा अपनेको जानता है यह बात असंभव है । जैसे  
कि, नटकलामें अतंतं चतुर भी नट आप अपने ही कंधेपर नहीं पदसंज्ञा उसीप्रकार  
अन्य पदार्थके जाननेमें दक्ष आत्मा आपको नहीं जानसका, तो इसका समाधान यह है

स्थितत्वान्न तत्र विप्रतिषेधस्यावतारः । यथा हि प्रकाशकस्य प्रदीपस्य परं प्रकाश्यतामापन्नं प्रकाशयतः स्वस्मिन् प्रकाशेन प्रकाशान्तरं मृग्यं, स्वयमेव प्रकाशनक्रियायाः समुपलम्भात् । तथा परिच्छेदकस्यात्मनः परं परिच्छेद्यतामापन्नं परिच्छिन्दतः स्वस्मिन् परिच्छेदेन परिच्छेदकान्तरं मृग्यं, स्वयमेव परिच्छेदनक्रियायाः समुपलम्भात् । ननु कुत आत्मनो द्रव्यज्ञानरूपत्वं द्रव्याणां च आत्मज्ञेयरूपत्वं च । परिणामसंबन्धत्वात्, यतः खलु आत्मद्रव्याणि च परिणामैः सह संबध्यन्ते । तत आत्मनो द्रव्यालम्बनज्ञानेन द्रव्याणां तु ज्ञानमालम्ब्य ज्ञेयाकारेण परिणतिरवाधिता प्रथयति ॥ ३६ ॥

अथातिवाहितानागतानामपि द्रव्यपर्यायाणां तादात्विकवत् पृथक्त्वेन ज्ञाने वृत्तिमुद्योतयति;—

तक्कालिगेव सञ्चे सदसञ्भूदा हि पञ्जया तासिं ।

वट्टंते ते णाणे विसेसदो दब्बजादीणं ॥ ३७ ॥

भूतं । परिणामसंबद्धं कथंचित्परिणामीत्यर्थः । नैयायिकमतानुसारी कश्चिदाह—ज्ञानज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात् घटादिवत् । परिहारमाह—प्रदीपेन व्यभिचारः, प्रदीपस्तावत्प्रमेयः परिच्छेद्यो ज्ञेयो भवति न च प्रदीपान्तरेण प्रकाश्यते, तथा ज्ञानमपि स्वयमेवात्मानं प्रकाशयति न च ज्ञानान्तरेण प्रकाश्यते । यदि पुनर्ज्ञानान्तरेण प्रकाश्यते तर्हि गगनावलम्बिनी महती दुर्निवारानवस्था प्राप्नोतीति सूत्रार्थः ॥ ३६ ॥ एवं निश्चयश्रुतकेवलिव्यवहारश्रुतकेवलिकथनमुल्यत्वेन भिन्नज्ञाननिराकरणेन ज्ञानज्ञेयस्वरूपकथनेन च चतुर्थस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथातीतानागतपर्याया वर्तमानज्ञाने सांप्रता इव दृश्यन्त इति निरूपयति;—सञ्चे सदसः ञ्भूदा हि पञ्जया सर्वे सद्भूता असद्भूता अपि पर्यायाः ये हि स्फुटं वट्टंते ते पूर्वोक्तापर्याया वर्तन्ते प्रतिभासन्ते प्रतिस्फुरन्ति । क । णाणे केवलज्ञाने । कथंभूता इव । तक्कालिगेव तात्कालिका इव वर्तमाना इव । कासां सम्बन्धिनः । तासिं दब्बजादीणं तासां

कि पहले कहे हुए दीपकके दृष्टांतसे आत्मामेंभी स्वपर प्रकाशक शक्ति है, इसकारण आत्मा अपनेको तथा परको जाननेवाला अवश्य होसक्ता है । इससे असंभव दोष कभी भी नहीं लगसक्ता । अब यहांपर फिर कोई प्रश्न करै कि आत्माको द्रव्योंका ज्ञान किससे है ? और द्रव्योंको किसरीतिसे प्राप्त होता है ? तो उससे कहना चाहिये कि ज्ञान, ज्ञेयरूप पदार्थ, परिणामोंसे बँध रहे हैं । आत्माके ज्ञानपरिणति ज्ञेय पदार्थकी सहायतासे है । यदि ज्ञेय न होवे तो किसको जाने ? और ज्ञेय पदार्थ ज्ञानका अवलम्बन करके ज्ञेय अवस्थाको धारण करते हैं । जो ज्ञान न होवै तो इन्हें कोन जाने ? इसलिये पदार्थोंका ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध हमेशासे है मिट नहीं सकता ॥ ३६ ॥ आगे कहते हैं, कि अतीतकालमें हुए द्रव्योंके पर्याय और अनागत ( भविष्यत् ) कालमें होनेवाले पर्याय, ज्ञानमें वर्तमान सरीखे प्रतिभासन्ते ( मालूम पड़ते ) हैं;—[ तासां द्रव्यजातीनां ] उन प्रसिद्ध

तस्मात् ज्ञानं जीवो ज्ञेयं द्रव्यं त्रिधा समाख्यातम् ।

द्रव्यमिति पुनरात्मा परश्च परिणामसंबद्धः ॥ ३६ ॥

यतः परिच्छेदरूपेण स्वयं विपरिणम्य स्वतश्च एव परिच्छिनन्ति ततो जीव एव ज्ञान-  
मन्यद्रव्याणां तथा परिणन्तुं परिच्छेत्तुं चाशक्तेः । ज्ञेयं तु वृत्तवर्तमानवर्तिप्यमाणविचि-  
त्रपर्यायपरम्पराप्रकारेण त्रिधाकालकोटिस्पर्शित्वादानाद्यनन्तं द्रव्यं, तत्तु ज्ञेयताभाषयमानं  
द्वेधात्मपरविकल्पात् । इष्यते हि स्वपरपरिच्छेदकत्वावबोधस्य बोध्यस्यैवंविधं द्वैविध्यम् ।  
ननु स्वात्मनि क्रियाविरोधात् कथं नामात्मपरिच्छेदकत्वं । का हि नाम क्रिया कीदृशश्च  
विरोधः । क्रियाह्यत्र विरोधिनी समुत्पत्तिरूपा वा ज्ञप्तिरूपा वा । उत्पत्तिरूपा हि  
तावन्नैकं स्वस्मात्प्रजायत इत्यागमाद्विरुद्धैव । ज्ञप्तिरूपायास्तु प्रकाशनक्रिययैव प्रत्यव-

रूपेण ज्ञानं परिणमति तथैव पदार्थान् परिच्छिनन्ति, इति भणितं पूर्वसूत्रे । तस्मादात्मैव ज्ञानं  
ण्यं द्रव्यं तस्य ज्ञानरूपस्यात्मनो ज्ञेयं भवति । किं । द्रव्यम् । तिहा समक्त्वादं तच्च  
द्रव्यं कालत्रयपर्यायपरिणतिरूपेण द्रव्यगुणपर्यायरूपेण वा तथैवोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण च  
त्रिधा समाख्यातम् । द्रव्यमिति पुनो आदा परं च तच्च ज्ञेयभूतं द्रव्यमात्मा भवति ।  
परं च । कस्मात् । यतो ज्ञानं स्वं जानाति परं चेति प्रदीपवत् । तच्च स्वपरद्रव्यं कथं-

है' इन दोनोंका भेद कहते हैं;—[ तस्मात् ] इसीकारणसे [ जीवः ] आत्मा  
[ ज्ञानं ] ज्ञानस्वरूप है । और [ त्रिधा समाख्यातं ] अतीत अनागत वर्तमान  
पर्यायके भेदसे अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्य भेदसे अथवा द्रव्य, गुण, पर्यायसे तीन प्रकार  
कहलानेवाला [ द्रव्यं ] द्रव्य है [ ज्ञेयं ] वह ज्ञेय है । [ पुनः ] फिर [ आत्मा ]  
जीव पदार्थ [ च ] और [ परं ] अन्य अचेतन पांच पदार्थ [ परिणामसंबद्धम् ]  
परिणमनसे बंधे हैं इसलिये [ द्रव्यमिति ] द्रव्य ऐसे पदको धारण करते हैं । भावार्थ—  
पहले गाथामें कहा है कि यह आत्मा ज्ञानभावसे आपही परिणमन करके परकी सहा-  
यता विना स्वाधीन जानता है, इसलिये आत्मा ही ज्ञान है । अन्य ( दूसरा ) द्रव्य  
ज्ञानभावपरिणमनके जाननेमें असमर्थ है । इसलिये अतीतादि भेदसे, उत्पादादिकसे,  
द्रव्यगुणपर्यायके भेदसे तीन प्रकार हुआ द्रव्य ज्ञेय है अर्थात् आत्माके जानने योग्य है ।  
और आत्मा दीपककी तरह आप तथा पर दोनोंका प्रकाशक ( शायक ) होनेसे ज्ञेयभी  
है ज्ञानभी है अर्थात् दोनों स्वरूप है । इससे यह सारांश निकला कि ज्ञेय पदार्थ स्व-  
ज्ञेय और परज्ञेय ( दूसरेसे जानने योग्य ) के भेदसे दो प्रकार हैं, उनमें पांच द्रव्य  
ज्ञेयही हैं इस कारण परज्ञेय हैं और आत्मद्रव्य ज्ञेय—ज्ञान दोनोंरूप है, इसकारण स्वज्ञेय  
है । यहांपर कोई प्रश्न करे कि आत्मा अपनेको जानता है यह बात असंभव है । जैसे  
कि, नटकलामें अलंत चतुर भी नट आप अपने ही कंधेपर नहीं चढ़सक्ता र्त्मीप्रकार  
अन्य पदार्थोंके जाननेमें दक्ष आत्मा आपको नहीं जानसक्ता, तो इसका समाधान यह है

अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्वं विदधाति;—

जेणेव हि संजाया जे खलु गढा भवीय पज्जाया ।

ते होंति असब्भूया पज्जाया णाणपच्चक्खा ॥ ३८ ॥

येनैव हि संजाता ये खलु नष्टा भूत्वा पर्यायाः ।

ते भवन्ति असद्भूताः पर्याया ज्ञानप्रत्यक्षाः ॥ ३८ ॥

ये खलु नाद्यापि संभूतिमनुभवन्ति, ये चात्मलाभमनुभूय विलयमुपगतास्ते किलास-  
द्भूता अपि परिच्छेदं प्रति नियतत्वात् ज्ञानप्रत्यक्षतामनुभवन्तः शिलास्तम्भोत्कीर्णभूतभा-  
विदेववदप्रकम्पार्पितस्वरूपाः सद्भूता एव भवन्ति ॥ ३८ ॥

अर्थेण ज्ञातव्य इति तात्पर्यम् ॥ ३७ ॥ अथातीतानागतपर्यायाणामसद्भूतसंज्ञा भवतीति  
प्रतिपादयति;—जेणेव हि संजाया जे खलु गढा भवीय पज्जाया ये नैव संजाता  
नाद्यापि भवन्ति, भाविन इत्यर्थः । हि स्फुटं ये च खलु नष्टा विनष्टाः पर्यायाः । किं कृत्वा ।  
भूत्वा ते होंति असब्भूदा पज्जाया ते पूर्वोक्ता भूता भाविनश्च पर्याया अविद्यमानत्वादसद्भूता  
भण्यन्ते । णाणपच्चक्खा ते चाविद्यमानत्वादसद्भूता अपि वर्तमानज्ञानविषयत्वाद्व्यवहारेण  
भूतार्था भण्यन्ते, तथैव ज्ञानप्रत्यक्षाश्चेति । यथायं भगवान्निश्चयेन परमानन्दैकलक्षणसुखस्वभावं  
मोक्षपर्यायमेव तन्मयत्वेन परिच्छिनत्ति, परद्रव्यपर्यायं तु व्यवहारेणेति । तथा भावितात्मना  
पुरुषेण रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनपर्याय एव तात्पर्येण ज्ञातव्यः, वहिर्द्रव्यपर्यायाश्च गौण-

आकार होजाता है वहांपर वस्तु वर्तमान नहीं है । तैसे निरावरण ज्ञानमें ( जि-  
समें कोईतरहका आच्छादन न हो बिलकुल निर्मल हो ऐसे ज्ञानमें ) अतीत  
अनागत वस्तु प्रतिभासै तो असंभव नहीं है । ज्ञानका स्वभावही ऐसा है ।  
स्वभावमें तर्क नहीं चलसकती ॥ ३७ ॥ आगे जो पर्याय वर्तमान पर्याय नहीं हैं उ-  
नको किसीएक प्रकार वर्तमान दिखलाते हैं;—[ हि ] निश्चयकरके [ ये पर्यायाः ]  
जो पर्याय [ नैव संजाताः ] उत्पन्नही नहीं हुए हैं तथा [ ये ] जो [ खलु ]  
निश्चयसे [ भूत्वा ] उत्पन्न होकर [ नष्टाः ] नष्ट होगये हैं [ ते ] वे सब अतीत  
अनागत [ पर्यायाः ] पर्याय [ असद्भूताः ] वर्तमानकालके गोचर नहीं ऐसे  
[ भवन्ति ] होते हैं, तौभी [ ज्ञानप्रत्यक्षाः ] केवल ज्ञानमें प्रत्यक्ष हैं । भावार्थ—  
जो उत्पन्न नहीं हुए ऐसे अनागत अर्थान् भविष्यत् कालके और जो उत्पन्न होकर नष्ट  
होगये ऐसे अतीतकालके पर्यायोंको असद्भूत कहते हैं, क्योंकि वे वर्तमान नहीं हैं । परंतु  
ज्ञानकी अपेक्षा येही दोनों पर्याय सद्भूतभी हैं, क्योंकि केवलज्ञानमें प्रतिविम्बित हैं ।  
और जैसे भूत-भविष्यत्कालके चौबीस तीर्थकरोंके आकार पापाण (पत्थर) के संभ  
(खंभा) में चित्रित रहते हैं उसीप्रकार ज्ञानमें अतीत अनागत ज्ञेयोंके आकार प्रति-

तात्कालिका इव सर्वे सदसद्भूता हि पर्यायास्तासाम् ।  
वर्तन्ते ते ज्ञाने विशेषतो द्रव्यजातीनाम् ॥ ३७ ॥

सर्वासामेव हि द्रव्यजातीनां त्रिसमयावच्छिन्नात्मलाभभूमिकत्वेन क्रमप्रतपत्स्वरूपसंपदः सद्भूतासद्भूततामायान्तो ये यावन्तः पर्यायास्ते तावन्तस्तात्कालिका इवात्यन्तसंकरेणाप्यवधारितविशेषलक्षणा एकलक्षण एवावबोधसौधस्थितिमवतरन्ति । न खल्वेतदयुक्तं दृष्टाविरोधात् । दृश्यते हि छद्मस्थस्यापि वर्तमानमिव व्यतीतमनागतं वा वस्तु चिन्तयतः संविदालम्बितस्तदाकारः । किंच चित्रपटीस्थानीयत्वात् संविदः । यथा हि चित्रपट्यामतिवाहितानामनुपस्थितानां वर्तमानानां च वस्तूनामालेख्याकाराः साक्षादेकक्षण एवावभासन्ते, तथा संविद्धित्तावपि । किंच सर्वज्ञेयाकाराणां तादात्विकाविरोधात् । यथा हि प्रध्वस्तानामनुदितानामालेख्याकारा वर्तमाना एव, तथातीतानामनागतानां च पर्यायाणां ज्ञेयाकारा वर्तमाना एव भवन्ति ॥ ३७ ॥

प्रसिद्धानां शुद्धजीवद्रव्यजातीनामिति । व्यवहितसम्बन्धः कस्मात् । विसेसदो स्वकीयस्वकीयप्रदेशकालाकारविशेषैः सङ्करव्यतिकरपरिहारेणेत्यर्थः । किंच—यथा छद्मस्यपुरुपस्यातीतानागतपर्याया मनसि चिन्तयतः प्रतिस्फुरन्ति, यथा च चित्रभित्तौ बाहुबलिभरतादिव्यतिक्रान्तरूपाणि श्रेणिकतीर्थकरादिभाविरूपाणि च वर्तमानानीव प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते तथा चित्रभित्तिस्थानीयकेवलज्ञाने भूतभाविनश्च पर्याया युगपत्प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते, नास्ति विरोधः । यथायं केवली भगवान् परद्रव्यपर्यायान् परिच्छित्तिमात्रेण जानाति न च तन्मयत्वेन, निश्चयेन तु केवलज्ञानादिगुणाधारभूतं स्वकीयसिद्धपर्यायमेव स्वसंविद्याकारेण तन्मयो भूत्वा परिच्छिनन्ति जानाति, तथासन्नभव्यजीवेनापि निजशुद्धात्मसम्यक्त्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयपर्याय एव सर्वता-

जीवादिक द्रव्यजातियोंके [ ते सर्वे ] वे समस्त [ सदसद्भूताः ] विद्यमान तथा अविद्यमान, [ पर्यायाः ] पर्याय [ हि ] निश्चयसे [ ज्ञाने ] ज्ञानमें [ विशेषतः ] भिन्न २ भेद लिये [ तात्कालिका इव ] वर्तमानकाल संबंधी पर्यायोंकी तरह [ वर्तन्ते ] प्रवर्तते हैं । भावार्थ—जैसे किसी चित्रकारने ( चतेरेने ) चित्रपटमें बाहुबली-भरतादि अतीत पुरुषोंका चित्र लिखा और भावीकालसम्बन्धी श्रेणिकादि तीर्थकरका चित्र लिखा सो वे चित्र उस चित्रपटमें वर्तमानकालमें देखे जाते हैं । उसीप्रकार ज्ञानचित्रपटमें जो पर्याय होयुके तथा जो आगे होनेवाले हैं उनका वर्तमान प्रतिबिम्ब भासता है । यहांपर कोई प्रश्न करे कि “वर्तमानकालके ज्ञेयोंके आकार ज्ञानमें प्रतिबिम्बित होसके हैं, परंतु जो होयुके हैं तथा जो होनेवाले हैं उनका प्रतिभास होना असंभव मालूम होता है” उसका समाधान यह है कि जो छद्मस्य ज्ञानी ( अल्पज्ञानी तपस्वी ) भी योगबलसे वा तपस्याके प्रभावसे ज्ञानमें कुछ निर्मलत्वा होनेसे अतीत अनागत वस्तुका विचार फरटेवे हैं तब उनका ज्ञान अतीत अनागत वस्तुके

अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्वं विदधाति;—

जेणेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया ।

ते होंति असब्भूया पज्जाया णाणपच्चक्खा ॥ ३८ ॥

येनैव हि संजाता ये खलु नट्टा भूत्वा पर्यायाः ।

ते भवन्ति असद्भूताः पर्याया ज्ञानप्रत्यक्षाः ॥ ३८ ॥

ये खलु नाद्यापि संभूतिमनुभवन्ति, ये चात्मलाभमनुभूय विलयमुपगतास्ते किलास-  
द्भूता अपि परिच्छेदं प्रति नियतत्वात् ज्ञानप्रत्यक्षतामनुभवन्तः शिलास्तम्भोत्कीर्णभूतभा-  
विदिवदप्रकम्पार्पितस्वरूपाः सद्भूता एव भवन्ति ॥ ३८ ॥

व्ययेण ज्ञातव्य इति तात्पर्यम् ॥ ३७ ॥ अथातीतानागतपर्यायाणामसद्भूतसंज्ञा भवतीति  
प्रतिपादयति;—जेणेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया ये नैव संजाता  
नाद्यापि भवन्ति, भाविन इत्यर्थः । हि स्फुटं ये च खलु नट्टा विनट्टाः पर्यायाः । किं कृत्वा ।  
भूत्वा ते होंति असब्भूदा पज्जाया ते पूर्वोक्ता भूता भाविनश्च पर्याया अविद्यमानत्वादसद्भूता  
मण्यते । णाणपच्चक्खा ते चाविद्यमानत्वादसद्भूता अपि वर्तमानज्ञानविषयत्वाद्भवहारेण  
भूतार्था मण्यन्ते, तथैव ज्ञानप्रत्यक्षाश्चेति । यथायं भगवान्निश्चयेन परमानन्दैकलक्षणसुखस्वभावं  
मोक्षपर्यायमेव तन्मयत्वेन परिच्छिनत्ति, परद्रव्यपर्यायं तु व्यवहारेणेति । तथा भावितात्मना  
पुरुषेण रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनपर्याय एव तात्पर्येण ज्ञातव्यः, वहिर्द्रव्यपर्यायाश्च गौण-

आकार होजाता है वहांपर वस्तु वर्तमान नहीं है । तैसे निरावरण ज्ञानमें ( जि-  
समें कोईतरहका आच्छादन न हो विलकुल निर्मल हो ऐसे ज्ञानमें ) अतीत  
अनागत वस्तु प्रतिभासै तो असंभव नहीं है । ज्ञानका स्वभावही ऐसा है ।  
स्वभावमें तर्क नहीं चलसकती ॥ ३७ ॥ आगे जो पर्याय वर्तमान पर्याय नहीं हैं उ-  
नको किसीएक प्रकार वर्तमान दिखलाते हैं;—[ हि ] निश्चयकरके [ ये पर्यायाः ]  
जो पर्याय [ नैव संजाताः ] उत्पन्नही नहीं हुए हैं तथा [ ये ] जो [ खलु ]  
निश्चयसे [ भूत्वा ] उत्पन्न होकर [ नट्टाः ] नट्ट होगये हैं [ ते ] वे सब अतीत  
अनागत [ पर्यायाः ] पर्याय [ असद्भूताः ] वर्तमानकालके गोचर नहीं ऐसे  
[ भवन्ति ] होते हैं, तौभी [ ज्ञानप्रत्यक्षाः ] केवल ज्ञानमें प्रत्यक्ष हैं । भावार्थ—  
जो उत्पन्न नहीं हुए ऐसे अनागत अर्थात् भविष्यत् कालके और जो उत्पन्न होकर नट्ट  
होगये ऐसे अतीतकालके पर्यायोंको असद्भूत कहते हैं, क्योंकि वे वर्तमान नहीं हैं । परंतु  
ज्ञानकी अपेक्षा येही दोनों पर्याय सद्भूतभी हैं, क्योंकि केवलज्ञानमें प्रतिविम्बित हैं ।  
और जैसे भूत-भविष्यत्कालके चौबीस तीर्थकरोंके आकार पापाण (पत्थर) के स्तंभ  
(खंभा) में चित्रित रहते हैं उसीप्रकार ज्ञानमें अतीत अनागत ज्ञेयोंके आकार प्रति-



तात्कालिका इव सर्वे सदसद्भूता हि पर्यायास्तासाम् ।

वर्तन्ते ते ज्ञाने विशेषतो द्रव्यजातीनाम् ॥ ३७ ॥

सर्वासामेव हि द्रव्यजातीनां त्रिसमयावच्छिन्नात्मलाभभूमिकत्वेन क्रमप्रतपस्वरूपसं-  
पदः सद्भूतासद्भूततामायान्तो ये यावन्तः पर्यायास्ते तावन्तस्तात्कालिका इवात्यन्तसंक-  
रेणाप्यवधारितविशेषलक्षणा एकलक्षण एवावबोधसौधस्थितिमवतरन्ति । न खल्वेतदयुक्तं  
दृष्टाविरोधात् । दृश्यते हि छद्मस्थस्यापि वर्तमानमिव व्यतीतमनागतं वा वस्तु चिन्तयतः  
संविदालम्बितस्तदाकारः । किंच चित्रपटीस्थानीयत्वात् संविदः । यथा हि चित्रपट्याम-  
तिवाहितानामनुपस्थितानां वर्तमानानां च वस्तूनामालेख्याकाराः साक्षादेकलक्षण एवाव-  
भासन्ते, तथा संविद्विज्ञावपि । किंच सर्वज्ञेयाकाराणां तादात्विकाविरोधात् । यथा हि  
ग्रध्वस्तानामनुदितानामालेख्याकारा वर्तमाना एव, तथातीतानामनागतानां च पर्यायाणां  
ज्ञेयाकारा वर्तमाना एव भवन्ति ॥ ३७ ॥

प्रसिद्धानां शुद्धजीवद्रव्यजातीनामिति । व्यवहितसम्बन्धः कस्मात् । विसेसदो स्वकीयस्व-  
कीयप्रदेशकालाकारविशेषैः सङ्करव्यतिकरपरिहारेणेत्यर्थः । किंच—यथा छद्मस्थपुरुषस्यातीताना-  
गतपर्याया मनसि चिन्तयतः प्रतिस्फुरन्ति, यथा च चित्रभित्तौ बाहुबलिभरतादिव्यतिक्रान्तरू-  
पाणि श्रेणिकतीर्थकरादिभावरूपाणि च वर्तमानानीव प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते तथा चित्रभित्तिस्था-  
नीयकेवलज्ञाने भूतभाविनश्च पर्याया युगपत्प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते, नास्ति विरोधः । यथायं केवली  
भगवान् परद्रव्यपर्यायान् परिच्छित्तिमात्रेण जानाति न च तन्मयत्वेन, निश्चयेन तु केवलज्ञा-  
नादिगुणाधारभूतं स्वकीयसिद्धपर्यायमेव स्वसंवित्प्राकारेण तन्मयो भूत्वा परिच्छिनत्ति जानाति,  
तथासन्नमव्यजीवेनापि निजशुद्धात्मसम्पक्त्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयपर्याय एव सर्वता-

जीवादिक द्रव्यजातियोंके [ ते सर्वे ] वे समस्त [ सदसद्भूताः ] विद्यमान तथा  
अविद्यमान, [ पर्यायाः ] पर्याय [ हि ] निश्चयसे [ ज्ञाने ] ज्ञानमें [ विशेषतः ]  
भिन्न २ भेद लिये [ तात्कालिका इव ] वर्तमानकाल संबंधी पर्यायोंकी तरह  
[ वर्तन्ते ] प्रवर्तते हैं । भावार्थ—जैसे किसी चित्रकारने ( चतेरेने ) चित्रपटमें बा-  
हुवली-भरतादि अतीत पुरुषोंका चित्र लिखा और भावीकालसम्बन्धी श्रेणिकादि तीर्थ-  
करका चित्र लिखा सो वे चित्र उस चित्रपटमें वर्तमानकालमें देखे जाते हैं । उसीप्रकार  
ज्ञानचित्रपटमें जो पर्याय होचुके तथा जो आगे होनेवाले हैं उनका वर्तमान प्रतिवि-  
म्ब्य भासता है । यहांपर कोई प्रश्न करे कि “वर्तमानकालके ज्ञेयोंके आकार ज्ञानमें प्रति-  
विम्बित होसके हैं, परंतु जो होचुके हैं तथा जो होनेवाले हैं उनका प्रतिभास होना  
असंभव मालूम होता है” उसका समाधान यह है कि जो छद्मस्थ ज्ञानी ( अल्पज्ञानी  
वपसी ) भी योगबलसे वा तपस्याके प्रभावसे ज्ञानमें कुछ निर्मलता होनेसे अतीत  
अनागत वस्तुका विचार करलेते हैं तब उनका ज्ञान अतीत अनागत वस्तुके

अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्वं विदधाति;—

जेणेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया ।

ते होंति असब्भूया पज्जाया णाणपच्चक्खा ॥ ३८ ॥

येनैव हि संजाता ये खलु नट्टा भूत्वा पर्यायाः ।

ते भवन्ति असद्भूताः पर्याया ज्ञानप्रत्यक्षाः ॥ ३८ ॥

ये खलु नाद्यापि संभूतिमनुभवन्ति, ये चात्मलाभमनुभूय विलयमुपगतास्ते किलास-  
द्भूता अपि परिच्छेदं प्रति नियतत्वात् ज्ञानप्रत्यक्षतामनुभवन्तः शिलास्तम्भोत्कीर्णभूतभा-  
विदेववदप्रकम्पार्पितस्वरूपाः सद्भूता एव भवन्ति ॥ ३८ ॥

अप्येण ज्ञातव्य इति तात्पर्यम् ॥ ३७ ॥ अथातीतानागतपर्यायाणामसद्भूतसंज्ञा भवतीति  
प्रतिपादयति;—जेणेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया ये नैव संजाता  
नाद्यापि भवन्ति, भाविन इत्यर्थः । हि स्फुटं ये च खलु नट्टा विनट्टाः पर्यायाः । किं कृत्वा ।  
भूत्वा ते होंति असब्भूदा पज्जाया ते पूर्वोक्ता भूता भाविनश्च पर्याया अविद्यमानत्वादसद्भूता  
भण्यन्ते । णाणपच्चक्खा ते चाविद्यमानत्वादसद्भूता अपि वर्तमानज्ञानविषयत्वाद्द्वयवहारेण  
भूतार्था भण्यन्ते, तथैव ज्ञानप्रत्यक्षाश्चेति । यथायं भगवान्निश्चयेन परमानन्दैकलक्षणसुखस्वभावं  
मोक्षपर्यायमेव तन्मयत्वेन परिच्छिनत्ति, परद्रव्यपर्यायं तु व्यवहारेणेति । तथा भावितात्मना  
पुरुषेण रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनपर्याय एव तात्पर्येण ज्ञातव्यः, वहिर्द्रव्यपर्यायाश्च गौण-

आकार होजाता है वहांपर वस्तु वर्तमान नहीं है । तैसे निरावरण ज्ञानमें ( जि-  
समें कोईतरहका आच्छादन न हो विलकुल निर्मल हो ऐसे ज्ञानमें ) अतीत  
अनागत वस्तु प्रतिभासै तो असंभव नहीं है । ज्ञानका स्वभावही ऐसा है ।  
स्वभावमें तर्क नहीं चलसकती ॥ ३७ ॥ आगे जो पर्याय वर्तमान पर्याय नहीं हैं उ-  
नको किसीएक प्रकार वर्तमान दिखलाते हैं;—[ हि ] निश्चयकरके [ ये पर्यायाः ]  
जो पर्याय [ नैव संजाताः ] उत्पन्नही नहीं हुए हैं तथा [ ये ] जो [ खलु ]  
निश्चयसे [ भूत्वा ] उत्पन्न होकर [ नट्टाः ] नष्ट होगये हैं [ ते ] वे सब अतीत  
अनागत [ पर्यायाः ] पर्याय [ असद्भूताः ] वर्तमानकालके गोचर नहीं ऐसे  
[ भवन्ति ] होते हैं, तौभी [ ज्ञानप्रत्यक्षाः ] केवल ज्ञानमें प्रत्यक्ष हैं । भावार्थ—  
जो उत्पन्न नहीं हुए ऐसे अनागत अर्थात् भविष्यत् कालके और जो उत्पन्न होकर नष्ट  
होगये ऐसे अतीतकालके पर्यायोंको असद्भूत कहते हैं, क्योंकि वे वर्तमान नहीं हैं । परंतु  
ज्ञानकी अपेक्षा येही दोनों पर्याय सद्भूतभी हैं, क्योंकि केवलज्ञानमें प्रतिविम्बित हैं ।  
और जैसे भूत-भविष्यत्कालके चौबीस तीर्थकरोंके आकार पापाण (पत्थर) के स्तंभ  
(खंभा) में चित्रित रहते हैं उसीप्रकार ज्ञानमें अतीत अनागत क्षेत्रोंके आकार प्रति-

अथैतदेवासद्भूतानां ज्ञानप्रत्यक्षत्वं दृढयति;—

जदि पञ्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स ।

ण हवदि वा तं णाणं दिव्वंत्ति हि के परूवेति ॥ ३९ ॥

यदि प्रत्यक्षोऽजातः पर्यायः प्रलयितश्च ज्ञानस्य ।

न भवति वा तत् ज्ञानं दिव्यमिति हि के प्ररूपयन्ति ॥ ३९ ॥

यदि खत्वसंभावितभावं संभावितभावं च पर्यायजातमप्रतिघविजृम्भिताखण्डितप्रताप-  
प्रभुशक्तितया प्रसभेनैव नितान्तमाक्रम्याक्रमसमर्पितस्वरूपसर्वस्वमात्मानं प्रतिनियतं  
ज्ञानं करोति, तदा तस्य कुतस्तनी दिव्यता स्यात् । अतः काष्ठाप्राप्तस्य परिच्छेदस्य सर्व-  
मेतदुपपन्नम् ॥ ३९ ॥

अथेन्द्रियज्ञानस्यैव प्रलीनमनुत्पन्नं च ज्ञातुमशक्यमिति वितर्कयति;—

वृत्त्येति भावार्थः ॥ ३८ ॥ अथासद्भूतपर्यायाणां वर्तमानज्ञानप्रत्यक्षत्वं दृढयति;—जइ पञ्च-  
क्खमजायं पज्जायं पलइयं च णाणस्स ण हवदि वा यदि प्रत्यक्षो न भवति । स कः । अ-  
जातपर्यायो भाविपर्यायः । न केवलं भाविपर्यायः प्रलयितश्च वा । कस्य । ज्ञानस्य तं णाणं  
दिव्वंत्ति हि के परूवेति तदज्ञानं दिव्यमिति के प्ररूपयन्ति ? न केपीति । तथाहि—यदि  
वर्तमानपर्यायवदतीतानागतपर्यायं ज्ञानं कर्तुं क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन साक्षात्प्रत्यक्षं न क-  
रोति, तर्हि तत् ज्ञानं दिव्यं न भवति । वस्तुतस्तु ज्ञानमेव न भवतीति । यथायं केवली  
परकीयद्रव्यपर्यायान् यद्यपि परिच्छित्तिमात्रेण जानाति तथापि निश्चयनयेन सहजानन्दैकस्वभावे  
स्वशुद्धात्मनि तन्मयत्वेन परिच्छित्तिं करोति, तथा निर्मलविवेकिजनोपि यद्यपि व्यवहारेण पर-  
कीयद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानं करोति, तथापि निश्चयेन निर्विकारस्वसंवेदनपर्याये विषयत्वात्पर्या-  
येण परिज्ञानं करोतीति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ३९ ॥ अथातीतानागतसूक्ष्मादिपदार्थानिन्द्रियज्ञानं

विन्वित होकर वर्तमान होते हैं ॥ ३८ ॥ आगे असद्भूतपर्यायें ज्ञानमें प्रत्यक्ष हैं इसीको  
पुष्ट करते हैं;—[ यदि वा ] और जो [ ज्ञानस्य ] केवलज्ञानके [ अजातः प-  
र्यायः ] अनागत पर्याय [ च ] तथा [ प्रलयितः ] अतीतपर्याय [ प्रत्यक्षः ]  
अनुभवगोचर [ न भवन्ति ] नहीं होते [ तदा ] तो [ तदज्ञानं ] उस ज्ञानको  
[ दिव्यं ] सबसे उत्कृष्ट अर्थात् स्तुति करने योग्य [ हि ] निश्चयकर [ के प्ररूप-  
यन्ति ] कौन कहता ? कोईभी नहीं । भावार्थ—जो ज्ञान भूतभविष्यत पर्यायोंको  
नहीं जाने तो फिर उस ज्ञानकी महिमा ही क्या रहे ? कुछभी नहीं, ज्ञानकी प्रशंसा तो  
यही है कि वह सबको प्रत्यक्ष जानता है । इसलिये भगवान्के दिव्यज्ञानमें तीनों का-  
लकी समस्त द्रव्यपर्याय एकही वार प्रत्यक्ष प्रतिभासित होते हैं इसमें कुछभी संदेह  
नहीं है । अनंत महिमासहित सर्वशका ज्ञान ऐसाही आश्चर्य करनेवाला है ॥ ३९ ॥  
आगे इंद्रियजनित ज्ञान अतीत अनागत पर्यायोंके जाननेमें असमर्थ है, ऐसा कहते

अत्थं अक्खणिवदिदं ईहापुच्चेहिं जे विजाणंति ।  
तेसिं परोक्खभूदं णाडुमसक्कंति पण्णत्तं ॥ ४० ॥

अर्थमक्षनिपतितमीहापूर्वैः ये विजानन्ति ।

तेषां परोक्षभूतं ज्ञातुमशक्यमिति प्रज्ञप्तम् ॥ ४० ॥

ये खलु विषयविषयिसन्निपातलक्षणमिन्द्रियार्थसन्निकर्षमधिगम्य क्रमोपजायमानेनेहा-  
दिकप्रक्रमेण परिच्छिन्दन्ति, ते किलातिवाहितस्वास्तित्वमनुपस्थितस्वास्तित्वकालं वा यथो-  
दितलक्षणस्य ग्राह्यग्राहकसंबन्धस्यासंभवतः परिच्छेत्तुं न शक्नुवन्ति ॥ ४० ॥

न जानातीति विचारयति;—अष्टं पदार्थं अक्खणिवदिदं इन्द्रियगोचरं ईहापुच्चेहिं जे  
विजाणंति ईहापूर्वकं ये विजानन्ति । तेसिं परोक्खभूदं तेषां सम्बन्धि ज्ञानं परोक्षभूतं  
सत् णाडुमसक्कंति पण्णत्तं सूक्ष्मादिपदार्थान् ज्ञातुमशक्यमिति प्रज्ञप्तं कथितम् । कैः ।  
ज्ञानिभिरिति । तद्यथा—चक्षुरादीन्द्रियं घटपटादिपदार्थपार्श्वं गत्वा पश्चादर्थं जानातीति सन्निक-  
र्षलक्षणं नैयायिकमते । अथवा संक्षेपेणेन्द्रियार्थयोः संबन्धः सन्निकर्षः स एव प्रमाणम् । स  
च सन्निकर्ष आकाशाद्यमूर्तपदार्थेषु देशान्तरितमेवादिपदार्थेषु कालान्तरितरामरावणादिषु स्वभा-  
वान्तरितभूतादिषु तथैवातिसूक्ष्मेषु परचेतोवृत्तिपुद्गलपरमाण्वादिषु च न प्रवर्तते । कस्मादिति-  
चेत् इन्द्रियाणां स्थूलविषयत्वात्, तथैव मूर्तविषयत्वाच्च । ततः कारणादिन्द्रियज्ञानेन सर्वज्ञो  
न भवति । तत एव चातीन्द्रियज्ञानोत्पत्तिकारणं रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनज्ञानं विहाय  
पद्मेन्द्रियमुखसाधनीभूत इन्द्रियज्ञाने नानामनोरथविकल्परजालरूपे मानसज्ञाने च ये रतिं कु-

हैं;—[ ये ] जो जीव [ अक्षनिपतितं ] इन्द्रिय गोचर हुए [ अर्थ ] घटपटादि  
पदार्थोको [ ईहापूर्वैः ] ईहा है पूर्वमें जिनके ऐसे ईहा, अवाय, धारणा इन मतिज्ञान-  
नोंसे [ विजानन्ति ] जानते हैं [ तेषां ] उन जीवोंके [ परोक्षभूतं ] अतीत  
अनागतकालसंबंधी परोक्ष वस्तु [ ज्ञातुम् ] जाननेको [ अशक्यं ] असमर्थपना है  
[ इति ] इसप्रकार [ प्रज्ञप्तम् ] सर्वज्ञ देवने कहा है । भावार्थ—जितने मतिज्ञानी  
जीव हैं उन सबके पहले तो इंद्रिय और पदार्थका संबंध होता है पीछे अवग्रह ईहादि  
भेदोंसे पदार्थका निश्चय होता है । इसलिये अतीत अनागतकाल संबंधी वस्तुएं उनके  
ज्ञानमें नहीं झलकतीं, क्योंकि उन वस्तुओंसे इंद्रियका संयोग नहीं होता । इनके सि-  
वाय वर्तमानकालसंबंधी भी जो सूक्ष्म परमाणु आदि हैं तथा स्वर्ग मेरु आदि दूर-  
वर्ती और अनेक अमूर्तीक पदार्थ हैं उनको इन्द्रियसंयोग न होनेके कारण मतिज्ञानी  
नहीं जानसकता । इन्द्रियज्ञानसे स्थूल घटपटादि पदार्थ जाने जाते हैं, इसलिये  
इन्द्रियज्ञान परोक्ष है, हीन है, हेय है । केवल ज्ञानकी तरह सर्व प्रत्यक्ष नहीं है

अथातीन्द्रियज्ञानस्य तु यद्यदुच्यते तत्तत्संभवतीति संभावयति;—

अपदेशं सपदेशं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं ।

पलयं गदं च जाणदि तं णाणमदिदियं भणियं ॥ ४१ ॥

अप्रदेशं सप्रदेशं मूर्तममूर्तं च पर्यायमजातम् ।

प्रलयं गतं च जानाति तज्ज्ञानमतीन्द्रियं भणितम् ॥ ४१ ॥

इन्द्रियज्ञानं नाम उपदेशान्तःकरणेन्द्रियादीनि विरूपकारणत्वेनोपलब्धिसंकरादीन् अन्तरङ्गस्वरूपकारणत्वेनोपादाय प्रवर्तते । प्रवर्तमानं च सप्रदेशमेवाध्यवस्यति स्थूलोपलम्भकत्वाच्चाप्रदेशं । मूर्तमेवावगच्छति तथाविधविषयनिबन्धनसद्भावात्त्रामूर्तम् । वर्तमानमेव परिच्छिनत्ति विषयविषयिसन्निपातसद्भावाच्च तु वृत्तं वर्त्यच्च । यत्तु पुनरनावरणमिन्द्रियं ज्ञानं तस्य समिद्धधूमध्वजस्येवानेकप्रकारतालिकितं दाह्यं दाह्यतानतिक्रमाद्दाह्यमेव यथा तथात्मनः अप्रदेशं मूर्तममूर्तमजातमतिवाहितं च पर्यायजातं ज्ञेयतानतिक्रमात्परिच्छेद्यमेव भवतीति ॥ ४१ ॥

वेत्ति ते सर्वज्ञपदं न लभन्ते इति सूत्राभिप्रायः ॥ ४० ॥ अथातीन्द्रियज्ञानमतीतानागतसूक्ष्मादिपदार्थान् जानातीत्युपदिशति;—अपदेशं अप्रदेशं कालाणुपरमाण्वादि सपदेशं शुद्धजीवास्तिकायादिपञ्चास्तिकायस्वरूपं मुत्तं मूर्तं पुद्गलद्रव्यं अमुत्तं च अमूर्तं च शुद्धजीवद्रव्यादि पज्जयमजादं पलयं गयं च पर्यायमजातं भाविनं प्रलयं गतं चातीतमेतत्सर्वं पूर्वोक्तं ज्ञेयं वस्तु जाणदि जानाति यद्ज्ञानं कर्तृ तं णाणमणिदियं भणियं तद्ज्ञानमतीन्द्रियं भणितं तेनैव सर्वज्ञो भवति । तत एव च पूर्वगाथोदितमिन्द्रियज्ञानं मानसज्ञानं च त्यक्त्वा ये निर्विकल्पसमाधिरूपस्वसंवेदनज्ञाने समस्तविभावपरिणामव्यागेन रतिं कुर्वन्ति त एव पर-

॥ ४० ॥ आगे अतीन्द्रियज्ञान सबको जानता है, ऐसा कहते हैं;—[ यत् ] जो ज्ञान [ अप्रदेशं ] प्रदेशरहित कालाणु तथा परमाणुओंको, [ सप्रदेशं ] प्रदेशसहितको अर्थात् पंचास्तिकायोंको [ मूर्तं ] पुद्गलोंको [ च ] और [ अमूर्तं ] शुद्धजीवादिक द्रव्योंको [ अजातं पर्यायं ] अनागत पर्यायोंको [ च ] और [ प्रलयं गतं ] अतीतपर्यायोंको [ जानाति ] जानता है [ तद्ज्ञानं ] उस ज्ञानको [ अतीन्द्रियं ] अतीन्द्रिय [ भणितं ] कहा है । भावार्थ—अतीन्द्रियज्ञान सबको जानता है, इसलिये अतीन्द्रियज्ञानीको ही सर्वज्ञ पद है । जो इन्द्रियज्ञानसे सर्वज्ञ मानते हैं वे प्रत्यक्ष मिथ्या बोलते हैं । क्योंकि जो पदार्थ वर्तमान होवे, मूर्तक स्थूल प्रदेश सहित होवे तथा निकट होवे उसीको इन्द्रियज्ञान क्रमसे कुल्लेक जानसकता है । अप्रदेशी अमूर्तक तथा अतीत अनागतकालसंबंधी जो पदार्थ हैं उनको नहीं जानसकता । ऐसे

अथ ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया ज्ञानान्न भवतीति श्रद्धाति;—

परिणमदि णेयमद्वं णादा जदि णेव खाइगं तस्स ।

णाणांत्ति तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता ॥ ४२ ॥

परिणमति ज्ञेयमर्थं ज्ञाता यदि नैव क्षायिकं तस्य ।

ज्ञानमिति तं जिनेन्द्राः क्षपयन्तं कर्मैवोक्तवन्तः ॥ ४२ ॥

परिच्छेत्ता हि यत्परिच्छेद्यमर्थं परिणमति तन्न तस्य सकलकर्मकक्षक्षयप्रवृत्तस्वाभाविक-  
परिच्छेदनिदानमथवा ज्ञानमेव नास्ति तस्य । यतः प्रत्यर्थपरिणतिद्वारेण मृगतृष्णाम्भो-  
भारसंभावनाकरणमानसः सुदुःसहं कर्मभारमेवोपभुञ्जानः स जिनेन्द्रैरुद्धीतः ॥ ४२ ॥

माहादैकलक्षणसुखस्वभावं सर्वज्ञपदं लभन्ते इत्यभिप्रायः ॥ ४१ ॥ एवमतीतानागतपर्याया  
वर्तमानज्ञाने प्रत्यक्षा न भवन्तीति बौद्धमतनिराकरणमुख्यत्वेन गाथात्रयं, तदनन्तरमिन्द्रिय-  
ज्ञानेन सर्वज्ञो न भवत्यतीन्द्रियज्ञानेन भवतीति नैयायिकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं च गाथा-  
द्वयमिति समुदायेन पञ्चमस्थले गाथापञ्चकं गतम् ॥ अथ रागद्वेषमोहाः क्वन्धकारणं, न च  
ज्ञानमित्यादिकथनरूपेण गाथापञ्चकपर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तद्यथा—यस्येष्टानिष्टविकल्परूपेण  
कर्मवन्धकारणभूतेन ज्ञेयविषये परिणमनमस्ति तस्य क्षायिकज्ञानं नास्तीत्यात्रेदयति;—परि-  
मदि णेयमद्वं णादा जदि नीलमिदं पीतमिदमित्यादिविकल्परूपेण यदि ज्ञेयार्थं परिणमति  
ज्ञातात्मा णेव खाइयं तस्स णाणांत्ति तस्यात्मनः क्षायिकज्ञानं नैवास्ति । अथवा ज्ञानमेव  
नास्ति । कस्मान्नास्ति । तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता तं पुरुषं कर्मतापन्नं जिनेन्द्राः  
कर्तारः उक्तवन्तः । किं कुर्वन्तं । क्षपयन्तमनुभवन्तं । किमेव । कर्मैव । निर्विकारसहजान-  
न्दैकसुखस्वभावानुभवनशून्यः सन्नदयागतं स्वकीयकर्मैव स अनुभवन्नास्ते न च ज्ञानमित्यर्थः ।  
अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—यदि ज्ञाता प्रत्यर्थं परिणम्य पश्चादर्थं जानाति तदा अर्थानामा-  
नन्त्यात्सर्वपदार्थपरिज्ञानं नास्ति । अथवा तृतीयव्याख्यानम्—वहिरङ्गज्ञेयपदार्थान् यदा छन्नस्था-  
वस्थायां चिन्तयति तदा रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनज्ञानं नास्ति, तदभावे क्षायिकज्ञानमेव

ज्ञानसे सर्वज्ञ पदयी कहांसे मिलसकती है ? कहींसेभी नहीं ॥ ४१ ॥ आगे अतीन्द्रि-  
यज्ञानमें इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें सविकल्परूप परिणमन क्रिया नहीं है ऐसा दिखलाते  
हैं,—[ यदि ] जो [ ज्ञाता ] जाननेवाला आत्मा [ ज्ञेयमर्थ ] ज्ञेयपदार्थको [ प-  
रिणमति ] संकल्प विकल्परूप होकर परिणमन करता है [ तदा ] तो [ तस्य ]  
उस आत्माके [ क्षायिकं ज्ञानं ] कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुआ अतीन्द्रियज्ञान [ नैव ]  
निश्चयसे नहीं है [ इति 'हेतोः' ] इसलिये [ जिनेन्द्राः ] सर्वज्ञदेव [ तं ] उस-  
विकल्पी जीवको [ कर्म क्षपयन्तं ] कर्मका अनुभव करनेवाला [ एव ] ही [ उ-  
क्तवन्तः ] कहते हैं । भावार्थ—जबतक आत्मा सविकल्परूप पदार्थोंको जानता है  
तब तक उसके क्षायिक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि जो जीव सविकल्पी है वह प्रत्येक

अथ कुतस्तर्हि ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया तत्फलं च भवतीति विवेचयति;—

उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया ।

तेसु हि मुह्दिदो रत्तो दुट्ठो वा वंधमणुहवदि ॥ ४३ ॥

उदयगताः कर्मांशा जिनवरवृषभैः नियत्या भणिताः ।

तेषु हि मूढो रक्तो दुष्टो वा बन्धमनुभवति ॥ ४३ ॥

संसारिणो हि नियमेन तावदुदयगताः पुद्गलकर्मांशाः सन्त्येव । अथ स सत्सु तेषु संचेतयमानो मोहरागद्वेषपरिणतत्वात् ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणया क्रियया युज्यते । तत एव च क्रियाफलभूतं बन्धमनुभवति । अतो मोहोदयात् क्रिया क्रियाफले न तु ज्ञानात् ॥ ४३ ॥

नोत्पद्यते इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥ अथानन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणमनेपि ज्ञानं बन्धकारणं न भवति, न च रागादिरहितकर्मादयोपीति निश्चिनोति;—उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया उदयगता उदयं प्राप्ताः कर्मांशा ज्ञानावरणादिमूलोत्तरकर्मप्रकृतिभेदाः जिनवरवृषभैर्नियत्या स्वभावेन भणिताः, किन्तु स्वकीयशुभाशुभफलं दत्त्वा गच्छन्ति, न च रागादिपरिणामरहिताः सन्तो बन्धं कुर्वन्ति । तर्हि कथं बन्धं करोति जीवः इति चेत् । तेषु विमूढो रक्तो दुष्टो वा बन्धमणुभवति तेषु उदयागतेषु सत्सु कर्मांशेषु मोहरागद्वेषविलक्षणनिजशुद्धात्मतत्त्वभावनारहितः सन् यो विशेषेण मूढो रक्तो दुष्टो वा भवति सः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिलक्षणमोक्षाद्विलक्षणं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदमिन्नं बन्धमनुभवति । ततः स्थितमेतत् ज्ञानं बन्धकारणं न भवति कर्मादयेपि, किन्तु रागादयो बन्धकारणमिति

पदार्थमें रागी हुआ मृगतृष्णा (घात) में जलकीसी बुद्धि करता हुआ कर्मोंको भोगता है । इसीलिये उसके निर्मल ज्ञानका लाभ नहीं है । परन्तु क्षायिकज्ञानीके भावरूप इन्द्रियोंके अभावसे पदार्थोंमें सविकल्परूप परिणति नहीं होती है, क्योंकि निरावरण अतीन्द्रियज्ञानसे अनंत सुख अपने साक्षात् अनुभव गोचर है । परोक्षज्ञानीके इन्द्रियोंके आधीन सविकल्परूप परिणति है इसलिये वह कर्मसंयोगसे प्राप्त हुए पदार्थोंको भोगता है ॥ ४२ ॥ आगे कहते हैं, कि ज्ञान बंधका कारण नहीं है, ज्ञेय-पदार्थोंमें जो रागद्वेषरूप परिणति है वही बंधका कारण है;—[ जिनवरवृषभैः ] गणधरादिकोंमें श्रेष्ठ अथवा बड़े ऐसे वीतराग देवने [ उदयगताः कर्मांशाः ] उदय अवस्थाको प्राप्त हुए कर्मोंके अंश अर्थात् ज्ञानावरणादि भेद [ नियत्या ] निश्चयसे [ भणिताः ] कहे हैं । [ तेषु ] उन उदयागत कर्मोंमें [ हि ] निश्चयकरके [ मूढः ] मोदी, [ रक्तः ] रागी [ वा ] अथवा [ दुष्टः ] दोषी [ बन्धं ] प्रकृति, स्थिति आदि चार प्रकारके बन्धको [ अनुभवति ] अनुभव करता है अर्थात् भोगता है । भावार्थ-संसारो सय जीवोंके कर्मका उदय है परंतु वह

अथ केवलानां क्रियापि क्रियाफलं न साधयतीत्यनुशास्तिः—

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मवदेसो य णियदयो तेसिं ।

अरहंताणं काले मायाचारोव्व इच्छीणं ॥ ४४ ॥

स्थाननिपद्याविहारा धर्मोपदेशश्च नियतयस्तेषाम् ।

अर्हतां काले मायाचार इव स्त्रीणाम् ॥ ४४ ॥

यथा हि महिलानां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविधयोग्यतासद्भावात् स्वभावभूत एव मा-  
ठनागुण्ठितो व्यवहारः प्रवर्तते, तथा हि केवलानां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविधयो-  
सद्भावात् स्थानमासनं विहरणं धर्मदेशना च स्वभावभूता एव प्रवर्तन्ते । अपि  
मेतदम्भोधरदृष्टान्तात् । यथा खल्वम्भोधराकारपरिणतानां पुद्गलानां गमनमव-  
गर्जनमम्बुवर्षं च पुरुषप्रयत्नमन्तरेणापि दृश्यन्ते, तथा केवलानां स्थानादयोऽबुद्धि-  
एव दृश्यन्ते । अतोऽमी स्थानादयो मोहोदयपूर्वकत्वाभावात् क्रियाविशेषा अपि  
लिनां क्रियाफलभूतबन्धसाधनानि न भवन्ति ॥ ४४ ॥

४३ ॥ अथ केवलानां रागाद्यभावाद्भर्मोपदेशादयोपि बन्धकारणं न भवन्तीति कथयतिः—

वहारा धम्मवदेसो य स्थानमूर्ध्वस्थितिर्निपद्या चासनं विहारो धर्मोपदेशश्च  
यदओ एते व्यापारा नियतयः स्वभावा अनोहिताः । केपां । तेसिं अरहंताणं तेषाम-  
तां निर्दोषिपरमात्मनां । क । काले अर्हदवस्थायां । क इव । मायाचारोव इत्थीणं  
याचार इव स्त्रीणामिति । तथाहि—यथा स्त्रीणां स्त्रीवेदोदयसद्भावात्प्रयत्नाभावेपि मायाचारः  
वर्तते, तथा भगवतां शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतमोहोदयकार्येहापूर्वप्रयत्नाभावेपि श्रीविहारादयः प्रव-  
। मेघानां स्थानगमनगर्जनजलवर्षणादिवद्वा । ततः स्थितमेतत् मोहाद्यभावात् क्रियावि-

बंधका कारण नहीं है । यदि कर्मजनित इष्ट अनिष्टभावोंमें जीव रागी द्वेषी मोही  
परिणमता है तभी बंध होता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि ज्ञान तथा क-  
उदयसे उत्पन्न क्रियायें बंधकी कारण नहीं हैं, बंधके कारण केवल राग द्वेष मोह-  
त्व हैं, इसकारण ये सवतरहसे त्यागने योग्य हैं ॥ ४३ ॥ आगे केवलीके कर्मका  
है और वचनादियोग क्रियाभी है परन्तु उनके रागादि भावोंके अभावसे बंध  
होता है;—[ तेषामर्हतां ] उन अरहंतदेवोंके [ काले ] कर्मोंके उदयकालमें  
[ स्थाननिपद्याविहाराः ] स्थान, आसन और विहार ये तीन काययोगकी क्रि-  
यायें [ च ] और [ धर्मोपदेशः ] दिव्यध्वनिसे निश्चयव्यवहारस्वरूप धर्मका उप-  
देश यह वचन योगकी क्रिया [ स्त्रीणां ] स्त्रियोंके स्वाभाविक [ मायाचार इव ]  
कुटिल आचरणकी तरह [ नियतयः ] निश्चित होती हैं । भावार्थ—वीतराग देवके  
औद्यिक भावोंसे काय, वचन योगकी क्रियायें अवश्य होती हैं परन्तु उन क्रियाओंमें  
भगवानका कोई बंध है, मोहके अभावसे इच्छाके बिना स्वभावसे ही होती हैं ।



अथ कुतस्तर्हि ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया तत्फलं च भवतीति विवेचयति;—

उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया ।

तेसु हि मुह्दो रत्तो दुट्ठो वा बन्धमणुहवदि ॥ ४३ ॥

उदयगताः कर्मांशा जिनवरवृषभैः नियत्या भणिताः ।

तेषु हि मूढो रक्तो दुष्टो वा बन्धमनुभवति ॥ ४३ ॥

संसारिणो हि नियमेन तावदुदयगताः पुद्गलकर्मांशाः सन्त्येव । अथ स सत्सु तेषु संचेतयमानो मोहरागद्वेषपरिणतत्वात् ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणया क्रियया युज्यते । तत एव च क्रियाफलभूतं बन्धमनुभवति । अतो मोहोदयात् क्रिया क्रियाफले न तु ज्ञानात् ॥ ४३ ॥

नेत्वद्यते इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥ अथानन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणमनेपि ज्ञानं बन्धकारणं न भवति, न च रागादिरहितकर्मोदयोपीति निश्चिनोति;—उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया उदयगता उदयं प्राप्ताः कर्मांशा ज्ञानावरणादिमूलोत्तरकर्मप्रकृतिभेदाः जिनवरवृषभैर्नियत्या स्वभावेन भणिताः, किन्तु स्वकीयशुभाशुभफलं दत्त्वा गच्छन्ति, न च रागादिपरिणामरहिताः सन्तो बन्धं कुर्वन्ति । तर्हि कथं बन्धं करोति जीवः इति चेत् । तेषु विमूढो रक्तो दुष्टो वा बन्धमणुभवदि तेषु उदयागतेषु सत्सु कर्मांशेषु मोहरागद्वेषविलक्षणनिजशुद्धात्मतत्त्वभावनारहितः सन् यो विशेषेण मूढो रक्तो दुष्टो वा भवति सः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिलक्षणमोक्षाद्विलक्षणं प्रकृतिस्वित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नं बन्धमनुभवति । ततः स्थितमेतत् ज्ञानं बन्धकारणं न भवति कर्मोदयेपि, किन्तु रागादयो बन्धकारणमिति

पदार्थमें रागी हुआ मृगलृण्णा (बाद्ध) में जलकीसी बुद्धि करता हुआ कर्मोंको भोगता है । इसीलिये उसके निर्मूल ज्ञानका लाभ नहीं है । परन्तु क्षायिकज्ञानीके भावरूप इन्द्रियोंके अभावसे पदार्थोंमें सविकल्परूप परिणति नहीं होती है, क्योंकि निरावरण अतीन्द्रियज्ञानसे अनन्त सुख अपने साक्षात् अनुभव गोचर है । परोक्षज्ञानीके इन्द्रियोंके आधीन सविकल्परूप परिणति है इसलिये वह कर्मसंयोगसे प्राप्त हुए पदार्थोंको भोगता है ॥ ४२ ॥ आगे कहते हैं, कि ज्ञान बंधका कारण नहीं है, ज्ञेय-पदार्थोंमें जो रागद्वेषरूप परिणति है वही बंधका कारण है;—[ जिनवरवृषभैः ] गणधरादिकोंमें श्रेष्ठ अथवा बड़े ऐसे वीतराग देवने [ उदयगताः कर्मांशाः ] उदय अवस्थाको प्राप्त हुए कर्मोंके अंश अर्थात् ज्ञानावरणादि भेद [ नियत्या ] निश्चयसे [ भणिताः ] कहे हैं । [ तेषु ] उन उदयागत कर्मोंमें [ हि ] निश्चयकरके [ मूढः ] मोदी, [ रक्तः ] रागी [ वा ] अथवा [ दुष्टः ] दोषी [ बन्धं ] प्रकृति, स्थिति आदि चार प्रकारके बन्धको [ अनुभवति ] अनुभव करता है अर्थात् भोगता है । भावार्थ-संसारी सब जीवोंके कर्मका उदय है परंतु वह

अथ केवलानां क्रियापि क्रियाफलं न साधयतीत्यनुशास्तिः—

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मवदेसो य णियदयो तेसिं ।

अरहंताणं काले मायाचारोव्व इच्छीणं ॥ ४४ ॥

स्थाननिपद्याविहारा धर्मोपदेशश्च नियतयस्तेषाम् ।

अर्हतां काले मायाचार इव स्त्रीणाम् ॥ ४४ ॥

यथा हि महिलानां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविधयोग्यतासद्भावात् स्वभावभूत एव मा-  
योपगुणठानगुण्ठितो व्यवहारः प्रवर्तते, तथा हि केवलानां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविधयो-  
ग्यतासद्भावात् स्थानमासनं विहरणं धर्मदेशना च स्वभावभूता एव प्रवर्तन्ते । अपि  
चाविरुद्धमेतदम्भोधरदृष्टान्तात् । यथा खल्वम्भोधराकारपरिणतानां पुद्गलानां गमनमव-  
स्थानं गर्जनमम्बुवर्षं च पुरुषप्रयत्नमन्तरेणापि दृश्यन्ते, तथा केवलानां स्थानादयोऽबुद्धि-  
पूर्वका एव दृश्यन्ते । अतोऽमी स्थानादयो मोहोदयपूर्वकत्वाभावात् क्रियाविशेषा अपि  
केवलानां क्रियाफलभूतबन्धसाधनानि न भवन्ति ॥ ४४ ॥

॥ ४३ ॥ अथ केवलानां रागाद्यभावाद्भर्मोपदेशादयोपि बन्धकारणं न भवन्तीति कथयतिः—  
ठाणणिसेज्जविहारा धम्मवदेसो य स्थानमूर्ध्वस्थितिर्निपद्या चासनं विहारो धर्मोपदेशश्च  
णियदओ एते व्यापारा नियतयः स्वभावा अनीहिताः । केपां । तेसिं अरहंताणं तेषाम-  
र्हतां निर्दोषिपरमात्मनां । क । काले अर्हदवस्थायां । क इव । मायाचारो व इत्थीणं  
मायाचार इव स्त्रीणामिति । तथाहि—यथा स्त्रीणां स्त्रीवेदोदयसद्भावात्प्रयत्नाभावेपि मायाचारः  
प्रवर्तते, तथा भगवतां शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतमोहोदयकार्येहापूर्वप्रयत्नाभावेपि श्रीविहारादयः प्रव-  
र्तन्ते । मेघानां स्थानगमनगर्जनजलवर्षणादिवद्वा । ततः स्थितमेतत् मोहाद्यभावात् क्रियावि-

उदय बंधका कारण नहीं है । यदि कर्मजनित इष्ट अनिष्टभावोंमें जीव रागी द्वेषी मोही  
होकर परिणमता है तभी बंध होता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि ज्ञान तथा क-  
र्मके उदयसे उत्पन्न क्रियायें बंधकी कारण नहीं हैं, बंधके कारण केवल राग द्वेष मोह-  
भाव हैं, इसकारण ये सवतरहसे त्यागने योग्य हैं ॥ ४३ ॥ आगे केवलीके कर्मका  
उदय है और वचनादियोग क्रियाभी है परन्तु उनके रागादि भावोंके अभावसे बंध  
नहीं होता है;—[ तेषामर्हतां ] उन अरहंतदेवोंके [ काले ] कर्मोंके उदयकालमें  
[ स्थाननिपद्याविहाराः ] स्थान, आसन और विहार ये तीन काययोगकी क्रि-  
यायें [ च ] और [ धर्मोपदेशः ] दिव्यध्वनिसे निश्चयव्यवहारस्वरूप धर्मका उप-  
देश यह वचन योगकी क्रिया [ स्त्रीणां ] स्त्रियोंके स्वाभाविक [ मायाचार इव ]  
कुटिल आचरणकी तरह [ नियतयः ] निश्चित होती हैं । भावार्थ—वीतराग देवके  
औदयिक भावोंसे काय, वचन योगकी क्रियायें अवश्य होती हैं परन्तु उन क्रियाओंमें  
भगवानका कोई यत्न नहीं है, मोहके अभावसे इच्छाके विना स्वभावसे ही होती हैं ।

अथैवं सति तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिञ्चित्कर एवेत्यवधारयति;—

पुण्यफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदयिगा ।

मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइयत्ति मदा ॥ ४५ ॥

पुण्यफला अर्हन्तस्तेषां क्रिया पुनर्हि औदयिकी ।

मोहादिभिः विरहिता तस्मात् सा क्षायिकीति मता ॥ ४५ ॥

अर्हन्तः खलु सकलसम्यक्परिपक्वपुण्यकल्पपादपफला एव भवन्ति । क्रिया तु तेषां या काचन सा सर्वापि तदुदयानुभावसंभावितात्मसंभूतितया किलौदयिक्येव । अथैवंभूतापि सा समस्तमहामोहमूर्द्धाभिपित्तस्कन्धावारस्यात्यन्तक्षये संभूतत्वान्मोहरागद्वेषरूपाणां मुपरक्षकानामभावाच्चैतन्यविकारकारणतामनासादयन्ती नित्यमौदयिकी कार्यभूतस्य बंधस्याकारणभूततया कार्यभूतस्य मोक्षस्य कारणभूततया च क्षायिक्येव । कथं हि नाम नानुमन्येत चेत्तर्हि कर्मविपाकोपि न तेषां स्वभावविधाताय ॥ ४५ ॥

शेषा अपि बन्धकारणं न भवन्तीति ॥ ४४ ॥ अथ पूर्वं यदुक्तं 'रागादिरहितकर्मोदयो बन्धकारणं न भवति विहारादिक्रिया च, तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढयति;—पुण्यफला अरहंता पञ्चमहाकल्याणपूजाजनकं त्रैलोक्यविजयकरं यत्तीर्थकरनाम पुण्यकर्म, तत्फलभूता अर्हन्तो भवन्ति तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया तेषां या दिव्यध्वनिरूपवचनव्यापारादिक्रिया सा निःक्रियशुद्धात्मतत्त्वविपरीतकर्मोदयजनितत्वात्सर्वाप्यौदयिकी भवति हि स्फुटं । मोहादीहिं विरहिया निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वप्रच्छादकममकाराहङ्कारोत्पादनसमर्थमोहादिविरहितत्वाद्यतः तम्हा सा खाइयत्ति मदा तस्मात् सा यद्यप्यौदयिकी तथापि निर्बिकारशुद्धात्मतत्त्वस्य विक्रियामकुर्वती सती क्षायिकी मता । अत्राह शिष्यः—'औदयिका भावाः बन्धकारणम्' इत्यागमवचनं

जैसे स्त्रीवेद कर्मके उदयसे स्त्रीके हाव भाव विलास विभ्रमादिक स्वभावहीसे होते हैं उसीप्रकार अरहंतके योगक्रियायें सहजही होती हैं । तथा जैसे मेघके जलका वरसना, गर्जना, चलना, स्थिर होना इत्यादि क्रियायें पुरुषके यज्ञके विनाही उसके स्वभावसे होती हैं उसीप्रकार इच्छाके विना औदयिक भावोंसे अरहंतोंके क्रिया होती हैं । इसीकारण केवलीके बंध नहीं है । रागादिकोंके अभावसे औदयिक क्रिया बंधके फलको नहीं देती ॥ ४४ ॥ आगे अरहंतोंके पुण्यकर्मका उदय बंधका कारण नहीं है यह कहते हैं;—[ अर्हन्तः ] सर्वज्ञवीतरागदेव [ पुण्यफलाः ] तीर्थकर नामा पुण्यप्रकृतिके फल हैं अर्थात् अरहंत पद तीर्थकर नाम पुण्यकर्मके उदयसे होता है । [ पुनः ] और [ तेषां ] उनकी [ क्रिया ] काय तथा वचनकी क्रिया [ हि ] निश्चयसे [ औदयिकी ] कर्मके उदयसे है । परंतु [ सा ] वह क्रिया [ मोहादिभिः ] मोह, राग, द्वेषादि भावोंसे [ विरहिता ] रहित है । [ तस्मात् ] इसलिये [ क्षायिकी ] मोहकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुई है [ इति मता ] ऐसी फर्ह गटं है ।

अथ केवलिनामिव सर्वेषामपि स्वभावविघाताभावं निषेधयति;—

जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण ।

संसारोवि ण विज्जदि सन्वेसिं जीवकायाणं ॥ ४६ ॥

यदि स शुभो वा अशुभो न भवति आत्मा स्वयं स्वभावेन ।

संसारोपि न विद्यते सर्वेषां जीवकायानाम् ॥ ४६ ॥

यदि खल्वेकान्तेन शुभाशुभभावस्वभावेन स्वयमात्मा न परिणमते तदा सर्वदैव स-  
र्वथा निर्विघातेन शुद्धस्वभावेनैवावतिष्ठते । तथा च सर्व एव भूतग्रामाः समस्तबन्ध-

तर्हि वृथा भवति । परिहारमाह—औदयिका भावा बन्धकारणं भवन्ति, परं किन्तु मोहोदय-  
द्विताः । द्रव्यमोहोदयेपि सति यदि शुद्धात्मभावनावलेन भावमोहेन न परिणमति तदा बन्धो-  
न भवति । यदि पुनः कर्मोदयमात्रेण बन्धो भवति तर्हि संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विच-  
मानत्वात्सर्वदैव बन्ध एव न मोक्ष इत्यभिप्रायः ॥ ४५ ॥ अथ यथार्हतां शुभाशुभपरिणाम-  
विकारो नास्ति तथैकान्तेन संसारिणामपि नास्तीति सांख्यमतानुसारिशिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति  
दूषणद्वारेण परिहारं ददाति;—जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहा-  
वेण यथैव शुद्धनयेनात्मा शुभाशुभाभ्यां न परिणमति तथैवाशुद्धनयेनापि स्वयं स्वकीयोपा-

हंत भगवानके जो दिव्यध्वनि, विहार आदि क्रिया हैं वे पूर्वबंधे कर्मके उदयसे हैं । वे  
आत्माके प्रदेशोंको चलायमान करती हैं परंतु रागद्वेषमोहभावोंके अभावसे आत्माके  
चैतन्यविकाररूप भावकर्मको उत्पन्न नहीं करतीं इसलिये औदयिक हैं, और आगे  
नवीन बंधमें कारणरूप नहीं हैं पूर्वकर्मके क्षयमें कारण हैं । तथा जिस कर्मके उदयसे  
वह क्रिया होती है उसकर्मका बंध अपना रस (फल) देकर खिग जाता है, इस अपेक्षा  
अरहंतोंकी क्रिया कर्मके क्षयका कारण है । इसीकारण उस क्रियाको क्षायिकीभी कहते  
हैं अर्थात् अरहंतोंकी दिव्यध्वनिआदि क्रिया नवीनबंधको करती नहीं है और पूर्वबंध-  
धका नाश करती है तब क्यों न क्षायिकी मानी जावै ? अवश्य मानने योग्य है । इससे  
यह बात सिद्ध हुई कि केवलीके बंध नहीं होता क्योंकि कर्मका फल आत्माके भावोंको  
घातता नहीं । मोहनीयकर्मके होनेपर क्रिया आत्मीक भावोंका घात करती है और उसके  
अभावसे क्रियाका कुछभी बल नहीं रहता ॥४५॥ आगे कहते हैं कि जैसे केवलीके परिणा-  
मोंमें विकार नहीं है वैसे अन्यजीवोंके परिणामोंमें विकारोंका अभावभी नहीं है;—[यदि]  
जो [ सः ] वह आत्मा [ स्वभावेन ] अपने स्वभावसे [ स्वयं ] आपही [ शुभः ]  
शुभपरिणामरूप [ वा ] अथवा [ अशुभः ] अशुभपरिणामरूप [ न भवति ]  
न होवे [ तदा ] तो [ सर्वेषां ] सब [ जीवकायानां ] जीवोंको [ संसार  
एव ] संसार परिणति ही [ न विद्यते ] नहीं मौजूद होवे । भावार्थ—आत्मा  
परिणामी है । जैसे स्फटिकमणि काले, पीले, लाल फूलके संयोगसे उसीके आकार

साधनशून्यत्वादाजवं जवाभावस्वभावतो नित्यमुक्ततां प्रतिपद्येरन् । तच्च नान्युपगम्यते ।  
आत्मनः परिणामधर्मत्वेन स्फटिकस्य जपातापिच्छरागस्वभावत्ववत् शुभाशुभभावत्व-  
द्योतनात् ॥ ४६ ॥

अथ पुनरपि प्रकृतमनुसृत्यातीन्द्रियज्ञानं सर्वज्ञत्वेनाभिनन्दति;—

जं तत्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं ।

अत्थं विचित्तविपमं तं णाणं खाइयं भणियं ॥ ४७ ॥

यत्तात्कालिकमितरं जानाति युगपत्समन्ततः सर्वम् ।

अर्थं विचित्रविपमं तत् ज्ञानं क्षायिकं भणितम् ॥ ४७ ॥

तत्कालकलितवृत्तिकमतीतोदर्ककालकलितवृत्तिकं चाप्येकपद एव समन्ततोपि सकल-  
मप्यर्थजातं, पृथक्त्ववृत्तस्वलक्षणलक्ष्मीकटाक्षितानेकप्रकारं व्यञ्जितवैचित्र्यमितरेतरविरोध-

दानकारणेन स्वभावेनाशुद्धनिश्चयरूपेणापि यदि न परिणमति तदा । किं दूषणं भवति ।  
संसारोवि ण विज्जदि निस्संसारशुद्धात्मस्वरूपात्प्रतिपक्षभूतो व्यवहारनयेनापि संसारो न वि-  
द्यते । केयां । सव्वेसिं जीवकायाणं सर्वेषां जीवसंघातानामिति । तथाहि—आत्मा ताव-  
त्परिणामी स च कर्मोपाधिनिमित्ते सति स्फटिकमणिरिवोपाधिं गृह्णाति, ततः कारणात्संसार-  
भावो न भवति । अथ मत्तं—संसाराभावः सांख्यानां दूषणं न भवति, भूषणमेव । नैवम् ।  
संसाराभावो हि मोक्षो भण्यते, स च संसारिजीवानां न दृश्यते, प्रत्यक्षविरोधादिति भावार्थः  
॥ ४६ ॥ एवं रागादयो बन्धकारणं न च ज्ञानमित्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन पृष्ठस्थले गाथा-  
पञ्चकं गतम् । अथ प्रथमं तावत् केवलज्ञानमेव सर्वज्ञस्वरूपं, तदनन्तरं सर्वपरिज्ञाने सति  
एकपरिज्ञानं, एकपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानमित्यादिकथनरूपेण गाथापञ्चकपर्यन्तं व्याख्यानं  
करोति । तद्यथा—अत्र ज्ञानप्रपञ्चव्याख्यानं प्रकृतं तावत्तत्प्रस्तुतमनुसृत्य पुनरपि केवलज्ञानं स-

काला पीला लालरूप परिणमन करता है, उसीप्रकार यह आत्मा अनादिकालसे परद्र-  
व्यके संयोगसे रागाद्वेषमोहरूप अज्ञानभावोंमें परिणमन करता है । इसकारण संसारभाव  
है । यदि आत्माको ऐसा ( परिणामी ) न मानें तो संसारही न होवै, सभी जीव  
अनादिकालसे लेकर मोक्षस्वरूपमें स्थित ( ठहरे ) कहलावें परन्तु ऐसा नहीं है । इससे  
सारांश यह निकला कि केवली शुभाशुभ भावरूप परिणमन नहीं करते हैं, बाकी सब  
संसारी जीव शुभ, अशुभभावोंमें परिणमते हैं ॥ ४६ ॥ आगे पूर्व कहागया अती-  
न्द्रिय ज्ञानही सयका जाननेवाला है, ऐसा फिर कहते हैं;—[ यत् ] जो ज्ञान [ स-  
मन्ततः ] सर्वांगसे [ तात्कालिकमितरं ] वर्तमानकालसंबंधी और उससे जुदी  
भूतभविष्यतकालसंबंधी पर्यायोंकरसहित [ विचित्रं ] अपनी लक्षणरूप लक्ष्मीसे  
अनेक प्रकार [ विपमं ] और मूर्त अमूर्तादि असमान जातिभेदोंसे विपम अर्थात्

धापितासमानजातीयत्वोद्दामितवैपम्यं क्षायिकं ज्ञानं किल जानीयात् । तस्य हि क्रमप्रवृत्तिहेतुभूतानां क्षयोपशमावस्थावस्थितज्ञानावरणीयकर्मपुद्गलानामत्यन्ताभावात्तात्कालिकमतात्कालिकं वाप्यर्थजातं तुल्यकालमेव प्रकाशेत । सर्वतो विशुद्धस्य प्रतिनियतदेशविशुद्धेरन्तःप्लवनात् समन्ततोपि प्रकाशेत । सर्वावरणक्षयाद्देशावरणक्षयोपशमस्यावस्थानात्सर्वमपि प्रकाशेत । सर्वप्रकारज्ञानावरणीयक्षयादसर्वप्रकारज्ञानावरणीयक्षयोपशमस्य विलयनाद्विचित्रमपि प्रकाशेत । असमानजातीयज्ञानावरणक्षयात्समानजातीयज्ञानावरणीयक्षयोपशमस्य विनाशनाद्विषममपि प्रकाशेत । अलमथवातिविस्तरेण, अनिवारितप्रसरप्रकाशशालितया क्षायिकज्ञानमवश्यमेव सर्वदा सर्वत्र सर्वथा सर्वमेव जानीयात् ॥ ४७ ॥

वर्षज्ञेन निरूपयति;—जं यज्ज्ञानं कर्तृ जाणदि जानाति । कं । अर्थं अर्थं पदार्थमिति विशेष्यपदं । किं विशिष्टं । तत्कालियमिदरं तात्कालिकं वर्तमानमितरं चातीतानागतम् । कथं जानाति । जुगवं युगपदेकसमये समंतदो समन्ततः सर्वात्मप्रदेशैः सर्वप्रकारेण वा । कतिसंख्योपेतं । सव्वं समस्तं । पुनरपि किंविशिष्टं । त्रिचिच्चं नानाभेदभिन्नं । पुनरपि किंरूपं । विसमं मूर्तामूर्तचेतनाचेतनादिजाल्यन्तरविशेषैर्विसदृशं तं गाणं खाइयं भणियं यदेवं गुणविशिष्टं ज्ञानं तत्क्षायिकं भणितम् । अभेदनयेन तदेव सर्वज्ञस्वरूपं तदेवोपादेयभूतानन्तमुखाद्यनन्तगुणानामाधारभूतं सर्वप्रकारोपादेयरूपेण भावनीयम् । इति तात्पर्यम् ॥४७॥

एकसा नहीं ऐसे [ सर्व अर्थ ] सबही पदार्थोंके समूहको [ युगपत् ] एकही समयमें [ जानाति ] जानता है [ तद्ज्ञानं ] उस ज्ञानको [ क्षायिकं ] क्षायिक अर्थात् कर्मके क्षयसे प्रगट हुआ अतीन्द्रिय ऐसा [ भणितं ] कहा है । भावार्थ—अतीत अनागत वर्तमानकालसंबंधी नानाप्रकार विषमतासहित समस्त पदार्थोंको सर्वांग एकसमयमें प्रकाशित करनेको एक अतीन्द्रिय क्षायिक केवलज्ञानही समर्थ है, अन्य किसी ज्ञानकी शक्ति नहीं है । ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे जो ज्ञान एकही वार सब पदार्थोंको नहीं जानता क्रमलिये जानता है ऐसे क्षायोपशमिक ज्ञानकाभी केवलज्ञानमें अभाव है, क्योंकि केवलज्ञान एकही वार सबको जानता है । और क्षायोपशमिकज्ञान एकदेश निर्मल है इसलिये सर्वांग वस्तुको नहीं जानता, क्षायिकज्ञान सर्वदेश विशुद्ध है इसीमें एकदेश निर्मलज्ञानभी समाजाता है इसलिये वस्तुको सर्वांगसे प्रकाशित करता है । और इस केवलज्ञानके सब आवरणका नाश है, मतिज्ञानावरणादि क्षयोपशमकाभी अभाव है, इसकारण सब वस्तुको प्रकाशित करता है । इस केवलज्ञानमें मतिज्ञानावरणादि पांचों कर्मोंका क्षय हुआ है, इससे नाना प्रकार वस्तुको प्रकाशता है । और असमानजातीय केवलज्ञानावरणका क्षय तथा समानजातीय मतिज्ञानावरणादि चारके क्षयोपशमका क्षय है, इसलिये विषमको प्रकाशित करता है । क्षायिकज्ञानकी महिमा कहां तक कही जावे अतिविस्तारसेभी पूर्णता नहीं होसकी,

अथ सर्वमजानन्नेकमपि न जानातीति निश्चिनोति;—

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तेकालिके तिहुवणत्थे ।

णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दब्बमेकं वा ॥ ४८ ॥

यो न विजानाति युगपदर्थान् त्रैकालिकान् त्रिभुवनस्थान् ।

ज्ञातुं तस्य न शक्यं सपर्ययं द्रव्यमेकं वा ॥ ४८ ॥

इह किलैकमाकाशद्रव्यमेकं धर्मद्रव्यमेकमधर्मद्रव्यमसंख्येयानि कालद्रव्याण्यनन्तानि जीवद्रव्याणि ततोऽनन्तगुणानि पुद्गलद्रव्याणि । तथैवामेव प्रत्येकमतीतानागतानुसूय-

अथ यः सर्वं न जानाति स एकमपि न जानातीति विचारयति:—जो ण विजाणदि यः कर्ता नैव जानाति । कथं । जुगवं युगपदेकक्षणे । कान् । अत्थे अर्थान् । कथंभूतान् । तिक्कालिगे त्रिकालपर्यायपरिणतान् । पुनरपि कथंभूतान् । तिहुवणत्थे त्रिभुवनस्थान् णादुं तस्स ण सक्कं तस्य पुरुषस्य सम्बन्धि ज्ञानं ज्ञातुं समर्थं न भवति । किं । दब्बं ज्ञेयद्रव्यं । किंविशिष्टं । सपज्जयं अनन्तपर्यायसहितं । कतिसंख्येयेतं । एगं वा एकमपीति । तथाहि—आकाशद्रव्यं तावदेकं, धर्मद्रव्यमेकं, तथैवाधर्मद्रव्यं च, लोकाकाशप्रमितासंख्येयकालद्रव्याणि, ततोऽनन्तगुणानि जीवद्रव्याणि, तेषामप्यनन्तगुणानि पुद्गलद्रव्याणि । तथैव सर्वेषां प्रत्येकमनन्तपर्यायाः, एतत्सर्वं ज्ञेयं तावत्त्रैकं विवक्षितं जीवद्रव्यं ज्ञातुं भवति । एवं तावद्वस्तुस्वभावः । तत्र यथा दहनः समस्तं दाहं दहन् सन् समस्तदाहहेतुकसमस्तदाहाकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनस्वरूपमुष्णपरिणततृणपर्णाद्याकारमात्मानं ( स्वकीयस्वभावं ) प-

यह अपने अखंडित प्रकाशकी सुन्दरताईसे सबकालमें सबजगह सबप्रकार सबको अचक्षुही जानता है ॥ ४७ ॥ आगे जो सबको नहीं जानता वह एककोभी नहीं जानता इस विचारको निश्चित करते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ त्रिभुवनस्थान् ] तीनलोकमें स्थित [ त्रैकालिकान् ] अतीत अनागत वर्तमान इन तीनकालसंबंधी [ अर्थान् ] पदार्थोंको [ युगपत् ] एकही समयमें [ न विजानाति ] नहीं जानता है [ तस्य ] उस पुरुषके [ सपर्ययं ] अनन्तपर्यायोंसहित [ एकं द्रव्यं वा ] एक द्रव्यकोभी [ ज्ञातुं ] जाननेकी [ शक्यं न ] सामर्थ्य नहीं है । भावार्थ—इस लोकमें आकाश द्रव्य एक है, धर्मद्रव्य एक है, अधर्मद्रव्यभी एक है, कालद्रव्य असंख्यात है, जीवद्रव्य अनंत है और पुद्गलद्रव्य जीवराशिसे अनंतगुणा अधिक है । इन छहों द्रव्योंके तीनकालसंबंधी अनंत २ भिन्न २ पर्याय हैं । ये सब द्रव्य पर्याय ज्ञेय हैं । इन द्रव्योंमें जाननेवाला एक जीवही है । जैसे अग्नि समस्त ईंधनको जलाता हुआ उसके निमित्तसे फाट टूट पत्ता बगैरः ईंधनके आकार होकर अपने एक अग्नि-स्वभावरूप परिणमता है, वसीप्रकार यह ज्ञायक ( जाननेवाला ) आत्मा सब ज्ञेयोंको

मानभेदभिन्ननिरोधिवृत्तिप्रवाहपरिपातिनोऽनन्ताः पर्याया एवमेतत्समस्तमपि समुदितं ज्ञेयं, इहैवैकं किञ्चिज्जीवद्रव्यं ज्ञातृ । अथ यथा समस्तं दाह्यं दहन् दहनः समस्तदाह्य-हेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनाकारमात्मानं परिणमति, तथा समस्तं ज्ञेयं जानन् ज्ञाता समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकज्ञानाकारं चेतनत्वात् खानुभवप्रत्यक्षमात्मानं परिणमति । एवं किल द्रव्यस्वभावः । यस्तु समस्तज्ञेयं न जानाति स समस्तं दाह्यमदहन् समस्तदाह्यहेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैक-दहनाकारमात्मानं दहन इव समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकज्ञाना-कारमात्मानं चेतनत्वात् खानुभवप्रत्यक्षत्वेपि न परिणमति । एवमेतदायाति यः सर्वं न जानाति स आत्मानं न जानाति ॥ ४८ ॥

रिणमति । तथायमात्मा समस्तं ज्ञेयं जानन् सन् समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणत-सकलैकाखण्डज्ञानरूपं स्वकीयमात्मानं परिणमति जानाति परिच्छिनत्ति । यथैव च स एव दहनः पूर्वोक्तलक्षणं दाह्यमदहन् सन् तदाकारेण न परिणमति, तथात्मापि पूर्वोक्तलक्षणं समस्तं ज्ञेयमजानन् पूर्वोक्तलक्षणमेव सकलैकाखण्डज्ञानाकारं स्वकीयमात्मानं न परिणमति न जानाति न परिच्छिनत्ति । अपरमप्युदाहरणं दीयते—यथा कोऽप्यन्धक आदित्यप्रकाश्यान् पदार्थानप-श्यन्नादित्यमिव, प्रदीपप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन् प्रदीपमिव, दर्पणस्वविम्बान्यपश्यन् दर्पणमिव, स्व-कीयदृष्टिप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन् हस्तपादाद्यवयवपरिणतं स्वकीयदेहाकारमात्मानं स्वकीयदृष्ट्या न पश्यति, तथायं विवक्षितात्मापि केवलज्ञानप्रकाश्यान् पदार्थानजानन् सकलाखण्डैककेवलज्ञानरूप-मात्मानमपि न जानाति । तत एतद्विषयं यः सर्वं न जानाति स आत्मानमपि न जानातीति ॥ ४८ ॥

जानता हुआ ज्ञेयके निमित्तसे समस्त ज्ञेयाकाररूप होकर अपने ज्ञायकस्वभावरूप परिणमन करता है, और अपनेद्वारा अपनेको आप वेदता ( जानता ) है । यह आत्म-द्रव्यका स्वभाव है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो सब ज्ञेयोंको नहीं जानता वह एक आत्माकोभी नहीं जानता, क्योंकि आत्माके ज्ञानमें सब ज्ञेयोंके आकार प्रतिबिम्बित होते हैं; इसकारण यह आत्मा सबका जाननेवाला है । इन सबके जाननेवाले आत्माको जब प्रत्यक्ष जानते हैं तब अन्य सब ज्ञेयभी जाने जाते हैं, क्योंकि सब ज्ञेय इसीमें प्रतिबिम्बित हैं । जो सबको जाने तो आत्माकोभी जाने और जो आत्माको जाने तो सबको जाने यह बात परस्पर एक है, क्योंकि सबका जानना एक आत्माके जाननेसे होता है । इसलिये आत्माका जानना और सबका जानना एक है । सारांश यह निकला कि जो सबको नहीं जानता वह एक आत्माकोभी नहीं जानता ॥ ४८ ॥



अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति:—

द्वयं अणंतपञ्चयमेकमणंताणि द्वयजादाणि ।

ण विजाणदि जदि जुगवं कथं सो सव्वाणि जाणादि ॥ ४९ ॥

द्रव्यमनन्तपर्यायमेकमनन्तानि द्रव्यजातानि ।

न विजानाति यदि युगपत् कथं स सर्वाणि जानाति ॥ ४९ ॥

आत्मा हि तावत्स्वयं ज्ञानमयत्वे सति ज्ञातृत्वात् ज्ञानमेव । ज्ञानं तु प्रत्यात्मवति प्रतिभासमयं महासामान्यं । तत्तु प्रतिभासमयानन्तविशेषव्यापि । ते च सर्वद्रव्यपर्याय-निबन्धनाः । अथ यः सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनानन्तविशेषव्यापिप्रतिभासमयमहासामान्य-रूपमात्मानं खानुभवप्रत्यक्षं न करोति स कथं प्रतिभासमयमहासामान्यव्याप्यप्रतिभा-

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति;—द्वयं द्वयं अणंतपञ्चयं अनन्तपर्यायं एगं एकं अणंताणि द्वयजादीणि अनन्तानि द्रव्यजातीनि जो ण विजाणदि यो न विजानाति अनन्तद्रव्यसमूहान् किह सो सव्वाणि जाणादि कथं स सर्वान् जानाति जुगवं युगपदेकसमये न कथमपीति । तथाहि—आत्मलक्षणं तावज्ज्ञानं तच्चाखण्डप्रतिभासमयं सर्वजीवसाधारणं महासामान्यम् । तच्च महासामान्यं ज्ञानमयानन्तविशेषव्यापि । ते च ज्ञानविशेषा अनन्तद्रव्यपर्यायाणां विषयभूतानां ज्ञेयभूतानां परिच्छेदका ग्राहका । अखण्डैकप्रतिभासमयं यन्महासामान्यं तत्स्वभावमात्मानं योसौ प्रत्यक्षं न जानाति स पुरुषः प्रतिभासमयेन महासामान्येन ये व्याप्ता अनन्तज्ञानविशेषास्तेषां विषयभूताः येऽनन्तद्रव्यपर्यायास्तान् कथं जानाति ? न कथमपि । अथ एतदायातं यः आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानातीति । तथा चोक्तम्—“एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वं भावा एकमावस्व-

आगे कहते हैं कि जो एकको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता;—[ यदि ] जो [ अनन्तपर्यायं एकं द्रव्यं ] अनन्तपर्यायवाले एक आत्मद्रव्यको [ नैव जानाति ] निश्चयसे नहीं जानता [ तदा ] तो [ सः ] वह पुरुष [ युगपत् ] एकही बार [ अनन्तानि ] अंतरहित [ सर्वाणि ] संपूर्ण [ द्रव्यजातानि ] द्रव्योंके समूह [ कथं ] कैसे [ जानाति ] जानसकता है ? भावार्थ—आत्माका लक्षण ज्ञान है । ज्ञान प्रकाशरूप है यह सब जीवराशिमें महासामान्य है, और अपने ज्ञानमयी अनन्तभेदोंसे व्याप्त है । ज्ञेयरूप अनन्तद्रव्यपर्यायोंके निमित्तसे ज्ञानके अनन्त भेद हैं । इसलिये अपने अनन्तविशेषणोंसे युक्त यह सामान्यज्ञान सबको जानता है । जो पुरुष ऐसे ज्ञानसंयुक्त आत्माको प्रत्यक्ष नहीं जानसकता वह सब पदार्थोंको कैसे जानसकेगा ? इसलिये 'एक आत्माके जाननेसे सब जाना जाता है । जो एक आत्माको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता', यह बात सिद्ध हुई । दूसरी बात यह है कि, आत्मा

समयानन्तविशेषनिबन्धनभूतसर्वद्रव्यपर्यायान् प्रत्यक्षी कुर्यात् ।—एवमेतदायाति य आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानाति । अथ सर्वज्ञानादात्मज्ञानमात्मज्ञानात्सर्वज्ञानमित्यवतिष्ठते । एवं च सति ज्ञानमयत्वेन स्वसंचेतकत्वादात्मनो ज्ञातृज्ञेययोर्वस्तुत्वेनान्यत्वे सत्यपि प्रतिभासप्रतिभास्यमानयोः स्वस्याभवस्थायामन्योन्यसंबलनेनात्यन्तमशक्यविवेचनत्वात्सर्वमात्मनि निरवांतमिव प्रतिभाति । यद्येवं न स्यात् तदा ज्ञानस्य परिपूर्णात्मसंचेतनाभावात् परिपूर्णस्यैकस्यात्मनोपि ज्ञानं न सिद्ध्येत् ॥ ४९ ॥

अथ क्रमकृतप्रवृत्त्या ज्ञानस्य सर्वगतत्वं न सिद्ध्यतीति निश्चिनोति;—

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अत्थे पडुच्च णाणिस्स ।

तं णेव ह्वदि णिच्चं ण स्वाइगं णेव सच्चवगदं ॥ ५० ॥

उत्पद्यते यदि ज्ञानं क्रमशोऽर्थान् प्रतीत्य ज्ञानिनः ।

तत्रैव भवति नित्यं न क्षायिकं नैव सर्वगतम् ॥ ५० ॥

यत्किल क्रमेणैकैकमर्थमालम्ब्य प्रवर्तते ज्ञानं तदेकार्थालम्बनादुत्पन्नमन्यार्थालम्बनात्

भावाः । एको भावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्वं भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः ॥ १ ॥” अत्राह शिष्यः—आत्मपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानं भवतीत्यत्र व्याख्यातं, तत्र तु पूर्वसूत्रे भणितं सर्वपरिज्ञाने सत्यात्मपरिज्ञानं भवतीति । यद्येवं तर्हि छन्नस्थानां सर्वपरिज्ञानं नास्यात्मपरिज्ञानं कथं भविष्यति ? आत्मपरिज्ञानाभावे चात्मभावनया कथं ? तदभावे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नास्तीति । परिहारमाह—परोक्षप्रमाणभूतश्रुतज्ञानेन सर्वपदार्था ज्ञायन्ते । कथमिति चेत्—लोकालोकादिपरिज्ञानं व्याप्तिज्ञानरूपेण छन्नस्थानामपि विद्यते, तच्च व्याप्तिज्ञानं परोक्षाकारेण केवलज्ञानविषयग्राहकं कथंचिदात्मैव भण्यते । अथवा स्वसंवेदनज्ञानेनात्मा ज्ञायते, ततश्च भावना क्रियते, तथा रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानभावनया केवलज्ञानं च जायते । इति नास्ति दोषः ॥ ४९ ॥ अथ क्रमप्रवृत्तज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति व्यवस्थापयति;—उप्पज्जदि जदि णाणं उत्पद्यते

और पदार्थोंका ज्ञेयज्ञायक संबंध है । यद्यपि अपने २ स्वरूपसे दोनों पृथक् २ हैं तभी ज्ञेयाकार ज्ञानके परिणामनसे सब ज्ञेयपदार्थ ऐसे भासते हैं मानों ज्ञानमें ठहरही रहे हैं । जो ऐसा आत्माको नहीं मानें तो वह अपने स्वरूपको संपूर्णपनेसे नहीं वेदे, तथा आत्माके ज्ञानकी महिमा न होवे । इसकारण जो आत्माको जानता है वह सबको जानता है, और जो सबको जानता है वह आत्माको जानता है । एकके जाननेसे सब जाने जाते हैं, और सबके जाननेसे एक जाना जाता है, यह कहना सिद्ध हुआ । यह कथन एकदेशज्ञानकी अपेक्षासे नहीं है किंतु केवलज्ञानकी अपेक्षासे है ॥ ४९ ॥ आगे जो ज्ञान पदार्थोंको क्रमसे जानता है वह सर्वगत नहीं होसकता ऐसा सिद्ध करते हैं;—[ यदि ] जो [ ज्ञानिनः ] आत्माका [ ज्ञानं ] चैतन्यगुण [ अर्थान् ]

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति:—

द्वयं अणंतपञ्जयमेकमणंताणि द्वयजादाणि ।

ण विजाणदि जदि जुगवं कथं सो सब्वाणि जाणादि ॥ ४९ ॥

द्रव्यमनन्तपर्यायमेकमनन्तानि द्रव्यजातानि ।

न विजानाति यदि युगपत् कथं स सर्वाणि जानाति ॥ ४९ ॥

आत्मा हि तावत्स्वयं ज्ञानमयत्वे सति ज्ञातृत्वात् ज्ञानमेव । ज्ञानं तु प्रत्यात्मैवर्ति प्रतिभासमयं महासामान्यं । तत्तु प्रतिभासमयानन्तविशेषव्यापि । ते च सर्वद्रव्यपर्याय-निबन्धनाः । अथ यः सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनानन्तविशेषव्यापिप्रतिभासमयमहासामान्य-रूपमात्मानं खानुभवप्रत्यक्षं न करोति स कथं प्रतिभासमयमहासामान्यव्याप्यप्रतिभा-

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति;—द्वयं द्रव्यं अणंतपञ्जयं अनन्तपर्यायं एगं एकं अणंताणि द्वयजादीणि अनन्तानि द्रव्यजातीनि जो ण विजाणदि यो न विजानाति अनन्तद्रव्यसमूहान् किह सो सब्वाणि जाणादि कथं स सर्वान् जानाति जुगवं युगपदेकसमये न कथमपीति । तथाहि—आत्मलक्षणं तावज्ज्ञानं तच्चाखण्डप्रतिभासमयं सर्वजीवसाधारणं महासामान्यम् । तच्च महासामान्यं ज्ञानमयानन्तविशेषव्यापि । ते च ज्ञानविशेषा अनन्तद्रव्यपर्यायाणां विषयभूतानां ज्ञेयभूतानां परिच्छेदका ग्राहका । अखण्डैकप्रतिभासमयं यन्महासामान्यं तत्स्वभावमात्मानं योसौ प्रत्यक्षं न जानाति स पुरुषः प्रतिभासमयेन महासामान्येन ये व्याप्ता अनन्तज्ञानविशेषास्तेषां विषयभूताः येऽनन्तद्रव्यपर्यायास्तान् कथं जानाति ? न कथमपि । अथ एतदायातं यः आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानातीति । तथा चोक्तम्—“एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्व-

आगे कहते हैं कि जो एकको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता;—[ यदि ] जो [ अनन्तपर्यायं एकं द्वयं ] अनन्तपर्यायवाले एक आत्मद्रव्यको [ नैव जानाति ] निश्चयसे नहीं जानता [ तदा ] तो [ सः ] वह पुरुष [ युगपत् ] एकही बार [ अनन्तानि ] अंतरहित [ सर्वाणि ] संपूर्ण [ द्रव्यजातानि ] द्रव्योंके समूह [ कथं ] कैसे [ जानाति ] जानसकता है ? भावार्थ—आत्माका लक्षण ज्ञान है । ज्ञान प्रकाशरूप है वह सब जीवराशिमें महासामान्य है, और अपने ज्ञानमयी अनन्तभेदोंसे व्याप्त है । शेररूप अनन्तद्रव्यपर्यायोंके निमित्तसे ज्ञानके अनन्त भेद हैं । इसलिये अपने अनन्तविशेषणोंसे युक्त यह सामान्यज्ञान सबको जानता है । जो पुरुष ऐसे ज्ञानसंयुक्त आत्माको प्रत्यक्ष नहीं जानसकता वह सब पदार्थोंको कैसे जानसकेगा ? इसलिये 'एक आत्माके जाननेसे सब जाना जाता है । जो एक आत्माको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता', यह बात सिद्ध हुई । दूसरी बात यह है कि, आत्मा

समयानन्तविशेषनिबन्धनभूतसर्वद्रव्यपर्यायान् प्रत्यक्षी कुर्यात् ।—एवमेतदायाति य आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानाति । अथ सर्वज्ञानादात्मज्ञानमात्मज्ञानात्सर्वज्ञानमित्यवतिष्ठते । एवं च सति ज्ञानमयत्वेन स्वसंचेतकत्वादात्मनो ज्ञातृज्ञेययोर्वस्तुत्वेनान्यत्वे सत्यपि प्रतिभासप्रतिभास्यमानयोः स्वस्यामवस्थायामन्योन्यसंबलनेनात्यन्तमशक्यविवेचनत्वात्सर्वमात्मनि निरवांतमिव प्रतिभाति । यद्येवं न स्यात् तदा ज्ञानस्य परिपूर्णात्मसंचेतनाभावात् परिपूर्णस्यैकस्यात्मनोपि ज्ञानं न सिद्ध्येत् ॥ ४९ ॥

अथ क्रमकृतप्रवृत्त्या ज्ञानस्य सर्वगतत्वं न सिद्ध्यतीति निश्चिनोति;—

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अत्थे पडुच्च णाणिस्स ।

तं णेव ह्वदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं ॥ ५० ॥

उत्पद्यते यदि ज्ञानं क्रमशोऽर्थान् प्रतीत्य ज्ञानिनः ।

तत्रैव भवति नित्यं न क्षायिकं नैव सर्वगतम् ॥ ५० ॥

यत्किल क्रमेणैकैकमर्थमालम्ब्य प्रवर्तते ज्ञानं तदेकार्थालम्बनादुत्पन्नमन्यार्थालम्बनात्

भावाः । एको भावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः ॥ १ ॥” अत्राह शिष्यः—  
आत्मपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानं भवतीत्यत्र व्याख्यातं, तत्र तु पूर्वसूत्रे भणितं सर्वपरिज्ञाने सत्यात्मपरिज्ञानं भवतीति । यद्येवं तर्हि छद्मस्थानां सर्वपरिज्ञानं नास्त्यात्मपरिज्ञानं कथं भविष्यति ? आत्मपरिज्ञानाभावे चात्मभावनया कथं ? तदभावे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नास्तीति । परिहारमाह—  
परोक्षप्रमाणभूतश्रुतज्ञानेन सर्वपदार्था ज्ञायन्ते । कथमिति चेत्—लोकालोकादिपरिज्ञानं व्याप्तिज्ञानरूपेण छद्मस्थानामपि विद्यते, तच्च व्याप्तिज्ञानं परोक्षाकारेण केवलज्ञानविषयप्राहकं कथंचिदात्मैव भण्यते । अथवा स्वसंवेदनज्ञानेनात्मा ज्ञायते, ततश्च भावनया क्रियते, तथा रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानभावनया केवलज्ञानं च जायते । इति नास्ति दोषः ॥ ४९ ॥  
अथ क्रमप्रवृत्तज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति व्यवस्थापयति;—उप्पज्जदि जदि णाणं उत्पद्यते

और पदार्थोंका ज्ञेयज्ञायक संबंध है । यद्यपि अपने २ स्वरूपसे दोनों पृथक् २ हैं ताँभी ज्ञेयाकार ज्ञानके परिणमनसे सब ज्ञेयपदार्थ ऐसे भासते हैं मानों ज्ञानमें ठहरही रहे हैं । जो ऐसा आत्माको नहीं मानें तो वह अपने स्वरूपको संपूर्णपनेसे नहीं वेदे, तथा आत्माके ज्ञानकी महिमा न होवे । इसकारण जो आत्माको जानता है वह सबको जानता है, और जो सबको जानता है वह आत्माको जानता है । एकके जाननेसे सब जाने जाते हैं, और सबके जाननेसे एक जाना जाता है, यह कहना सिद्ध हुआ । यह कथन एकदेशज्ञानकी अपेक्षासे नहीं है किंतु केवलज्ञानकी अपेक्षासे है ॥ ४९ ॥  
आगे जो ज्ञान पदार्थोंको क्रमसे जानता है वह सर्वगत नहीं होसकता ऐसा सिद्ध करते हैं;—[ यदि ] जो [ ज्ञानिनः ] आत्माका [ ज्ञानं ] चैतन्यगुण [ अर्थान् ]

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति:—

द्वयं अणंतपञ्चयमेकमणंताणि द्वयंजादाणि ।

ण विजाणदि जदि जुगवं कथ सो सब्वाणि जाणादि ॥ ४९ ॥

द्रव्यमनन्तपर्यायमेकमनन्तानि द्रव्यजातानि ।

न विजानाति यदि युगपत् कथं स सर्वाणि जानाति ॥ ४९ ॥

आत्मा हि तावत्स्वयं ज्ञानमयत्वे सति ज्ञातृत्वात् ज्ञानमेव । ज्ञानं तु प्रत्यात्मवति प्रतिभासमयं महासामान्यं । तत्तु प्रतिभासमयानन्तविशेषव्यापि । ते च सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनाः । अथ यः सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनानन्तविशेषव्यापिप्रतिभासमयमहासामान्यरूपमात्मानं स्वानुभवप्रत्यक्षं न करोति स कथं प्रतिभासमयमहासामान्यव्याप्यप्रतिभा-

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति;—द्वयं द्रव्यं अणंतपञ्चयं अनन्तपर्यायं एकं एकं अणंताणि द्वयजादीणि अनन्तानि द्रव्यजातीनि जो ण विजाणदि यो न विजानाति अनन्तद्रव्यसमूहान् किह सो सब्वाणि जाणादि कथं स सर्वान् जानाति जुगवं युगपदेकसमये न कथमपीति । तथाहि—आत्मलक्षणं तावज्ज्ञानं तच्चाखण्डप्रतिभासमयं सर्वजीवसाधारणं महासामान्यम् । तच्च महासामान्यं ज्ञानमयानन्तविशेषव्यापि । ते च ज्ञानविशेषा अनन्तद्रव्यपर्यायाणां विषयभूतानां ज्ञेयभूतानां परिच्छेदका ग्राहका । अखण्डैकप्रतिभासमयं यन्महासामान्यं तत्स्वभावमात्मानं योसौ प्रत्यक्षं न जानाति स पुरुषः प्रतिभासमयेन महासामान्येन ये व्याप्ता अनन्तज्ञानविशेषास्तेषां विषयभूताः येऽनन्तद्रव्यपर्यायास्तान् कथं जानाति ? न कथमपि । अथ एतदायातं यः आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानातीति । तथा चोक्तम्—“एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्व-

आगे कहते हैं कि जो एकको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता;—[ यदि ] जो [ अनन्तपर्याय एकं द्रव्यं ] अनंतपर्यायवाले एक आत्मद्रव्यको [ नैव जानाति ] निश्चयसे नहीं जानता [ तदा ] तो [ सः ] वह पुरुष [ युगपत् ] एकही बार [ अनन्तानि ] अंतरहित [ सर्वाणि ] संपूर्ण [ द्रव्यजातानि ] द्रव्योंके समूह [ कथं ] कैसे [ जानाति ] जानसकता है ? भावार्थ—आत्माका लक्षण ज्ञान है । ज्ञान प्रकाशरूप है वह सब जीवराशिमें महासामान्य है, और अपने ज्ञानमयी अनंतभेदोंसे व्याप्त है । श्लेयरूप अनंतद्रव्यपर्यायोंके निमित्तसे ज्ञानके अनंत भेद हैं । इसलिये अपने अनंतविशेषणोंसे युक्त यह सामान्यज्ञान सबको जानता है । जो पुरुष ऐसे ज्ञानसंयुक्त आत्माको प्रत्यक्ष नहीं जानसकता वह सब पदार्थोंको कैसे जानसकेगा ? इसलिये 'एक आत्माके जाननेसे सब जाना जाता है । जो एक आत्माको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता', यह बात सिद्ध हुई । दूसरी बात यह है कि, आत्मा

समयानन्तविशेषनिबन्धनभूतसर्वद्रव्यपर्यायान् प्रत्यक्षी कुर्यात् । एवमेतदायातिः य आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानाति । अथ सर्वज्ञानादात्मज्ञानमात्मज्ञानात्सर्वज्ञानमित्यवतिष्ठते । एवं च सति ज्ञानमयत्वेन स्वसंचेतकत्वादात्मनो ज्ञातृज्ञेययोर्वस्तुत्वेनान्यत्वे सत्यपि प्रतिभासप्रतिभास्यमानयोः स्वस्यामवस्थायामन्योन्यसंबलनेनात्यन्तमशक्यविवेचनत्वात्सर्वमात्मनि निरवांतमिव प्रतिभाति । यद्येवं न स्यात् तदा ज्ञानस्य परिपूर्णात्मसंचेतनाभावात् परिपूर्णस्यैकस्यात्मनोपि ज्ञानं न सिद्धेत् ॥ ४९ ॥

अथ क्रमकृतप्रवृत्त्या ज्ञानस्य सर्वगतत्वं न सिद्धवतीति निश्चिनोति;—

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अत्थे पडुच्च णाणिस्स ।

तं णेव ह्यदि णिच्चं ण खाइगं णेव सच्चवगदं ॥ ५० ॥

उत्पद्यते यदि ज्ञानं क्रमशोऽर्थान् प्रतीत्य ज्ञानिनः ।

तत्रैव भवति नित्यं न क्षायिकं नैव सर्वगतम् ॥ ५० ॥

यत्किल क्रमेणैकैकमर्थमालम्ब्य प्रवर्तते ज्ञानं तदेकार्यालम्बनादुत्पन्नमन्यार्थालम्बनात्

भावाः । एको भावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः ॥ १ ॥” अत्राह शिष्यः— आत्मपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानं भवतीत्यत्र व्याख्यातं, तत्र तु पूर्वसूत्रे भणितं सर्वपरिज्ञाने सत्यात्मपरिज्ञानं भवतीति । यद्येवं तर्हि छन्नस्थानां सर्वपरिज्ञानं नास्यात्मपरिज्ञानं कथं भविष्यति ? आत्मपरिज्ञानाभावे चात्मभावना कथं ? तदभावे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नास्तीति । परिहारमाह— परोक्षप्रमाणभूतश्रुतज्ञानेन सर्वपदार्था ज्ञायन्ते । कथमिति चेत्—लोकालोकादिपरिज्ञानं व्याप्तिज्ञानरूपेण छन्नस्थानामपि विद्यते, तच्च व्याप्तिज्ञानं परोक्षाकारेण केवलज्ञानविषयग्राहकं कथंचिदात्मैव भण्यते । अथवा स्वसंवेदनज्ञानेनात्मा ज्ञायते, ततश्च भावना क्रियते, तथा रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानभावनया केवलज्ञानं च जायते । इति नास्ति दोषः ॥ ४९ ॥ अथ क्रमप्रवृत्तज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति व्यवस्थापयति;—उप्पज्जदि जदि णाणं उत्पद्यते-

और पदार्थोंका ज्ञेयज्ञायक संबंध है । यद्यपि अपने २ स्वरूपसे दोनों पृथक् २ हैं ताँभी ज्ञेयाकार ज्ञानके परिणमनसे सब ज्ञेयपदार्थ ऐसे भासते हैं मानों ज्ञानमें टहरही रहे हैं । जो ऐसा आत्माको नहीं मानें तो वह अपने स्वरूपको संपूर्णपनेसे नहीं वेदें, तथा आत्माके ज्ञानकी महिमा न होयै । इसकारण जो आत्माको जानता है वह सबको जानता है, और जो सबको जानता है वह आत्माको जानता है । एकके जाननेसे सब जाने जाते हैं, और सबके जाननेसे एक जाना जाता है, यह कहना सिद्ध हुआ । यह कथन एकदेशज्ञानकी अपेक्षासे नहीं है किंतु केवलज्ञानकी अपेक्षामें है ॥ ४९ ॥ आगे जो ज्ञान पदार्थोंको क्रमसे जानता है वह सर्वगत नहीं होसकता ऐसा सिद्ध करते हैं;—[ यदि ] जो [ ज्ञानिनः ] आत्माका [ ज्ञानं ] चैतन्यगुण [ अर्थान् ]

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति:—

द्वयं अणंतपञ्चयमेकमणंताणि द्वयजादाणि ।

ण विजाणदि जदि जुगवं कथं सो सच्चाणि जाणादि ॥ ४९ ॥

द्रव्यमनन्तपर्यायमेकमनन्तानि द्रव्यजातानि ।

न विजानाति यदि युगपत् कथं स सर्वाणि जानाति ॥ ४९ ॥

आत्मा हि तावत्स्वयं ज्ञानमयत्वे सति ज्ञातृत्वात् ज्ञानमेव । ज्ञानं तु प्रत्यात्मवर्ति प्रतिभासमयं महासामान्यं । तत्तु प्रतिभासमयानन्तविशेषव्यापि । ते च सर्वद्रव्यपर्याय-निबन्धनाः । अथ यः सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनानन्तविशेषव्यापिप्रतिभासमयमहासामान्य-रूपमात्मानं खानुभवप्रत्यक्षं न करोति स कथं प्रतिभासमयमहासामान्यव्याप्यप्रतिभा-

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति:—द्वयं द्रव्यं अणंतपञ्चयं अनन्तपर्यायं एगं एकं अणंताणि द्रव्यजादीणि अनन्तानि द्रव्यजातीनि जो ण विजाणदि यो न विजानाति अनन्तद्रव्यसमूहान् किह सो सच्चाणि जाणादि कथं स सर्वान् जानाति जुगवं युगपदेकसमये न कथमपीति । तथाहि—आत्मलक्षणं तावज्ज्ञानं तच्चाखण्डप्रतिभासमयं सर्वजीवसाधारणं महासामान्यम् । तच्च महासामान्यं ज्ञानमयानन्तविशेषव्यापि । ते च ज्ञानविशेषा अनन्तद्रव्यपर्यायाणां विषयभूतानां ज्ञेयभूतानां परिच्छेदका ग्राहका । अखण्डैकप्रतिभासमयं यन्महासामान्यं तत्स्वभावमात्मानं योसौ प्रत्यक्षं न जानाति स पुरुषः प्रतिभासमयेन महासामान्येन ये व्याप्ता अनन्तज्ञानविशेषास्तेषां विषयभूताः येऽनन्तद्रव्यपर्यायास्तान् कथं जानाति ? न कथमपि । अथ एतदायातं यः आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानातीति । तथा चोक्तम्—“एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्व-

आगे कहते हैं कि जो एकको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता;—[ यदि ] जो [ अनन्तपर्यायं एकं द्रव्यं ] अनन्तपर्यायवाले एक आत्मद्रव्यको [ नैव जानाति ] निश्चयसे नहीं जानता [ तदा ] तो [ सः ] वह पुरुष [ युगपत् ] एकही पार [ अनन्तानि ] अंतरहित [ सर्वाणि ] संपूर्ण [ द्रव्यजातानि ] द्रव्योंके समूह [ कथं ] कैसे [ जानाति ] जानसकता है ? भावार्थ—आत्माका लक्षण ज्ञान है । ज्ञान प्रकाशरूप है वह सब जीवराशिमें महासामान्य है, और अपने ज्ञानमयी अनन्तभेदोंसे व्याप्त है । ज्ञेयरूप अनन्तद्रव्यपर्यायोंके निमित्तसे ज्ञानके अनन्त भेद हैं । इसलिये अपने अनन्तविशेषणोंसे युक्त यह सामान्यज्ञान सबको जानता है । जो पुरुष ऐसे ज्ञानसंयुक्त आत्माको प्रत्यक्ष नहीं जानसकता वह सब पदार्थोंको कैसे जानसकेगा ? इसलिये ‘एक आत्माके जाननेसे सब जाना जाता है । जो एक आत्माको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता’, यह बात सिद्ध हुई । दूसरी बात यह है कि, आत्मा

तेते ज्ञानं तद्भ्रूलोकीर्णन्यायावस्थितसमस्तवस्तुज्ञेयाकारतयाधिरोपितनित्यत्वं प्रतिपन्नसम-  
स्तव्यक्तित्वेनाभिव्यक्तस्वभावभासिक्षायिकभावं त्रैकाल्येन नित्यमेव विपरीकृतां सकला-  
मपि सर्वार्थसंभूतिमनन्तजातिप्रापितवैचित्र्यां परिच्छिन्ददक्रमसमाक्रान्तानन्तद्रव्यक्षेत्रकाल-  
भावतया प्रकटीकृताद्भुतमाहात्म्यं सर्वगतमेव स्यात् ॥ ५१ ॥

अथ ज्ञानिनो ज्ञप्तिक्रियासद्भावेपि क्रियाफलभूतं बन्धं प्रतिषेधयन्नुपसंहरति;—

ण विपरिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अत्थेसु ।

जाणण्णवि ते आदा अवंधगो तेण पण्णत्तो ॥ ५२ ॥

नापि परिणमति न गृह्णाति उत्पद्यते नैव तेष्वर्थेषु ।

जानन्नपि तानात्मा अवन्धकस्तेन प्रज्ञप्तः ॥ ५२ ॥

कालं । पुनरपि किंविशिष्टं । सखलं समस्तं । पुनरपि कथंभूतं । सञ्चरथ संभवं सर्वत्र  
लोके संभवं समुत्पन्नं स्थितं । पुनश्च किंरूपं । चित्तं नानाजातिभेदेन विचित्रमिति । तथाहि—  
युगपत्सकलप्राहकज्ञानेन सर्वज्ञो भवतीति ज्ञात्वा किं कर्तव्यं । ज्योतिष्कमध्रवादरससिद्ध्यादीनि  
यानि खण्डविज्ञानानि मूढजीवानां चित्तचमत्कारकारणानि परमात्मभावनाविनाशकानि च त-  
त्राग्रहं त्यक्त्वा जगद्व्यकालत्रयसकलवस्तु युगपत्प्रकाशकमविनश्यरमखण्डैकप्रतिभासरूपं सर्वज्ञ-  
शब्दवाच्यं यत्केवलज्ञानं तस्यैवोत्पत्तिकारणभूतं यत्समस्तरागादिविकल्पजालेन रहितं सहज-  
शुद्धात्मनोऽभेदज्ञानं तत्र भावना कर्तव्या, इति तात्पर्यम् ॥ ५१ ॥ एवं केवलज्ञानमेव सर्वज्ञ  
इति कथनरूपेण गाथैका, तदनन्तरं सर्वपदार्थपरिज्ञानमिति द्वितीया चेति । ततश्च क्रमप्रवृत्त-  
ज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति प्रथमगाथा, युगपद्ग्राहकेण स भवतीति द्वितीया चेति समुदायेन  
सप्तमस्थले गाथापञ्चकं गतम् । अथ पूर्वं यदुक्तं पदार्थपरिच्छित्तिसद्भावेऽपि रागद्वेषमोहाभावात्

वत्र संभवं ] सद्य लोकमें तिष्ठते [ चित्रं ] नानाप्रकारके [ सकलं ] सद्य पदार्थ  
[ युगपत् ] एकही वार [ जानाति ] जानता है । [ अहो ] हे भव्यजीवो [ हि ]  
निश्चयकर यह [ ज्ञानस्य ] ज्ञानकी [ माहात्म्यं ] महिमा है । भावार्थ—जो ज्ञान  
एकही वार सकल पदार्थोंका अवलंबनकर प्रवर्तता है वह नित्य है, क्षायिक है और सर्वगत  
है । जिसकारण केवलज्ञानमें सद्य पदार्थ टकोत्कीर्णन्यायसे प्रतिभासते हैं औरप्रकार  
नहीं । इस ज्ञानको कुल औरजानना अवशेष ( बांकी ) नहीं है जो इसमें ज्ञेयाकारोंकी  
पलटना होवै, इसकारण यह ज्ञान नित्य है । इस ज्ञानकी कोई शक्ति कर्मसे ढंकी हुई  
नहीं है अनंतशक्तियां खुली हैं, इसलिये यह ज्ञान क्षायिक है । और यह अनंतद्रव्य, क्षेत्र,  
काल, भावोंको प्रगट करता है इससे यह ज्ञान सर्वगत है । सारांश—केवलज्ञानकी म-  
हिमा कोईभी नहीं कहसकता, ऐसेही ज्ञानसे सर्वज्ञ पदकी सिद्धि होती है ॥ ५१ ॥  
आगे केवलीके ज्ञानकी क्रिया है परंतु क्रियाका फल बंध नहीं है, ऐसा कथन संक्षेपसे  
हकर आचार्य ज्ञानाधिकार पूरा करते हैं;—[ आत्मा ] केवलज्ञानी शुद्धात्मा



प्रलीयमानं नित्यमसंत्कर्मोदयादेकां व्यक्तिं प्रतिपन्नं पुनर्व्यक्त्यन्तरं प्रतिपद्यमानं क्षायिक-  
मन्यसदनन्तद्रव्यक्षेत्रकालभावानामान्तुमशक्तत्वात् सर्वगतं न स्यात् ॥ ५० ॥

अथ यौगपद्यप्रवृत्त्यैव ज्ञानस्य सर्वगतत्वं सिद्धयतीति व्यवतिष्ठतेः—

तेकालणिच्चविसमं सकलं सब्वत्थ संभवं चित्तं ।

जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं ॥ ५१ ॥

त्रैकाल्यनित्यविषमं सकलं सर्वत्र संभवं चित्रम् ।

युगपज्जानाति जैनमहो हि ज्ञानस्य माहात्म्यम् ॥ ५१ ॥

क्षायिकं हि ज्ञानमतिशयास्पदीभूतपरममाहात्म्यं, यत्तु युगपदेव सर्वार्थानालम्ब्य प्रव-

ज्ञानं यदि चेत्—क्रमसो क्रमशः सकाशात् । किं कृत्वा । अट्टे पडुच्च त्रेयार्थानाश्रित्य ।  
कस्य । णाणिस्स ज्ञानिनः आत्मनः तं णेव ह्वदि णिच्चं उत्पत्तिनिमित्तभूतपदार्थविनाशे  
तस्यापि विनाश इति नित्यं न भवति । ण खाइयं ज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमाधीनत्वात्  
क्षायिकमपि न भवति । णेव सब्वगयं यत् एव पूर्वोक्तप्रकारेण पराधीनत्वेन नित्यं न भवति,  
क्षयोपशमाधीनत्वेन क्षायिकं न भवति, तत् एव युगपत्समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावानां परिज्ञान-  
सामर्थ्याभावात्सर्वगतं न भवति । अत एतत्स्थितं यदज्ञानं क्रमेणार्थान् प्रतीत्य जायते तेन  
सर्वज्ञो न भवति । इति ॥ ५० ॥ अथ युगपत्परिच्छित्तिरूपज्ञानेनैव सर्वज्ञो भवतीत्यावेद-  
यतिः—जाणदि जानाति । किं कर्तुं । जोण्हं जैनज्ञानं । कथं । जुगवं युगपदेकसमये  
अहो हि णाणस्स माहप्पं अहो हि स्फुटं जैनज्ञानस्य माहात्म्यं पश्यताम् । किं जानाति ।  
अर्थमित्यभ्याहारः । कथंभूतं । तिकालणिच्चविसयं त्रिकालविषयं त्रिकालगतं नित्यं सर्व-

पदार्थोको [ क्रमशः ] क्रमसे [ प्रतीत्य ] अवलम्बन करके [ उत्पद्यते ] उत्पन्न  
होता है [ तदा ] तो [ तत् ] वह ज्ञान [ नैव ] न तो [ नित्यं ] अविनाशी  
[ भवति ] है [ न क्षायिकं ] न क्षायिक है और [ नैव सर्वगतं ] न सबका  
जाननेवाला होता है । भावार्थ—जो ज्ञान एक २ पदार्थका अवलम्बन ( ग्रहण )  
करके क्रमसे प्रवर्तता है, एकही बार सबको नहीं जानता है वह ज्ञान विनाशीक है,  
एकपदार्थके अवलम्बनसे उत्पन्न होता है दूसरेके ग्रहणसे नष्ट होता है, इसकारण अ-  
नित्य है । यही ज्ञानावरणीकर्मके क्षयोपशमसे हीनाधिक होता है इसलिये क्षायिकभी  
नहीं है किन्तु क्षयोपशमरूप है । और अनन्तद्रव्य क्षेत्र काल भाव जाननेमें असमर्थ है,  
इसवास्ते सबके न जाननेसे असर्वगत है । सारांश यह है कि, जिस ज्ञानसे पदार्थ  
क्रमपूर्वक जाने जाते हैं वह ज्ञान पराधीन है । ऐसे ज्ञानसे सर्वज्ञ पदका होना अस्तित्व  
है अर्थात् सर्वज्ञ नहीं कदा जाता ॥ ५० ॥ आगे जो ज्ञान एकही बार सबको जानता  
है उसज्ञानसे सर्वज्ञ पदकी सिद्धि है ऐसा कहते हैंः—[ जैनं ] केवलज्ञान [ त्रैका-  
ल्यनित्यविषमं ] अतीतादि तीनों फालसे सदाकाल ( हमेशा ) असम ऐसे [ स-

अथ ज्ञानादभिन्नस्य सौख्यस्य स्वरूपं प्रपञ्चयन् ज्ञानसौख्ययोः हेयोपादेयत्वं चि-  
न्तयति;—

अत्थि अमुत्तं मुत्तं अदिंदियं इंदियं च अत्थेसु ।

णाणं च तथा सोक्खं जं तेसु परं च तं णेयं ॥ ५३ ॥

अस्त्यमूर्तं मूर्तमतीन्द्रियमैन्द्रियं चार्थेषु ।

ज्ञानं च तथा सौख्यं यत्तेषु परं च तत् ज्ञेयम् ॥ ५३ ॥

अत्र ज्ञानं सौख्यं च मूर्तमिन्द्रियजं चैकमस्ति । इतरदमूर्तमतीन्द्रियं चास्ति । तत्र

अथ ज्ञानप्रपञ्चव्याख्यानानन्तरं ज्ञानाधारसर्वज्ञं नमस्करोति;—

तस्स णमाइं लोगो देवासुरमणुअरायसंबंधो ।

भत्तो करेदि णिच्चं उवजुत्तो तं तहावि अहं ॥ २ ॥

करेदि करोति । स कः । लोगो लोकः । कथंभूतः । देवासुरमणुअरायसंबंधो दे-  
वासुरमनुष्यराजसंबन्धः । पुनरपि कथंभूतः । भत्तो भक्तः । णिच्चं नित्यं सर्वकालं । पुनरपि  
किंविशिष्टः । उवजुत्तो उपयुक्त उद्यतः । इत्थम्भूतो लोकः कां करोति । णमाइं नमस्यां  
नमस्क्रियां । कस्य । तस्स तस्य पूर्वोक्तसर्वज्ञस्य । तं तहावि अहं तं सर्वज्ञं तथा तेनैव  
प्रकारेणाहमपि ग्रन्थकर्ता नमस्करोमीति । अयमन्वर्थः—यथा देवेन्द्रचक्रवर्त्यादयोऽनन्ताक्षय-  
सुखादिगुणास्पदं सर्वज्ञस्वरूपं नमस्कुरुवन्ति, तथैवाहमपि तत्पदाभिलाषी परमभक्त्या प्रणमामि  
॥ २ ॥ एवमष्टाभिः स्थलैर्द्वात्रिंशद्गाथास्तदनन्तरं नमस्कारगाथा चेति समुदायेन त्रयस्त्रिंश-  
त्सूत्रैर्ज्ञानप्रपञ्चनामा तृतीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः । अथ सुखप्रपञ्चाभिधानान्तराधिकारेऽष्टा-  
दश गाथा भवन्ति । अत्र पञ्चस्थलानि, तेषु प्रथमस्थले “अत्थि अमुत्तं” इत्याद्यधिकारगा-  
थासूत्रमेकं, तदनन्तरमतीन्द्रियज्ञानमुख्यत्वेन “जं पेच्छदो” इत्यादि सूत्रमेकं, अथेन्द्रियज्ञानमु-  
ख्यत्वेन “जीवो सयं अमुत्तो” इत्यादि गाथाचतुष्टयं, अथानन्तरमिन्द्रियसुखप्रतिपादनरूपेण  
गाथाष्टकं, तत्राप्यष्टकमध्ये प्रथमत इन्द्रियसुखस्य दुःखत्वस्थापनार्थं “मणुआ सुरा” इत्यादि  
गाथाद्वयं, अथ मुक्तात्मनां देहाभावेऽपि सुखमस्तीति ज्ञापनार्थं देहः सुखकारणं न भवतीति  
कथनरूपेण “पय्या इहे विसये” इत्यादि सूत्रद्वयं, तदनन्तरमिन्द्रियविषया अपि सुखकारणं न

केवलीके ज्ञप्तिक्रिया है इसलिये उनके बंध नहीं है । पहले “उदयगदा कम्मंसा” आदि  
गाथासे ज्ञेयार्थपरिणमन क्रियाको बंधका कारण कहा है, सो यह केवलीके नहीं है ।  
और “गिणहदि णेव ण मुंचदि” आदि गाथासे केवलीके देखने जाननेरूप क्रिया कही  
है, सो इस ज्ञप्तिक्रियासे बंध नहीं है ॥ ५२ ॥ इसप्रकार ज्ञानाधिकार पूर्ण हुआ ॥  
आगे इस दूसरे अधिकारमें ज्ञानसे अभिन्नरूप सुखका वर्णन करते हुए आचार्य महा-

इह खलु “उदयगदा कम्मंसा” इत्यत्र सूत्रे उदयगतेषु पुद्गलकर्मांशेषु सत्सु संचेत-  
यमानो मोहरागद्वेषपरिणतत्वात् ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणया क्रियया युज्यमानः क्रियाफल-  
भूतं बन्धमनुभवति, न तु ज्ञानादिति प्रथममेवार्थपरिणमनक्रियाफलत्वेन बन्धस्य  
समर्थितत्वात् । तथा “गेण्हदि णेव ण मुञ्चदि” इत्यर्थपरिणमनादिक्रियाणामभावस्य  
शुद्धात्मनो निरूपितत्वाच्चार्यानपरिणमतोऽगृह्यतस्तेष्वनुत्पद्यमानस्य चात्मनो ज्ञप्तिक्रिया-  
सद्भावोपि न खलु क्रियाफलभूतो बन्धः सिद्ध्यति ॥ ५२ ॥ “ज्ञानन्नप्येषं विश्वं युगपदपि  
भवंद्वाविभूतं समस्तं मोहाभावाद्यदात्मा परिणमति परं नैव निर्लूनकर्मा ॥ तेनास्ते मुक्त  
एव प्रसम्भविकसितज्ञप्तिविस्तारपीतज्ञेयाकारं त्रिलोकीं पृथगपृथगय द्योतयन् ज्ञानमूर्तिः”  
॥ १ ॥ इति ज्ञानाधिकारः ।

केवलानां बन्धो नास्तीति तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढीकुर्वन् ज्ञानप्रपञ्चाधिकारमुपसंहरति;—  
ण विपरिणमदि यथा स्वकीयात्मप्रदेशैः समरसीभावेन सह परिणमति तथा ज्ञेयरूपेण न  
परिणमति ण गेण्हदि यथैव चानन्तज्ञानादिचतुष्टयरूपमात्मरूपमात्मरूपतया गृह्णाति तथा  
ज्ञेयरूपं न गृह्णाति उप्पज्जदि णेव तेसु अट्टेसु यथा च निर्विकारपरमानन्दैकमुखरूपेण  
स्वकीयसिद्धपर्यायेणोत्पद्यते तथैव च ज्ञेयपदार्थेषु नोत्पद्यते । किं कुर्वन्नपि । जाणण्णवि ते  
तान् ज्ञेयपदार्थान् स्वस्मात् पृथग्रूपेण जानन्नपि । स कः कर्ता । आदा मुक्तात्मा अवन्धगो  
तेण पण्णत्तो ततः कारणात्कर्मणामबन्धकः प्रज्ञप्त इति । तद्यथा—रागादिरहितज्ञानं बन्धका-  
रणं न भवतीति ज्ञात्वा शुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षविपरीतस्य नारकादिदुःखकारणकर्मबन्धस्य  
कारणानीन्द्रियमनोजनिताभ्येकदेशविज्ञानानि त्यक्त्वा सकलविमलकेवलज्ञानस्य कर्मबन्धाकार-  
णभूतस्य यद्वीजभूतं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं तत्रैव भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः ॥ ५२ ॥ एवं  
रागद्वेषमोहरहितत्वात्केवलानां बन्धो नास्तीति कथनरूपेण ज्ञानप्रपञ्चसमाप्तिमुत्पत्त्वेन चैकसूत्रे-  
णाष्टमस्यलं गतम् ।

[ तान् ] उन पदार्थोंको [ जानन् अपि ] जानता हुआ भी [ येन ] जिसकारण  
[ अपि ] निश्चयकरके [ न परिणमति ] न तो परिणमता है [ न गृह्णाति ] न  
ग्रहण करता है [ नैव ] और न [ तेषु अर्थेषु ] उन पदार्थोंमें [ उत्पद्यते ]  
उत्पन्न होता है [ तेन ] उसी कारणसे वह [ अबन्धकः ] नवीन कर्मबंधसे रहित  
[ प्रज्ञप्तः ] कहागया है । भावार्थ—यद्यपि केवलज्ञानी सब पदार्थोंको जानता है, तभी  
उन पदार्थोंको राग द्वेष मोहभावसे न परिणमता है, न ग्रहण करता है और न उनमें  
उत्पन्न होता है इसकारण बंधरहित है । क्रिया दो प्रकारकी है एक क्षप्तिक्रिया और दूसरी  
ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया, उनमें ज्ञानकी रागद्वेष मोहरहित जाननेरूप क्रियाको ‘क्षप्तिक्रिया’  
और जो रागद्वेष मोहकर पदार्थका जानना ऐसी क्रियाको ‘ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया’  
कहते हैं । इनमेंसे ज्ञेयार्थपरिणमन क्रियासे बंध होता है, क्षप्तिक्रियासे नहीं होता ।

अथातीन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमभिष्टौति;—

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अर्दिदियं च पच्छण्णं ।

सकलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं ॥ ५४ ॥

यत्प्रेक्षमाणस्यामूर्तं मूर्तेष्वतीन्द्रियं च प्रच्छन्नम् ।

सकलं स्वकं च इतरत् तद्ज्ञानं भवति प्रत्यक्षम् ॥ ५४ ॥

अतीन्द्रियं हि ज्ञानं यदमूर्तं यन्मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियं यत्प्रच्छन्नं च तत्सकलं स्वपरविकल्पान्तःपाति प्रेक्षत एव । तस्य खल्वमूर्तेषु धर्माधर्मादिषु, मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियेषु परमाण्वादिषु द्रव्यप्रच्छन्नेषु कालादिषु, क्षेत्रप्रच्छन्नेष्वलोकाकाशप्रदेशादिषु, कालप्रच्छन्नेष्वसांप्रतिक-

त्वाद्देयमिति तात्पर्यम् ॥ ५३ ॥ एवमधिकारगाथया प्रथमस्थलं गतम् । अथ पूर्वोक्तमुपादेय-भूतमतीन्द्रियज्ञानं विशेषेण व्यक्तीकरोति;—जं यदन्तीन्द्रियं ज्ञानं कर्तुं पेच्छदो प्रेक्षमाणपुरूपस्य जानाति । किं किं । अमुत्तं अमूर्तमतीन्द्रियनिरुपरागसदानन्दैकसुखस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृति समस्तमूर्तद्रव्यसमूहं मुत्तेसु अर्दिदियं च मूर्तेषु पुद्गलद्रव्येषु यदतीन्द्रियं परमा-ण्वादि पच्छण्णं कालाणुप्रभृतिद्रव्यरूपेण प्रच्छन्नं व्यवहितमन्तरितं, अलोकाकाशप्रदेशप्र-भृति क्षेत्रप्रच्छन्नं, निर्विकारपरमानन्दैकसुखास्वादपरिणतिरूपपरमात्मनो वर्तमानसमयगतपरिणा-मास्तत्प्रभृतयो ये समस्तद्रव्याणां वर्तमानसमयगतपरिणामास्ते कालप्रच्छन्नाः, तस्यैव परमात्मनः सिद्धरूपशुद्धव्यञ्जनपर्यायः शेषद्रव्याणां च ये यथासंभवं व्यञ्जनपर्यायास्तेष्वन्तर्भूताः प्रतिस-मयप्रवर्तमानपट्प्रकारवृद्धिहानिरूपा अर्थपर्याया भावप्रच्छन्ना भण्यन्ते । सयलं तत्पूर्वोक्तं समस्तं ज्ञेयं द्विधा भवति । कथमिति चेत् । सगं च इदरं किमपि यथासंभवं स्वद्रव्यगतं इतरत्परद्रव्यगतं च तदुभयं यतः कारणाजानाति तेन कारणेन तण्णाणं तत्पूर्वोक्तज्ञानं

रहित है और घटता बढ़ता नहीं है; इसकारण उत्कृष्ट तथा उपादेय है । और जो आत्माके मूर्तीके क्षायोपशमरूप इंद्रियोंके आधीन चैतन्य शक्तिसे उत्पन्न है वह पराधीन है, विनाशीक है, क्रमरूप प्रवर्तता है, शत्रुसे खंडित है और घटता बढ़ता है इसकारण हीन तथा हेय है ॥ ५३ ॥ आगे अतीन्द्रिय सुखका कारण अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है यह कहते हैं;—[ प्रेक्षमाणस्य ] देखनेवाले पुरुषका [ यद्ज्ञानं ] जो ज्ञान [ अमूर्तं ] धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव इन पांच अमूर्तीके द्रव्योंको [ च ] और [ मूर्तेषु ] मूर्तीके अर्थात् पुद्गलद्रव्योंके पर्यायोंमें [ अतीन्द्रियं ] इंद्रियोंसे नहीं ग्रहण करने योग्य परमाणुओंको [ प्रच्छन्नं ] द्रव्य क्षेत्र काल भावसे गुप्तपदार्थोंको [ सकलं स्वकं ] सबही स्वज्ञेय [ च ] और [ इतरं ] परज्ञेयोंको

१ कालकी अणु वर्गः द्रव्यसे गुप्त, अलोकाकाशके प्रदेशादि क्षेत्रप्रच्छन्न, अतीतादिपर्याय कालप्र-च्छन्न, और सूक्ष्मपर्याय भावप्रच्छन्न हैं ।

तेषु चतुर्षु मध्ये यदमूर्तमतीन्द्रियं च तत्प्रधानत्वादुपादेयत्वेन ज्ञातव्यं । तत्रार्थं मूर्ताभिः क्षायोपशमिकीभिरुपयोगशक्तिभिस्तथाविधेभ्य इन्द्रियेभ्यः समुत्पद्यमानं परायत्तत्वात् कदाचित्कृत्वं, क्रमकृतप्रवृत्ति सप्रतिपक्षं सहानिवृद्धि च गौणमिति कृत्वा ज्ञानं च सौख्यं च हेयं । इतरत्पुनरमूर्ताभिश्चैतन्यानुविधायिनीभिरेकाकिनीभिरेवात्मपरिणामशक्तिभिस्तथाविधेभ्योऽतीन्द्रियेभ्यः स्वाभाविकचिदाकारपरिणामेभ्यः समुत्पद्यमानमत्यन्तमात्मयत्त्वान्नित्यं, युगपत्कृतप्रवृत्ति निःप्रतिपक्षमहानिवृद्धि च मुख्यमिति कृत्वा ज्ञानं सौख्यं चोपादेयम् ॥ ५३ ॥

भवन्तीति कथनेन “तिमिरहरा” इत्यादि गाथाद्वयं, अतोपि सर्वज्ञमस्कारमुख्यत्वेन “तेजो-दिष्टि” इत्यादि गाथाद्वयम् । एवं पञ्चान्तराधिकारे समुदायपातनिका ॥ अथातीन्द्रियसुखस्योपादेयभूतस्य स्वरूपं प्रपञ्चयन्नतीन्द्रियज्ञानमतीन्द्रियमुखं चोपादेयमिति, यत्पुनरिन्द्रियजं ज्ञानं सुखं च तद्वेद्यमिति प्रतिपादनरूपेण प्रथमतस्तावदधिकारस्थलगाथया स्थलचतुष्टयं सूत्रयति;—अस्थि अस्ति विद्यते । किं कर्तुं । णाणं ज्ञानमिति भिन्नप्रक्रमो च्यवहितसम्बन्धः । किंविशिष्टं । अमुत्तं मुत्तं अमूर्तं मूर्तं च । पुनरपि किंविशिष्टं । अर्दिदियं इंदियं च यदमूर्तं तदतीन्द्रियं मूर्तं पुनरिन्द्रियजं । इत्थंभूतं ज्ञानमस्ति । केषु विषयेषु । अतथेसु ज्ञेयपदार्थेषु, तथा सौख्यं च तथैव ज्ञानवदमूर्तमतीन्द्रियं मूर्तिमिन्द्रियजं च सुखमिति । जं तेषु परं च तं णेयं यत्तेषु पूर्वोक्तज्ञानसुखेषु मध्ये परमुत्कृष्टमतीन्द्रियं तदुपादेयमिति ज्ञातव्यम् । तदेव विव्रियते—अमूर्ताभिः क्षायिकीभिरतीन्द्रियाभिश्चिदानन्दैकलक्षणाभिः शुद्धात्मशक्तिभिरुत्पन्नत्वादतीन्द्रियज्ञानं सुखं चात्माधीनत्वेनाविनश्वरत्वादुपादेयमिति पूर्वोक्तामूर्तशुद्धात्मशक्तिभ्यो विलक्षणाभिः क्षायोपशमिकेन्द्रियशक्तिभिरुत्पन्नत्वादिन्द्रियजं ज्ञानं सुखं च परायत्तत्वेन विनश्वर-

राज पहले “कौन सुख हेय है और कौन उपादेय है” यह विचार दिखाते हैं;—  
[ अर्थेषु ] पदार्थोंमें [ अतीन्द्रियं ] इंद्रियोंकी आधीनतासे रहित [ ज्ञानं ] ज्ञान है वह [ अमूर्तं ] अमूर्तीक [ च ] और [ ऐन्द्रियं ] इंद्रियजनित ज्ञान [ मूर्तं ] मूर्तीक [ अस्ति ] है । [ च तथा ] और इसीतरह [ सौख्यं ] सुखभी है । अर्थात् जो इंद्रियविना सुखका अनुभव है वह अतीन्द्रिय अमूर्तीक सुख है, और जो इंद्रियके आधीन सुखका अनुभव है सो इंद्रियजनित मूर्तीक सुख है । [ च ] और [ तेषु ] उन ज्ञानसुखके भेदोंमें [ यत् ] जो [ परं ] उत्कृष्ट है [ तत् ] वह [ ज्ञेयं ] जानने योग्य है । भावार्थ—ज्ञान और सुख दो प्रकारके हैं एक अतीन्द्रिय अमूर्तीक और दूसरा इंद्रियाधीन मूर्तीक । इनमेंसे अतीन्द्रिय अमूर्तीक ज्ञानसुख उपादेय हैं और इंद्रियाधीन मूर्तीक ज्ञानसुख हेय हैं । जो ज्ञानसुख आत्मीक अमूर्तीक चैतन्यरूप पद-द्रव्योंके संयोगसे रहित केवल शुद्ध परिणतिरूप शक्तिसे उत्पन्न है वह सब देखा ।  
त्माके आधीन है, अविनाशी है, एकही बार अखंडितपारा

अथातीन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमभिष्टौति;—

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्सेसु अर्दिदियं च पच्छण्णं ।

सकलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चखं ॥ ५४ ॥

यत्प्रेक्षमाणस्यामूर्तं मूर्तेष्वतीन्द्रियं च प्रच्छन्नम् ।

सकलं स्वकं च इतरत् तद्ज्ञानं भवति प्रत्यक्षम् ॥ ५४ ॥

अतीन्द्रियं हि ज्ञानं यदमूर्तं यन्मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियं यत्प्रच्छन्नं च तत्सकलं स्वपरविकल्पावन्तःपाति प्रेक्षत एव । तस्य खल्वमूर्तेषु धर्माधर्मादिषु, मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियेषु परमाण्वादिषु द्रव्यप्रच्छन्नेषु कालादिषु, क्षेत्रप्रच्छन्नेष्वलोकाकाशप्रदेशादिषु, कालप्रच्छन्नेष्वसांप्रतिक-

त्वाद्द्वेयमिति तात्पर्यम् ॥ ५३ ॥ एवमधिकारगाथया प्रथमखलं गतम् । अथ पूर्वोक्तमुपादेय-भूतमतीन्द्रियज्ञानं विशेषेण व्यक्तीकरोति;—जं यदन्तीन्द्रियं ज्ञानं कर्तुं पेच्छदो प्रेक्षमाणपुरूपस्य जानाति । किं किं । अमुत्तं अमूर्तमतीन्द्रियनिरुपरागसदानन्दैकसुखस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृति समस्तामूर्तद्रव्यसमूहं मुत्सेसु अर्दिदियं च मूर्तेषु पुद्गलद्रव्येषु यदतीन्द्रियं परमाण्वादि पच्छण्णं कालाणुप्रभृतिद्रव्यरूपेण प्रच्छन्नं व्यवहितमन्तरितं, अलोकाकाशप्रदेशप्रभृति क्षेत्रप्रच्छन्नं, निर्विकारपरमानन्दैकसुखास्वादपरिणतिरूपपरमात्मनो वर्तमानसमयगतपरिणामास्तत्प्रभृतयो ये समस्तद्रव्याणां वर्तमानसमयगतपरिणामास्ते कालप्रच्छन्नाः, तस्यैव परमात्मनः सिद्धरूपशुद्धव्यञ्जनपर्यायः शेषद्रव्याणां च ये यथासंभवं व्यञ्जनपर्यायास्तेष्वन्तर्भूताः प्रतिसम्यप्रवर्तमानपट्प्रकारवृद्धिहारिरूपा अर्थपर्याया भावप्रच्छन्ना भण्यन्ते । सखलं तत्पूर्वोक्तं समस्तं ज्ञेयं द्विधा भवति । कथमिति चेत् । सगं च इदरं किमपि यथासंभवं स्वद्रव्यगतं इतरत्परद्रव्यगतं च तदुभयं यतः कारणाज्जानाति तेन कारणेन तण्णाणं तत्पूर्वोक्तज्ञानं

रहित है और घटता बढता नहीं है; इसकारण उत्कृष्ट तथा उपादेय है । और जो आत्माके मूर्ताक क्षायोपशमरूप इंद्रियोंके आधीन चैतन्य शक्तिसे उत्पन्न है वह पराधीन है, विनाशीक है, कमरूप प्रवर्तता है, शत्रुसे खंडित है और घटता बढता है इसकारण हीन तथा हेय है ॥ ५३ ॥ आगे अतीन्द्रिय सुखका कारण अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है यह कहते हैं;—[ प्रेक्षमाणस्य ] देखनेवाले पुरुषका [ यद्ज्ञानं ] जो ज्ञान [ अमूर्तं ] धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव इन पांच अमूर्ताक द्रव्योंको [ च ] और [ मूर्तेषु ] मूर्ताक अर्थात् पुद्गलद्रव्योंके पर्यायोंमें [ अतीन्द्रियं ] इंद्रियोंसे नहीं ग्रहण करने योग्य परमाणुओंको [ प्रच्छन्नं ] द्रव्य क्षेत्र काल भावसे गुणपदार्थोंको [ सकलं स्वकं ] सबही स्वज्ञेय [ च ] और [ इतरं ] परज्ञेयोंको

१ कालकी अणु वर्णरः द्रव्यसे गुप्त, अलोकाकाशके प्रदेशादि क्षेत्रप्रच्छन्न, अतीतादिपर्याय कालप्रच्छन्न, और सूक्ष्मपर्याय भावप्रच्छन्न हैं ।

पर्यायेषु, भावप्रच्छन्नेषु स्थूलपर्यायान्तर्लानसूक्ष्मपर्यायेषु सर्वेष्वपि स्वपरव्यवस्थायवस्थितेष्वस्ति द्रष्टृत्वं प्रत्यक्षत्वात् । प्रत्यक्षं हि ज्ञानमुद्भिन्नानन्तशुद्धिसन्निधानमनादिसिद्धचैतन्यसामान्यसंबन्धमेकमेवाक्षनामानमात्मानं प्रतिनियतमितरासामग्रीममृगयमाणमनन्तशक्तिसद्भावतोऽनन्ततामुपगतं दहनस्येव दाह्याकाराणां ज्ञानस्य ज्ञेयाकाराणामनतिक्रमाद्योदितानुभावमनुभवत्तत् केन नाम निवार्येत । अतस्तदुपादेयम् ॥ ५४ ॥

अथेन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमिन्द्रियज्ञानं हेयं प्रणिन्दति;—

जीवो सयं अमुत्तो मुत्तिगदो तेण मुत्तिणा मुत्तं ।

ओगिण्हत्ता जोग्गं जाणादि वा तण्ण जाणादि ॥ ५५ ॥

जीवः स्वयममूर्तो मूर्तिगतस्तेन मूर्तेन मूर्तम् ।

अवगृह्य योग्यं जानाति वा तन्न जानाति ॥ ५५ ॥

इन्द्रियज्ञानं हि मूर्तोपलम्भकं मूर्तोपलभ्यं च तद्वान् जीवः स्वयममूर्तोपि पञ्चेन्द्रिया-

हृदि भवति । कथंभूतं । पञ्चवखं प्रत्यक्षमिति । अत्राह शिष्यः—ज्ञानप्रपञ्चाधिकारः पूर्वमेवगतः, अस्मिन् सुखप्रपञ्चाधिकारे सुखमेव कथनीयमिति । परिहारमाह—यदतीन्द्रियं ज्ञानं पूर्वं भणितं तदेवाभेदनयेन सुखं भवतीति ज्ञापनार्थं, अथवा ज्ञानस्य मुख्यवृत्त्या तत्र हेयोपादेयचिन्ता नास्तीति ज्ञापनार्थं वा । एवमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमिति कथनमुख्यत्वेनैकगाथया द्वितीयखलं गतम् ॥ ५४ ॥ अथ हेयभूतस्येन्द्रियसुखस्य कारणत्वादल्पविषयत्वाच्चेन्द्रियज्ञानं हेयमित्युपदिशति;—जीवो सयं अमुत्तो जीवस्तावच्छक्तिरूपेण शुद्धद्रव्यार्धिकनयेनामूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखस्वभावः, पश्चादनादिबन्धवशाद् व्यवहारेण मुत्तिगदो मूर्तशरीरगतो मूर्तशरीरपरिगतो भवति । तेण मुत्तिणा तेन मूर्तशरीरेण मूर्तशरीराधारोपन्नमूर्तद्रव्येन्द्रियभावे-

जानता है । [ तत् ] वह ज्ञान [ प्रत्यक्षं ] इन्द्रिय विना केवल आत्माके आधीन [ भवति ] होता है । भावार्थ—जो सबको जानता है उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं । इस ज्ञानमें अनंत शुद्धता है । अन्य सामग्री नहीं चाहता, केवल एक अक्षनामा आत्माके प्रति निश्चिन्त हुआ प्रवर्तता है और अपनी शक्तिसे अनंतस्वरूप है । जैसे अग्नि (आग) ईंधनके आकार है वैसेही यह ज्ञान ज्ञेयाकारोंको नहीं छोड़ता है, इसलिये अनन्तस्वरूप है । इसप्रकार प्रत्यक्ष ज्ञानकी महिमाको कोई दूर नहीं करसकता । इसलिये यह प्रत्यक्षज्ञान उपादेय है और अतीन्द्रिय सुखका कारण है ॥ ५४ ॥ आगे जो इन्द्रियसुखका कारण इन्द्रियज्ञान है उसे हेय दिखलकर निंदा करते हैं;—[ जीवः ] आत्मद्रव्य [ स्वयं ] अपने स्वभावसे [ अमूर्तः ] स्पर्श, रस, गंध, वर्णरहित अमूर्त है । और [ स एव ] वही अनादि बंध परिणमनकी अपेक्षा [ मूर्तिगतः ] मूर्त शरीरमें स्थित ( मौजूद ) है । [ तेन मूर्तेन ] उस मूर्तीक शरीरमें स्थित

त्मकं शरीरं मूर्तमुपागतस्तेन ज्ञप्तिनिष्पत्तौ बलाधाननिमित्ततयोपलम्भकेन मूर्तेन मूर्तं स्पर्शादिप्रधानं वस्तूपलम्ब्यतामुपागतं योग्यमवगृह्य कदाचित्तदुपर्युपरि शुद्धिसंभवादवगच्छति, कदाचित्तदसंभवान्नावगच्छति । परोक्षत्वात् । परोक्षं हि ज्ञानमतिदृढतराज्ञान-तमोग्रन्धिगुण्ठान्निमीलितस्यानादिसिद्धचैतन्यसामान्यसंबन्धस्याप्यात्मनः स्वयं परिच्छेत्तु-मर्थमसमर्थस्योपात्तानुपात्तपरप्रत्ययसामग्रीमार्गणव्यग्रतयात्यन्तविसंस्थूलत्वमवलम्बमानमनन्तायाः शक्तेः परिस्खलनात्रितान्तविक्लवीभूतं महामोहमल्लस्य जीवदवस्थत्वात् परपरि-णतिप्रवर्तिताभिप्रायमपि पदे पदे प्रातविप्रलम्भमनुपलम्भसंभावनामेव परमार्थतोऽर्हति । अतस्तद्वेयम् ॥ ५५ ॥

अथेन्द्रियाणां स्वविषयमात्रेपि युगपत्प्रवृत्त्यसंभवाद्देयमेवेन्द्रियज्ञानमित्यवधारयति;—

**फासो रसो य गंधो वण्णो सद्दो य पुग्गला होंति ।**

**अक्ख्वाणं ते अक्ख्वा जुगवं ते णेव गेण्हंति ॥ ५६ ॥**

न्द्रियाधारेण मुक्तं मूर्तं वस्तु ओगेणित्ता अवग्रहादिकेन क्रमकरणव्यवधानरूपं कृत्वा जोग्गं तत्स्पर्शादिमूर्तं वस्तु । कथंभूतं । इन्द्रियग्रहणयोग्यं जाणदि वा तण्ण जाणादि स्वार-णक्षयोपशमयोग्यं किमपि स्थूलं जानाति, विशेषक्षयोपशमाभावात् सूक्ष्मं न जानातीति । अय-मत्र भावार्थः—इन्द्रियज्ञानं यद्यपि व्यवहारेण प्रत्यक्षं भण्यते, तथापि निश्चयेन केवलज्ञानापे-क्षया परोक्षमेव । परोक्षं तु यावतांशेन सूक्ष्मार्थं न जानाति तावतांशेन चित्तखेदकारणं भ-वति । खेदश्च दुःखं, ततो दुःखजनकत्वादिन्द्रियज्ञानं हेयमिति ॥ ५५ ॥ अथ चक्षुरादीन्द्रिय-ज्ञानं रूपादिस्वविषयमपि युगपन्न जानाति तेन कारणेन हेयमिति निश्चिनोति;—**फासो**

उत्पत्तिको निमित्तकारणरूप मूर्तिवन्तं द्रव्येन्द्रियसे [ योग्यं मूर्तं ] इन्द्रियके ग्रहण करने योग्य स्थूलस्वरूप मूर्तीकको अर्थात् स्पर्शादिरूप वस्तुको [ अवगृह्य ] अवग्रह ईहादि-भेदोंसे क्रमसे ग्रहण करके [ जानाति ] जानता है [ वा ] अथवा [ तत् ] उस मूर्तीकको [ न जाणाति ] नहीं जानता अर्थात् जब कर्मके क्षयोपशमकी तीव्रता होती है तब जानता है, भंदता होती है तब नहीं जानता । **भावार्थ**—यह आत्मा अनादिकालसे अज्ञानरूप अंधकारकर अंधा होगया है । यद्यपि अपनी चैतन्यकी महि-माको लिये रहता है तौभी कर्मके संयोगसे इन्द्रियके विना अपनी शक्तिसे जाननेको अरामर्थ है, इसलिये आत्माके यह परोक्षज्ञान है । यह परोक्षज्ञान मूर्तिवन्त द्रव्येन्द्रियके आधीन है, मूर्तीक पदार्थोंको जानता है, अतिशयकर चंचल है, अनंतज्ञानकी महिमासे गिरा हुआ है, अत्यंत विकल है, महामोहमल्लकी सहायतासे पर परिणतिमें प्रवर्तता है, पद-पद (जगह २) पर विवादरूप, उलाहना देने योग्य है, वास्तवमें स्तुति करने योग्य नहीं है; इसीलिये हेय है ॥ ५५ ॥ आगे इन्द्रियज्ञान यद्यपि अपने जानने योग्य

को जानता है तौभी एकही वार नहीं जानता इसलिये हेय है, ऐसा क-



स्पर्शो रसश्च गन्धो वर्णः शब्दश्च पुद्गला भवन्ति ।

अक्षाणां तान्यक्षाणि युगपत्तानैव गृह्णन्ति ॥ ५६ ॥

इन्द्रियाणां हि स्पर्शरसगन्धवर्णप्रधानाः शब्दश्च, ग्रहणयोग्याः पुद्गलाः । अथेन्द्रियैर्यु-  
गपत्तेपि न गृह्यन्ते, तथाविधक्षयोपशमनशक्तेरसंभवात् । इन्द्रियाणां हि क्षयोपशमसंज्ञि-  
कायाः परिच्छेद्याः शक्तेरन्तरङ्गायाः काकाक्षितारकवत् क्रमप्रवृत्तिवशादनेकतः प्रकाश-  
यितुमसमर्थत्वात्सत्स्वपि द्रव्येन्द्रियद्वारेषु न यौगपद्येन निखिलेन्द्रियार्थावबोधः सिद्ध्येत्,  
परोक्षत्वात् ॥ ५६ ॥

रसो च गन्धो वर्णो सहो च पोगला ह्येति स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः पुद्गला मूर्ता  
भवन्ति । ते च विषयाः । केषां । अक्खाणं स्पर्शनादीन्द्रियाणां ते अक्खा तान्यक्षाणी-  
न्द्रियाणि कर्तृणि जुगधं ते णेव गेण्हंति युगपत्तान् स्वकीयविषयानपि न गृह्णन्ति न जा-  
नन्तीति । अपमत्राभिप्रायः—यथा सर्वप्रकारोपादेयभूतस्यानन्तसुखस्योपादानकारणभूतं केव-  
लज्ञानं युगपत्समस्तं वस्तु जानत्सत् जीवस्य सुखकारणं भवति तथेदमिन्द्रियज्ञानं स्वकीयविषयेपि

हते हैं;—[ अक्षाणां ] पांचों इन्द्रियोंके [ स्पर्शः ] स्पर्श [ रसः ] रस [ च गन्धः ]  
और गंध [ वर्णः ] रूप [ च ] तथा [ शब्दः ] शब्द ये पांच विषय [ पुद्गलाः ]  
पुद्गलमयी [ भवन्ति ] हैं अर्थात् पांच इंद्रियां उक्त स्पर्शादि पांच विषयोंको जानती  
हैं परंतु [ तानि अक्षाणि ] वे इंद्रियां [ तान् ] उन पांच विषयोंको [ युगपत् ]  
एकही वार [ नैव ] नहीं [ गृह्णन्ति ] ग्रहण करतीं । भावार्थ—ये स्पर्शनादि पांचों  
इन्द्रियां अपने २ स्पर्शादि विषयोंको ग्रहण करती हैं परंतु एकही समय ग्रहण नहीं  
करसकतीं । अर्थात् जिससमय जिह्वा इंद्रिय रसका अनुभव करती है उस समय अन्य  
श्रोत्रादि इंद्रियोंका कार्य नहीं होता । सारांश-एक इंद्रियका जब कार्य होता है तब  
दूसरीका धन्द रहता है, क्योंकि अंतरंगमें जो क्षायोपशमिकज्ञान है उसकी शक्ति  
क्रमसे प्रवर्तती है । जैसे काकके दोनों नेत्रोंकी पूतली एकही होती है परंतु वह पूतली  
ऐसी चंचल है कि लोगोंको यह मालूम पड़ता है जो दोनों नेत्रोंमें जुदी २ पुतली है ।  
यद्यार्थमें वह एकही है, जिससमय वह जिस नेत्रसे देखता है उससमय उसी नेत्रमें  
आजाती है, परंतु एकवार दोनों नेत्रोंसे नहीं देख सकता । यही दशा क्षायोपशमिक-  
ज्ञानकी है । यह ज्ञान स्पर्शादि पांचों विषयोंको एकही वार जाननेमें असमर्थ है ।  
जिससमय जिस इंद्रियरूपद्वारमें जाननेरूप प्रवृत्ति करता है उससमय उसी द्वारमें  
रहता है अन्य द्रव्येन्द्रियद्वारमें नहीं । इसकारण एकही काल मय इन्द्रियोंसे ज्ञान  
नहीं होता । इसीलिये इन्द्रियज्ञान परोक्ष है, पराधीन है और देय है ॥ ५६ ॥

अथेन्द्रियज्ञानं न प्रत्यक्षं भवतीति निश्चिनोति;—

परदब्धं ते अक्खा णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिदा ।

उवलद्धं तेहि क्हं पच्चक्खं अप्पणो होदि ॥ ५७ ॥

परद्रव्यं तान्यक्षाणि नैव स्वभाव इत्यात्मनो भणितानि ।

उपलब्धं तैः कथं प्रत्यक्षमात्मनो भवति ॥ ५७ ॥

आत्मानमेव केवलं प्रतिनियतं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं, इदं तु व्यतिरिक्तास्तित्वयोगितया परद्रव्यतामुपगतैरात्मनः स्वभावतां मनागप्यसंस्पृशद्भिरिन्द्रियैरुपलभ्योपजन्यमानं नैवात्मनः प्रत्यक्षं भवितुमर्हति ॥ ५७ ॥

अथ परोक्षप्रत्यक्षलक्षणमुपलक्षयति;—

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खत्ति भणिदमत्थेसु ।

जदि केचलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं ॥ ५८ ॥

युगपत्परिज्ञानाभावात्सुखकारणं न भवति ॥ ५६ ॥ अथेन्द्रियज्ञानं प्रत्यक्षं न भवतीति व्यवस्थापयति;—परदब्धं ते अक्खा तानि प्रसिद्धान्यक्षणीन्द्रियाणि परद्रव्यं भवन्ति । कस्य । आत्मनः णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिया योसौ विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव आत्मनः संबन्धी तत्स्वभावानि निश्चयेन न भणितानीन्द्रियाणि । कस्मात् । भिन्नास्तित्वनिष्पन्नात् । उवलद्धं तेहि उपलब्धं ज्ञातं यत्पञ्चेन्द्रियविषयभूतं वस्तु तैरिन्द्रियैः क्हं पच्चक्खं अप्पणो होदि तद्वस्तु कथं प्रत्यक्षं भवत्यात्मनो न कथमपीति । तथैव च नानामनोरथव्यासिधिविषये प्रतिपाद्यप्रतिपादकादिविकल्पजालरूपं यन्मनस्तदपीन्द्रियज्ञानवन्निश्चयेन परोक्षं भवतीति ज्ञात्वा । किं कर्तव्यं । सकलैकाग्रण्डप्रत्यक्षप्रतिभासमयपरमज्योतिःकारणभूते स्वशुद्धात्मस्वरूपभावनासमुत्पन्नपरमाह्लादैकलक्षणसुखसंवित्त्वाकारपरिणतिरूपे रागादिविकल्पोपाधिरहिते स्वसंवेदनज्ञाने भावना कर्तव्या इत्यभिप्रायः ॥ ५७ ॥ अथ पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणं कथ-

आगे इंद्रियज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा निश्चित करते हैं;—[आत्मनः] आत्माका [स्वभावः] चेतनास्वभाव [नैव] उन इन्द्रियोंमें [नैव] नहीं है [इति] इसलिये [तानि अक्षाणि] वे स्पर्शनादि इन्द्रियां [परद्रव्यं] अन्य पुद्गलद्रव्य [भणितानि] कहीगई हैं । [तैः] उन इंद्रियोंसे [उपलब्धं] प्राप्त हुए (जाने हुए) पदार्थ [आत्मनः] आत्माके [कथं] कैसे [प्रत्यक्षं] प्रत्यक्ष [भवति] होवें? कभी नहीं होवें । भावार्थ—आत्मा चैतन्यस्वरूप है और द्रव्येन्द्रियां जड़स्वरूप हैं । इन इन्द्रियोंके द्वारा जाना हुआ पदार्थ प्रत्यक्ष नहीं होसकता, क्योंकि पराधीनतासे रहित आत्माके आधीन जो ज्ञान है उसेही प्रत्यक्ष कहते हैं, और यह इंद्रियज्ञान पुद्गलकी इंद्रियोंके द्वारा उनके अधीन होकर पदार्थको जानता है, इसकारण परोक्ष है तथा पराधीन है । ऐसे ज्ञानको प्रत्यक्ष नहीं कहसकते ॥ ५७ ॥ आगे परोक्ष और प्रत्य-

यत्परतो विज्ञानं तत्तु परोक्षमिति भणितमर्थेपु ।

यदि केवलेन ज्ञातं भवति हि जीवेन प्रत्यक्षम् ॥ ५८ ॥

यत्तु खलु परद्रव्यभूतादन्तःकरणादिन्द्रियात्परोपदेशादुपलब्धेः संस्कारादालोकादेर्वा निमित्तामुपगतात् स्वविषयमुपगतस्यार्थस्य परिच्छेदनं तत् परतः प्रादुर्भवत्परोक्षमित्यालक्ष्यते । यत्पुनरन्तःकरणमिन्द्रियं परोपदेशमुपलब्धिसंस्कारमालोकादिकं वा समस्तमपि परद्रव्यमनपेक्षयात्मस्वभावमेवैकं कारकत्वेनोपादाय सर्वद्रव्यपर्यायजातमेकपदं एवाभिव्याप्य प्रवर्तमानं परिच्छेदनं तत् केवलादेवात्मनः संभूतत्वात् प्रत्यक्षमित्यालक्ष्यते । इह हि सहजसौख्यसाधनीभूतमिदमेव महाप्रत्यक्षमभिप्रेतमिति ॥ ५८ ॥

अथैतदेव प्रत्यक्षं पारमार्थिकसौख्यत्वेनोपक्षिपति;—

जादं सयं समत्तं णाणमणंतत्थवित्थिदं विमलं ।

रहिदं तु उग्गहादिहि सुहस्ति एयंतियं भणिदं ॥ ५९ ॥

यति;—जं परतो विष्णाणं तं तु परोक्खत्ति भणिदं यत्परतः सकाशाद्विज्ञानं परिज्ञानं भवति तत्पुनः परोक्षमिति भणितं । केषु विषयेषु । अट्टेसु ज्ञेयपदार्थेषु जदि केवलेण णादं हवदि हि यदि केवलेनासहायेन ज्ञातं भवति हि स्फुटं । केन कर्तृभूतेन । जीवेण जीवेन तर्हि पच्चक्खं प्रत्यक्षं भवतीति । अतो विस्तरः—इन्द्रियमनःपरोपदेशावलोकादिवहिरङ्गनिमित्तभूतात्तथैव च ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरूपाया उपलब्धेरर्थावधारणरूपसंस्काराच्चान्तरङ्गकारणभूतात्सकाशादुत्पद्यते यद्विज्ञानं तत्पराधीनत्वात्परोक्षमित्युच्यते । यदि पुनः पूर्वोक्तसमस्तपरद्रव्यमनपेक्षय केवलाच्छुद्धबुद्धैकस्वभावात्परमात्मनः सकाशात्समुत्पद्यते ततोक्षानामानमात्मानं प्रतीत्योत्पद्यमानत्वात्प्रत्यक्षं भवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ ५८ ॥ एवं हेयभूतेन्द्रिय-

क्षका लक्षण दिखाते हैं;—[ यत् ] जो [ परतः ] परकी सहायतासे [ अर्थेषु ] पदार्थोंमें [ विज्ञानं ] विशेषज्ञान उत्पन्न होवै [ तत् ] वह [ परोक्षं ] परोक्ष है [ इति भणितं ] ऐसा कहा है । [ तु ] परंतु [ यदि ] जो [ केवलेन ] परकी सहायताविना अपने आपही [ जीवेन ] आत्माकर [ हि ] निश्चयसे [ ज्ञातं ] जाना जावे [ तदा ] तो वह [ प्रत्यक्षं ] प्रत्यक्षज्ञान [ भवति ] है ॥ भावार्थ— जो ज्ञान मनसे पांचइन्द्रियोंसे परोपदेशसे क्षयोपशमसे पूर्वके अभ्याससे और सूर्यादिकके प्रकाशसे उत्पन्न होताहै उसे परोक्षज्ञान कहते हैं, क्योंकि यह ज्ञान इन्द्रियादिक परद्रव्यस्वरूप निमित्तोंमें उत्पन्न होताहै और परजनित होनेसे पराधीन है । परंतु जो ज्ञान, मन इन्द्रियादिक परद्रव्योंकी सहायताकेविना केवल आत्माकीही सहायतासे उत्पन्न होता है तथा एकही समयमें सब द्रव्य पर्यायोंको जानता है उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं, क्योंकि यह केवल आत्माके आधीन है यही महाप्रत्यक्षज्ञान आत्मीकस्वाभाविक मुखका साधन माना है ॥ ५८ ॥ आगे यही अतीन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञान निः

जातं स्वयं समस्तं ज्ञानमनन्तार्थविस्तृतं विमलम् ।

रहितं तु अवग्रहादिभिः सुखमिति ऐकान्तिकं भणितम् ॥ ५९ ॥

स्वयं जातत्वात्, समस्तत्वात्, अनन्तार्थविस्तृतत्वात्, विमलत्वात्, अवग्रहादिरहितत्वाच्च प्रत्यक्षं ज्ञानं सुखमैकान्तिकमिति निश्चीयते । अनाकुलत्वैकलक्षणत्वात्सौख्यस्य, यतो हि परतो जायमानं पराधीनतया असमस्तमितरद्वारावरणेन कतिपयार्थप्रवृत्तमितरार्थबुभुत्सया समलमसम्यगवचोभेन अवग्रहादिसहितं, क्रमकृतार्थग्रहणखेदेन परोक्षं ज्ञानमत्यन्तमाकुलं भवति । ततो न तत् परमार्थतः सौख्यं । इदं तु पुनरनादिज्ञानसामान्यस्वभावस्योपरि महाविकाशेनाभिव्याप्य स्वत एव व्यवस्थितत्वात्स्वयं जायमानमात्माधीनतया समन्तात्मप्रदेशात् परमसमक्षज्ञानोपयोगीभूयाभिव्याप्य व्यवस्थितत्वात्समन्तम् । अशेषद्वारापावरणेन प्रसभं निपीतसमस्तवस्तुज्ञेयाकारं परमं वैश्वरूप्यमभिव्याप्य व्यवस्थि-

ज्ञानकथनमुल्लस्यतया गाथाचतुष्टयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथाभेदनयेन पञ्चविशेषणविशिष्टं केवलज्ञानमेव सुखमिति प्रतिपादयति;—जादं जातं उत्पन्नं । किं कर्तुं । णाणं केवलज्ञानं । कथं जातं । सयं स्वयमेव । पुनरपि किंविशिष्टं । समत्तं परिपूर्णं । पुनरपि किरूपं । अणंतत्थ-वित्थडं अनन्तार्थविस्तीर्णं । पुनः कीदृशं । विमलं संशयादिमलरहितं । पुनरपि कीदृक् । रहियं तु ओग्गहादिहिं अवग्रहादिरहितं चेति । एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं यत्केवलज्ञानं सुहंति एगं-तियं भणियं तत्सुखं भणितं । कथंभूतं । ऐकान्तिकं नियमेनेति । तथाहि—परनिरपेक्षत्वेन चिदानन्दैकस्वभावं निजशुद्धात्मानमुपादानकारणं कृत्वा समुत्पद्यमानत्वात्स्वयं जायमानं तत्सर्वशुद्धात्मप्रदेशाधारत्वेनोत्पन्नत्वात्समस्तं सर्वज्ञानाविभागपरिच्छेदपरिपूर्णं सत् समस्तावरणक्षयेनोत्पन्नत्वात्समस्तज्ञेयपदार्थग्राहकत्वेन विस्तीर्णं सत् संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सूक्ष्मादिपदार्थपरि-

यसुख है ऐसा अभेद दिखाते हैं;—[ स्वयं जातं ] अपने आपसेही उत्पन्न [ समस्त ] संपूर्ण [ अनन्तार्थविस्तृत ] सब पदार्थोंमें फैला हुआ [ विमलं ] निर्मल [ तु ] और [ अवग्रहादिभिः रहितं ] अवग्रह ईहा आदिसे रहित [ ज्ञानं ] ऐसा ज्ञान [ ऐकान्तिकं सुग्वं ] निश्चयसुख है [ इति भणितं ] इसप्रकार सर्वशने कहा है । भावार्थ—जिसमें आकुलता न हो वही सुख है । यह अतीन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान आकुलतारहित है इसलिये सुखरूप है । यह परोक्षज्ञान पराधीन है क्योंकि परसे ( द्रव्येन्द्रियसे ) उत्पन्न है । असंपूर्ण है क्योंकि आवरणसहित है । सब पदार्थोंको नहीं जाननेसे सबमें विस्ताररूप नहीं है संकुचित है, संशयादिकसहित होनेसे मलसहित है निर्मल नहीं है, क्रमवर्ती है क्योंकि अवग्रह ईहादि युक्त है, और खेद ( आकुलता ) सहित होनेसे निराकुल नहीं है; इसलिये परोक्षज्ञान सुखरूप नहीं है । और यह अतीन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान पराधीनता रहित एक निजशुद्धात्माके कारणको पाकर उत्पन्न हुआ है इसलिये आपसेही उत्पन्न है, आवरणरहित होनेसे अपने आ-

तत्त्वादनन्तार्थविस्तृतं । समस्तार्थावुभुत्सया सकलशक्तिप्रतिबन्धककर्मसामान्यनिःक्रान्ततया परिस्पष्टप्रकाशभास्वरं स्वभावमभिव्याप्य व्यवस्थितत्वाद्विमलं । सम्यगवबोधेन युगपत्स-  
मर्पितत्रैसमयिकात्मस्वरूपं लोकालोकमभिव्याप्य व्यवस्थितत्वादवग्रहादिरहितं । क्रमकृ-  
तार्थग्रहणखेदाभावेन प्रत्यक्षं ज्ञानमनाकुलं भवति । ततस्तत्पारमार्थिकं खलु सौ-  
ख्यम् ॥ ५९ ॥

अथ केवलस्यापि परिणामद्वारेण खेदस्य संभवादैकान्तिकसुखत्वं नास्तीति प्र-  
त्याचष्टे;—

जं केवलत्ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव ।

खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा ॥ ६० ॥

यत्केवलमिति ज्ञानं तत्सौख्यं परिणामश्च स चैव ।

खेदस्तस्य न भणितो यस्मात् घातीनि क्षयं जातानि ॥ ६० ॥

अत्र को हि नाम खेदः कश्च परिणामः कश्च केवलसुखयोर्व्यतिरेकः, यतः केवलस्यैका-

च्छित्तिविषयेऽत्यन्तविशदत्वाद्द्विमलं सत् क्रमकरणव्यवधानजनितखेदाभावादवग्रहादिरहितं च  
सत्, यदेवं पञ्चविशेषणविशिष्टं क्षायिकज्ञानं तदनाकुलत्वलक्षणपरमानन्दैकरूपपारमार्थिकसु-  
खात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयेनाभिन्नत्वात्पारमार्थिकसुखं भण्यते । इत्यभिप्रायः ॥५९॥  
अथानन्तपदार्थपरिच्छेदनात्केवलज्ञानेपि भेदोस्तीति पूर्वपक्षे सति परिहारमाह;—जं केवलत्ति  
णाणं तं सोक्खं यत्केवलमिति ज्ञानं तत्सौख्यं भवति, तस्मात् खेदो तस्स ण भणिओ  
तस्य केवलज्ञानस्य खेदो दुःखं न भणितं । तदपि कस्मात् । जम्हा घादिकखयं जादो  
यस्मान्मोहादिघातिकर्माणि क्षयं गतानि । तर्हि तस्यानन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणामो दुःखका-  
रणं भविष्यति ? नैवम् । परिणमं च सो चेव तस्य केवलज्ञानस्य संबन्धी परिणामश्च स

त्माके सब प्रदेशोंमें अपनी अनंत शक्तिसहित है इसलिये सम्पूर्ण है, अपनी ज्ञायक  
शक्तिके बलसे समस्त ज्ञेयाकारोंको मानों पिया ही है इसकारण सब पदार्थोंमें विस्तीर्ण  
है, अनन्त शक्तिको बाधा करनेवाले कर्मोंके क्षयसे संशय, विमोह, विभ्रमद्वोपरहित  
सकल सूक्ष्मादि पदार्थोंको स्पष्ट (प्रगट) जानता है इसलिये निर्मल है, और अतीत अनागत  
वर्तमानकालरूप लोकालोकको एकही बार जानता है इसलिये अक्रमवर्ती है, खेदयुक्त  
नहीं है निराकुल है; इसकारण प्रत्यक्षज्ञानही अतीन्द्रियसुख है ऐसा जानना ॥ ५९ ॥  
आगे केवलज्ञानीको सबके जाननेसे खेद उत्पन्न होता होगा, इस प्रकारके तर्कका नि-  
पेध करनेको कहते हैं;—[ यत् ] जो [ केवलं ] इति ] केवल ऐसे नामवाला  
[ ज्ञानं ] ज्ञान है [ तत् ] वह [ सौख्यं ] अनाकुल सुख है [ च ] और [ स  
प्य ] वही सुख [ परिणामः ] सबके जाननेरूप परिणाम है । [ नस्य ] उस

कान्तिकसुखत्वं न स्यात् । खेदस्यायतनानि घातिकर्माणि, न नाम केवलं परिणाममात्रं । घातिकर्माणि हि महामोहोत्पादकत्वाद्गुणमत्तकवदतस्मिस्तद्बुद्धिमाधाय परिच्छेद्यमर्थं प्रत्यात्मानं यतः परिणामयति, ततस्तानि तस्य प्रत्यर्थं परिणम्य परिणम्य श्राम्यतः खेदनिदानतां प्रतिपद्यन्ते । तदभावात्कुतो हि नाम केवले खेदस्योद्भेदा, यतश्च त्रिसमयावच्छिन्नसकल-पदार्थपरिच्छेद्याकारवैश्वरूप्यप्रकाशनास्पदीभूतं चित्रभित्तिस्थानीयमनन्तस्वरूपं स्वयमेव परिणमत्केवलमेव परिणामः, ततः कुतोऽन्यः परिणामो यद्वारेण खेदस्यात्मलाभः । यतश्च समस्तस्वभावप्रतिघाताभावात्समुलसितनिरङ्कुशानन्तशक्तितया सकलं त्रैकालिकं लोका-लोकाकारमभिव्याप्य कूटस्थत्वेनात्यन्तनिःप्रकम्पं व्यवस्थितत्वादानाकुलतां सौख्यलक्षण-भूतामात्मनोऽव्यतिरिक्तां विभ्राणं केवलमेव सौख्यं । ततः कुतः केवलसुखयोर्व्यतिरेकः । अतः सर्वथा केवलं सुखमैकान्तिकमनुमोदनीयम् ॥ ६० ॥

एव सुखरूप एवेति । इदानीं विस्तरः—ज्ञानदर्शनावरणोदये सति युगपदर्थान् ज्ञातुमशक्य-त्वात् क्रमकरणव्यवधानग्रहणे खेदो भवति, आवरणद्वयाभावे सति युगपद्ग्रहणे केवलज्ञानस्य खेदो नास्तीति सुखमेव । तथैव तस्य भगवतो जगन्नयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्परिच्छि-त्तिसमर्थमखण्डैकरूपं प्रत्यक्षपरिच्छित्तियं स्वरूपं परिणमत्सत् केवलज्ञानमेव परिणामो न च केवलज्ञानाद्विभ्राणपरिणामोऽस्ति येन खेदो भविष्यति । अथवा परिणामविषये द्वितीयव्याख्यानं क्रियते—युगपदनन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणामेपि वीर्यान्तरायनिरवशेषक्ष-यादनन्तवीर्यत्वात् खेदकारणं नास्ति, तथैव च शुद्धात्मसर्वप्रदेशेषु समरसीभावेन परि-णममानानां सहजशुद्धानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादपरिणतिरूपामात्मनः सकाशादभिन्नामनाकुलतां प्रति खेदो नास्ति । संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयेनाभेदरूपेण परिणममानं केवलज्ञानमेव

केवलज्ञानके [ खेदः ] आकुलभाव [ न भणितः ] नहीं कहा है [ यस्मात् ] क्योंकि [ घातीनि ] ज्ञानावरणादि चार घातियाकर्म [ क्षयं ] नाशको [ जातानि ] प्राप्त हुए हैं । भावार्थ—मोहकर्मके उदयसे यह आत्मा मतवालासा होकर असत्य वस्तुमें सत् बुद्धिको धारता हुआ ज्ञेयपदार्थोंमें परिणमन करता है, जिससे कि वे घा-तियाकर्म इसे इन्द्रियोंके आधीन करके पदार्थके जाननेरूप परिणमाते २ खेदके कारण होतेहैं । इससे सिद्ध हुआ कि घातिया कर्मोंके होनेपर आत्माके जो अशुद्ध ज्ञानपरिणाम हैं वे खेदके कारण हैं अर्थात् ज्ञानको खेदके कारण घातियाकर्म हैं । परंतु जहां इन घातिया कर्मोंका अभाव है उस केवलज्ञानावस्थामें खेद नहीं होसक्ता, क्योंकि “कार-णके अभावसे कार्यकाभी अभाव होजाता है” ऐसा न्याय है । एकही समय त्रिकाल-वर्ती सब ज्ञेयोंको जाननेमें समर्थ चित्रविचित्र भीतकी तरह अनन्तस्वरूप परिणाम है यह केवलज्ञानपरिणाम है । इस स्वाधीनपरिणाममें खेदके उत्पन्न होनेकी संभावना कैसे होसकती है । आवरणभावके नाशसे कर्मोंका नाश होनेसे ज्ञानकी अनन्तशक्ति प्रगट

अथ पुनरपि केवलस्य सुखस्वरूपतां निरूपयन्नुपसंहरति;—

णाणं अत्थंतगदं लोपालोकेसु वित्थडा दिट्ठी ।

णट्टमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं ॥ ६१ ॥

ज्ञानमर्थान्तगतं लोकालोकेषु विस्तृता दृष्टिः ।

नष्टमनिष्टं सर्वमिष्टं पुनर्यत्तु तल्लब्धम् ॥ ६१ ॥

स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकं हि सौख्यं । आत्मनो हि दृशिज्ञप्ती स्वभावः तयोर्लोकाऽलोकविस्तृतत्वेनार्थान्तगतत्वेन च स्वच्छन्दविजृम्भितत्वाद्भवति प्रतिघाताभावः । ततस्तद्देतुकं सौख्यमभेदविवक्षायां केवलस्य स्वरूपं । किंच केवलं सौख्यमेव, सर्वानिष्टप्रहाणात् सर्वेष्टोपलम्भाच्च । यतो हि केवलावस्थायां सुखप्रतिपत्तिविपक्षभूतस्य दुःखस्य साधनतामुपगतमज्ञानमखिलमेव प्रणश्यति, सुखस्य साधनीभूतं तु परिपूर्णं ज्ञानमुपजायेत । ततः केवलमेव सौख्यमित्यलं प्रपञ्चेन ॥ ६१ ॥

सुखं भण्यते । ततः स्थितमेतत्केवलज्ञानाद्भिन्नं सुखं नास्ति । तत एव केवलज्ञाने खेदो न संभवतीति ॥ ६० ॥ अथ पुनरपि केवलज्ञानस्य सुखस्वरूपतां प्रकारान्तरेण दृढयति;—णाणं अत्थंतगयं ज्ञानं केवलज्ञानमर्थान्तगतं ज्ञेयान्तप्राप्तं लोपालोकेसु वित्थडा दिट्ठी लोकालोकयोर्विस्तृता दृष्टिः केवलदर्शनं । णट्टमणिट्ठं सव्वं अनिष्टं दुःखमज्ञानं च तत्सर्वं नष्टं इट्ठं पुण जं हि तं लद्धं इष्टं पुनर्यद् ज्ञानं सुखं च हि रफुटं तत्सर्वं लब्धमिति । तद्यथा—स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकं सुखं भवति । स्वभावो हि केवलज्ञानदर्शनद्वयं, तयोः प्रतिघात आवरणद्वयं तस्याभावः केवलानां, ततः कारणात्स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकमक्षयानन्तसुखं भवति । यतश्च परमानन्दैकलक्षणसुखप्रतिपक्षभूतमाकुलत्वोत्पादकमनिष्टं दुःखमज्ञानं च नष्टं, यतश्च पूर्वोक्त-

ह्योती है उससे समस्त लोकालोकके आकारको व्याप्त कर कूटस्थ अवस्थासे अत्यंत निश्चल तथा आत्मासे अभिन्न अनन्तसुखरूप अनाकुलता सहित केवलज्ञानही सुख है; ज्ञान और सुखमें कोई भेद नहीं है । इसकारण सब तरहसे निश्चयकर केवलज्ञानको ही सुख मानना योग्य है ॥ ६० ॥ आगे फिरभी केवल ज्ञानको सुखरूप दिखाते हैं;— [ अर्थान्तगतं ] पदार्थोंके पारको प्राप्त हुआ [ ज्ञानं ] केवलज्ञान है [ तु ] तथा [ लोकालोकेषु ] लोक और अलोकमें [ विस्तृता ] फैला हुआ [ दृष्टिः ] केवलदर्शन है जब [ सर्वं अनिष्टं ] सब दुःखदायक अज्ञान [ नष्टं ] नाश हुआ [ पुनः ] तो फिर [ यत् ] जो [ इष्टं ] सुखका देनेवाला ज्ञान है [ तत् ] वह [ लब्धं ] प्राप्त हुआ ही । भावार्थ—जो आत्माके स्वभावका घात करता है उसे दुःख कहते हैं; और उस घातनेवालेका नाश वह सुख है । आत्माके स्वभाव ज्ञान और दर्शन हैं । सो जयतक इन ज्ञान दर्शनरूप स्वभावोंके घातनेवाले आवरण रहतेहैं तथतक सब जाननें और देखनेकी स्वच्छन्दता नहीं रहती यही आत्माके दुःख है । घातक आवरणके नाश

अथ केवलिनामेव पारमार्थिकसुखमिति श्रद्धापयति;—

ण हि सद्वहंति सोक्खं सुहेसु परमंति विगदघादीणं ।

सुणिज्जण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति ॥ ६२ ॥

न हि श्रद्धधति सौख्यं सुखेषु परममिति विगतघातिनाम् ।

श्रुत्वा ते अभव्या भव्या वा तत्प्रतीच्छन्ति ॥ ६२ ॥

इह खलु स्वभावप्रतिघातादाकुलत्वाच्च मोहनीयादिकर्मजालशालिनां सुखाभासेष्यपारमार्थिकी सुखमिति रूढिः । केवलिनां तु भगवतां प्रक्षीणघातिकर्मणां स्वभावप्रतिघाताभावादानाकुलत्वाच्च यथोदितस्य हेतोर्लक्षणस्य च सद्भावात्पारमार्थिकं सुखमिति श्रद्धेयं ।

लक्षणसुखाविनाभूतं त्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्प्रकाशकमिष्टं ज्ञानं च लब्धं, ततो ज्ञायते केवलिनां ज्ञानमेव सुखमित्यभिप्रायः ॥६१॥ अथ पारमार्थिकसुखं केवलिनामेव, संसारिणां ये मन्यन्ते तेऽभव्या इति निरूपयति;—णो सद्वहंति नैव श्रद्धधति न मन्यन्ते । किं । सोक्खं निर्विकारपरमाहादैकसुखं । कथंभूतं न मन्यन्ते । सुहेसु परमंति सुखेषु मध्ये तदेव परमसुखं । केषां संबन्धि यत्सुखं । विगदघादीणं विगतघातिकर्मणां केवलिनां । किं कृत्वापि न मन्यन्ते । सुणिदूण “जादं सयं समत्तं” इत्यादिपूर्वाक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण श्रुत्वापि ते अभव्या ते अभव्याः ते हि जीवा वर्तमानकाले सम्यक्त्वरूपभयत्वव्यक्त्यभावादभव्या भण्यन्ते, न पुनः सर्वथा भव्या वा तं पडिच्छंति ये वर्तमानकाले सम्यक्त्वरूपभयत्वव्यक्तिपरिणतास्तिष्ठन्ति ते तदनन्तसुखमिदानीं मन्यन्ते । ये च सम्यक्त्वरूपभयत्वव्यक्त्या भाविकाले परिणमिष्यन्ति ते च दूरभव्या अग्रे श्रद्धानां कुर्युरिति । अयमन्वयार्थः—मारणार्थं

होनेपर ज्ञान दर्शनसे सबका जानना और देखना होताहै । यही स्वच्छंदतासे निरावाध ( निराकुल ) सुख है । इसलिये अनन्तज्ञान दर्शन सुखके कारण हैं । और अमेदकी विवक्षासे ( कहनेकी इच्छासे ) जो केवलज्ञान है वही आत्मीकसुख है, क्योंकि केवलज्ञान सुखस्वरूपही है । आत्माके दुःखका कारण अनिष्टस्वरूप अज्ञान है, वह तो केवल-अवस्थामें नाशको प्राप्त होताहै और सुखका कारण इष्टस्वरूप जो सबका जाननारूप ज्ञान है वह प्रगट होता है । सारांश यह है कि केवलज्ञानही सुख है अधिक कहनेसे क्या ? ॥ ६१ ॥ अब केवलीकेही पारमार्थिक अतीन्द्रियसुख है ऐसा निश्चय करते हैं;—

[ विगतघातिनां ] जिनके घातिया कर्मोंका क्षय होगया है ऐसे केवली भगवानके [ सुखेषु परमं सौख्यं ] अन्य सबसुखोंमें उक्तप्र अतीन्द्रिय सुख है [ इति श्रुत्वा ] ऐसा सुनकर [ ये ] जो कोई पुरुष [ न हि श्रद्धधति ] विश्वास नहीं करते [ ते ] वे पुरुष [ अभव्याः ] सम्यक्त्वरूपपरिणतसे रहित अभव्य हैं । [ वा ] और जो पुरुष [ तत् ] केवलीके उस अतीन्द्रिय सुखको [ प्रतीच्छन्ति ] मानते हैं [ 'ते' भव्याः ] वे भव्य हैं अर्थात् सम्यक्त्वरूपपरिणामकर सहित हैं । भावार्थ—



न किलैवं येषां श्रद्धानमस्ति ते खलु मोक्षसुखसुधापानदूरवर्तिनो मृगतृष्णाम्भोभारमे-  
वाभव्याः पश्यन्ति । ये पुनरिदमिदानीमेव वचः प्रतीच्छन्ति ते शिवश्रियो भाजनं  
समासन्नभव्याः भवन्ति । ये तु पुरा प्रतीच्छन्ति ते तु दूरभव्या इति ॥ ६२ ॥

अथ परोक्षज्ञानिनामपारमार्थिकमिन्द्रियसुखं विचारयति;—

मणुआऽसुरामरिंदा अहिहुआ इंदिएहिं सहजेहिं ।

असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेषु ॥ ६३ ॥

मनुजासुरामरेन्द्राः अभिद्रुता इन्द्रियैः सहजैः ।

असहमानास्तदुःखं रमन्ते विषयेषु रम्येषु ॥ ६३ ॥

अमीषां प्राणिनां हि प्रत्यक्षज्ञानाभावात्परोक्षज्ञानमुपसर्पतां तत्सामग्रीभूतेषु स्वरसत  
एवेन्द्रियेषु मैत्री प्रवर्तते । अथ तेषां तेषु मैत्रीमुपगतानामुदीर्णमहामोहकालानलकव-  
लितानां तप्तायोगोलानामिवात्यन्तमुपात्ततृष्णानां तदुःखवेगमसहमानानां व्याधिसाल्प्यता-

तलवरगृहीततस्करस्य मरणमिव यद्यपीन्द्रियसुखमिष्टं न भवति, तथापि तलवरस्थानीयचारित्र-  
मोहोदयेन मोहितः सन्निरुपरागस्वात्मोत्थसुखमलभमानः सन् सरागसम्यग्दृष्टिरात्मनिन्दादिपरिणतो  
हेयरूपेण तदनुभवति । ये पुनर्धीतरागसम्यग्दृष्टयः शुद्धोपयोगिनस्तेषां, महस्यानां स्थलग-  
मनमिवाग्निप्रवेश इव वा निर्विकार शुद्धात्मसुखाच्च्यवनमपि दुःखं प्रतिभाति । तथा चोक्तं—  
“समसुखशीलितमनसां च्यवनमपि द्वेषमेतिः किमु कामाः । स्थलमपि दहति क्षपाणां किमङ्ग  
पुनरङ्गमङ्गाराः” ॥ ६२ ॥ एवमभेदनयेन केवलज्ञानमेव सुखं भण्यते इति कथनमुख्यतया  
गाथाचतुष्टयेन चतुर्थस्थलं गतं । अथ संसारिणामिन्द्रियज्ञानसाधकमिन्द्रियसुखं विचारयति;—  
मणुआऽसुरामरिंदा मनुजाऽसुरामरेन्द्राः । कथंभूताः । अहिहुदा इंदियेहिं सहजेहिं  
अभिद्रुताः कदर्थिताः दुःखिताः । कैः । इन्द्रियैः सहजैः असहंता तं दुक्खं तदुःखोद्रेक-  
मसहमानाः सन्तः रमंति विसएसु रम्मेषु रमन्ति विषयेषु रम्याभासेषु इति । अथ वि-

सम्यग्दृष्टि जीव संसारके सुखोंको सुखाभास समझते हैं और इंद्रियसुखोंको रूढीसे  
सुख मानते हैं । परंतु यथार्थमें केवलीके सुखकोही सुख मानते हैं, क्योंकि उनके घाति-  
याकर्मोंके नाश होनेसे अनाकुलता प्रगट होती है । और आकुलतारहित सुखही पारमा-  
र्थिक ( निश्चयसे ) सुख है । जो अज्ञानी आत्मीक सुखके आस्वाद लेनेवाले नहीं हैं वे  
मृगतृष्णाकी तरह अजलमें जलबुद्धि करके इंद्रियाधीन सुखको सुख मानते हैं ॥ ६२ ॥  
अथ परोक्षज्ञानियोंके इंद्रियाधीन सुख है परमार्थसुख नहीं है ऐसा कहते हैं;—[ स-  
हजैः ] स्वाभाविक व्याधिरूप [ इन्द्रियैः ] इंद्रियोंसे [ अभिद्रुताः ] पीडित  
[ मनुजाऽसुरामरेन्द्राः ] मनुष्य, असुर ( पातालवासीदेव ) और देवोंके ( स्वर्गवा-  
सीदेवोंके ) इन्द्र अर्थात् स्वामी [ तत् दुःखं ] उस इन्द्रियजनित दुःखको [ असह-  
मानाः ] सहन करनेमें असमर्थ होते हुए [ रम्येषु विषयेषु ] रमणीक इंद्रियज-

मुपगतेषु रम्येषु विषयेषु रतिरूपजायते । ततो व्याधिस्थानीयत्वादिन्द्रियाणां व्याधिसा-  
त्म्यसंमत्त्वाद्विषयाणां च न छद्मस्थानां पारमार्थिकं सौख्यम् ॥ ६३ ॥

अथ यावदिन्द्रियाणि तावत्स्वभावादेव दुःखमेवं वितर्कयति;—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सव्भावं ।

जदि तं ण हि सव्भावं वाचारो णत्थि विसयत्थं ॥ ६४ ॥

येषां विषयेषु रतिस्तेषां दुःखं विजानीहि स्वाभावम् ।

यदि तन्न हि स्वभावो व्यापारो नास्ति विषयार्थम् ॥ ६४ ॥

येषां जीवदवस्थानि हतकानीन्द्रियाणि, न नाम तेषामुपाधिप्रत्ययं दुःखं । किन्तु स्वा-  
भाविकमेव, विषयेषु रतेरवलोकनात् । अवलोक्यते हि तेषां स्तम्भेरमस्य करेणुकुट्टनीमा-  
त्रस्पर्श इव, सफरस्य बडिशामिपस्वाद इव, इन्द्रिरस्य संकोचसंमुखारविन्दामोद इव, पत-  
ङ्गस्य प्रदीपार्चीरूप इव, कुरङ्गस्य मृगयुगेयस्वर इव, दुर्निवारेन्द्रियवेदनावशीकृतानामास-  
न्ननिपातेष्वपि विषयेष्वभिपातः । यदि पुनर्न तेषां दुःखं स्वाभाविकमभ्युपगम्येत तदो-  
पशान्तशीतज्वरस्य संस्वेदनमिव, प्रहीणदाहज्वरस्वारनालपरिषेव इव, निवृत्तनेत्रसंरम्भस्य

स्तरः—मनुजादयो जीवा अमूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखास्वादमलभमानाः सन्तः मूर्तेन्द्रियज्ञान-  
सुखनिमित्तं पञ्चेन्द्रियेषु भैत्री कुर्वन्ति । ततश्च तप्तलोहगोलकानामुदकाकर्षणमिव विषयेषु तीव्र-  
तृष्णा जायते । तां तृष्णामसहमाना विषयाननुभवन्ति इति । ततो ज्ञायते पञ्चेन्द्रियाणि व्याधि-  
स्थानीयानि, विषयाश्च तत्प्रतीकारौपधस्थानीया इति संसारिणां वास्तवं सुखं नास्ति ॥ ६३ ॥  
अथ यावदिन्द्रियव्यापारस्तावदुःखमेवेति कथयति;—जेसिं विसयेसु रई येषां निर्विषयातीन्द्रि-  
यपरमाम्स्वरूपविपरीतेषु विषयेषु रतिः तेसिं दुक्खं वियाण सव्भावं तेषां बहिर्मुखजीवानां  
निजशुद्धाम्ब्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्ननिरुपाधिपारमार्थिकसुखविपरीतं स्वभावेनैव दुःखमस्तीति विजा-  
नीहि । कस्मादिति चेत् । पञ्चेन्द्रियविषयेषु रतेरवलोकनात् जइ तं ण हि सव्भावं यदि

नित सुखोमें [ रमन्ति ] क्रीडा करते हैं । भावार्थ—संसारी जीवोंके प्रत्यक्ष ज्ञानके  
अभावसे परोक्षज्ञान है । जो कि इंद्रियोंके आधीन है और तप्त लोहेके गोलेके समान महा-  
मोहरूप कालाग्निसे प्रसित तीव्रतृष्णासहित है । जैसे व्याधिसे पीड़ित होकर रोगी  
औपधि सेवन करता है उसीप्रकार इंद्रियरूप व्याधिसे दुःखी होकर यह जीव इंद्रि-  
योंके स्पर्शरसादि विषयरूप औपधका सेवन करता है । इससे सिद्ध हुआ कि परोक्ष-  
ज्ञानी अत्यंत दुःखी हैं, उनके आत्मीक निश्चयसुख नहीं है ॥ ६३ ॥ आगे कहते हैं  
कि जवतक इन्द्रियां हैं तवतक स्वाभाविक दुःख ही है;—[ येषां ] जिनजीवोंकी  
[ विषयेषु ] इंद्रियविषयोंमें [ रतिः ] प्रीति है [ तेषां ] उनके [ दुःखं ] दुःख  
[ स्वाभावं ] स्वभावसे ही [ विजानीहि ] जानो । क्योंकि [ यदि ] जो [ तत् ]  
यह इन्द्रियजन्य दुःख [ हि ] निश्चयसे [ स्वभावं ] सहजहीसे उत्पन्न हुआ

च वटाचूर्णवचूर्णनमिव, विनष्टकर्णशूलस्य वस्तमूत्रपूरणमिव, रूढव्रणस्यालेपनदानमिव, विषयव्यापारो न दृश्यते । दृश्यते चासौ । ततः स्वभावभूतदुःखयोगिन एव जीवदिन्द्रियाः परोक्षज्ञानिनः ॥ ६४ ॥

अथ मुक्तात्मसुखप्रसिद्धये शरीरस्य सुखसाधनतां प्रविहन्ति;—

पय्या इष्टे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण ।

परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो ॥ ६५ ॥

प्राप्येष्टान् विपयान् स्पशैः समाश्रितान् स्वभावेन ।

परिणममान आत्मा स्वयमेव सुखं न भवति देहः ॥ ६५ ॥

अस्य खल्वात्मनः सशरीरावस्थायामपि न शरीरं सुखसाधनतामापद्यमानं पश्यामः;

तदुःखं स्वभावेन नास्ति हि स्फुटं वावारो णत्थि विसयत्थं तर्हि विपयार्थं व्यापारो नास्ति न घटते । व्याधिस्थानामौषधेष्विव विपयार्थं व्यापारो दृश्यते चेत्तत एव ज्ञायते दुःखमस्तीत्यभिप्रायः ॥ ६४ ॥ एवं परमार्थेनेन्द्रियसुखस्य दुःखस्थापनार्थं गाथाद्वयं गतम् । अथ मु-

[ न ] न होता तो [ विषयार्थ ] विषयोंके सेवनेके लिये [ व्यापारः ] इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति भी [ नास्ति ] नहीं होती । भावार्थ—जिन जीवोंके इंद्रियां जीवित हैं उनके अन्य ( दूसरी ) उपाधियोंसे कोई दुःख नहीं है सहजसे येही महान् दुःख हैं, क्योंकि इंद्रियां अपने विषयोंको चाहती हैं । और विषयोंकी चाहसे आत्माको दुःख उत्पन्न होता प्रत्यक्ष देखाजाता है । जैसे—हाथी स्पर्शन इंद्रियके विषयसे पीड़ित होकर कुट्टनी ( कपटनी ) हथिनीके वशमें पढ़के पकड़ा जाता है । रसना इंद्रियके विषयसे पीड़ित होकर मछली बडिश ( लोहेका कांटा ) के मांसके चाखनेके लोभसे प्राण खोदेती है । भौरा घ्राण इंद्रियके विषयसे सताया हुआ संकोच हुए कमलमें गंधके लोभसे कैद होकर दुःखी होता है । पतङ्गजीव नेत्रइंद्रियके विषयसे पीड़ित हुआ दीपकमें जलमरता है । और हरिन श्रोत्र इंद्रियके विषयवश वीणाकी आवाजके वशीभूत हो व्याधाके हाथसे पकड़ा जाता है । यदि इंद्रियां दुःखरूप न होतीं तो विषयकी इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि शीतज्वरके दूर होनेपर अग्निके सेककी आवश्यकता नहीं रहती, दाहज्वरके न रहनेपर कांजीसे सेचन व्यर्थ होता है, इसीप्रकार नेत्रपीडाकी निवृत्ति होनेपर खपरियाके संग मिश्री आदि औषध, कर्णशूलरोगके नाश होनेपर वकरेका मूत्र आदि, व्रण ( घाव ) रोगके अच्छे होनेपर आलेपन ( पट्टी ) आदि औषधियां निष्प्रयोजन होती हैं, उसीप्रकार जो इंद्रियां दुःखरूप न हों तो विषयोंकी चाह भी न होवे । परंतु इच्छा देखी जाती है, जोकि रोगके दूर होनेपर ही उसकी निवृत्तिकेलिये विषयभोग औषध वुल्य हैं । सारांश यह हुआ इंद्रियाधीन स्वभावसे ही दुःखी हैं ॥ ६४ ॥

अब कहते हैं कि मुक्तात्मा सुख है इसलिये शरीर सुख-

यतस्तदापि पीनोन्मत्तकरसैरिव प्रकृष्टमोहवशवर्तिभिरिन्द्रियैरिमेस्माकमिष्टा इति क्रमेण विषयानभिपतद्भिरसमीचीनवृत्तितामनुभवशुपरुद्धशक्तिसारेणापि ज्ञानदर्शनवीर्यात्मकेन निश्चयकारणतामुपागतेन स्वभावेन परिणममानः स्वयमेवायमात्मा सुखतामापद्यते । शरीरं त्वचेतनत्वादेव सुखत्वपरिणतेर्निश्चयकारणतामनुपागच्छन्न जातु सुखतामुपढौकत इति ॥६५॥  
अथैतदेव दृढयति;—

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणइ सग्गे वा ।

विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा ॥ ६६ ॥

एकान्तेन हि देहः सुखं न देहिनः करोति स्वर्गं वा ।

विषयवशेन तु सौख्यं दुःखं वा भवति स्वयमात्मा ॥ ६६ ॥

अयमत्र सिद्धान्तो यद्विव्यवैक्रियिकत्वेपि शरीरं न खलु सुखाय कल्प्येतेतीष्ठानामनिष्ठानां वा विषयाणां वशेन सुखं वा दुःखं वा स्वयमेवात्मा स्यात् ॥ ६६ ॥

क्तात्मनां शरीराभावेपि सुखमस्तीति ज्ञापनार्थं शरीरं सुखकारणं न स्यादिति व्यक्तीकरोति;—  
पथ्या प्राप्य । कान् । इष्टे विसये इष्टपञ्चेन्द्रियविषयान् । कथंभूतान् । फासेहिं समस्सिदे स्पर्शनादीन्द्रियरहितशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणैः स्पर्शनादिभिरिन्द्रियैः समाश्रितान् सम्यक् प्राप्यान् ग्राह्यान्, इत्थंभूतान् विषयान् प्राप्य । स कः । अप्पा आत्मा कर्ता । किंविशिष्टः । सहावेण परिणममाणो अनन्तसुखोपादानभूतशुद्धात्मस्वभावविपरीतेनाशुद्धसुखोपादानभूतेनाशुद्धात्मस्वभावेन परिणममानः । इत्थंभूतः सन् सयमेव सुहं स्वयमेवेन्द्रियसुखं भवति परिणमति । ण हवदि देहो देहः पुनरचेतनत्वात्सुखं न भवतीति । अयमत्रार्थः—कर्मावृतसंसारिजीवानां यद्विन्द्रियसुखं तत्रापि जीव उपादानकारणं न च देहः, देहकर्मरहितमुक्तात्मनां पुनर्यदनन्तातीन्द्रियसुखं तत्र विशेषेणात्मैव कारणमिति ॥ ६५ ॥ अथ मनुष्यशरीरं मा भवतु, देवशरीरं

कारण नहीं है;—[ स्पर्शः ] स्पर्शनादि पांच इंद्रियोंकरके [ समाश्रितान् ] भले-प्रकार आश्रित [ इष्टान् विषयान् ] प्यारे भोगोंको [ प्राप्य ] पाकर [ स्वभावेन ] अशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावसे [ परिणममानः आत्मा ] परिणमन करता हुआ आत्मा [ स्वयमेव ] आपही [ सुखं ] इंद्रियसुखस्वरूप [ भवति ] है [ देहः ] शरीर [ 'सुखं' ] सुखरूप [ न ] नहीं है । भावार्थ—इस आत्माके शरीर अवस्थाके होते भी हम यह नहीं देखते हैं कि सुखका कारण शरीर है । क्योंकि यह आत्मा मोह प्रवृत्तिसे मदनोन्मत्त इंद्रियोंके वशमें पड़कर निंदनीय अवस्थाको धारण करता हुआ अशुद्ध ज्ञान दर्शन वीर्यस्वभावरूप परिणमन करता है । और उन विषयोंमें आपही सुख मानलेता है । शरीर जड है इसलिये सुखरूप कार्यका उपादान कारण अचेतन शरीर कभी नहीं होसकता । सारांश यह हुआ कि संसार अवस्थामें भी शरीर सुखका कारण नहीं है, आत्मा ही सुखका कारण है ॥ ६५ ॥ आगे “संसार अवस्थामें भी

च वटाचूर्णावचूर्णनमिव, विनष्टकर्णशूलस्य वस्तमूत्रपूरणमिव, रूढव्रणस्यालेपनदानमिव, वि-  
पयव्यापारो न दृश्येत । दृश्यते चासौ । ततः स्वभावभूतदुःखयोगिन एव जीवदिन्द्रियाः  
परोक्षज्ञानिनः ॥ ६४ ॥

अथ मुक्तात्मसुखप्रसिद्धये शरीरस्य सुखसाधनतां प्रविहन्ति;—

पय्या इष्टे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण ।

परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हचदि देहो ॥ ६५ ॥

प्राप्येष्टान् विपयान् स्पर्शैः समाश्रितान् स्वभावेन ।

परिणममान आत्मा स्वयमेव सुखं न भवति देहः ॥ ६५ ॥

अस्य खत्वात्मनः सशरीरावस्थायामपि न शरीरं सुखसाधनतामापद्यमानं पश्यामः;

तदुःखं स्वभावेन नास्ति हि स्फुटं वावारो णत्थि विसयत्थं तर्हि विपयार्थं व्यापारो नास्ति  
न घटते । व्याधिस्थानामौषधेष्विव विपयार्थं व्यापारो दृश्यते चेत्तत एव ज्ञायते दुःखमस्ती-  
त्यभिप्रायः ॥ ६४ ॥ एवं परमार्थेन्द्रियसुखस्य दुःखस्थापनार्थं गाथाद्वयं गतम् । अथ मु-

[ न ] न होता तो [ विपयार्थं ] विपयोंके सेवनेके लिये [ व्यापारः ] इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति भी [ नास्ति ] नहीं होती । भावार्थ—जिन जीवोंके इन्द्रियां जीवित हैं उनके अन्य ( दूसरी ) उपाधियोंसे कोई दुःख नहीं है सहजसे येही महान् दुःख हैं, क्योंकि इन्द्रियां अपने विपयोंको चाहती हैं । और विपयोंकी चाहसे आत्माको दुःख उत्पन्न होता प्रत्यक्ष देखाजाता है । जैसे—हाथी स्पर्शन इन्द्रियके विषयसे पीड़ित होकर कुट्टनी ( कपटनी ) हथिनीके वशमें पड़के पकड़ा जाता है । रसना इन्द्रियके विषयसे पीड़ित होकर मछली घडिश ( लोहेका कांटा ) के मांसके चाखनेके लोभसे प्राण खोदेती है । भौरा घ्राण इन्द्रियके विषयसे सताया हुवा संकोच हुए कमलमें गंधके लोभसे कैद होकर दुःखी होता है । पतङ्गजीव नेत्रइन्द्रियके विषयसे पीड़ित हुआ दीपकमें जलमरता है । और हरिन श्रोत्र इन्द्रियके विषयवश वीणाकी आवाजके वशीभूत हो व्याधाके हाथसे पकड़ा जाता है । यदि इन्द्रियां दुःखरूप न होतीं तो विपयकी इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि शीतज्वरके दूर होनेपर अग्निके सेककी आवश्यकता नहीं रहती, दाहज्वरके न रहनेपर कांजीसे सेचन व्यर्थ होता है, इसीप्रकार नेत्रपीडाकी निवृत्ति होनेपर खपरियाके संग मिश्री आदि औषध, कर्णशूलरोगके नाश होनेपर बकरेका मूत्र आदि, व्रण ( घाव ) रोगके अच्छे होनेपर आलेपन ( पट्टी ) आदि औषधियां निष्प्रयोजन होती हैं, उसीप्रकार जो इन्द्रियां दुःखरूप न हों तो विपयोंकी चाह भी न होवे । परंतु इच्छा देखी जाती है, जोकि रोगके समान है और उसकी निवृत्तिकेलिये विषयभोग औषध तुल्य हैं । सारांश यह हुआ कि परोक्षज्ञानी इन्द्रियाधीन स्वभावसे ही दुःखी हैं ॥ ६४ ॥ अथ कहते हैं कि मुक्तात्माओंको शरीरके विना भी सुख है इसलिये शरीर सुखका

यतस्तदापि पीनोन्मत्तकरसैरिव प्रकृष्टमोहवशवर्तिभिरिन्द्रियैरिमेस्माकमिष्टा इति क्रमेण विषयानभिपतद्भिरसमीचीनवृत्तितामनुभवशुपरुद्धशक्तिसारेणापि ज्ञानदर्शनवीर्यात्मकेन निश्चयकारणतामुपागतेन स्वभावेन परिणममानः स्वयमेवायमात्मा सुखतामापद्यते । शरीरं त्वचेतनत्वादेव सुखत्वपरिणतेर्निश्चयकारणतामनुपागच्छन्न जातु सुखतामुपढौकत इति ॥६५॥

अथैतदेव दृढयति;—

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणइ सग्गे वा ।

विसयवसेण तु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा ॥ ६६ ॥

एकान्तेन हि देहः सुखं न देहिनः करोति स्वर्गं वा ।

विषयवशेन तु सौख्यं दुःखं वा भवति स्वयमात्मा ॥ ६६ ॥

अयमत्र सिद्धान्तो यद्विव्यवैक्रियिकत्वेपि शरीरं न खलु सुखाय कल्प्येतेतीष्ठानामनिष्ठानां वा विषयाणां वशेन सुखं वा दुःखं वा स्वयमेवात्मा स्यात् ॥ ६६ ॥

क्तात्मनां शरीराभावेपि सुखमस्तीति ज्ञापनार्थं शरीरं सुखकारणं न स्यादिति व्यक्तीकरोति;—  
पय्या प्राप्य । कान् । इष्टे विसये इष्टपञ्चेन्द्रियविषयान् । कथंभूतान् । फासेहिं समस्सिदे स्पर्शनादीन्द्रियरहितशुद्धात्मतत्त्वविलक्षणैः स्पर्शनादिभिरिन्द्रियैः समाश्रितान् सम्यक् प्राप्यान् प्राह्यान्, इत्थंभूतान् विषयान् प्राप्य । सकः । अप्पा आत्मा कर्ता । किंविशिष्टः । सहावेण परिणममाणो अनन्तसुखोपादानभूतशुद्धात्मस्वभावविपरीतेनाशुद्धसुखोपादानभूतेनाशुद्धात्मस्वभावेन परिणममानः । इत्थंभूतः सन् स्वयमेव सुहं स्वयमेवेन्द्रियसुखं भवति परिणमति । ण हवदि देहो देहः पुनरचेतनत्वात्सुखं न भवतीति । अयमत्रार्थः—कर्मावृतसंसारिजीवानां यद्विन्द्रियसुखं तत्रापि जीव उपादानकारणं न च देहः, देहकर्मरहितमुक्तात्मनां पुनर्धदनन्तातीन्द्रियसुखं तत्र विशेषेणामैव कारणमिति ॥ ६५ ॥ अथ मनुष्यशरीरं मा भवतु, देवशरीरं

कारण नहीं है;—[ स्पर्शः ] स्पर्शनादि पांच इंद्रियोंकरके [ समाश्रितान् ] भले-प्रकार आश्रित [ इष्टान् विषयान् ] प्यारे भोगोंको [ प्राप्य ] पाकर [ स्वभावेन ] अशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावसे [ परिणममानः आत्मा ] परिणमन करता हुआ आत्मा [ स्वयमेव ] आपही [ सुखं ] इंद्रियसुखस्वरूप [ भवति ] है [ देहः ] शरीर [ 'सुखं' ] सुखरूप [ न ] नहीं है । भावार्थ—इस आत्माके शरीर अवस्थाके होते भी हम यह नहीं देखते हैं कि सुखका कारण शरीर है । क्योंकि यह आत्मा मोह प्रवृत्तिसे मदीन्मत्त इंद्रियोंके वशमें पड़कर निन्दनीय अवस्थाको धारण करता हुआ अशुद्ध ज्ञान दर्शन वीर्यस्वभावरूप परिणमन करता है । और उन विषयोंमें आपही सुख मानलेता है । शरीर जड है इसलिये सुखरूप कार्यका उपादान कारण अचेतन शरीर कभी नहीं होसकता । सारांश यह हुआ कि संसार अवस्थामें भी शरीर सुखका कारण नहीं है, आत्मा ही सुखका कारण है ॥ ६५ ॥ आगे “संसार अवस्थामें भी

अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विपयाणामकिञ्चित्करत्वं द्योतयति;—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि काद्व्वं ।

तथ सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुच्चंति ॥ ६७ ॥

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम् ।

तथा सौख्यं स्वयमात्मा विपयाः किं तत्र कुर्वन्ति ॥ ६७ ॥

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वात् तदपाकरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुख-

दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति;—एगंतेण हि देहो सुहण्ण देहिस्स कुणदि एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति । कस्य । देहिनः संसारिजीवस्य । क-। सगगे वा आस्तां तावन्मनुष्याणां मनुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गं वा यासौ दिव्यो देवदेहः सोप्युपचारं विहाय सुखं न करोति । विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा किन्तु निश्चयेन निर्विपयामूर्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशाद्विषयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभिप्रायः ॥ ६६ ॥ एवं मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुखकारणं न भवतीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम् । अथात्मनः स्वयमेवसुखस्वभावत्वान्निश्चयेन यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विपया अपीति प्रतिपादयति;—जइ यदि दिट्ठी नक्तंचरजनस्य दृष्टिः तिमिरहरा अन्धकारहरा भवति जणस्स जनस्य दीवेण णत्थि का-

आत्मा ही सुखका कारण है' इसी बातको फिर दृढ करते हैं;—[ एकान्तेन ] सब तरहसे [ हि ] निश्चयकर [ देहः ] शरीर [ देहिनः ] देहधारी आत्माको [ स्वर्गं वा ] स्वर्गमें भी [ सुखं ] सुखरूप [ न करोति ] नहीं करता [ तु ] किंतु [ विपयवसेण ] विपयोंके आधीन होकर [ आत्मा स्वयं ] यह आत्मा आपही [ सौख्यं वा दुःखं ] सुखरूप अथवा दुःखरूप [ भवति ] होता है । भावार्थ—सब गतियोंमें स्वर्गगति उत्कृष्ट है परंतु उसमें भी उत्तम वैक्रियिकशरीर सुखका कारण नहीं है, औरोंकी तो बात क्या है । क्योंकि इस आत्माका एक ऐसा स्वभाव है कि वह इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके वश होकर आपही सुख दुःखकी कल्पना कर लेता है । यथार्थमें शरीर सुखदुःखका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ अब कहते हैं कि आत्माका स्वभाव ही सुख है इसलिये इन्द्रियोंके विपयभी सुखके कारण नहीं हैं;—[ यदि ] जो [ जनस्य ] चौरआदि जीवकी [ दृष्टिः ] देखनेकी शक्ति [ तिमिरहरा ] अंधकारके दूर करनेवाली हो [ तदा ] तो उसे [ दीपेन ] दीपकसे [ कर्तव्यं ] कुछ कार्य करना [ नास्ति ] नहीं है [ तथा ] उसीप्रकार [ आत्मा ] जीव

तथा परिणममानस्य सुखसाधनधिया अलुधैर्मुधाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति;—

सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।

सिद्धोपि तथा णाणं सुहं च लोगे तथा देवो ॥ ६८ ॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि ।

सिद्धोपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः ॥ ६८ ॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वरस्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः । यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्यमेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वादुष्णः । यथा च देवगतिनाम कर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया

यच्च दीपेन नास्ति कर्तव्यं तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वन्ति तथा निर्विषयामूर्तसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति न किमपीति भावः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति;—सयमेव जहाइच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानिजनानां देवता भवति । क स्थितः । नभसि आकाशे सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोये सिद्धोपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं

[ स्वयं ] आपही [ सौख्यं ] सुखस्वरूप है [ तत्र ] वहां [ विषयाः ] इंद्रियोंके विषय [ किं कुर्वन्ति ] क्या करते हैं? कुछभी नहीं । भावार्थ—जैसे सिंह, सर्प, राक्षस, चोर आदि रात्रिमें विचरनेवाले जीव अंधेरेमें भी पदार्थोंको अच्छीतरह देखसकते हैं, उनकी दृष्टि अंधकारमें भी प्रकाश करती है, अन्य दीपक आदि प्रकाशकरनेवाले सहायक कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखती; इसी प्रकार आत्मा आपही सुखस्वभाववाला है, उसके सुखानुभवकरनेमें विषयवगैरः कारण नहीं होसकते । विषयोंसे सुख अज्ञानीजनोंने व्यर्थ मानरखा है; यह मानना मोहका विलास है, मिथ्या भ्रम है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि जैसे शरीर सुखका कारण नहीं है वैसे इंद्रियोंके विषय भी सुखके कारण नहीं हैं ॥ ६७ ॥ अब आत्माके ज्ञान—सुख दृष्टान्तसे दृढ करते हैं;—[ यथा ] जैसे [ नभसि ] आकाशमें [ आदित्यः ] सूर्य [ स्वयमेव ] आपही अन्यकारणोंके विना [ तेजः ] बहुत प्रभाके समूहसे प्रकाशरूप है, [ उष्णः ] तपायमान लोहपिंडकी तरह हमेशा गरम है [ च ] और [ देवता ] देवगति नामकर्मके उदयसे देवपदवीको धारण करनेवाला है । [ तथा ] वैसे ही [ लोके ] इस जगतमें [ सिद्ध अपि ] शुद्धात्मा भी [ ज्ञानं ]



अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणामकिञ्चित्करत्वं द्योतयति;—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादब्बं ।

तथ सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुञ्चन्ति ॥ ६७ ॥

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम् ।

तथा सौख्यं स्वयमात्मा विषयाः किं तत्र कुर्वन्ति ॥ ६७ ॥

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वात् तदपाकरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुख-

दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति;—एगंतेण हि देहो सुहण्ण देहिस्स कुणदि एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति । कस्य । देहिनः संसारिजीवस्य । क । सग्गे वा आस्तां तावन्मनुष्याणां मनुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गं वा यासौ दिव्यो देवदेहः सोप्युपचारं विहाय सुखं न करोति । विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा किन्तु निश्चयेन निर्विषयामूर्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशाद्विषयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभिप्रायः ॥ ६६ ॥ एवं मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुखकारणं न भवतीतिकथनरूपेण गायार्थं गतम् । अथात्मनः स्वयमेवसुखस्वभावत्वानिश्चयेन यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विषया अपीति प्रतिपादयति;—जइ यदि दिट्ठी नक्तंचरजनस्य दृष्टिः तिमिरहरा अन्धकारहरा भवति जणस्स जनस्य दीवेण णत्थि का-

आत्मा ही सुखका कारण है' इसी बातको फिर दृष्ट करते हैं;—[ एकान्तेन ] सब तरहसे [ हि ] निश्चयकर [ देहः ] शरीर [ देहिनः ] देहधारी आत्माको [ स्वर्गं वा ] स्वर्गमें भी [ सुखं ] सुखरूप [ न करोति ] नहीं करता [ तु ] किंतु [ विषयवसेण ] विषयोंके आधीन होकर [ आत्मा स्वयं ] यह आत्मा आपही [ सौख्यं वा दुःखं ] सुखरूप अथवा दुःखरूप [ भवति ] होता है । भावार्थ—सब गतियोंमें स्वर्गगति उत्कृष्ट है परंतु उसमें भी उत्तम वैकियिकशरीर सुखका कारण नहीं है, औरोंकी तो बात क्या है । क्योंकि इस आत्माका एक ऐसा स्वभाव है कि वह इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके वश होकर आपही सुख दुःखकी कल्पना कर लेता है । यथार्थमें शरीर सुखदुःखका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ अब कहते हैं कि आत्माका स्वभाव ही सुख है इसलिये इन्द्रियोंके विषयभी सुखके कारण नहीं हैं;—[ यदि ] जो [ जनस्य ] चौरआदि जीवकी [ दृष्टिः ] देखनेकी शक्ति [ तिमिरहरा ] भंयकारके दूर करनेवाली हो [ तदा ] तो उसे [ दीपेन ] दीपकसे [ कर्तव्यं ] कुछ कार्य करना [ नास्ति ] नहीं है [ तथा ] उसीप्रकार [ आत्मा ] जीव

तया परिणममानस्य सुखसाधनधिया अबुधैर्मुधाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति;—

सयमेव जघादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।

सिद्धोवि तथा णाणं सुहं च लोगे तथा देवो ॥ ६८ ॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि ।

सिद्धोपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः ॥ ६८ ॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वरस्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः । यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्यमेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वादुष्णः । यथा च देवगतिनाम कर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया

यच्च दीपेन नास्ति कर्तव्यं तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति तह सोक्खं सयमादा विसया किं तस्थ कुव्वंति तथा निर्विषयामूर्तसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति न किमपीति भावः ॥ ६७ ॥ अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति;—सयमेव जहाइच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानिजनानां देवता भवति । क स्थितः । नभसि आकाशे सिद्धो वि तथा णाणं सुहं च लोये सिद्धोपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं

[ स्वयं ] आपही [ सौख्यं ] सुखस्वरूप है [ तत्र ] वहां [ विषयाः ] इंद्रियोंके विषय [ किं कुर्वन्ति ] क्या करते हैं? कुछभी नहीं । भावार्थ—जैसे सिंह, सर्प, राक्षस, चोर आदि रात्रिमें विचरनेवाले जीव अंधेरेमें भी पदार्थोंको अच्छीतरह देखसकते हैं, उनकी दृष्टि अंधकारमें भी प्रकाश करती है, अन्य दीपक आदि प्रकाशकरनेवाले सहायक कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखती; इसी प्रकार आत्मा आपही सुखस्वभाववाला है, उसके सुखानुभवकरनेमें विषयवगैरः कारण नहीं होसकते । विषयोंसे सुख अज्ञानीजनोंने व्यर्थ मानरखा है; यह मानना मोहका विलास है, मिथ्या भ्रम है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि जैसे शरीर सुखका कारण नहीं है वैसे इंद्रियोंके विषय भी सुखके कारण नहीं हैं ॥ ६७ ॥ अब आत्माके ज्ञान—सुख दृष्टान्तसे दृढ करते हैं;—[ यथा ] जैसे [ नभसि ] आकाशमें [ आदित्यः ] सूर्य [ स्वयमेव ] आपही अन्यकारणोंके बिना [ तेजः ] बहुत प्रभाके समूहसे प्रकाशरूप है, [ उष्णः ] तपायमान लोहपिंडकी तरह हमेशा गरम है [ च ] और [ देवता ] देवगति नामकर्मके उदयसे देवपदवीको धारण करनेवाला है । [ तथा ] वैसे ही [ लोके ] इस जगत्में [ सिद्ध अपि ] शुद्धात्मा भी [ ज्ञानं ]

अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणामकिञ्चित्कारत्वं द्योतयति;—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादब्बं ।

तथ सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुब्बन्ति ॥ ६७ ॥

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम् ।

तथा सौख्यं स्वयमात्मा विषयाः किं तत्र कुर्वन्ति ॥ ६७ ॥

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वात् तदपा-  
हरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुख-

दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति;—एगंतेण हि देहो सुहण्ण देहि-  
स्स कुणदि एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति । कस्य । देहिनः संसारिजीवस्य ।  
क । सग्गे वा आस्तां तावन्मज्जुषाणां मज्जुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गं वा यासौ दिव्यो  
देवदेहः सोप्युपचारं विहाय सुखं न करोति । विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि  
सयमादा किन्तु निश्चयेन निर्विषयामूर्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोपि व्यवहारेणानादिकर्म-  
बन्धवशाद्विषयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभि-  
प्रायः ॥ ६६ ॥ एवं मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुख-  
कारणं न भवतीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम् । अथात्मनः स्वयमेवसुखस्वभावत्वान्निश्चयेन  
यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विषया अपीति प्रतिपादयति;—जइ यदि दिट्ठी न-  
क्तंचरजनस्य दृष्टिः तिमिरहरा अन्धकारहरा भवति जणस्स जनस्य दीवेण णत्थि का-

आत्मा ही सुखका कारण है' इसी बातको फिर दृढ़ करते हैं;—[ एकान्तेन ]  
सब तरहसे [ हि ] निश्चयकर [ देहः ] शरीर [ देहिनः ] देहधारी आत्माको [ स्वर्गं  
वा ] स्वर्गमें भी [ सुखं ] सुखरूप [ न करोति ] नहीं करता [ तु ] किन्तु  
[ विषयवशेन ] विषयोंके आधीन होकर [ आत्मा स्वयं ] यह आत्मा आपही  
[ सौख्यं वा दुःखं ] सुखरूप अथवा दुःखरूप [ भवति ] होता है । भावार्थ-  
सब गतियोंमें स्वर्गगति उत्कृष्ट है परंतु उसमें भी उत्तम वैक्रियिकशरीर सुखका  
कारण नहीं है, औरोंकी तो बात क्या है । क्योंकि इस आत्माका एक ऐसा स्वभाव है कि  
यह इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके वश होकर आपही सुख दुःखकी कल्पना कर लेता है ।  
यथार्थमें शरीर सुखदुःखका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ अब कहते हैं कि आत्माका  
स्वभावही सुख है इसलिये इन्द्रियोंके विषयभी सुखके कारण नहीं हैं;—[ यदि ]  
जो [ जनस्य ] चौरआदि जीवकी [ दृष्टिः ] देखनेकी शक्ति [ तिमिरहरा ]  
अंधकारके दूर करनेवाली हो [ तदा ] तो उसे [ दीपेन ] दीपकसे [ कर्तव्यं ]  
कुछ कार्य करना [ नास्ति ] नहीं है [ तथा ] उसीप्रकार [ आत्मा ] जीव

तया परिणममानस्य सुखसाधनधिया अबुधैर्मुग्धाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति;—

सयमेव जघादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।

सिद्धोचि तथा णाणं सुहं च लोमे तथा देवो ॥ ६८ ॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि ।

सिद्धोपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः ॥ ६८ ॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वरस्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः । यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्यमेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वादुष्णः । यथा च देवगतिनाम कर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया

यच्च दीपेन नास्ति कर्तव्यं तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति तथा निर्विषयामूर्तिसर्वप्रदेशाहादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति न किमपीति भावः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति;—सयमेव जहाइच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानीजनानां देवता भवति । क स्थितः । नभसि आकाशे सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोये सिद्धोपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं

[ स्वयं ] आपही [ सौख्यं ] सुखस्वरूप है [ तत्र ] वहां [ विषयाः ] इंद्रियोंके विषय [ किं कुर्वन्ति ] क्या करते हैं? कुछभी नहीं । भावार्थ—जैसे सिंह, सर्प, राक्षस, चोर आदि रात्रिमें विचरनेवाले जीव अंधेरेमें भी पदार्थोंको अच्छीतरह देखसकते हैं, उनकी दृष्टि अंधकारमें भी प्रकाश करती है, अन्य दीपक आदि प्रकाशकरनेवाले सहायक कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखती; इसी प्रकार आत्मा आपही सुखस्वभाववाला है, उसके सुखानुभवकरनेमें विषयवगैरः कारण नहीं होसकते । विषयोंसे सुख अज्ञानीजनोंने व्यर्थ मानरखा है; यह मानना मोहका विलास है, मिथ्या भ्रम है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि जैसे शरीर सुखका कारण नहीं है वैसे इंद्रियोंके विषय भी सुखके कारण नहीं हैं ॥ ६७ ॥ अब आत्माके ज्ञान—सुख दृष्टान्तसे दृढ करते हैं;—[ यथा ] जैसे [ नभसि ] आकाशमें [ आदित्यः ] सूर्य [ स्वयमेव ] आपही अन्यकारणोंके विना [ तेजः ] बहुत प्रभाके समूहसे प्रकाशरूप है, [ उष्णः ] तपायमान लोहपिंडकी तरह हमेशा गरम है [ च ] और [ देवता ] देवगति नामकर्मके उदयसे देवपदवीको धारण करनेवाला है । [ तथा ] वैसे ही [ लोके ] इस जगतमें [ सिद्ध अपि ] शुद्धात्मा भी [ ज्ञानं ]

अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्द्विपयाणामकिञ्चित्करत्वं द्योतयति;—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादब्बं ।

तथ सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुब्बन्ति ॥ ६७ ॥

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम् ।

तथा सौख्यं स्वयमात्मा विषयाः किं तत्र कुर्वन्ति ॥ ६७ ॥

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वात् तदपाकरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुख-

दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति;—एगंतेण हि देहो सुहण्ण देहिस्स कुणदि एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति । कस्य । देहिनः संसारिजीवस्य । क । सग्गे वा आस्तां तावन्मनुष्याणां मनुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गे वा यासौ दिव्यो देवदेहः सोप्युपचारं विहाय सुखं न करोति । विसयवसेण तु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा किन्तु निश्चयेन निर्विषयामूर्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशाद्द्विपयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभिप्रायः ॥ ६६ ॥ एवं मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुखकारणं न भवतीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम् । अथात्मनः स्वयमेवसुखस्वभावत्वानिश्चयेन यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विषया अपीति प्रतिपादयति;—जइ यदि दिट्ठी नक्तंचरजनस्य दृष्टिः तिमिरहरा अन्धकारहरा भवति जणस्स जनस्य दीवेण णत्थि का-

आत्मा ही सुखका कारण है' इसी बातको फिर दृढ करते हैं;—[ एकान्तेन ] सब तरहसे [ हि ] निश्चयकर [ देहः ] शरीर [ देहिनः ] देहधारी आत्माको [ स्वर्गे वा ] स्वर्गमें भी [ सुखं ] सुखरूप [ न करोति ] नहीं करता [ तु ] किंतु [ विषयचशेन ] विषयोंके आधीन होकर [ आत्मा स्वयं ] यह आत्मा आपही [ सौख्यं वा दुःखं ] सुखरूप अथवा दुःखरूप [ भवति ] होता है । भावार्थ—सब गतियोंमें स्वर्गगति उत्कृष्ट है परंतु उसमें भी उत्तम वैक्रियिकशरीर सुखका कारण नहीं है, औरोंकी तो बात क्या है । क्योंकि इस आत्माका एक ऐसा स्वभाव है कि वह इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके वश होकर आपही सुख दुःखकी कल्पना कर लेता है । यथार्थमें शरीर सुखदुःखका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ अब कहते हैं कि आत्माका स्वभाव ही सुख है इसलिये इन्द्रियोंके विषयभी सुखके कारण नहीं हैं;—[ यदि ] जो [ जनस्य ] पौरआदि जीवकी [ दृष्टिः ] देखनेकी शक्ति [ तिमिरहरा ] अंधकारके दूर करनेवाली हो [ तदा ] तो उसे [ दीपेन ] दीपकसे [ कर्तव्यं ] कुछ कार्य करना [ नास्ति ] नहीं है [ तथा ] उसीप्रकार [ आत्मा ] जीव

तया परिणममानस्य सुखसाधनधिया अबुधैर्मुधाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति;—

सयमेव जघादिचो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।

सिद्धोवि तथा णाणं सुहं च लोगे तथा देवो ॥ ६८ ॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि ।

सिद्धोपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः ॥ ६८ ॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वरस्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः । यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्यमेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वाटुष्णः । यथा च देवगतिनाम कर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया

यच्च दीपिन नास्ति कर्तव्यं तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वन्ति तथा निर्विषयामूर्तिसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति न किमपीति भावः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति;—सयमेव जहाइच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानिजनानां देवता भवति । क स्थितः । नभसि आकाशे सिद्धो वि तथा णाणं सुहं च लोये सिद्धोपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं

[ स्वयं ] आपही [ सौख्यं ] सुखस्वरूप है [ तत्र ] वहां [ विषयाः ] इंद्रियोंके विषय [ किं कुर्वन्ति ] क्या करते हैं? कुलभी नहीं । भावार्थ—जैसे सिंह, सर्प, राक्षस, चोर आदि रात्रिमें विचरनेवाले जीव अंधेरेमें भी पदार्थोंको अच्छीतरह देखसकते हैं, उनकी दृष्टि अंधकारमें भी प्रकाश करती है, अन्य दीपक आदि प्रकाशकरनेवाले सहायक कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखती; इसी प्रकार आत्मा आपही सुखस्वभाववाला है, उसके सुखानुभवकरनेमें विषयवगैरः कारण नहीं होसकते । विषयोंसे सुख अज्ञानीजनोंने व्यर्थ मानरखा है; यह मानना मोहका विलास है, मिथ्या भ्रम है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि जैसे शरीर सुखका कारण नहीं है वैसे इंद्रियोंके विषय भी सुखके कारण नहीं हैं ॥ ६७ ॥ अब आत्माके ज्ञान—सुख दृष्टान्तसे दृढ करते हैं;—[ यथा ] जैसे [ नभसि ] आकाशमें [ आदित्यः ] सूर्य [ स्वयमेव ] आपही अन्यकारणोंके विना [ तेजः ] बहुत प्रभाके समूहसे प्रकाशरूप है, [ उष्णः ] तपायमान लोहपिंडकी तरह हमेशा गरम है [ च ] और [ देवता ] देवगति नामकर्मके उदयसे देवपदवीको धारण करनेवाला है । [ तथा ] वैसे ही [ लोके ] इस जगतमें [ सिद्ध अपि ] शुद्धात्मा भी [ ज्ञानं ]

अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणामकिञ्चित्करत्वं द्योतयति;—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादब्बं ।

तथ सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुब्बन्ति ॥ ६७ ॥

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम् ।

तथा सौख्यं स्वयमात्मा विषयाः किं तत्र कुर्वन्ति ॥ ६७ ॥

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वात् तदपाकरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुख-

दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति;—एगंतेण हि देहो सुहण्ण देहिस्स कुणदि एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति । कस्य । देहिनः संसारिजीवस्य । क । सग्गे वा आस्तां तावन्मनुष्याणां मनुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गे वा यासौ दिव्यो देवदेहः सोप्युपचारं विहाय सुखं न करोति । विषयवशेण तु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा किन्तु निश्चयेन निर्विषयामूर्त्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशाद्विषयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभिप्रायः ॥ ६६ ॥ एवं मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुखकारणं न भवतीतिकथनरूपेण गायार्द्रयं गतम् । अथात्मनः स्वयमेवसुखस्वभावत्वान्निश्चयेन यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विषया अपीति प्रतिपादयति;—जइ यदि दिट्ठी नक्तंचरजनस्य दृष्टिः तिमिरहरा अन्धकारहरा भवति जणस्स जनस्य दीवेण णत्थि का-

आत्मा ही सुखका कारण है' इसी बातको फिर दृढ करते हैं;—[ एकान्तेन ] सब तरहसे [ हि ] निश्चयकर [ देहः ] शरीर [ देहिनः ] देहधारी आत्माको [ स्वर्गे वा ] स्वर्गमें भी [ सुखं ] सुखरूप [ न करोति ] नहीं करता [ तु ] किंतु [ विषयवशेन ] विषयोंके आधीन होकर [ आत्मा स्वयं ] यह आत्मा आपही [ सौख्यं वा दुःखं ] सुखरूप अथवा दुःखरूप [ भवति ] होता है । भावार्थ—सब गतियोंमें स्वर्गगति उत्कृष्ट है परंतु उसमें भी उत्तम वैक्रियिकशरीर सुखका कारण नहीं है, औरोंकी तो बात क्या है । क्योंकि इस आत्माका एक ऐसा स्वभाव है कि वह इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके वश होकर आपही सुख दुःखकी कल्पना कर लेता है । यथार्थमें शरीर सुखदुःखका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ अब कहते हैं कि आत्माका स्वभाव ही सुख है इसलिये इन्द्रियोंके विषयभी सुखके कारण नहीं हैं;—[ यदि ] जो [ जनस्य ] चौरआदि जीवकी [ दृष्टिः ] देखनेकी शक्ति [ तिमिरहरा ] अंधकारके दूर करनेवाली हो [ तदा ] तो उसे [ दीपेन ] दीपकसे [ कर्तव्यं ] कुछ कार्य करना [ नास्ति ] नहीं है [ तथा ] उसीप्रकार [ आत्मा ] जीव

तथा परिणममानस्य सुखसाधनधिया अवुधैर्मुधाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति;—

सयमेव जघादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।

सिद्धोवि तथा णाणं सुहं च लोगे तथा देवो ॥ ६८ ॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि ।

सिद्धोपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः ॥ ६८ ॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वरस्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः । यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्यमेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वाद्गुष्णः । यथा च देवगतिनाम कर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया

यच्चं दीपेन नास्ति कर्तव्यं तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति तद् सोऽखं सयमादा विषया किं तत्थ कुर्वन्ति तथा निर्विषयामूर्तसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति न किमपीति भावः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति;—सयमेव जहाइच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानिजनानां देवता भवति । क स्थितः । नभसि आकाशे सिद्धो वि तथा णाणं सुहं च लोये सिद्धोपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं

[ स्वयं ] आपही [ सौख्यं ] सुखस्वरूप है [ तत्र ] वहां [ विषयाः ] इंद्रियोंके विषय [ किं कुर्वन्ति ] क्या करते हैं? कुछभी नहीं । भावार्थ—जैसे सिंह, सर्प, राक्षस, चोर आदि रात्रिमें विचरनेवाले जीव अंधेरेमें भी पदार्थोंको अच्छीतरह देखसकते हैं, उनकी दृष्टि अंधकारमें भी प्रकाश करती है, अन्य दीपक आदि प्रकाशकरनेवाले सहायक कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखती; इसी प्रकार आत्मा आपही सुखस्वभाववाला है, उसके सुखानुभवकरनेमें विषयवगैरः कारण नहीं होसकते । विषयोंसे सुख अज्ञानीजनोंने व्यर्थ मानरखा है; यह मानना मोहका विलास है, मिथ्या भ्रम है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि जैसे शरीर सुखका कारण नहीं है वैसे इंद्रियोंके विषय भी सुखके कारण नहीं हैं ॥ ६७ ॥ अब आत्माके ज्ञान—सुख दृष्टान्तसे दृढ करते हैं;—[ यथा ] जैसे [ नभसि ] आकाशमें [ आदित्यः ] सूर्य [ स्वयमेव ] आपही अन्यकारणोंके विना [ तेजः ] बहुत प्रभाके समूहसे प्रकाशरूप है, [ उष्णः ] तपायमान लोहपिंडकी तरह हमेशा गरम है [ च ] और [ देवता ] देवगति नामकर्मके उदयसे देवपदवीको धारण करनेवाला है । [ तथा ] वैसे ही [ लोके ] इस जगतमें [ सिद्ध अपि ] शुद्धात्मा भी [ ज्ञानं ]



अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणामकिञ्चित्करत्वं द्योतयति;—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादब्बं ।

तथ सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुब्बन्ति ॥ ६७ ॥

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम् ।

तथा सौख्यं स्वयमात्मा विषयाः किं तत्र कुर्वन्ति ॥ ६७ ॥

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वात् तदपाकरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुख-

दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति;—एगंतेण हि देहो सुहण्ण देहिस्स कुणदि एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति । कस्य । देहिनः संसारिजीवस्य । क-। सगो वा आस्तां तावन्मनुष्याणां मनुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गं वा यासौ दिव्यो देवदेहः सोप्युपचारं विहाय सुखं न करोति । विसयवसेण तु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा किन्तु निश्चयेन निर्दिषयामूर्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशाद्विषयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभिप्रायः ॥ ६६ ॥ एवं मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुखकारणं न भवतीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम् । अथात्मनः स्वयमेवसुखस्वभावत्वान्निश्चयेन यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विषया अपीति प्रतिपादयति;—जइ यदि दिट्ठी नक्तंचरजनस्य दृष्टिः तिमिरहरा अन्धकारहरा भवति जणस्स जनस्य दीवेण णत्थि का-

आत्मा ही सुखका कारण है” इसी बातको फिर दृढ करते हैं;—[ एकान्तेन ] सथ तरहसे [ हि ] निश्चयकर [ देहः ] शरीर [ देहिनः ] देहधारी आत्माको [ स्वर्गं वा ] स्वर्गमें भी [ सुखं ] सुखरूप [ न करोति ] नहीं करता [ तु ] किंतु [ विषयवशेन ] विषयोंके आधीन होकर [ आत्मा स्वयं ] यह आत्मा आपही [ सौख्यं वा दुःखं ] सुखरूप अथवा दुःखरूप [ भवति ] होता है । भावार्थ—सब गतियोंमें स्वर्गगति उत्कृष्ट है परंतु उसमें भी उत्तम वैक्रियिकशरीर सुखका कारण नहीं है, औरोंकी तो बात क्या है । क्योंकि इस आत्माका एक ऐसा स्वभाव है कि वह इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके वश होकर आपही सुख दुःखकी कल्पना कर लेता है । यथार्थमें शरीर सुखदुःखका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ अब कहते हैं कि आत्माका स्वभावही सुख है इसलिये इन्द्रियोंके विषयभी सुखके कारण नहीं हैं;—[ यदि ] जो [ जनस्य ] चौरआदि जीवकी [ दृष्टिः ] देखनेकी शक्ति [ तिमिरहरा ] अंधकारके दूर करनेवाली हो [ तदा ] तो उसे [ दीपेन ] दीपकसे [ कर्तव्यं ] कुछ कार्य करना [ नास्ति ] नहीं है [ तथा ] उसीप्रकार [ आत्मा ] जीव

तया परिणममानस्य सुखसाधनधिया अयुधैर्मुधाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति;—

सयमेव जघादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।

सिद्धोवि तथा णाणं सुहं च लोके तथा देवो ॥ ६८ ॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि ।

सिद्धोपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः ॥ ६८ ॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वरस्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः । यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्यमेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वादुष्णः । यथा च देवगतिनाम कर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया

यच्च दीपेन नास्ति कर्तव्यं तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति तह सोक्खं सयमादा विसया किं तस्थ कुब्बन्ति तथा निर्विषयामूर्तसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति न किमपीति भावः ॥ ६७ ॥ अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति;—सयमेव जहाइच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानिजनानां देवता भवति । क स्थितः । नभसि आकाशे सिद्धो वि तथा णाणं सुहं च लोके सिद्धोपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं

[ स्वयं ] आपही [ सौख्यं ] सुखस्वरूप है [ तत्र ] वहां [ विषयाः ] इंद्रियोंके विषय [ किं कुर्वन्ति ] क्या करते हैं? कुछभी नहीं । भावार्थ—जैसे सिंह, सर्प, राक्षस, चोर आदि रात्रिमें विचरनेवाले जीव अंधेरेमें भी पदार्थोंको अच्छीतरह देखसकते हैं, उनकी दृष्टि अंधकारमें भी प्रकाश करती है, अन्य दीपक आदि प्रकाशकरनेवाले सहायक कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखती; इसी प्रकार आत्मा आपही सुखस्वभाववाला है, उसके सुखानुभवकरनेमें विषयवगैरः कारण नहीं होसकते । विषयोंसे सुख अज्ञानीजनोंने व्यर्थ मानरखा है; यह मानना मोहका विलास है, मिथ्या भ्रम है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि जैसे शरीर सुखका कारण नहीं है वैसे इंद्रियोंके विषय भी सुखके कारण नहीं हैं ॥ ६७ ॥ अब आत्माके ज्ञान—सुख दृष्टान्तसे दृढ करते हैं;—[ यथा ] जैसे [ नभसि ] आकाशमें [ आदित्यः ] सूर्य [ स्वयमेव ] आपही अन्यकारणोंके बिना [ तेजः ] बहुत प्रभाके समूहसे प्रकाशरूप है, [ उष्णः ] तपायमान लोहपिंडकी तरह हमेशा गरम है [ च ] और [ देवता ] देवगति नामकर्मके उदयसे देवपदवीको धारण करनेवाला है । [ तथा ] वैसे ही [ लोके ] इस जगतमें [ सिद्ध अपि ] शुद्धात्मा भी [ ज्ञानं ]

देवः । तथैव लोकं कारणांतरामनोर्ष्यैव स्वयमेव भगवानात्मापि स्वपरप्रकाशनसमर्थात्  
 विनयानन्तगतमिहजसंभेदनतादात्म्यात् ज्ञानं, तथैव चात्मवृत्तिसमुपजानपतिनिर्वृत्त-  
 नासुन्दर्यमुष्णितान् मौल्यं, तथैव चात्मज्ञातत्वोपलम्भमठव्यवर्षजनमानसप्रतिप्र-  
 भावोन्नीनमगुर्दनिगुनिगुनिगोर्दिव्यात्मस्वरूपादिः । ततोऽस्मान्नः सुखसाक्षा-  
 भावोर्ष्यैः पयोत्तम् ॥६८॥ इति आनन्दप्रपञ्चः । इतः शुभपरिणामाधिकारप्रदानम् ।  
 निरक्षयं स्वभावैरेव स्वप्रकाशकं देवज्ञानं, तथैव परमवृत्तिरूपमनाकुलवृत्तं इति ।  
 क । लोके प्रथमं तदा देवो निजगुणान्साधुप्रकाशनानुष्ठानरूपभेदतत्त्वज्ञानं  
 विशदयन्नाभिगम्युत्तमगुणान्साधुप्रकाशकं देवज्ञानं, तथैव परमवृत्तिरूपमनाकुलवृत्तं इति ।  
 देवज्ञानेनाभिगम्युत्तमगुणान्साधुप्रकाशकं देवज्ञानं, तथैव परमवृत्तिरूपमनाकुलवृत्तं इति ।  
 च परिष्कृत्युत्तमगुणान्साधुप्रकाशकं देवज्ञानं, तथैव परमवृत्तिरूपमनाकुलवृत्तं इति ।  
 ज्ञानं साधुति ॥ ६८ ॥ एवं साधुनेत्र गुणस्वभावान्साधुप्रकाशकं देवज्ञानं, तथैव परमवृत्तिरूपमनाकुलवृत्तं इति ।  
 भवत्यधिकतमज्ञानेन साधुप्रकाशकं देवज्ञानं, तथैव परमवृत्तिरूपमनाकुलवृत्तं इति ।

तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।  
 तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।  
 तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।  
 तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।  
 तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।  
 तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।  
 तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।  
 तजो दिदी पाणं इही सोकसं तदेव ईमरियं ।

स्वरूपं है [ सुखं ] सुखस्वरूप है [ च ] और [ देवः ] देव अर्थात्  
 अर्थ-जिस प्रकार सूर्य अपने सहज स्वभावसे ही अन्य कारणोंके बिना  
 प्रकाश करता है, उसीप्रकार यह भगवान् आत्मा अन्यकारणोंके बिना  
 अपने-परेके प्रकाशकरनेवाले अनंत शक्तिमय चैतन्यप्रकाशसे वि-  
 भूतिरूप अनाकुलसिरतासे सुखरूप है और इसीप्रकार आत्माके उसके अ-  
 सम्यग्दृष्टि निकटभव्य चतुर जन हैं उनके चित्तरूपी पत्थरके संभ ( ६  
 तन सुख और पूज्य इन गुणोंकर सहित है । इससे यह पात सिद्ध हुई  
 जो इंद्रियोंके विषय कहे जाते हैं उनसे आत्माके  
 स्वभावरूप है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार आत्माके

अथेन्द्रियसुखस्वरूपविचारमुपक्रममाणस्तत्साधनस्वरूपमुपन्यस्यति;—

तं गुणदो अधिगदरं अविच्छिदं मणुवदेवपदिभावं ।

अपुणवभावणिवद्धं पणमामि पुणो पुणो सिद्धं ॥ २ ॥

पणमामि नमस्करोमि पुणो पुणो पुनः पुनः । कं । तं सिद्धं परमागमप्रसिद्धं सिद्धं । कथंभूतं । गुणदो अधिगदरं अव्यावाधानन्तसुखादिगुणैरधिकतरं समधिकतरगुणं । पुनरपि कथंभूतं । अविच्छिदं मणुवदेवपदिभावं यथा पूर्वमर्हदवस्थायां मनुजदेवेन्द्रादयः समवशरणे समागत्य नमस्कुर्वन्ति तेन प्रभुत्वं भवति, तदतिक्रान्तत्वादतिक्रान्तमनुजदेवपदिभावं । पुनश्च किं विशिष्टं । अपुणवभावणिवद्धं द्रव्यक्षेत्रादिपञ्चप्रकारभवाद्विलक्षणशुद्धशुद्धैकस्वभावनिजात्मोपलम्भलक्षणो योसौ मोक्षस्तस्याधीनत्वादपुनर्भावनिवद्धमिति भावः ॥ २ ॥ एवं नमस्कारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम् । इति गाथाद्वयेन पञ्चमस्थलं ज्ञातव्यं । एवमष्टादशगाथाभिः स्थलपञ्चकेन “सुखप्रपञ्च” नामान्तराधिकारो गतः । इति पूर्वोक्तप्रकारेण “एस सुरासुर” इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः पीठिका गता, तदनन्तरं सप्तगाथाभिः सामान्य-सर्वज्ञसिद्धिः, तदनन्तरं त्रयस्त्रिंशद्गाथाभिः ज्ञानप्रपञ्चः, तदनन्तरमष्टादशगाथाभिः सुखप्रपञ्च इति समुदायेन द्वासप्ततिगाथाभिरन्तराधिकारचतुष्टयेन शुद्धोपयोगाधिकारः समाप्तः ॥ इत ऊर्द्धं पञ्चविंशतिगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयाभिधानोऽधिकारः प्रारभ्यते, तत्र पञ्चविंशतिगाथामध्ये प्रथमं तावच्छुभाशुभविषये मूढत्वनिराकरणार्थं “देवदजदिगुरु” इत्यादि दशगाथापर्यन्तं प्रथमज्ञानकण्ठिका कथ्यते । तदनन्तरमात्मस्वरूपपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं “चत्ता पावारम्भं” इत्यादि सप्तगाथापर्यन्तं द्वितीयज्ञानकण्ठिका, अधानन्तरं द्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं “दब्बादीएसु” इत्यादि षट्कगाथापर्यन्तं तृतीयज्ञानकण्ठिका । तदनन्तरं स्वपरतत्त्वपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं “गाणप्पगं” इत्यादि गाथाद्वयेन चतुर्थज्ञानकण्ठिका । इति चतुष्टयाभिधानाधिकारे समुदायपातनिका । अथेदानीं प्रथमज्ञानकण्ठिकायां स्वतन्त्रव्याख्यानेन गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरं पुण्यं जीवस्य विषयतृष्णामुत्पादयतीति कथनरूपेण गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरमुपसंहाररूपेण गाथाद्वयं, इति स्थलत्रयपर्यन्तं क्रमेण व्याख्यानं क्रियते । तद्यथा—अथ यद्यपि पूर्वं गाथापट्टेनेन्द्रियसुखस्वरूपं भणितं तथापि पुनरपि तदेव विस्तरेण कथयन् सन् तत्साधकं शुभोपयोगं प्रतिपादयति, अथवा द्वितीयपातनिका—पीठिकायां यच्छुभोपयोगस्वरूपं सूचितं तस्येदानीमिन्द्रियसुखविशेषविचारप्रस्तावे तत्साधकत्वेन विशेष-

आगे इस अधिकारमें इंद्रियजनित सुखका विचार किया जावेगा, उसमें भी पहले इंद्रियसुखका कारण शुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[ यः ] जो आत्मा [ देवनायतिगुरुपूजासु ] देव, यति, तथा गुरुकी पूजामें [ च ] और [ दाने ] दानमें [ वा ] अथवा [ सुशीलेषु ] गुणव्रत महाव्रत आदि उत्तम शीलें

देवः । तथैव लोके कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव भगवानात्मापि स्वपरप्रकाशनसमर्थनि-  
र्वृत्तधानन्तशक्तिसहजसंवेदनतादात्म्यात् ज्ञानं, तथैव चात्मतृप्तिसमुपजातपरिनिर्वृत्ता-  
नाकुलत्वसुखितत्वात् सौख्यं, तथैव चासन्नात्मतत्त्वोपलम्भलब्धवर्णजनमानसशिलास-  
म्भोत्कीर्णसमुदीर्णद्युतिसुतियोगैर्दिव्यात्मस्वरूपत्वाद्देवः । ततोऽस्मान्नः सुखसाधना-  
भासैर्विषयैः पर्याप्तम् ॥६८॥ इति आनन्दप्रपञ्चः । इतः शुभपरिणामाधिकारप्रारम्भः ।

निरपेक्ष स्वभावेनैव स्वपरप्रकाशकं केवलज्ञानं, तथैव परमतृप्तिरूपमनाकुलत्वलक्षणं सुखं ।  
क । लोके जगति तथा देवो निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपामेदरत्तत्रयात्मकति-  
र्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नसुन्दरानन्दस्यन्दिसुखामृतपानपिपासितानां गणधरदेवादिपरमयोगिनां  
देवेन्द्रादीनां चासन्नभव्यानां मनसि निरन्तरं परमाराध्यं, तथैवानन्तज्ञानादिगुणस्तवनेन स्तुत्यं  
च यदिव्यमात्मस्वरूपं तत्स्वभावत्वात्तथैव देवश्चेति । ततो ज्ञायते मुक्तात्मनां विषयैरपि प्रयो-  
जनं नास्तीति ॥ ६८ ॥ एवं स्वभावेनैव सुखस्वभावत्वाद्द्विपया अपि मुक्तात्मनां सुखकारणं न  
भवन्तीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम् । अथेदानीं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवाः पूर्वोक्तलक्षणानन्तः-  
सुखाधारभूतं सर्वज्ञं वस्तुस्तवेन नमस्कुर्यन्ति;—

तेजो दिद्वी णाणं इड्डी सोक्खं तहेव ईसरियं ।

तिहुवणपहाणदइयं माहप्यं जस्स सो अरिहो ॥ १ ॥

तेजो दिद्वी णाणं इड्डी सोक्खं—तहेव ईसरियं तिहुवणपहाणदइयं तेजः-

प्रमाण्डलं, जगन्नयकालत्रयवस्तुगतयुगपत्सामान्यास्तिकग्राहकं केवलदर्शनं, तथैव समस्त-  
विशेषारित्वग्राहकं केवलज्ञानं, ऋदिशब्देन समवसरणादिलक्षणा विभूतिः, सुखशब्देनाव्यावा-  
धानन्तसुखं, तत्पदाभिलाषेण इन्द्रादयोऽपि भृत्यत्वं कुर्वन्तीत्येवं लक्षणेनैश्वर्यं, त्रिसुवनाधीशा-  
नामपि बल्लभत्वं देवं भण्यते माहप्यं जस्स सो अरिहो इत्थंभूतं माहात्म्यं यस्य सोऽर्हन्  
भण्यते । इति वस्तुस्तवनरूपेण नमस्कारं कृतवन्तः ॥ १ ॥ अथ तथैव भगवतः सिद्धा-  
वस्वार्थां गुणस्तवनरूपेण नमस्कारं कुर्वन्ति;—

ज्ञानस्वरूप है [ सुखं ] सुखस्वरूप है [ च ] और [ देवः ] देव अर्थात् पूज्य है ।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य अपने सहज स्वभावसे ही अन्य कारणोंके बिना तेजवान्  
है, उष्ण है और देवता है; वसीप्रकार यह भगवान् आत्मा अन्यकारणोंके बिना सह-  
जसे सिद्ध अपने—परके प्रकाशकरनेवाले अनंत शक्तिमय चैतन्यप्रकाशसे ज्ञानस्वरूप है,  
अपनी वृत्तिरूप अनाकुलस्थिरतासे सुखरूप है और इसीप्रकार आत्माके रसके आ-  
पने कोईएक सम्यग्दृष्टि निकटभव्य चतुर जन हैं उनके चित्तरूपी पत्थरके संभ (संभे)  
में सिद्धस्वरूप चित्रित होनेसे पूज्य तथा स्तुतियोग्य देव है । सारांश—आत्मा स्वभा-  
वसे ही ज्ञान सुख और पूज्य इन गुणोंकर सदित है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि सु-  
खके कारण जो इंद्रियोंके विषय कहे जाते हैं उनसे आत्माको सुख नहीं होता, वह  
आपही सुखस्वभावरूप है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार अतीन्द्रियस्त्वाधिकार पर्ये लक्षण ।

युक्तः शुभेन आत्मा तिर्यग्वा मानुषो वा देवो वा ।

भूतस्तावत्कालं लभते सुखमैन्द्रियं विविधम् ॥ ७० ॥

अयमात्मेन्द्रियसुखसाधनीभूतस्य शुभोपयोगस्य सामर्थ्यात्तदधिष्ठानभूतानां तिर्यग्मानुष-  
देवत्वभूमिकानामन्यतमां भूमिकामवाप्य यावत्कालमवतिष्ठते, तावत्कालमनेकप्रकार-  
मिन्द्रियसुखं समासादयतीति ॥ ७० ॥

अथैवमिन्द्रियसुखमुत्क्षिप्य दुःखत्वे प्रक्षिपति;—

सोक्त्वं सहावसिद्धं णत्थि सुराणांपि सिद्धमुवदेसे ।

ते देह्वेदण्ठा रमंति विसण्णसु रम्मेषु ॥ ७१ ॥

सौख्यं स्वभावसिद्धं नास्ति सुराणामपि सिद्धमुपदेशे ।

ते देह्वेदनार्ता रमन्ते विपयेषु रम्येषु ॥ ७१ ॥

इन्द्रियसुखभाजनेषु हि प्रधाना दिवौकसः, तेषामपि स्वाभाविकं न खलु सुखमस्ति

मुक्तो भूत्वाऽयं जीवोऽनन्तकालमतीन्द्रियसुखं लभते, तथा पूर्वसूत्रोक्तलक्षणशुभोपयोगेन युक्तः  
परिणतोऽयमात्मा तिरियो वा माणुसो व देवो वा भूदो तिर्यग्मनुष्यदेवरूपो भूत्वा  
तावदि कालं तावत्कालं स्वकीयायुःपर्यन्तं लहदि सुहं ईदियं विविहं इन्द्रियजं विविधं  
सुखं लभते, इति सूत्राभिप्रायः ॥ ७० ॥ अथ पूर्वोक्तमिन्द्रियसुखं निश्चयनयेन दुःखमेवेत्यु-  
पदिशति;—सोक्त्वं सहावसिद्धं रागाद्युपाधिरहितं चिदानन्दैकस्वभावेनोपादानकारणभूतेन  
सिद्धमुत्पन्नं यत्स्वाभाविकसुखं तत्स्वभावसिद्धं भण्यते । तच्च णत्थि सुराणांपि आस्तां मनु-  
ष्यादीनां सुखं देवेन्द्रादीनामपि नास्ति सिद्धमुवदेसे इति सिद्धमुपदिष्टमुपदेशे परमागमे । ते  
देह्वेदण्ठा रमंति विसण्णसु रम्मेषु तथाभूतसुखाभावात्ते देवादयो देह्वेदनार्ताः पीडिताः  
कदर्थिताः सन्तो रमन्ते विपयेषु रम्याभासेष्विति । अथ विस्तरः—अधोभागे सप्तनरकस्था-  
नीयमहाऽजगरप्रसारितमुखे, कोणचतुष्के तु क्रोधमानमायालोभस्थानीयसर्पचतुष्कप्रसारितवदने  
देहस्थानीयमहान्धकूपे पतितः सन् कश्चित् पुरुषविशेषः, संसारस्थानीयमहारण्ये मिथ्यात्वादिकु-  
मार्गे नष्टः पतितः सन् मृत्युस्थानीयहस्तिभयेनायुष्कर्मस्थानीये साटिकविशेषे शुक्लकृष्णपक्ष-  
स्थानीयशुक्लकृष्णमूपकद्वयद्वेषमानमूले व्याधिस्थानीयमधुमक्षिकावेष्टिते लभन्तेनैव हस्तिना हन्य-

तरहके इन्द्रियजनित सुखोंको भोगता है ॥ ७० ॥ आगे कहते हैं कि इन्द्रियजनित सुख  
यथार्थमें दुःख ही हैं;— [ सुराणामपि ] देवोंकेभी [ स्वभावसिद्धं सौख्यं ]  
आत्माके निजस्वभावसे उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख [ नास्ति ] नहीं है [ 'इति' ] इस-  
प्रकार [ उपदेशे ] भगवानके परमागममें [ सिद्धं ] अच्छी तरह युक्तिसे कहा है ।  
[ यतः ] क्योंकि [ ते ] वे देव [ देह्वेदनार्ताः ] पंचेन्द्रियस्वरूप शरीरकी पीडामे  
दुःखी हुए [ रम्येषु विपयेषु ] रमणीक इन्द्रियविषयोंमें [ रमन्ति ] क्रीडा करने

देवदजदिगुरुपूजासु चैव दाणम्मि वा सुसीलेसु ।

उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा ॥ ६९ ॥

देवतायतिगुरुपूजासु चैव दाने वा सुशीलेषु ।

उपवासादिषु रक्तः शुभोपयोगात्मक आत्मा ॥ ६९ ॥

यदायमात्मा दुःखस्य साधनीभूतां द्वेपरूपामिन्द्रियार्थानुरागरूपां चाशुभोपयोगभूमिकामतिक्रम्य देवगुरुर्यतिपूजादानशीलोपवासप्रीतिलक्षणं धर्मानुरागमङ्गीकरोति तदेन्द्रियसुखस्य साधनीभूतां शुभोपयोगभूमिकामधिरूढोऽभिलष्येत ॥ ६९ ॥

अथ शुभोपयोगसाध्यत्वेनेन्द्रियसुखमाख्यातिः—

जुत्तो सुहेण आदा तिरियो वा माणुसो व देवो वा ।

भूदो तावदि कालं लहदि सुहं इंदियं विविहं ॥ ७० ॥

विवरणं करोतिः—देवदजदिगुरुपूजासु चैव दाणम्मि वा सुसीलेसु देवतायतिगुरुपूजासु चैव दाने वा सुशीलेषु उववासादिसु रत्तो तथैवोपवासादिषु च रक्त आसक्तः अप्पा जीवः सुहोवओगप्पगो शुभोपयोगात्मको भण्यते इति । तथाहि—देवता निर्दोषिपरमात्मा, इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूपप्रयत्नपरो यतिः, स्वयं भेदाभेदरत्नत्रयाराधकस्तदर्थिनां भव्यानां जिनदीक्षादायको गुरुः पूर्वोक्तदेवतायतिगुरुणां तत्प्रतिविम्बादीनां च यथासम्भवं द्रव्यभावरूपा पूजा, आहारादिचतुर्विधदानं च, आचारादिकथितशीलव्रतानि तथैवोपवासा जिनगुणसंपत्त्यादिविधिविशेषाश्च । एतेषु शुमानुष्ठानेषु योसौ रक्तः, द्वेपरूपे विषयानुरागे चाशुमानुष्ठाने विरतः, स जीवः शुभोपयोगी भवतीति सूत्रार्थः ॥ ६९ ॥ अथ पूर्वोक्तशुभोपयोगेन साध्यमिन्द्रियसुखं कथयतिः—सुहेण जुत्तो आदा यथा निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन युक्तो

( स्वभावो ) में [ उपवासादिषु ] आहार आदिके त्यागोंमें [ एव ] निश्चयसे

[ रक्तः ] लवलीन है [ 'स' आत्मा ] वह जीव [ शुभोपयोगात्मक ] शुभो-

पयोगी अर्थात् शुभ परिणामवाला है । भावार्थ—जो जीव धर्ममें ( ते )

रखते हैं उन्हें इन्द्रियसुखकी साधनेवाली शुभोपयोगरूपी भूमि ( ते हैं )

॥ ६९ ॥ आगे शुभोपयोगसे इन्द्रियसुख होता है ऐसा कहते

शुभोपयोगकर सहित [ आत्मा ] जीव [ तिर्यक ]

[ मानुषः ] उत्तम मनुष्य [ वा ] अथवा [ देव ]

पूजा [ तावत्कालं ] उतने फालतक अर्थात् तिर्यक

ममयतक [ विविधं ] नाना प्रकारके [ परि ]

गोंको [ लभते ] पाता है । भावार्थ—यह जीव

देव इन तीन मणियोंमें उत्पन्न होता है, यहां पर

युक्तः शुभेन आत्मा तिर्यग्वा मानुषो वा देवो वा ।

भूतस्तावत्कालं लभते सुखमैन्द्रियं विविधम् ॥ ७० ॥

अयमात्मेन्द्रियसुखसाधनीभूतस्य शुभोपयोगस्य सामर्थ्यात्तदधिष्ठानभूतानां तिर्यग्मानुष-  
देवत्वभूमिकानामन्यतमां भूमिकामवाप्य यावत्कालमवतिष्ठते, तावत्कालमनेकप्रकार-  
मिन्द्रियसुखं समासादयतीति ॥ ७० ॥

अथैवमिन्द्रियसुखमुत्क्षिप्य दुःखत्वे प्रक्षिपति;—

सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणांपि सिद्धमुवदेसे ।

ते देहवेदणद्वा रमंति विसएसु रम्मेषु ॥ ७१ ॥

सौख्यं स्वभावसिद्धं नास्ति सुराणामपि सिद्धमुपदेशे ।

ते देहवेदनार्ता रमन्ते विपयेषु रम्येषु ॥ ७१ ॥

इन्द्रियसुखभाजनेषु हि प्रधाना दिवौकसः, तेषामपि स्वाभाविकं न खलु सुखमस्ति

युक्तो भूत्वाऽयं जीवोऽनन्तकालमतीन्द्रियसुखं लभते, तथा पूर्वसूत्रोक्तलक्षणशुभोपयोगेन युक्तः  
परिणतोऽयमात्मा तिरियो वा माणुसो व देवो वा भूदो तिर्यग्मनुष्यदेवरूपो भूत्वा  
तावदि कालं तावत्कालं स्वकीयायुःपर्यन्तं लहदि सुहं इंदियं विविहं इन्द्रियजं विविधं  
सुखं लभते, इति सूत्राभिप्रायः ॥ ७० ॥ अथ पूर्वोक्तमिन्द्रियसुखं निश्चयनयेन दुःखमेवेत्यु-  
पदिशति;—सोक्खं सहावसिद्धं रागाद्युपाधिरहितं चिदानन्दैकस्वभावेनोपादानकारणभूतेन  
सिद्धमुत्पन्नं यत्स्वाभाविकसुखं तत्स्वभावसिद्धं भण्यते । तच्च णत्थि सुराणांपि आस्तां मनु-  
ष्यादीनां सुखं देवेन्द्रादीनामपि नास्ति सिद्धमुवदेसे इति सिद्धमुपदिष्टमुपदेशे परमागमे । ते  
देहवेदणत्ता रमंति विसएसु रम्मेषु तथाभूतसुखाभावात्ते देवादयो देहवेदनार्ताः पीडिताः  
कदर्थिताः सन्तो रमन्ते विपयेषु रम्याभासेष्विति । अथ विस्तरः—अधोभागे सप्तनरकस्था-  
नीयमहाऽजगरप्रसारितमुखे, कोणचतुष्के तु क्रोधमानमायालोभस्थानीयसर्पचतुष्कप्रसारितवदने  
देहस्थानीयमहान्बकूपे पतितः सन् कश्चित् पुरुषविशेषः, संसारस्थानीयमहारण्ये मिथ्यात्वादिकु-  
मार्गे नष्टः पतितः सन् मृत्युस्थानीयहस्तिभयेनायुष्कर्मस्थानीये साट्टिकविशेषे शुक्लकृष्णपक्ष-  
स्थानीयशुक्लकृष्णमूपकद्वयल्लेखमानमूले व्याधिस्थानीयमधुमक्षिकावेष्टिते लग्नस्तेनैव हस्तिना हन्य-

तरहके इन्द्रियजनित सुखोंको भोगता है ॥ ७० ॥ आगे कहते हैं कि इन्द्रियजनित सुख  
यथार्थमें दुःख ही हैं;— [ सुराणामपि ] देवोंकेभी [ स्वभावसिद्धं सौख्यं ]  
आत्माके निजस्वभावसे उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख [ नास्ति ] नहीं है [ 'इति' ] इस-  
प्रकार [ उपदेशे ] भगवानके परमागममें [ सिद्धं ] अच्छी तरह युक्तिसे कहा है ।  
[ यतः ] क्योंकि [ ते ] वे देव [ देहवेदनार्ताः ] पंचेन्द्रियस्वरूप शरीरकी पीडामे  
दुःखी हुए [ रम्येषु विपयेषु ] रमणीक इन्द्रियविषयोंमें [ रमन्ति ] क्रीडा करते



प्रत्युत तेषां स्वाभाविकं दुःखमेवावलोक्यते । यतस्ते पञ्चेन्द्रियात्मकशरीरपिशाचपीडया परवशा भृगुप्रपातस्थानीयान्मनोज्ञविषयानभिपतन्ति ॥ ७१ ॥

अथैवमिन्द्रियसुखस्य दुःखतायां सुक्त्यावतारितायामिन्द्रियसुखसाधनीभूतपुण्यनिर्वर्तकशुभोपयोगस्य दुःखसाधनीभूतपापनिर्वर्तकाशुभोपयोगविशेषादविशेषत्वमवतारयति;—

णरणारयतिरियसुरा भजन्ति यदि देहसंभवं दुःखं ।

किं सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं ॥ ७२ ॥

नरनारकतिर्यक्सुरा भजन्ति यदि देहसंभवं दुःखम् ।

कथं स शुभो वाऽशुभ उपयोगो भवति जीवानाम् ॥ ७२ ॥

माने सति विषयसुखस्थानीयमधुविन्दुसुखादेन यथा सुखं मन्वते, तथा संसारसुखम् । पूर्वोक्तमोक्षसुखं तु तद्विपरीतमिति तात्पर्यम् ॥ ७१ ॥ अथ पूर्वोक्तप्रकारेण शुभोपयोगसाध्यस्येन्द्रियसुखस्य निश्चयेन दुःखत्वं ज्ञात्वा तत्साधकशुभोपयोगस्याप्यशुभोपयोगेन सह समानत्वं व्यवस्थापयति;—णरणारयतिरियसुरा भजन्ति यदि देहसंभवं दुःखं सहजातीन्द्रियामूर्त्तसदानन्दैकलक्षणं वास्तवसुखमेव सुखमलभमानाः सन्तो नरनारकतिर्यक्सुरा यदि चेदविशेषेण पूर्वोक्तपरमार्थसुखाद्विलक्षणं पञ्चेन्द्रियात्मकशरीरोत्पन्नं निश्चयनयेन दुःखमेव भजन्ते सेवन्ते किं सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं व्यवहारेण विशेषेण निश्चयेन सः प्रसिद्धः शुद्धोपयोगाद्विलक्षणः शुभाशुभोपयोगः कथं भिन्नत्वं लभते ? न कथमपीति

हैं । भावार्थ—सब संसारीक सुखोंमें अणिमादि आठ ऋद्धिसहित देवोंके सुख प्रधान हैं परंतु वे यथार्थ आत्मीक सुख नहीं हैं । स्वाभाविक दुःख ही हैं, क्योंकि जब पंचेन्द्रियरूप पिशाच उनके शरीरमें पीडा उत्पन्न करता है तब ही वे देव मनोज्ञविषयोंमें गिरपड़ते हैं अर्थात् जिस प्रकार कोई पुरुष किसी वस्तु विशेषसे पीडित होकर पर्वतसे पड़कर मरता है, इसीप्रकार इंद्रियजनित दुःखोंसे पीडित होकर उनके विषयोंमें यह आत्मा रमण ( मौज ) करता है । इसलिये इंद्रियजनित सुख दुःखरूप ही हैं । अज्ञानबुद्धिसे सुखरूप मालूम पड़ते हैं, एक दुःखके ही सुख और दुःख ये दोनों भेद हैं ॥ ७१ ॥ आगे इंद्रियसुखका साधक पुण्यका हेतु शुभोपयोग और दुःखका साधन पापका कारण अशुभोपयोग इन दोनोंमें समानपना दिखाते हैं;—[ यदि ] जो [ नरनारकतिर्यक्सुराः ] मनुष्य, नारकी, तिर्यच ( पशु ) तथा देव, ये चारों गतिके जीव [ देहसंभवं दुःखं ] शरीरसे उत्पन्न हुई पीडाको [ भजन्ति ] भोगते हैं [ तदा ] तो [ जीवानां ] जीवोंके [ स उपयोगः ] वह चैतन्यरूप परिणाम [ शुभः ] अच्छा [ वा ] अथवा [ अशुभः ] बुरा [ कथं भवति ] कैसे होसकता है ? । भावार्थ—शुभोपयोगका फल देवताओंकी संपदा है और अशुभोपयोगका

यदि शुभोपयोगजन्यसमुदीर्णपुण्यसंपदस्त्रिदशादयोऽशुभोपयोगजन्यपर्यागतपातका-  
पदो वा नारकादयश्च, उभयेपि स्वाभाविकसुखाभावादविशेषेण पञ्चेन्द्रियात्मशरीरप्रत्ययं  
दुःखमेवानुभवन्ति । ततः परमार्थतः शुभाशुभोपयोगयोः पृथक्त्वव्यवस्था नावति-  
ष्ठते ॥ ७२ ॥

अथ शुभोपयोगजन्यं फलवत्पुण्यं विशेषेण दूषणार्थमभ्युपगम्योत्थापयति;—

कुलिशाउहचक्रधरा सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं ।

देहादीणं विद्धिं करेति सुहिदा इवाभिरदा ॥ ७३ ॥

कुलिशायुधचक्रधराः शुभोपयोगात्मकैः भोगैः ।

देहादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति सुखिता इवाभिरताः ॥ ७३ ॥

यतो हि शक्राश्चक्रिणश्च स्वेच्छोपगतैर्भोगैः शरीरादीन् मुष्णन्तस्तेषु दुष्टशोणित इव  
जलौकसोऽत्यन्तमासक्ताः सुखिता इव प्रतिभासन्ते । ततः शुभोपयोगजन्यानि फलवन्ति  
पुण्यान्यवलोक्यन्ते ॥ ७३ ॥

भावः ॥ ७२ ॥ एवं स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन प्रथमस्थलं गतम् । अथ पुण्यानि देवेन्द्रचक्र-  
वर्षादिपदं प्रयच्छन्ति इति पूर्वं प्रशंसां करोति । किमर्थं । तत्फलाधारेणाग्रे तृष्णोत्पत्तिरूप-  
दुःखदर्शनार्थम्;—देवेन्द्राश्चक्रवर्तिनश्च कर्तारः शुभोपयोगजन्यभोगैः कृत्वा विकुर्वणारूपेण  
देहपरिवारादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति । कथंभूताः सन्तः । सुखिता इवाभिरता आसक्ता इति । अय-  
मत्रार्थः—यत्परमातिशयतृप्तिसमुत्पादकं विषयतृष्णाविच्छित्तिकारकं च स्वाभाविकसुखं तदलभ-  
माना दुष्टशोणिते जल्यूका इवासक्ताः सुखाभासेन देहादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति । ततो ज्ञायते तेषां

नारकादिकी आपदा है, परंतु इन दोनोंमें आत्मीक सुख नहीं है, इसलिये इन दोनों  
स्थानोंमें दुःखही है । सारांश यह है कि जो परमार्थदृष्टिसे विचारा जावे तो शुभो-  
पयोग और अशुभोपयोग दोनोंमें कुछ भेद नहीं है । कार्यकी समानता होनेसे कार-  
णकीभी समानता है ॥ ७२ ॥ आगे शुभोपयोगसे उत्पन्न हुए फलवान पुण्यको विशेषपनेसे  
दूषणकेलिये दिखलाकर निषेध करते हैं;—[ सुखिताः इव ] सुखियोंके समान  
[ अभिरताः ] लबलीन हुए [ कुलिशायुधचक्रधराः ] वज्रायुधधारी इन्द्र तथा  
चक्रवर्ती आदिक [ शुभोपयोगात्मकैः ] शुभ उपयोगसे उत्पन्न हुए [ भोगैः ]  
भोगोंसे [ देहादीनां ] शरीर इंद्रियादिकोंकी [ वृद्धिं ] बढ़ती [ कुर्वन्ति ] करते  
हैं । भावार्थ—यद्यपि शुभोपयोगसे इंद्र चक्रवर्ती आदि विशेष फल मिलते हैं, परंतु  
वे इंद्रादिक मनोबांछित भोगोंसे शरीरादिका पोषणही करते हैं, सुखी नहीं है, सुखीसे  
देव्यनेमें आते हैं । जैसे जोंक विकारवाले लोहीको बड़ी प्रीतिसे पीती हैं और उसीमें  
सुख मानती हैं, परंतु यथार्थमें वह पीना दुःखका कारण है । इसीप्रकार वे इंद्र वगैरः

अथैवमभ्युपगतानां पुण्यानां दुःखधीजहेतुत्वमुद्भावयति;—

जदि संति हि पुण्णाणि य परिणामसमुद्भवानि विविहाणि ।  
जणयंति विसयतण्हं जीवाणं देवदंताणं ॥ ७४ ॥

यदि सन्ति हि पुण्यानि च परिणामसमुद्भवानि विविधानि ।

जनयन्ति विषयतृष्णां जीवानां देवतान्तानाम् ॥ ७४ ॥

यदि नामैव शुभोपयोगपरिणामकृतसमुत्पत्तीन्त्यनेकप्रकाराणि पुण्यानि विद्यन्त इत्यभ्युप-  
गम्यते, तदा तानि सुधाशनानामप्यवधिं कृत्वा समस्तसंसारिणां विषयतृष्णामवश्यमेव  
समुत्पादयन्ति । न खलु तृष्णामन्तरेण दुष्टशोणित इव जलूकानां समस्तसंसारिणां  
विषयेषु प्रवृत्तिरवलोक्यते, अवलोक्यते च सा । ततोऽस्तु पुण्यानां तृष्णायतनत्वम-  
बाधितमेव ॥ ७४ ॥

स्वभाविकं सुखं नास्तीति ॥ ७३ ॥ अथ पुण्यानि जीवस्य विषयतृष्णामुत्पादयन्तीति प्रति-  
पादयति;—जदि संति हि पुण्णाणि य यदि चेन्निश्चयेन पुण्यपापरहितपरमात्मनो विपरीतानि  
पुण्यानि सन्ति । पुनरपि किंविशिष्टानि । परिणामसमुद्भवानि निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षण-  
शुभपरिणामसमुद्भवानि विविहाणि स्वकीयानन्तभेदेन बहुविधानि । तदा तानि किं कु-  
र्वन्ति । जणयंति विसयतण्हं जनयन्ति । कां । विषयतृष्णां । केपां । जीवाणं देव-  
दंताणं दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपनिदानबन्धप्रभृतिनानामनोरथहयरूपविकल्पजाडरहितपरम-  
समाधिसमुत्पन्नसुखामृतरूपां सर्वात्मप्रदेशेषु परमाह्लादोत्पत्तिभूतामेकाकारपरमसमरसीभावरूपां  
विषयाकाङ्क्षामिजनितपरमदाहविनाशिकां स्वरूपवृत्तिमलभमानानां देवेन्द्रप्रभृतिबहिर्मुखसंसारि-  
जीवानामिति । इदमत्र तात्पर्यम्—यदि तथाविधा विषयतृष्णा नास्ति तर्हि दुष्टशोणिते जलयूका  
इव कथं ते विषयेषु प्रवृत्तिं कुर्वन्ति । कुर्वन्ति चेत् पुण्यानि तृष्णोत्पादकत्वेन दुःखकारणानि

भी तृष्णासे सुखमान रहे हैं ॥ ७३ ॥ आगे शुभोपयोगजनित पुण्यकोभी दुःखका  
कारण प्रगट दिखलाते हैं;—[ यदि ] जो [ हि ] निश्चयसे [ विविधानि ] नाना-  
प्रकारके [ पुण्यानि ] पुण्य [ परिणामसमुद्भवानि ] शुभोपयोगरूप परिणामोंसे  
उत्पन्न [ सन्ति ] हैं । [ तदा ] तो वे [ देवतान्तानाम् ] स्वर्गवासी देवोंतक  
[ जीवानां ] सब संसारी जीवोंके [ विषयतृष्णां ] विषयोंकी अत्यंत अभिला-  
पाको [ जनयन्ति ] उत्पन्न करते हैं । भावार्थ—यदि शुभोपयोगसे अनेक तरहके  
पुण्य उत्पन्न होते हैं तो मलेही उत्पन्न होबो कुछ विशेषता नहीं है, क्योंकि वे पुण्य  
देवताओंमें लेकर सब संसारी जीवोंको तृष्णा उपजाते हैं, और जहां तृष्णा है वहां ही  
दुःख है, क्योंकि तृष्णाके बिना इन्द्रियोंके रूपादि विषयोंमें प्रवृत्तिही नहीं होती । जैसे  
जोंक ( जलका जंतुविशेष ) तृष्णाके बिना विकारयुक्त ( स्वराय ) गधिरका पान नहीं

अथ पुण्यस्य दुःखबीजविजयमाघोपयति;—

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहि विसयसोक्खाणि ।  
इच्छन्ति अणुह्वन्ति य आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥ ७५ ॥

ते पुनरुदीर्णतृष्णाः दुःखितास्तृष्णाभिर्विषयसौख्यानि ।

इच्छन्त्यनुभवन्ति च आमरणं दुःखसंतप्ताः ॥ ७५ ॥

अथ ते पुनस्त्रिदशावसानाः कृत्स्नसंसारिणः समुदीर्णतृष्णाः पुण्यनिर्वर्तिताभिरपि तृष्णाभिर्दुःखबीजतयाऽत्यन्तदुःखिताः सन्तो मृगतृष्णाभ्य इवाम्भांसि विषयेभ्यः सौख्या-  
न्यभिलपन्ति । तद्दुःखसंतपवेगमसहमाना अनुभवन्ति च विषयान् जलयूका इव, ता-  
वधावत् क्षयं यान्ति । यथा हि जलयूकास्तृष्णाबीजेन विजयमानेन दुःखाङ्कुरेण क्रमतः  
समाक्रम्यमाणा दुष्टकीलालमभिलपन्त्यस्तदेवानुभवन्त्यश्च प्रलयात् क्लिश्यन्ते । एवममी अपि  
पुण्यशालिनः पापशालिन इव तृष्णाबीजेन विजयमानेन दुःखाङ्कुरेण क्रमतः समाक्रम्य-

इति ज्ञायन्ते ॥ ७४ ॥ अथ पुण्यानि दुःखकारणानीति पूर्वोक्तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति;—  
ते पुण उदिण्णतण्हा सहजशुद्धात्मतृप्तेरभावात्ते निखिलसंसारिजीवाः पुनरुदीर्णतृष्णाः  
सन्तः दुहिदा तण्हाहि स्वसंवित्तिसमुत्पन्नपारमार्थिकमुखामावात्पूर्वोक्ततृष्णाभिर्दुःखिताः सन्तः ।  
किं कुर्वन्ति । विसयसोक्खाणि इच्छन्ति निर्विषयपरमात्ममुखाद्विलक्षणानि विषयमुखानि  
इच्छन्ति । न केवलमिच्छन्ति अणुभवंति य अनुभवन्ति च । किं पर्यन्तम् । आमरणं  
मरणपर्यन्तं । कथंभूताः । दुक्खसंतत्ता दुःखसंतप्ता इति । अयमत्रार्थः—यथा तृष्णोद्रे-  
केण प्रेरिताः जलैकसः कीलालमभिलपन्त्यस्तदेवानुभवन्त्यश्चामरणं दुःखिता भवन्ति, तथा  
निजशुद्धात्मसंवित्तिपराञ्जुला जीवा अपि मृगतृष्णाभ्योऽम्भांसीव विषयानभिलपन्तस्तथैवानु-  
भवन्तश्चामरणं दुःखिता भवन्ति । तत एतद्रायतं तृष्णातद्भोत्पादकत्वेन पुण्यानि वस्तुतो

करती, इसीप्रकार संसारी जीवोंकी विषयोंमें प्रवृत्ति तृष्णाके विना नहीं होती । इसका-  
रण पुण्य तृष्णाका घर है ॥ ७४ ॥ आगे पुण्यको दुःखका बीज प्रगट करते हैं;—  
[ पुनः ] उसके बाद [ उदीर्णतृष्णाः ] उठी है तृष्णा जिनके तथा [ तृष्णाभिः  
दुःखिताः ] अत्यंत अभिलाषासे पीडित और [ दुःखसंतप्ताः ] दुःखोंसे तप्तयमान  
[ ते ] वे देवोंपर्यंत सब संसारी जीव [ विषयसौख्यानि ] इंद्रियोंके विषयोंसे  
उत्पन्न सुखोंको [ आमरणं ] मरणपर्यंत [ इच्छन्ति ] चाहते हैं [ च ] और  
[ अनुभवन्ति ] भोगते हैं । भावार्थ—मृगतृष्णासे जलकी अभिलाषाकी नाई  
संसारी जीव पुण्यजनित तृष्णाओंमें सुख चाहते हैं । उस तृष्णासे उत्पन्न हुए दुःख  
संतपको सह नहीं सकते हैं, इसलिये वारंवार विषयोंको मरणपर्यंत भोगते हैं । जैसे  
जोंक विकारवाले खूनको तृष्णावश क्रमसे तबतक पीती है जब तक कि नाशको प्राप्त

यसनिगलयोरिवाहङ्कारिकं विशेषमभिमन्यमानोऽहमिन्द्रपदादिसंपदां निदानमिति निर्भरतरं धर्मानुरागमवलम्बते स खलूपरक्तचित्तभित्तिताया तिरस्कृतशुद्धोपयोगशक्तिरासंसारं शारीरं दुःखमेवानुभवति ॥ ७७ ॥

अथैवमवधारितशुभाशुभोपयोगविशेषः समस्तमपि रागद्वेषद्वैतमपहस्तयन्नशेषदुःखक्षयाय सुनिश्चितमनाः शुद्धोपयोगमधिवसति;—

एवं विदिदत्थो जो द्रव्येषु ण रागमेदि दोसं वा ।

उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुःखं ॥ ७८ ॥

एवं विदितार्थो यो द्रव्येषु न रागमेति द्वेषं वा ।

उपयोगविशुद्धः सः क्षपयति देहोद्भवं दुःखम् ॥ ७८ ॥

यो हि नाम शुभानामशुभानां च भावानामविशेषदर्शनेन सम्यक्परिच्छिन्नवस्तुस्वतथाहि—द्रव्यपुण्यपापयोर्व्यवहारेण भेदः, भावपुण्यपापयोस्तत्फलभूतसुखदुःखयोश्चाशुद्धनिश्चयेन भेदः, शुद्धनिश्चयेन तु शुद्धात्मनोऽभिन्नत्वाद्भेदो नास्ति । एवं शुद्धनयेन पुण्यपापयोरभेदं योसौ न मन्यते स देवेन्द्रचक्रवर्तिवद्वेदववासुदेवकामदेवादिपदनिमित्तं निदानबन्धेन पुण्यमिच्छन्निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वविपरीतदर्शनचारित्रमोहप्रच्छादितः सुवर्णलोहनिगडद्वयसमानपुण्यपापद्वयबद्धः सन् संसाररहितशुद्धात्मनो विपरीतं संसारं भ्रमतीत्यर्थः ॥ ७७ ॥ अथैवं शुभाशुभयोः समानत्वपरिज्ञानेन निश्चितशुद्धात्मतत्त्वः सन् दुःखक्षयाय शुद्धोपयोगानुष्ठानं स्वीकरोति;—एवं विदिदत्थो जो एवं चिदानन्दैकस्वभावं परमात्मतत्त्वमेवोपादेयमन्यदशेषं हेयमिति हेयोपादेयपरिज्ञानेन विदितार्थतत्त्वो भूत्वा यः द्रव्येषु ण रागमेदि दोसं वा निजशुद्धात्मद्रव्यादन्येषु शुभाशुभसर्वद्रव्येषु रागं द्वेषं वा न गच्छति उवओगविसुद्धो सो रागादिरहितशुद्धात्मानुभूतिलक्षणेन शुद्धोपयोगेन विशुद्धः सन् सः खवेदि देहुब्भवं दुःखं तसलोह-

और पापमें भेद मानता है तथा सोने लोहेकी वेड़ियोंके समान अहमिन्द्र इन्द्र चक्रवर्ती आदि संपदाओंके कारण अच्छीतरहसे धर्मानुरागका अवलम्बन करता ( सहायता लेता ) है वह पुरुष सरागभावोंसे शुद्धोपयोगशक्तिसे रहित हुआ संता जबतक संसारमें है तबतक शरीरादि संबंधी दुःखोंका भोगनेवाला होता है ॥ ७७ ॥ आगे कहते हैं कि जो पुरुष शुभ अशुभोपयोगमें एकता मानके समस्त रागद्वेषोंको दूर करता है वह संपूर्ण दुःखोंके नाश होनेके निमित्त निश्चल चित्त होकर शुद्धोपयोगको अंगीकार करता है;—[ एवं ] इसप्रकार [ विदितार्थः ] पदार्थके स्वरूपको जाननेवाला [ यः ] जो पुरुष [ द्रव्येषु ] परद्रव्योंमें [ रागं ] प्रीतिभाव [ चा ] अथवा [ द्वेषं ] द्वेषभावको [ न ] नहीं [ एति ] प्राप्त होता है [ सः ] वह [ उपयोगविशुद्धः ] उपयोगसे निर्मल अर्थात् शुद्धोपयोगी हुआ [ देहोद्भवं दुःखं ] शरीरसे उत्पन्न हुए दुःखको [ क्षपयति ] नष्ट करता है । भावार्थ—जो

रूपः स्वपरविभागावस्थितेषु समग्रेषु ससमग्रपर्यायेषु द्रव्येषु रागं द्वेषं चाशेषमेव परिवर्जयति स किलैकान्तेनोपयोगविशुद्धतया परित्यक्तपरद्रव्यालम्बनोऽग्निरिवायःपिण्डादननुष्ठितायःसारः प्रचण्डघनघातस्थानीयं शारीरं दुःखं क्षपयति, ततो ममायमेवैकः शरणं शुद्धोपयोगः ॥ ७८ ॥

अथ यदि सर्वसावद्ययोगमतीत्य चरित्रमुपस्थितोपि शुभोपयोगानुवृत्तिवशतया मोहादीन्नोन्मूलयामि, ततः कुतो मे शुद्धात्मलाभ इति सर्वारम्भेणोत्तिष्ठते;—

चत्ता पाचारंभं समुद्धिदो वा सुहृम्मि चरियम्मि ।

ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पमं सुद्धं ॥ ७९ ॥

त्यक्त्वा पापारम्भं समुत्थितो वा शुभे चरित्रे ।

न जहाति यदि मोहादीन् लभते स आत्मकं शुद्धम् ॥ ७९ ॥

पिण्डस्थानीयदेहादुद्भवं, अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विलक्षणं परमाकुलत्वोत्पादकं लोहपिण्डरहितोऽग्निरिव घनघातपरम्परास्थानीयदेहरहितो भूत्वा शारीरं दुःखं क्षपयतीत्यभिप्रायः ॥ ७८ ॥

एवमुपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम् । इति शुभाशुभमूढत्वनिरासार्थं गाथादशकपर्यन्तं स्थलत्रयसमुदायेन प्रथमज्ञानकण्ठिका समाप्ता । अथ शुभाशुभोपयोगनिवृत्तिलक्षणशुद्धोपयोगेन मोक्षो भवतीति पूर्वसूत्रे भणितं । अत्र तु द्वितीयज्ञानकण्ठिकाप्रारम्भे शुद्धोपयोगाभावे शुद्धात्मानं न लभते, इति तमेवार्थं व्यतिरेकरूपेण दृढयति,—चत्ता पाचारंभं पूर्वं गृह्णासादिरूपं पापारम्भं त्यक्त्वा समुद्धिदो वा सुहृम्मि चरियम्मि सग्यगुपस्थितो वा पुनः । क । शुभचरित्रे ण जहदि जदि मोहादी न त्यजति यदि चेन्मोहरागद्वेषान् ण लहदि सो अप्पयं सुद्धं न लभते स आत्मानं शुद्धमिति । इतो

पुरुष शुभ ( पुण्यरूप ) तथा अशुभभावोंको एकरूप जानकर अपने स्वरूपमें स्थिर होके परद्रव्योंमें रागद्वेषभाव छोड़ देता है वह पुरुष, शरीरसंबंधी दुःखोंका नाश करता है । जैसे—लोह पिंडमें प्रवेश नहीं कीहुई अग्नि घनकी चोट नहीं सहती है, उसीप्रकार शुद्धोपयोगी दुःखको नहीं सहता है । इसलिये आचार्य कहते हैं कि मुझको एक शुद्धोपयोगकी ही शरण प्राप्त होओ जिससे कि दुःखस्वरूप संसारका अभाव होवै ॥ ७८ ॥ आगे कहते हैं कि मैं समस्त पापयोगोंको छोड़कर चारित्रको प्राप्त हुआ हूं, यदि मैं शुभोपयोगके वश होकर मोहको दूर न करूंगा तो मेरे शुद्धात्मका लाभ कहाँसे होगा ? इसलिये मोहके नाश करनेको उन्नी हूं;—[ पापारम्भं ] पापका कारण आरंभको [ त्यक्त्वा ] छोड़कर [ वा ] अथवा [ शुभे चरित्ते ] शुभ आचरणमें [ समुत्थितः ] प्रवर्तता हुआ [ 'यः' ] जो पुरुष [ यदि ] यदि [ मोहादीन् ] मोह राग द्वेषादिकोंको [ न जहाति ] नहीं छोड़ता है [ 'तदा' ] तो [ सः ] वह पुरुष [ शुद्धं आत्मकं ] शुद्ध अर्थात् कर्मकलंकरहित शुद्ध जीवद्रव्यको [ न ल-

यः खलु समस्तसावधयोगप्रत्याख्यानलक्षणं परमसामायिकं नाम चारित्र्यं प्रतिज्ञायापि शुभोपयोगवृत्त्याटकाभिसारिकयैवाभिसार्यमाणो न मोहवाहिनीविधेयतामविकिरति स किल समासन्नमहादुःखसंकटः कथमात्मानमविप्लुतं लभते ? अतो मया मोहवाहिनीविजयाय चद्धा कक्षेयम् ॥ ७९ ॥

अथ कथं मया विजेतव्या मोहवाहिनीत्युपायमालोचयति;—

विस्तरः—कोपि मोक्षार्थी परमोपेक्षालक्षणं परमसामायिकं पूर्वं प्रतिज्ञाय पश्चाद्विषयसुखसाधक-शुभोपयोगपरिणत्या मोहितान्तरङ्गः सन् निर्विकल्पसमाधिलक्षणपूर्वोक्तसामायिकचारित्र्याभावे सति निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतान् मोहादीन् त्यजति यदि चेत्तर्हि जिनसिद्धसदृशं निजशुद्धात्मानं न लभत इति सूत्रार्थः ॥७९॥अथ शुद्धोपयोगाभावे यादृशं जिनसिद्धस्वरूपं न लभते तमेव कथयति;—

तवसंजमप्सिद्धो सुद्धो सग्गापवग्गमग्गकरो ।

अमरासुरिंदमहिदो देवो सो लोयसिहरत्थो ॥ १ ॥

तवसंजमप्सिद्धो समस्तरागादिपरभावेच्छाल्यागेन स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः, वः हिरङ्गेन्द्रियप्राणसंयमबलेन स्वशुद्धात्मनि संयमनात्समरसीभावेन परिणमनं संयमः, ताभ्यां प्रसिद्धो जातस्तपःसंयमप्रसिद्धः सुद्धो क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितः सग्गापवग्गमग्गकरो स्वर्गः प्रसिद्धः केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयलक्षणोपवर्गो मोक्षस्तयोर्मागं करोत्युपदिशति स्वर्गोपवर्गमागं-करः अमरासुरिंदमहिदो तत्पदाभिलाषिभिरमरासुरेन्द्रैर्महितः पूजितोऽमरासुरेन्द्रमहितः देवो सो स एवं गुणविशिष्टोऽहं देवो भवति । लोयसिहरत्थो स एव भगवान् लोका-ग्रशिखरस्थः सन् सिद्धो भवतीति जिनसिद्धस्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥ अथ तमित्थंभूतं निर्दो-पिपरमात्मानं ये श्रद्धयति मन्यन्ते तेऽक्षयसुखं लभन्त इति प्रज्ञापयति;—

तं देवदेवदेवं जदिचरवसहं गुरुं तिलोयस्स ।

पणमंति जे मणुस्सा ते सोक्खं अक्खयं जंति ॥ २ ॥

तं देवदेवदेवं देवदेवाः सौधमैन्द्रप्रभृतयस्तेषां देव आराध्यो देवदेवदेवस्तं देवदेवदेवं, जदिचरवसहं जितेन्द्रियत्वेन निजशुद्धात्मनि यत्नपरास्ते यतयस्तेषां वरा गणधरदेवादयस्ते-भ्योऽपि वृषभः प्रधानो यतिवरवृषभस्तं यतिवरवृषभं, गुरुं तिलोयस्स अनन्तज्ञानादिगुरु-गुणैर्लोक्यस्यापि गुरुस्तं त्रिलोकगुरुं पणमंति जे मणुस्सा तमित्थंभूतं भगवन्तं ये मनु-प्यादयो द्रव्यभावनमस्काराभ्यां प्रणमन्त्याराधयन्ति ते सोक्खं अक्खयं जंति ते तदाराध-

भते ] नहीं पाता ॥ भावार्थ—जो पुरुष सब पापक्रियाओंको छोड़कर परम सामा-यिक नाम चारित्र्यकी प्रतिज्ञा करके शुभोपयोगक्रियारूप मोहलक्ष्मीकी खोटी स्त्रीके वशमें होजाता है वह, मोहकी सेनाको नहीं जीतसकता, और उसके समीप अनेक दुःख संकट हैं, इसलिये निर्मल आत्माको नहीं पाता । इसीकारण मैंने मोहमेनाके जीत-नेको कमर बांधी है । आगे मुझमे मोहकी सेना कैसे जीती जावे ते-

जो जाणदि अरहंतं द्रव्यत्वगुणत्वपञ्जयत्तेहिं ।

सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥ ८० ॥

यो जानात्यर्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः ।

स जानात्यात्मानं मोहः खलु याति तस्य लयम् ॥ ८० ॥

यो हि नामार्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः परिच्छिनत्ति स खल्वात्मानं परिच्छिनत्ति, उ-  
भयोरपि निश्चयेनाविशेषात् । अर्हतोपि पाककाष्ठागतकार्तस्वरस्येव परिस्पष्टमात्मरूपं, ततस्त-  
त्परिच्छेदे सर्वात्मपरिच्छेदः । तत्रान्वयो द्रव्यं, अन्वयविशेषणं गुणः, अन्वयव्यतिरेकाः  
पर्यायाः । तत्र भगवत्यर्हति सर्वतो विशुद्धे त्रिभूमिकमपि स्वमनसा समयमुत्पश्यन्ति ।  
यश्चेतनोऽयमित्यन्वयस्तद्द्रव्यं, यच्चान्वयाश्रितं चैतन्यमिति विशेषणं स गुणः, ये चैकसम-  
यमात्रावधृतकालपरिमाणतया परस्परपरावृत्ता अन्वयव्यतिरेकास्ते पर्यायाश्चिद्विर्वर्तनग्रन्थय

नाफलेन परम्परयाऽक्षयानन्तसौख्यं यान्ति लभन्त इति सूत्रार्थः ॥ २ ॥ अथ “चत्तापावारंभं”  
इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादिविनाशाभावेन शुद्धा-  
त्मलभो न भवति तदर्थमेवेदानीमुपायं समालोचयति;—जो जाणदि अरहंतं यः कर्ता  
जानाति । कं । अर्हन्तं । कैः कृत्वा । द्रव्यत्वगुणत्वपञ्जयत्तेहिं द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः  
सो जाणदि अप्पाणं स पुरुषोऽर्हत्परिज्ञानात्पश्चादात्मानं जानाति मोहो खलु जाइ  
तस्स लयं तत आत्मपरिज्ञानात्तस्य मोहो दर्शनमोहो लयं विनाशं क्षयं यातीति । तद्यथा-  
केवलज्ञानादयो विशेषगुणा, अस्तित्वादयः सामान्यगुणाः, परमौदारिकशरीराकारेण यदात्म-  
प्रदेशानामवस्थानं स व्यञ्जनपर्यायः, अगुरुलघुकगुणपङ्कटद्विहानिरूपेण प्रतिक्षणं प्रवर्तमाना  
अर्धपर्यायाः, एवं लक्षणगुणपर्यायाधारभूतममूर्तमसंख्यातप्रदेशं शुद्धचैतन्यान्वयरूपं द्रव्यं चेति,  
इत्थंभूतं द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं पूर्वमर्हदाभिधाने परमात्मनि ज्ञात्वा पश्चान्निश्चयनयेन तदेवागम-  
सारपदभूतयाऽध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मभावनाभिमुखरूपेण सच्चिक्लृप्तस्वसंवेदज्ञानेन तथैवाग-

उपायका विचार करते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः ] द्रव्य  
गुण पर्यायोंसे [ अर्हन्तं ] पूज्य वीतरागदेवको [ जानाति ] जानता है [ सः ]  
वह पुरुष [ आत्मानं ] अपने स्वरूपको [ जानाति ] जानता है । और [ खलु ]  
निश्चयकर [ तस्य ] उसीका [ मोहः ] मोहकर्म [ लयं ] नाशको [ याति ]  
प्राप्त होता है । भावार्थ—जैसे पिछली आंचका पकाया हुआ सोना निर्मल होता है  
उसीप्रकार अरहंतका स्वरूप है । और निश्चयकर जैसा अरहंतका स्वरूप है वैसाही  
आत्माका शुद्ध स्वरूप है । इसलिये अर्हंतके जाननेसे आत्मा जानाजाता है । गुण-  
पर्यायोंके आधारको द्रव्य कहते हैं, तथा द्रव्यके ज्ञानादिक विशेषणोंको गुण कहते हैं  
और एकसमय मात्र कालके प्रमाणसे चैतन्यादिके परिणति भेदोंको पर्याय कहते हैं ।  
प्रथमही अरहंतके द्रव्य गुण पर्याय अपने मनमें अवधारण करै, पीछे आपको इन गुण-



इति यावत् । अथैवमस्य त्रिकालमप्येककालमाकलयतो मुक्ताफलानीव प्रलम्बे प्रालम्बे चिद्विवर्ताश्चेतन एव संक्षिप्य विशेषणविशेष्यत्ववासनान्तर्धानाद्भवलिमानमिव प्रालम्बे चेतन एव चैतन्यमन्तर्हितं विधाय केवलं प्रालम्बमिव केवलमात्मानं परिच्छिन्दतस्तदुत्तरोत्तरक्षणक्षीयमानकर्तृकर्मक्रियाविभागतया निःक्रियं चिन्मात्रं भावमधिगतस्य जातस्य मणेरिवाकम्पवृत्तनिर्मलालोकस्यावश्यमेव निराश्रयतया मोहतमः प्रलीयते । यद्येवं लब्धो मया मोहवाहिनीविजयोपायः ॥ ८० ॥

अथैवं प्राप्तचिन्तामणेरपि मे प्रमादो दस्युरिति जागर्ति;—

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं ।

जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥ ८१ ॥

मभाषयाधःप्रवृत्तिकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसंज्ञदर्शनमोहक्षपणसमर्थपरिणामविशेषबलेन पश्चादात्मनि योजयति । तदनन्तरमविकल्पस्वरूपे प्राप्ते, यथा पर्यायस्थानीयमुक्ताफलानि गुणस्थानीयं धवलत्वं चाभेदनयेन हार एव, तथा पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्याया अभेदनयेनामैवेति भावयतो दर्शनमोहान्धकारः प्रलीयते । इति भावार्थः ॥ ८० ॥ अथ प्रमादोत्पादकचारित्रमोहसंज्ञश्रौरोस्तीति मत्वात्परिज्ञानादुपलब्धस्य शुद्धात्मचिन्तामणेः रक्षणार्थं जागर्तीति कथयति;—जीवो जीवः कर्ता । किं विशिष्टः । ववगदमोहो शुद्धात्मतत्त्वरुचिप्रतिबन्धकविनाशितदर्शनमोहः । पुनरपि किंविशिष्टः । उवलद्धो उपलब्धवान् ज्ञांतवान् । किं । तच्चं परमानन्दैकस्वभावात्मतत्त्वं । कस्य संबन्धि । अप्पणो निजशुद्धात्मनः । कथं । सम्मं सम्यक्

पर्यायोसे जाने और उसके बाद निजस्वरूपको अभेदरूप अनुभवै । इस आत्माके त्रिकालसंबंधी पर्याय एककालमें अनुभवन करै । जैसे हारमें मोती पोये जाते हैं वहां भेद नहीं करते हैं, तैसे ही आत्मामें चित्पर्यायका अभेद करै, जैसे हारमें उज्ज्वलगुणका भेद नहीं करते हैं, तैसे ही आत्मामें चेतना गुणको गोपन करै, जैसे पहिरनेवाला पुरुष अभेदरूप हारकी शोभाके सुखको वेदता है, वैसेही केवल ज्ञानसे अभेदरूप आत्मीक सुखको वेदै । ऐसी अवस्थाके होनेपर अगले २ समयोंमें कर्ता कर्म क्रियाका भेद क्षीण होता है, तभी क्रियारहित चैतन्यस्वभावको प्राप्त होता है । जैसे चोखे (खरे) रत्नका अकंप निर्मल प्रकाश है तैसेही चैतन्यप्रकाश जब निर्मल निश्चल होता है तब आश्रयके विना मोहरूपी अंधकारका अवश्यही नाश होता है । आचार्य महाराज कहते हैं जो इस भांति स्वरूपकी प्राप्ति होती है तो मैंने मोहकी सेनाके जीतनेका उपाय पाया ॥ ८० ॥ आगे कहते हैं कि यद्यपि मैंने स्वरूपचिन्तामणि पाया है तौभी प्रमादरूप चोर अभी मौजूद है इसलिये सावधान होकर मैं जागता हूँ;—[ व्यपगतमोहः ] जिससे मोह दूर होगया है ऐसा [ जीवः ] आत्मा [ आत्मनः ] आत्माका [ सम्यक् तत्त्वं ] यथार्थ स्व-

जीवो व्यपगतमोह उपलब्धवांस्तत्त्वमात्मनः सम्यक् ।

जहाति यदि रागद्वेषौ स आत्मानं लभते शुद्धम् ॥ ८१ ॥

एवमुपवर्णितस्वरूपेणोपायेन मोहमपसार्यापि सम्यगात्मतत्त्वमुपलभ्यापि यदि नाम रागद्वेषौ निर्मूलयति तदा शुद्धमात्मानमनुभवति । यदि पुनः पुनरपि तावदनुवर्तेते तदा प्रमादतत्रतया लुण्ठितशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भचिन्तारत्नोन्तस्ताम्यति । अतो मया रागद्वेषनि-  
पेधायत्यन्तं जागरितव्यम् ॥ ८१ ॥

अथायमेवैको भगवद्भिः स्वयमनुभूयोपदर्शितो निःश्रेयसः पारमार्थिकः पन्था इति मतिं व्यवस्थापयति;—

सव्येपि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा ।

किञ्चा तधोवदेसं णिञ्वादा ते णमो तेसिं ॥ ८२ ॥

संशयादिरहितत्वेन जहृदि जदि रागदोसे शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चारित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ यदि त्यजति सो अप्पाणं लहदि सुद्धं स एवमभेदरत्नत्रयपरि-  
णतो जीवः शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं लभते मुक्तो भवतीति । किञ्च पूर्वं ज्ञानकण्ठिकायां “उबओगविमुद्धो सो खवेदि देहुव्वमं दुक्खं” इत्युक्तं, अत्र तु “चय (जह) दि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं” इति भणितम्, उभयत्र मोक्षोक्ति को विशेषः? प्रत्यु-  
त्तरमाह—तत्र शुभाशुभयोर्निश्चयेन संमानत्यं ज्ञात्वा पश्चाच्छुद्धे शुभरहिते निजस्वरूपे स्थित्वा मोक्षं लभते, तेन कारणेन शुभाशुभमूढत्वनिरासार्थं ज्ञानकण्ठिका भण्यते । अत्र तु द्रव्यगुण-  
पर्यायैराप्तस्वरूपं ज्ञात्वा पश्चात्तद्रूपे स्वशुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं प्राप्नोति, ततः कारणादियमा-  
त्मात्ममूढत्वनिरासार्थं ज्ञानकण्ठिका इत्येतावान् विशेषः ॥ ८१ ॥ अथ पूर्वं द्रव्यगुणपर्यायैरा-  
प्तस्वरूपं विज्ञाय पश्चात्तथाभूते स्वात्मनि स्थित्वा सर्वेभ्यर्हन्तो मोक्षं गता इति स्वमनसि निश्चयं करोति;—सव्येपि य अरहंता सर्वेपि चार्हन्तः तेण विधाणेण द्रव्यगुणपर्यायैः पूर्वमर्ह-

रूप [ उपलब्धवान् ] प्राप्त करता हुआ [ यदि ] जो [ रागद्वेषौ ] रागद्वेषरूप प्रमादभाव [ जहाति ] त्यागदेवै [ तदा ] तो [ सः ] वह जीव [ शुद्धं आ-  
त्मानं ] निर्मल निजस्वरूपको [ लभते ] प्राप्त होवै । भावार्थ—जो कोई भव्यजीव पूर्वं कहे हुए उपायसे मोहका नाश करै, आत्मतत्त्वरूप चिंतामणि रत्नको पावै और पानेके पश्चात् ( वाद ) रागद्वेषरूप प्रमादके वश न होवे तो शुद्धात्माका अनुभव कर-  
सकै । और यदि रागद्वेषके वशीभूत होवै तो प्रमादरूप चोरसे शुद्धात्मअनुभवरूप चिंतामणिरत्नको लुटाके पीछे अंतःकरणमें ( चित्तमें ) अत्यंत दुःख पावै । इसलिये रागद्वेषके विनाशके निमित्त मुझको सावधान होके जागृतही रहना चाहिये ॥ ८१ ॥  
आगे कहते हैं कि भगवंतदेवनेही आप अनुभव कर यही एक मोक्षमार्ग दिखाया है ऐसी बुद्धिकी स्थापना करते हैं;—[ तेन विधानेन ] तिस पूर्वकथित विधानसे [ क्ष-

सर्वेपि चार्हन्तस्तेन विधानेन क्षपितकर्माशाः ।

कृत्वा तथोपदेशं निर्वृतास्ते नमस्तेभ्यः ॥ ८२ ॥

यतः खल्वतीतकालानुभूतक्रमप्रवृत्तयः समस्ता अपि भगवन्तस्तीर्थकराः प्रकारान्त-  
रस्यासंभवादसंभावितद्वैतेनामुनैवैकेन प्रकारेण क्षपणं कर्माशानां स्वयमनुभूय, परमाप्तया  
परेषामप्यायत्यामिदानीत्वे वा मुमुक्षूणां तथैव तदुपदिश्य, निःश्रेयसमध्याश्रिताः ।  
ततो नान्यद्वर्त्म निर्वाणस्येत्यवधार्यते । अलमथवा प्रलपितेन । व्यवस्थिता मतिर्मम, नमो  
भगवद्भ्यः ॥ ८२ ॥

अथ शुद्धात्माभपरिपन्थिनो मोहस्य स्वभावं भूमिकाश्च विभावयति;—

त्परिज्ञानात्पश्चात्तथाभूतस्वात्मावस्थानरूपेण तेन पूर्वोक्तप्रकारेण खविदकम्मंसा क्षपितक-  
र्माशा विनाशितकर्मभेदा भूत्वा किञ्चा तहोवदेसं अहो भव्या अयमेव निश्चयरत्नत्रयात्मक-  
शुद्धात्मोपलम्भलक्षणो मोक्षमार्गो नान्यइत्युपदेशं कृत्वा णिव्वांदा निर्वृता अक्षयानन्तसुखेन तृप्ता  
जाताः, ते ते भगवन्तः । णमो तेसिं एवं मोक्षमार्गनिश्चयं कृत्वा श्रीकुन्द(ण्ड)कुन्दाचार्यदेवा-  
स्तस्मै निजशुद्धात्मानुभूतिस्वरूपमोक्षमार्गाय तदुपदेशकेभ्योऽर्हद्भ्यश्च तद्भुजस्वरूपाभिलाषिणः  
सन्तो 'नमोस्तु तेभ्य' इत्यनेन पदेन नमस्कारं कुर्वन्तीत्यभिप्रायः ॥ ८२ ॥ अथ रत्नत्रयाराधका  
एव पुरुषा दानपूजागुणप्रशंसानमस्कारार्हा भवन्ति नान्य इति कथयति;—

दंसणसुद्धा पुरिसा णाणपहाणा समग्गचरियत्था ।

पूजासक्काररिहा दाणस्त य हि ते णमो तेसिं ॥ १ ॥

दंसणसुद्धा निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्तवसाधकेन मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितेन  
तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणेन दर्शनेन शुद्धा दर्शनशुद्धाः पुरिसा पुरुषा जीवाः । पुनरपि कथंभूताः ।  
णाणपहाणा निरुपमस्वसंवेदनज्ञानसाधकेन धीतरागसर्वज्ञप्रणीतपरमागमाभ्यासलक्षणज्ञानेन प्र-  
धानाः समर्थाः प्रौढज्ञानप्रधानाः । पुनश्च कथंभूताः । समग्गचरियत्था निर्विकारनिश्च-

पितकर्माशा ] जिन्होंने कर्मोंके अंश विनाश किये हैं ऐसे [ ते सर्वे अर्हन्त  
अपि ] वे सब भगवन्त तीर्थकरदेव भी [ तथा ] उसीप्रकार [ उपदेशं कृत्वा ]  
उपदेश करके [ निर्वृत्ताः ] मोक्षको प्राप्त हुए । [ तेभ्यः ] उन अरहंत देवोंको  
[ नमः ] मेरा नमस्कार होवे । भावार्थ—भगवान तीर्थकरदेवने पहले अरहंतका स्वरूप  
द्रव्यगुण पर्यायसे जाना, पीछे उसीप्रकार अपने स्वरूपका अनुभव करके समस्त-  
कर्मोंका नाश किया । और उसीप्रकार भव्यजीवोंको उपदेश दिया कि, यही मोक्ष-  
मार्ग है अन्य नहीं है । तथा आज पंचमकाल ( फलियुग ) में भी वही उपदेश चला  
आता है । इसलिये अब बहुत कहांतफ फटें, श्रीभगवन्त धीतरागदेव बड़ेही उपकारी हैं  
उनको तीनों काल नमस्कार होये ॥ ८२ ॥ आगे शुद्धात्माके लाभका पातक मोहके

दृग्वादिषु मूढो भावो जीवस्स ह्वदि मोहोत्ति ।

खुब्भदि तेणोच्छण्णो पय्या रागं व दोसं वा ॥ ८३ ॥

द्रव्यादिकेषु मूढो भावो जीवस्य भवति मोह इति ।

क्षुभ्यति तेनावच्छन्नः प्राप्य रागं वा द्वेषं वा ॥ ८३ ॥

यो हि द्रव्यगुणपर्यायेषु पूर्वमुपवर्णितेषु पीतोन्मत्तकस्येव जीवस्य तत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणो मूढो भावः स खलु मोहः तेनावच्छन्नात्मरूपः सन्नयमात्मा, परद्रव्यमात्मद्रव्यत्वेन परगुणमात्मगुणतया परपर्यायानात्मपर्यायभावेन प्रतिपद्यमानः, प्ररूढदृढतरसंस्कारतया परद्रव्यमेवाहरहरूपाददानो दग्धेन्द्रियाणां रुचिवशेनाद्वैतेषु प्रवर्तितद्वैतो रुचितारुचि-

लात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रसाधकेनाचारादिशास्त्रकथितमूलोत्तरगुणानुष्ठानादिरूपेण चारित्रेण समप्राः परिपूर्णाः समप्रचारित्रस्थाः पूजासकाररिहा द्रव्यभावलक्षणपूजा गुणप्रशंसा सत्कारस्तयोरर्हा योग्या भवन्ति । दाणस्स य हि दानस्य च हि स्फुटं ते ते पूर्वोत्तरत्रयाधाराः णमो तेसिं नमस्तेस्य इति नमस्कारस्यापि त एव योग्याः ॥ १ ॥ एवमात्मात्मस्वरूपविषये मूढत्वनिरासार्थं गाथासप्तकेन द्वितीयज्ञानकण्ठिका गता । अथ शुद्धात्मोपलम्भप्रतिपक्षभूतमोहस्य स्वरूपं भेदांश्च प्रतिपादयति;—दृग्वादिषु शुद्धात्मादिद्रव्येषु, तेषां द्रव्याणामनन्तज्ञानाद्यस्तिःत्वादिविशेषामान्यलक्षणगुणेषु, शुद्धात्मपरिणतिलक्षणसिद्धत्वादिपर्यायेषु च यथासंभवं पूर्वोपवर्णितेषु वक्ष्यमाणेषु च मूढो भावो एतेषु पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्यायेषु विपरीताभिनिवेशरूपेण तत्त्वसंशयजनको मूढो भावः जीवस्स ह्वदि मोहोत्ति इत्थंभूतो भावो जीवस्य दर्शनमोह इति भवति । खुब्भदि तेणुच्छण्णो तेन दर्शनमोहेनावच्छन्नो क्षम्पितः सन्नक्षुभितात्मतत्त्वविपरीतेन क्षोभेण क्षोभं स्वरूपचलनं विपर्ययं गच्छति । किं कृत्वा । पय्या रागं व दोसं

स्वभावको और भूमिकाको कहते हैं;—[ जीवस्य ] आत्माका [ द्रव्यादिकेषु ] द्रव्य, गुण, पर्यायोंमें जो [ मूढः भावः ] विपरीत अज्ञानभाव है सो [ मोहः इति ] मोह ऐसा नाम [ भवति ] होता है अर्थात् जिस भावसे यह जीव धतूरा खानेवाले पुरुषके समान द्रव्य गुण पर्यायोंको यथार्थ नहीं जानता है और न श्रद्धान करता है उस भावको 'मोह' कहते हैं । [ तेन ] उस दर्शनमोह करके [ अवच्छन्नः ] आच्छादित जो यह जीव सो [ रागं वा द्वेषं वा ] रागभाव अथवा द्वेषभावको [ प्राप्य ] पाकर [ क्षुभ्यति ] क्षोभ पाता है । अर्थात् इस दर्शनमोहके उदयसे परद्रव्योंको अपनी द्रव्य जानता है, परगुणको आत्मगुण मानता है और परपर्यायको आत्मपर्याय जानके अंगीकार करता है । भावार्थ—यह जीव अनादि अविशासे उत्पन्न हुआ जो परमें आत्मसंस्कार है उससे सदाकाल परद्रव्यको अंगीकार करता है, इंद्रियोंके वद होकर इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष भावोंमें द्वैतभावको

सर्वेपि चार्हन्तस्तेन विधानेन क्षपितकर्माशाः ।

कृत्वा तद्योपदेशं निर्वृतास्ते नमस्तेभ्यः ॥ ८२ ॥

यतः स्वत्वतीतकालानुभूतकर्मप्रवृत्तयः समस्ता अपि भगवन्तस्तीर्थकराः प्रकारान्तरस्यासंभवादसंभावितद्वैतेनामुनैवैकेन प्रकारेण क्षपणं कर्माशानां स्वयमनुभूय, परमाप्तया परेषामप्यायत्यामिदानींत्वे वा मुमुक्षूणां तथैव तदुपदिश्य, निःश्रेयसमध्याश्रिताः । ततो नान्यद्वर्त्म निर्वाणस्येत्यवधार्यते । अलमथवा प्रलपितेन । व्यवस्थिता मतिर्मम, नमो भगवद्भ्यः ॥ ८२ ॥

अथ शुद्धात्मलाभपरिपन्थिनो मोहस्य स्वभावं भूमिकाश्च विभावयति;—

त्परिज्ञानात्पश्चात्तत्ताभूतस्वात्मावस्थानरूपेण तेन पूर्वोक्तप्रकारेण स्वविदकम्मंसा क्षपितकर्माशा विनाशितकर्मभेदा भूत्वा किञ्चा तहोवदेसं अहो भव्या अयमेव निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धात्मोपलम्बलक्षणो मोक्षमार्गो नान्य इत्युपदेशं कृत्वा णिञ्वादा निर्वृता अक्षयानन्तसुखेन तृप्ता जाताः, ते ते भगवन्तः । णमो तेसिं एवं मोक्षमार्गनिश्चयं कृत्वा श्रीकुन्द(ण्ड)कुन्दाचार्यदेवास्तस्मै निजशुद्धात्मानुभूतिस्वरूपमोक्षमार्गाय तदुपदेशकेभ्योऽर्हद्भ्यश्च तदुभयस्वरूपाभिलाषिणः सन्तो 'नमोस्तु तेभ्य' इत्यनेन पदेन नमस्कारं कुर्वन्तीत्यभिप्रायः ॥ ८२ ॥ अथ रत्नत्रयाराधका एव पुरुषा दानपूजागुणप्रशंसानमस्कारार्हा भवन्ति नान्य इति कथयति;—

दंसणसुद्धा पुरिसा णाणपहाणा समग्गचरियत्था ।

पूजासकाररिहा दाणस्स य हि ते णमो तेसिं ॥ १ ॥

दंसणसुद्धा निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्तवसाधकेन मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमखरहितेन तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणेन दर्शनेन शुद्धा दर्शनशुद्धाः पुरिसा पुरुषा जीवाः । पुनरपि कथंभूताः । णाणपहाणा निरुपमस्वसंवेदनज्ञानसाधकेन वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपरमागमाम्यासलक्षणज्ञानेन प्रधानाः समर्थाः प्रौढज्ञानप्रधानाः । पुनश्च कथंभूताः । समग्गचरियत्था निर्विकारनिश्च-

पितकर्माशा ] जिन्होंने कर्मोंके अंश विनाश किये हैं ऐसे [ ते सर्वे अर्हन्त अपि ] वे सब भगवन्त तीर्थकरदेव भी [ तथा ] उसीप्रकार [ उपदेशं कृत्वा ] उपदेश करके [ निर्वृत्ताः ] मोक्षको प्राप्त हुए । [ तेभ्यः ] उन अरहंत देवोंको [ नमः ] मेरा नमस्कार होवे । भाचार्य—भगवान तीर्थकरदेवने पहले अरहंतका स्वरूप द्रव्यगुण पर्यायसे जाना, पीछे उसीप्रकार अपने स्वरूपका अनुभव करके समस्त कर्मोंका नाश किया । और उसीप्रकार भव्यजीवोंको उपदेश दिया कि, यही मोक्षमार्ग है अन्य नहीं है । तथा आज पंचमफाल ( फलयुग ) में भी वही उपदेश चला आता है । इसलिये अथ बहुत फहांतफ फहें, श्रीभगवन्त वीतरागदेव वधेही उपकारी हैं उनको तीनों फाल नमस्कार होवे ॥ ८२ ॥ आगे शुद्धात्माके लाभका पातक मोहके

न्दुरस्येव भवति नाम नानाविधो बन्धः । ततोमी अनिष्टकार्यकारिणो मुमुक्षुणा मोह-  
रागद्वेषाः सम्यग्निर्मूलकापं कपित्वा क्षपणीयाः ॥ ८४ ॥

अथामी अमीभिलिङ्गैरुपलभ्योद्भवन्त एव निशुम्भनीया इति विभावयति;—

अद्वे अजधाग्रहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु ।

विसएसु अप्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि ॥ ८५ ॥

अर्थे अयथाग्रहणं करुणाभावश्च तिर्यञ्चनुजेपु ।

विपयेपु च प्रसङ्गो मोहस्यैतानि लिङ्गानि ॥ ८५ ॥

अर्थानामयाथातथ्यप्रतिपत्त्या तिर्यग्मनुष्येषु प्रेक्षार्हेष्वपि कारूप्यबुद्ध्या च मोहमभी-  
ष्टविषयप्रसङ्गेन रागमनभीष्टविषयाप्रीत्या द्वेषमिति त्रिभिलिङ्गैरधिगम्य क्रममिति संभवन्नपि  
त्रिभूमिकोपि मोहो निहन्तव्यः ॥ ८५ ॥

भूतो बन्धो भवति ततो रागादिरहितशुद्धात्मध्यानेन ते रागद्वेषमोहाः सम्यक् क्षपयितव्या  
इति तात्पर्यम् ॥ ८४ ॥ अथ स्वकीयस्वकीयलिङ्गै रागद्वेषमोहान् ज्ञात्वा यथासंभवं त एव  
विनाशयितव्या इत्युपदिशति;—अद्वे अजधाग्रहणं शुद्धात्मादिपदार्थे यथास्वरूपस्थितेपि  
विपरीताभिनिवेशरूपेणायथाग्रहणं करुणाभावो य शुद्धात्मोपलब्धिलक्षणपरमोपेक्षासंयमादि-  
परीतः करुणाभावो दयापरिणामश्च अथवा व्यवहारेण करुणाया अभावः । केषु विपयेषु ।  
मणुवतिरिएसु मनुष्यतिर्यग्जीवेषु, इति दर्शनमोहचिन्हं । विसयेसु अप्पसंगो निर्विषय-  
सुखास्वादरहितबहिरात्मजीवानां मनोज्ञामनोज्ञविपयेषु च योसौ प्रकर्षेण सङ्गः संसर्गस्तं दृष्ट्वा  
प्रीत्यप्रीतिलिङ्गाभ्यां चारित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ च ज्ञायते विवेकिभिः, ततस्तत्परिज्ञानानन्तरमेव

उस हस्तिनीके पास आते देख लड़नेको सामने दौड़ता है और तृणादिकसे आच्छादित  
( ढंके हुए ) गड्ढेमें पड़कर पकड़नेवाले पुरुषोंसे नाना प्रकार बांधा जाता है । इसी-  
तरह इस जीवके भी मोह राग द्वेषभावोंसे अनेक प्रकार कर्मबंध होता है । इसलिये  
मोक्षकी इच्छा करनेवालेको अनिष्ट कार्यके कारणरूप मोहादि तीनों भाव मूलसत्तासे ही  
सर्व प्रकार क्षय करने चाहिये ॥ ८४ ॥ आगे कहते हैं कि ऊपर कहे तीनों भाव इन  
लक्षणोंसे उत्पन्न होते देखकर नाश करने चाहिये;—[ अर्थे ] पदार्थोंमें [ अग्रथा-  
ग्रहणं ] जैसेका तैसा ग्रहण नहीं करना अर्थात् अन्यका अन्य जानना [ च ] तथा  
[ तिर्यङ्मनुजेपु ] तिर्यच और मनुष्योंमें [ करुणाभावः ] ममतासे दयारूप  
भाव [ च ] और [ विपयेषु ] संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें [ प्रसङ्गः ] लगना  
[ एतानि ] इतने [ मोहस्य ] मोहके [ लिङ्गानि ] चिन्ह हैं ॥ भावार्थ—मोहके  
तीन भेद हैं—दर्शनमोह, राग, और द्वेष । पदार्थोंको औरका और जानना तथा म-  
नुष्य—तिर्यचोंमें ममत्वबुद्धिसे दया होना—ये तो दर्शन मोहके चिन्ह हैं । इष्ट विषयोंमें  
प्रीति यह रागका चिन्ह है । और अनिष्ट ( अप्रिय ) पदार्थोंमें क्रूर दृष्टि यह द्वेषका

तेषु रागद्वेषाबुपक्षिष्य प्रचुरतराम्भोभाररयाहतः सेतुबन्ध इव द्वेषा विदीर्यमाणो नितरां क्षोभमुपैति । अतो मोहरागद्वेषभेदात्रिभूमिको 'मोहः' ॥ ८३ ॥

अथानिष्टकार्यकारणत्वमभिधायत्रिभूमिकस्यापि मोहस्य क्षयमासूत्रयति;—

मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीवस्स ।

जायदि विविहो बंधो तम्हा ते संखवइदव्वा ॥ ८४ ॥

मोहेन वा रागेण वा द्वेषेण वा परिणतस्य जीवस्य ।

जायते विविधो बन्धस्तस्मात्ते संक्षपयितव्याः ॥ ८४ ॥

एवमस्य तत्त्वाप्रतिपत्तिनिमीलितस्य मोहेन वा रागेण वा द्वेषेण वा परिणतस्य तृणप-  
टलावच्छन्नगर्तसंगतस्य करेणुकुट्टिनीगात्रासक्तस्य प्रतिद्विरदर्शनोद्भूतप्रविधावितस्य च सि-

वा निर्विकारशुद्धात्मनो विपरीतमिष्टानिष्टेन्द्रियविषयेषु हर्षविषादरूपं चारित्रमोहसंज्ञं रागद्वेषं वा प्राप्य चेति । अनेन किमुक्तं भवति । मोहो दर्शनमोहो रागद्वेषद्वयं चारित्रमोहश्चेति त्रिभूमिको मोह इति ॥ ८३ ॥ अथ दुःखहेतुभूतबन्धस्य कारणभूता रागद्वेषमोहा निर्मूलनीया इत्याघोषयति;—मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीवस्स मोहरागद्वेषपरिणतस्य मोहादिरहितपरमात्मस्वरूपपरिणतिच्युतस्य बहिर्मुखजीवस्य जायदि विविहो बंधो शुद्धोपयोगलक्षणो भावमोक्षस्तद्वलेन जीवप्रदेशकर्मप्रदेशानामत्यन्तविश्लेषो द्रव्यमोक्षः, इत्थंभूत-द्रव्यभावमोक्षाद्विलक्षणः सर्वप्रकारोपादेयभूतस्वाभाविकसुखविपरीतस्य नारकादिदुःखस्य कारण-भूतो विविधबन्धो जायते । तम्हा ते संखवइदव्वा यतो रागद्वेषमोहपरिणतस्य जीवस्येत्यं-

प्राप्त होता है । यद्यपि संसारके सर्व विषय एक सरीखे हैं तौभी रागद्वेषरूप भावोंसे उसे भले बुरे लगते हैं । जैसे किसी नदीका बंधा हुआ पुल पानीके अत्यंत प्रवाहसे भंग होकर दो खंडोंमें बँट जाता है उसीप्रकार यह आत्मा मोहके तीव्र उदयसे राग-द्वेषभावरूप परिणमन करके द्वैतभावको धारण करता हुआ अत्यंत आकुल रहता है । इसकारण एक मोहके राग, द्वेष और मोह ये तीन भेद जानने चाहिये ॥ ८३ ॥ आगे कहते हैं कि यह मोह अनिष्ट कार्य करनेका कारण है इसलिये पूर्वोक्त तीन प्रकार मोहका क्षय करना योग्य है;—[ मोहेन ] मोहभावसे [ व रागेण ] अथवा राग-भावसे [ वा ] अथवा [ द्वेषेण ] दुष्टभावसे [ परिणतस्य जीवस्य ] परिणमते हुए जीवके [ विविधः बन्धः ] अनेक प्रकार कर्मबंध [ जायते ] उत्पन्न होता है [ तस्मात् ] इसलिये [ ते ] वे राग, द्वेष और मोहभाव [ संक्षपयितव्याः ] मूल सत्तासे क्षय करने योग्य हैं । भावार्थ—जीवके रागद्वेषमोह इन तीन भावोंसे ज्ञानावरणादि अनेक कर्मबन्ध होते हैं इसलिये इन तीनों भावोंका नाश करना चाहिये । जैसे जंगलका मदनमत्त हस्ती ( हाथी ) मोहसे अज्ञानी होकर मिग्यलाई हुई कुट्टिनी हस्तिनीके अत्यंत प्रेमभावके वश आलिंगन करता है तथा द्वेषभावसे अन्य हस्तिनीको

तद्विरोधिना प्रमाणजातेन तत्त्वतः समस्तमपि वस्तुजातं परिच्छिन्दता क्षीयत एवा-  
तत्त्वाभिनिवेशसंस्कारकारी मोहोपचयः । अतो हि मोहक्षपणे परमं शब्दब्रह्मोपासनं भा-  
वज्ञानावष्टम्भद्वीकृतपरिणामेन सम्यगधीयमानमुपायान्तरम् ॥ ८६ ॥

अथ कथं जैनेन्द्रे शब्दब्रह्मणि किलार्थानां व्यवस्थितिरिति वितर्कयति;—

द्ववाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्टसण्णया भणिया ।

तेसु गुणपज्जयाणं अप्पा दव्वत्ति उवदेसो ॥ ८७ ॥

द्रव्याणि गुणास्तेषां पर्याया अर्थसंज्ञया भणिताः ।

तेषु गुणपर्यायाणामात्मा द्रव्यमित्युपदेशः ॥ ८७ ॥

नत्ति । तथैवानुमानेन वा, तथाहि—अत्रैव देहे निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मास्ति ।  
कस्माद्धेतोः । निर्विकारस्वसंवेदनप्रत्यक्षत्वात् सुखादिवत् इति, तथैवान्येपि पदार्था यथासंभ-  
वमागमाम्नासबलोल्लेखनप्रत्यक्षेणानुमानेन वा ज्ञायन्ते । ततो मोक्षार्थिना भव्येनागमाम्नासः  
कर्तव्य इति तात्पर्यम् ॥ ८६ ॥ अथ द्रव्यगुणपर्यायाणामर्थसंज्ञां कथयति;—द्ववाणि गुणा  
तेसिं पज्जाया अट्टसण्णया भणिया द्रव्याणि गुणास्तेषां द्रव्याणां पर्यायाश्च त्रयोव्यर्थसं-  
ज्ञया भणिताः कथिता अर्थसंज्ञा भवन्तीत्यर्थः । तेषु तेषु त्रिषु द्रव्यगुणपर्यायेषु मध्ये गुणप-  
ज्जयाणं अप्पा गुणपर्यायाणां संबन्धी आत्मा स्वभावः । कः इति पृष्टे । दव्वत्ति उवदेसो

क्रीडा करते हैं । जिनागमके बलसे उनके आत्मज्ञानशक्तिरूप संपदा प्रगट होती है ।  
तथा प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञानसे सब वस्तुओंके ज्ञाता द्रष्टा होते हैं, और तभी उनके यथा-  
र्थज्ञानसे मोहका नाश होता है । इसलिये मोहनाशके उपायोंमें शास्त्ररूप शब्दब्रह्मकी  
सेवा करना योग्य है । भावश्रुत ज्ञानके बलसे दृढ परिणाम करके आगमपाठका  
अभ्यास बड़ा उपाय है ॥ ८६ ॥ अब कहते हैं कि जिन भगवानके कहेहुए शब्दब्रह्ममें  
सब पदार्थोंके कथनकी यथार्थ स्थिति है;—[ द्रव्याणि ] गुणपर्यायोंके आधाररूप  
सब द्रव्य [ तेषां ] उन द्रव्योंके [ गुणाः ] सहभावी गुण और [ पर्यायाः ]  
क्रमवर्ती पर्याय [ अर्थसंज्ञया ] “अर्थ” ऐसे नामसे [ भणिताः ] कहे हैं ।  
[ तेषु ] उन गुणपर्यायोंमें [ गुणपर्यायाणाम् ] गुणपर्यायोंका [ आत्मा ] सर्वस्व  
[ द्रव्यं ] द्रव्य है । [ इति ] ऐसा [ उपदेशः ] भगवानका उपदेश है । भा-  
वार्थ-द्रव्य, गुण-पर्याय, इन तीनोंका “अर्थ” ऐसा नाम है । क्योंकि समय २  
अपने गुणपर्यायोंके प्रति प्राप्त होते हैं, अथवा गुणपर्यायों करके अपने स्वरूपको प्राप्त  
होते हैं, इसलिये द्रव्योंका नाम “अर्थ” है । “अर्थ” शब्दका अर्थ गमन अथवा प्राप्त  
होता है, क्योंकि आधारभूत द्रव्यको प्राप्त होता है अथवा द्रव्यकरके प्राप्त किया  
जाता है, इसलिये गुणोंका नाम “अर्थ” है । और क्रमसे परिणमन करके द्र-  
व्यको प्राप्त होते हैं अथवा द्रव्यकरके अपने स्वरूपको प्राप्त होते हैं इसलिये पर्या-



अथ मोहक्षपणोपायान्तरमालोचयति;—

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा ।

खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥ ८६ ॥

जिनशास्त्रादर्थान् प्रत्यक्षादिभिर्बुध्यमानस्य नियमात् ।

क्षीयते मोहोपचयः तस्मात् शास्त्रं समध्येतव्यम् ॥ ८६ ॥

यत्किल द्रव्यगुणपर्यायस्वभावेनार्हतो ज्ञानादात्मनस्तथा ज्ञानं मोहक्षपणोपायत्वेन प्राक् प्रतिपन्नं । तत् खलूपायान्तरमिदमपेक्षते । इदं हि विहितप्रथमभूमिकासंक्रमणस्य सर्वज्ञोपज्ञतया सर्वतोप्यवाधितं शाब्दं प्रमाणमाक्रम्य क्रीडतस्तत्संस्कारस्फुटीकृतविशिष्टसंवेदनशक्तिसंपदः सहृदयविद्वज्जनचित्तानन्दप्रकाशदात्रानन्दोद्भेददायिना प्रत्यक्षेणान्येन वा

निर्विकारस्वशुद्धात्मभावनया रागद्वेषमोहा निहन्तव्या इति सूत्रार्थः ॥ ८५ ॥ अथ द्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानाभावे मोहो भवतीति यदुक्तं पूर्वं तदर्थमागमाभ्यासं कारयति; अथवा द्रव्यगुणत्वपर्यायत्वेरहत्परिज्ञानादात्मपरिज्ञानं भवतीति यदुक्तं, तदात्मपरिज्ञानमिममागमाभ्यासमपेक्षत इति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा जिनशास्त्रासकाशाच्छुद्धात्मादिपदार्थान् प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्बुध्यमानस्य जानतो जीवस्य नियमान्निश्चयात् । किं फलं भवति । खीयदि मोहोवचओ दुरभिनिवेशसंस्कारकारी मोहोपचयः खीयदि क्षीयते प्रलीयते क्षयं याति । तम्हा सत्थं समधिदव्वं तस्माच्छास्त्रं सम्यगध्येतव्यं पठनीयमिति । तद्यथा—वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशास्त्रात् “एगो मे सत्सदो अप्पा” इत्यादि परमात्मोपदेशकश्रुतज्ञानेन तावदात्मानं जानीते कश्चिद्भव्यः, तदनन्तरं विशिष्टाभ्यासवशेन परमसमाधिकाले रागादिविकल्परहितमानसप्रत्यक्षेण च तमेवात्मानं परिच्छि-

लक्षण है । इन तीन चिन्हों ( लक्षणों ) से मोहको उत्पन्न होते हुए देखकर उसका नाश अवश्यही करना चाहिये ॥ ८५ ॥ आगे मोहका क्षय करनेके लिये अन्य उपायका विचार करते हैं;—[ प्रत्यक्षादिभिः ] प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणज्ञानों करके [ जिनशास्त्रात् ] वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत आगमसे [ अर्थान् ] पदार्थोंको [ बुध्यमानस्य ] जाननेवाले पुरुषके [ नियमात् ] नियमसे [ मोहोपचयः ] मोहका समूह अर्थात् विपरीतज्ञान व श्रद्धान [ क्षीयते ] नाशको प्राप्त होता है [ तस्मात् ] इसलिये [ शास्त्रं ] जिनागम [ समध्येतव्यम् ] अच्छीतरह अध्ययन करना अभ्यास चाहिये ॥ भावार्थ—पहले मोहके नाश करनेका उपाय अर्हतके द्रव्य गुण पर्यायके जाननेसे आत्माका ज्ञान होना बतलाया है, परंतु वह उपाय दूसरे उपायकोभी चाहता है, क्योंकि अर्हतके द्रव्यगुण पर्यायका ज्ञान जिनागमके बिना नहीं होता । इसलिये जिनागम मोहके नाशमें एक बलवान् उपाय है । जिन भव्य जीवोंने पहलेही ज्ञान भूमिकामें गमन किया है वे कुन्योंमें अखंडित जिनप्रणीत आगमको प्रमाणकरके

जो मोहरागदोसे गिहणदि उवलद्ध जोण्हमुवदेशं ।

सो सव्वदुःखमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥ ८८ ॥

यो मोहरागद्वेषान्निहन्ति उपलभ्य जैनमुपदेशम् ।

स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेन ॥ ८८ ॥

इह हि द्राघीयसि सदाजवं जवपथे कथमप्यमुं समुपलभ्यापि जैनेश्वरं निशिततरवारिधारापथस्थानीयमुपदेशं य एव मोहरागद्वेषाणामुपरि दृढतरं निपातयति स एव निखिलदुःखपरिमोक्षं क्षिप्रमेवाप्नोति, नापरो व्यापारः करवालपाणिरिव । अत एव सर्वारम्भेण मोहक्षपणाय पुरुषकारे निपीदामि ॥ ८८ ॥

अथ स्वपरविवेकसिद्धेरेव मोहक्षपणं भवतीति स्वपरविभागसिद्धये प्रयतते;—

णाणप्पगमप्पाणं परं च दच्चत्तणाहि संवद्धं ।

जाणदि जदि णिच्छयदो जो सो मोहक्खयं कुणदि ॥ ८९ ॥

एव मोहरागद्वेषान्निहन्ति । किं कृत्वा । उपलभ्य प्राप्य । कम् । जैनोपदेशं, स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोति । केन । स्तोककालेनेति । तद्यथा—एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियादिदुर्लभपरम्परया जैनोपदेशं प्राप्य मोहरागद्वेषविलक्षणं निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूतिलक्षणं निश्चयसम्यक्तन्त्रज्ञानद्वयाविनाभूतं वीतरागचारित्रसंज्ञं निशितखड्गं य एव मोहरागद्वेषशत्रूनामुपरि दृढतरं पातयति स एव पारमार्थिकानाकुलत्वलक्षणमुखविलक्षणानां दुःखानां क्षयं करोतीत्यर्थः ॥ ८८ ॥ एवं द्रव्यगुणपर्यायविषये मूढत्वनिराकरणार्थं गाथापट्टेन तृतीयज्ञानकण्ठिका गता । अथ स्वपरात्मयोर्भेदज्ञानात् मोहक्षयो भवतीति प्रज्ञापयति;—णाणप्पगमप्पाणं परं च दच्चत्तणाहि संवद्धं जाणदि जदि ज्ञानात्मकमात्मानं जानाति यदि । कथंभूतं । स्वकीयशुद्ध-

उद्यमको दिखलाते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ जैनं उपदेशं ] वीतराग प्रणीत आत्मधर्मके उपदेशको [ उपलभ्य ] पाकर [ मोहरागद्वेषान् ] मोह, राग और द्वेष-भावोंको [ निहन्ति ] घात करता है [ सः ] वह [ अचिरेण कालेन ] बहुतथोड़े समयसे [ सर्वदुःखमोक्षं ] संपूर्ण दुःखोंसे भिन्न ( जुड़ी ) अवस्थाको [ प्राप्नोति ] पाता है । भावार्थ—इस अनादि संसारमें किसीएक प्रकारसे तलवारकी धारके समान जिन प्रणीत उपदेशको पाकर जो मोह राग द्वेषरूप शत्रुओंको मारता है वह जीव शीघ्रही सब दुःखोंसे मुक्त होकर ( छूटकर ) सुखी होता है । जैसे कि सुभट तरवारसे शत्रुओंको मारकर सुखसे बैठता है । इसलिये मैं सब तरह उद्यमी होकर मोहके नाश करनेको पुरुषार्थमें सावधान हुआ बैठा हूँ ॥ ८८ ॥ अब स्वपरभेदके विज्ञानकी सिद्धिसे ही मोहका नाश होता है इसलिये स्व तथा परके भेदकी सिद्धिकेलिये प्रयत्न करते हैं;—[ यः ] जो जीव [ यदि ] यदि [ निश्चयतः ] निश्चयसे [ ज्ञानात्मकं ] ज्ञानस्वरूप [ आत्मानं ] परमात्माको [ द्रव्यत्वेन ]

द्रव्याणि च गुणाश्च पर्यायाश्च अभिधेयभेदेऽप्यभिधानाभेदेन अर्थाः, तत्र गुणपर्यायान् प्रति गुणपर्यायैरर्यन्त इति वा अर्था द्रव्याणि, द्रव्याण्याश्रयत्वेन प्रतिद्रव्यैराश्रयभूतैरर्यन्त इति वा अर्था गुणाः, द्रव्याणि क्रमपरिणामेनेति द्रव्यैः क्रमपरिणामेनार्यत इति वा अर्थाः पर्यायाः । यथा हि सुवर्ण पीततादीन् गुणान् कुण्डलादींश्च पर्यायानियतिं तैरर्यमाणं वा अर्थो द्रव्यस्थानीयं, यथा च सुवर्णमाश्रयत्वेनार्यतस्तेनार्यभूतेनार्यमाणा वा अर्था पीततादयो गुणाः, यथा च सुवर्णं क्रमपरिणामेनेयतिं तेन क्रमपरिणामेनार्यमाणा वा अर्थाः कुण्डलादयः पर्यायाः । एवमन्यत्रापि । यथा चैतेषु सुवर्णपीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायेषु पीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां सुवर्णादपृथग्भावात्सुवर्णमेवात्मा तथा च तेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु गुणपर्यायाणां द्रव्यादपृथग्भावाद्द्रव्यमेवात्मा ॥८७॥  
अथैवं मोहक्षपणोपायभूतजिनेश्वरोपदेशलाभेपि पुरुषकारोर्थक्रियाकारीति पौरुषं व्यापारयति;—

द्रव्यमेव स्वभाव इत्युपदेशः, अथवा द्रव्यस्य कः स्वभाव ? इति पृष्टे गुणपर्यायाणामात्मा एव स्वभाव इति । अथ विस्तरः—अनन्तज्ञानसुखादिगुणान् तथैवामूर्तत्वातीन्द्रियत्वसिद्धत्वादिपर्यायांश्च इयति गच्छति परिणमत्याश्रयति येन कारणेन तस्मादर्थो भण्यते । किं । शुद्धात्मद्रव्यम् । तच्छुद्धात्मद्रव्यमाधारभूतमित्युरति गच्छन्ति परिणमन्त्याश्रयन्ति येन कारणेन ततोर्थो भण्यन्ते । के ते । ज्ञानत्वसिद्धत्वादिगुणपर्यायाः । ज्ञानत्वसिद्धत्वादिगुणपर्यायाणामात्मा स्वभावः । क इति पृष्टे शुद्धात्मद्रव्यमेव स्वभावः, अथवा शुद्धात्मद्रव्यस्य कः स्वभाव इति पृष्टे पूर्वोक्तगुणपर्याया एव । एवं शेषद्रव्यगुणपर्यायाणामप्यर्थसंज्ञा बोद्धव्येत्यर्थः ॥ ८७ ॥ अथ दुर्लभजिनोपदेशं लब्ध्वापि य एव मोहरागद्वेषान्निहन्ति स एवाशेषदुःखक्षयं प्राप्नोतीत्यावेदयति;—य

योंका नाम “अर्थ” है । जैसे—सोना अपने पीत आदि गुणोंको और कुंडलादि पर्यायों (अवस्थाओं)को प्राप्त होता है, अथवा गुणपर्यायोंसे सुवर्णपनेको प्राप्त होता है इसलिये सोनेको अर्थ कहते हैं । और जैसे आधारभूत सोनेको पीतत्वादि गुण प्राप्त होते हैं, अथवा सोनेसे प्राप्त होते हैं इसकारण पीततादि गुणोंको अर्थ कहते हैं । और जैसे क्रम परिणामसे कुंडलादि पर्याय सोनेको प्राप्त होते हैं अथवा सोनेसे प्राप्त होते हैं इसलिये कुंडलादि पर्यायोंको अर्थ कहते हैं । इसप्रकार द्रव्य, गुण, पर्यायोंका नाम अर्थ है । तथा जैसे सुवर्ण, पीतत्वादि गुण और कुंडलादि पर्यायोंमें पीततादि गुण कुंडलादि पर्यायोंको सोनेसे जुदापना नहीं है, इसलिये सुवर्ण अपने गुणपर्यायोंका सर्वस्व है आधार है । उसीप्रकार द्रव्य गुणपर्यायोंमें गुणपर्यायोंको द्रव्यसे पृथक्पना नहीं है इसलिये द्रव्य अपने गुणपर्यायोंका सर्वस्व है आधार है अर्थात् द्रव्यका गुणपर्यायोंसे अमेद है ॥ ८७ ॥ आगे यद्यपि मोहके नाश करनेका उपाय जिनेश्वरका उपदेश है, परंतु उसके लाभमेंभी पुरुषार्थ करना कार्यकारी है इसलिये

यत्प्रसिद्धये च “धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपभोगज्जुदो पावदि णिच्चाहसुहं” इति निर्वाणसुखसाधनसुद्धोपयोगोऽधिकर्तुमारब्धः, शुभाशुभोपयोगौ च विरोधिनौ निर्व्वस्तौ, शुद्धोपयोगस्वरूपं चोपवर्णितं, तत्प्रसादजौ चात्मनो ज्ञानानन्दौ सहजौ समुद्योतयता संवेदनस्वरूपं सुखस्वरूपं च प्रपञ्चितम् ।

तदधुना कथं कथमपि शुद्धोपयोगप्रसादेन प्रसाध्य परनिस्पृहतामात्मदृष्टां पारमेश्वरी-प्रवृत्तिमभ्युपगतः कृतकृत्यतामवाप्य नितान्तमनाकुलो भूत्वा प्रलीनभेदवासनोन्मेषः स्वयं साक्षाद्गर्म एवास्मीत्यवतिष्ठते;—

**जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्मि ।**

**अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मोति विसेसिदो समणो ॥ ९२ ॥**

मोपि न संभवतीति सूत्रार्थः ॥ ९१ ॥ अथ “उवसंपयामि सम्मं” इत्यादि नमस्कारगाथायां यत्प्रतिज्ञातं, तदनन्तरं “चारित्तं खलु धम्मो” इत्यादिसूत्रेण चारित्र्यस्य धर्मत्वं व्यवस्थापितं, अथ “परिणमदि जेण दब्बं” इत्यादिसूत्रेणात्मनो धर्मत्वं भणितमित्यादि । तत्सर्वं शुद्धोपयोगप्रसादात्प्रसाध्येदानीं निश्चयरत्नत्रयपरिणत आत्मैव धर्म इत्यवतिष्ठते । अथवा द्वितीयपातनिका—सम्यक्तत्वाभावे श्रमणो न भवति तस्मात् श्रमणाद्गर्मोपि न भवति, तर्हि कथं श्रमणो भवति? इति पृष्टे प्रत्युत्तरं प्रयच्छन् ज्ञानाधिकारमुपसंहरति;—**जो णिहदमोहदिट्ठी** तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणव्यवहारसम्यक्त्वोत्पन्नेन निजशुद्धात्मरुचिरूपेण निश्चयसम्यक्त्वेन परिणतत्वान्निहतमोहदृष्टिर्विध्वंसितदर्शनमोहो यः । पुनश्च किं रूपः । **आगमकुसलो** निर्दोषिपरमात्म-

वह यति नहीं है । सम्यक्त्व भावके विना द्रव्यलिंग अवस्थाको धारण करके व्यर्थही खेदखिन्न होता है, क्योंकि इस अवस्थासे आत्मीक धर्मकी संभावना नहीं है । जैसे धूलका धोनेवाला न्यारिया यदि सोनेकी कणिकाओंको पहचाननेवाला नहीं होवे तो कितनाभी कष्ट क्यों न करे परंतु उसे सुवर्णकी प्राप्ति नहीं होती; इसीप्रकार संयमादि क्रियामें कितनाही खेद क्यों न करे परंतु लक्षणोंसे स्वपरभेदके विना वीतराग आत्मतत्त्वकी प्राप्तिरूपधर्म इस जीवके उत्पन्न नहीं होता ॥ ९१ ॥ पूर्वही आचार्यने “उवसंपयामि सम्मं” इत्यादि गाथासे साम्यभाव मोक्षका कारण अंगीकार किया था, और “चारित्तं खलु धम्मो” आदि गाथासे साम्यभावही शुद्धोपयोगरूप धर्म है, ऐसा कहकर “परिणमदि जेण दब्बं” इस गाथासे साम्यभावसे आत्माकी एकता बतलाई थी । इसके बाद साम्यधर्मकी सिद्धि होनेकेलिये “धम्मेण परिणदप्पा” इससे मोक्षसुखका कारण शुद्धोपयोगके अधिकारका आरंभ किया था । उसमें शुद्धोपयोग भलीभांति दिखलाया । और उसके प्रतिपक्षी संसारके कारण शुभाशुभोपयोगको मूलसे नाश करके शुद्धोपयोगके प्रसादसे उत्पन्न हुए अतीन्द्रियज्ञान सुखोंका स्वरूप कहा ॥ अब मैं शुद्धोपयोगके प्रसादसे परभावांसे भिन्न, आत्मीक भावोंकर पूर्ण उत्कृष्ट परमात्मदशाको प्राप्त, कृतकृत्य और अत्यंत आकुलतारहित होकर संसारभेदवासनासे मुक्त आपमें साक्षात् धर्मस्वरूप होकर स्थित होता हूँ;—[ यः ] जो [ निहतमोहदृष्टिः ] दर्शनमोहका घात करनेवाला अर्थात् सम्यग्दृष्टि है, तथा [ आगमकुशलः ] त्रिन प्रणीत सि-

अथ जिनोदितार्थश्रद्धानमन्तरेण धर्मलाभो न भवतीति प्रतर्कयति;—

सत्तासंबन्धेदे सविसेसे जो हि णेव सामण्णे ।

सद्दहदि ण सो सवणो तत्तो धम्मो ण संभवदि ॥ ९१ ॥

सत्तासंबद्धानेतान् सविशेषान् यो हि नैव श्रामण्ये ।

श्रद्धधाति न स श्रमणः ततो धर्मो न संभवति ॥ ९१ ॥

यो हि नामैतानि सादृश्यास्तित्वेन सामान्यमनुव्रजन्त्यपि स्वरूपास्तित्वेनाश्लिष्टविशेषाणि द्रव्याणि स्वपरावच्छेदेनापरिच्छिन्दन्नश्रद्धधानो वा एवमेव श्रामण्येनात्मानं दमयति स खलु न नाम श्रमणः । यतस्ततोपरिच्छिन्नरेणुकनककणिकाविशेषाद्बुद्धिधावकात्कनकलाभ इव निरुपरागात्मतत्त्वोपलम्भलक्षणो धर्मोपलम्भो न संभूतिमनुभवति ॥ ९१ ॥ अथ “उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती” इति प्रतिज्ञाय “चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिदिट्ठो” इति साम्यस्य धर्मं निश्चित्य “परिणमदि जेण दच्चं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं तम्हा” इति यदात्मनो धर्मत्वमासूत्रयितुमुपक्रान्तं ।

सह मोहो नास्तीत्यभिप्रायः ॥ ९० ॥ एवं स्वपरपरिज्ञानविषये मूढत्वनिरासार्थं गाथाद्वयेन चतुर्थज्ञानकण्ठिका गता । इति पञ्चविंशतिगाथाभिर्ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयाभिधानो द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः । अथ निर्दोषिपरमात्मप्रणीतपदार्थश्रद्धानमन्तरेण श्रमणो न भवति, तस्माच्छुद्धोपयोगलक्षणधर्मोपि न संभवतीति निश्चिनोति;—सत्तासंबन्धे महासत्तासंबन्धेन सहितान् एदे एतान् पूर्वोक्तशुद्धजीवादपदार्थान् । पुनरपि किं विशिष्टान् । सविसेसे विशेषसत्तावान्तरसत्तास्वकीयस्वरूपसत्ता तथा सहितान् जो हि णेव सामण्णे सद्दहदि यः कर्ता द्रव्यश्रामण्ये स्थितोपि न श्रद्धत्ते हि स्फुटं ण सो समणो निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्पत्तवपूर्वकपरमसामायिकसंयमलक्षणश्रामण्याभावात्स श्रमणो न भवति । इत्थंभूतभावश्रामण्याभावात् तत्तो धम्मो ण संभवदि तस्मात्पूर्वोक्तद्रव्यश्रमणात्सकाशान्निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिलक्षणध-

अव कहते हैं कि वीतरागदेव कथित पदार्थोंकी श्रद्धाके विना इस जीवको आत्मधर्मका लाभ नहीं होता;—[ यः ] जो जीव [ हि ] निश्चयसे [ श्रामण्ये ] यति अवस्थामें [ सत्तासंबद्धान् ] सत्ता भावसे सामान्य अस्तित्वने सहित और [ सविशेषान् ] अपने २ विशेष अस्तित्वसहित [ एतान् ] इन छह द्रव्योंको [ नैव श्रद्धधाति ] नहीं श्रद्धान करता [ सः ] वह जीव [ श्रमणः ] मुनि [ न ] नहीं है । और [ ततः ] उस द्रव्यलिङ्गी ( बाह्य भेपधारी ) मुनिसे [ धर्मः ] शुद्धोपयोगरूप आत्मीक धर्म [ न संभवति ] नहीं होसकता । भावार्थ—अस्तित्व दो प्रकारका है, एक सामान्य अस्तित्व दूसरा विशेष अस्तित्व । जैसे वृक्ष जातिसे वृक्ष एक हैं आम—निम्बादि भेदोंसे पृथक् २ हैं, इसीप्रकार द्रव्य सामान्य अस्तित्वसे एक है, विशेष अस्तित्वसे अपने जुदे २ स्वरूपसहित है । इन सामान्य विशेषभावसंयुक्त द्रव्योंको जो जीव मुनि अवस्था धारण करके नहीं जानता है और स्वपरभेद सहित श्रद्धान नहीं करता है

ज्ञानतत्त्वं यथावत्तिसिद्ध्यर्थं प्रशमविषयं ज्ञेयतत्त्वं बुभुक्षुः । सर्वानर्थान् कलयति गुण-  
द्रव्यपर्याययुक्त्या प्रादुर्भूतिर्न भवति यथा जातु मोहाङ्कुरस्य ॥ २ ॥”

इति प्रवचनसारवृत्तौ तत्त्वदीपिकायां श्रीमदमृतचन्द्रस्मरिविरचितायां ज्ञानत-  
त्त्वप्रज्ञापनो नाम प्रथमः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ १ ॥

दत्ते पुण्यं गृह्णाति इत्यर्थः ॥ १ ॥ अथ तेन पुण्येन भवान्तरे किं फलं भवतीति प्रतिपादयति;—

तेण णरा व तिरिच्छा देविं वा माणुसिं गदिं पय्या ।

विहविस्सरियेहिं सया संपुण्णमणोरहा होंति ॥ २ ॥ (१०१)

तेण णरा व तिरिच्छा तेन पूर्वोक्तपुण्येनात्र वर्तमानभवे नरा वा तिर्यञ्चो वा देविं वा  
माणुसिं गदिं पय्या भवान्तरे देवीं वा मानुसीं वा गतिं प्राप्य विहविस्सरियेहिं सया संपुण्ण-  
मणोरहा होंति राजाधिराजरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रादिपरिपूर्णाविभूतिर्विभवो भण्यते,  
आजाफलमैश्वर्यं भण्यते, ताभ्यां विभवैश्वर्याभ्यां संपूर्णमनोरथा भवन्तीति । तदेव पुण्यं भोगा-  
दिनिदानरहितत्वेन यदि सम्यक्त्वपूर्वकं भवति तर्हि तेन परम्परया मोक्षं लभत इति भावार्थः ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पूर्वोक्तप्रकारेण “एस सुरासुरमणुसिदवंदियं”  
इतीमां गाथामादिं कृत्वा द्वासप्ततिगाथाभिः शुद्धोपयोगाधिकारः, तदनन्तरं “देवदजदिगुरु-  
जासु” इत्यादि पञ्चविंशतिगाथाभिर्ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयाभिधानो द्वितीयोऽधिकारः, ततश्च “स-  
त्तासंवेधेदे” इत्यादि सम्यक्त्वकथनरूपेण प्रथमा गाथा, रत्नत्रयाधारपुरस्य धर्मः संभवतीति  
“जो णिहदमोहदिद्वी” इत्यादि द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयम्, तस्य निश्चयधर्मसंज्ञतपोधनस्य  
योसौ भक्तिं करोति तत्फलकथनेन “जो तं दिहा” इत्यादि गाथाद्वयम् । इत्यधिकार-  
द्वयेन पृथग्भूतगाथाचतुष्टयसहितेनैकोत्तरशतगाथाभिर्ज्ञानतत्त्वप्रतिपादक नामा प्रथमो महा-  
धिकारः समाप्तः ॥ १ ॥

पदगर्भित जिनप्रणीत शब्द ब्रह्म जयवंत होओ ! जिसके प्रसादसे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति  
हुई और उस आत्मतत्त्वकी प्राप्तिसे अनादिकालकी मोहरूपी गांठि छूटकर परम  
वीतरागचारित्र प्राप्त हुआ, इसीलिये शुद्धोपयोग संयमभी जयवंत होवै ! जिसके प्रसादसे  
यह आत्मा आप धर्मरूप हुआ ॥

इति श्रीपांडे हेमराजकृत श्रीप्रवचनसार सिद्धान्तकी बालावबोध भाषाटीकामें ज्ञान-  
नतत्त्वका अधिकार पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

१ इस टीकामें १०१ गाथाकी रचना है और दूसरी श्रीप्रभाचन्द्रजीकृत मरोजभास्करटीकामें १०१  
टीका वर्णन है । श्रीमदमृतचंद्राचार्यने ९ गाथाओंका व्याख्यान नहीं किया, न मालूम क्या कारण है । बुद्धि-  
मान इस बातका विचार कर लें । टीका तरह आगे भी कुछ गाथा ऐसे हैं कि लेखककी तरह टीकाकारने  
छोड़दिये है ।

यो निहतमोहदृष्टिरागमकुशलो विरागचरिते ।

अभ्युत्थितो महात्मा धर्म इति विशेषितः श्रमणः ॥ ९२ ॥

यदयं स्वयमात्मा धर्मो भवति स खलु मनोरथ एव, तस्य त्वेका बहिर्मोहदृष्टिरेव विह्वली । सा चागमकौशलेनात्मज्ञानेन च निहता, नात्र मम पुनर्भावमापत्स्यते । ततो वीतरागचारित्रसूत्रितावतारो ममायमात्मा स्वयं धर्मो भूत्वा निरस्तसमस्तप्रत्यूहतया नित्यमेव निष्कम्प एवावतिष्ठते । अलमतिविस्तरेण ॥ ९२ ॥ स्वस्ति स्याद्वादमुद्रिताय जैनेन्द्राय शब्दब्रह्मणे । स्वस्ति तन्मूलायात्मतत्त्वोपलम्भाय च, यत्प्रसादादुद्भवितो जगित्त्वेवासंसारबद्धो मोहग्रन्थिः । स्वस्ति च परमवीतरागचारित्रात्मने शुद्धोपयोगाय, यत्प्रसादादयमात्मा स्वयमेव धर्मो भूतः ॥ “आत्मा धर्मः स्वयमिति भवन् प्राप्य शुद्धोपयोगं नित्यानन्दप्रसरसरसं ज्ञानतत्त्वे निलीय । प्राप्स्यत्युच्चैरविचलतया निःप्रकम्पप्रकाशां स्फूर्ज्ज्ज्योतिः सहजविलसद्रत्नदीपस्य लक्ष्मीम् ॥ १ ॥” “निश्चित्यात्मन्यधिकृतमिति

प्रणीतपरमागमाभ्यासेन निरुपाधिस्वसंवेदनज्ञानकुशलत्वादागमकुशल आगमप्रवीणः । पुनश्च किं रूपः । विरागचरियग्निह अम्भुद्विदो व्रतसमितिगुप्त्यादिवहिरङ्गचारित्रानुष्ठानवशेन स्वशुद्धात्मनि निश्चलपरिणतिरूपवीतरागचारित्रपरिणतत्वात् परमवीतरागचारित्रे सम्यगभ्युत्थितः उच्यते । पुनरपि कथंभूतः । महत्त्वा मोक्षलक्षणमहार्थसाधकत्वेन महात्मा धम्मोत्ति विसिद्धो समणो जीवितमरणलाभालाभादिसंमताभावनापरिणतात्मा स श्रमणएवाभेदनयेन धर्मइति विशेषितो मोहक्षोभविहीनात्मपरिणामरूपो निश्चयधर्मो भणित इत्यर्थः ॥ ९२ ॥ अथैवंभूतनिश्चयरत्नत्रयपरिणतमहातपोधनस्य योसौ भक्तिं करोति तस्य फलं दर्शयति;—

जो तं दिद्धा तुद्धो अब्भुद्वित्ता करेदि सक्कारं ।

वंदणणमंसणादिहिं तत्तो सो धम्ममादियदि ॥ १ ॥

जो तं दिद्धा तुद्धो यो भण्यवरपुण्डरीको निरुपरगशुद्धात्मोपलम्भलक्षणनिश्चयधर्मपरिणतं पूर्वसूत्रोक्तं मुनीश्वरं दृष्ट्वा तुष्टो निर्भरगुणानुरागेण संतुष्टः सन् । किं करोति । अब्भुद्वित्ता करेदि सक्कारं अभ्युत्थानं कृत्वा मोक्षसाधकसम्यक्त्वादिगुणानां सत्कारं प्रशंसां करोति वंदणणमंसणादिहिं तत्तो सो धम्ममादियदि “तवसिद्धे जयसिद्धे” इत्यादि वंदना भण्यते, नमोस्त्विति नमस्कारो भण्यते, तत्प्रमृतिभक्तिविशेषैः तस्मात्तवरात्स भव्यः पुण्यमा-

द्धान्तमें प्रवीण अर्थात् सम्यग्ज्ञानी है और [ विरागचारित्रे ] रागभावरहित चारित्र्यमें [ अभ्युत्थितः ] सावधान है तथा [ महात्मा ] श्रेष्ठ मोक्षपदार्थके साधनेमें प्रधान है । [ स श्रमणः ] वह मुनीश्वर [ धर्म इति ] धर्म है ऐसा [ विशेषितः ] विशेष लक्षणोंसे कहा गया है । भावार्थ—यह आत्मा वीतरागभावरूप परिणमन करके साक्षान् आपही धर्मरूप है । इस आत्माकी घातक जो एक मोहदृष्टि है वह तो आगमकुशलता और आत्मज्ञानसे विनाशको प्राप्त हुई है इसकारण मेरे फिर उत्पन्न होनेवाली नहीं है । इसलिये वीतरागचारित्रसे यह मेरा आत्मा धर्मरूप होकर सब शत्रुओंमें रहित मदाकालदी निश्चल स्थित है । अधिक कहनेमें क्या “स्वात्”

अर्थो खलु द्रव्यमओ द्रव्याणि गुणप्पगाणि भणिदाणि ।  
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया ॥ १ ॥

अर्थः खलु द्रव्यमयो द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि ।

तैस्तु पुनः पर्यायाः पर्ययमूढा हि परसमयाः ॥ १ ॥

इह हि किल यः कश्चन परिच्छिद्यमानः पदार्थः स सर्व एव विस्तारायतसामान्यसमुदायात्मना द्रव्येणाभिनिर्वृत्तत्वाद्द्रव्यमयः । द्रव्याणि तु पुनरेकाश्रयविस्तारविशेषात्मकैरभिनिर्वृत्तत्वाद्गुणात्मकानि । पर्यायास्तु पुनरायतविशेषात्मका उक्तलक्षणेर्द्रव्यैरपि गुणैरप्यभिनिर्वृत्तत्वाद्द्रव्यात्मका अपि गुणात्मका अपि । तत्रानेकद्रव्यात्मकैक्यप्रतिपत्तिनिवन्धनो द्रव्यपर्यायः । स द्विविधः, समानजातीयोऽसमानजातीयश्च । तत्र समानजातीयो नाम यथा अनेकपुद्गलात्मको द्रव्यणुकह्यणुक इत्यादि, असमानजातीयो नाम यथा जीवपुद्गलात्मको देवो मनुष्य इत्यादि । गुणद्वारेणायतानैक्यप्रतिपत्तिनिवन्धनो गुणपर्यायः । सोपि द्विविधः स्वभावपर्यायो विभावपर्यायश्च । तत्र स्वभावपर्यायो नाम समस्तद्रव्याणामात्मीयात्मीयागुरूलघुगुणद्वारेण प्रतिसमयसमुदीयमानपदस्थानपतितवृद्धिहानिनात्त्वानुभूतिः, विभावपर्यायो नाम रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिः । अथेदं दृष्टान्तेन दृढयति—यथैव हि सर्व एव पटोऽवस्थायिना विस्तारसामान्यसमुदायेनाभिधावतायतसामान्यसमुदायेन चाभिनिर्वर्त्य-

शङ्काघट्टदोषरहितश्च यः परमार्थतोऽर्थावबोधो यस्मात्सम्यक्त्वात्तत् परमार्थविनिश्चयाधिगमं । अथवा परमार्थविनिश्चयोऽनेकान्तात्मकपदार्थसमूहस्तस्याधिगमो यस्मादिति ( १ ) अथ पदार्थस्य द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं निरूपयति,—अर्थो खलु द्रव्यमओ अर्थो ज्ञानविषयभूतः पदार्थः खलु स्फुटं द्रव्यमयो भवति । कस्मात् । तिर्यक्सामान्योद्धृतासामान्यलक्षणेन द्रव्येण निष्पन्नत्वात् ।

कहते हैं;—[ खलु ] निश्चयसे [ अर्थः ] ज्ञेयपदार्थ [ द्रव्यमयः ] सामान्यस्वरूप वस्तुमय है [ तु ] तथा [ द्रव्याणि ] समस्त द्रव्य [ गुणात्मकानि ] अनन्तगुणस्वरूप [ भणितानि ] कहे हैं । [ पुनः ] और [ तैः ] उन द्रव्यगुणोंके परिणमन करनेसे [ पर्यायाः ] पर्याय हैं अर्थात् द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय ये दो भेदसहित पर्याय हैं । और [ पर्ययमूढा ] अशुद्ध पर्यायोंमें मूढ अर्थात् आत्मबुद्धिसे पर्यायकोही द्रव्य माननेवाले अज्ञानी [ हि ] निश्चयकर [ परसमयाः ] मिथ्यादृष्टि हैं । भावार्थ—जितने ज्ञेयपदार्थ हैं वे समस्त गुण पर्यायसहित हैं, इसलिये द्रव्य एक आधारभूत अनन्तगुणस्वरूप है । गुणका नाम विस्तार है और पर्यायका नाम आयत है । विस्तार चौड़ाईको कहते हैं और आयत लम्बाईको कहते हैं । गुण चौड़ाईरूप अविनाशी सदा सहभूत ( साथ रहनेवाले ) हैं और पर्याय लम्बाईरूप हैं



## अथ ज्ञेयतत्त्वाधिकारः ॥ २ ॥

अथ ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनं, तत्र पदार्थस्य सम्यग्द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपमुपवर्णयति;—

इतः ऊर्द्धं “सत्तासंबंधेदे” इत्यादि गाथासूत्रेण पूर्वं संक्षेपेण यद्वाख्यातं सम्यग्दर्शनं तस्येदानीं विषयभूतपदार्थव्याख्यानद्वारेण त्रयोदशाधिकशतप्रमितगाथापर्यन्तं विस्तरव्याख्यानं करोति । अथवा द्वितीयपातनिका—पूर्वं यद्वाख्यातं ज्ञानं तस्य ज्ञेयभूतपदार्थान् कथयति । तत्र त्रयोदशाधिकशतगाथासु मध्ये प्रथमस्तावत् “तम्मा तस्स णमाइं” इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पञ्चत्रिंशद्गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं, तदनन्तरं “दब्बं जीवमजीवं” इत्याद्ये-  
कोनविंशतिगाथापर्यन्तं विशेषज्ञेयव्याख्यानं, अधानन्तरं “सपदेसेहिं समग्गो लोमो” इत्यादि गाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना, ततश्च “अत्थित्तिणिच्छिदस्स हि” इत्याद्येकपञ्चाशद्गाथा-  
पर्यन्तं विशेषभेदभावना चेति, द्वितीयमहाधिकारे समुदायपातनिका । अथेदानीं सामान्यज्ञेय-  
व्याख्यानमध्ये प्रथमा नमस्कारगाथा, द्वितीया द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानगाथा, तृतीया स्वस-  
मयपरसमयनिरूपणगाथा, चतुर्थी द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयसूचनगाथा चेति पीठिकाभिधाने  
प्रथमस्थले स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयं । तदनन्तरं “सम्भावो हि सहावो” इत्यादिगाथाचतुष्टयपर्यन्तं  
सत्तालक्षणव्याख्यानमुख्यत्वं, तदनन्तरं “ण भवो भंगविहीणो” इत्यादिगाथात्रयपर्यन्तमुत्पाद-  
व्ययध्रौव्यलक्षणकथनमुख्यता, ततश्च “पाडुम्भवदि य अण्णो” इत्यादि गाथाद्वयेन द्रव्यप-  
र्यायनिरूपणमुख्यता । अधानन्तरं “ण ह्वदि जदि सदब्बं” इत्यादि गाथाचतुष्टयेन सत्ता-  
द्रव्ययोरभेदविषये युक्तिं कथयति, तदनन्तरं “जो खल्लु दब्बसहाओ” इत्यादि सत्ताद्रव्ययो-  
र्गुणगुणिकथनेन प्रथमगाथा, द्रव्येण सह गुणपर्याययोरभेदमुख्यत्वेन “णत्थि गुणोत्ति य  
कोई” इत्यादि द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयं, तदनन्तरं द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन सदुत्पादो  
भवति, पर्यायार्थिकनयेनासदित्यादिकथनरूपेण “एवंविहं” इतिप्रभृति गाथाचतुष्टयं, ततश्च  
“अत्थित्ति य” इत्याद्येकसूत्रेण नयसत्तभङ्गीव्याख्यानमिति समुदायेन चतुर्विंशतिगाथाभिरष्टभिः  
स्थलैर्द्रव्यनिर्णयं करोति । तद्यथा—अथ सम्यक्त्वं कथयति;—

तम्हा तस्स णमाइं किच्चा णिच्चंपि तं मणो होज्ज ।

वोच्छामि संगहादो परमट्ठविणिच्छयाधिगमं ॥ १ ॥

तम्मा तस्स णमाइं किच्चा यस्मात्सम्यक्त्वं विना श्रमणो न भवति तस्मात्कारणात्तस्य  
सम्यक्चारित्र्युक्तस्य पूर्वोक्ततपोधनस्य नमस्यां नमस्त्रिकां नमस्कारं कृत्वा णिच्चंपि तम्मणो  
होज्ज नित्यमपि तद्गतमना भूत्वा वोच्छामि वक्ष्याम्यहं कर्ता संगहादो संप्रहासंक्षेपात्सं-  
क्षेपात्सकाशात् । किं । परमट्ठविणिच्छयाधिगमं परमार्थविनिश्चयाधिगमं सम्यक्त्वमिति  
परमार्थविनिश्चयाधिगमशब्देन सम्यक्त्वं कथं भण्यत इति चेत्—परमार्थः परमार्थः शुद्धबुद्धैक-  
स्वभावः परमात्मा, परमार्थस्य विशेषेण संशयादिरहितत्वेन निश्चयः परमार्थनिश्चयरूपोऽधिगमः

आगे ज्ञेयतत्त्वका कथन करते हुए उसमें भी पहले पदार्थोंको द्रव्यगुणपर्यायस्वरूप

द्रव्येषु सूक्ष्मात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण प्रति समयसमुदीर्यमाणपटस्थानपतितवृद्धिहानिनाना-  
त्वानुभूतिः गुणात्मकः स्वभावपर्यायः । यथैव च पटे रूपादीनां स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमा-  
नपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिर्गुणात्मको विभावपर्यायः,  
तथैव च समस्तेष्वपि द्रव्येषु रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तराव-  
स्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिर्गुणात्मको विभावपर्यायः । इयं हि  
सर्वपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायस्वभावप्रकाशिका पारमेश्वरी व्यवस्था साधीयसी, न पुन-  
रितरा; यतो हि वहवोपि पर्यायमात्रमेवावलम्ब्य तत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणं मोहमुपगच्छन्तः  
परसमया भवन्ति ॥ १ ॥

गौरयं गौरयमिति गोजातिप्रतीतिस्तिर्यक्सामान्यं । यथैव चैकस्मिन् पुरुषे बालकुमाराद्यवस्थामु-  
स एवायं देवदत्त इतिप्रत्यय ऊर्ध्वतासामान्यम् । दब्बाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि  
द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि, अन्वविनो गुणा अथवा सहभुवो गुणा इति गुणलक्षणं ।  
यथा अनन्तज्ञानसुखादिविशेषगुणेभ्यस्तथैत्रागुरुलघुकादिसामान्यगुणेभ्यश्चाभिन्नत्वाद्गुणात्मकं भ-  
वति सिद्धजीवद्रव्यं, तथैव स्वकीयविशेषसामान्यगुणेभ्यः सकाशादभिन्नत्वात् सर्वद्रव्याणि गुणा-  
त्मकानि भवन्ति । तेहिं पुणो पज्जाया तैः पूर्वोक्तलक्षणैर्द्रव्यगुणैश्च पर्याया भवन्ति, व्यति-  
रेकिणः पर्याया, अथवा क्रमभुवः पर्याया इति पर्यायलक्षणं । यथैकस्मिन् मुक्तात्मद्रव्ये  
किञ्चिद्गुणचरमशरीराकारगतिमार्गणविलक्षणसिद्धगतिपर्यायः तथागुरुलघुकगुणपट्टुद्धिहानिरूपाः  
साधारणस्वभावगुणपर्यायाश्च, तथा सर्वद्रव्येषु स्वभावद्रव्यपर्यायाः स्वजातीयविभावद्रव्यपर्यायाश्च,  
तथैव स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च “जेसिं अत्थसहाओ” इत्यादिगाथायां, तथैव “भावा जीवा-  
दीया” इत्यादिगाथायां च पञ्चास्तिकाये पूर्वं कथितक्रमेण यथासंभवं ज्ञातव्याः । पज्जयमूढा  
हि परसमया यस्मादित्थंभूतद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानमूढा अथवा नारकादिपर्यायरूपो न भ-

मानजातीय द्रव्यपर्याय होता है उसीप्रकार जीव पुद्गल मिलकर देव मनुष्यादि असमा-  
नजातीय द्रव्यपर्याय होते हैं । और जैसे किसी वस्त्रमें स्थूल अपने अगुरुलघुगुणद्वारा  
फालके क्रमसे नाना प्रकारके परिणमन होनेसे एक अनेकता लिये शुक्लादि गुणोंका  
गुणस्वरूप स्वभावपर्याय है, उसीप्रकार सभी द्रव्योंमें सूक्ष्म अपने २ अगुरुलघुगुणोंसे  
समय २ पट्टगुणी हानि वृद्धिसे नाना स्वभावगुणपर्याय हैं । और जैसे वस्त्रमें अन्य-  
द्रव्यके संयोगसे वर्णादि गुणोंकी कृष्णपीततादि भेदोंसे पूर्व उत्तर अवस्थामें हीन अ-  
धिकरूप विभावगुणपर्याय होते हैं, उसीप्रकार पुद्गलमें वर्णादि गुणोंकी तथा आत्मामें  
ज्ञानादिगुणोंकी परसंयोगसे पूर्व उत्तर (पहली-आगेकी) अवस्थामें हीन अधिक विभा-  
वगुणपर्याय हैं । इसप्रकार संपूर्ण द्रव्योंके गुणपर्याय भगवानकी वाणी ही दिखलानेमें  
समर्थ है, अन्यमती नहीं दिखासके । क्योंकि वे सब एक नयका ही अवलंबन लेते हैं  
और एक नयमे सब द्रव्य गुण पर्यायके स्वरूप नहीं कहे जासके । ऐसे अनेक जीव

मानस्तन्मय एव, तथैव हि सर्व एव पदार्थोऽवस्थायिना विस्तारसामान्यसमुदायेनाभिधावतायतसामान्यसमुदायेन च द्रव्यनाम्नाभिनिर्वर्त्यमानो द्रव्यमय एव । यथैव च पटेऽवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायोऽभिधावन्नायतसामान्यसमुदायो वा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणैः पृथगनुपलम्भाद्गुणात्मक एव, तथैव च पदार्थेष्ववस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायोऽभिधावन्नायतसामान्यसमुदायो वा द्रव्यनामा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणैः पृथगनुपलम्भाद्गुणात्मक एव । यथैव चानेकपटात्मको द्विपटिका त्रिपटिकेति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः, तथैव चानेकपुद्गलात्मको द्व्यणुकद्व्यणुक इति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः । यथैव चानेककौशियककार्पासमयपटात्मको द्विपटिकात्रिपटिकेत्यसमानजातीयो द्रव्यपर्यायः, तथैव चानेकजीवपुद्गलात्मको देवो मनुष्य इत्यसमानजातीयो द्रव्यपर्यायः । यथैव च क्वचित्पटे स्थूलात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण कालक्रमप्रवृत्तेन नानाविधेन परिणमनान्नात्प्रतिपत्तिर्गुणात्मकः स्वभावपर्यायः, तथैव च समस्तेष्वपि

तिर्यक्सामान्योद्धृतासामान्यलक्षणं कथ्यते—एककाले नानाव्यक्तिगतोन्वयस्तिर्यक्सामान्यं भण्यते, तत्र दृष्टान्तो यथा—नानासिद्धजीवेषु सिद्धोयं सिद्धोऽयमित्यनुगताकारः सिद्धजातिप्रत्ययः । नानाकालेष्वेकव्यक्तिगतोन्वय ऊर्ध्वतासामान्यं भण्यते । तत्र दृष्टान्तः यथा—य एव केवलज्ञानोत्पत्तिलक्षणे मुक्तात्मा द्वितीयादिलक्षणेऽपि स एवेतिप्रतीतिः, अथवा नाना गोशरीरेषु

जिससे कि अतीत अनागत वर्तमान कालमें क्रमवर्ती हैं । पर्यायके दो भेद हैं—एक द्रव्यपर्याय और दूसरे गुणपर्याय । इनमेंसे अशुद्ध द्रव्यपर्यायका लक्षण कहते हैं—अनेक द्रव्य मिलकर जो एक पर्यायका होता है सो द्रव्यपर्याय है । यह द्रव्यपर्याय दो प्रकार है, एक समान जातीय, दूसरा असमान जातीय । समान जातीय जैसे—अनेक जातिके पुद्गलरूप द्व्यणुक त्रिअणुक आदि, और असमान जातीय जैसे—जीव पुद्गल मिलकर देव मनुष्यादि पर्याय, और भिन्न जातीय द्रव्यके संयोगसे गुणकी परिणतिरूप गुणपर्याय होती है सो भी दो प्रकार है, एक स्वभाव गुणपर्याय, दूसरी विभाव गुणपर्याय । स्वभाव गुणपर्याय वह है जो समस्त द्रव्य अपने २ अगुरुलघुगुणोंसे समय २ पट्गुणी हानि वृद्धिरूप परिणमन करे । और विभावगुण पर्याय वह है जो वर्णादिगुण पुद्गलस्कंधोंमें ज्ञानादिगुण जीवमें पुद्गलके संयोगके पहले आगामी दृष्टामें हीनाधिक होकर परिणमन करे । आगे इसीको उदाहरणसे दृष्ट करते हैं—जैसे वस्त्र शुद्धादिगुणोंसे अपनी परिणतिरूप पर्यायसे सिद्ध है, इसलिये गुणपर्यायमय वस्त्र है । इसीप्रकार द्रव्य गुणपर्यायमय है । और जैसे वस्त्र शुद्धादिगुणपर्यायोंसे जुदा नहीं है, इसीप्रकार द्रव्य गुणपर्यायोंसे जुदा नहीं है । जैसे वस्त्रके दो तीन पाट मिलकर समानजातीय पर्याय होता है, उसीप्रकार पुद्गलके द्व्यणुक त्र्यणुकादि अनेक समानजातीय पर्याय होते हैं । जैसे वस्त्रके रेशम कपासके दो तीन पाट मिलके अस-

ये तु पुनरसंकीर्णद्रव्यगुणपर्यायसुस्थितं भगवन्तमात्मनः स्वभावं सकलविद्यानामेक-  
मूलमुपगम्य यथोदितात्मस्वभावसंभावनसमर्थतया पर्यायमात्राशक्तिमत्यस्यात्मनः स्वभाव  
एव स्थितिमासूत्रयन्ति, ते खलु सहजविजृम्भितानेकान्तदृष्टिप्रक्षपितसमस्तैकान्तदृष्टि-  
परिग्रहग्रहा मनुष्यादिगतिषु तद्विग्रहेषु चाविहिताहङ्कारममकारा अनेकापवरकसंचारित-  
रत्नप्रदीपमिवैकरूपमेवात्मानमुपलभमाना अविचलितचेतनाविलासमात्रमात्मव्यवहारमुररी-  
कृत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहारमनाश्रयन्तो विश्रान्तरागद्वेषोन्मेषतया  
परममौदासीन्यमवलम्ब्यमाना निरस्तसमस्तपरद्रव्यसंगतितया स्वद्रव्येणैव केवलेन संगत-  
त्वात्स्वसमया जायन्ते । अतः स्वसमय एवात्मनस्तत्त्वम् ॥ २ ॥

अथ द्रव्यलक्षणमुपलक्षयति;—

अपरिचत्तसहावेणुत्पादव्ययधुवत्तसंबद्धं ।

गुणवं च सपज्जायं जत्तं दव्वत्ति बुच्चंति ॥ ३ ॥

तद्यथा—अनेकापवरकसंचारितैकरत्नप्रदीप इवानेकशरीरेष्वप्येकोहमिति दृढसंस्कारेण निज-  
शुद्धात्मनि स्थिता ये ते कर्मोदयजनितपर्यायपरिणतिरहितत्वात्स्वसमया भवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥  
अथ द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयं सूचयति;—अपरिचत्तसहावं अपरित्यक्तस्वभावमस्तित्वेन  
सहाभिन्नं उत्पादव्ययधुवत्तसंजुक्तं उत्पादव्ययध्रौव्यैः सह संयुक्तं गुणवं च सपज्जायं  
गुणवत्पर्यायसहितं च जं यदित्यंभूतं सत्तादिलक्षणत्रयसंयुक्तं तं दव्वत्ति बुच्चंति तं द्रव्य-

परद्रव्यकर्मोंसे मिलते हैं, इसकारण परसमयरत होते हैं । और जो जीव अपने द्रव्य-  
गुणपर्यायोंकी अभिन्नतासे स्थिर हैं, समस्त विद्याओंके मूलभूत भगवंत आत्माके स्व-  
भावको प्राप्त हुए हैं, आत्मस्वभावकी भावनासे पर्यायरत नहीं हैं और आत्मस्वभावमेंही  
स्थिरता बढ़ाते हैं वे जीव स्वाभाविक अनेकान्त दृष्टीसे एकांतदृष्टिरूप परिग्रहको दूर  
करनेवाले हैं । मनुष्यादि गतियोंमें शरीरसंबंधी अहंकार ममकारभावोंसे रहित हैं ।  
जैसे अनेक गृहोंमें संचार करनेवाला रत्नदीपक एक है, उसीप्रकार एकरूप आत्माको  
प्राप्त हुए हैं । अचलित चैतन्य विलासरूप आत्मव्यवहारको अंगीकार करते हैं ।  
असमीचीन क्रियाओंके मूलकारण मनुष्यव्यवहारके आश्रित नहीं होते । रागद्वेषके  
अभावसे परम उदासीन हैं और समस्त परद्रव्योंकी संगति दूरकरके केवल स्वद्रव्यमें  
प्राप्त हुए हैं इसीकारण स्वसमय हैं । स्वसमय आत्मस्वभाव है । आत्मस्वभावमें जो  
लीन-रहते हैं वे धन्य हैं ॥ २ ॥ अब द्रव्यका लक्षण कहते हैं;—[ यत् ] जो [ अ-  
परित्यक्तस्वभावेन ] नहीं छोड़े हुए अपने अस्तित्वस्वभावसे [ उत्पादव्यय-  
धुवत्त्वसंबद्धं ] उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य संयुक्त है । [ च ] और [ गुणवत् ]  
अनंतगुणात्मक है [ सपर्यायं ] पर्यायसहित है [ तत् ] उसे [ द्रव्यं इति ]

अथानुपङ्गिकीमिमामेव स्वसमयपरसमयव्यवस्थां प्रतिष्ठाप्योपसंहरति;—

जे पञ्जयेसु गिरदा जीवा परसमयिगत्ति णिद्धिद्वा ।

आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा ॥ २ ॥

ये पर्यायेषु निरता जीवाः परसमयिका इति निर्दिष्टाः ।

आत्मस्वभावे स्थितास्ते स्वकसमया मन्तव्याः ॥ २ ॥

ये खलु जीवपुद्गलात्मकमसमानजातीयद्रव्यपर्यायं सकलाविधानामेकमूलमुपगता यथोदितात्मस्वभावसंभावनह्नीवास्तस्मिन्नेवांशक्तिमुपव्रजन्ति, ते खलूच्छलितनिरर्गलैकान्तदृष्टयो मनुष्य एवाहमेव ममैवेतन्मनुष्यशरीरमित्यहङ्कारममकाराभ्यां विप्रलभ्यमाना अविचलितचेतनाविलासमात्रादात्मव्यवहारात् प्रच्युत्य क्रीडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहारमाश्रित्य रज्यन्तो द्विपन्तश्च परद्रव्येण कर्मणा संगतत्वात्परसमया जायन्ते ।

वाम्यहमिति भेदविज्ञानमूढाश्च परसमया मिथ्यादृष्टयो भवन्तीति । तस्मादियं पारमेश्वरी द्रव्यगुणपर्यायव्याख्या समीचीना भद्रा भवतीत्यभिप्रायः ॥ १ ॥ अथ प्रसंगायातां परसमयत्वसमयव्यवस्थां कथयति;—जे पञ्जयेसु गिरदा जीवा ये पर्यायेषु निरताः जीवाः परसमयिगत्ति णिद्धिद्वा ते परसमया इति निर्दिष्टाः कथिताः । तथाहि—मनुष्यादिपर्यायरूपोऽहमित्यहङ्कारो भण्यते, मनुष्यादिशरीरं तच्छरीराधारोत्पन्नपञ्चेन्द्रियविषयसुखस्वरूपं च ममेति ममकारो भण्यते, ताभ्यां परिणताः ममकाराहङ्काररहितपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतेक्ष्यता ये ते कर्मोदयजनितपरपर्यायनिरतत्वात्परसमया मिथ्यादृष्टयो भण्यन्ते । आदसहावम्मि ठिदा ये पुनरात्मस्वरूपे स्थितास्ते सगसमया मुणेदव्वा स्वसमया मन्तव्या ज्ञातव्या इति ।

अशुद्धपर्याय मात्रका अवलंबन करते हुए मिथ्या मोहको प्राप्त होकर परसमयी होते हैं ॥१॥

अब इस व्याख्यानका संयोग पाकर स्वसमय तथा परसमयका स्वरूप प्रगट करते हैं;—

[ ये जीवाः ] जो अज्ञानी संसारी जीव [ पर्यायेषु ] मनुष्यादि पर्यायोंमें [ निरताः ] लवलीन हैं वे [ परसमयिकाः ] परसमयमें रागयुक्त हैं [ इति ] ऐसा

[ निर्दिष्टाः ] भगवंतदेवने दिखाया है । और जो सम्यग्दृष्टी जीव [ आत्मस्वभावे ] अपने ज्ञानदर्शन स्वभावमें [ स्थिताः ] मौजूद हैं [ ते ] वे [ स्वकसमयाः ] स्वसमयमें रत [ ज्ञातव्याः ] जानने योग्य हैं । भावार्थ—जो जीव सब

अविद्याओंका एक मूलकारण जीवपुद्गलस्वरूप असमान जातियाले द्रव्यपर्यायको प्राप्त हुए हैं, और आत्मस्वभावकी भावनामें नपुंसकके समान अशक्ति (निर्वलपने) को

धारण करते हैं वे निश्चयकरके निरर्गल एकान्तदृष्टी ही हैं । 'मैं मनुष्य हूँ यह मेरा

शरीर है' इसप्रकार नाना अहंकार ममकारभावोंसे विपरीतज्ञानी हुए अविचलित चेत-

नाविलासरूप आत्मव्यवहारमें च्युत होकर समस्त निश्च क्रियासमूहके अंगीकार करनेसे

पुत्रस्त्रीमित्रादि मनुष्यव्यवहारको आश्रयकरके रागी द्वेषी होते हैं, और

ये तु पुनरसंकीर्णद्रव्यगुणपर्यायसुस्थितं भगवन्तमात्मनः स्वभावं सकलविधानामेक-  
मूलमुपगम्य यथोदितात्मस्वभावसंभावनसमर्थतया पर्यायमात्राशक्तिमत्यस्यात्मनः स्वभाव  
एव स्थितिमासूत्रयन्ति, ते खलु सहजविजृम्भितानेकान्तदृष्टिप्रक्षपितसमसैकान्तदृष्टि-  
परिग्रहग्रहा मनुष्यादिगतिषु तद्विग्रहेषु चाविहिताहङ्कारममकारा अनेकापवरकसंचारित-  
रत्नप्रदीपमिवैकरूपमेवात्मानमुपलभमाना अविचलितचेतनाविलासमात्रमात्मव्यवहारमुररी-  
कृत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहारमनाश्रयन्तो विश्रान्तरागद्वेषोन्मेषतया  
परममौदासीन्यमवलम्ब्यमाना निरस्तसमस्तपरद्रव्यसंगतितया स्वद्रव्येणैव केवलेन संगत-  
त्वात्स्वसमया जायन्ते । अतः स्वसमय एवात्मनस्तत्त्वम् ॥ २ ॥

अथ द्रव्यलक्षणमुपलक्षयति;—

अपरिचत्तसहावेणुप्पादव्ययधुवत्तसंबद्धं ।

गुणवं च सपज्जायं जत्तं दव्वत्ति वुच्चंति ॥ ३ ॥

तद्यथा—अनेकापवरकसंचारितैकरत्नप्रदीप इवानेकशरीरेष्वप्येकोहमिति दृढसंस्कारेण निज-  
शुद्धात्मनि स्थिता ये ते कर्मोदयजनितपर्यायपरिणतिरहितत्वात्स्वसमया भवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥  
अथ द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयं सूचयति;—अपरिचत्तसहावं अपरित्यक्तस्वभावमस्तित्वेन  
सहाभिन्नं उत्पादव्ययधुवत्तसंजुक्तं उत्पादव्ययध्रौव्यैः सह संयुक्तं गुणवं च सपज्जायं  
गुणवत्पर्यायसहितं च जं यदित्यंभूतं सत्तादिलक्षणत्रयसंयुक्तं तं दव्वत्ति वुच्चंति तं द्रव्य-

परद्रव्यकर्मोंसे मिलते हैं, इसकारण परसमयरत होते हैं । और जो जीव अपने द्रव्य-  
गुणपर्यायोंकी अभिन्नतासे स्थिर हैं, समस्त विद्याओंके मूलभूत भगवंत आत्माके स्व-  
भावको प्राप्त हुए हैं, आत्मस्वभावकी भावनासे पर्यायरत नहीं हैं और आत्मस्वभावमेंही  
स्थिरता बढ़ाते हैं वे जीव स्वाभाविक अनेकान्त दृष्टीसे एकांतदृष्टिरूप परिग्रहको दूर  
करनेवाले हैं । मनुष्यादि गतियोंमें शरीरसंबंधी अहंकार ममकारभावोंसे रहित हैं ।  
जैसे अनेक गृहोंमें संचार करनेवाला रत्नदीपक एक है, उसीप्रकार एकरूप आत्माको  
प्राप्त हुए हैं । अचलित चैतन्य विलासरूप आत्मव्यवहारको अंगीकार करते हैं ।  
असमीचीन क्रियाओंके मूलकारण मनुष्यव्यवहारके आश्रित नहीं होते । रागद्वेषके  
अभावसे परम उदासीन हैं और समस्त परद्रव्योंकी संगति दूरकरके केवल स्वद्रव्यमें  
प्राप्त हुए हैं इसीकारण स्वसमय हैं । स्वसमय आत्मस्वभाव है । आत्मस्वभावमें जो  
लीन-रहते हैं वे धन्य हैं ॥ २ ॥ अब द्रव्यका लक्षण कहते हैं;—[ यत् ] जो [ अ-  
परित्यक्तस्वभावेन ] नहीं छोड़े हुए अपने अस्तित्वस्वभावसे [ उत्पादव्यय-  
धुवत्त्वसंबद्धं ] उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य संयुक्त है । [ च ] और [ गुणवत् ]  
अनंतगुणात्मक है [ सपर्यायं ] पर्यायसहित है [ तत् ] उसे [ द्रव्यं इति ]

अपरित्यक्तस्वभावेनोत्पादव्ययध्रुवत्वसंघट्टम् ।

गुणवच्च सपर्यायं यत्तद्रव्यमिति ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥

इह खलु यदनारब्धस्वभावभेदमुत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण गुणपर्यायद्वयेन च यलक्ष्यते तद्रव्यं । तत्र हि द्रव्यस्य स्वभावोस्तित्वसामान्यान्वयः, अस्तित्वं हि वक्ष्यति द्विविधं, स्वरूपास्तित्वं सादृश्यास्तित्वं चेति । तत्रोत्पादः प्रादुर्भावः, व्ययः प्रच्यवनं, ध्रौव्यमवस्थितिः । गुणा विस्तारविशेषाः, ते द्विविधाः सामान्यविशेषात्मकत्वात् । तत्रास्तित्वं नास्तित्वमेकत्वमन्यत्वं द्रव्यत्वं पर्यायत्वं सर्वगतत्वमसर्वगतत्वं सप्रदेशत्वमप्रदेशत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं सक्रियत्वमक्रियत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं कर्तृत्वमकर्तृत्वं भोक्तृत्वमभोक्तृत्वमगुरुलघुत्वं चेत्यादयः सामान्यगुणाः । अवगाहहेतुत्वं गतिनिमित्तता स्थितिकारणत्वं वर्तनायतनत्वं रूपादिमत्ता चेतनत्वमित्यादयो विशेषगुणाः । पर्याया आयतविशेषाः, ते पूर्वमेवोक्ताश्चतुर्विधाः । न च तैरूपादादिभिर्गुणपर्यायैर्वा सह द्रव्यं लक्ष्यलक्षणभेदेषु स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव द्रव्यस्य तथाविधत्वादुत्तरीयवत् । यथा खलुत्तरी-

मिति ब्रुवन्ति सर्वज्ञाः । इदं द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह लक्ष्यलक्षणभेदे अपि सति सत्ताभेदं न गच्छति । तर्हि किं करोति । स्वरूपतयैव तथाविधत्वमवलम्बते । कोर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपं गुणपर्यायरूपं च परिणमति शुद्धात्मवदेव । तथाहि—केवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे शुद्धात्मरूपपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशे सति शुद्धात्मोपलम्भव्यक्तिरूपकार्यसमयसारस्योत्पादः कारणसमयसारस्य व्ययस्तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यं च । तथानन्तज्ञानादिगुणाः, गतिमार्गणविपक्षभूतसिद्धगतिः, इन्द्रियमार्गणाविपक्षभूतातीन्द्रियत्वादिलक्षणाः शुद्धपर्यायाश्च भवन्तीति । यथा शुद्धसत्तया सहाभिनं परमा-

द्रव्य एसा [ ब्रुवन्ति ] कहते हैं । **भावार्थ**—जो अपने अस्तित्वसे किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ होवे उसे द्रव्य कहते हैं । अस्तित्व दो प्रकारका है—एक स्वरूपास्तित्व और दूसरा सामान्यास्तित्व, इन दोनों अस्तित्वोंका वर्णन आगे करेंगे । यहां द्रव्यके लक्षण दो हैं सो बतलाते हैं; एक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, और दूसरा गुणपर्याय । उत्पाद उत्पन्न होनेको, व्यय विनाश होनेको और ध्रौव्य स्थिर रहनेको कहते हैं । गुण दो प्रकारका है, एक सामान्यगुण दूसरा विशेषगुण । अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, द्रव्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, सप्रदेशत्व, अप्रदेशत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व, इत्यादि सामान्यगुण हैं । अवगाहहेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिहेतुत्व, वर्तनायतनत्व, रूपादिमत्त्व, चेतनत्व, इत्यादि विशेषगुण हैं । द्रव्यगुणकी परिणतिके भेदको पर्याय कहते हैं । इन उत्पाद व्यय ध्रौव्य गुणपर्यायोंसे द्रव्य लक्षित होता ( पहिचाना जाता ) है, इसलिये द्रव्य "लक्ष्य" है । और जिनसे लक्षित

यमुपात्तमलिनावस्थं प्रक्षालितममलावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते । न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथा द्रव्यमपि समुपात्तप्राक्तनावस्थं समुचितवहिरङ्गसाधनसन्निधिसद्भावे विचित्रवहुतरावस्थानं स्वरूपकर्तृकरणसामर्थ्यस्वभावेनान्तरङ्गसाधनतामुपागतेनानुग्रहीतमुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते । न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । यथा च तदेवोत्तरीयममलावस्थयोत्पद्यमानं मलिनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते । न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथा तदेव द्रव्यमप्युत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते । न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । यथैव च तदेवोत्तरीयमेककालममलावस्थयोत्पद्यमानं मलिनव्यवस्थया व्ययमानमवस्थायिन्योत्तरीयत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्ब्यमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते । न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथैव तदेव द्रव्यमप्येककालमुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानमवस्थायिन्या द्रव्यत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्ब्यमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते । न

त्तद्रव्यं पूर्वोक्तोत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि सति तैः सह सत्तादिभेदं न करोति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथाविधत्वं कोर्थः ? उत्पादव्ययध्रौव्यगुणपर्यायस्वरूपेण परिणमन्ति, तथा सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीययथोचितोत्पादव्ययध्रौव्यैस्तथैव गुणपर्यायैश्च सह यद्यपि संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभिर्भेदं कुर्वन्ति तथापि सत्तास्वरूपेण भेदं न कुर्वन्ति, स्वभावत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथाविधत्वं कोर्थः ? उत्पादव्ययादिस्व-

होता है वे लक्षण हैं, इसलिये उत्पादव्ययादि "लक्षण" हैं । लक्ष्य लक्षण भेदसे यद्यपि इनमें भेद है तथापि स्वरूपसे द्रव्यमें भेद नहीं है अर्थात् स्वरूपसे लक्ष्य लक्षण एकही हैं । जैसे—कोई वस्त्र पहले मलिन था पीछेसे धोकर उज्ज्वल किया, तब उज्ज्वलतासे उत्पन्न हुआ कहलाया । परंतु उस वस्त्रका उत्पादसे पृथक्पना नहीं है, क्योंकि पूर्ववस्त्रही उज्ज्वलभावसे परिणत हुआ है । इसीप्रकार वहिरंग-अंतरंग निमित्त पाकर द्रव्य एकपर्यायसे उत्पन्न होता है, परंतु उत्पादसे जुदा नहीं है, स्वरूपसेही उस पर्यायरूप परिणमन करता है । वही वस्त्र उज्ज्वलावस्थासे तो उत्पन्न हुआ है और मलिनपर्यायसे व्यय ( नाश ) को प्राप्त हुआ है परंतु उस व्ययसे वस्त्र पृथक् नहीं है, क्योंकि आपही मलिनभावके नाशरूप परिणत हुआ है । इसीप्रकार द्रव्य आगामी पर्यायसे तो उत्पद्यमान है और प्रथम अवस्थासे नष्ट होता है परंतु उस व्ययसे पृथक् नहीं है, व्ययस्वरूप परिणत हुआ है । और वही वस्त्र जैसे एक समयमें निर्मल अवस्थाकी अपेक्षासे तो उत्पद्यमान है, मलिनावस्थाकी अपेक्षासे व्यय ( नाश ) वाला है और वस्त्रपनेकी अपेक्षा ध्रुव है; परंतु ध्रुवपनेसे स्वरूपभेदको धारण नहीं करता है, आपही



च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । यथैव च तदेवोत्तरीयं विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते । न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथैव तदेव द्रव्यमपि विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते । न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । यथैव च तदेवोत्तरीयमायतविशेषात्मकैः पर्यायवर्तिभिस्तन्तुभिर्लक्ष्यते । न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथैव तदेव द्रव्यमप्यायतविशेषात्मकैः पर्यायैर्लक्ष्यते । न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते ॥ ३ ॥

अथ क्रमेणास्तित्वं द्विविधमभिदधाति तत्रेदं स्वरूपास्तित्वाभिधानम्;—

**सवभावो हि सहायो गुणोहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं ।**

**दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं ॥ ४ ॥**

रूपेण परिणमन्ति । अथवा यथा वस्त्रं निर्मलपर्यायेणोत्पन्नं मलिनपर्यायेण विनष्टं तदुभयाधारभूतवस्त्ररूपेण ध्रुवमविनश्वरं, तथैव शुद्धवर्णादिगुणनवजीर्णादिपर्यायसहितं च सत् तैरुत्पादव्ययधौव्यैस्तथैव च स्वकीयगुणपर्यायैः सह संज्ञादिभेदेपि सति सत्तारूपेण भेदं न करोति । तर्हि किं करोति । स्वरूपत एवोत्पादादिरूपेण परिणमति, तथा सर्वद्रव्याणीत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥ एवं नमस्कारगाथा द्रव्यगुणपर्यायकथनगाथा स्वसमयपरसमयनिरूपणगाथा सत्तादिलक्षणत्रयसूचनगाथा चेति स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन पीठिकाभिधानं प्रथमस्थलं गतम् । अथ प्रथमं तावत्स्वरूपास्तित्वं प्रतिपादयति;—सवभावो हि स्वभावः स्वरूपं भवति हि स्फुटं । कः कर्ता । सहायो सद्भावः शुद्धसत्ता शुद्धास्तित्वं । कस्य स्वभावो भवति । दव्वस्स मुक्तात्मद्रव्यस्य तच्च स्वरूपास्तित्वं यथा मुक्तात्मनः सकाशात्पृथग्भूतानां पुद्गलादि पञ्चद-

उसस्वरूप परिणमता है । इसीप्रकार द्रव्य हर एक समयमें उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता है, पूर्व अवस्थासे विनाशको प्राप्त होता है और द्रव्यपने स्वभावसे ध्रुव रहता है; ध्रुवपनेसे पृथक् नहीं रहता, आपही ध्रौव्यको अवलंबन करता है । और इसीप्रकार जैसे वही वस्त्र उज्ज्वलकोमलादि गुणोंकी अपेक्षा देखते हैं कि वह उन गुणोंसे स्वरूपभेद धारण नहीं करता, स्वरूपसे गुणात्मक है; इसीतरह प्रत्येक द्रव्य निजगुणोंसे भिन्न नहीं है, स्वरूपसेही गुणात्मक है ऐसा देखते हैं । जैसे वस्त्र तंतुरूप पर्यायोंसे देखा जाता है परंतु उन पर्यायोंसे जुदा नहीं है, स्वरूपसेही उनरूप है । इसीप्रकार द्रव्य निजपर्यायोंसे देखते हैं परंतु स्वरूपसेही पर्यायपनेको अवलम्बन करता है । इसतरह द्रव्यका उत्पादव्ययधौव्य लक्षण और गुणपर्याय लक्षण जानने योग्य है ॥ ३ ॥ अब दो प्रकारके अस्तित्वमेंसे पहले स्वरूपास्तित्वको दिखलाते हैं;—[ गुणैः ] अपने गुणोंकरके [ चित्रैः स्वकपर्यायैः ] नाना प्रकारकी अपनी पर्यायोंकरके और [ उत्पादव्ययधुवत्त्वैः ] उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यकरके [ द्रव्यस्य ] गुणपर्याय-

सद्भावो हि स्वभावो गुणैः स्वकपर्यायैश्चित्रैः ।

द्रव्यस्य सर्वकालमुत्पादव्ययध्रुवत्वैः ॥ ४ ॥

अस्तित्वं हि किल द्रव्यस्य स्वभावः, तत्पुनरन्यसाधननिरपेक्षत्वाद्नाधनन्ततया हेतु-  
कथैकरूपया वृत्त्या नित्यप्रवृत्तत्वाद्भिभावधर्मवैलक्षण्याच्च भावभाववद्भावान्नानात्वेऽपि प्रदे-  
शभेदाभावाद्द्रव्येण सहैकत्वमवलम्बमानं द्रव्यस्य स्वभाव एव कथं न भवेत् । तच्च  
द्रव्यान्तराणामिव द्रव्यगुणपर्यायाणां न प्रत्येकं परिसमाप्यते । यतो हि परस्परसाधितः  
सिद्धियुक्तत्वात्तेषामस्तित्वमेकमेव, कार्तस्वरवत् । यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन  
वा भावेन वा कार्तस्वरात् पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण पीतादिगुणानां  
कुण्डलादिपर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पा-  
दितनिष्पत्तियुक्तैः पीततादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः,  
तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः

व्याणां शेषजीवानां च भिन्नं भवति न च तथा । कैः सह । गुणेहिं सह पञ्जएहिं केव-  
लज्ञानादिगुणैः किञ्चिद्गुणचरमशरीराकारादिस्वकीयपर्यायैश्च सह । कथंभूतैः । चित्तेहिं सिद्ध-  
गतित्वमतीन्द्रियत्वमकायत्वमयोग्यत्वमवेदत्वमित्यादिवहुभेदभिन्नैर्न केवलं गुणपर्यायैः सह भिन्नं  
भवति । उष्णाद्व्ययध्रुवत्तेहिं शुद्धात्मप्राप्तिरूपमोक्षपर्यायस्योत्पादो रागादिविकल्परहितपर-  
मसमाधिरूपमोक्षमार्गपर्यायस्य व्यस्तथा मोक्षमार्गाधारभूतान्वयद्रव्यत्वलक्षणं ध्रौव्यं चेत्युक्तल-  
क्षणोत्पादव्ययध्रौव्यैश्च सह भिन्नं न भवति । कथं । सब्यकालं सर्वकालपर्यन्तं यथा भवति ।  
कस्मात्तैः सह भिन्नं न भवतीति चेत् । यतः कारणाद्गुणपर्यायोस्तित्वेनोत्पादव्ययध्रौव्यास्ति-  
त्वेन च कर्तृभूतेन शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वं साध्यते, शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वेन च गुणपर्यायोत्पादव्य-  
यध्रौव्यास्तित्वं साध्यत इति । तद्यथा—यथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः सुवर्णादिभिन्नानां  
पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णस्य सद्भावः, तथा स्वकीय-

स्वरूप द्रव्यका [ सर्वकालं ] तीनों कालमें [ सद्भावः ] अस्तित्व है, वही [ हि ]  
निश्चयकरके [ स्वभावः ] मूलभूत स्वभाव है । भावार्थ—निश्चयकरके अस्तित्वही  
द्रव्यका स्वभाव है, क्योंकि अस्तित्व किसी अन्यनिमित्तसे उत्पन्न नहीं हुआ है ।  
अनादि अनंत एकरूप प्रवृत्तिसे अविनाशी है । त्रिभावभावरूप नहीं, किंतु स्वाभा-  
विकभाव है । और गुणगुणीके भेदसे यद्यपि द्रव्यसे अस्तित्वगुण पृथक् कहा जाता  
है, परंतु वह प्रदेशभेदके बिना द्रव्यसे एकरूप है । एक द्रव्यसे दूसरे द्रव्यकी नाई  
पृथक् नहीं है, क्योंकि द्रव्यके अस्तित्वसे गुणपर्यायोंका अस्तित्व है और गुणपर्यायोंके  
अस्तित्वसे द्रव्यका अस्तित्व है । यह कथन नीचे लिखे हुए सोनेके दृष्टांतसे समझाते  
हैं । जैसे—पीततादि गुण तथा कुण्डलादिपर्याय जो कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अ-  
पेक्षा सोनेसे पृथक् नहीं हैं उनका कर्ता, साधन और आधार सोना है; क्योंकि

कर्तृकरणाधिकरणरूपेण गुणानां पर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैर्गुणैः पर्यायैश्च यदस्तित्वं द्रव्यस्य स स्वभावः । यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा पीततादिगुणेभ्यः कुण्डलादिपर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वरूपस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः पीततादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरूपस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा गुणेभ्यः पर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण द्रव्यस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैर्गुणैः पर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः । किंच—यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कार्तस्वरात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कुण्डलाङ्ग-

द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परमात्मद्रव्यादभिन्नानां केवलज्ञानादिगुणकिञ्चिद्नचरमशरीराकारादिपर्यायाणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यस्य सद्भावः । यथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः पीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य सम्बन्धि यदस्तित्वं स एव पीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां स्वभावो भवति, तथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः केवलज्ञानादिगुणकिञ्चिद्नचरमशरीराकारपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य मुक्तात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव केवलज्ञानादिगुणकिञ्चिद्नचरमशरीराकारपर्यायाणां स्वभावो ज्ञातव्यः । अथेदानीमुत्पादव्यग्नौः व्याणामपि द्रव्येण सहाभिन्नास्तित्वं कथ्यते । यथा स्वकीयद्रव्यादिचतुष्टयेन सुवर्णादभिन्नानां कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायविनाशसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णसद्भावः, तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन परमात्मद्रव्यादभिन्नानां मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्या-

सोनेके अस्तित्वसेही उनका अस्तित्व है । जो सोना न होवे तो पीततादिगुण तथा कुण्डलादिपर्यायैभी न होंगे । सोना स्वभाववन्त है और वे स्वभाव हैं । इसीप्रकार द्रव्यक्षेत्रकालभावोंकी अपेक्षा द्रव्यसे अभिन्न जो उसके गुणपर्याय हैं उनका कर्ता साधन और आधार द्रव्य है, क्योंकि द्रव्यके अस्तित्वसेही गुणपर्यायोंका अस्तित्व है । जो द्रव्य न होवे तो गुणपर्यायभी न होंगे । द्रव्य स्वभाववन्त है और गुणपर्याय स्वभाव हैं । और जैसे द्रव्य क्षेत्र काल भावोंसे पीततादि गुण तथा कुण्डलादि पर्यायोंसे अपृथग्भूत ( जो जुड़े नहीं ) सोनेके कर्म पीततादि गुण तथा कुण्डलादिपर्याय हैं, इसलिये पीततादिगुण और कुण्डलादिपर्यायोंके अस्तित्वसे सोनेका अस्तित्व है । यदि पीततादिगुण तथा कुण्डलादिपर्यायें न हों तो सोनाभी न होवे । इसीप्रकार द्रव्यक्षेत्रकालभावोंसे गुणपर्यायोंसे अपृथग्भूत द्रव्यके कर्म गुणपर्याय हैं, इसलिये गुणपर्यायोंके अस्तित्वसे द्रव्यका अस्तित्व है । जो गुणपर्यायें न हों तो द्रव्यभी न होवे । और जैसे—द्रव्यक्षेत्रकालभावोंसे मोनेमे अपृथग्भूत ऐसा जो फफनका उत्पाद, कुण्डलका

दपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्याणां स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैः कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः, तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेणोत्पादव्ययध्रौव्याणां स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्यदस्तित्वं द्रव्यस्य स स्वभावः । यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वरस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वोत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण द्रव्यस्वरूप-

व्ययतदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यस्वभावः । यथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायव्ययसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां सद्भावः, तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य परमात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां स्वभाव इति । एवं यथा मुक्तात्मद्रव्यस्य स्वकीयगुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह स्वरूपास्ति-

व्यय तथा पीतत्वादिका ध्रौव्य इति तीन भावोंका कर्ता, साधन, और आधार सोना है, इसलिये सोनेके अस्तित्वसे इनका अस्तित्व है । क्योंकि जो सोना न होवे तो कंकणका उत्पाद कुंडलका व्यय पीतत्वादिका ध्रौव्य ये तीन भाव भी न होंगे । इसीप्रकार द्रव्यक्षेत्रकालभावोंकरके द्रव्यसे अपृथग्भूत ऐसे जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इति तीन भावोंका कर्ता, साधन तथा आधार द्रव्य है; इसलिये द्रव्यके अस्तित्वसे उत्पादादिका अस्तित्व है । जो द्रव्य न होवे तो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये तीन भाव न होंगे ॥ और जैसे द्रव्य क्षेत्र काल भावोंकर कंकणादि पर्यायका उत्पाद कुंडलादिका व्यय, पीतत्वादिका ध्रौव्य इति तीन भावोंसे अपृथग्भूत जो सोना है उसके कर्ता, साधन और आधार कंकणादि उत्पाद, कुंडलादि व्यय, पीतत्वादि ध्रौव्य ये तीन भाव हैं; इसलिये इन तीन भावोंके अस्तित्वसे सोनेका अस्तित्व है । यदि ये तीन भाव न होंगे तो सोनाभी न होवे । इसीप्रकार द्रव्य क्षेत्र काल भावोंकरके उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे अपृथग्भूत द्रव्यके कर्ता, साधन और आधार उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन भाव हैं, क्योंकि इन तीनोंके अस्तित्वसे द्रव्यका अस्तित्व है । यदि ये तीन भाव न होंगे तो द्रव्यभी न होवे । इससे यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्य, गुण और पर्यायोंका अस्तित्व

पमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूल-  
साधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः ॥ ४ ॥

इदं तु सादृश्यास्तित्वाभिधानम् 'अस्तीति कथयति;—

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं ।

उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं ॥ ५ ॥

इह विविधलक्षणानां लक्षणमेकं सदिति सर्वगतम् ।

उपदिशता खलु धर्मं जिनवरवृपभेण प्रज्ञप्तम् ॥ ५ ॥

इह किल प्रपञ्चितवैचित्र्येण द्रव्यान्तरेभ्यो व्यावृत्त्य वृत्तेन प्रतिद्रव्यं सीमानमासूत्रयत्ता  
विशेषलक्षणभूतेन च स्वरूपास्तित्वेन लक्ष्यमाणानामपि सर्वद्रव्याणामस्तमितवैचित्र्यप्र-  
पञ्चं प्रवृत्त्य वृत्तं प्रतिद्रव्यमासूत्रितं सीमानं भिन्दत्सदिति सर्वगतं सामान्यलक्षणभूतं  
सादृश्यास्तित्वमेकं खल्ववबोद्धव्यम् । एवं सदित्यभिधानं सदिति परिच्छेदनं च सर्वार्थ-

त्वाभिधानमवान्तरास्तित्वमभिन्नं व्यवस्थापितं, तथैव समस्तशेषद्रव्याणामपि व्यवस्थापनीयमि-  
त्यर्थः ॥ ४ ॥ अथ सादृश्यास्तित्वशब्दाभिधेयां महासत्तां प्रज्ञापयति;—इह विविहल-  
क्खणाणं इह लोके प्रत्येकसत्ताभिधानेन स्वरूपास्तित्वेन विविधलक्षणानां भिन्नलक्षणानां  
चेतनाचेतनमूर्तामूर्तपदार्थानां लक्खणमेगं तु एकमखण्डलक्षणं भवति । किं कर्तुं सदिति  
सर्वं सदिति महासत्तारूपं । किंविशिष्टं । सव्वगयं संकरव्यतिकरपरिहाररूपस्वजात्यविरोधेन  
शुद्धसंप्रहनयेन, सर्वगतं सर्वपदार्थव्यापकं । इदं केनोक्तं । उवदिसदा खलु धम्मं जिण-  
वरवसहेण पण्णत्तं धर्मं वस्तुस्वभावसंप्रहमुपदिशता खलु स्फुटं जिनवरवृपभेण प्रज्ञप्तमिति ।

एक है । और जो द्रव्य है सो अपने गुण पर्यायस्वरूपको लिये हुए है, अन्य द्रव्यसे  
कभी नहीं मिलता । इसीको स्वरूपास्तित्व कहते हैं ॥ ४ ॥ आगे सादृश्यास्तित्व  
घतलाते हैं;—[ इह ] इस लोकमें [ धर्मं उपदिशता ] वस्तुके स्वभावका उपदेश  
देनेवाले [ जिनवरवृपभेण ] गणधरादिदेवोंमें श्रेष्ठ श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवने [ प्र-  
ज्ञप्तं ] ऐसा कहा है कि [ विविधलक्षणानां ] नानाप्रकारके लक्षणोंवाले अपने  
स्वरूपास्तित्वसे जुड़े २ द्रव्योंका [ सत् इति ] 'सत्' ऐसा [ सर्वगतं ] सब  
द्रव्योंमें पानेवाला [ एकं लक्षणं ] एक लक्षण है । भावार्थ—स्वरूपास्तित्व विशेष-  
पलक्षणरूप है, क्योंकि वह द्रव्योंकी विचित्रताका विस्तार करता है । तथा अन्यद्र-  
व्यसे भेद करके प्रत्येक द्रव्यकी मर्यादा करता है । और 'सत्' ऐसा जो सादृश्या-  
स्तित्व है, सो द्रव्योंमें भेद नहीं करता है सब द्रव्योंमें प्रवर्तता है, प्रत्येक द्रव्यकी मर्या-  
दाको दूर करता है और सर्वगत है, इसलिये सामान्यलक्षणरूप है । 'सत्' शब्द सब  
पदार्थोंका ज्ञान करता है, क्योंकि यदि ऐसा न मानें तो कुछ पदार्थ सन् हों कुछ असत्  
हों और कुछ अवक्तव्य हों । परंतु ऐसा नहीं है, संपूर्ण पदार्थ सत् रूप ही हैं असदा-

परामर्शिं स्यात् । यदि पुनरिदमेव न स्यात्तदा किञ्चित्सदिति किञ्चिदसदिति किञ्चित्स-  
चासचेति किञ्चिदवाच्यमिति च स्यात् । तत्तु विप्रतिपिद्धमेवाप्रसाध्यं चैतदनोकहवत् ।  
यथा हि वहूनां बहुविधानामनोकहानामात्मीयस्यात्मीयस्य विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपा-  
स्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं, सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्था-  
पितमेकत्वं तिरियति । तथा वहूनां बहुविधानां द्रव्याणामात्मीयात्मीयस्य विशेषल-  
क्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं, सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिना  
सदित्यस्य भावेनोत्थापितमेकत्वं तिरियति । यथा च तेषामनोकहानां सामान्यलक्षण-  
भूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य स्व-  
रूपास्तित्वावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति, तथा सर्वद्रव्याणामपि सामान्यलक्षणभूतेन  
सादृश्योद्भासिना सदित्यस्य भावेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य  
स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति ॥ ५ ॥

अथ द्रव्यैर्द्रव्यान्तरस्यारम्भं द्रव्यादर्थान्तरत्वं च सत्तायाः प्रतिहन्ति;—

तद्यथा—यथा सर्वे मुक्तात्मनः सन्तीत्युक्ते सति परमानन्दैकलक्षणमुखाभृतरसास्वादभरिताव-  
स्थलेकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयाध्मप्रदेशस्तथा किञ्चिदूनचरमशरीराकारादिपर्यायैश्च संकरव्यति-  
करपरिहाररूपजातिभेदेन भिन्नानामपि सर्वेषां सिद्धजीवानां ग्रहणं भवति, तथा “सर्वे सत्”  
इत्युक्ते संप्रहनयेन सर्वपदार्थानां ग्रहणं भवति । अथवा सेनेयं वनमिदमित्युक्ते अश्वहस्यादिप-  
दार्थानां निम्बान्नादिवृक्षाणां स्वकीयस्वकीयजातिभेदभिन्नानां युगपद्ग्रहणं भवति, तथा सर्वे  
सदित्युक्ते सति सादृश्यसत्ताभिधानेन महासत्तारूपेण शुद्धसंप्रहनयेन सर्वपदार्थानां स्वजात्य-  
विरोधेन ग्रहणं भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अथ यथा द्रव्यं स्वभावसिद्धं तथा सदसदपि स्वभावत

दिरूप नहीं है । जैसे—वृक्ष अपने २ स्वरूपास्तित्वसे आम, नीमादि भेदोंसे अनेक  
प्रकार हैं और सादृश्यास्तित्वसे वृक्ष जातिकी अपेक्षा एक हैं । इसीप्रकार द्रव्य अपने  
२ स्वरूपास्तित्वसे ६ प्रकार हैं और सादृश्यास्तित्वसे सन्की अपेक्षा सब एक हैं ।  
सत्के कहनेमें छहों द्रव्य गभित हो जाते हैं । जैसे जब वृक्षोंमें स्वरूपास्तित्वसे भेद  
करते हैं तब सादृश्यास्तित्वरूप वृक्षकी जातिकी एकता मिटजाती है, और जब  
सादृश्यास्तित्वरूप वृक्षजातिकी एकता करते हैं तब स्वरूपास्तित्वसे उत्पन्न नानाप्रका-  
रके भेद मिटजाते हैं; इसीप्रकार द्रव्योंमें स्वरूपास्तित्वकी अपेक्षा सन्नरूप एकता  
मिटजाती है, और सादृश्यास्तित्वकी अपेक्षा नानाप्रकारके भेद मिट जाते हैं ।  
भगवानका मत अनेकान्त है, जिस पक्षकी विवक्षा (कहनेकी इच्छा) करते हैं  
वह पक्ष मुख्य होता है, और जिस पक्षकी विवक्षा नहीं करते हैं वह पक्ष गौण होता है ।  
नय संपूर्ण प्रमाण हैं विवक्षाकी अपेक्षा मुख्य गौण हैं ॥ ५ ॥ आगे द्रव्योंमें अन्य द्र-  
व्यकी उत्पत्तिका निषेध करते हैं और द्रव्यसे सत्ताकी जुदाईका निषेध करते हैं;—

द्रव्यं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादो ।  
सिद्धं तथ आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ ॥ ६ ॥

द्रव्यं स्वभावसिद्धं सदिति जिनास्तत्त्वतः समाख्यातवन्तः ।

सिद्धं तथा आगतो नेच्छति यः स हि परसमयः ॥ ६ ॥

न खलु द्रव्यैर्द्रव्यान्तराणामारम्भः, सर्वद्रव्याणां स्वभावसिद्धत्वात् । स्वभावसिद्धत्वं तु तेपामनादिनिधनत्वात् । अनादिनिधनं हि न साधनान्तरमपेक्षते । गुणपर्यायात्मान-  
मात्मनः स्वभावमेव मूलसाधनमुपादाय स्वयमेव सिद्धसिद्धिमद्भूतं वर्तते । यत्तु द्रव्यै-  
रारभ्यते न तद्द्रव्यान्तरं कादाचित्कत्वात् स पर्यायः । द्वयणुकादिवन्मनुष्यादिवच्च ।  
द्रव्यं पुनरनवधि त्रिसमयावस्थायि न तथा स्यात् । अथैवं यथा सिद्धं स्वभावत एव  
द्रव्यं तथा सदित्यपि तत्स्वभावत एव सिद्धमित्यवधार्यतां । सत्तात्ममात्मनः स्वभावेन  
निष्पन्ननिष्पत्तिमद्भावयुक्तत्वात् । न च द्रव्यादर्थान्तरभूता सत्तोपपत्तिमभिप्रपद्यते, यत्-  
स्तत्समवायात्तत्सदिति स्यात् । सतः सत्तायाश्च न तावद्युतसिद्धत्वेनार्थान्तरत्वं, तयोर्दण्ड-

एवेत्याख्याति;—द्रव्यं सहावसिद्धं द्रव्यं परमात्मद्रव्यं स्वभावसिद्धं भवति । कस्मात् ।  
अनाद्यनन्तेन परहेतुनिरपेक्षेण स्वतः सिद्धेन केवलज्ञानादिगुणाधारभूतेन सदानन्दैकरूपसुख-  
सुधारसपरमसमरसीभावपरिणतसर्वशुद्धात्मप्रदेशभरितावस्थेन शुद्धोपादानभूतेन स्वकीयस्वभावेन  
निष्पन्नत्वात् । यच्च स्वभावसिद्धं न भवति तद्द्रव्यमपि न भवति । द्वयणुकादिपुद्गलस्कन्ध-  
पर्यायवत् मनुष्यादिजीवपर्यायवच्च । सदिति यथा स्वभावतः सिद्धं तद्द्रव्यं तथा सदिति  
सत्तालक्षणमपि स्वभावत एव भवति, न च भिन्नसत्तासमवायात् । अथवा यथा द्रव्यं स्वभा-  
वतः सिद्धं तथा तस्य योसौ सत्तागुणः सोपि स्वभावसिद्ध एव । कस्मादिति चेत् । सत्ताद्र-

[ द्रव्यं ] गुणपर्यायरूप वस्तु [ स्वभावसिद्धं ] अपने स्वभावसे निष्पन्न है । और  
वह [ सत् इति ] सत्तास्वरूप है ऐसा [ जिनाः ] जिन भगवान् [ तत्त्वतः ]  
स्वरूपसे [ समाख्यातवन्तः ] भले प्रकार कहते हैं । [ यः ] जो पुरुष [ आग-  
मतः ] शास्त्रसे [ तथा सिद्धं ] उक्तप्रकार सिद्ध [ न इच्छति ] नहीं मानता है  
[ हि ] निश्चयकरके [ सः ] वह [ परसमयः ] मिथ्यादृष्टि है । भावार्थ—द्रव्य  
अनादिनिधन है, वह किसीका कारण पाके उत्पन्न नहीं हुआ है इसकारण स्वयं सिद्ध  
है । अपने गुणपर्यायस्वरूपको मूलसाधन अंगीकार करके आपही सिद्ध है । और जो  
द्रव्योंसे उत्पन्न होते हैं वे कोई अन्य द्रव्य नहीं, पर्याय होते हैं; परंतु पर्याय स्थायी नहीं  
होते नाशमान होते हैं । जैसे परमाणुओंसे द्वयणुकादि स्कंध तथा जीव पुद्गलसे म-  
नुष्यादि होते हैं । ये सब द्रव्यके पर्याय हैं, कोई नवीन द्रव्य नहीं हैं । इससे सिद्ध  
हुआ कि द्रव्य त्रिकालिक स्वयंसिद्ध है, यही सत्ता स्वरूप है । जैसे द्रव्य स्वभावसिद्ध

दण्डिवद्युतसिद्धस्यादर्शनात् । अयुतसिद्धत्वेनापि न तदुपपद्यते । इहेदमितिप्रतीतेरुत्पद्यते इति चेत् किंनिबन्धना हीहेदमितिप्रतीतिः । भेदनिबन्धनेतिचेत् को नाम भेदः ? प्रादेशिक अताद्भाषिको वा । न तावत्प्रादेशिकः, पूर्वमेव युतसिद्धत्वस्यापसारणात् । अताद्भाषिकश्चेत् उपपन्न एव यद्द्रव्यं तन्न गुण इति वचनात् । अयं तु न खल्वेकान्तेनेहेदमितिप्रतीतेर्निबन्धनं, स्वयमेवोन्मग्ननिमग्नत्वात् । तथाहि—यदेव पर्यायेणार्थ्यते द्रव्यं तदेव गुणवदिदं द्रव्यमयमस्य गुणः, शुभ्रमिदमुत्तरीयमयमस्य शुभ्रो गुण इत्यादिवदताद्भाषिको भेद उन्मज्जति । यदा तु द्रव्येणार्थ्यते द्रव्यं तदास्तमितसमस्तगुणवासनोन्मेषस्य तथाविधं द्रव्यमेव शुभ्रमुत्तरीयमित्यादिवत्प्रपश्यतः समूल एवाताद्भाषिको भेदो निमज्जति । एवं हि भेदे निमज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिर्निमज्जति । तस्यां निमज्जत्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्वं निमज्जति । ततः समस्तमपि द्रव्यमेवैकं भूत्वावतिष्ठते । यदा तु भेद उन्मज्जति,

व्ययोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेषु दण्डदण्डिवद्भिन्नप्रदेशाभावात् । इदं के कथितवन्तः । जिणा तच्चदो समक्खादा जिनाः कर्तारः तत्त्वतः सम्यगाख्यातवन्तः कथितवन्तः सिद्धं तह आगमदो सन्तानापेक्षया द्रव्यार्थिकनयेनानादिनिधनागमादपि तथा सिद्धं णेच्छद्विजो सो हि परसमओ नेच्छति न मन्यते य इदं वस्तुस्वरूपं स हि स्फुटं परसमयो

है वैसेही सत्ता स्वभावसिद्ध है । परंतु सत्ता द्रव्यसे कोई जुड़ी वस्तु नहीं है, सत्ता गुण है और द्रव्य गुणी है । इस सत्तागुणके संबंधसे द्रव्य 'सत्' कहा जाता है । सत्ता और द्रव्यमें यद्यपि गुणगुणीके भेदसे भेद है तौभी जैसे दंड और दंडीपुरुषमें भेद है वैसे भेद नहीं है । भेद दो प्रकारका है—एक प्रदेशभेद और दूसरा गुणगुणीभेद । इनमेंसे सत्ता और द्रव्यमें प्रदेश भेद तो हैं नहीं, जैसे कि दंड और दंडीमें होता है । क्योंकि सत्ताके और द्रव्यके जुड़े २ प्रदेश नहीं, हैं गुणगुणीभेद है । क्योंकि जो द्रव्य है सो गुण नहीं है और जो गुण है सो द्रव्य नहीं है, इसप्रकार संज्ञा संख्या लक्षणादिसे भेद करते हैं । द्रव्य—सत्तामें सर्वथा भेद नहीं है । कथंचित्प्रकार भेद है, किसी एक प्रकारसे अभेद है । इस भेदाभेदको द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके भेदसे दिखलाते हैं—जब पर्यायार्थिकनयसे द्रव्यका कथन करते हैं तब द्रव्य गुणवाला है वह उसका गुण है । जैसे वस्त्र द्रव्य है वह उसका उज्वलपना गुण है । इसप्रकार गुणगुणीभेद प्रगट होता है । और जब द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यका कथन करते हैं तब समस्त गुणभेदकी वासना मिटजाती है, एक द्रव्यही रहता है गुणगुणी भेद नष्ट होजाता है । और इसप्रकार भेदके नष्ट होनेसे गुणगुणीभेदरूप ज्ञानभी नष्ट होता है, तथा ज्ञानके नष्ट होनेसे वस्तु अभेदभावमें एकरूप होकर ठहरती है । पर्याय कथनसे जब द्रव्यमें भेद उछलते हैं तब उसके निमित्तसे भेदरूप ज्ञान प्रगट होता है, और उस



तस्मिन्मुन्मज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिरुन्मज्जति । तस्यामुन्मज्जत्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्व-  
मुन्मज्जति । तदापि तत्पर्यायत्वेनोन्मज्जजलराशेरजलकल्लो इव द्रव्यान्न व्यतिरिक्तं स्यात् ।  
एवं सति स्वयमेव सद्व्यं भवति । यस्त्वेवं नेच्छति स खलु परसमय एव द्रष्टव्यः ॥ ६ ॥

अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वेपि सद्व्यं भवतीति विभावयति;—

सदवद्विद्यं सहावे द्रव्यं द्रव्यस्स जो हि परिणामो ।

अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो ॥ ७ ॥

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः ।

अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः ॥ ७ ॥

मिथ्यादृष्टिर्भवति । एवं यथा परमात्मद्रव्यं स्वभावतः सिद्धमवबोधद्रव्यं तथा सर्वद्रव्याणीति । अत्र  
द्रव्यं केनापि पुरुषेण न क्रियते । सत्तागुणोपि द्रव्याद्भिन्नो नास्तीत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥ अथो-  
त्पादव्ययध्रौव्यत्वे सति सत्तैव द्रव्यं भवतीति प्रज्ञापयति;—सदवद्विद्यं सहावे द्रव्यं  
द्रव्यं मुक्तात्मद्रव्यं भवति । किं कर्तुं । सदिति शुद्धचेतनान्वयरूपमस्तिव्यं । किं विशिष्टं ।  
अवस्थितं । क । स्वभावे । स्वभावं कथयति—द्रव्यस्स जो हि परिणामो तस्य परमात्म-  
द्रव्यस्य संबन्धी हि स्फुटं यः परिणामः । केषु विषयेषु । अत्थेसु परमात्मपदार्थस्य धर्मत्वा-  
दभेदनयेनार्था भण्यन्ते । के ते । केवलज्ञानादिगुणाः सिद्धत्वादिपर्यायाश्च, तेष्वर्थेषु विषयेषु  
योसौ परिणामः । सो सहावो केवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वादिपर्यायरूपस्तस्य परमात्मद्रव्यस्य  
स्वभावो भवति । स च कथंभूतः । ठिदिसंभवणाससंबद्धो स्वात्मप्राप्तिरूपमोक्षपर्यायस्य

भेदरूप ज्ञानके उच्छलनेसे गुणोंका भेद उच्छलता है । जिसतरह समुद्रमें उच्छलते हुए  
जलके कल्लोल समुद्रसे जुड़े नहीं हैं, उसीप्रकार पर्याय कथनसे द्रव्यसे ये भेद जुड़े  
नहीं हैं । इससे सिद्ध हुआ कि द्रव्यसे सत्तागुण पृथक् नहीं है, द्रव्य उस स्वरूपही है ।  
गुणगुणीके भेदसे भेद है स्वरूपसे भेद नहीं है । जो ऐसा नहीं मानते हैं वे मिथ्या-  
दृष्टी हैं ॥ ६ ॥ आगे कहते हैं कि उत्पादव्ययध्रौव्यके होनेपर ही सत् द्रव्य होता है;—  
[ स्वभावे ] अपनी परिणतिमें [ अवस्थितं ] ठहरा हुआ जो [ सत् ] सत्तारूप  
वस्तु सो [ द्रव्यं ] द्रव्य है । और [ द्रव्यस्य ] द्रव्यका [ अर्थेषु ] गुणपर्यायोंमें  
[ यः ] जो [ स्थितिसंभवनाशसंबद्धः ] ध्रौव्य, उत्पाद और व्ययसहित [ प-  
रिणामः ] परिणाम है [ सः ] वह [ हि ] ही [ स्वभावः ] स्वभाव है ।  
भावार्थ—द्रव्यके गुणपर्यायरूप परिणामनेको स्वभाव कहते हैं । और वह स्वभाव उ-  
त्पाद, व्यय, ध्रौव्यसहित है । जैसे एक द्रव्यके चौड़ाईरूप सूक्ष्मप्रदेश अनेक हैं,  
उसीप्रकार समस्त द्रव्योंकी परिणतिके प्रवाह क्रमसे लम्बाईरूप सूक्ष्मपरिणामभी अनेक  
हैं । द्रव्यकी चौड़ाई प्रदेश " " " " परिणति है । प्रदेश सदाकाल स्थायी हैं;

इह हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति द्रव्यं । स्वभावस्तु द्रव्यस्य ध्रौव्योत्पा-  
दोच्छेदैक्यात्मकपरिणामः । यथैव हि द्रव्यवास्तुनः सामस्येनैकस्यापि विष्कम्भकमप्रवृ-  
त्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः प्रदेशाः, तथैव हि द्रव्यवृत्तेः सामस्येनैकस्यापि प्रवाहकमप्रवृत्ति-  
वर्तिनः सूक्ष्मांशाः परिणामाः । यथा च प्रदेशानां परस्परव्यतिरेकनिवन्धनो विष्कम्भ-  
क्रमः, तथा परिणामानां परस्परव्यतिरेकनिवन्धनः प्रवाहक्रमः । यथैव च ते प्रदेशाः  
स्वस्थाने स्वरूपपूर्वरूपाभ्यामुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहवास्तुत-  
यानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहारध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति, तथैव ते परिणामाः  
स्वावसरे स्वरूपपूर्वरूपाभ्यामुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतयानुत्प-  
न्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहारध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति । यथैव च य एव हि पूर्वप्रदे-  
शोच्छेदनात्मको वास्तुसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यू-  
तिसूत्रितैकवास्तुतया तदुभयात्मक इति; तथैव य एव हि पूर्वपरिणामोच्छेदात्मकः  
प्रवाहसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाह-  
तया तदुभयात्मक इति । एवमस्य स्वभावत एव त्रिलक्षणायां परिणामपद्धतौ दुर्ललितस्य  
स्वभावानतिक्रमात्रिलक्षणमेव सत्त्वमनुमोदनीयं । मुक्ताफलदामवत् । यथैव हि परिगृ-  
हीतद्राघिमि प्रलम्बमाने मुक्ताफलदामनि समस्तेष्वपि स्वधामसूत्रकासत्सु मुक्ताफलेपू-  
त्तरोत्तरेषु धामसूत्रोत्तरमुक्ताफलानामुदयनात्पूर्वपूर्वमुक्ताफलानामनुदयनात् सर्वत्रापि पर-  
स्परानुस्यूतिसूत्रकस्य सूत्रकस्वावस्थानात्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति, तथैव हि परिग्रहीतनि-

संभ्रमस्तस्मिन्नेव क्षणे परमागमभापयैकत्ववितर्कविचारद्वितीयशुक्लध्यानसंज्ञस्य शुद्धोपादानभूतस्य  
सगस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनज्ञानपर्यायस्य नाशस्तस्मिन्नेव समये तदुभयाधारभूत-  
परमात्मद्रव्यस्य स्थितिरित्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण संबन्धो भवतीति । एवमुत्पादव्ययध्रौ-  
व्यत्रयेणैकसमये यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन परमात्मद्रव्यं परिणतं, तथापि द्रव्यार्थिकनयेन

इसीकारण चौड़ाई हैं, और परिणति प्रवाहरूप क्रमसे है इसीलिये लम्बाई है । जैसे  
द्रव्यके प्रदेश पृथक् २ हैं उसीप्रकार तीन कालसंबंधी परिणामभी जुदे २ हैं । और  
जैसे वे प्रदेश अपने २ स्थानोंमें अपने पूर्व २ प्रदेशोंकी अपेक्षा उत्पन्न हैं, उत्तर २  
( आगे २ ) प्रदेशोंकी अपेक्षा व्यय हैं । एक द्रव्य संपूर्ण प्रदेशोंमें है, इस अपेक्षासे न  
उत्पन्न होते हैं न नाश होते हैं, ध्रौव्य हैं । इसीकारण प्रदेश उत्पाद, व्यय और  
ध्रुवताको धारण किये हुए हैं । इसीप्रकार परिणाम अपने कालमें पूर्व उत्तर परिणा-  
मोंकी अपेक्षा उत्पाद व्ययरूप है, सदा एक परिणतिप्रवाहकी अपेक्षा ध्रौव्य है, इस-  
कारण परिणामभी उत्पाद-व्यय-ध्रुवता संयुक्त है । जो परिणाम है वही स्वभाव है  
और द्रव्य स्वभावके साथ है, इसकारण द्रव्यभी पूर्वोक्त तीन लक्षण युक्त है । जैसे  
मोतियोंकी मालामें अपनी प्रभासे शोभायमान जो मोती हैं वे पहले २ मोतियोंकी

त्यवृत्तिनिवर्तमाने द्रव्ये समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरोष्ववसरेषूत्तरोत्तरपरिणामानामुदयनात्पूर्वपूर्वपरिणामानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य प्रवाहस्यावस्थानात्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति ॥ ७ ॥

अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्पराविनाभावं दृश्यति;—

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो ।

उत्पादोचि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥ ८ ॥

न भवो भङ्गविहीनो भङ्गो वा नास्ति संभवविहीनः ।

उत्पादोपि च भङ्गो न विना ध्रौव्येणार्थेन ॥ ८ ॥

न खलु सर्गः संहारमन्तरेण, न संहारो वा सर्गमन्तरेण, न सृष्टिसंहारौ स्थितिमन्तरेण, न स्थितिः सर्गसंहारमन्तरेण । य एव हि सर्गः स एव संहारः, य एव संहारः स

सत्तालक्षणमेव भवति । त्रिलक्षणमपि सत्सत्तालक्षणं कथं भण्यत इति चेत् “उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्” इति वचनात् । यथेदं परमात्मद्रव्यमेकसमयेनोत्पादव्ययध्रौव्यैः परिणतमेव सत्तालक्षणं भण्यते, तथा सर्वद्रव्याणीत्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं स्वरूपसत्तारूपेण प्रथमगाथा, महासत्तारूपेण द्वितीया, यथा द्रव्यं स्वतःसिद्धं तथा सत्तागुणोपीति कथनेन तृतीया, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वेपि सत्तैव द्रव्यं भण्यत इति कथनेन चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्तालक्षणविवरणमुख्यतया द्वितीयस्थलं गतम् । अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्परसापेक्षत्वं दर्शयति;—ण भवो भंगविहीणो निर्दोषपरमात्मरुचिररूपसम्यक्त्वपर्यायस्य भव उत्पादः, तद्विपरीतमिध्यात्वपर्यायस्य भङ्गं विना न भवति । कस्मात् । उपादानकारणाभावात्, मृत्पिण्डभङ्गाभावे घटोत्पाद इव । द्वितीयं च कारणं मिध्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वपर्यायरूपेण प्रतिभासनात् । तदपि कस्मात् ।

अपेक्षा आगे २ के मोती उत्पादरूप हैं पिछले २ व्ययरूप हैं और सबमें सूत एक है, इस अपेक्षासे ध्रौव्य हैं । इसीप्रकार द्रव्यमें उत्तर परिणामोंकी अपेक्षा उत्पाद पूर्वपरिणामोंकी अपेक्षा व्यय और द्रव्य प्रवाहकी अपेक्षा ध्रौव्य है । इसतरह द्रव्य तीन लक्षणसहित है ॥ ७ ॥ अब कहते हैं कि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये आपसमें पृथक् नहीं हैं एकही हैं;—[ भङ्गविहीनः ] व्ययरहित [ भवः ] उत्पाद [ न ] नहीं होता [ वा ] तथा [ संभवविहीनः ] उत्पादरहित [ भङ्गः ] व्यय [ नास्ति ] नहीं होता [ च ] और [ उत्पादः ] उत्पाद [ अपि ] तथा [ भङ्गः ] व्यय ये दोनों [ विना ध्रौव्येण अर्थेन ] नित्य स्मिररूप पदार्थके विना [ न ] नहीं होते । भावार्थ—उत्पाद ~~व्यय~~ विना नहीं होता, व्यय उत्पादके विना नहीं होता, उत्पाद और व्यय ये दोनों ~~व्यय~~ नहीं होते, तथा ध्रौव्य उत्पाद-व्ययके ~~व्यय~~ है जो व्यय है वही उत्पाद है जो उत्पाद-व्यय है वही ध्रुवत ~~व्यय~~ दिखाते हैं—जैसे जो घड़ेका

एव सर्गः, यावेव सर्गसंहारौ सैव स्थितिः, यैव स्थितिस्तावेव सर्गसंहाराविति । तथाहि—  
य एव कुम्भस्य सर्ग स एव मृत्पिण्डस्यः संहारः, भावस्य भावान्तराभावस्वभावेनावभा-  
सनात् । य एव च मृत्पिण्डस्य संहारः स एव कुम्भस्य सर्गः, अभावस्य भावान्तरभाव-  
स्वभावेनावभासनात् । यौ च कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ सैव मृत्तिकायाः स्थितिः, व्यति-  
रेकमुखेनैवान्वयस्य प्रकाशनात् । यैव च मृत्तिकायाः स्थितिस्तावेव कुम्भपिण्डयोः  
सर्गसंहारौ, व्यतिरेकाणामन्वयानतिक्रमणात् । यदि पुनर्नेदमेवमिष्येत तदान्यः सर्गोऽन्यः  
संहारः अन्या स्थितिरित्यायाति । तथा सति हि केवलं सर्गं मृगयमाणस्य कुम्भस्योत्पा-  
दनकारणाभावादभवनिरेव भवेत्, असदुत्पाद एव वा । तत्र कुम्भस्याभवनौ सर्वेषामेव  
भावानामभवनिरेव भवेत् । असदुत्पादो वा व्योमप्रसवादीनामप्युत्पादः स्यात् । तथा केवलं  
संहरमाणस्य मृत्पिण्डस्य संहारकारणाभावादसंहरणिरैव भवेत्, सदुच्छेद एव वा । तत्र

“भावान्तरस्वभावरूपो भवत्यभाव” इति वचनात् । घटोत्पादरूपेण मृत्पिण्डभङ्ग इव । यदि  
पुनर्मिथ्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वोत्पादानकारणभूतस्याभावेऽपि शुद्धात्मानुभूतिरुचिररूपसम्यक्त्व-  
स्योत्पादो भवति, तर्ह्युत्पादानकारणरहितानां खपुष्पादीनामप्युत्पादो भवतु? न च तथा । भंगो  
वा णत्थि संभवविहीणो परद्रव्योत्पादेरूपमिथ्यात्वस्य भङ्गो नास्ति । कथंभूतः । पूर्वो-  
क्तसम्यक्त्वपर्यायसंभवरहितः । कस्मादिति चेत् । भङ्गकारणाभावात्, घटोत्पादाभावे मृत्पि-  
ण्डस्येव । द्वितीयं च कारणं सम्यक्त्वपर्यायोत्पादस्य मिथ्यात्वपर्यायाभावरूपेण दर्शनात् । तदपि  
कस्मात् । पर्यायस्य पर्यायान्तराभावरूपत्वाद्, घटपर्यायस्य मृत्पिण्डाभावरूपेणैव । यदि पुनः  
सम्यक्त्वोत्पादनिरपेक्षो भवति मिथ्यात्वपर्यायाभावास्तर्ह्यभाव एव न स्यात् । कस्मात् । अभा-

उत्पाद है वही मट्टीके पिंडका व्यय (नाश) है, क्योंकि एक पर्यायका उत्पाद ( उत्पन्न  
होना ) दूसरे पर्यायके नाशसे होता है । जो घड़े और पिंडका उत्पाद वही मट्टीकी  
ध्रुवता है क्योंकि पर्यायके विना द्रव्यकी स्थिति देखनेमें नहीं आती । जो माटीकी  
ध्रुवंता है वही घड़े और पिंडका उत्पाद-व्यय है, क्योंकि द्रव्यकी थिरताके विना पर्याय  
हो नहीं सकते । इसकारण ये तीनों एक हैं । ऐसा न मानें तो वस्तुका स्वभाव तीन लक्ष-  
णवाला सिद्ध नहीं होसकता । जो केवल उत्पादही माना जाय तो दो दोष लगते हैं—  
एक तो कार्यकी उत्पत्ति न होवे दूसरे असत्का उत्पाद होजाय । यही दिखाते हैं—  
घड़ेका जो उत्पाद है वह मृत्पिण्डके व्ययसे है, यदि केवल उत्पादही माना जावे व्यय  
न मानें तो उत्पादके कारणके अभावसे घड़ेकी उत्पत्तिही न हो सके और जिसतरह  
घटकार्य नहीं होसकता वैसे सब पदार्थभी उत्पन्न नहीं होसकते । यह पढ़ला दूषण  
है ॥ दूसरा दोष दिखाते हैं—जो ध्रुवपनासहित वस्तुके विना उत्पाद हो सके तो  
असत् वस्तुका उत्पाद हो जाना चाहिये, ऐसा होनेपर आकाशके फूलभी उत्पन्न होने

त्यवृत्तिनिवर्तमाने द्रव्ये समस्तेष्वपि स्वावसरेपूञ्जकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववसरेषूत्तो-  
त्तरपरिणामानामुदयनात्पूर्वपूर्वपरिणामानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य  
प्रवाहस्यावस्थानात्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति ॥ ७ ॥

अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्पराविनाभावं दृढयति;—

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो ।

उत्पादोवि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥ ८ ॥

न भवो भङ्गविहीनो भङ्गो वा नास्ति संभवविहीनः ।

उत्पादोपि च भङ्गो न विना ध्रौव्येणार्थेन ॥ ८ ॥

न खलु सर्गः संहारमन्तरेण, न संहारो वा सर्गमन्तरेण, न सृष्टिसंहारौ स्थितिमन्त-  
रेण, न स्थितिः सर्गसंहारमन्तरेण । य एव हि सर्गः स एव संहारः, य एव संहारः स

सत्तालक्षणमेव भवति । त्रिलक्षणमपि सत्सत्तालक्षणं कथं भण्यत इति चेत् “उत्पादव्यय-  
ध्रौव्ययुक्तं सत्” इति वचनात् । यथेदं परमात्मद्रव्यमेकसमयेनोत्पादव्ययध्रौव्यैः परिणतमेव स-  
त्तालक्षणं भण्यते, तथा सर्वद्रव्याणीत्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं स्वरूपसत्तारूपेण प्रथमगाथा, महा-  
सत्तारूपेण द्वितीया, यथा द्रव्यं स्वतःसिद्धं तथा सत्तागुणोपीति कथनेन तृतीया, उत्पादव्य-  
यध्रौव्यत्वेपि सत्तैव द्रव्यं भण्यत इति कथनेन चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्तालक्षणविवरण-  
मुल्यतया द्वितीयस्यलं गतम् । अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्परसापेक्षत्वं दर्शयति;—ण भवो  
भंगविहीणो निर्दोषपरमात्मरुचिरूपसम्यक्त्वपर्यायस्य भव उत्पादः, तद्विपरीतमिध्यात्वपर्यायस्य  
भङ्गं विना न भवति । कस्मात् । उपादानकारणाभावात्, मृत्पिण्डमङ्गामावे घटोत्पाद इव ।  
द्वितीयं च कारणं मिध्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वपर्यायरूपेण प्रतिभासनात् । तदपि कस्मात् ।

अपेक्षा आगे २ के मोती उत्पादरूप हैं पिछले २ व्ययरूप हैं और सबमें सूत एक है,  
इस अपेक्षासे ध्रौव्य हैं । इसीप्रकार द्रव्यमें उत्तर परिणामोंकी अपेक्षा उत्पाद पूर्वपरि-  
णामोंकी अपेक्षा व्यय और द्रव्य प्रवाहकी अपेक्षा ध्रौव्य है । इसतरह द्रव्य तीन  
लक्षणसहित है ॥ ७ ॥ अब कहते हैं कि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये आपसमें पृथक्  
नहीं हैं एकही हैं;—[ भङ्गविहीनः ] व्ययरहित [ भवः ] उत्पाद [ न ]  
नहीं होता [ वा ] तथा [ संभवविहीनः ] उत्पादरहित [ भङ्गः ] व्यय  
[ नास्ति ] नहीं होता [ च ] और [ उत्पादः ] उत्पाद [ अपि ] तथा [ भङ्गः ]  
व्यय ये दोनों [ विना ध्रौव्येण अर्थेन ] नित्य स्थिररूप पदार्थके विना [ न ]  
नहीं होते । भावार्थ—उत्पाद व्ययके विना नहीं होता, व्यय उत्पादके विना नहीं  
होता, उत्पाद और व्यय ये दोनों ध्रौव्यके विना नहीं होते, तथा ध्रौव्य उत्पाद-व्ययके  
विना नहीं होता । इसकारण जो उत्पाद है वही व्यय है जो व्यय है वही उत्पाद है  
जो उत्पाद-व्यय है वही ध्रुवता है । इस कथनको दृष्टान्तसे दिखाते हैं—जैसे जो घड़ेका

उत्पादस्थितिभङ्गा विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः ।

द्रव्यं हि सन्ति नियतं तस्माद्द्रव्यं भवति सर्वम् ॥ ९ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्याणि हि पर्यायानालम्बन्ते, ते पुनः पर्याया द्रव्यमालम्बन्ते । ततः समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं न पुनर्द्रव्यान्तरं । द्रव्यं हि तावत्पर्यायैरालम्ब्यते । समुदायिनः समुदायात्मकत्वात् पादपवत् । यथा हि समुदायी पादपः स्कन्धमूलशाखासमुदायात्मकः स्कन्धमूलशाखाभिरालम्बित एव प्रतिभाति, तथा समुदायि द्रव्यं पर्यायसमुदायात्मकं पर्यायैरालम्बितमेव प्रतिभाति । पर्यायास्तूत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्बन्ते उत्पादव्ययध्रौव्याणामंशधर्मत्वात् बीजाङ्कुरपादपवत् । यथा किलांशिनः पादपस्य बीजाङ्कुरपादपत्वलक्षणान्त्रयोऽशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति, तथांशिनो द्रव्यस्योच्छिद्यमानोत्पद्यमानावतिष्ठमानभावलक्षणान्त्रयोऽशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति । यदि पुनर्भङ्गोत्पादध्रौव्याणि द्रव्यस्यैवेप्यन्ते

क्तलक्षणान्त्रयो भङ्गाः कर्तारः विज्जन्ते विद्यन्ते तिष्ठन्ति । केषु । पञ्जाएसु सम्यक्त्वपूर्वकनिर्धिकारस्वसंवेदनज्ञानपर्याये तावदुत्पादस्तिष्ठति स्वसंवेदनज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्यायेण ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षणस्वकीयस्वकीयपर्यायेषु पञ्जाया द्रव्यं हि संति ते चोक्तलक्षणज्ञानाञ्ज्ञानतदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्याया हि स्फुटं द्रव्यं सन्ति णियदं निश्चितं प्रदेशाभेदेपि स्वकीयस्वकीयसंज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन तम्हा द्रव्यं हवदि सर्व्वं यतो निश्चयाधाराधेयभावेन तिष्ठन्त्युत्पादादयस्तस्मात्कारणादुत्पादादित्रयं स्वसंवेदनज्ञानादिपर्या-

करके वे [ पर्यायाः ] पर्याय [ द्रव्ये ] द्रव्यमें [ सन्ति ] रहते हैं । [ तस्मात् ] इस कारणसे [ नियतं ] यह निश्चय है कि [ सर्व ] उत्पादादि सब [ द्रव्यं ] द्रव्य ही [ भवन्ति ] हैं जुदे नहीं हैं । भावार्थ—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभाव पर्यायके आश्रित हैं और वे पर्याय द्रव्यके आधार हैं पृथक् नहीं हैं । क्योंकि द्रव्य पर्यायात्मक है । जैसे वृक्ष स्कंध ( पींड ), शाखा और मूलादिरूप है परन्तु ये स्कन्ध-मूल-शाखादि वृक्षसे जुदे पदार्थ नहीं हैं । इसीप्रकार उत्पादादिकसे द्रव्य पृथक् नहीं है एकही है । द्रव्य अंशी है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंश हैं । जैसे वृक्ष अंशी है बीज-अंकुर-वृक्षत्व अंश हैं । ये तीनों अंश उत्पाद-व्यय और ध्रुवपनेको लिये हुए हैं, बीजका नाश अंकुरका उत्पाद और वृक्षत्वका ध्रुवपना है । इसीप्रकार अंशी द्रव्यके उत्पद्यमान विनाशीक और स्थिरतारूप-ये तीन पर्यायरूप अंश हैं सो उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वसे संयुक्त हैं । उत्पाद व्यय ध्रुवभाव पर्यायोंमें होते हैं । जो द्रव्यमें होवें तो सबका ही नाश होजावे । इसीको स्पष्टरीतिसे दिखाते हैं—जो द्रव्यका नाश होवे तो सब शून्य होजावे, जो द्रव्यका उत्पाद होवे तो समय २ में एक २ द्रव्यके उत्पन्न होनेसे अनन्त द्रव्य होजावें, और जो द्रव्य ध्रौव्य होवे तो पर्यायका नाश होवे और पर्यायके नाशसे द्र-

मृत्पिण्डस्यासंहरणौ सर्वेषामेव भावानामसंहरणिव भवेत् । सदुच्छेदे वा संविदादीना-  
मप्युच्छेदः स्यात् । तथा केवलां स्थितिमुपगच्छन्त्या मृत्तिकाया व्यतिरेकाक्रान्तस्थित्वन्-  
याभावादस्थानिरेव भवेत्, क्षणिकनित्यत्वमेव वा । तत्र मृत्तिकाया अस्थानौ सर्वेषामेव  
भावानामस्थानिरेव भवेत् । क्षणिकनित्यत्वे वा चित्तक्षणानामपि नित्यत्वं स्यात् । तत्  
उत्तरोत्तरव्यतिरेकाणां सर्गेण पूर्वपूर्वव्यतिरेकाणां संहारेणान्वयस्यावस्थानेनाविनाभूतमुद्यो-  
तमाननिर्विघ्नत्रैलक्षण्यलाञ्छनं द्रव्यमवश्यमनुमन्तव्यम् ॥ ८ ॥

अथोत्पादादीनां द्रव्यादर्थान्तरत्वं संहरति;—

उत्पादद्विदिभंगा चिज्जंते पज्जएसु पज्जाया ।

दब्बं हि संति णियदं तम्हा दब्बं हवदि सब्बं ॥ ९ ॥

चकारणाभावादिति, घटोत्पादाभावे मृत्पिण्डाभावस्य इव । उत्पादोवि य भंगो ण विणा  
दब्बेण अत्थेण परमात्मरुचिरूपसम्यक्त्वस्योत्पादस्तद्विपरीतमिध्यात्वस्य भङ्गो वा नास्ति ।  
कं विना । तदुभयाधारभूतपरमात्मरूपद्रव्यपदार्थं विना । कस्मात् । द्रव्याभावे व्योत्पादाभा-  
वान्मृत्तिकाद्रव्याभावे घटोत्पादमृत्पिण्डभङ्गाभावादिति । यथा सम्यक्त्वमिध्यात्वपर्यायद्वये परस्पर-  
सापेक्षमुत्पादादित्रयं दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेषु द्रष्टव्यमित्यर्थः ॥ ८ ॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्यापि  
द्रव्येण सह परस्पराधाराधेयभावत्वाद्बन्धद्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यमेव भवतीत्युपदिशति;—उत्पा-  
दद्विदिभंगा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे  
स्वसंवेदनज्ञानविलक्षणाज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गः, तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्मारूपेण स्थितिरित्यु-

ल्लगंगे । और जो केवल व्यय ही मानेंगे तौभी दो दूषण आवेंगे । एक तो नाशहीका  
अभाव हो जावेगा, क्योंकि मृत्पिण्डका नाश घड़ेके उत्पन्न होनेसे है, अर्थात् यदि केवल  
नाशही मानेंगे तो नाशका अभाव सिद्ध होगा क्योंकि नाश उत्पादके विना नहीं होता ।  
दूसरे सत्का नाश होवेगा और सत्के नाश होनेसे ज्ञानादिककाभी नाश होकर  
धारणा न होगी । और केवल ध्रुवके नाश माननेसेभी दो दूषण लगते हैं । एक तो  
पर्यायका नाश होता है दूसरे अनित्यको नित्यपना होता है । जो पर्यायका नाश  
हीगा तो पर्यायके विना द्रव्यका अस्तित्व नहीं है इसलिये द्रव्यके नाशका प्रसंग आता  
है, जैसे मृत्तिकाका पिण्ड घटादि पर्यायोंके विना नहीं होता । और जो अनित्यको नित्यत्व  
हीगा तो मनकी गतिकोभी नित्यता होगी । इसलिये इन सब कारणोंसे यह बात सिद्ध  
हुई कि केवल एकके माननेसे वस्तु सिद्ध नहीं होती है । इसलिये आगामी पर्यायका  
उत्पाद, पूर्वपर्यायका व्यय, मूलवस्तुकी स्थिरता इन तीनोंकी एकतासे ही द्रव्यका ल-  
क्षण निर्विघ्न सघता है ॥ ८ ॥ आगे उत्पाद—व्यय और ध्रौव्य इन तीनों भावोंको  
द्रव्यसे अभेदरूप सिद्ध करते हैं;—[ उत्पादस्थितिभङ्गाः ] उत्पाद, व्यय और  
ध्रौव्य [ पर्यायेषु ] द्रव्यके पर्यायोंमें [ त्रिव्यन्ते ] रहते हैं और [ द्वि ] निधाय-

उत्पादस्थितिभङ्गा विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः ।

द्रव्यं हि सन्ति नियतं तस्माद्द्रव्यं भवति सर्वम् ॥ ९ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्याणि हि पर्यायानालम्बन्ते, ते पुनः पर्याया द्रव्यमालम्बन्ते । ततः समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं न पुनर्द्रव्यान्तरं । द्रव्यं हि तावत्पर्यायैरालम्ब्यते । समुदायिनः समुदायात्मकत्वात् पादपवत् । यथा हि समुदायी पादपः स्कन्धमूलशाखासमुदायात्मकः स्कन्धमूलशाखाभिरालम्बित एव प्रतिभाति, तथा समुदायि द्रव्यं पर्यायसमुदायात्मकं पर्यायैरालम्बितमेव प्रतिभाति । पर्यायास्तुत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्बन्ते उत्पादव्ययध्रौव्याणामंशधर्मत्वात् बीजाङ्कुरपादपवत् । यथा किलांशिनः पादपस्य बीजाङ्कुरपादपत्वलक्षणान्त्रयोऽंशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति, तथांशिनो द्रव्यस्योच्छिद्यमानोत्पद्यमानावतिष्ठमानभावलक्षणान्त्रयोऽंशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति । यदि पुनर्भङ्गोत्पादध्रौव्याणि द्रव्यस्यैवेद्यन्ते

क्तलक्षणान्त्रयो भङ्गाः कर्तारः विज्जन्ते विद्यन्ते तिष्ठन्ति । केषु । पञ्जएसु सम्यक्त्वपूर्वकनिर्धिकारस्वसंवेदनज्ञानपर्याये तावदुत्पादस्तिष्ठति स्वसंवेदनज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्यायेण ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षणस्वकीयस्वकीयपर्यायेषु पञ्जाया द्रव्यं हि संति ते चोक्तलक्षणज्ञानाञ्ज्ञानतदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्याया हि स्फुटं द्रव्यं सन्ति णियदं निश्चितं प्रदेशाभेदेपि स्वकीयस्वकीयसंज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन तम्हा द्रव्यं हवदि सर्वं यतो निश्चयाधाराधेयभावेन तिष्ठन्त्युत्पादादयस्तस्मात्कारणादुत्पादादित्रयं स्वसंवेदनज्ञानादिपर्या-

करके वे [ पर्यायाः ] पर्याय [ द्रव्ये ] द्रव्यमें [ सन्ति ] रहते हैं । [ तस्मात् ] इस कारणसे [ नियतं ] यह निश्चय है कि [ सर्वं ] उत्पादादि सब [ द्रव्यं ] द्रव्य ही [ भवति ] हैं जुदे नहीं हैं । भावार्थ—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभाव पर्यायके आश्रित हैं और वे पर्याय द्रव्यके आधार हैं पृथक् नहीं हैं । क्योंकि द्रव्य पर्यायात्मक है । जैसे वृक्ष स्कंध ( पींड ), शाखा और मूलादिरूप है परन्तु ये स्कन्ध-मूल-शाखादि वृक्षसे जुदे पदार्थ नहीं हैं । इसीप्रकार उत्पादादिकसे द्रव्य पृथक् नहीं है एकही है । द्रव्य अंशी है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंश हैं । जैसे वृक्ष अंशी है बीज-अंकुर-वृक्षत्व अंश हैं । ये तीनों अंश उत्पाद-व्यय और ध्रुवपनेको लिये हुए हैं, बीजका नाश अंकुरका उत्पाद और वृक्षत्वका ध्रुवपना है । इसीप्रकार अंशी द्रव्यके उत्पद्यमान विनाशीक और स्थिरतारूप-ये तीन पर्यायरूप अंश हैं सो उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वसे संयुक्त हैं । उत्पाद व्यय ध्रुवभाव पर्यायोंमें होते हैं । जो द्रव्यमें होवें तो सबका ही नाश होजावे । इसीको स्पष्टरीतिसे दिखाने हैं—जो द्रव्यका नाश होवे तो सय शून्य होजावे, जो द्रव्यका उत्पाद होवे तो समय २ में एक २ द्रव्यके उत्पन्न होनेसे अनन्त द्रव्य होजायें, और जो द्रव्य ध्रौव्य होवे तो पर्यायका नाश होवे और पर्यायके नाशसे द्र-



मृत्पिण्डस्यासंहरणौ सर्वेषामेव भावानामसंहरणैरेव भवेत् । सदुच्छेदे वा संविदादीना-  
मप्युच्छेदः स्यात् । तथा केवलां स्थितिमुपगच्छन्त्या मृत्तिकाया व्यतिरेकाक्रान्तस्थित्यन्व-  
याभावादस्थानिरेव भवेत्, क्षणिकनित्यत्वमेव वा । तत्र मृत्तिकाया अस्थानौ सर्वेषामेव  
भावानामस्थानिरेव भवेत् । क्षणिकनित्यत्वे वा चित्तक्षणानामपि नित्यत्वं स्यात् । तत्  
उत्तरोत्तरव्यतिरेकाणां सर्गेण पूर्वपूर्वव्यतिरेकाणां सहारेणान्वयस्यावस्थानेनाविनाभूतमुद्यो-  
तमाननिर्विघ्नैलक्षण्यलाञ्छनं द्रव्यमवश्यमनुमन्तव्यम् ॥ ८ ॥

अथोत्पादादीनां द्रव्यादर्थान्तरत्वं संहरति;—

उत्पादद्विदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया ।

दब्बं हि संति णियदं तम्हा दब्बं ह्वदि सव्वं ॥ ९ ॥

वकारणाभावादिति, घटोत्पादाभावे मृत्पिण्डाभावस्य इव । उत्पादोचि य भंगो ण विणा  
दब्बेण अत्थेण परमात्मरुचिरूपसम्बन्धत्वस्योत्पादस्तद्विपरीतमिध्यात्वस्य भङ्गो वा नास्ति ।  
कं विना । तदुभयाधारभूतपरमात्मरूपद्रव्यपदार्थं विना । कस्मात् । इव्याभावे व्ययोत्पादाभा-  
वान्मृत्तिकाद्रव्याभावे घटोत्पादमृत्पिण्डभङ्गाभावादिति । यथा सम्बन्धमिध्यात्वपर्यायद्वये परस्पर-  
सापेक्षमुत्पादादित्रयं दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेषु द्रष्टव्यमित्यर्थः ॥ ८ ॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्याणि  
द्रव्येण सह परस्पराधाराधेयभावत्वादन्वयद्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यमेव भवतीत्युपदिशति;—उत्पा-  
दद्विदिभंगा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे  
स्वसंवेदनज्ञानविलक्षणाज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गः, तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपेण स्थितिरित्यु-

लगेंगे । और जो केवल व्यय ही मानेंगे तौभी दो दूषण आवेंगे । एक तो नाशहीका  
अभाव हो जावेगा, क्योंकि मृत्पिण्डका नाश घड़ेके उत्पन्न होनेसे है, अर्थात् यदि केवल  
नाशही मानेंगे तो नाशका अभाव सिद्ध होगा क्योंकि नाश उत्पादके विना नहीं होता ।  
दूसरे सत्का नाश होवेगा और सत्के नाश होनेसे ज्ञानादिककाभी नाश होकर  
धारणा न होगी । और केवल ध्रुवके नाश माननेसेभी दो दूषण लगते हैं । एक तो  
पर्यायका नाश होता है दूसरे अनित्यको नित्यपना होता है । जो पर्यायका नाश  
होगा तो पर्यायके विना द्रव्यका अस्तित्व नहीं है इसलिये द्रव्यके नाशका प्रसंग आता  
है, जैसे मृत्तिकाका पिंड घटादि पर्यायोंके विना नहीं होता । और जो अनित्यको नित्यत्व  
होगा तो मनकी गतिकोभी नित्यता होगी । इसलिये इन सब कारणोंसे यह बात सिद्ध  
हुई कि केवल एकके माननेसे वस्तु सिद्ध नहीं होती है । इसलिये आगामी पर्यायका  
उत्पाद, पूर्वपर्यायका व्यय, मूलवस्तुकी स्थिरता इन तीनोंकी एकतासे ही द्रव्यका ल-  
क्षण निर्विघ्न सघता है ॥ ८ ॥ आगे उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य इन तीनों भावोंको  
द्रव्यसे अमेदरूप सिद्ध करते हैं;—[ उत्पादस्थितिभङ्गाः ] उत्पाद, व्यय और  
ध्रौव्य [ पर्यायेषु ] द्रव्यके पर्यायोंमें [ विशन्ते ] रहते हैं और [ हि ] निश्चय-

इह हि यो नाम वस्तुनो जन्मक्षणः स जन्मनैव व्यासत्वात् स्थितिक्षणो नाशक्षणश्च न भवति । यश्च स्थितिक्षणः स खलूभयोरन्तरालदुर्ललितत्वाज्जन्मक्षणो नाशक्षणश्च न भवति । यश्च नाशक्षणः स तूत्पाद्यावस्थया च नश्यतो जन्मक्षणः स्थितिक्षणश्च न भवति । इत्युत्पादादीनां वितर्क्यमाणः क्षणभेदो हृदयभूमिमवतरति, अवतरत्येवं यदि द्रव्यमात्मनैवोत्पद्यते आत्मनैवावतिष्ठते आत्मनैव नश्यतीत्यभ्युपगम्यते । तत्तु नाभ्युपगतं । पर्यायाणामेवोत्पादादयः कुतः क्षणभेदः । तथाहि—यथा कुलालदण्डचक्रचीवरा रोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एव वर्धमानस्य जन्मक्षणः स एव मृत्पिण्डस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य मृत्तिकात्वस्य स्थितिक्षणः । तथा अन्तरङ्गवहिरङ्गाधनारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एवोत्तरपर्यायस्य जन्मक्षणः स एव प्राक्तनपर्यायस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य द्रव्यत्वस्य स्थितिक्षणः । यथा च वर्धमानमृत्पिण्डमृत्तिकात्वेपु प्रत्येकवर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिन्यां मृत्तिकायां सामस्त्येनैकसमय एवावलोक्यन्ते, तथा उत्तरप्राक्तनपर्यायद्रव्यत्वेपु प्रत्येकवर्तीन्युत्पादव्ययध्रौ-

एकस्मि चेव समये अङ्गुलिद्रव्यस्य वक्रपर्यायवत्संसारजीवस्य मरणकाले ऋजुगतिवत् क्षीणकपायचरमसमये केवलज्ञानोत्पत्तिवदयोगिचरमसमये मोक्षवञ्चैलेकस्मिन्समय एव । तस्माद् दृढं खु तत्तिदयं यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेणैकसमये भङ्गत्रयेण परिणमति तस्मात्संज्ञालक्षणप्रयोजना-

क्योंकि जो समय उत्पादका है वह उत्पादहीसे व्याप्त है वह ध्रौव्य व्ययका समय नहीं है । जो ध्रौव्यका समय है वह उत्पाद व्ययके मध्य है इससेभी जुदा ही समय है । और जो नाशका समय है उस समय उत्पाद ध्रौव्य नहीं होसके । इसकारण यह समयभी पृथक् है । इसप्रकार इनके समय पृथक् २ संभव होते हैं; सो इस कुतर्कका समाधान आचार्य महाराज इसप्रकार करते हैं कि, “जो द्रव्य आपही उत्पन्न होता, आपही स्थिर होता और आपही नष्ट होता तो अवश्यही तीन समय होते परंतु ऐसा नहीं है” । पर्यायसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य होते हैं इसकारण एकही समयमें सधते हैं । जैसे दंड चक्र सूत कुंभकारादिके निमित्तसे घटके उत्पन्न होनेका जो समय है वही मृत्पिण्डके नाशका समय है और इन दोनों अवस्थाओंमें मृत्तिका अपने स्वभावको नहीं छोड़ती है इसलिये उसीसमय ध्रुवपनाभी है । इसीप्रकार अंतरंग—वहिरंग कारणोंके होनेपर आगामी पर्यायके उत्पन्न होनेका जो समय है वही पूर्व पर्यायके नाशका समय है और इन दोनों अवस्थाओंमें द्रव्य अपने स्वभावको छोड़ता नहीं है इसलिये उसीसमय ध्रौव्य है । जैसे मृत्तिका द्रव्यमें घट, मृत्पिण्ड और मृत्तिकाभाव इन पर्यायोंसे एकही समयमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; उसीप्रकार पर्यायोंके द्वारा द्रव्यमेंभी जानना चाहिये । पूर्व पर्यायका नाश, उत्तर पर्यायका उत्पाद और द्रव्यत्वसे ध्रुवता-ये तीन भाव एकही समयमें सधते हैं । हां ! यदि द्रव्यही उपजता विनशता तो एक समय अवश्यही नहीं

तदा समग्रमेव विभ्रवते । तथाहि भङ्गे तावत् क्षणभङ्गकटाक्षितानामेकक्षण एव सर्व-  
द्रव्याणां संहरणाद्रव्यशून्यतावतारः समुच्छेदो वा । उत्पादे तु प्रतिसमयोत्पादमुद्रितानां  
प्रत्येकं द्रव्याणामानन्त्यमसदुत्पादो वा । ध्रौव्ये तु क्रमभुवां भावानामभावाद्रव्यसाभावः  
क्षणिकत्वं वा । अत उत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्ब्यन्तां पर्यायाः पर्यायैश्च द्रव्यमालम्ब्यतां,  
येन समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं भवति ॥ ९ ॥

अथोत्पादादीनां क्षणभेदमुदस्य द्रव्यत्वं द्योतयति;—

समवेदं खलु द्रव्यं संभवच्छिदिणाससण्णदद्वेहिं ।

एकस्मि चैव समये तस्माद्द्रव्यं खलु तत्तित्तिदयं ॥ १० ॥

समवेतं खलु द्रव्यं संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः ।

एकस्मिन् चैव समये तस्माद्द्रव्यं खलु तत्रितयम् ॥ १० ॥

यत्रयं चान्वयद्रव्यार्थिकनयेन सर्वं द्रव्यं भवति । पूर्वोक्तोत्पादादित्रयस्य तथैव स्वसंवेदनज्ञा-  
नादिपर्यायत्रयस्य चानुगताकारेणान्वयरूपेण यदाधारभूतं तदन्वयद्रव्यं भण्यते, तद्विषयो  
यस्य स भवत्यन्वयद्रव्यार्थिकनयः । यथेदं ज्ञानाज्ञानपर्यायद्वये भङ्गत्रयं व्याख्यातं तथापि सर्वद्र-  
व्यपर्यायेषु यथासंभवं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः ॥ ९ ॥ अथोत्पादादीनां पुनरपि प्रकारान्तरेण द्रव्येण  
सहामेदं समर्थयति समयभेदं च निराकरोति;—समवेदं खलु द्रव्यं समवेतमेकीभूतमभिन्नं  
भवति खलु स्फुटं । किं । आत्मद्रव्यं । कैः सह संभवच्छिदिणाससण्णदद्वेहिं सम्पक्व-  
ज्ञानपूर्वकनिश्चलनिर्विकारनिजात्मानुभूतिलक्षणवीतरागचारित्रपर्यायेणोत्पादः तथैव रागादिपर-  
द्रव्यैकत्वपरिणतिरूपचारित्रपर्यायेण नाशस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थास्यरूपपर्यायेण स्थितिरित्यु-  
क्तलक्षणसंज्ञितोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह । तर्हि किं बौद्धमतवद्विन्नभिन्नसमये त्रयं भविष्यति । नैवं ।

व्यकाभी नाश होजावे । इसलिये उत्पादादि द्रव्यके आश्रित नहीं हैं पर्यायके आ-  
श्रित हैं । पर्याय उत्पन्नभी होते हैं, नष्टभी होते हैं और वस्तुकी अपेक्षा स्थिरभी रहते  
हैं । इसकारण वे पर्यायमें हैं पर्याय द्रव्यसे जुड़े नहीं हैं द्रव्यही हैं । पर्यायकी अपेक्षा  
द्रव्योंमें उत्पादादिक तीन भाव जानना चाहिये ॥ ९ ॥ आगे इन उत्पादादिकोंमें  
समय भेद नहीं है, एकही समयमें द्रव्यसे अमेदरूप होते हैं यह प्रगट करते हैं;—  
[ द्रव्यं ] वस्तु [ संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः ] उत्पादव्ययध्रौव्य नामक भा-  
वोंसे [ खलु ] निश्चयकर [ समवेतं ] एकमेक है जुड़ी नहीं है [ च ] और  
यह [ एकस्मिन् एव समये ] एकही समयमें उनसे अमेदरूप परिणमन करती  
है । [ तस्मात् ] इसकारण [ खलु ] निश्चयकरके [ तत् त्रितयं ] वह उत्पादादिक-  
त्रिक [ द्रव्यं ] द्रव्य स्वरूप है—एकही है । भावार्थ—यहां कोई वितर्क करे कि उत्पाद-  
व्यय-ध्रौव्य एक समयवर्ती हैं—यह सिद्धान्त ठीक नहीं हैं, इन तीनोंका समय जुदा रहै,

समानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च । समानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते । यथा चैको मनुष्यत्वलक्षणोऽसमानजातीयो विनश्यत्यन्यस्त्रिदंशत्वलक्षणः प्रजायते तौ च जीवपुद्गलौ अविनष्टानुत्पन्नावेवातिष्ठेते, तथा सर्वेप्यसमानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च असमानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते । एवमात्मना ध्रुवाणि द्रव्यपर्यायद्वारेणोत्पादव्ययीभूतान्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्याणि भवन्ति ॥ ११ ॥

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति;—

परिणमदि स्वयं द्रव्यं गुणदो य गुणंतरं सद्विसिद्धं ।

तस्माद्गुणपञ्जाया भणिया पुण द्रव्यमेवति ॥ १२ ॥

परिणमति स्वयं द्रव्यं गुणतश्च गुणान्तरं सद्विशिष्टम् ।

तस्माद्गुणपर्याया भणिताः पुनः द्रव्यमेवेति ॥ १२ ॥

रूपो विभावद्रव्यपर्यायो जायते मनुष्यादिरूपो विनश्यति तदेव जीवद्रव्यं निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टं, पुद्गलद्रव्यं वा द्रव्यशुकादिस्फुरणरूपस्वजातीयविभावद्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेपि निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टमिति । ततः स्थितं यतः कारणादुत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण द्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेपि द्रव्यस्य विनाशो नास्ति, ततः कारणाद्रव्यपर्याया अपि द्रव्यलक्षणं भवन्तीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥ अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यादिगुणपर्यायमुख्यत्वेन प्रतिपादयति;—परिणमदि स्वयं द्रव्यं परिणमति स्वयं स्वयमेवोपादानकारणभूतं जीवद्रव्यं कर्तुं । कं परिणमति । गुणदो य गुणंतरं निरुपमरागस्वसंवेदनगुणात्केवलज्ञानोत्पत्तिबीजभूताः सकाशास्तकलविमलकेवलज्ञानगुणान्तरं । कथंभूतं सत्परिणमति । सद्विसिद्धं स्वकीयस्वरूपत्वाच्चिद्रूपास्तित्वादविशिष्टमभिन्नं । तस्माद्गुणपञ्जाया भणिया पुण द्रव्यमेवेति तस्मात्का-

इसीप्रकार सब जातिके द्रव्यपर्याय उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप जानना चाहिये । और जैसे जीव पुद्गलके संयोगसे असमान जातिका मनुष्यरूप द्रव्यपर्याय नष्ट होता है और देवरूप द्रव्यपर्याय उत्पन्न होता है, परंतु द्रव्यत्वकी अपेक्षासे जीव-पुद्गल न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं, ध्रुव हैं, इसीप्रकार औरभी असमानजातीय द्रव्यपर्यायोंको उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप जानना चाहिये । 'द्रव्य' पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद-व्ययस्वरूप है और द्रव्यपनेकी अपेक्षा ध्रुवरूप है । उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, ये तीनों द्रव्यसे अभेदरूप हैं इसलिये द्रव्यही हैं अन्य वस्तुरूप नहीं हैं ॥ ११ ॥ आगे एक द्रव्यपर्याय-द्वारसे उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य दिखलाते हैं;—[ सद्विशिष्टं ] अपने स्वरूपास्तित्वसे अभिन्न [ द्रव्यं ] सत्त्वरूप वस्तु [ स्वयं ] आपही [ गुणतः ] एक गुणसे [ गुणान्तरं ] अन्यगुणरूप [ परिणमति ] परिणमन करती है । [ तस्मात् ] इस कारण [ च पुनः ] फिर [ गुणपर्यायाः ] गुणोंके पर्याय [ द्रव्यमेव ] द्रव्यही

व्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिनि द्रव्ये सामस्त्येनैकसमय एवावलोक्यन्ते । यथैव च वर्द्धमानपिण्डमृत्तिकात्ववर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि मृत्तिकैव न वस्त्वन्तरं, तथैवोत्तरप्राक्तनपर्यायद्रव्यत्ववर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्यमेव न स्वत्वान्तरम् ॥ १० ॥

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्यनेकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति;—

प्रादुर्भवति य अण्णो पज्जाओ पज्जाओ वयदि अण्णो ।

द्व्वस्स तंपि द्व्वं णेव पण्हं ण उत्पण्णं ॥ ११ ॥

प्रादुर्भवति चान्यः पर्यायः पर्यायो व्येति अन्यः ।

द्रव्यस्य तदपि द्रव्यं नैव प्रणष्टं नोत्पन्नम् ॥ ११ ॥

इह हि यथा किलैकहयणुकः समानजातीयोनेकद्रव्यपर्यायो विनश्यत्यन्यश्चतुरणुकः प्रजायते, ते तु त्रयश्चत्वारो वा पुद्गला अविनष्टानुत्पन्ना एवावतिष्ठन्ते; तथा सर्वेपि

दिभेदेपि प्रदेशानामभेदात्रयमपि खु स्फुटं द्रव्यं भवति । यथेदं चारित्राचारित्रपर्यायद्वये भद्र-त्रयमभेदेन दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेष्ववबोधद्रव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ एवमुत्पादव्ययध्रौव्यरूप-लक्षणव्याख्यानमुह्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतम् । अथ द्रव्यपर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्याणि दर्शयति;—प्रादुर्भवति य प्रादुर्भवति च जायते अण्णो अन्यः कश्चिदपूर्वानन्तज्ञानमु-

खादिगुणास्पदभूतः शाश्वतिकः । स कः । पज्जाओ परमात्मावांतिरूपः स्वभावद्रव्यपर्याय पज्जाओ वयदि अण्णो पर्यायो व्येति विनश्यति । कथंभूतः । अन्यः पूर्वोक्तमोक्षपर्याया-

द्विनो निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपस्यैव मोक्षपर्यायस्योपादानकारणभूतः । कस्य संबन्धी पर्यायः । द्व्वस्स परमात्मद्रव्यस्य तंपि द्व्वं तदपि परमात्मद्रव्यं णेव य ण्हं ण उत्पण्णं शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नैव नष्टं न चोत्पन्नम् । अथवा संसारिजीवापेक्षया देवादि-

सघता परंतु पर्यायकी अपेक्षा अच्छीतरह सघते हैं, कोई शंका नहीं रहती । और जैसे घट, मृत्पिण्ड, मृत्तिकाभावरूप उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य मृत्तिकासे जुदे पदार्थ नहीं हैं मृत्तिका-रूपही हैं; उसीप्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य-ये द्रव्यसे जुदे नहीं हैं द्रव्यस्वरूपही हैं

॥ १० ॥ आगे अनेक द्रव्योंके संयोगसे जो पर्याय होते हैं उनके द्वारा उत्पाद-व्यय ध्रौव्यका निरूपण करते हैं;—[ द्रव्यस्य ] समानजातिवाले द्रव्यका [ अन्यः पर्यायः ] अन्यपर्याय [ प्रादुर्भवति ] उत्पन्न होता है [ च ] और [ अन्यः पर्यायः ] दूसरा पर्याय [ व्येति ] विनष्ट होता है [ तदपि ] तौभी [ द्रव्यं ] समान तथा असमानजातीय द्रव्य [ नैव प्रणष्टं ] न तो नष्टही हुआ है और [ न उत्पन्नं ] न उत्पन्न हुआ है, द्रव्यपनेसे भुव है । भावार्थ—संयोगवाले द्रव्यपर्याय दो प्रकारके हैं, एक समानजातीय और दूसरे असमान जातीय । जैसे तीन परमाणु-ओंका समानजातीय रकंध ( पिंड ) पर्याय नष्ट होता है और चार परमाणुओंका स्कन्ध उत्पन्न होता है, परंतु परमाणुओंसे न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, भुव है ।

संयोगवाले द्रव्यपर्याय दो प्रकारके हैं, एक समानजातीय और दूसरे असमान जातीय । जैसे तीन परमाणु-ओंका समानजातीय रकंध ( पिंड ) पर्याय नष्ट होता है और चार परमाणुओंका स्कन्ध उत्पन्न होता है, परंतु परमाणुओंसे न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, भुव है ।

संयोगवाले द्रव्यपर्याय दो प्रकारके हैं, एक समानजातीय और दूसरे असमान जातीय । जैसे तीन परमाणु-ओंका समानजातीय रकंध ( पिंड ) पर्याय नष्ट होता है और चार परमाणुओंका स्कन्ध उत्पन्न होता है, परंतु परमाणुओंसे न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, भुव है ।

संयोगवाले द्रव्यपर्याय दो प्रकारके हैं, एक समानजातीय और दूसरे असमान जातीय । जैसे तीन परमाणु-ओंका समानजातीय रकंध ( पिंड ) पर्याय नष्ट होता है और चार परमाणुओंका स्कन्ध उत्पन्न होता है, परंतु परमाणुओंसे न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, भुव है ।

संयोगवाले द्रव्यपर्याय दो प्रकारके हैं, एक समानजातीय और दूसरे असमान जातीय । जैसे तीन परमाणु-ओंका समानजातीय रकंध ( पिंड ) पर्याय नष्ट होता है और चार परमाणुओंका स्कन्ध उत्पन्न होता है, परंतु परमाणुओंसे न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, भुव है ।

समानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च । समानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते । यथा चैको मनुष्यत्वलक्षणोऽसमानजातीयो विनश्यत्यन्यस्त्रिदंशत्वलक्षणः प्रजायते तौ च जीवपुद्गलौ अविनष्टानुत्पन्नावेवातिष्ठेते, तथा सर्वेप्यसमानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च असमानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते । एवमात्मना ध्रुवाणि द्रव्यपर्यायद्वारेणोत्पादव्ययीभूतान्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्याणि भवन्ति ॥ ११ ॥

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति;—

परिणमदि सयं द्रव्यं गुणदो य गुणंतरं सद्विसिद्धं ।

तस्माद्गुणपञ्जाया भणिया पुण द्रव्यमेवेति ॥ १२ ॥

परिणमति स्वयं द्रव्यं गुणतश्च गुणान्तरं सद्विशिष्टम् ।

तस्माद्गुणपर्याया भणिताः पुनः द्रव्यमेवेति ॥ १२ ॥

रूपो विभावद्रव्यपर्यायो जायते मनुष्यादिरूपो विनश्यति तदेव जीवद्रव्यं निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टं, पुद्गलद्रव्यं वा द्वयणुकादिस्कन्धरूपस्वजातीयविभावद्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेपि निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टमिति । ततः स्थितं यतः कारणाद्दुत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण द्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेपि द्रव्यस्य विनाशो नास्ति, ततः कारणाद्द्रव्यपर्याया अपि द्रव्यलक्षणं भवन्तीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥ अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यादिगुणपर्यायमुख्यत्वेन प्रतिपादयति;—परिणमदि सयं द्रव्यं परिणमति स्वयं स्वयमेवोपादानकारणभूतं जीवद्रव्यं कर्तृ । कं परिणमति । गुणदो य गुणंतरं निरुपमरागस्वसंवेदनगुणात्केवलज्ञानोत्पत्तिबीजभूतात्सकाशात्सकलधिमलकेवलज्ञानगुणान्तरं । कथंभूतं सत्परिणमति । सद्विसिद्धं स्वकीयस्वरूपत्वाच्चिद्रूपास्तित्वाद्विशिष्टमभिन्नं । तस्माद्गुणपञ्जाया भणिया पुण द्रव्यमेवेति तस्मात्का-

इसीप्रकार सब जातिके द्रव्यपर्याय उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप जानना चाहिये । और जैसे जीव पुद्गलके संयोगसे असमान जातिका मनुष्यरूप द्रव्यपर्याय नष्ट होता है और देवरूप द्रव्यपर्याय उत्पन्न होता है, परंतु द्रव्यत्वकी अपेक्षासे जीव-पुद्गल न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं, ध्रुव हैं, इसीप्रकार औरभी असमानजातीय द्रव्यपर्यायोंको उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप जानना चाहिये । 'द्रव्य' पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद-व्ययस्वरूप है और द्रव्यपनेकी अपेक्षा ध्रुवरूप है । उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, ये तीनों द्रव्यसे अमेदरूप हैं इसलिये द्रव्यही हैं अन्य वस्तुरूप नहीं हैं ॥ ११ ॥ आगे एक द्रव्यपर्याय-द्वारसे उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य दिखलाते हैं;—[ सद्विशिष्टं ] अपने स्वरूपास्तित्वमे अभिन्न [ द्रव्यं ] सत्त्वरूप वस्तु [ स्वयं ] आपही [ गुणतः ] एक गुणसे [ गुणान्तरं ] अन्यगुणरूप [ परिणमति ] परिणमन करती है । [ तस्मात् ] इस कारण [ य पुनः ] फिर [ गुणपर्यायाः ] गुणोंके पर्याय [ द्रव्यमेव ] द्रव्यही

एकद्रव्यपर्याया हि गुणपर्यायाः, गुणपर्यायाणामेकद्रव्यत्वात् । एकद्रव्यत्वं हि तेषां सहकारफलवत् । यथा किल सहकारफलं स्वयमेव हरितभावात् पाण्डुभावं परिणमत्पूर्वोत्तरप्रवृत्तहरितपाण्डुभावाभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं हरितपाण्डुभावाभ्यां सममविशिष्टसत्ताकतयैकमेव वस्तु न वस्त्वन्तरं, तथा द्रव्यं स्वयमेव पूर्वावस्थावस्थितगुणादुत्तरावस्थावस्थितगुणं परिणमत्पूर्वोत्तरावस्थावस्थितगुणाभ्यां ताभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं पूर्वोत्तरावस्थितगुणाभ्यां सममविशिष्टसत्ताकतयैकमेव द्रव्यं न द्रव्यान्तरं । यथैव चोत्पद्यमानं पाण्डुभावेन, व्ययमानं हरितभावेनावतिष्ठमानं सहकारफलत्वेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येकवस्तुपर्यायद्वारेण सहकारफलं; तथैवोत्पद्यमानमुत्तरावस्थावस्थितगुणेन, व्ययमानं पूर्वावस्थावस्थितगुणेनावतिष्ठमानं द्रव्यत्वगुणेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण द्रव्यं भवति ॥ १२ ॥

अथ सत्ताद्रव्ययोरनर्थान्तरत्वे युक्तिमुपन्यस्यति;—

ण ह्वदि जदि सद्व्वं असद्भुवं ह्वदि तं कधं दव्वं ।

ह्वदि पुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥ १३ ॥

रणान्न केवलं पूर्वसूत्रोदिताः द्रव्यपर्यायाः द्रव्यं भवन्ति, गुणरूपपर्याया गुणपर्याया भण्यन्ते तेषां द्रव्यमेव भवन्ति । अथवा संसारिजीवद्रव्यं मतिस्पृत्यादिविभावगुणं त्यक्त्वा श्रुतज्ञानादिविभावगुणान्तरं परिणमति, पुद्गलद्रव्यं वा पूर्वोक्तशुक्लवर्णादिगुणं त्यक्त्वा रक्तादिगुणान्तरं परिणमति हरितगुणं त्यक्त्वा पाण्डुरगुणान्तरमात्रफलमिवेति भावार्थः ॥ १२ ॥ एवं स्वभावविभावरूपा द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च नयविभागेन द्रव्यलक्षणं भवन्ति इतिकथनमुल्यतया

हैं [ इति भणिताः ] ऐसैं भगवान्ने कहे हैं । भावार्थ—एक द्रव्यके जो पर्याय हैं वे गुणपर्याय हैं । जैसे आमका जो फल हरे गुणरूप परिणमन करता है वही अन्यकालमें पीतभावरूपमें परिणम जाता है, परंतु वह आम अन्य द्रव्य नहीं होजाता गुणरूप परिणमनसे भेद युक्त होता है । इसीप्रकार द्रव्य पूर्व अवस्थामें रहनेवाले गुणसे अन्य अवस्थाके गुणरूप परिणमन करता है, परंतु उक्त पूर्व-उत्तर अवस्थासे द्रव्य-अन्यरूप नहीं होता, गुणके परिणमनसे भेद होता है, द्रव्य तो दोनों अवस्थाओंमें एकही है । और जैसे आम पीलेपनेसे उत्पन्न होता है, हरेपनेसे नष्ट होता है तथा आम्रपनेसे ध्रुव है परंतु ये उत्पादव्ययध्रौव्य एकद्रव्यपर्यायरूप आमसे जुदे नहीं हैं आमही हैं । इसीप्रकार द्रव्य उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता है, पूर्व अवस्थासे नष्ट होता है तथा द्रव्यपनेसे ध्रुव है; परंतु ये उत्पादव्ययध्रौव्य एक द्रव्यपर्यायके द्वारा द्रव्यसे जुदे नहीं हैं द्रव्यही हैं । ये गुणपर्यायमें उत्पादव्ययध्रौव्य जानने चाहिये ॥ १२ ॥ आगे सत्ता और द्रव्यके अभेद दिखलाते हैं;—[ यदि ] जो [ द्रव्यं ] गुणपर्यायात्मक वस्तु [ सत् ] अस्तित्वरूप [ न भवति ] नहीं हो [ तदा ] तो [ ध्रुवं ]

न भवति यदि सद्रव्यमसद्भुवं भवति तत्कथं द्रव्यम् ।

भवति पुनरन्यद्वा तस्माद्द्रव्यं स्वयं सत्ता ॥ १३ ॥

यदि हि द्रव्यं स्वरूपत एव सन्न स्यात्तदा द्वितीय गतिः असद्वा भवति, सत्तातः पृथग्वा भवति । तत्रासद्भवद्द्रव्यस्यासंभवादात्मानमधारयद्रव्यमेवास्तं गच्छेत् । सत्तातः पृथग्भवत् सत्तामन्तरेणात्मानं धारयत्तावन्मात्रप्रयोजनां सत्तामेवास्तं गमयेत् । स्वरूपतस्तु सद्भवद्द्रव्यस्य संभवादात्मानं धारयद्रव्यमुद्गच्छेत् । सत्तातोऽपृथग्भूत्वा चात्मानं

गाथाद्वयेन चतुर्थेऽखण्डं गतम् । अथ सत्ताद्रव्ययोरभेदविषये पुनरपि प्रकारान्तरेण युक्तिं दर्शयति;—ण हवदि जदि सद्द्रव्यं परमचैतन्यप्रकाशरूपेण स्वरूपेण स्वरूपसत्तास्तित्वगुणेन यदि चेत् सन्न भवति । किं कर्तुं । परमात्मद्रव्यं तदा असद्भुवं होदि असदविद्यमानं भवति ध्रुवं निश्चितं । अविद्यमानं सत् तं कहां द्रव्यं तत्परमात्मद्रव्यं कथं भवति ? किन्तु नैव । स च प्रत्यक्षविरोधः । कस्मात् । स्वसवेदनज्ञानेन गम्यमानत्वात् । अथाविचारितरमणीयन्यायेन सत्तागुणाभावेऽप्यस्तीति चेत् तत्र विचार्यते—यदि केवलज्ञानदर्शनगुणाविनाभूतस्वकीयस्वरूपस्त्वित्वात्पृथग्भूता तिष्ठति तदा स्वरूपास्तित्वं नास्ति स्वरूपास्तित्वाभावे द्रव्यमपि नास्ति । अथवा स्वकीयस्वरूपास्तित्वास्तंज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशरूपेणाभिन्नं तिष्ठति तदा संमतमेव । अत्रावसरे सौगतमतानुसारी कश्चिदाह—सिद्धपर्यायसत्तारूपेण शुद्धात्मद्रव्यमुपचारेणास्ति, न च मुख्यवृत्त्येति, । परिहारमाह—सिद्धपर्यायोपादानकारणभूतपरमात्मद्रव्याभावे सिद्धपर्यायसत्तैव न संभवति वृक्षाभावे फलमिव । अत्र प्रस्तावे नैयायिकमतानुसारी कश्चिदाह—हवदि पुणो

ध्रुव अर्थात् निश्चितसत्तारूप वस्तु [ असत् ] अवस्तुरूप [ भवति ] होजावे, तथा [ तत् ] वह सत्तारहितवस्तु [ द्रव्यं ] द्रव्यस्वरूप [ कथं ] कैसे [ भवति ] होवे [ वा ] अथवा [ पुनः ] फिर [ अन्यत् ] सत्तासे भिन्न द्रव्य [ भवति ] होवे । [ तस्मात् ] इसकारण [ द्रव्यं ] द्रव्य [ स्वयं सत्ता ] आपही सत्तास्वरूप है, भेद नहीं है । भावार्थ—जो द्रव्य सत्तारूप न होवे तो दो दोष आते हैं । या तो द्रव्य असत् होता है या सत्तासे जुदा होता है । परंतु जो द्रव्य असत् होगा तो सत्ताके विना ध्रुव नहीं होगा, जिससेकि द्रव्यके नाशका प्रसंग आजावेगा । और यदि सत्तासे द्रव्य पृथक् हो तो द्रव्य सत्ताके विनाभी अपने स्वरूपको धारण करे जिससे कि सत्ताका कुछ प्रयोजनही न रहे, क्योंकि सत्ताका कार्य यही है कि द्रव्यके स्वरूपका अस्तित्व करे सो यदि द्रव्यही अपने स्वरूपको जुदा धारण करेगा तो सत्ताका फिर प्रयोजनही क्या रहेगा इस न्यायसे सत्ताका नाश होगा । परंतु जो द्रव्य सत्तारूप होगा तो द्रव्य ध्रुव होगा, जिसके कि होनेसे द्रव्यका नाश न होगा । यदि सत्तासे



धारयत्तावन्मात्रप्रयोजनां सत्तामुद्गमयेत् । ततः स्वयमेव द्रव्यं सत्त्वेनाभ्युपगन्तव्यं, भाव-  
भाववतोरपृथक्त्वेनानन्यत्वात् ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वान्यत्वलक्षणमुन्मुद्रयति;—

पविभक्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासर्णं हि वीरस्स ।

अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं भवदि कधमेगं ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं पृथक्त्वमिति शासनं हि वीरस्य ।

अन्यत्वमतद्भावो न तद्भवत् भवति कथमेकम् ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं हि पृथक्त्वस्य लक्षणं । तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्न संभाव्यते, गुणगुणिनोः  
प्रविभक्तप्रदेशत्वाभावात् शुक्लोत्तरीयवत् । तथाहि—यथा य एव शुक्लस्य गुणस्य प्रदेशस्त  
एवोत्तरीयस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, तथा यथेव सत्ताया गुणस्य प्रदेशस्त-  
येव द्रव्यस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, । एवमपि तयोरन्यत्वमस्ति तद्व्य-  
सद्भावात् । अतद्भावो ह्यन्यत्वस्य लक्षणं, तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्विद्यत एव गुणगुणिनोस्तद्भा-

अण्णं वा तत्परमात्मद्रव्यं भवति पुनः किन्तु सत्तायाः सकाशादन्यद्विभक्तं भवति पश्चात्सत्ता-  
समवायात्सद्भवति । आचार्याः परिहारमाहुः—सत्तासमवायात्पूर्वं द्रव्यं सदसद्वा? यदि सत्ता  
सत्तासमवायो वृथा पूर्वमेवास्तित्वं तिष्ठति; अथासत्ताहि खपुष्पवदविद्यमानद्रव्येण सह कथं सत्ता-  
समवायं करोति, करोतीति चेत्ताहि खपुष्पेणापि सह सत्ताकर्तृसमवायं करोतु न च तथा ।  
तम्हा द्रव्यं सयं सत्ता तस्मादभेदनयेन शुद्धचेतन्यस्वरूपसत्तैव परमात्मद्रव्यं भवतीति ।  
यथेदं परमात्मद्रव्येण सह शुद्धचेतनासत्ताया अभेदव्याख्यानां कृतं तथा सर्वेषां चेतनद्रव्याणां  
स्वकीयस्वकीयसत्तया सहाभेदव्याख्यानां कर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वलक्षणं किमन्यत्वलक्षणं च किमिति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—पविभ-  
क्तपदेसत्तं पुधत्तं पृथक्त्वं भवति पृथक्त्वाभिधानो भवति । किंविशिष्टं? प्रकर्षेण विभक्त-  
प्रदेशत्वं भिन्नप्रदेशत्वं । किंवत्? दण्डदण्डवत् । इत्थम्भूतं पृथक्त्वं शुद्धात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोर्न

द्रव्य पृथक् नहीं होगा तो द्रव्य अपने स्वरूपको धारण करता हुआ सत्ताके प्रयोज-  
नको प्रगट करेगा और सत्ताका नाश न होगा । इसलिये द्रव्य सत्तरूप है । द्रव्य गुणी  
है । सत्ता गुण है । गुण-गुणीमें प्रदेश भेद नहीं है । एकही हैं ॥ १३ ॥

सिद्धान्तमें भेद दो प्रकारके हैं एक पृथक्त्व एक अन्यत्व । आगे इन दोनोंका लक्षण  
कहते हैं;—[ हि ] निश्चयसे [ वीरस्य ] महावीर भगवान्का [ इति ] ऐसा  
[ शासनं ] उपदेश है कि [ प्रविभक्तप्रदेशत्वं ] जिसमें द्रव्यके प्रदेश अत्यन्त  
भिन्न हों वह [ पृथक्त्वं ] पृ - नामका भेद है । और [ अतद्भावः ] प्रदेश

वस्याभावात् शुक्लोत्तरीयवदेव । तथाहि—यथा यः किलैकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तोत्तरेन्द्रियग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवति, न खलु तदखिलेन्द्रियग्राम-गोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, यत्र किलाखिलेन्द्रियग्रामगोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, न खलु स एकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तोत्तरेन्द्रियग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवतीति तयोस्तद्भावस्याभावः । तथा या किलाश्रित्य वर्तिनी निर्गुणैकगुणसमुदिता विशेष-पणं विधायिका वृत्तिस्वरूपा सत्ता भवति, न खलु तदनाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुण-समुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति; यत्तु किलानाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुणसमुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति, न खलु

घटते, कस्माद्धेतोर्भिन्नप्रदेशाभावात् । कयोरिव ? शुक्लवद्विशुद्धगुणयोरिव इदि सासर्गं हि वीरस्स इति शासनमुपदेश आज्ञेति । कस्य । वीरस्य वीराभिधानान्तिमतीर्थकारपरमदेवस्य अण्णत्तं तथापि प्रदेशाभेदेऽपि मुक्तात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोरन्यत्वं भिन्नत्वं भवति । कथम्भूतं । अतदभावो अतद्भावरूपं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदस्वभावम् । यथा प्रदेशरूपेणाभेदस्तथा संज्ञादिस्वरूपेणाप्यभेदो भवतु को दोष इति चेत् । नैवम् । ण तदभवं होदि तन्मुक्तात्मद्रव्यं शुद्धात्मसत्तागुणेन सह प्रदेशाभेदेऽपि संज्ञादिरूपेण तन्मयं न भवति कहमैर्कं तन्मयत्वं हि किलै-कत्वलक्षणं संज्ञादिरूपेण तन्मयं त्वभावमेकत्वं किन्तु नानात्वमेव । यथेदं मुक्तात्मद्रव्ये प्रदेशाभे-देऽपि संज्ञादिरूपेण नानात्वं कथितं तथैव सर्वद्रव्याणां स्वकीयस्वकीयस्वरूपास्त्वगुणेन सह

भेदके विना संज्ञा संख्या लक्षणादिसे जो गुणगुणी भेद है सो [ अन्यत्वं ] अन्यत्व है । परंतु सत्ता और द्रव्य [ तद्द्रव्यं ] उसी भाव अर्थात् एक ही स्वरूप [ न भवति ] नहीं है फिर [ कथं एकं ] दोनों एक कैसे हो सके हैं ? नहीं हो सकते । भावार्थ—जिसप्रकार दंड और वंडीमें प्रदेशभेद है उसप्रकारके प्रदेशभेदको पृथक्त्व कहते हैं । यह “पृथक्त्व” सत्तामें नहीं है क्योंकि सत्ता और द्रव्यमें प्रदेशभेद नहीं है । जैसे वस्त्र और उसके शुद्धगुणमें प्रदेशभेद नहीं है अभेद है उसीप्रकार सत्ता और द्रव्यमें अभेद है, परंतु संज्ञा संख्या लक्षणादिके भेदसे जो द्रव्यका स्वरूप है वह सत्ताका स्वरूप नहीं है और जो सत्ताका स्वरूप है वह द्रव्यका स्वरूप नहीं है । इस प्रकारके गुणगुणी भेदको अन्यत्व कहते हैं । यह अन्यत्व भेद सत्ता और द्रव्यमें रहता है । यहां प्रश्न होता है कि, जैसे सत्ता और द्रव्यमें प्रदेशभेद नहीं है वैसेही सत्ता—द्रव्यमें स्वरूप-भेदभी नहीं है, फिर अन्यत्व भेदके कहनेकी क्या आवश्यकता है ? सो इसका समा-धान यह है कि, “ सत्ता और द्रव्यमें स्वरूपभेद नहीं है एक ही भाव है ” ऐसा कहना बन नहीं सका, क्योंकि सत्ता और द्रव्यमें संज्ञा संख्या लक्षणादिसे स्वरूपभे-दअवश्य ही है फिर दोनों एक कैसे हो सके हैं । अन्यत्व भेद मानना ही पड़ेगा

धारयत्तावन्मात्रप्रयोजनां सत्तामुद्गमयेत् । ततः स्वयमेव द्रव्यं सत्त्वेनाभ्युपगन्तव्यं, भाव-  
भाववतोरपृथक्त्वेनानन्यत्वात् ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वान्यत्वलक्षणमुन्मुद्रयति;—

प्रविभक्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स ।

अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं भवदि कथमेगं ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं पृथक्त्वमिति शासनं हि वीरस्य ।

अन्यत्वमतद्भावो न तद्भवत् भवति कथमेकम् ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं हि पृथक्त्वस्य लक्षणं । तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्न संभाव्यते, गुणगुणिनोः  
प्रविभक्तप्रदेशत्वाभावात् शुक्लोत्तरीयवत् । तथाहि—यथा य एव शुक्लस्य गुणस्य प्रदेशस्त-  
एवोत्तरीयस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, तथा ययेव सत्ताया गुणस्य प्रदेशस्त-  
येव द्रव्यस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, । एवमपि तयोरन्यत्वमस्ति तल्लक्षण-  
सद्भावात् । अतद्भावो ह्यन्यत्वस्य लक्षणं, तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्विद्यत एव गुणगुणिनोस्तद्भा-

अण्णं वा तत्परमात्मद्रव्यं भवति पुनः किन्तु सत्तायाः सकाशादन्यद्विभक्तं भवति पश्चात्सत्ता-  
समवायात्सद्भवति । आचार्याः परिहारमाहुः—सत्तासमवायात्पूर्वं द्रव्यं सदसद्भा? यदि सत्तदा  
सत्तासमवायो वृथा पूर्वमेवास्तित्वं तिष्ठति; अथासत्तर्हि खपुष्पवदविद्यमानद्रव्येण सह कथं सत्ता-  
समवायं करोति, करोतीति चेत्तर्हि खपुष्पेणापि सह सत्ताकर्तृसमवायं करोतु न च तथा ।  
तम्हा द्रव्यं सयं सत्ता तस्मादभेदनयेन शुद्धचेतन्यस्वरूपसत्तैव परमात्मद्रव्यं भवतीति ।  
यथेदं परमात्मद्रव्येण सह शुद्धचेतनासत्ताया अभेदव्याख्यानं कृतं तथा सर्वेषां चेतनद्रव्याणां  
स्वकीयस्वकीयसत्तया सहाभेदव्याख्यानं कर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वलक्षणं किमन्यत्वलक्षणं च किमिति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—प्रविभ-  
क्तपदेसत्तं पुधत्तं पृथक्त्वं भवति पृथक्त्वाभिधानो भवति । किंविशिष्टं? प्रकर्षेण विभक्त-  
प्रदेशत्वं भिन्नप्रदेशत्वं । किंवत् । दण्डदण्डवत् । इत्थम्भूतं पृथक्त्वं शुद्धात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोर्न

द्रव्य पृथक् नहीं होगा तो द्रव्य अपने स्वरूपको धारण करता हुआ सत्ताके प्रयोज-  
नको प्रगट करेगा और सत्ताका नाश न होगा । इसलिये द्रव्य सत्तरूप है । द्रव्य गुणी  
है । सत्ता गुण है । गुण-गुणीमें प्रदेश भेद नहीं है । एकही हैं ॥ १३ ॥

सिद्धान्तमें भेद दो प्रकारके हैं एक पृथक्त्व एक अन्यत्व । आगे इन दोनोंका लक्षण  
कहते हैं;—[ हि ] निश्चयसे [ वीरस्य ] महावीर भगवान्का [ इति ] ऐसा  
[ शासनं ] उपदेश है कि [ प्रविभक्तप्रदेशत्वं ] जिसमें द्रव्यके प्रदेश अत्यन्त  
भिन्न हों वह [ पृथक्त्वं ] पृथक्त्व नामका भेद है । और [ अतद्भावः ] प्रदेश

वस्याभावात् शुक्लोत्तरीयवदेव । तथाहि—यथा यः किलैकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तोतरेन्द्रियग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवति, न खलु तदखिलेन्द्रियग्रामगोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, यच्च किलाखिलेन्द्रियग्रामगोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, न खलु स एकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तोतरेन्द्रियग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवतीति तयोस्तद्भावस्याभावः । तथा या किलाश्रित्य वर्तिनी निर्गुणैकगुणसमुदिता विशेषणं विधायिका वृत्तिस्वरूपा सत्ता भवति, न खलु तदनाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुणसमुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति; यत्तु किलानाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुणसमुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति, न खलु

घटते, कस्माद्धेतोर्भिन्नप्रदेशाभावात् । कयोरिव ? शुक्लवस्त्रशुक्लगुणयोरिव इदि सासणं हि वीरस्स इति शासनमुपदेश आज्ञेति । कस्य । वीरस्य वीराभिधानान्तिमतीर्थकरपरमदेवस्य अपणत्तं तथापि प्रदेशाभेदेऽपि मुक्तात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोरन्यत्वं भिन्नत्वं भवति । कथम्भूतं । अतवभावो अतद्भावरूपं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदस्वभावम् । यथा प्रदेशरूपेणाभेदस्तथा संज्ञादिलक्षणरूपेणाप्यभेदो भवतु को दोष इति चेत् । नैवम् । ण तवभवं ह्येदि तन्मुक्तात्मद्रव्यं शुद्धात्मसत्तागुणेन सह प्रदेशाभेदेऽपि संज्ञादिरूपेण तन्मयं न भवति कहमेकं तन्मयत्वं हि किलैकत्वलक्षणं संज्ञादिरूपेण तन्मयं त्वभावमेकत्वं किन्तु नानात्वमेव । यथेदं मुक्तात्मद्रव्ये प्रदेशाभेदेऽपि संज्ञादिरूपेण नानात्वं कथितं तथैव सर्वद्रव्याणां स्वकीयस्वकीयस्वरूपास्तित्वगुणेन सह

भेदके बिना संज्ञा संख्या लक्षणादिसे जो गुणगुणी भेद है सो [ अन्यत्वं ] अन्यत्व है । परंतु सत्ता और द्रव्य [ तद्भवं ] उसी भाव अर्थात् एक ही स्वरूप [ न भवति ] नहीं है फिर [ कथं एकं ] दोनों एक कैसे हो सके हैं ? नहीं हो सकते । भावार्थ—जिसप्रकार दंड और दंडीमें प्रदेशभेद है उसप्रकारके प्रदेशभेदको पृथक्त्व कहते हैं । यह “पृथक्त्व” सत्तामें नहीं है क्योंकि सत्ता और द्रव्यमें प्रदेशभेद नहीं है । जैसे वस्त्र और उसके शुक्लगुणमें प्रदेशभेद नहीं है अभेद है उसीप्रकार सत्ता और द्रव्यमें अभेद है, परंतु संज्ञा संख्या लक्षणादिके भेदसे जो द्रव्यका स्वरूप है वह सत्ताका स्वरूप नहीं है और जो सत्ताका स्वरूप है वह द्रव्यका स्वरूप नहीं है । इस प्रकारके गुणगुणी भेदको अन्यत्व कहते हैं । यह अन्यत्व भेद सत्ता और द्रव्यमें रहता है । यहां प्रश्न होता है कि, जैसे सत्ता और द्रव्यमें प्रदेशभेद नहीं है वैसेही सत्ता—द्रव्यमें स्वरूपभेदभी नहीं है, फिर अन्यत्व भेदके कहनेकी क्या आवश्यकता है ? सो इसका समाधान यह है कि, “ सत्ता और द्रव्यमें स्वरूपभेद नहीं है एक ही भाव है ” ऐसा कहना वन नहीं सक्ता, क्योंकि सत्ता और द्रव्यमें संज्ञा संख्या लक्षणादिसे स्वरूपभेद अवश्य ही है फिर दोनों एक कैसे हो सके हैं । अन्यत्व भेद मानना ही पड़ेगा ।

धारयत्तावन्मात्रप्रयोजनां सत्तामुद्गमयेत् । ततः स्वयमेव द्रव्यं सत्त्वेनाभ्युपगन्तव्यं, भाव-  
भाववतोरपृथक्त्वेनानन्यत्वात् ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वान्यत्वलक्षणमुन्मुद्रयति;—

पविभक्तपदेसत्तं पुधक्तमिदि सासणं हि वीरस्स ।

अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं भवदि कधमेगं ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं पृथक्त्वमिति शासनं हि वीरस्य ।

अन्यत्वमतद्भावो न तद्भवत् भवति कथमेकम् ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं हि पृथक्त्वस्य लक्षणं । तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्न संभाव्यते, गुणगुणिनोः  
प्रविभक्तप्रदेशत्वाभावात् शुक्लोत्तरीयवत् । तथाहि—यथा य एव शुक्लस्य गुणस्य प्रदेशास्त  
एवोत्तरीयस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, तथा यथेव सत्ताया गुणस्य प्रदेशास्त-  
थेव द्रव्यस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, । एवमपि तयोरन्यत्वमस्ति तलक्षण-  
सद्भावात् । अतद्भावो ह्यन्यत्वस्य लक्षणं, तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्विद्यत एव गुणगुणिनोस्तद्भा-

अण्णं वा तत्परमात्मद्रव्यं भवति पुनः किन्तु सत्तायाः सकाशादन्यद्विन्नं भवति पश्चात्सत्ता-  
समवायात्सद्भवति । आचार्याः परिहारमाहुः—सत्तासमवायात्पूर्वं द्रव्यं सदसद्वा? यदि सत्तदा  
सत्तासमवायो वृथा पूर्वमेवास्तित्वं तिष्ठति; अथासत्तर्हि खपुष्पवदविद्यमानद्रव्येण सह कथं सत्ता-  
समवायं करोति, करोतीति चेत्तर्हि खपुष्पेणापि सह सत्ताकर्तृसमवायं करोतु न च तथा ।  
तम्हा द्रव्यं सयं सत्ता तस्मादभेदनयेन शुद्धचेतन्यस्वरूपसत्तैव परमात्मद्रव्यं भवतीति ।  
यथेदं परमात्मद्रव्येण सह शुद्धचेतनासत्ताया अभेदव्याख्यानं कृतं तथा सर्वेषां चेतनद्रव्याणां  
स्वकीयस्वकीयसत्तया सहाभेदव्याख्यानं कर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वलक्षणं किमन्यत्वलक्षणं च किमिति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—पविभ-  
क्तपदेसत्तं पुधक्तं पृथक्त्वं भवति पृथक्त्वाभिधानो भवति । किंविदिष्टं? प्रकर्षेण विभक्त-  
प्रदेशत्वं भिन्नप्रदेशत्वं । किंचत् । दण्डदण्डिवत् । इत्थम्भूतं पृथक्त्वं शुद्धात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोर्न

द्रव्य पृथक् नहीं होगा तो द्रव्य अपने स्वरूपको धारण करता हुआ सत्ताके प्रयोजन-  
नको प्रगट करेगा और सत्ताका नाश न होगा । इसलिये द्रव्य सत्तरूप है । द्रव्य गुणी  
है । सत्ता गुण है । गुण-गुणीमें प्रदेश भेद नहीं है । एकही हैं ॥ १३ ॥

सिद्धान्तमें भेद दो प्रकारके हैं एक पृथक्त्व एक अन्यत्व । आगे इन दोनोंका लक्षण  
कहते हैं;—[ हि ] निश्चयसे [ वीरस्य ] महावीर भगवान्का [ इति ] ऐसा  
[ शासनं ] उपदेश है कि [ प्रविभक्तप्रदेशत्वं ] जिनमें द्रव्यके प्रदेश अत्यन्त  
भिन्न हों वह [ पृथक्त्वं ] पृथक्त्व नामका भेद है । और [ अतद्भावः ] प्रदेश

यथा खल्वेकं मुक्ताफलस्रग्दाम, हार इति सूत्रमिति मुक्ताफलमिति त्रेधा विस्तीर्यते; तथैकं द्रव्यं द्रव्यमिति गुण इति पर्याय इति त्रेधा विस्तीर्यते । यथा चैकस्य मुक्ताफल-स्रग्दाम्नः शुक्लो गुणः शुक्लो हारः शुक्लं सूत्रं शुक्लं मुक्ताफलमिति त्रेधा विस्तीर्यते, तथैकस्य द्रव्यस्य सत्तागुणः सद्रव्यं सद्रुणः सत्पर्याय इति त्रेधा विस्तार्यते । यथा चैकस्मिन् मुक्ता-फलस्रग्दाम्नि यः शुक्लो गुणः स न हारो न सूत्रं न मुक्ताफलं यश्च हारः सूत्रं मुक्ताफलं स न शुक्लो गुण इतीतरेतरस्य यस्तस्याभावः स तदभावलक्षणोऽतद्भावोऽन्यत्वनिबन्ध-

येषु विस्तारः । तथाहि—यथा मुक्ताफलहारे सत्तागुणस्थानीयो योऽसौ शुक्लगुणः स प्रदेशाभेदेन किं किं भण्यते । शुक्लो हार इति शुक्लं सूत्रमिति शुक्लं मुक्ताफलमिति भण्यते, यश्च हारः सूत्रं मुक्ताफलं वा तैस्त्रिभिः प्रदेशाभेदेन शुक्लो गुणो भण्यत इति तद्भावस्य लक्षणमिदं । तद्भावस्येति कोर्थः । हारसूत्रमुक्ताफलानां शुक्लगुणेन सह तन्मयत्वं प्रदेशाभिन्नत्वमिति तथा मुक्तात्मपदार्थे योऽसौ शुद्धसत्तागुणः स प्रदेशाभेदेन किं किं भण्यते सत्तालक्षणः परमात्मपदार्थ इति, सत्तालक्षणः केवलज्ञानादिगुण इति, सत्तालक्षणः सिद्धपर्याय इति भण्यते । यश्च परमात्मपदार्थः केवलज्ञाना-दिगुणः सिद्धत्वपर्याय इति तैश्च त्रिभिः शुद्धसत्तागुणो भण्यत इति तद्भावस्य लक्षणमिदम् । तद्भावस्येति कोऽर्थः । परमात्मपदार्थकेवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वपर्यायाणां शुद्धसत्तागुणेन संज्ञादि-भेदेषु प्रदेशैस्तन्मयत्वमपि जो खलु तस्स अभावो यस्तस्य पूर्वोक्तलक्षणतद्भावस्य खलु स्फुटं संज्ञादिभेदविवक्षायामभावः सो तदभावो स पूर्वोक्तलक्षणस्तदभावो भण्यते । स च तदभावः किं भण्यते ? “अतद्भावो” तदभावस्तन्मयत्वं । किञ्चातद्भावः संज्ञालक्षणप्रयोजना-दिभेदः इत्यर्थः । तथा—यथा मुक्ताफलहारे योऽसौ शुक्लगुणस्तद्वाचकेन शुक्लमित्यक्षरद्वयेन हारो वाच्यो न भवति सूत्रं वा मुक्ताफलं वा, हारसूत्रमुक्ताफलशब्दैश्च शुक्लगुणो वाच्यो न भवति । एवं परस्परं प्रदेशाभेदेऽपि योऽसौ संज्ञादिभेदः स तस्य पूर्वोक्तलक्षणतद्भावस्याभाव-स्तद्भावो भण्यते । स च तद्भावः पुनरपि किं भण्यते । अतद्भावः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेद

निश्चयकरके [ यः ] जो [ तस्य ] उस सत्ता-द्रव्य-गुण-पर्यायकी एकताका [ अभावः ] परस्परमें अभाव है [ सः ] वह [ तद्भावः ] उस एकताका अभाव [ अतद्भावः ] “अन्यत्व” नामा भेद है । भावार्थ—जैसे एक मोतीकी माला, हार सूत्र और मोती इन भेदोंसे तीन प्रकार है उसी प्रकार एक द्रव्य, द्रव्य गुण और पर्याय भेदोंसे तीन प्रकार है । और जैसे एक मोतीकी मालाका शुक्ल ( सफेद ) गुण, स्वेतहार स्वेतसूत और स्वेतमोती इन भेदोंसे तीन प्रकार है; उसीप्रकारसे द्रव्यका एक सत्ता गुण, सन् द्रव्य सत् गुण और सत्पर्याय इन भेदोंसे तीन प्रकार है । यह सत्ताका विस्तार है । और जैसे एक मोतीकी मालामें भेद विवक्षासे जो स्वेत गुण है सो हार नहीं है सूत नहीं है और मोती नहीं है । तथा जो हार सूत मोती हैं वे स्वेतगुण नहीं हैं ऐसा परस्पर भेद है, उसीप्रकार एक द्रव्यमें जो सत्ता गुण है वह द्रव्य नहीं गुण नहीं

साश्रित्य वर्तिनी निर्गुणैकगुणसमुदिता विशेषणं विधायिका वृत्तिस्वरूपा च सत्ता भवतीति तयोस्तद्भावस्याभावः । अत एव च सत्ताद्रव्ययोः कथञ्चिदनर्थान्तरत्वेपि सर्वथैकत्वं न शङ्कनीयं, तद्भावो द्वैकत्वस्य लक्षणं । यत्तु न तद्भवद्विभाव्यते तत्कथमेकं स्यात्? अपि तु गुणगुणिरूपेणानेकमेवेत्यर्थः ॥ १४ ॥

अथातद्भावमुदाहृत्य प्रथयति;—

सद्द्रव्यं सच्च गुणो सच्चैव य पञ्जओत्ति वित्थारो ।

जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतब्भावो ॥ १५ ॥

सद्द्रव्यं सच्च गुणः सच्चैव च पर्याय इति विस्तारः ।

यः खलु तस्याभावः स तदभावोऽतद्भावः ॥ १५ ॥

ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ १४ ॥ अथातद्भावं विशेषेण विस्तार्य कथयति;—सद्द्रव्यं सच्च गुणो सच्चैव य पञ्जओत्ति वित्थारो सद्द्रव्यं सच्च गुणः संथैव पर्याय इति सत्तागुणस्य द्रव्यगुणपर्याय-

जैसे वस्त्र और शुद्धगुणमें अन्यत्वभेद है उसीप्रकार सत्ता और द्रव्यमें है, क्योंकि वस्त्रमें जो शुद्धगुण है सो एक नेत्र इंद्रियके द्वारा ग्रहण होता है अन्य नासिकादि इंद्रियोंके द्वारा नहीं होता इस कारण वह शुद्धगुण वस्त्र नहीं है । और जो वस्त्र है सो नेत्र इंद्रियके सिवाय अन्य नासिकादि इंद्रियोंसेभी जानाजाता है इसकारण वह वस्त्र शुद्धगुण नहीं है । शुद्धगुणको एक नेत्र इंद्रियसे जानते हैं और वस्त्रको नासिकादि अन्य सब इंद्रियोंसे जानते हैं । इसलिये यह सिद्ध है कि, वस्त्र और शुद्धगुणमें अन्यत्व अवश्य ही है । जो भेद न होता तो जैसे नेत्र इंद्रियसे शुद्धगुणका ज्ञान हुआ था वैसे ही स्पर्श-रस-गंधरूप वस्त्रका भी ज्ञान होता, परंतु ऐसा नहीं है । इस कारण इंद्रियभेदसे भेद अवश्य ही है । इसीप्रकार सत्ता और द्रव्यमें अन्यत्व भेद है । सत्ता द्रव्यके आश्रय रहती है, अन्यगुणरहित एक गुणरूप है और द्रव्यके अनंतविशेषणोंमें एक अपने भेदको दिखाती है तथा एक पर्यायरूप है । और द्रव्य है सो किसीके आधार नहीं रहता है अनंत गुण सहित है अनेक विशेषणोंसे विशेष्य है और अनेक पर्यायोंवाला है । इसीकारण सत्ता और द्रव्यमें संज्ञा संख्या लक्षणादि भेदसे अवश्य अन्यत्वभेद है । जो सत्ताका स्वरूप है वह द्रव्यका नहीं है और जो द्रव्यका स्वरूप है वह सत्ताका नहीं है । इसप्रकार गुणगुणी भेद है, परंतु प्रदेशभेद नहीं है ॥ १४ ॥ आगे अन्यत्वका लक्षण विशेषतासे दिखलाते हैं;—[ सत् द्रव्यं ] सत्तारूप द्रव्य है [ च ] और [ सत् गुणः ] सत्तारूप गुण है [ च ] तथा [ सत् एव पर्यायः ] सत्तारूप ही पर्याय है [ इति ] इसप्रकार सत्ताका [ विस्तारः ] विस्तार है । और [ खलु ]

स्याभावे द्रव्यस्याभाव इत्युभयशून्यत्वं स्यात् । यथा पटाभावमात्रमेव घटो घटाभाव-  
मात्रमेव पट इत्युभयोरपोहरूपत्वं तथा द्रव्याभावमात्रमेव गुणो गुणाभावमात्रमेव द्रव्य-

यद्द्रव्यं स न गुणः यन्मुक्तजीवद्रव्यं स शुद्धः सन् गुणो न भवति । मुक्तजीव-  
द्रव्यशब्देन शुद्धसत्तागुणो वाच्यो न भवतीत्यर्थः । जोवि गुणो सो ण तच्चमत्थादो  
योऽपि गुणः स न तत्त्वं द्रव्यमर्थतः परमार्थतः, यः शुद्धसत्तागुणः स मुक्तात्मद्रव्यं न भवति; शुद्धस-  
त्ताशब्देन मुक्तात्मद्रव्यं वाच्यं न भवतीत्यर्थः । एसो हि अतच्भावो एष उक्तलक्षणो हि  
स्फुटमतद्भावः । उक्तलक्षण इति कोऽर्थः । गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावः  
णैव अभावोत्ति णिद्धिट्ठो नैवाभाव इति निर्दिष्टः । नैव अभाव इति कोऽर्थः? यथा  
सत्तावाचकशब्देन मुक्तात्मद्रव्यं वाच्यं न भवति तथा यदि सत्ताप्रदेशैरपि सत्तागुणात्सकाशा-  
द्विन्नं भवति तदा यथा जीवप्रदेशेभ्यः पुद्गलद्रव्यं भिन्नं सद्रव्यान्तरं भवति तथा सत्तागुण-  
प्रदेशेभ्यो मुक्तजीवद्रव्यं सत्तागुणाद्विन्नं सत्वृथग्द्रव्यान्तरं प्राप्नोति । एवं किं सिद्धं । सत्तागुण-  
रूपं पृथग्द्रव्यं मुक्तात्मद्रव्यं च पृथगिति द्रव्यद्वयं जातं, न च तथा । द्वितीयं च द्रूपणं  
प्राप्नोति—यथा सुवर्णत्वगुणप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य सुवर्णस्याभावस्तथैव सुवर्णप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य  
सुवर्णत्वगुणस्याप्यभावः, तथा सत्तागुणप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य मुक्तजीवद्रव्यस्याभावस्तथैव मुक्तजी-  
वद्रव्यप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य सत्तागुणस्याप्यभावः इत्युभयशून्यत्वं प्राप्नोति । यथेदं मुक्तजीवद्रव्ये

[ अतद्भावः ] स्वरूपभेद है [ अभावः ] सर्वथा अभाव [ नैव ] निश्चयसे नहीं  
है । [ इति ] ऐसा [ निर्दिष्टः ] सर्वज्ञदेवने दिखाया है । भावार्थ—एक द्रव्यमें  
जो द्रव्य है वह गुण नहीं है और जो गुण है वह द्रव्य नहीं है । इस प्रकार जो  
द्रव्यको गुणरूप न होना है वह अन्यत्व भेद व्यवहारसे कहा जाता है न कि द्रव्यका  
अभाव गुण और गुणका अभाव द्रव्य—ऐसा सर्वथा अभावरूप भेद, क्योंकि इस-  
तरहका अभाव माननेसे द्रव्यका अनेकपना होना १ दोनों (द्रव्य—गुणों) का नाश होना २  
और अपोहरूपत्वदोषका प्रसंग ३ इसप्रकार तीन दोष उपस्थित होते हैं । वे इसप्रकार हैं  
कि,—जैसे जीवका अभाव अजीव है और अजीवका अभाव जीव है इसलिये इन दोनोंमें  
अनेकत्व है, उसीप्रकार द्रव्यका अभाव गुण और गुणका अभाव द्रव्य माननेसे एक-  
त्वके अनेकत्व द्रव्यका प्रसंग आवेगा १। जैसे सोनेके अभावसे सोनेके गुणका अभाव  
होता है और सोनेके गुणके अभावसे सोनेका नाश सिद्ध होता है, उसीतरह द्रव्यके  
अभावसे गुणका अभाव होगा और फिर गुणके अभावसे द्रव्यका अभाव ही जावेगा ।  
इसप्रकार दोनोंके नाशका प्रसंग आवेगा २। तीसरे जैसे घटका अभाव मात्र पट  
है और पटका अभावमात्र घट है इन दोनोंमें किसीका रूप किसीमें नहीं है,  
उसीप्रकार द्रव्यका अभाव अभावमात्र गुण होगा और गुणका अभावमात्र द्रव्य  
होगा—तरह अपोहरूपत्व दोषका प्रसंग आवेगा ३। इसलिये जो द्रव्य—गुणकी एकता



नभूतः; तथैकस्मिन् द्रव्ये यः सत्तागुणस्तत्र द्रव्यं नान्यो गुणो न पर्यायो यच्च द्रव्य-  
मन्यो गुणः पर्यायो वा स न सत्तागुण इतीतरेतरस्य यस्तस्याभावः स तदभावलक्षणोऽ-  
तद्भावोऽन्यत्वनिवन्धनभूतः ॥ १५ ॥

अथ सर्वथाऽभावलक्षणत्वमतद्भावस्य निषेधयति;—

जं द्रव्यं तण्ण गुणो जोवि गुणो सो ण तच्चमत्थादो ।

एसो हि अतब्भावो णेव अभावोत्ति णिदिट्ठो ॥ १६ ॥

यद्द्रव्यं तत्र गुणो योपि गुणः स न तत्त्वमर्थात् ।

एष ह्यतद्भावो नैव अभाव इति निर्दिष्टः ॥ १६ ॥

एकस्मिन्द्रव्ये यद्द्रव्यं गुणो न तद्भवति, यो गुणः सः द्रव्यं न भवतीत्येवं यद्द्रव्यस्य गुण-  
रूपेण गुणस्य वा द्रव्यरूपेण तेनाभवनं सोऽतद्भावः । एतावतैवान्यत्वव्यवहारसिद्धेर्न  
पुनर्द्रव्यस्याभावो गुणो गुणस्याभावो द्रव्यमित्येवंलक्षणोऽभावोऽतद्भावः, एवं सत्येक-  
द्रव्यस्यानेकत्वमुभयशून्यत्वमपोहरूपत्वं वा स्यात् । तथाहि—यथा खलु चेतनद्रव्यस्या-  
भावोऽचेतनद्रव्यमचेतनद्रव्यस्याभावश्चेतनद्रव्यमिति तयोरनेकत्वं, तथा द्रव्यस्याभावो गुणो  
गुणस्याभावो द्रव्यमित्येकस्यापि द्रव्यस्यानेकत्वं स्यात् । यथा सुवर्णस्याभावे सुवर्णत्वस्याभावः  
सुवर्णत्वस्याभावे सुवर्णस्याभाव इत्युभयशून्यत्वं, तथा द्रव्यस्याभावे गुणस्याभावो गुण-

इति । तथा मुक्तजीवे योऽसौ शुद्धसत्तागुणस्तद्वाचकेन सत्ताशब्देन मुक्तजीवो वाच्यो न  
भवति केवलज्ञानादिगुणो वा सिद्धपर्यायो वा मुक्तजीवकेवलज्ञानादिगुणसिद्धपर्यायैश्च शुद्धस-  
त्तागुणो वाच्यो न भवति । इत्येवं परस्परं प्रदेशभेदेऽपि योऽसौ संज्ञादिभेदः सस्तस्य पूर्वो-  
क्तलक्षणतद्भावस्याभावस्तद्भावो भण्यते । स च तदभावः पुनरपि किं भण्यते? अत-  
द्भावः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेद इत्यर्थः । यथात्र शुद्धात्मनि शुद्धसत्तागुणेन सहाभेदः  
स्थापितस्तथा यथासम्भवं सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्य इत्यभिप्रायः ॥ १५ ॥ अथ गुणगुणिनोः  
प्रदेशभेदनिषेधेन तमेव संज्ञादिभेदरूपमतद्भावं द्रव्ययति;—जं द्रव्यं तण्ण गुणो

और पर्याय नहीं है, तथा जो द्रव्य गुण पर्याय हैं सो सत्ता नहीं है ऐसा आपसमें भेद  
है । सारांश यह है कि सत्ताके स्वरूपका अभाव द्रव्यगुणपर्यायोंमें है और द्रव्यगुण-  
पर्यायके स्वरूपका अभाव सत्तामें है । इस प्रकार गुणगुणी भेद है प्रदेशभेद नहीं है ।  
यही अन्यत्व नामक भेद है ॥ १५ ॥ आगे सर्वथा अभावरूप गुणगुणी भेदका निषेध  
करते हैं;—[ यद् ] जो [ द्रव्यं ] द्रव्य है [ तत् ] सो [ गुणः न ] गुण नहीं  
है और [ यः ] जो [ अपि ] निश्चयसे [ गुणः ] गुण है [ सः ] वह [ अर्थात् ]  
स्वरूपके भेदसे [ तत्त्वं न ] द्रव्य नहीं है । [ एषः हि ] यह गुणगुणी भेद रूपही

त्वस्तित्वभूतद्रव्यवृत्त्यात्मकत्वात्सदविशिष्टो द्रव्यविधायिको गुण एवेति सत्ताद्रव्य-  
योगुणगुणिभावः सिद्धयति ॥ १७ ॥

अथ गुणगुणिनोर्नात्त्वमुपहन्ति;—

णत्थि गुणोत्ति व कोई पज्जाओत्तीह वा विणा दब्बं ।

दब्बत्तं पुणभावो तम्हा दब्बं सयं सत्ता ॥ १८ ॥

नास्ति गुण इति वा कश्चित् पर्याय इतीह वा विना द्रव्यम् ।

द्रव्यत्वं पुनर्भावस्तस्माद्द्रव्यं स्वयं सत्ता ॥ १८ ॥

न खलु द्रव्यात्पृथग्भूतो गुण इति वा पर्याय इति वा कश्चिदपि स्यात् । यथा  
सुवर्णात्पृथग्भूतं तलीतत्वादिकमिति वा तत्कुण्डलादिकत्वमिति वा । अथ तस्य तु

भवतीतिचेत् । “उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्” इति वचनात् । एवं सति सत्तैव गुणो भवती-  
त्यर्थः । इति गुणव्याख्यानं गतम् । सदवष्टिदं सहावे दब्बत्ति सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यमिति  
द्रव्यं परमात्मद्रव्यं भवति । किं कर्तुं । सदिति । केन । अभेदनयेन । कथम्भूतं । सत् अवस्थितं । क ।  
उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकस्वभावे जिणोवदेशोयं अयं जिनोपदेश इति “सदवष्टिदं सहावे दब्बं  
दब्बस्स जो हु परिणामो” इत्यादिपूर्वसूत्रे यदुक्तं तदेवेदं व्याख्यानं, गुणकथनं पुनरधिकमिति  
तात्पर्यम् । यथेदं जीवद्रव्ये गुणगुणिनोर्व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्यमिति ॥ १७ ॥

अथ गुणपर्यायाम्यां द्रव्यस्याभेदं दर्शयति;—णत्थि नास्ति न विचते । स कः । गुणोत्ति  
य कोई गुण इति कश्चित् । न केवलं गुणः पज्जाओत्तीह वा पर्यायो वेतीह । कथं । विणा  
विना । किं विना । दब्बं द्रव्यमिदानीं द्रव्यं कथ्यते दब्बत्तं पुण भावो द्रव्यत्वमस्तित्वं । तत्पुनः  
किं भण्यते । भावः । कोऽर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकसद्भावः तम्हा दब्बं सयं सत्ता तस्मादभे-  
दनयेन सत्ता स्वयमेव द्रव्यं भवतीति । तद्यथा—मुक्तात्मद्रव्ये परमावाप्तिरूपो मोक्षपर्यायः केवल-

यह [ जिनोपदेशः ] जिन भगवानंका उपदेश है । भावार्थ—द्रव्यका जो अस्ति-  
त्वरूप स्वभावभूत परिणाम है उसको सत्ता नामका गुणकहते हैं । यह अस्तित्वरूप  
सत्तागुण द्रव्यसे अभिन्न द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है । और यह सत्तागुण द्रव्यमें  
प्रधान है । सत्तामें द्रव्य स्थित रहता है । इसीकारण सत्तागुणकी प्रधानतासे द्रव्यको  
सत् कहते हैं, और इस सत्तागुणसे सत्स्वरूप गुणी द्रव्य जानाजाता है । इसकारण  
सत्ता गुण है और द्रव्य गुणी है ॥ १७ ॥ आगे गुणगुणीका भेद दूरकरते हैं;— [इह]  
इस जगत्में [ द्रव्यं विना ] द्रव्यके विना [ गुण इति ] गुण ऐसा [ वा ]  
अथवा [ पर्यायः इति ] पर्याय ऐसा [ कश्चित् ] कोई पदार्थ [ नास्ति ] नहीं  
है । [ पुनः ] और [ द्रव्यत्वं ] द्रव्यका अस्तित्व [ भावः ] उसका स्वभावभूत  
गुण है [ तस्मात् ] इसलिये [ द्रव्यं ] द्रव्य [ स्वयं ] आपही [ सत्ता ] अस्ति-  
त्वरूप सत्ता है । भावार्थ—ऐसा कोई गुण नहीं है जो द्रव्यके विना पृथक् रहना

मित्यत्राप्यपोहरूपत्वं स्यात् । ततो द्रव्यगुणयोरेकत्वमशून्यत्वमनपोहत्वं चेच्छता यथो-  
दित एवातद्भावोऽभ्युपगन्तव्यः ॥ १६ ॥

अथ सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिभावं साधयति;—

जो खलु दब्बसहावो परिणामो सो गुणो सद्विसिद्धो ।

सदवद्विषयं सहावे दब्बत्ति जिणोचदेशोर्यं ॥ १७ ॥

यः खलु द्रव्यस्वभावः परिणामः स गुणः सद्विशिष्टः ।

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यमिति जिनोपदेशोऽयम् ॥ १७ ॥

द्रव्यं हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति प्राक् प्रतिपादितं । स्वभावस्तु द्रव्यस्य  
परिणामोऽभिहितः । य एव द्रव्यस्य स्वभावभूतः परिणामः, स एव सद्विशिष्टो गुण  
इतीह साध्यते । यदेव हि द्रव्यस्वरूपवृत्तिभूतमस्तित्वं द्रव्यप्रधाननिर्देशात्सदिति संश-  
यते तद्विशिष्टगुणभूत एव द्रव्यस्य स्वभावभूतपरिणामः द्रव्यवृत्तेर्हि त्रिकोटिसमयस्य-  
शिंन्याः प्रतिक्षणं तेन स्वभावेन परिणमनाद्रव्यस्वभावभूत एव तावत्परिणामः । स

संज्ञादिभेदभिन्नस्यातद्भावस्तस्य सत्तागुणेन सह प्रदेशाभेदव्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथा-  
सम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ १६ ॥ एवं द्रव्यस्यास्तित्वकथनरूपेण प्रथमगाथा पृथक्त्वलक्षणात्-  
द्भावविधानान्यत्वलक्षणयोः कथनेन द्वितीया संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदरूपस्यातद्भावस्य विव-  
रणरूपेण तृतीया तत्स्यैव दृढीकरणार्थं च चतुर्थी द्रव्यगुणयोरभेदविषये युक्तिकथनमुल्लेखतया गाथा-  
चतुष्टयेन पञ्चमस्थलं गतम् । अथ सत्ता गुणो भवति द्रव्यं च गुणी भवतीति प्रतिपादयति;—  
जो खलु दब्बसहावो परिणामो यः खलु स्फुटं द्रव्यस्य स्वभावभूतः परिणामः  
पञ्चेन्द्रियविषयानुभवरूपमनोव्यापारोत्पन्नसमस्तमनोरथरूपविकल्पजालाभावे सति यच्चिदानन्दै-  
कानुभूतिरूपः स्वस्वभावस्तस्योत्पादः, पूर्वोक्तविकल्पजालविनाशो व्ययः, तदुभयाधारभूतं जी-  
वत्वं ध्रौव्यमित्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकजीवद्रव्यस्य स्वभावभूतो योऽसौ परिणामः  
सो गुणो स गुणो भवति स परिणामः । कथम्भूतः सन्गुणो भवति । सद्विसिद्धो  
सतोऽस्तित्वाद्विशिष्टोऽभिन्नस्तदुत्पादादित्रयं तिष्ठत्यस्तित्वं चैकं तिष्ठत्यस्तित्वेन सह कथमभिज्ञो

चाहते हैं, दोनोंका नाश नहीं चाहते हैं और अपोहरूपत्व दोपसे जुदा रहना चाहते  
हैं उन्हें भगवान् वीतराग देवने जो गुणगुणीमें व्यवहारसे अन्यत्वं भेद दिखलाया है  
उसे अंगीकार करना चाहिये, सर्वथा अभावरूप मानना योग्य नहीं है ॥ १६ ॥ आगे  
सत्ता और द्रव्यका गुणगुणीभाव दिखलाते हैं;—[ यः ] जो [ खलु ] निश्चयसे  
[ द्रव्यस्वभावः ] द्रव्यका स्वभावभूत [ परिणामः ] उत्पाद व्यय ध्रुवरूप  
त्रिकाल संघंधी परिणाम है [ सः ] वह [ सद्विशिष्टः ] सत्तासे अभिन्न अस्तित्व-  
रूप [ गुणः ] गुण है । और [ स्वभावे ] अस्तित्वरूप सत्तास्वभावमें [ अवस्थितं  
द्रव्यं ] तिष्ठता हुआ द्रव्य [ सत् ] सत्ता कहलाता है [ इति ] इसप्रकार [ अयम् ]

पर्यायास्तदा हेमसमानजीविताभिर्यौगपद्यप्रवृत्ताभिर्हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिरङ्गदा-  
दिपर्यायसमानजीविताः क्रमप्रवृत्ता अङ्गदादिपर्यायनिष्पादिका व्यतिरेकव्यक्तीस्तास्ताः  
संक्रामतो हेमः सद्भावनिवद्ध एव प्रादुर्भावः। यदा तु पर्याया एवाभिधीयन्ते न द्रव्यं तदा  
प्रभवावसानलाञ्छनाभिः क्रमप्रवृत्ताभिः पर्यायनिष्पादिकाभिर्यतिरेकव्यक्तिभिस्ताभिस्ताभिः  
प्रभवावसानवर्जिता यौगपद्यप्रवृत्ता द्रव्यनिष्पादिका अन्वयशक्तीः संक्रामतो द्रव्यस्यासद्भावे-  
निवद्ध एव प्रादुर्भावः हेमवदेव । तथाहि—यदाङ्गदादिपर्याया एवाभिधीयन्ते न हेम  
तदाङ्गदादिपर्यायसमानजीविताभिः क्रमप्रवृत्ताभिरङ्गदादिपर्यायनिष्पादिकाभिर्यतिरेकव्य-  
क्तिभिस्ताभिस्ताभिर्हेमसमानजीविता यौगपद्यप्रवृत्ता हेमनिष्पादिका अन्वयशक्तीः  
संक्रामतो हेमोऽसद्भावनिवद्ध एव प्रादुर्भावः । अथ पर्यायाभिधेयतायामप्यसदुत्पत्तौ

प्रादुर्भावमुत्पादं । कथम्भूतं । सदसव्भावणिवद्धं सद्भावनिवद्धमसद्भावनिवद्धं च । काभ्यां  
कृत्वा । द्रव्यतथपज्जयत्येहिं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाम्यामिति । तथाहि—यथा यदा काले  
द्रव्यार्थिकनयेन विवक्षा क्रियते यदेव कटकपर्याये सुवर्णं तदेव कङ्कणपर्याये नान्यदिति,  
तदा काले सद्भावनिवद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत्? द्रव्यस्य द्रव्यरूपेणाविनष्टत्वात् ।  
यदा पुनः पर्यायविवक्षा क्रियते कटकपर्यायात् सकाशादन्यो यः कङ्कणपर्यायः सुवर्णस-  
म्बन्धी स एव न भवति । तदा पुनरसदुत्पादः कस्मादिति चेत्? पूर्वपर्यायस्य विनष्टत्वात् ।

**द्भावनिवद्धं ]** सत् और असत् इन दो भावोंसे संयुक्त [ **प्रादुर्भावं ]** उत्पादको  
[ **सदा ]** हमेशा [ **लभते ]** प्राप्त होता है । **भावार्थ**—अनादि अनंत द्रव्य अपने  
परिणाम स्वभावमें निरंतर उत्पन्न होता है इसको 'उत्पाद' कहते हैं । इसे जब द्रव्या-  
र्थिकनयकी विवक्षासे कहते हैं तब यों कहते हैं कि द्रव्यजो २ पर्याय धारण करता है  
उन २ पर्यायोंमें वही द्रव्य उत्पन्न होता है जो पूर्वमें था, इसका नाम "सद्भाव उत्पाद"  
है । और जब पर्यायकी अपेक्षासे कहते हैं तब यों कहते हैं कि द्रव्य जो २ पर्याय धारण  
करता है उन २ पर्यायोंमें वही द्रव्य अवस्थाके पलटनेसे अन्य कहाजाता है, इसका  
नाम "असद्भाव उत्पाद" है । इन दोनों प्रकारके उत्पादको नीचे लिखे दृष्टान्तसे सम-  
झना चाहिये । जैसे—सोना अपने अविनाशी पीत स्निग्ध ( चिकने ) गुरुत्वादि गुणोंमें  
नाना कंकण कुंडलादि पर्यायोंको प्राप्त होता है । जो यहां पर द्रव्यार्थिकनयसे विचार  
करें तो कंकण कुंडलादि जितने पर्याय हैं उन सबमें वही सोना उत्पन्न होता है जो कि  
पहले था न कि दूसरा । यह सोनेका सद्भाव उत्पाद है । और जो उन्हीं कंकण  
कुंडलादि पर्यायोंमें सोनेको पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे कहें तो जितने कंकण कुंड-  
लादि पर्याय हैं सबके सब क्रम लियेहुए हैं । इसकारण ऐसा कहा जावेगा कि कंकण  
उत्पन्न हुआ कुंडल उत्पन्न हुआ मुद्रिका ( अंगूठी ) उत्पन्न हुई । ऐसा दूसरा दूसरा  
उत्पाद होता है अर्थात् जो पूर्वमें नहीं था वह उत्पन्न होता है, यह असद्भाव उत्पाद

द्रव्यस्य स्वरूपवृत्तिभूतमस्त्वित्वाख्यं यद्द्रव्यत्वं स खलु तद्भावाख्यो गुण एव भवन् किं हि द्रव्यात्पृथग्भूतत्वेन वर्तते? न वर्तत एव । तर्हि द्रव्यं सत्ताऽस्तु, स्वयमेव ॥ १८ ॥

अथ द्रव्यस्य सदुत्पादासदुत्पादयोरविरोधं साधयति;—

एवंविहं सहावे द्रव्यं द्रव्यत्थपज्जयत्येहिं ।

सदसद्भावनिबद्धं पादुब्भावं सदा लभदि ॥ १९ ॥

एवंविधं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यार्थपर्यायार्थाम्भ्याम् ।

सदसद्भावनिबद्धं प्रादुर्भावं सदा लभते ॥ १९ ॥

एवमेतद्यथोदितप्रकारसाकल्याकलङ्कलाञ्छनमनादिनिधनं सत्स्वभावे प्रादुर्भावमास्कन्दति द्रव्यं । स तु प्रादुर्भावो द्रव्यस्य द्रव्याभिधेयतायां सद्भावनिबद्ध एव स्यात् । पर्यायाभिधेयतायां त्वसद्भावनिबद्ध एव । तथाहि—यदा द्रव्यमेवाभिधीयते न पर्यायास्तदा प्रभवावसानवर्जिताभिर्यौगपद्यप्रवृत्ताभिर्द्रव्यनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिः प्रभवावसानलाञ्छनाः क्रमप्रवृत्ताः पर्यायनिष्पादिका व्यतिरेकव्यक्तीस्तास्ताः संक्रामतो द्रव्यस्य सद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः हेमवत् । तथाहि—यदा हेमैवाभिधीयते नाङ्गदादयः

ज्ञानादिरूपो गुणसमूहश्च येन कारणेन तद्द्वयमपि परमात्मद्रव्यं विना नास्ति न विद्यते । कस्मात्प्रदेशाभेदादिति उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकशुद्धसत्तारूपं मुक्तात्मद्रव्यं भवति । तस्माद्भेदेन सत्तैव द्रव्यमित्यर्थः । यथा मुक्तात्मद्रव्ये गुणपर्यायाभ्यां सहाभेदव्याख्यानं कृतं तथा यथासम्भवं सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्यमिति ॥ १८ ॥ एवं गुणगुणिव्याख्यानरूपेण प्रथमगाथा द्रव्यस्य गुणपर्यायाभ्यां सह भेदो नास्तीति कथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन पट्टस्यलं गतम् ॥ अथ द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाम्भ्यां सदुत्पादासदुत्पादौ दर्शयति;—एवंविहसद्भावे एवंविधसद्भावे सत्तालक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणं गुणपर्यायलक्षणं द्रव्यं, चेत्सर्वविधपूर्वोक्तसद्भावे, अथवा एवंविहं सहावे इति पाठान्तरम् । तत्रैवंविधं पूर्वोक्तलक्षणं स्वकीयसद्भावे स्थित । किं । द्रव्यं द्रव्यं कर्तुं । किं करोति । सदा लहृदि सदा सर्वकालं लभते । किं कर्मतापन्नं । पादुब्भावं

हो, इसीप्रकार ऐसा कोई पर्यायभी नहीं है जो द्रव्यसे पृथक् हो । द्रव्यहीमें गुण और पर्याय होते हैं, द्रव्यसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं है । अतः गुणपर्याय द्रव्यसे अभेदरूप हैं । जैसे सोनेसे पीतत्वादि गुण, कुंडलादि पर्याय पृथक् नहीं पाये जाते; उसीप्रकार द्रव्यसे गुणपर्याय पृथक् नहीं हैं और सत्ता है सो वस्तुसे अभिन्न उसका गुण है । इसकारण अस्तित्वरूप सत्तागुण द्रव्यसे पृथक् नहीं है, द्रव्य स्वयं सत्तास्वरूप है ॥ १८ ॥ आगे द्रव्यके द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे “ सन् उत्पाद ” और “ असन् उत्पाद ” ऐसा दो प्रकारका उत्पाद होता है सो उन दोनोंमें अविरोध दिग्गलते हैं;—[ एवंविधं ] इसप्रकारसे [ द्रव्यं ] द्रव्य [ स्वभावे ] स्वभायमें [ द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक ] द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयोंकी विवक्षामे [ सदस-

पर्यायास्तदा हेमसमानजीविताभिर्यौगपद्यप्रवृत्ताभिर्हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिरङ्गदा-  
दिपर्यायसमानजीविताः क्रमप्रवृत्ता अङ्गदादिपर्यायनिष्पादिका व्यतिरेकव्यक्तीस्तास्ताः  
संक्रामतो हेमः सद्भावनिवद्ध एव प्रादुर्भावः। यदा तु पर्याया एवाभिधीयन्ते न द्रव्यं तदा  
प्रभवावसानलाञ्छनाभिः क्रमप्रवृत्ताभिः पर्यायनिष्पादिकाभिर्यतिरेकव्यक्तिभिस्ताभिस्ताभिः  
प्रभवावसानवर्जिता यौगपद्यप्रवृत्ता द्रव्यनिष्पादिका अन्वयशक्तीः संक्रामतो द्रव्यस्यासद्भावे-  
निवद्ध एव प्रादुर्भावः हेमवदेव । तथाहि—यदाङ्गदादिपर्याया एवाभिधीयन्ते न हेम  
तदाङ्गदादिपर्यायसमानजीविताभिः क्रमप्रवृत्ताभिरङ्गदादिपर्यायनिष्पादिकाभिर्यतिरेकव्य-  
क्तिभिस्ताभिस्ताभिर्हेमसमानजीविता यौगपद्यप्रवृत्ता हेमनिष्पादिका अन्वयशक्तीः  
संक्रामतो हेमोऽसद्भावनिवद्ध एव प्रादुर्भावः । अथ पर्यायाभिधेयतायामप्यसदुत्पत्तौ

प्रादुर्भावमुत्पादं । कथम्भूतं । सदसद्भावणिवद्धं सद्भावनिवद्धमसद्भावणिवद्धं च । काम्यां  
कृत्वा । द्रव्यरूपजयत्येहिं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाम्यामिति । तथाहि—यथा यदा काले  
द्रव्यार्थिकनयेन विवक्षा क्रियते यदेव कटकपर्याये सुवर्णं तदेव कङ्कणपर्याये नान्यदिति,  
तदा काले सद्भावनिवद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत्? द्रव्यस्य द्रव्यरूपेणाविनष्टत्वात् ।  
यदा पुनः पर्यायविवक्षा क्रियते कटकपर्यायात् सकाशादन्यो यः कङ्कणपर्यायः सुवर्णस-  
म्बन्धी स एव न भवति । तदा पुनरसदुत्पादः कस्मादिति चेत्? पूर्वपर्यायस्य विनष्टत्वात् ।

**सद्भावनिवद्धं ]** सत् और असत् इन दो भावोंसे संयुक्त [ **प्रादुर्भावं ]** उत्पादको  
[ **सदा ]** हमेशा [ **लभते ]** प्राप्त होता है । **भावार्थ—**अनादि अनंत द्रव्य अपने  
परिणाम स्वभावमें निरंतर उत्पन्न होता है इसको 'उत्पाद' कहते हैं । इसे जब द्रव्या-  
र्थिकनयकी विवक्षासे कहते हैं तब यों कहते हैं कि द्रव्यजो २ पर्याय धारण करता है  
उन २ पर्यायोंमें वही द्रव्य उत्पन्न होता है जो पूर्वमें था, इसका नाम "सद्भाव उत्पाद"  
है । और जब पर्यायकी अपेक्षासे कहते हैं तब यों कहते हैं कि द्रव्य जो २ पर्याय धारण  
करता है उन २ पर्यायोंमें वही द्रव्य अवस्थाके पलटनेसे अन्य कहाजाता है, इसका  
नाम "असद्भाव उत्पाद" है । इन दोनों प्रकारके उत्पादको नीचे लिखे दृष्टान्तसे सम-  
झना चाहिये । जैसे—सोना अपने अविनाशी पीत स्निग्ध ( चिकने ) गुरुत्वादि गुणोंसे  
नाना कंकण कुंडलादि पर्यायोंको प्राप्त होता है । जो यहां पर द्रव्यार्थिकनयसे विचार  
करें तो कंकण कुंडलादि जितने पर्याय हैं उन सबमें वही सोना उत्पन्न होता है जो कि  
पहले था न कि दूसरा । यह सोनेका सद्भाव उत्पाद है । और जो उन्हीं कंकण  
कुंडलादि पर्यायोंमें सोनेको पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे कहें तो जितने कंकण कुंड-  
लादि पर्याय हैं सबके सब क्रम लियेहुए हैं । इसकारण ऐसा कहा जावेगा कि कंकण  
उत्पन्न हुआ कुंडल उत्पन्न हुआ मुद्रिका ( अंगूठी ) उत्पन्न हुई । ऐसा दूसरा दूसरा  
उत्पाद होता है अर्थात् जो पूर्वमें नहीं था वह उत्पन्न होता है, यह असद्भाव उत्पाद

पर्यायनिष्पादिकास्तास्ता व्यतिरेकव्यक्तयो यौगपद्यप्रवृत्तिमासाद्यान्वयशक्तित्वमापन्नाः पर्यायान् द्रवीकुर्युः, तथाङ्गदादिपर्यायनिष्पादिकाभिस्ताभिस्ताभिव्यतिरेकव्यक्तिभिर्यौगपद्यप्रवृत्तिमासाद्यान्वयशक्तित्वमापन्नाभिरङ्गदादिपर्यायानपि हेमीक्रियेरन् । द्रव्याभिधेयतायामपि सदुत्पत्तौ द्रव्यनिष्पादिका अन्वयशक्तयः क्रमप्रवृत्तिमासाद्य तत्तद्द्व्यतिरेकव्यक्तित्वमापन्ना द्रव्यं पर्यायीकुर्युः । तथा हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिः क्रमवृत्तिमासाद्य तत्तद्द्व्यतिरेकमापन्नाभिर्हेमाङ्गदादिपर्यायमात्री क्रियेत । ततो द्रव्यार्थादेशात्सदुत्पादः, पर्यायार्थादेशादसत् इत्यनवद्यम् ॥ १९ ॥

तथा यदा द्रव्यार्थिकनयविवक्षा क्रियते य एव पूर्वं गृहस्थावस्थायामेवमेवं गृहव्यापारं कृतवान् पश्चाज्जिनदीक्षां गृहीत्वा स एवेदानीं रामादिकेवल्लिपुरुषो निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमात्मध्यानेनानन्तसुखामृततृप्तो जातः, न चान्य इति । तदा सद्भावनिबद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत् । पुरुषत्वेनाविनष्टत्वात् । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते । पूर्वं सरागावस्थायाः सकाशादन्वयोऽयं भरतसगररामपाण्डवादिकेवल्लिपुरुषाणां सम्बन्धी निरुपमरामपरमात्मपर्यायः स एव न भवति । तदा पुनरसद्भावनिबद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत् । पूर्वपर्यायादन्यत्वादिति । यथेदं जीवद्रव्ये सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानां कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्य-

है । इसीप्रकार द्रव्य अपने अविनाशी गुणोंसे युक्त रहकर अनेक पर्याय धारण करता है । सो उसे यदि द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे कहते हैं तो जितने पर्याय हैं उन सब पर्यायोंमें वही द्रव्य उत्पन्न होता है जो पहले था, अन्य नहीं । ये सत् उत्पाद है । और यदि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे कहते हैं तो जितने पर्याय उत्पन्न होते हैं वे सब अन्य अन्य ही हैं । पहले जो थे वे नहीं हैं—यह असत् उत्पाद है ॥ और जैसे पर्यायार्थिककी विवक्षामें जो असत् रूप कंकण कुंडलादि पर्याय उत्पन्न होते हैं उनके उत्पन्नकरनेवाली जो सुवर्णमें शक्ति है वह कंकण कुंडलादि पर्यायोंको सुवर्ण द्रव्य करती है । सोनाकी पर्यायभी सोना ही है, क्योंकि पर्यायसे द्रव्य अभिन्न है । इसीप्रकार पर्याय विवक्षामें द्रव्यके जो असद्रूप पर्याय हैं उनकी उत्पन्न करनेवाली शक्ति जो द्रव्यमें है वह पर्यायको द्रव्य करती है । जिस द्रव्यके जो पर्याय हैं वे उसी द्रव्यरूप हैं, क्योंकि पर्यायसे द्रव्य अभिन्न है । इसलिये पर्याय और द्रव्य दो वस्तु नहीं हैं, जो पर्याय है वही द्रव्य है । और द्रव्यार्थिककी विवक्षासे जैसे सोना अपनी पीततादि शक्तियोंसे कंकण कुंडलादि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है सो सोना ही कंकण कुंडलादि पर्यायमात्र होता है । अर्थात् जो सोना है वही कंकण कुंडलादि पर्याय हैं, उन्मीप्रकार द्रव्य अपनी शक्तियोंसे अपने पर्यायोंमें क्रमसे उत्पन्न होता है । जय जो पर्याय धारण करता है तय उसी पर्यायमात्र होता है अर्थात् जो द्रव्य है वही पर्याय है । इसलिये सिद्ध हुआ कि असत् उत्पादमें जो पर्याय हैं वे द्रव्य ही हैं,

अथ सदुत्पादमनन्यत्वेन निश्चिनोति;—

जीवो भवं भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो ।

किं द्रव्यत्तं पजहदि ण जहं अण्णो कहं होदि ॥ २० ॥

जीवो भवन् भविष्यति नरोऽमरो वा परो भूत्वा पुनः ।

किं द्रव्यत्वं प्रजहाति न जहदन्यः कथं भवति ॥ २० ॥

द्रव्यं हि तावद्द्रव्यत्वभूतामन्वयशक्तिं नित्यमप्यपरित्यजद्भवति सदेव । यस्तु द्रव्यस्य पर्यायभूताया व्यतिरेकव्यक्तेः प्रादुर्भावः तस्मिन्नपि द्रव्यत्वभूताया अन्वयशक्तेरप्रच्यवनात् द्रव्यमनन्यदेव । ततोऽनन्यत्वेन निश्चीयते द्रव्यस्य सदुत्पादः । तथाहि—जीवो द्रव्यं भवन्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वानामन्यतमेन पर्यायेण द्रव्यस्य पर्यायदुर्लभित-वृत्तित्वादवश्यमेव भविष्यति । स हि भूत्वा च तेन किं द्रव्यभूतामन्वयशक्तिमुज्जति ?

मिति ॥ १९ ॥ अथ पूर्वोक्तमेव सदुत्पादं द्रव्यादभिन्नत्वेन विवृणोति;—जीवो जीवः कर्ता भवं भवन् परिणमन् सन् भविस्सदि भविष्यति तावत् । किं किं भविष्यति । निर्विकारशुद्धोपयोगविलक्षणगाम्यां शुभाशुभोपयोगाम्यां परिणम्य णरोऽमरो वा परो नरो देवो परस्तिर्यङ्गारकरूपो वा निर्विकारशुद्धोपयोगेन सिद्धो वा भविष्यति भवीय पुणो एवं पूर्वोक्तप्रकारेण पुनर्भवीय भूत्वापि । अथवा द्वितीयव्याख्यानं । भवन् वर्तमानकाल-पेक्षया भविष्यति भाविकालापेक्षया भूत्वा भूतकालापेक्षया चेति कालत्रये चैवं भूत्वापि किं द्रव्यत्तं पचयदि किं द्रव्यत्वं परित्यजति ण चयदि द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वं न त्यजति द्रव्याद्भिन्नो न भवति । अण्णो कहं हवदि अन्यो भिन्नः कथं भवति ? किन्तु द्रव्यान्वयशक्ति-

और सदुत्पादमें जो द्रव्य है सो पर्याय ही हैं । द्रव्य और पर्याय आपसमें अभेदरूप हैं, परंतु नयके भेदसे भेदरूप हैं ॥ १९ ॥ आगे सदुत्पादको पर्यायसे अभेदरूप बतलाते हैं;—[जीवः] आत्मा [भवन्] द्रव्यस्वभावरूप परिणमन करता हुआ [नरः] मनुष्य वा [अमरः] देव [वा] अथवा [परः] अन्य अर्थात् नारकी, तिर्यच, सिद्ध इन सब पर्यायरूप [भविष्यति] होवेगा [पुनः] और [भूत्वा] पर्यायस्वरूप होकर [किं] क्या [द्रव्यत्वं] अपनी द्रव्यत्वशक्तिको [प्रजहाति] छोड़ सकता है ? कभी नहीं । और जय [न जहत्] अपने द्रव्यत्वस्वभावको नहीं छोड़ सकता तो [अन्यः कथं भवति] अन्य स्वरूप कैसे होसक्ता है ? कदापि नहीं हो सकता । भावार्थ—यह जीवद्रव्य नारकी तिर्यच देवता मनुष्य सिद्ध—इन सबकी अनंत पर्यायोंको धारण करता है । यद्यपि यह जीव पर्यायोंसे अनेक स्वरूप होगया है तौभी अपने द्रव्यपने स्वभावको नहीं छोड़ता है । और जय अनेक पर्यायोंके धारण करने पर भी अपनी द्रव्यत्व शक्तिको नहीं छोड़ता तो अन्यरूप कभी नहीं हो सकता, जो नारकी या वही तिर्यच पर्यायमें है वही मनुष्य हो जाता है वही देवता तथा सिद्ध



पर्यायनिष्पादिकास्तास्ता व्यतिरेकव्यक्तयो यौगपद्यप्रवृत्तिमासाधान्वयशक्तित्वमापन्नाः पर्यायान् द्रवीकुर्युः, तथाङ्गदादिपर्यायनिष्पादिकाभिस्ताभिस्तामिर्व्यतिरेकव्यक्तिभिर्यौगपद्यप्रवृत्तिमासाधान्वयशक्तित्वमापन्नाभिरङ्गदादिपर्यायानपि हेमीक्रियेरन् । द्रव्याभिधेयतायामपि सदुत्पत्तौ द्रव्यनिष्पादिका अन्वयशक्तयः क्रमप्रवृत्तिमासाद्य तत्तद्व्यतिरेकव्यक्तित्वमापन्ना द्रव्यं पर्यायीकुर्युः । तथा हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिः क्रमवृत्तिमासाद्य तत्तद्व्यतिरेकमापन्नाभिर्हेमाङ्गदादिपर्यायमात्री क्रियेत । ततो द्रव्यार्थादेशात्सदुत्पादः, पर्यायार्थादेशादसत् इत्यनवद्यम् ॥ १९ ॥

तथा यदा द्रव्यार्थिकनयविवक्षा क्रियते य एव पूर्वं गृहस्थावस्थायामेवमेवं गृहव्यापारं कृतवान् पश्चाज्जिनदीक्षां गृहीत्वा स एवेदानीं रामादिकेवलीपुरुषो निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमात्मध्यानेनानन्तसुखाभृततृप्तो जातः, न चान्य इति । तदा सद्भावनिबद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत् । पुरुषत्वेनाविनष्टत्वात् । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते । पूर्वं सरागावस्थायाः सकाशादन्योऽयं भरतसगररामपाण्डवादिकेवल्लिपुरुषाणां सम्बन्धी निरुपमरागपरमात्मपर्यायः स एव न भवति । तदा पुनरसद्भावनिबद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत् । पूर्वपर्यायादन्यत्वादिति । यथेदं जीवद्रव्ये सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्य-

है । इसीप्रकार द्रव्य अपने अविनाशी गुणोंसे युक्त रहकर अनेक पर्याय धारण करता है । सो उसे यदि द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे कहते हैं तो जितने पर्याय हैं उन सब पर्यायोंमें वही द्रव्य उत्पन्न होता है जो पहले था, अन्य नहीं । ये सत् उत्पाद है । और यदि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे कहते हैं तो जितने पर्याय उत्पन्न होते हैं वे सब अन्य अन्य ही हैं । पहले जो थे वे नहीं हैं—यह असत् उत्पाद है ॥ और जैसे पर्यायार्थिककी विवक्षामें जो असत् रूप कंकण कुंडलादि पर्याय उत्पन्न होते हैं उनके उत्पन्नकरनेवाली जो सुवर्णमें शक्ति है वह कंकण कुंडलादि पर्यायोंको सुवर्ण द्रव्य करती है । सोनाकी पर्यायभी सोना ही है, क्योंकि पर्यायसे द्रव्य अभिन्न है । इसीप्रकार पर्याय विवक्षामें द्रव्यके जो असद्रूप पर्याय हैं उनकी उत्पन्न करनेवाली शक्ति जो द्रव्यमें है वह पर्यायको द्रव्य करती है । जिस द्रव्यके जो पर्याय हैं वे उसी द्रव्यरूप हैं, क्योंकि पर्यायसे द्रव्य अभिन्न है । इसलिये पर्याय और द्रव्य दो वस्तु नहीं हैं, जो पर्याय है वही द्रव्य है । और द्रव्यार्थिककी विवक्षासे जैसे सोना अपनी पीततादि शक्तियोंसे कंकण कुंडलादि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है सो सोना ही कंकण कुंडलादि पर्यायमात्र होता है । अर्थात् जो सोना है वही कंकण कुंडलादि पर्याय हैं, उसीप्रकार द्रव्य अपनी शक्तियोंसे अपने पर्यायोंमें क्रमसे उत्पन्न होता है । जय जो पर्याय धारण करता है तब उमी पर्यायमात्र होता है अर्थात् जो द्रव्य है वही पर्याय है । इसलिये सिद्ध हुआ कि असत् उत्पादमें जो पर्याय हैं वे द्रव्य ही हैं,

हि त्रिदशो मनुजो वा सिद्धो वा स्यात् । एवमसत्कथमनन्यो नाम स्यात् ? येनान्य एव न स्यात् । येन च निष्पद्यमानमनुजादिपर्यायं जायमानवल्यादिविकारं काञ्चनमिव जीवद्रव्यमपि प्रतिपदमन्यन्न स्यात् ॥ २१ ॥

अथैकद्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वविप्रतिषेधमुद्बुनोति;—

द्ववद्विष्टेण सव्वं दव्वं तं पज्जयद्विष्टेण पुणो ।

हवदि य अण्णमण्णं तक्कालं तम्मयत्तादो ॥ २२ ॥

द्रव्यार्थिकेन सर्वं द्रव्यं तत्पर्यायार्थिकेन पुनः ।

भवति चान्यदनन्यत्तत्कालं तन्मयत्वात् ॥ २२ ॥

सर्वस्य हि वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकत्वात्तत्स्वरूपमुत्पश्यतां यथाक्रमं सामान्यविशेषौ परिच्छिन्दती द्वे किल चक्षुषी, द्रव्यार्थिकं पर्यायार्थिकं चेति । तत्र पर्यायार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन द्रव्यार्थिकेन यदावलोक्यते तदा नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकेषु विशेषेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यमेकमवलोक्यतामनवलोकितविशेषाणां तत्सर्वं जीवद्रव्यमिति प्रतिभाति । यदा तु द्रव्यार्थिकमेकान्तनिमीलितं केवलोन्मी-

एवं अहोज्ज माणो एवमभवन्तन् अण्णभावं कहं लहदि अनन्यभावमेकत्वं कथं लभते ? न कथमपि । तत् एतावदायाति असद्भावनिबद्धोत्पादः पूर्वपर्यायाद्भिन्नो भवतीति ॥२१॥

अथैकद्रव्यस्य पर्यायैस्सहानन्यत्वाभिधानमेकत्वमन्यत्वाभिधानमनेकत्वं च नयविभागेन दर्शयति, अथवा पूर्वोक्तसद्भावनिबद्धासद्भावमुत्पादद्वयं प्रकारान्तरेण समर्थयति;—हवदि भवति । किं कर्तुं । सव्वं दव्वं सर्वं विवक्षिताविवक्षितजीवद्रव्यं । किं विशिष्टं भवति । अण्णं अनन्यमभिन्नमेकं तन्मयमिति । केन सह । तेन नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवरूपविभावपर्यायसमूहेन केवलज्ञानायनन्तचतुष्टयशक्तिरूपसिद्धपर्यायेण च । केन कृत्वा । द्ववद्विष्टेण शुद्धान्वयद्रव्यार्थिकनयेन । कस्मात् । कुण्डलादिपर्यायेषु सुवर्णस्येव भेदाभावात् तं पज्जयद्विष्टेण पुणो तद्रव्यं पर्यायार्थिकनयेन

वा सिद्धपर्यायरूप नहीं होता, इसतरह पर्यायके भेदसे द्रव्य भी अन्य कहा जाता है । इसकारण पर्यायार्थिकनयसे द्रव्य अन्यरूप अवश्य कहना चाहिये । जैसे सोना कंकण कुंडलादि पर्यायोंके भेदसे “कंकणका सोना कुंडलका सोना” इसरीतिसे अन्य अन्यरूप कहा जाता है, उसीप्रकार मनुष्यजीव—देवजीव—सिद्धजीव इसतरह अन्य अन्यरूप कहनेमें आता है । इसकारण असत् उत्पादमें द्रव्यको अन्यरूप कहना चाहिये यह सिद्ध हुआ ॥ २१ ॥ आगे एक द्रव्यके अन्यत्व—अनन्यत्व ये दो भेद हैं वे परस्पर विरोधी एक जगह किसतरह रह सकते हैं ? इसका समाधान आचार्यमहाराज कहते हैं;—  
[ द्रव्यार्थिकेन ] द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे [ तत् सर्वं ] वह समस्त वस्तु [ अनन्यत् ] अन्य नहीं है वही है अर्थात् नर नरकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य रहता है [ पुनः ] और [ पर्यायार्थिकेन ] पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे [ अन्यत् ]

नोज्झति । यदि नोज्झति कथमन्यो नाम स्यात्, येन प्रकटितत्रिकोटिसत्ताकः स एव न स्यात् ॥ २० ॥

अथासदुत्पादमन्यत्वेन निश्चिनोति;—

मणुओ ण होदि देवो देवो वा माणुसो व सिद्धो वा ।

एवं अहोच्चमाणो अणण्णभावं कथं लहदि ॥ २१ ॥

मनुजो न भवति देवो देवो वा मानुपो वा सिद्धो वा ।

एवमभवन्ननन्यभावं कथं लभते ॥ २१ ॥

पर्याया हि पर्यायभूताया आत्मव्यतिरेकव्यक्तेः काल एव सत्त्वात्ततोऽन्यकालेषु भवन्त्यसन्त एव । यश्च पर्यायाणां द्रव्यत्वभूतयान्वयशक्त्यानुस्यूतः क्रमानुपातीः स्वकाले प्रादुर्भावः तस्मिन्पर्यायभूताया आत्मव्यतिरेकव्यक्तेः पूर्वमसत्त्वात्पर्याया अन्य एव । ततः पर्यायाणामन्यत्वेन निश्चीयते पर्यायस्वरूपकर्तृकरणधिकरणभूतत्वेन पर्यायेभ्यो पृथग्भूतस्य द्रव्यस्यासदुत्पादः । तथाहि—न हि मनुजस्त्रिदशो वा सिद्धो वा स्यात् न

रूपेण सद्भावनिवद्धोत्पादः स एवेति द्रव्यादभिन्न इति भावार्थः ॥ २० ॥ अथ द्रव्यस्यासदुत्पादं पूर्वपर्यायादन्यत्वेन निश्चिनोति;—मणुओ ण हवदि देवो आकुलत्वोत्पादकमनुजः देवादिविभावपर्यायविलक्षणमनाकुलत्वरूपस्वभावपरिणतिलक्षणं परमात्मद्रव्यं यद्यपि निश्चयेन मनुष्यपर्याये देवपर्याये च समानं तथापि मनुजो देवो न भवति । कस्माद्देवपर्यायकाले मनुष्यपर्यायस्यानुपलम्भात् । देवो वा माणुसो व सिद्धो वा देवो वा मनुष्यो न भवति स्वात्मोपलब्धिरूपसिद्धपर्यायो वा न भवति । कस्मात् । पर्यायाणां परस्परं भिन्नकालत्वात्, सुवर्णद्रव्ये कुण्डलादिपर्यायाणामिव ।

आदि पर्यायरूप हो जाता है । इन सब अवस्थाओंमें अविनाशी द्रव्य वही एक है दूसरा नहीं । इसलिये सत् उत्पादकी अपेक्षा सब पर्यायोंमें वही अविनाशी वस्तु है ऐसा सिद्ध हुआ ॥ २० ॥ आगे असत् उत्पादको अन्यरूपसे दिखाते हैं;—[ मनुजः ] जो मनुष्य है वह [ देवः ] देव [ वा ] अथवा [ देवः ] देव है वह [ मानुषः ] मनुष्य [ वा ] अथवा [ सिद्धः ] सिद्ध अर्थात् मोक्षपर्याय रूप [ न भवति ] नहीं हो सक्ता [ एवं अभवन् ] इसप्रकार नहीं होता हुआ [ अनन्यभावं ] अभिन्नपनेको [ कथं ] किसतरह [ लभते ] प्राप्त हो सक्ता है ? । भावार्थ—जो देव मनुष्यादि पर्याय हैं वे सब एक कालमें नहीं होते किन्तु जुदे २ समयमें होते हैं । जिससमय देव पर्याय है उससमय मनुष्यादि पर्याय नहीं है एक ही पर्याय हो सकती है । इसकारण जो एक पर्याय होती है वह अन्यरूप नहीं हो सकती, सब जुदे २ ही पर्याय होते हैं । इसलिये पर्यायका कर्ता करण द्रव्य आधार है सो द्रव्य, पर्यायसे जुदा नहीं है पर्यायके पलटनेसे द्रव्य भी व्यवहारमें अन्य कहा जाता है । जैसे—मनुष्यपर्यायरूप जीव देवतापर्यायरूप या सिद्धपर्याय रूप नहीं होता और देवपर्यायरूप जीव मनुष्यपर्यायरूप

अथ सर्वविप्रतिषेधनिषेधिकां सप्तमङ्गीमवतारयति;—

अत्थित्ति य णत्थित्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं ।

पज्जाएण तु केणवि तदुभयमादिद्वमण्णं वा ॥ २३ ॥

अस्तीति च नास्तीति च भवत्यवक्तव्यमिति पुनर्द्रव्यम् ।

पर्यायेण तु केनापि तदुभयमादिष्टमन्यद्वा ॥ २३ ॥

स्यादस्त्येव १ स्यान्नास्त्येव २ स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादस्तिनास्त्येव ४ स्यादस्त्यवक्तव्यमेव ५ स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव ६ स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यमेव ७, स्वरूपेण १ पररूपेण

त्पादकथनेन प्रथमा सदुत्पादविशेषविवरणरूपेण द्वितीया तथैवासदुत्पादविशेषविवरणरूपेण तृतीया द्रव्यपर्याययोरेकत्वानैकत्वप्रतिपादनेन चतुर्थीति सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानमुख्यतया गाथा-चतुष्टयेन सप्तमस्थलं गतम् । अथ समस्तदुर्नयैकान्तरूपविवादनिषेधिकां नयसप्तमङ्गीं विस्तारयति;—अत्थित्ति य स्यादस्त्येव । स्यादिति कोऽर्थः कथंचित्कोऽर्थः? विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन तच्चतुष्टयं, शुद्धजीवविषये कथ्यते । शुद्धगुणपर्यायाधारभूतं शुद्धात्मद्रव्यं द्रव्यं भण्यते, लोकाकाशप्रमिताः शुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयः कालो भण्यते, शुद्धचैतन्यं भावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयेन इति प्रथममङ्गः १ । णत्थित्ति य स्यान्नास्त्येव स्यादिति कोऽर्थः कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन हवदि भवति २ । कथम्भूतं । अवत्तव्वमिति स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यं, स्यादस्तिनास्ति, स्यादस्त्येवावक्तव्यम्, स्यान्नास्त्येवावक्तव्यं स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यम् । “पुणो” पुनः इत्थंभूतं । किं भवति । दव्वं परमात्मद्रव्यं कर्तुं । पुनरपि कथम्भूतं भवति । तदुभयं स्यादस्तिनास्त्येव । स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ४ । कथम्भूतं सदित्थमित्थं भवति । आदिद्वं

सकता ॥ २२ ॥ अत्र सत्र तरहके विरोधोंको दूरकरनेवाली सप्तमङ्गी वाणीको कहते हैं;—[ द्रव्यं ] जो वस्तु है वह [ केनचित्पर्यायेण ] किसी एक पर्यायसे [ अस्तीति ] अस्तिरूप [ भवति ] है [ च ] और किसी एक पर्यायसे [ नास्तीति ] वही द्रव्य नास्तिरूप है [ च ] तथा [ अवत्तव्वं इति ] किसी एक प्रकारसे वचनगोचर नहीं है [ तु पुनः ] और [ तत् उभयं ] किसी एक पर्यायसे वही द्रव्य अस्तिनास्तिरूप है [ वा ] अथवा किसी एक पर्यायसे [ अन्यत् ] अन्य तीन भंग-स्वरूप [ आदिष्टं ] कहा गया है । भावार्थ—द्रव्यकी सिद्धि सप्तभंगोंसे होती है वे इसप्रकार हैं—स्वद्रव्य—स्वक्षेत्र—स्वकाल—स्वभाव, इसतरह अपने चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य अस्तिरूप है १ परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है २ एक कालमें ‘अस्ति नास्ति’ कह नहीं सकते इसकारण वह अवक्तव्य है ३ क्रमसे वचनद्वारा अस्तिनास्तिरूप है ४ तथा द्रव्यमें स्यात् अस्त्यवक्तव्य चौथा भंग है क्योंकि

लितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्यत्प्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात् गणतृणपर्णदारुमयहव्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशावलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनं । ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वमनन्यत्वं च न विप्रतिपिध्यते ॥ २२ ॥

पुनः अन्यद्विन्नमनेकं पर्यायैः सह पृथग्भवति । कस्मादिति चेत् । तत्काले तन्मयत्तादौ तृणाग्निक्लाष्ठाग्निपत्राग्निवत् स्वकीयपर्यायैः सह तत्काले तन्मयत्वादिति । एतावता किमुक्तं भवति । द्रव्यार्थिकनयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्वं पर्यायकदम्भकं द्रव्यमेव प्रतिभाति । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्नं भिन्नं प्रतिभाति । यदा च परस्परसापेक्षया नयद्वयेन युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्वं च युगपत्प्रतिभातीति । यथेदं जीवद्रव्ये व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥ एवं सद्गु-

अन्यरूप द्रव्य होता है अर्थात् नर नारकादि पर्यायोंसे जुदा २ कहा जाता है । क्योंकि [ तत्कालं ] नर नारकादि पर्यायोंके होनेके समय वह द्रव्य [ तन्मयत्वात् ] उस पर्यायस्वरूप ही होजाता है । भावार्थ—वस्तु सामान्य—विशेषरूप दो प्रकारसे है । इन दोनोंके देखनेवाले हैं उनके दो नेत्र कहे हैं—एक तो द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक । इन दोनों नेत्रोंमेंसे जो पर्यायार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद करके एक द्रव्यार्थिक नेत्रसे ही देखे तब नारकतिर्यच मनुष्य देव सिद्ध पर्यायोंमें स्थित जो सामान्य एक जीव उसके देखनेवाले पुरुषोंकी सब जगह जीव ही प्रतिभासता ( दीखता ) है भेद नहीं मालूम होता । और जब द्रव्यार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद कर एक पर्यायार्थिक नेत्रसे ही देखाजावे तब जीवद्रव्यमें नर नारकादि पर्यायोंके देखनेवाले पुरुषोंको नर नारकादि पर्याय जुदे २ मालूम होते हैं । जिसकालमें जो पर्याय होता है उस पर्यायमें जीव उसीस्वरूप परिणमता है । जैसे कि आग, गोबरके छाने—तृण—पत्ता—काठ आदि अनेक ईधनके आकार हो जाती है, उसीप्रकार जीव भी अनेक पर्यायोंको धारण करता हुआ अनेक आकाररूप होजाता है । तथा जब द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक दोनोंही नेत्रोंसे इधर उधर सब जगह देखाजाय तो एक ही समय नर नारकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य देखनेमें आता है और अन्य २ रूप भी क्षीयता है । इसकारण एक नयरूप नेत्रसे देखना एक अंगका देखना है तथा दो नयरूप नेत्रोंसे देखना सब अंगोंका देखना कहा जाता है । इसलिये सर्वांग द्रव्यके देखनेमें अन्यरूप और अनन्यरूप—द्वयतरद दो स्वरूप कहनेका निषेध नहीं है ।

अथ सर्वविप्रतिपेधनिपेधिकां सप्तभङ्गीमवतारयति;—

अत्थिति य णत्थिति य ह्वदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं ।

पज्जाएण दु केणवि तदुभयमादिट्टमण्णं वा ॥ २३ ॥

अस्तीति च नास्तीति च भवत्यवक्तव्यमिति पुनर्द्रव्यम् ।

पर्यायेण तु केनापि तदुभयमादिष्टमन्यद्वा ॥ २३ ॥

स्यादस्येव १ स्यान्नास्येव २ स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादस्तिनास्येव ४ स्यादस्यवक्तव्यमेव ५ स्यान्नास्यवक्तव्यमेव ६ स्यादस्तिनास्यवक्तव्यमेव ७, स्वरूपेण १ पररूपेण

त्पादकथनेन प्रथमा सदुत्पादविशेषविवरणरूपेण द्वितीया तथैवासदुत्पादविशेषविवरणरूपेण तृतीया द्रव्यपर्याययोरेकत्वानेकत्वप्रतिपादनेन चतुर्थीति सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन सप्तमस्थलं गतम् । अथ समस्तदुर्नयैकान्तरूपविवादानिपेधिकां नयसप्तभङ्गी विस्तारयति;—अत्थिति य स्यादस्येव । स्यादिति कोऽर्थः कथंचित्कोऽर्थः? विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन तच्चतुष्टयं, शुद्धजीवविषये कथ्यते । शुद्धगुणपर्यायाधारभूतं शुद्धात्मद्रव्यं द्रव्यं भण्यते, लोकाकाशप्रमिताः शुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयः कालो भण्यते, शुद्धचैतन्यं भावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयेन इति प्रथमभङ्गः १ । णत्थिति य स्यान्नास्येव स्यादिति कोऽर्थः कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन ह्वदि भवति २ । कथम्भूतं । अवत्तव्वमिति स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यं, स्यादस्तिनास्ति, स्यादस्येवावक्तव्यम्, स्यान्नास्येवावक्तव्यं स्यादस्तिनास्यवक्तव्यम् । “पुणो” पुनः इत्थंभूतं । किं भवति । दव्वं परमात्मद्रव्यं कर्तुं । पुनरपि कथम्भूतं भवति । तदुभयं स्यादस्तिनास्येव । स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ४ । कथम्भूतं सदित्थमित्थं भवति । आदिट्टं

सकता ॥ २२ ॥ अव सव तरहके विरोधोको दूरकरनेवाली सप्तभङ्गी वाणीको कहते हैं;—[ द्रव्यं ] जो वस्तु है वह [ केनचित्पर्यायेण ] किसी एक पर्यायसे [ अस्तीति ] अस्तिरूप [ भवति ] है [ च ] और किसी एक पर्यायसे [ नास्तीति ] वही द्रव्य नास्तिरूप है [ च ] तथा [ अवत्तव्वं इति ] किसी एक प्रकारसे वचनगोचर नहीं है [ तु पुनः ] और [ तत् उभयं ] किसी एक पर्यायसे वही द्रव्य अस्तिनास्तिरूप है [ वा ] अथवा किसी एक पर्यायसे [ अन्यत् ] अन्य तीन भंगस्वरूप [ आदिष्टं ] कहा गया है । भावार्थ—द्रव्यकी सिद्धि सप्तभंगोंसे होती है वे इसप्रकार हैं—स्वद्रव्य—स्वक्षेत्र—स्वकाल—स्वभाव, इसतरह अपने चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य अस्तिरूप है १ परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है २ एक कालमें ‘अस्ति नास्ति’ कह नहीं सकते इसकारण वह अवत्तव्व है ३ क्रमसे वचनद्वारा अस्तिनास्तिरूप है ४ तथा द्रव्यमें स्यात् अस्त्यवक्तव्य चौथा भंग है क्योंकि

लितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्यत्प्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात् गणनृणपुष्पदानरुमयहृद्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशवलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनं । ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वमनन्यत्वं च न विप्रतिपिध्यते ॥ २२ ॥

पुनः अन्यद्विन्नमनेकं पर्यायैः सह पृथग्भवति । कस्मादिति चेत् । तत्काले तन्मयत्वादौ वृणाग्रिकाष्टाग्रिपत्राग्रिवत् स्वकीयपर्यायैः सह तत्काले तन्मयत्वादिति । एतावता किमुक्तं भवति । द्रव्यार्थिकनयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्वं पर्यायकदम्बकं द्रव्यमेव प्रतिभाति । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्नं भिन्नं प्रतिभाति । यदा च परस्परसापेक्षया नयद्वयेन युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्वं च युगपत्प्रतिभातीति । यथेदं जीवद्रव्ये व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥ एवं सद्दुः-

अन्यरूप द्रव्य होता है अर्थात् नर नारकआदि पर्यायोंसे जुड़ा २ कहा जाता है । क्योंकि [ तत्कालं ] नर नरकादि पर्यायोंके होनेके समय वह द्रव्य [ तन्मयत्वात् ] उस पर्यायस्वरूप ही होजाता है । भावार्थ—वस्तु सामान्य—विशेषरूप दो प्रकारसे है । इन दोनोंके देखनेवाले हैं उनके दो नेत्र कहे हैं—एक तो द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक । इन दोनों नेत्रोंमेंसे जो पर्यायार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद करके एक द्रव्यार्थिक नेत्रसे ही देखे तब नारकतिर्यच मनुष्य देव सिद्धपर्यायोंमें स्थित जो सामान्य एक जीव उसके देखनेवाले पुरुषोंको सब जगह जीव ही प्रतिभासता ( दीखता ) है, भेद नहीं मालूम होता । और जब द्रव्यार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद कर एक पर्यायार्थिक नेत्रसे ही देखाजावे तब जीवद्रव्यमें नर नारकादि पर्यायोंके देखनेवाले पुरुषोंको नर नारकादि पर्याय जुड़े २ मालूम होते हैं । जिसकालमें जो पर्याय होता है उस पर्यायमें जीव उसीस्वरूप परिणमता है । जैसे कि आग, गोघरके छाने—नृण—पत्ता—काठ आदि अनेक ईधनके आकार हो जाती है, उसीप्रकार जीव भी अनेक पर्यायोंको धारण करता हुआ अनेक आकाररूप होजाता है । तथा जब द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक दोनोंही नेत्रोंसे इधर उधर सब जगह देखाजाय तो एक ही समय नर नारकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य देखनेमें आता है और अन्य २ रूप भी क्षीयता है । इसकारण एक नयरूप नेत्रसे देखना एक अंगका देखना है तथा दो नयरूप नेत्रोंसे देखना सब अंगोंका देखना कहा जाता है । इसलिये सर्वांग द्रव्यके देखनेमें अन्यरूप और अनन्यरूप—इसतरह दो स्वरूप कहनेका निषेध नहीं है ।

अथ सर्वविप्रतिषेधनिषेधिकां सप्तभङ्गीभवतारयति;—

अत्थिति य णत्थिति य ह्वदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं ।

पज्जाएण तु केणवि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा ॥ २३ ॥

अस्तीति च नास्तीति च भवत्यवक्तव्यमिति पुनर्द्रव्यम् ।

पर्यायेण तु केनापि तदुभयमादिष्टमन्यद्वा ॥ २३ ॥

स्यादस्येव १ स्यान्नास्येव २ स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादस्तिनास्येव ४ स्यादस्यवक्तव्यमेव ५ स्यान्नास्यवक्तव्यमेव ६ स्यादस्तिनास्यवक्तव्यमेव ७, स्वरूपेण १ पररूपेण

त्पादकथनेन प्रथमा सदुत्पादविशेषविवरणरूपेण द्वितीया तथैवासदुत्पादविशेषविवरणरूपेण तृ-  
तीया द्रव्यपर्याययोरेकत्वानेकत्वप्रतिपादनेन चतुर्थीति सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानमुख्यतया गाथा-  
चतुष्टयेन सप्तमस्थलं गतम् । अथ समस्तदुर्नयैकान्तरूपविवादनिषेधिकां नयसप्तभङ्गीं विस्तार-  
यति;—अत्थिति य स्यादस्येव । स्यादिति कोऽर्थः कथंचित्कोऽर्थः? विवक्षितप्रकारेण स्वद्र-  
व्यादिचतुष्टयेन तच्चतुष्टयं, शुद्धजीवविषये कथ्यते । शुद्धगुणपर्यायाधारभूतं शुद्धात्मद्रव्यं द्रव्यं  
भण्यते, लोकाकाशप्रमिताः शुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमा-  
नसमयः कालो भण्यते, शुद्धचैतन्यं भावक्षेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयेन इति प्रथमभङ्गः १ ।  
णत्थिति य स्यान्नास्येव स्यादिति कोऽर्थः कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन ह्वदि  
भवति २ । कथम्भूतं । अवत्तव्वमिति स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रका-  
रेण युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यं, स्यादस्तिनास्ति, स्यादस्येवा-  
वक्तव्यम्, स्यान्नास्येवावक्तव्यं स्यादस्तिनास्यवक्तव्यम् । “पुणो” पुनः इत्थंभूतं । किं भवति ।  
दव्वं परमात्मद्रव्यं कर्तुं । पुनरपि कथम्भूतं भवति । तदुभयं स्यादस्तिनास्येव । स्यादिति कोऽर्थः?  
कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ४ । कथम्भूतं सदित्थमित्थं भवति । आदिट्ठं

सकता ॥ २२ ॥ अथ सव तरहके विरोधोंको दूरकरनेवाली सप्तभङ्गी वाणीको कहते  
हैं;—[ द्रव्यं ] जो वस्तु है वह [ केनचित्पर्यायेण ] किसी एक पर्यायसे  
[ अस्तीति ] अस्तिरूप [ भवति ] है [ च ] और किसी एक पर्यायसे [ नास्तीति ]  
वही द्रव्य नास्तिरूप है [ च ] तथा [ अवक्तव्यं इति ] किसी एक प्रकारसे वच-  
नगोचर नहीं है [ तु पुनः ] और [ तत् उभयं ] किसी एक पर्यायसे वही द्रव्य  
अस्तिनास्तिरूप है [ वा ] अथवा किसी एक पर्यायसे [ अन्यत् ] अन्य तीन भंग-  
स्वरूप [ आदिष्टं ] कहा गया है । भावार्थ—द्रव्यकी सिद्धि सप्तभंगोंसे होती है  
वे इसप्रकार हैं—स्वद्रव्य—स्वक्षेत्र—स्वकाल—स्वभाव, इसतरह अपने चतुष्टयकी अपेक्षा  
द्रव्य अस्तिरूप है १ परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है २ एक कालमें  
'अस्ति नास्ति' कह नहीं सकते इसकारण वह अवक्तव्य है ३ क्रमसे वचनद्वारा  
अस्तिनास्तिरूप है ४ तथा द्रव्यमें स्यात् अस्त्यवक्तव्य चौथा भंग है क्योंकि



लितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्यत्प्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात् गणतृणपर्णदारुमयहृव्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशावलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनं । ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वमनन्यत्वं च न विप्रतिपिध्यते ॥ २२ ॥

पुनः अन्यद्विन्नमनेकं पर्यायैः सह पृथग्भवति । कस्मादिति चेत् । तत्काले तन्मयत्तादौ तृणाग्निष्काष्ठाग्निपत्राग्निवत् स्वकीयपर्यायैः सह तत्काले तन्मयत्वादिति । एतावता किमुक्तं भवति । द्रव्यार्थिकनयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्वे पर्यायकदम्बकं द्रव्यमेव प्रतिभाति । यदा तु पर्यायनयविक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्नं भिन्नं प्रतिभाति । यदा च परस्परसापेक्षया नयद्वयेन युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्वं च युगपत्प्रतिभातीति । यथेदं जीवद्रव्ये व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥ एवं सद्-

अन्यरूप द्रव्य होता है अर्थात् नर नारकादि पर्यायोंसे जुदा २ कहा जाता है । क्योंकि [ तत्कालं ] नर नारकादि पर्यायोंके होनेके समय वह द्रव्य [ तन्मयत्वात् ] उस पर्यायस्वरूप ही होजाता है । भावार्थ—वस्तु सामान्य—विशेषरूप दो प्रकारसे है । इन दोनोंके देखनेवाले हैं उनके दो नेत्र कहे हैं—एक तो द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक । इन दोनों नेत्रोंमेंसे जो पर्यायार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद करके एक द्रव्यार्थिक नेत्रसे ही देखे तब नारकतिर्यच मनुष्य देव सिद्ध पर्यायोंमें स्थित जो सामान्य एक जीव उसके देखनेवाले पुरुषोंको सब जगह जीव ही प्रतिभासता ( दीखता ) है भेद नहीं मालूम होता । और जब द्रव्यार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद कर एक पर्यायार्थिक नेत्रसे ही देखाजावे तब जीवद्रव्यमें नर नारकादि पर्यायोंके देखनेवाले पुरुषोंको नर नारकादि पर्याय जुदे २ मालूम होते हैं । जिसकालमें जो पर्याय होता है उस पर्यायमें जीव उसीस्वरूप परिणमता है । जैसे कि आग, गोबरके छाने—तृण—पत्ता—काठ आदि अनेक ईधनके आकार हो जाती है, उसीप्रकार जीव भी अनेक पर्यायोंको धारण करता हुआ अनेक आकाररूप होजाता है । तथा जब द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक दोनोंही नेत्रोंसे इधर उधर सब जगह देखाजाय तो एक ही समय नर नारकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य देखनेमें आता है और अन्य २ रूप भी दीगता है । इसकारण एक नयरूप नेत्रसे देखना एक अंगका देखना है तथा दो नयरूप नेत्रोंसे देखना मय अंगोंका देखना कहा जाता है । इसलिये सर्वांग द्रव्यके देखनेमें अन्यरूप और अनन्यरूप—इसतरह दो स्वरूप कहनेका निषेध नहीं है ।

अथ सर्वविप्रतिषेधनिषेधिकां सप्तभङ्गीमवतारयति;—

अत्थिति य णत्थिति य ह्वदि अवत्तञ्चमिदि पुणो दञ्चं ।

पज्जाएण दु केणचि तदुभयमादिद्वमण्णं वा ॥ २३ ॥

अस्तीति च नास्तीति च भवत्यवक्तव्यमिति पुनर्द्रव्यम् ।

पर्यायेण तु केनापि तदुभयमादिष्टमन्यद्वा ॥ २३ ॥

स्यादस्त्येव १ स्यान्नास्त्येव २ स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादस्तिनास्त्येव ४ स्यादस्त्यवक्त-  
व्यमेव ५ स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव ६ स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यमेव ७, स्वरूपेण १ पररूपेण

त्पादकथनेन प्रथमा सदुत्पादविशेषविवरणरूपेण द्वितीया तथैवासदुत्पादविशेषविवरणरूपेण तृ-  
तीया द्रव्यपर्याययोरेकत्वानेकत्वप्रतिपादनेन चतुर्थीति सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानमुल्लेख्यतया गाथा-  
चतुष्टयेन सप्तमस्थलं गतम् । अथ समस्तदुर्नयैकान्तरूपविवादनिषेधिकां नयसप्तभङ्गीं विस्तार-  
यति;—अत्थिति य स्यादस्त्येव । स्यादिति कोऽर्थः कथंचित्कोऽर्थः? विवक्षितप्रकारेण स्वद्र-  
व्यादिचतुष्टयेन तच्चतुष्टयं, शुद्धजीवविषये कथ्यते । शुद्धगुणपर्यायाधारभूतं शुद्धात्मद्रव्यं द्रव्यं  
भण्यते, लोकाकाशप्रमिताः शुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमा-  
नसमयः कालो भण्यते, शुद्धचैतन्यं भावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयेन इति प्रथमभङ्गः १ ।  
णत्थिति य स्यान्नास्त्येव स्यादिति कोऽर्थः कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन ह्वदि  
भवति २ । कथम्भूतं । अवत्तञ्चमिति स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रका-  
रेण युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यं, स्यादस्तिनास्ति, स्यादस्त्येवा-  
वक्तव्यम्, स्यान्नास्त्येवावक्तव्यं स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यम् । “पुणो” पुनः इत्थंभूतं । किं भवति ।  
दञ्चं परमाण्मद्रव्यं कर्तुं । पुनरपि कथम्भूतं भवति । तदुभयं स्यादस्तिनास्त्येव । स्यादिति कोऽर्थः?  
कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ४ । कथम्भूतं सदित्यमित्यं भवति । आदिद्वं

सकता ॥ २२ ॥ अत्र सत्र तरहके विरोधोंको दूरकरनेवाली सप्तभङ्गी वाणीको कहते  
हैं;—[ द्रव्यं ] जो वस्तु है वह [ केनचित्पर्यायेण ] किसी एक पर्यायसे  
[ अस्तीति ] अस्तिरूप [ भवति ] है [ च ] और किसी एक पर्यायसे [ नास्तीति ]  
वही द्रव्य नास्तिरूप है [ च ] तथा [ अवत्तञ्चं इति ] किसी एक प्रकारसे वच-  
नगोचर नहीं है [ तु पुनः ] और [ तत् उभयं ] किसी एक पर्यायसे वही द्रव्य  
अस्तिनास्तिरूप है [ चा ] अथवा किसी एक पर्यायसे [ अन्यत् ] अन्य तीन भंग-  
स्वरूप [ आदिष्टं ] कहा गया है । भावार्थ—द्रव्यकी सिद्धि सप्तभंगोंसे होती है  
वे इसप्रकार हैं—स्वद्रव्य—स्वक्षेत्र—स्वकाल—स्वभाव, इसतरह अपने चतुष्टयकी अपेक्षा  
द्रव्य अस्तिरूप है १ परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है २ एक कालमें  
'अस्ति नास्ति' कह नहीं सकते इसकारण वह अवत्तञ्च्य है ३ क्रमसे वचनद्वारा  
अस्तिनास्तिरूप है ४ तथा द्रव्यमें स्यात् अस्त्यवक्तव्य चौथा भंग है क्योंकि

लितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्त्यप्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात् गणतृणपर्णदारुमयहव्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशावलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनं । ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वमनन्यत्वं च न विप्रतिपिच्यते ॥ २२ ॥

पुनः अन्यङ्गिन्नमनेकं पर्यायैः सह पृथग्भवति । कस्मादिति चेत् । तत्काले तन्मयत्तादो तृणाग्निष्ठाग्निपत्राग्निवत् स्वकीयपर्यायैः सह तत्काले तन्मयत्वादिति । एतावता किमुक्तं भवति । द्रव्यार्थिकनयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्वं पर्यायकदम्बकं द्रव्यमेव प्रतिभाति । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्नं भिन्नं प्रतिभाति । यदा च परस्परसापेक्षया नयद्वयेन युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्वं च युगपत्प्रतिभातीति । यथेदं जीवद्रव्ये व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥ एवं सद्-

अन्यरूप द्रव्य होता है अर्थात् नर नारकआदि पर्यायोंसे जुदा २ कहा जाता है । क्योंकि [ तत्कालं ] नर नारकादि पर्यायोंके होनेके समय वह द्रव्य [ तन्मयत्वात् ] उस पर्यायस्वरूप ही होजाता है । भावार्थ—वस्तु सामान्य—विशेषरूप दो प्रकारसे है । इन दोनोंके देखनेवाले हैं उनके दो नेत्र कहे हैं—एक तो द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक । इन दोनों नेत्रोंमेंसे जो पर्यायार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद करके एक द्रव्यार्थिक नेत्रसे ही देखे तब नारकतिर्यच मनुष्य देव सिद्ध पर्यायोंमें स्थित जो सामान्य एक जीव उसके देखनेवाले पुरुषोंको सब जगह जीव ही प्रतिभासता ( दीखता ) है भेद नहीं मालूम होता । और जब द्रव्यार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद कर एक पर्यायार्थिक नेत्रसे ही देखाजावे तब जीवद्रव्यमें नर नारकादि पर्यायोंके देखनेवाले पुरुषोंको नर नारकादि पर्याय जुदे २ मालूम होते हैं । जिसकालमें जो पर्याय होता है उस पर्यायमें जीव उसीस्वरूप परिणमता है । जैसे कि आग, गोबरके छाने—तृण—पत्ता—फाठ आदि अनेक ईंधनके आकार हो जाती है, उसीप्रकार जीव भी अनेक पर्यायोंको धारण करता हुआ अनेक आकाररूप होजाता है । तथा जब द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक दोनोंही नेत्रोंसे इधर उधर सब जगह देखाजाय तो एक ही समय नर नारकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य देखनेमें आता है और अन्य २ रूप भी दीगता है । इसकारण एक नयरूप नेत्रसे देखना एक अंगका देखना है तथा दो नयरूप नेत्रोंसे देखना सब अंगोंका देखना कहा जाता है । इसलिये सर्वांग द्रव्यके देखनेमें अन्यरूप और अनन्यरूप—इसतरह दो स्वरूप कहनेका निषेध नहीं है ।

अथ सर्वविप्रतिपेधनिपेधिकां सप्तभङ्गीमवतारयति;—

अत्थित्ति य णत्थित्ति य ह्वदि अवत्तञ्चमिदि पुणो दब्बं ।

पज्जाएण तु केणवि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा ॥ २३ ॥

अस्तीति च नास्तीति च भवत्यवक्तव्यमिति पुनर्द्रव्यम् ।

पर्यायेण तु केनापि तदुभयमादिष्टमन्यद्वा ॥ २३ ॥

स्यादस्त्येव १ स्यान्नास्त्येव २ स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादस्तिनास्त्येव ४ स्यादस्त्यवक्तव्यमेव ५ स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव ६ स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यमेव ७, स्वरूपेण १ पररूपेण

त्पादकथनेन प्रथमा सदुत्पादविशेषविवरणरूपेण द्वितीया तथैवासदुत्पादविशेषविवरणरूपेण तृतीया द्रव्यपर्याययोरेकत्वानेकत्वप्रतिपादनेन चतुर्थीति सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानमुख्यतया गाथा-चतुष्टयेन सप्तमस्थलं गतम् । अथ समस्तदुर्नयैकान्तरूपविवादनिपेधिकां नयसप्तभङ्गीं विस्तारयति;—अत्थित्ति य स्यादस्त्येव । स्यादिति कोऽर्थः कथंचित्कोऽर्थः? विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन तच्चतुष्टयं, शुद्धजीवविषये कथ्यते । शुद्धगुणपर्यायाधारभूतं शुद्धात्मद्रव्यं द्रव्यं भण्यते, लोकाकाशप्रमिताः शुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयः कालो भण्यते, शुद्धचैतन्यं भावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयेन इति प्रथमभङ्गः १ । णत्थित्ति य स्यान्नास्त्येव स्यादिति कोऽर्थः कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन ह्वदि भवति २ । कथम्भूतं । अवत्तञ्चमिति स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यं, स्यादस्तिनास्ति, स्यादस्त्येवावक्तव्यम्, स्यान्नास्त्येवावक्तव्यं स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यम् । “पुणो” पुनः इत्थंभूतं । किं भवति । दब्बं परमात्मद्रव्यं कर्तुं । पुनरपि कथम्भूतं भवति । तदुभयं स्यादस्तिनास्त्येव । स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ४ । कथम्भूतं सदित्थमित्थं भवति । आदिट्ठं

सकता ॥ २२ ॥ अव सव तरहके विरोधोंको दूरकरनेवाली सप्तभङ्गी वाणीको कहते हैं—[ द्रव्यं ] जो वस्तु है वह [ केनचित्पर्यायेण ] किसी एक पर्यायसे [ अस्तीति ] अस्तिरूप [ भवति ] है [ च ] और किसी एक पर्यायसे [ नास्तीति ] वही द्रव्य नास्तिरूप है [ च ] तथा [ अवक्तव्यं इति ] किसी एक प्रकारसे वचनगोचर नहीं है [ तु पुनः ] और [ तत् उभयं ] किसी एक पर्यायसे वही द्रव्य अस्तिनास्तिरूप है [ वा ] अथवा किसी एक पर्यायसे [ अन्यत् ] अन्य तीन भंग-स्वरूप [ आदिष्टं ] कहा गया है । भावार्थ—द्रव्यकी सिद्धि सप्तभंगोंसे होती है वे इसप्रकार हैं—स्वद्रव्य—स्वक्षेत्र—स्वकाल—स्वभाव, इसतरह अपने चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य अस्तिरूप है १ परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है २ एक कालमें ‘अस्ति नास्ति’ कह नहीं सकते इसकारण वह अवक्तव्य है ३ क्रमसे वचनद्वारा अस्तिनास्तिरूप है ४ तथा द्रव्यमें स्यात् अस्त्यवक्तव्य चौथा भंग है क्योंकि

लितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्यत्प्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात् गणतृणपर्णदारुमयहव्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशावलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनं । ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वमनन्यत्वं च न विप्रतिपिध्यते ॥ २२ ॥

पुनः अन्यद्विन्नमनेकं पर्यायैः सह पृथग्भवति । कस्मादिति चेत् । तत्काले तन्मयत्तादौ तृणाग्निष्ठाग्निप्रत्राग्निवत् स्वकीयपर्यायैः सह तत्काले तन्मयत्वादिति । एतावता किमुक्तं भवति । द्रव्यार्थिकनयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्वे पर्यायकदम्बकं द्रव्यमेव प्रतिभाति । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्नं भिन्नं प्रतिभाति । यदा च परस्परसापेक्षया नयद्वयेन युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्वं च युगपत्प्रतिभातीति । यथेदं जीवद्रव्ये व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥ एवं सदु-

अन्यरूप द्रव्य होता है अर्थात् नर नारकआदि पर्यायोंसे जुदा २ कहा जाता है । क्योंकि [ तत्कालं ] नर नरकादि पर्यायोंके होनेके समय वह द्रव्य [ तन्मयत्वात् ] उस पर्यायस्वरूप ही होजाता है । भावार्थ—वस्तु सामान्य—विशेषरूप दो प्रकारसे है । इन दोनोंके देखनेवाले हैं उनके दो नेत्र कहे हैं—एक तो द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक । इन दोनों नेत्रोंमेंसे जो पर्यायार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद करके एक द्रव्यार्थिक नेत्रसे ही देखे तब नारकतिर्यच मनुष्य देव सिद्ध पर्यायोंमें स्थित जो सामान्य एक जीव उसके देखनेवाले पुरुषोंको सब जगह जीव ही प्रतिभासता ( दीखता ) है भेद नहीं मालूम होता । और जब द्रव्यार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद कर एक पर्यायार्थिक नेत्रसे ही देखाजावे तब जीवद्रव्यमें नर नारकादि पर्यायोंके देखनेवाले पुरुषोंको नर नारकादि पर्याय जुदे २ मालूम होते हैं । जिसकालमें जो पर्याय होता है उस पर्यायमें जीव उसीस्वरूप परिणमता है । जैसे कि आग, गोवरके छाने—तृण—पत्ता—काठ आदि अनेक ईधनके आकार हो जाती है, उसीप्रकार जीव भी अनेक पर्यायोंको धारण करता हुआ अनेक आकाररूप होजाता है । तथा जब द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक दोनोंही नेत्रोंसे इधर उधर सब जगह देखाजाय तो एक ही समय नर नारकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य देखनेमें आता है और अन्य २ रूप भी दीग्यता है । इसकारण एक नयरूप नेत्रसे देखना एक अंगका देखना है तथा दो नयरूप नेत्रोंसे देखना सब अंगोंका देखना कहा जाता है । इसलिये सर्वांग द्रव्यके देखनेमें अन्यरूप और अनन्यरूप—इसतरह दो स्वरूप कहनेका निषेध नहीं हो

गोरुच्छिन्नाण्वन्तरसंगमस्य परिणतिरिव द्व्यणुककार्यस्येव मनुष्यादिकार्यस्यानिष्पादकत्वात् परमद्रव्यस्वभावभूततया परमधर्माख्या भवत्यफलैव ॥ २४ ॥

अथ मनुष्यादिपर्यायाणां जीवस्य क्रियाफलत्वं व्यनक्ति;—

कम्मं णामसमक्खं सभावमथ अप्पणो सहावेण ।

अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥ २५ ॥

कर्म नामसमाख्यं स्वभावमथात्मनः स्वभावेन ।

अभिभूय नरं तिर्यञ्चं नैरयिकं वा सुरं करोति ॥ २५ ॥

क्रिया खल्वात्मना प्राप्यत्वात्कर्म, तन्निमित्तप्राप्तपरिणामः पुद्गलोपि कर्म, तत्कार्य-भूता मनुष्यादिपर्याया जीवस्य क्रियाया मूलकारणभूतायाः प्रवृत्तत्वात् क्रियाफलमेव स्युः । क्रियाऽभावे पुद्गलानां कर्मत्वाभावात्तत्कार्यभूतानां तेषामभावात् । अथ कथं ते कर्मणः कार्यभावमायान्ति ? कर्मस्वभावेन जीवस्वभावमभिभूय क्रियमाणत्वात् तु प्रदीपवत् ।

अशुद्धनयेन मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणतजीवानां नरनारकादिपर्यायपरिणतिदर्शनादिति । एवं प्रथमस्थले सूत्रगाथा गता ॥ २४ ॥ अथ मनुष्यादिपर्यायाः कर्मजनिता इति विशेषेण व्यक्ती-करोति;—कम्मं कर्मरहितपरमात्मनो विलक्षणं कर्म कर्तुं । किं विशिष्टं । णामसमक्खं निर्नामनिर्गोत्रमुक्तात्मनो विपरीतं नामेति सम्यगाख्या संज्ञा यस्य तद्भवति नामसमाख्यं; नामकर्मैत्यर्थः । सहावं शुद्धबुद्धैकपरमात्मस्वभावं अह अथ अप्पणो सहावेण आत्मीयेन ज्ञानावरणादिस्वकीयस्वभावेन कारणभूतेन अभिभूय तिरस्कृत्य प्रच्छद्य तं पूर्वोक्तमात्मस्वभावं । पश्चात्किं करोति । णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि नरतिर्यन्नारकसुररूपं करोतीति । अयमत्रार्थः—यथाग्निः कर्ता तैलस्वभावं कर्मतापन्नमभिभूय तिरस्कृत्य वर्त्याधारेण दीपशिखारू-

दिपर्यायोको कारण नहीं है । इसलिये यह सारांश निकला कि मोहसे मिलीहुई क्रिया संसारका कारण है । मोहरहित क्रिया वस्तुका स्वभाव है वही परमधर्मरूप है तथा संसारका नाश इसी क्रियासे होता है ॥ २४ ॥ आगे जीवके मनुष्यादि पर्याय क्रियाके फल हैं ऐसा प्रगट दिखाते हैं;—[ अथ ] इसके बाद जो [ नामसमाख्यं ] नामकर्म संज्ञावाला [ कर्म ] नरनारकादिरूप नामकर्म है वह [ स्वभावेन ] अपने नरनारकादि गतिरूप परिणमन स्वभावसे [ आत्मनः ] जीवके [ स्वभावं ] शुद्धनिष्क्रियपरिणामको [ अभिभूय ] आच्छादित करके जीवको [ नरं ] मनुष्य [ तिर्यञ्चं ] तिर्यच [ नैरयिकं ] नारकी [ वा ] अथवा [ सुरं ] देव [ करोति ] इन चारों गतियोंरूप करता है ॥ भावार्थ—रागादि परिणतिरूप क्रिया आत्मासे होती है इसलिये इस क्रियाका नाम “ भावकर्म ” है । उसके निमित्तको पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मरूप परिणमन करता है, इसकारण पुद्गलकोभी कर्म कहते हैं । उस कर्मके फल मनुष्यादि पर्याय हैं । वास्तवमें देखाजाय तो जीवकी रागादिरूप क्रिया है उसीकी

चैतन्यपरिणामात्मिका । सा पुनरणोरण्वन्तरसंगतस्य परिणतिरिवात्मनो मोहसंबलितस्य द्व्यणुककार्यस्येव मनुष्यादिकार्यस्य निष्पादकत्वात्सफलैव । सैव मोहसंबलनविलयने पुनर-

कारे स्थलपञ्चकेन समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ नरकादिपर्यायाः कर्माधीनत्वेन विनश्वरत्वादिति शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्वरूपं न भवतीति भेदभावनां कथयति;—**एसोत्ति णत्थि कोई टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मद्रव्यवत्संसारे मनुष्यादिपर्यायेषु मध्ये सर्वदेवैक एकरूप एव नित्यः कोऽपि नास्ति । तर्हि मनुष्यादिपर्यायनिर्वर्तिका संसारक्रिया सापि न भविष्यति ? ण णत्थि किरिया न नास्ति क्रिया मिथ्यात्वरगादिपरिणतिस्संसारः कर्मेति यावत् इति पर्यायनामचतुष्टयरूपा क्रियास्येव । सा च कथम्भूता । सभावणिव्वत्ता शुद्धात्मस्वभावादिपरिणतिरपि नरनारकादिविभावपर्यायस्वभावेन निर्वृत्ता । तर्हि किं निष्फला भविष्यति । किरिया हि णत्थि अफला क्रिया हि नास्त्यफला सा मिथ्यात्वरगादिपरिणतिरूपा क्रिया यद्यप्यनन्तसुखादिगुणात्मकमोक्षकार्यं प्रति निष्फला तथापि नानादुःखदायकस्वकीयकार्यभूतमनुष्यादिपर्यायनिर्वर्तकत्वात्सफलेति मनुष्यादिपर्यायनिष्पत्तिरेवास्याः फलं । कथं ज्ञायत इति चेत् ? “धम्मो जदि णिष्फलो परमो धर्मो यदि निष्फलः परमः नीरागपरमात्मोपलम्भपरिणतिरूपः आगमभाषया परमयथाख्यातचारित्ररूपो वा योऽसौ परमो धर्मः, स केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकत्वात्सफलोऽपि नरनारकादिपर्यायकारणभूतं ज्ञानावरणादिकर्मब्रह्मं नोत्पादयति, ततः कारणान्निष्फलः । ततो ज्ञायते नरनारकादिसंसारकार्यं मिथ्यात्वरगादिक्रियायाः फलमिति । अथवास्य सूत्रस्य द्वितीयव्याख्यानं क्रियते—यथा शुद्धनयेन रागादिविभावेन परिणमस्ययं जीवस्तथैवाशुद्धनयेनापि न परिणमतीति यदुक्तं सांख्येन तन्निराकृतं । कथमिति चेत् ?**

**है ॥ भावार्थ—**संसारमें कोई पर्याय नित्य नहीं है । यहाँ कोई यह कहै कि नरनारकादि पर्याय नित्य नहीं मानोगे तो रागादि परिणतिरूप क्रिया भी नहीं हो सकती ? ऐसा कहना ठीक नहीं है । क्योंकि आत्मा अनादिकालसे पुद्गलकर्मके निमित्तसे नानारूप परणमन करता है इसकारण रागादि परिणतिरूप क्रिया है । उसी क्रियाके फल नरनारकादि पर्याय हैं, तथा पूर्वपर्याय आगेकी पर्यायसे विनाशीक हैं । जैसे क्लिग्धरूले गुणोंकर परिणत हुई परमाणुओंकी क्रिया द्व्यणुकादि स्कंधरूप कार्यको उत्पन्न करती है, उसीप्रकार मोहसे मिली हुई आत्माकी क्रिया अवश्य ही मनुष्यादि पर्यायोंको उत्पन्न करती है; इसकारण क्रिया फलवती समझना चाहिये । दूसरा प्रमाण फलवती क्रिया होनेमें यह है कि, वीतरागभाव नरनारकादि पर्यायरूप फल रहित है तो ऊपरसे यह बातसिद्ध ही है कि रागादिपरिणतिरूप क्रिया नरनारकादि पर्यायरूप फलवाली है । जैसे धंधयोग्यस्निग्धरूक्षभावरहित परमाणु द्व्यणुकादि धंधको नहीं उत्पन्न करसकते उमीतरह, परमवीतरागभाव मनुष्या-

मन्दचन्दनादिवनराजीं परिणमन्न द्रव्यत्वस्वादुत्वस्वभावमुपलभते, तथात्मापि प्रदेशभावाभ्यां कर्मपरिणमनानामूर्तत्वनिरुपरागविशुद्धिमत्त्वस्वभावमुपलभते ॥ २६ ॥

अथ जीवस्य द्रव्यत्वेनावस्थितत्वेपि पर्यायैरनवस्थितत्वं द्योतयति;—

जायदि णेव ण णस्सदि खणभंगसमुब्भवे जणे कोई ।

जो हि भवो सो विलओ संभवविलयत्ति ते णाणा ॥ २७ ॥

जायते नैव न नश्यति क्षणभङ्गसमुद्भवे जने कश्चित् ।

यो हि भवः स विलयः संभवविलयाविति तौ नाना ॥ २७ ॥

इह तावन्न कश्चिजायते न म्रियते च । अथ च मनुष्यदेवतिर्यङ्गारकात्मको जीवलोकः प्रतिक्षणपरिणामित्वादुत्संगितक्षणभङ्गोत्पादः । न च विप्रतिषिद्धमेतत्, संभवविलययोरेक-

प्रवाहश्चन्दनादिवनराजिरूपेण परिणतः सन्स्वकीयकोमलशीतलनिर्मलस्वभावं न लभते, तथायं जीवोऽपि वृक्षस्थानीयकर्मोदयपरिणतः सत्परमाह्लादैकलक्षणमुखाभृतास्वादनैर्मल्यादिस्वकीयगुणसमूहं न लभत इति ॥ २६ ॥ अथ जीवस्य द्रव्येण नित्यत्वेऽपि पर्यायेण विनश्वरत्वं दर्शयति;—जायदि णेव ण णस्सदि जायते नैव न नश्यति द्रव्यार्थिकनयेन । क । खणभंगसमुब्भवे जणे कोई क्षणभङ्गसमुद्भवे जने कोऽपि । क्षणं क्षणं प्रति भङ्गसमुद्भवो यत्र सम्भवति क्षणभङ्गसमुद्भवस्तस्मिन्क्षणभङ्गसमुद्भवे विनश्वरे पर्यायार्थिकनयेन जने लोके जगति कश्चिदपि, तस्मान्नैव जायते न चोत्पद्यत इति हेतुं वदति जो हि भवो सो विलओ द्रव्यार्थिकन-

कर्मसे उत्पन्न होते हैं परंतु इनसे जीवके स्वभावका नाश नहीं होता । जैसे—सोनेमें जड़ा हुआ माणिकरत्नका नाश नहीं होता है उसीप्रकार जीवका भी नाश नहीं होता । किंतु उन पर्यायोंमें अपने २ कर्मोंके परिणमनसे यह जीव अपने चिदानंद शुद्धस्वभावको नहीं पाता है । जैसे जलका प्रवाह वनमें अपने प्रदेशों और स्वादसे नींव चंदनादि वृक्षरूप होके परिणमन करता है वहांपर वह जल अपने द्रव्यस्वभाव और स्वादस्वभावको नहीं पाता, उसीप्रकार यह आत्माभी जब अपने प्रदेश और भावोंसे फर्मरूप होके परिणमता है तब यही अमूर्त्तत्व और वीतराग चिदानंद स्वभावको नहीं पाता । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि यह जीव परिणमनके दोषसे अनेकरूप हो जाता है लेकिन उसके स्वभावका नाश नहीं होता ॥ २६ ॥ आगे जीव यद्यपि द्रव्यपनेसे एक अवस्थारूप है तौभी पर्यायोंसे अनवस्थित ( नानारूप ) है ऐसा प्रगट करते हैं;—[ क्षणभङ्गसमुद्भवे ] समय २ विनाश होनेवाले [ जने ] इस जीवलोकमें [ कश्चित् ] कोईभी जीव [ नैव जायते ] न तो उत्पन्न होता है [ न नश्यति ] और न नष्ट होता है । [ यः ] जो द्रव्य [ हि ] निश्चयसे [ भवः ] उत्पत्तिरूप है [ सः ] वही वस्तु [ विलयः ] नाशरूप है । [ इति ] इसलिये [ तौ ] वे [ संभवविलयौ ] उत्पाद और नाश ये दोनों पर्याय [ नाना ] भेद



तथाहि—यथा खलु ज्योतिःस्वभावेन तैलस्वभावमभिमूय क्रियमाणः प्रदीपो ज्योतिः-  
कार्यं तथा कर्मस्वभावेन जीवस्वभावमभिमूय क्रियमाणमनुष्यादिपर्यायाः कर्मकार्यम् ॥२५॥

अथ कुतो मनुष्यादिपर्यायेषु जीवस्य स्वभावाभिभवो भवतीति निर्धारयति;—

णरणारयतिरियसुरा जीवा खलु णाम कम्मणिव्वत्ता ।

ण हि ते लद्धसहावा परिणममाणा सकम्माणि ॥ २६ ॥

नरनारकतिर्यक्सुरा जीवाः खलु नामकर्मनिर्वृत्ताः ।

न हि ते लब्धस्वभावाः परिणममानाः स्वकर्माणि ॥ २६ ॥

अमी मनुष्यादयः पर्याया नामकर्मनिर्वृत्ताः सन्ति तावत् । न पुनरेतावतापि तत्र जीवस्य  
स्वभावाभिभवोस्ति । यथा कनकचद्मणिक्वकङ्कणेषु माणिक्यस्य । यत्तत्र नैव जीवस्वभा-  
वमुपलभते तत् स्वकर्मपरिणमनात् पयःपूरवत् । यथा खलु पयःपूरः प्रदेशखादान्यां पितुः-

पेण परिणमयति, तथा कर्माग्निः कर्ता तैलस्थानीयं शुद्धात्मस्वभावं तिरस्कृत्य वर्तिस्थानीयशरी-  
राधारेण दीपशिखास्थानीयनरनारकादिपर्यायरूपेण परिणमयति । ततो ज्ञायते मनुष्यादिपर्यायाः  
निश्चयनयेन कर्मजनिता इति ॥ २५ ॥ अथ नरनारकादिपर्यायेषु कथं जीवस्य स्वभावाभिभवो  
जातस्तत्र किं जीवाभाव इति प्रश्ने ? प्रत्युत्तरं ददाति;—णरणारयतिरियसुरा जीवा  
नरनारकतिर्यक्सुरनामानो जीवाः सन्ति तावत् खलु स्फुटं । कथम्भूताः। णामकम्मणिव्वत्ता  
नरनारकादिस्वकीयस्वकीयनामकर्मणा निर्वृत्ताः ण हि ते लद्धसहावा किन्तु यथा माणिक्य-  
वद्धसुवर्णकङ्कणेषु माणिक्यस्य हि मुख्यता नास्ति, तथा ते जीवाश्चिदानन्दैकशुद्धात्मस्वभाव-  
मलभमानाः सन्तो लब्धस्वभावा न भवन्ति, तेन कारणेन स्वभावाभिभवो भण्यते, न च जीवा-  
भावः । कथम्भूताः सन्तो लब्धस्वभावा न भवन्ति । परिणममाणा सकम्माणि स्वकीयो-  
दयागतकर्माणि सुखदुःखरूपेण परिणममाना इति ।' अयमत्रार्थः—यथा वृक्षसेचनविषये जल-

मुख्यतासे इन मनुष्यादि पर्यायोंकी प्रवृत्ति होती है इसीलिये ये पर्याय क्रियाके फल  
कहे गये हैं । यदि रागादि क्रिया न हो तो पुत्रल कर्मरूप परिणमन नहीं कर सकता,  
कर्मरूप परिणमन न होनेसे नरनारकादि पर्यायभी नहीं हो सकते । जैसे दीपक अग्नि-  
स्वभावसे तैलस्वभावको दूरकरके प्रकाशरूप कार्य करता है, उसीप्रकार ज्ञानावरणादि  
कर्म जीवस्वभावको घातकर मनुष्यादि पर्यायरूप नानाप्रकारके कार्यको करता है ॥२५॥  
आगे निश्चयसे मनुष्यादि पर्यायोंमें जीवके स्वभावका नाश कदापि नहीं होता ऐसा  
दिखाते हैं;—[नरनारकतिर्यक्सुराः] मनुष्य, नारकी, तिर्यच और देव [जीवाः]  
इसप्रकार चारगणितियों स्वरूप जीव [खलु] निश्चयसे [नामकर्मनिर्वृत्ताः]  
नामकर्मसे रचे गये हैं [हि] इसीकारणसे [ते] वे जीव [स्वकर्माणि] अपने  
२ उपाजित कर्मोंरूप [परिणममानाः] परिणमन करते हुए [लब्धस्वभा-  
वा न] चिदानन्द स्वभावको नहीं प्राप्त होते ॥ भावार्थ—ये मनुष्यादि पर्याय नाम-

विलीयमाने वान्यः संभवोऽन्यो विलय इति कृत्वा संभवविलयवन्तौ देवादिमनुष्या-  
दिपर्यायौ संभाव्येते । ततः प्रतिक्षणं पर्यायैर्जीवोऽनवस्थितः ॥ २७ ॥

अथ जीवस्यानवस्थितत्वहेतुमुद्योतयति;—

तस्माद् दु णत्थि कोई सहावसमवट्टिदोत्ति संसारे ।

संसारो पुण किरिया संसरमाणस्स दब्बस्स ॥ २८ ॥

तस्मात्तु नास्ति कश्चित् स्वभावसमवस्थित इति संसारे ।

संसारः पुनः क्रिया संसरतो द्रव्यस्य ॥ २८ ॥

यतः खलु जीवो द्रव्यत्वेनावस्थितोपि पर्यायैरनवस्थितः, ततः प्रतीयते न कश्चिदपि  
संसारे स्वभावेनावस्थित इति । यच्चात्रानवस्थितत्वं तत्र संसार एव हेतुः । तस्य मनुष्यादि-

क्षपर्यायस्योत्पादो मोक्षमार्गपर्यायस्य विनाशस्तावेव भिन्नो न च तदाधारभूतपरमात्मद्रव्यमिति ।  
ततो ज्ञायते द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायरूपेण विनाशोऽस्तीति ॥ २७ ॥ अथ विनश्व-  
रत्वे कारणमुपन्यस्यति, अथवा प्रथमस्थलेऽधिकारसूत्रेण मनुष्यादिपर्यायाणां कर्मजनितत्वेन  
यद्विनश्वरत्वं सूचितं तदेव गाथात्रयेण विशेषेण व्याख्यातमिदानीं तस्योपसंहारमाह;—तस्माद्  
दु णत्थि कोई सहावसमवट्टिदोत्ति तस्मान्नास्ति कश्चित्स्वभावसमवस्थित इति । यस्मात्पू-  
र्वोक्तप्रकारेण मनुष्यादिपर्यायाणां विनश्वरत्वव्याख्यानं कृतं तस्मादेव ज्ञायते परमानन्दैकलक्षण-  
परमचैतन्यचमत्कारपरिणतशुद्धात्मस्वभाववदवस्थितो नित्यः कोऽपि नास्ति । क । संसारे निस्सं-  
सारशुद्धात्मनो विपरीते संसारे । संसारस्वरूपं कथयति—संसारो पुण किरिया संसारः  
पुनः क्रिया निष्क्रियनिर्विकल्पशुद्धात्मपरिणतेर्विसदृशा मनुष्यादिविभावपर्यायपरिणतिरूपा  
क्रिया संसारस्वरूपं । सा च कस्य भवति । संसरमाणस्य जीवस्य विशुद्धज्ञानदर्श-  
नस्वभावमुक्तात्मनो विलक्षणस्य संसरतः परिभ्रमतः संसारिजीवस्येति । ततः स्थितं मनुष्यादिपर्या-

द्रव्य लिया जाय तो भेद वनता ही नहीं इसकारण उत्पाद् और व्यय पर्यायके भेद-  
सेही भेद होता है । इसलिये देवादि पर्यायोंके उत्पन्न होनेपर और मनुष्यादि पर्यायोंके  
विनाश होनेसे अन्य ही उत्पन्न होता है और दूसरा ही विनाश पाता है ऐसा भेद  
देवमनुष्यादि पर्यायोंसे कहा जाता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि समय २ में पर्या-  
योंसे ही जीव अनवस्थित है ॥ २७ ॥ आगे जीवके अधिर भाव दिखलाते हैं—[ त-  
स्मात् तु ] इस पूर्वोक्तीतिसे [ संसारे ] संसारमें [ कश्चित् ] कोईभी वस्तु  
[ स्वभावसमवस्थितः ] स्वभावसे धिर है [ इति ] ऐसा [ नास्ति ] नहीं है  
[ पुनः ] और जो [ संसरतो द्रव्यस्य ] चारों गतियोंमें भटकनेवाले जीवद्रव्यकी  
[ क्रिया ] अन्य अन्य अवस्थारूप परिणति है वही [ संसारः ] संसार है ॥  
भावार्थ—यह जीव द्रव्यपनेसे यद्यपि टंकोत्कीर्ण धिररूप है तो भी पर्यायोंसे अधिर  
है इसलिये इस संसारमें, मनुष्यादिरूप कोईभी पर्याय अविनाशी नहीं है, स्वभावहीसे

त्वनानात्वाभ्यां । यदा खलु भङ्गोत्पादयोरेकत्वं तदा पूर्वपक्षः, यदा तु नानात्वं तदोत्तरः । तथाहि—यथा य एव घटस्तदेव कुण्डमित्युक्ते घटकुण्डस्वरूपयोरेकत्वासंभवात्तदुभयाधारभूता मृत्तिका संभवति, तथा य एव संभव स एव विलय इत्युक्ते संभवविलयस्वरूपयोरेकत्वासंभवात्तदुभयाधारभूतं प्रौढ्यं संभवति । ततो देवादिपर्याये संभवति मनुष्यादिपर्याये विलीयमाने च य एव संभवः स एव विलय इति कृत्वा तदुभयाधारभूतं प्रौढ्यवर्जीवद्रव्यं संभाव्यत एव । ततः सर्वदा द्रव्यत्वेन जीवंपृष्ठोत्कीर्णोऽवतिष्ठते । अपि च यथाऽन्यो घटोऽन्यत्कुण्डमित्युक्ते तदुभयाधारभूताया मृत्तिकाया अन्यत्वासंभवात् घटकुण्डस्वरूपे संभवतः, तथान्यः संभवोऽन्यो विलय इत्युक्ते तदुभयाधारभूतस्य प्रौढ्यसान्यत्वासंभवात्संभवविलयस्वरूपे संभवतः । ततो देवादिपर्यायैः संभवति देवादिपर्यायै-

येन यो हि भवस्त एव विलयो यतः कारणात् । तथाहि—मुक्तात्मनां य एव सकलविमलकेवलज्ञानादिरूपेण मोक्षपर्यायेण भव उत्पादः स एव निश्चयरत्नत्रयात्मकनिश्चयमोक्षमार्गपर्यायेण विलयो विनाशस्तौ च मोक्षपर्यायमोक्षमार्गपर्यायौ कार्यकारणरूपेण भिन्नौ, तदुभयाधारभूतं यत्परमात्मद्रव्यं तदेव मृत्पिण्डघटाधारभूतमृत्तिकाद्रव्यवत् मनुष्यपर्यायदेवपर्यायाधारभूतसंसारिजीवद्रव्यवद्वा । क्षणभङ्गसमुद्भवे हेतुः कथ्यते । संभवविलोत्ति ते णाणा सम्भवविलयौ द्वाविति तौ नाना भिन्नौ यतः कारणात्ततः पर्यायार्थिकनयेन भङ्गोत्पादौ । तथाहि—य एव पूर्वोक्तमो-

लिये हुए हैं ॥ **भावार्थ**—इस विनाशिक संसारमें जो द्रव्यदृष्टिसे देखाजाय तो न तो कोई वस्तु उत्पन्न होती है और न विनाशको प्राप्त होती है इसकारण द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद और व्यय इन दोनों अवस्थाओंमें द्रव्य एक निल ही है पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा उत्पाद—व्यय जुदे २ हैं, इसतरह उत्पाद और व्ययमें एकता और अनेकता ये दो भेद होते हैं । जो द्रव्यत्वकर देखाजाय तो एकता है और पर्यायार्थिकसे अनेकता देखनेमें आती है । यही दृष्टान्तसे दिखाते हैं—जैसे जो घड़ा है वही कूड़ा है ऐसा कहनेसे घड़े और कूड़ेमें एकता नहीं होसकती इसकारण उन दोस्वरूपोंका आधार मट्टीकी जो अपेक्षा ली जावे तो एकता होसकती है, उसीप्रकार उत्पाद—व्ययमेंभी द्रव्यपनेसे दोनोंका आधार प्रौढ्य द्रव्य आता है । इसलिये जीवके देवादिपर्यायके उत्पाद होनेपर और मनुष्यादि पर्यायके विनाश होनेपर जो उत्पन्न होता है वही विनाश पाता है इन दोनों अवस्थाओंका आधार प्रौढ्य जीवद्रव्य ही सिद्ध होता है । इसकारण जीव द्रव्य हमेशा द्रव्यपनेसे टंकोत्कीर्ण रहता है । इसतरह सब अवस्थाओंमें एकता सिद्ध हुई । अग भेद दिखाते हैं—जैसे घड़ा अन्य है और कूड़ा अन्य ही है ऐसा कहनेपर जो उन दोनोंका आधार मृत्तिकाकी अपेक्षालें तो भेद हो नहीं सकता इसलिये यहां घट—कुंड पर्यायोंके भेदसे ही भेद हो सकता है, उसीप्रकार अन्य ही उत्पन्न होता है और दूसराही मादाको पाता है ऐसा कहनेपर यदि इन दोनोंका आधार

विलीयमाने वान्यः संभवोऽन्यो विलय इति कृत्वा संभवविलयवन्तौ देवादिमनुष्या-  
दिपर्यायौ संभाव्येते । ततः प्रतिक्षणं पर्यायैर्जीवोऽनवस्थितः ॥ २७ ॥

अथ जीवस्यानवस्थितत्वहेतुमुद्योतयति;—

तस्माद् दु णत्थि कोई सहावसमवट्टिदोत्ति संसारे ।

संसारो पुण किरिया संसरमाणस्स दब्बस्स ॥ २८ ॥

तस्मात्तु नास्ति कश्चित् स्वभावसमवस्थित इति संसारे ।

संसारः पुनः क्रिया संसरतो द्रव्यस्य ॥ २८ ॥

यतः खलु जीवो द्रव्यत्वेनावस्थितोपि पर्यायैरनवस्थितः, ततः प्रतीयते न कश्चिदपि  
संसारे स्वभावेनावस्थित इति । यच्चात्रानवस्थितत्वं तत्र संसार एव हेतुः । तस्य मनुष्यादि-

क्षपर्यायस्योत्पादो मोक्षमार्गपर्यायस्य विनाशस्तावेव भिन्नौ न च तदाधारभूतपरमात्मद्रव्यमिति ।  
ततो ज्ञायते द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायरूपेण विनाशोऽस्तीति ॥ २७ ॥ अथ विनश्व-  
रत्वे कारणमुपन्यस्यति, अथवा प्रथमस्थलेऽधिकारसूत्रेण मनुष्यादिपर्यायाणां कर्मजनितत्वेन  
यद्विनश्वरत्वं सूचितं तदेव गाथात्रयेण विशेषेण व्याख्यातमिदानीं तस्योपसंहारमाह;—तस्माद्  
दु णत्थि कोई सहावसमवट्टिदोत्ति तस्मान्नास्ति कश्चित्स्वभावसमवस्थित इति । यस्मात्पूर्-  
वोक्तप्रकारेण मनुष्यादिपर्यायाणां विनश्वरत्वव्याख्यानं कृतं तस्मादेव ज्ञायते परमानन्दैकलक्षण-  
परमचैतन्यचमत्कारपरिणतशुद्धात्मस्वभावप्रदवस्थितो नित्यः कोऽपि नास्ति । क । संसारे निस्सं-  
सारशुद्धात्मनो विपरीते संसारे । संसारस्वरूपं कथयति—संसारो पुण किरिया संसारः  
पुनः क्रिया निष्क्रियनिर्विकल्पशुद्धात्मपरिणतेर्विसदृशा मनुष्यादिविभावपर्यायपरिणतिरूपा  
क्रिया संसारस्वरूपं । सा च कस्य भवति । संसरमाणस्य जीवस्त विशुद्धज्ञानदर्श-  
नस्वभावमुक्तात्मनो विलक्षणस्य संसरतः परिभ्रमतः संसारिजीवस्येति । ततः स्थितं मनुष्यादिपर्या-

द्रव्य लिया जाय तो भेद वनता ही नहीं इसकारण उत्पाद और व्यय पर्यायके भेद-  
सेही भेद होता है । इसलिये देवादि पर्यायोंके उत्पन्न होनेपर और मनुष्यादि पर्यायोंके  
विनाश होनेसे अन्य ही उत्पन्न होता है और दूसरा ही विनाश पाता है ऐसा भेद  
देवमनुष्यादि पर्यायोंसे कहा जाता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि समय २ में पर्या-  
योंसे ही जीव अनवस्थित है ॥ २७ ॥ आगे जीवके अधिर भाव दिखलाते हैं—[ त-  
स्मात् तु ] इस पूर्वोक्तरीतिसे [ संसारे ] संसारमें [ कश्चित् ] कोईभी वस्तु  
[ स्वभावसमवस्थितः ] स्वभावसे धिर है [ इति ] ऐसा [ नास्ति ] नहीं है  
[ पुनः ] और जो [ संसरतो द्रव्यस्य ] चारों गतियोंमें भटकनेवाले जीवद्रव्यकी  
[ क्रिया ] अन्य अन्य अवस्थारूप परिणति है वही [ संसारः ] संसार है ॥  
भावार्थ—यह जीव द्रव्यपनेसे यद्यपि टंकोत्कीर्ण धिररूप है तौ भी पर्यायोंसे अधिर  
है इसलिये इस संसारमें, मनुष्यादिरूप कोईभी पर्याय अविनाशी नहीं है, स्वभावहीसे

पर्यायात्मकत्वात् स्वरूपेणैव तथाविधत्वात् । अथ यस्तु परिणममानस्य द्रव्यस्य पूर्वोक्त-  
दशापरित्यागोपादानात्मकः क्रियाख्यः परिणामस्तत्संसारस्य स्वरूपम् ॥ २८ ॥

अथ परिणामात्मके संसारे कुतः पुद्गलक्षेपो येन तस्य मनुष्यादिपर्यायात्मकत्वमित्यत्र  
समाधानमुपवर्णयति;—

आदा कम्ममलीमसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं ।

तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो ॥ २९ ॥

आत्मा कर्ममलीमसः परिणामं लभते कर्मसंयुक्तम् ।

ततः श्लिष्यति कर्म तस्मात् कर्म तु परिणामः ॥ २९ ॥

यो हि नाम संसारनामायमात्मनस्तथाविधः परिणामः स एव द्रव्यकर्मक्षेपहेतुः ।  
अथ तथाविधपरिणामस्यापि को हेतुः ? द्रव्यकर्म हेतुः तस्य, द्रव्यकर्मसंयुक्तत्वेनेवोप-  
लम्भात् । एवं सतीतरेतराश्रयदोषः । न हि । अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसंबद्धस्यात्मनः  
प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात् । एवं कार्यकारणभूतनवपुराणद्रव्यकर्मत्वादा-

यात्मकः संसार एव विनश्वरत्वे कारणमिति ॥ २८ ॥ एवं शुद्धात्मनो भिन्नानां कर्मजनितमनु-

ष्यादिपर्यायाणां विनश्वरत्वकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थले गतम् । अथ संसारस्य

कारणं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तस्य तु कारणं मिथ्यात्वरागादिपरिणाम इत्यावेदयति;—

आदा निर्दोषिपरमात्मा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकत्वभावोऽपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशात् कम्म-

मलीमसो कर्ममलीमसो भवति । तथा भवन्सन् किं करोति । परिणामं लहदि परिणामं

लभते । कथंभूतं । कम्मसंजुत्तं कर्मरहितपरमात्मनो विसदृशकर्मसंयुक्तं मिथ्यात्वरागादि-

विभावपरिणामं तत्तो सिलिसदि कम्मं ततः परिणामात् श्लिष्यति ब्रह्माति । किं । कर्म ।

यदि पुनर्निर्मलविवेकज्योतिःपरिणामेन परिणमति तदा तु कर्म मुञ्चति तम्हा कम्मं तु परि-

णामो तस्मात् कर्म तु परिणामः । यस्माद्रागादिपरिणामेन कर्म ब्रह्माति, तस्माद्रागादिविकल्प-

सव अधिरूप है । और चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए जीवका पूर्व अवस्थाको

त्यागके आगेकी अवस्थाका जो ग्रहण करना है वही संसारका स्वरूप है ॥ २८ ॥

आगे कहते हैं कि, अशुद्ध परिणतिरूप संसारमें पुद्गलका संबंध किस तरह हुआ ?

जिससे कि मनुष्यादि पर्याय होते हैं;—[ आत्मा ] यह जीव [ कर्ममलीमसः ]

पुद्गलकर्मोंसे अनादिकालसे मलीन हुआ [ कर्मसंयुक्तं ] मिथ्यात्वरागादिरूप कर्म

सहित [ परिणामं ] अशुद्ध विभाव ( विकार ) रूप परिणामको [ लभते ] पाता

है [ नतः ] और उम रागादिरूप विभाव परिणामसे [ कर्म ] पुद्गलीक द्रव्यकर्म

[ श्लिष्यति ] जीवके प्रदेशोंमें आकर बंधको प्राप्त होता है । [ तु ] और [ तस्मात् ]

इसीकारणसे [ परिणामः ] रागादि विभावपरिणाम [ कर्म ] पुद्गलीक बंधको कार-  
णरूप भागकर्म है ॥ भावार्थ—जो आत्माके रागादिरूप अशुद्ध परिणाम हैं वे द्रव्य-

त्मनस्तथाविधपरिणामो द्रव्यकर्मैव । तथात्मा चात्मपरिणामकर्तृत्वाद्व्यकर्मकर्ता-  
प्युपचारात् ॥ २९ ॥

अथ परमार्थादात्मनो द्रव्यकर्माकर्तृत्वमुद्योतयति;—

परिणामो सद्यमादा सा पुण किरियत्ति होइ जीवमया ।

किरिया कम्मत्ति मदा तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता ॥ ३० ॥

परिणामः स्वयमात्मा सा पुनः क्रियेति भवति जीवमयी ।

क्रिया कर्मेति मता तस्मात्कर्मणो न तु कर्ता ॥ ३० ॥

आत्मपरिणामो हि तावत्स्वयमात्मैव, परिणामिनः परिणामस्वरूपकर्तृत्वेन परिणामा-  
दानन्यत्वात् । यश्च तस्य तथाविधः परिणामः सा जीवमय्येव क्रिया, सर्वद्रव्याणां परि-  
णामलक्षणक्रियाया आत्ममयत्वाभ्युपगमात् । या च क्रिया सा पुनरात्मना स्वतन्त्रेण  
प्राप्यत्वात्कर्म । ततस्तस्य परमार्थादात्मा आत्मपरिणामात्मकस्य भावकर्मण एव कर्ता, न

रूपो भावकर्मस्थानीयः सरागपरिणाम एव कर्मकारणत्वादुपचारेण कर्मेति भण्यते । ततः स्थितं  
रागादिपरिणामः कर्मबन्धकारणमिति ॥ २९ ॥ अथात्मा निश्चयेन स्वकीयपरिणामस्यैव कर्ता  
न च द्रव्यकर्मण इति प्रतिपादयति । अथवा द्वितीयपातनिका—शुद्धपरिणामिकपरमभावप्रा-  
हकेण शुद्धनयेन यथैवाकर्ता तथैवाशुद्धनयेनापि सांख्येन यदुक्तं तन्निषेधार्थमात्मनो बन्धमो-  
क्षसिद्धयर्थं कथंचित्परिणामित्वं व्यवस्थापयतीति पातनिकाद्वयं मनसि संप्रधाय सूत्रमिदं निरूप-  
यति;—परिणामो सद्यमादा परिणामः स्वयमात्मा आत्मपरिणामस्तावदात्मैव । कस्मात्प-  
रिणामपरिणामिनोस्तन्मयत्वात् सा पुण किरियत्ति होदि सा पुनः क्रियेति भवति  
स च परिणामः क्रिया परिणतिरिति भवति । कथम्भूता । जीवमया जीवेन निर्वृत्तत्वाज्जीवमयी

कर्मबंधके कारण हैं और रागादिविभावपरिणामका कारण द्रव्यकर्म है क्योंकि द्रव्य-  
कर्मके उदय होनेसे भावकर्म होता है । यहां पर कोई यह प्रश्न करे कि ऐसा होनेसे  
इतरेतराश्रय दोष आता है क्योंकि रागादि विभावपरिणामोंसे द्रव्यकर्म और द्रव्य-  
कर्मसे विभावपरिणाम होते हैं ? इसका उत्तर इसप्रकार है कि—यह आत्मा अना-  
दिकालसे द्रव्यकर्मोंकर बंधा हुआ है इसकारण पूर्वबंधे द्रव्यकर्म उस रागादिविभाव-  
परिणामके कारण होते हैं और विभावपरिणाम नवीन द्रव्यकर्मके कारण होते हैं, इस-  
लिये एक दूसरेके आश्रय रूप इतरेतराश्रय दोष नहीं हो सकता ॥ इसतरह नवीन  
प्राचीन कर्मका भेद होनेसे कार्यकारणभाव सिद्ध होता है । आत्मा नियमसे अपने  
विभावरूप रागादिविभावकर्मोंका कर्ता है और व्यवहारसे द्रव्यकर्मोंकाभी कर्ता कहा  
जाता है ॥२९॥ आगे निश्चयनयसे 'आत्मा द्रव्यकर्मका अकर्ता है' यह कहते हैं;—  
[ परिणामः ] जो आत्माका परिणाम है वह [ स्वयं ] आप [ आत्मा ] जीव  
ही है [ पुनः ] और सा [ क्रिया ] वह परिणामरूप क्रिया [ जीवमयी ] जीवकर

तु पुद्गलपरिणामात्मकस्य द्रव्यकर्मणः । अथ द्रव्यकर्मणः कः कर्तेति चेत् ? पुद्गलपरिणामो हि तावत्स्वयं पुद्गल एव, परिणामिनः परिणामस्वरूपकर्तृत्वेन परिणामादनन्यत्वात् । यश्च तस्य तथाविधः परिणामः सा पुद्गलमप्येव क्रिया, सर्वद्रव्याणां परिणामलक्षणक्रियाया आत्ममयत्वाभ्युपगमात् । या च क्रिया सा पुनः पुद्गलेन स्वतन्त्रेण प्राप्यत्वात्कर्म । ततस्तस्य परमार्थात् पुद्गलात्मा आत्मपरिणामात्मकस्य द्रव्यकर्मण एव कर्ता, न त्वात्मपरिणामात्मकस्य भावकर्मणः । तत आत्मात्मस्वरूपेण परिणमति न पुद्गलस्वरूपेण परिणमति ॥ ३० ॥

किरिया कम्मत्ति मदा जीवेन स्वतन्त्रेण स्वाधीनेन शुद्धाशुद्धोपादानकारणभूतेन प्राप्यत्वात्सा क्रिया कर्मेति मता संमता । कर्मशब्देनात्र यदेव चिद्रूपं जीवादभिलं भावकर्मसंज्ञं निश्चयकर्म तदेव प्राह्यं । तस्यैव कर्ता जीवः तस्मात् कम्मस्स ण तु कत्ता तस्माद्द्रव्यकर्मणो न कर्तेति । अत्रैतदायाति—यद्यपि कथंचित् परिणामित्वे सति जीवस्य कर्तृत्वं जातं तथापि निश्चयेन स्वकीयपरिणामानामेव कर्ता पुद्गलकर्मणां व्यवहारेणेति । तत्र तु यदा शुद्धोपादानकारणरूपेण शुद्धोपयोगेन परिणमति तदा मोक्षं साधयति, अशुद्धोपादानकारणेन तु बन्धमिति । पुद्गलोऽपि

की जाती है इससे जीवमयी [ इति ] ऐसी [ भवति ] होती है अर्थात् कही जाती है । [ क्रिया ] जो क्रिया है वही [ कर्म इति ] 'कर्म' ऐसी संज्ञासे [ मता ] मानी गई है [ तस्मात् ] इसकारण आत्मा [ कर्मणः ] द्रव्यकर्मका [ न तु कर्ता ] करनेवाला नहीं है ॥ भावार्थ—परिणामी अपने परिणामका कर्ता होता है क्योंकि परिणामी और परिणामका आपसमें भेद नहीं है इसलिये जो जीवका परिणाम है वह जीव ही हुआ । और जो परिणाम है वह आत्माकी क्रिया होनेसे जीवमयी क्रिया कही जाती है, क्योंकि जिस द्रव्यके जो परिणामरूप क्रिया है उससे द्रव्य तन्मय है इसकारण जीव भी तन्मय होनेसे जीवमयी क्रिया कहलाई । जो क्रिया है वह आत्माने स्वाधीन होकर की है इसलिये उसी क्रियाको कर्म कहते हैं । इससे यह सारांश निकला कि आत्माके रागादि विभाव परिणाम आत्माकी क्रिया ( कारवाई ) है, उस क्रियासे जीव तन्मय हो जाता है ये ही जीवके भावकर्म हैं । इसलिये निश्चयसे आत्मा अपने भावकर्मोंका कर्ता है । जब आत्मा अपने भावकर्मोंका कर्ता है तब तो पुद्गल परिणामरूप द्रव्यकर्मका कर्ता कभी नहीं हो सकता । यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है ? तो उसका उत्तर यह है कि पुद्गलका जो परिणाम वह पुद्गल ही है और परिणामी अपने परिणामोंका कर्ता है, परिणाम—परिणामी एक ही हैं । जो पुद्गलपरिणाम है वही पुद्गलमयी क्रिया है, क्योंकि सब द्रव्योंकी परिणामरूप क्रियाको तन्मयपना सिद्ध है । जो क्रिया है वह कर्म है । पुद्गलेन भी स्वाधीन होके की है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गल अपने द्रव्यकर्मरूप परिणामोंका कर्ता है

अथ किं तत्स्वरूपं येनात्मा परिणमतीति तदावेदयति;—

**परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा ।**

**सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥ ३१ ॥**

परिणमति चेतनया आत्मा पुनः चेतना त्रिधाभिमता ।

सा पुनः ज्ञाने कर्मणि फले वा कर्मणो भणिता ॥ ३१ ॥

यतो हि नाम चैतन्यमात्मनः स्वधर्मव्यापकत्वं, ततश्चेतनैवात्मनः स्वरूपं तथा खल्वात्मा परिणमति । यः कश्चनाप्यात्मनः परिणामः स सर्वोपि चेतनां नातिवर्तत इति तात्पर्यं । चेतना पुनर्ज्ञानकर्मकर्मफलत्वेन त्रेधा । तत्र ज्ञानपरिणतिर्ज्ञानचेतना, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतना ॥ ३१ ॥

अथ ज्ञानकर्मकर्मफलस्वरूपमुपवर्णयति;—

**णाणं अत्थवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं ।**

**तमणेगविधं भणिदं फलत्ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥ ३२ ॥**

जीववन्निश्चयेन स्वकीयपरिणामानामेव कर्ता जीवपरिणामानां व्यवहारेणेति ॥ ३० ॥ एवं रागादिपरिणामाः कर्मबन्धकारणं तेषामेव कर्ता जीव इतिकथनमुख्यतया गाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथ येन परिणामेनात्मा परिणमति तं परिणामं कथयति;—  
**परिणमदि चेदणाए आदा परिणमति चेतनया करणभूतया । स कः । आत्मा । यः कोऽप्यात्मनः शुद्धाशुद्धपरिणामः स सर्वोऽपि चेतनां न त्यजति इत्यभिप्रायः । पुण चेदणा तिहाहिमदा सा सा चेतना पुनस्त्रिधाभिमता । कुत्र कुत्र । णाणे ज्ञानविषये कम्म कर्मविषये फलम्मि वा फले वा । कस्य फले । कम्मणो कर्मणः भणिदा भणिता कथितेति । ज्ञानपरिणतिः ज्ञानचेतना अग्रे वक्ष्यमाणा, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतनेति भावार्थः ॥ ३१ ॥ अथज्ञानकर्मकर्मफलरूपेण त्रिधां चेतनां विशेषेण**

परंतु जीवके भावकर्मरूप परिणामोंका कर्ता नहीं है । इसकारण पुद्गल आत्मास्वरूप परिणमन नहीं करनेसेही द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं हो सकता ॥ ३० ॥ आगे जिस स्वरूप आत्मा परिणमन करता है उसीको कहते हैं;—[ आत्मा ] जीव [ चेतनया ] चेतना स्वभावसे [ परिणमति ] परिणमन करता है [ पुनः ] और [ सा चेतना ] वह चैतन्य परिणति [ अभिमता ] सर्वज्ञ देव कर मानीहुई [ ज्ञाने ] ज्ञानपरिणतिमें [ कर्मणि ] कर्मपरिणतिमें [ कर्मणः फले ] कर्मकी फलपरिणतिमें [ त्रिधा ] तीनतरहकी [ भणिता ] कही गई है । भावार्थ—जीवका स्वरूप चेतना है इसकारण जीवके परिणाम भी चेतनाको छोड़ते नहीं, इसलिये जीव चेतनभावोंसे परिणमन करता है । वह चेतना ज्ञानचेतना १ कर्मचेतना २ कर्मफलचेतनाके ३ भेदसे तीन प्रकार जिनेन्द्रदेवने कही हैं ॥ ३१ ॥ आगे इस तीन तरहकी चेतनाका स्वरूप कहते



तु पुद्गलपरिणामात्मकस्य द्रव्यकर्मणः । अथ द्रव्यकर्मणः कः कर्तेति चेत् ? पुद्गलपरिणामो हि तावत्स्वयं पुद्गल एव, परिणामिनः परिणामस्वरूपकर्तृत्वेन परिणामादनन्यत्वात् । यश्च तस्य तथाविधः परिणामः सा पुद्गलमध्येव क्रिया, सर्वद्रव्याणां परिणामलक्षणक्रियाया आत्ममयत्वाभ्युपगमात् । या च क्रिया सा पुनः पुद्गलेन स्वतन्त्रेण प्राप्यत्वात्कर्म । ततस्तस्य परमार्थात् पुद्गलात्मा आत्मपरिणामात्मकस्य द्रव्यकर्मण एव कर्ता, न त्वात्मपरिणामात्मकस्य भावकर्मणः । तत आत्मात्मस्वरूपेण परिणमति न पुद्गलस्वरूपेण परिणमति ॥ ३० ॥

किरिया कम्मत्ति मदा जीवेन स्वतन्त्रेण स्वाधीनेन शुद्धाशुद्धोपादानकारणभूतेन प्राप्यत्वात्सा क्रिया कर्मेति मता संमता । कर्मशब्देनात्र यदेव चिद्रूपं जीवादभिन्नं भावकर्मसंज्ञं निश्चयकर्म तदेव ग्राह्यं । तस्यैव कर्ता जीवः तम्हा कम्मस्स ण ढु कत्ता तस्माद्द्रव्यकर्मणो न कर्तेति । अत्रैतदायाति—यद्यपि कथंचित् परिणामित्वे सति जीवस्य कर्तृत्वं जातं तथापि निश्चयेन स्वकीयपरिणामानामेव कर्ता पुद्गलकर्मणां व्यवहारेणेति । तत्र तु यदा शुद्धोपादानकारणरूपेण शुद्धोपयोगेन परिणमति तदा मोक्षं साधयति, अशुद्धोपादानकारणेन तु बन्धमिति । पुद्गलोऽपि

की जाती है इससे जीवमयी [ इति ] ऐसी [ भवति ] होती है अर्थात् कही जाती है । [ क्रिया ] जो क्रिया है वही [ कर्म इति ] 'कर्म' ऐसी संज्ञासे [ मता ] मानी गई है [ तस्मात् ] इसकारण आत्मा [ कर्मणः ] द्रव्यकर्मका [ न तु कर्ता ] करनेवाला नहीं है ॥ भावार्थ—परिणामी अपने परिणामका कर्ता होता है क्योंकि परिणामी और परिणामका आपसमें भेद नहीं है इसलिये जो जीवका परिणाम है वह जीव ही हुआ । और जो परिणाम है वह आत्माकी क्रिया होनेसे जीवमयी क्रिया कही जाती है, क्योंकि जिस द्रव्यके जो परिणामरूप क्रिया है उससे द्रव्य तन्मय है इसकारण जीव भी तन्मय होनेसे जीवमयी क्रिया कहलाई । जो क्रिया है वह आत्माने स्वाधीन होकर की है इसलिये उसी क्रियाको कर्म कहते हैं । इससे यह सारांश निकला कि आत्माके रागादि विभाव परिणाम आत्माकी क्रिया ( कारवाइ ) है, उस क्रियासे जीव तन्मय हो जाता है ये ही जीवके भावकर्म हैं । इसलिये निश्चयसे आत्मा अपने भावकर्मोंका कर्ता है । जब आत्मा अपने भावकर्मोंका कर्ता है तब तो पुद्गल परिणामरूप द्रव्यकर्मका कर्ता कभी नहीं हो सकता । यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है ? तो उसका उत्तर यह है कि पुद्गलका जो परिणाम वह पुद्गल ही है और परिणामी अपने परिणामोंका कर्ता है, परिणाम—परिणामी एक ही हैं । जो पुद्गलपरिणाम है वही पुद्गलमयी क्रिया है, क्योंकि सद्य द्रव्योंकी परिणामरूप क्रियाको तन्मयपना सिद्ध है । जो क्रिया है वह कर्म है । पुद्गलने भी स्वाधीन होके की है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गल अपने द्रव्यकर्मरूप परिणामोंका कर्ता है

अथ किं तत्स्वरूपं येनात्मा परिणमतीति तदावेदयति;—

परिणमदि चेयणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा ।

सा पुण गाणे कम्ममे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥ ३१ ॥

परिणमति चेतनया आत्मा पुनः चेतना त्रिधाभिमता ।

सा पुनः ज्ञाने कर्मणि फले वा कर्मणो भणिता ॥ ३१ ॥

यतो हि नाम चैतन्यमात्मनः स्वधर्मव्यापकत्वं, ततश्चेतनैवात्मनः स्वरूपं तथा खल्वात्मा परिणमति । यः कश्चनाप्यात्मनः परिणामः स सर्वोपि चेतनां नातिवर्तत इति तात्पर्यं । चेतना पुनर्ज्ञानकर्मकर्मफलत्वेन त्रेधा । तत्र ज्ञानपरिणतिर्ज्ञानचेतना, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतना ॥ ३१ ॥

अथ ज्ञानकर्मकर्मफलस्वरूपमुपवर्णयति;—

गाणं अत्थवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं ।

तमणोगविधं भणिदं फलन्ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥ ३२ ॥

जीववन्निश्चयेन स्वकीयपरिणामानामेव कर्ता जीवपरिणामानां व्यवहारेणेति ॥ ३० ॥ एवं रागादिपरिणामाः कर्मवन्धकारणं तेषामेव कर्ता जीव इतिकथनमुख्यतया गाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथ येन परिणामेनात्मा परिणमति तं परिणामं कथयति;—

परिणमदि चेदणाए आदा परिणमति चेतनया करणभूतया । स कः । आत्मा । यः कोऽप्यात्मनः शुद्धाशुद्धपरिणामः स सर्वोऽपि चेतनां न त्यजति इत्यभिप्रायः । पुण चेदणा तिहाहिमदा सा सा चेतना पुनस्त्रिधाभिमता । कुत्र कुत्र । गाणे ज्ञानविषये कम्ममे कर्मविषये फलम्मि वा फले वा । कस्य फले । कम्मणो कर्मणः भणिदा भणिता कथितेति । ज्ञानपरिणतिः ज्ञानचेतना अग्रे वक्ष्यमाणा, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतनेति भावार्थः ॥ ३१ ॥ अथज्ञानकर्मकर्मफलरूपेण त्रिधां चेतनां विशेषेण

परंतु जीवके भावकर्मरूप परिणामोंका कर्ता नहीं है । इसकारण पुद्गल आत्मास्वरूप परिणमन नहीं करनेसेही द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं हो सकता ॥ ३० ॥ आगे जिस स्वरूप आत्मा परिणमन करता है उसीको कहते हैं;—[ आत्मा ] जीव [ चेतनया ] चेतना स्वभावसे [ परिणमति ] परिणमन करता है [ पुनः ] और [ सा चेतना ] वह चैतन्य परिणति [ अभिमता ] सर्वज्ञ देव कर मानीहुई [ ज्ञाने ] ज्ञानपरिणतिमें [ कर्मणि ] कर्मपरिणतिमें [ कर्मणः फले ] कर्मकी फलपरिणतिमें [ त्रिधा ] तीनतरहकी [ भणिता ] कही गई है । भावार्थ—जीवका स्वरूप चेतना है इसकारण जीवके परिणाम भी चेतनाको छोड़ते नहीं, इसलिये जीव चेतनभावोंसे परिणमन करता है । वह चेतना ज्ञानचेतना १ कर्मचेतना २ कर्मफलचेतनाके ३ भेदसे तीन प्रकार जिनेन्द्रदेवने कही है ॥ ३१ ॥ आगे इस तीन तरहकी चेतनाका स्वरूप कहते

ज्ञानमर्थविकल्पः कर्म जीवेन यत्समारब्धम् ।

तदनेकविधं भणितं फलमिति सौख्यं वा दुःखं वा ॥ ३२ ॥

अर्थविकल्पस्तावत् ज्ञानं । तत्र कः खल्वर्थः ? स्वपरविभागेनावस्थितं विश्वं, विकल्प-  
स्तदाकारावभासनं । यस्तु मुकुरुन्दहृदयाभोग इव युगपदवभासमानस्वपराकारार्थविकल्प-  
स्तद् ज्ञानं । क्रियमाणमात्मना कर्म, क्रियमाणः खल्वात्मा प्रतिक्षणं तेन तेन भावेन भवता  
यः सद्भावः स एव कर्मात्मना प्राप्यत्वात् । तत्त्वेकविधमपि द्रव्यकर्मोपाधिसन्निधिसद्भावा-  
सद्भावाभ्यामनेकविधं । तस्य कर्मणो यन्निष्पाद्यं सुखदुःखं तत्कर्मफलं । तत्र द्रव्यक-  
र्मोपाधिसान्निध्यसद्भावात्कर्म तस्य फलमनाकुलत्वलक्षणं प्रकृतिभूतं सौख्यं, यत्तु द्रव्य-

विचारयति;—**णाणं अद्ववियप्पं ज्ञानं मत्थादिभेदेनाद्यविकल्पं भवति । अथवा पाठान्तरं णाणं**  
**अद्ववियप्पो** ज्ञानमर्थविकल्पः तथाह्यर्थः परमात्मादिपदार्थ अनन्तज्ञानसुखादिरूपोऽहमिति,  
रागाद्याश्रवास्तु मत्तो भिन्ना इति स्वपराकारावभासेनादर्श इवार्थपरिच्छित्तिसमर्थो विकल्पः  
विकल्पलक्षणमुच्यते । स एव ज्ञानं ज्ञानचेतनेति । **कम्मं जीवेण जं समारब्धं** कर्म  
जीवेन यत्समारब्धं बुद्धिपूर्वकमनोधचनकायव्यापाररूपेण जीवेन यत्सम्बन्धुमारब्धं तत्कर्म  
भण्यते । सैव कर्मचेतनेति **तमणेगविहं भणियं** तच्च कर्म शुभाशुभशुद्धोपयोगभेदेनानेक-  
विधं त्रिविधं भणितमिदानीं फलचेतना कथ्यते—**फलंति सौख्यं च दुःखं वा फलमिति सुखं च**  
**दुःखं वा विपयानुरागरूपं यदशुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलमाकुलत्वोत्पादकं नारकादिदुःखं,**  
**यच्च धर्मानुरागरूपं शुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलं चक्रवर्त्यादिपञ्चेन्द्रियभोगानुभवरूपं,**  
**तच्चाशुद्धनिश्चयेन सुखमप्याकुलोत्पादकत्वात् शुद्धनिश्चयेन दुःखमेव । यच्च रागादिविकल्परहित-**

हैं—[ **अर्थविकल्पः** ] स्वपरका भेदलिये हुए जीवादिक पदार्थोंको भेदसहित तदाकार  
जानना वह [ **ज्ञानं** ] ज्ञानभाव है अर्थात् आत्माका ज्ञानभावरूप परिणमना उसे ज्ञानं  
चेतना कहते हैं । और [ **जीवेण** ] आत्माने [ **यत् समारब्धं** ] अपने कर्तव्यसे समय  
२में जो भाव किये हैं [ **तत्कर्म** ] वह भावरूप कर्म है [ **अनेकविधं** ] वह शुभादि-  
फके भेदसे अनेक प्रकार है उसीको कर्मचेतना कहते हैं । [ **वा** ] और [ **सौख्यं** ]  
सुखरूप [ **वा** ] अथवा [ **दुःखं** ] दुःखरूप [ **फलं** ] उस कर्मका फल है [ **इति**  
**भणितं** ] ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ **भावार्थ**—जैसे दर्पण तदाकाररूप हुआ  
भेदसहित घटपटादि पदार्थोंको प्रतिविम्बित करता है उसीप्रकार ज्ञान एकही  
फालमें स्वपरपदार्थोंको प्रगट करता है । इसतरह ज्ञानभावरूप आत्माके परिणम-  
नको ज्ञानचेतना कहते हैं । जो समय समयमें पुद्गलकर्मके निमित्तसे जैसे जैसे  
परिणाम करता है उन परिणामोंको भावकर्म अथवा कर्मचेतना कहते हैं । यह कर्म  
पुद्गलके निमित्तसे ही शुभ अशुभरूप अनेकभेदोंवाला हो जाता है । और शुभ द्रव्यक-  
र्मके संबंधसे जो आत्माके साताका उदय होना वह अनाकुलरूप इंद्रियाधीन सुखरूप

कर्मोपाधिसान्निध्यासद्भावात्कर्म तस्य फलं सौख्यलक्षणाभावाद्विकृतिभूतं दुःखं । एवं ज्ञानकर्मकर्मफलस्वरूपनिश्चयः ॥ ३२ ॥

अथ ज्ञानकर्मकर्मफलान्यात्मत्वेन निश्चिनोति;—

अप्पा परिणामप्पा परिणामो णाणकम्मफलभावी ।

तम्हा णाणं कम्मं फलं च आदा मुणेदब्बो ॥ ३३ ॥

आत्मा परिणामात्मा परिणामो ज्ञानकर्मफलभावी ।

तस्मात् ज्ञानं कर्म फलं चात्मा मन्तव्यः ॥ ३३ ॥

आत्मा हि तावत्परिणामात्मैव, परिणामः स्वयमात्मेति स्वयमुक्तत्वात् । परिणामस्तु चेतनात्मत्वेन ज्ञानं कर्म कर्मफलं वा भवितुं शीलः, तन्मयत्वाच्चेतनायाः । ततो ज्ञानं कर्म

शुद्धोपयोगपरिणतिरूपं कर्म तस्य फलमनाकुलत्वोत्पादकं परमानन्दैकरूपसुखामृतमिति । एवं ज्ञानकर्मकर्मफलचेतनास्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥ ३२ ॥ अथ ज्ञानकर्मकर्मफलान्यभेदनयेनात्मैव भवतीति प्रज्ञापयति;—अप्पा परिणामप्पा आत्मा भवति । कथम्भूतः । परिणामात्मा परिणामस्वभावः । कस्मादिति चेत्? “परिणामो सयमादा” इति पूर्वं स्वयमेव भणितत्वात् । परिणामः कथ्यते परिणामो णाणकम्मफलभावी परिणामो भवति । किंविशिष्टः । ज्ञानकर्मफलभावी ज्ञानकर्मकर्मफलरूपेण भवितुं शील इत्यर्थः तम्हा तस्मादेव तस्मात्कारणात् णाणं पूर्वसूत्रोक्ता ज्ञानचेतना कम्मं तत्रैवोक्तलक्षणा कर्मचेतना फलं च पूर्वोक्तलक्षणफलचेतना च आदा मुणेदब्बो इयं चेतना त्रिविधान्यभेदनयेनात्मैव मन्तव्यो ज्ञातव्य

कर्मफल है, तथा जो अशुभद्रव्यकर्मके संबंधसे असाताका उदय होना वह सुखभावसे रहित विकाररूप दुःखनामा कर्मफल है । इस प्रकार कर्मफलके वेदनेरूप जो आत्माका परिणामन वह कर्मफल चेतना है । ऐसे ज्ञानचेतना १ कर्मचेतना २ कर्मफलचेतना ३ ये तीन भेद चेतनाके कहे गये हैं ॥ ३२ ॥ आगे ज्ञान-कर्म-कर्मफल ये अभेद नयसे आत्मा ही हैं ऐसा दिखलाते हैं;—[ आत्मा ] जीव [ परिणामात्मा ] परिणामस्वभाववाला है [ परिणामः ] और परिणाम [ ज्ञानकर्मफलभावी ] ज्ञानरूप-कर्मरूप-कर्मफलरूप होनेको समर्थ है [ तस्मात् ] इसकारण [ ज्ञानं ] ज्ञान [ कर्म ] कर्मपरिणाम [ च ] और [ फलं ] कर्मफल परिणाम ये ही [ आत्मा ] जीवस्वरूप [ मन्तव्यः ] जानने चाहिये । भावार्थ—आत्मा परिणामस्वभाववाला सदाकालसे है । वह परिणाम ज्ञानपरिणाम-कर्मपरिणाम-कर्मफलपरिणाम, इसतरह तीनभेदयुक्त है । परिणाम और परिणामीमें एकता होनेसे परिणामसे जुदा आत्मा नहीं है इसलिये अभेदनयकी अपेक्षासे तीनपरिणामोंरूप आत्मा ही है । अशुद्ध द्रव्यके कथनकी अपेक्षा तो कर्मपरिणाम और कर्मफलपरिणामसे एकता है तथा जय शदद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा लीजावे तब आत्माके परद्रव्यका संबंध होना असंभव

कर्मफलं चात्मैव । एवं हि शुद्धद्रव्यनिरूपणायां परद्रव्यसंपर्कासंभवात्पर्यायाणां द्रव्या-  
न्तःप्रलयाच्च शुद्धद्रव्य एवात्मावतिष्ठते ॥ ३३ ॥

अथैवमात्मनो ज्ञेयतामापन्नस्याशुद्धत्वनिश्चयात् ज्ञानतत्त्वासिद्धौ शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भो  
भवतीति तमभिनन्दन् द्रव्यसामान्यवर्णनामुपसंहरति;—

कत्ता करणं कम्मं फलं च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो ।

परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥ ३४ ॥

कर्ता करणं कर्म फलं चात्मेति निश्चितः श्रमणः ।

परिणमति नैवान्यद्यदि आत्मानं लभते शुद्धम् ॥ ३४ ॥

यो हि नामैवं कर्तारं करणं कर्म कर्मफलं चात्मानमेव निश्चित्य न खलु परद्रव्यं  
परिणमति स एव विश्रान्तपरद्रव्यसंपर्कं द्रव्यान्तःप्रलीनपर्यायं च शुद्धमात्मानमुपलभते,  
न पुनरन्यः । तथाहि—यदा नामानादिप्रसिद्धपौद्गलिककर्मबन्धनोपाधिसंनिधिप्रधावितो-  
परागरञ्जितात्मवृत्तिर्जपापुष्पसंनिधिप्रधावितोपरागरञ्जितात्मवृत्तिः स्फटिकमणिरिव परा-  
रोपितविकारोऽहमासं संसारी तदपि न नाम मम कोप्यासीत् तदाप्यहमेक एवोपरक्तचि-  
त्स्वभावेन स्वतन्त्रः कर्ता, स अहमेक एवोपरक्तचित्स्वभावेन साधकतमः करणमासम् ।  
अहमेक एवोपरक्तचित्परिणमनस्वभावेनात्मना प्राप्यः कर्मासम् । अहमेक एव चोपरक्त-

इति । एतावता किमुक्तं भवति । त्रिविधचेतनापरिणामेन परिणामी सन्नात्मा । किं  
करोति । निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धपरिणामेन मोक्षं साधयति, शुभाशुभाभ्यां पुनर्बन्धमपि  
॥ ३३ ॥ एवं त्रिविधचेतनाकथनमुल्लयतया गाथात्रयेण चतुर्थस्थलम् । अथ सामान्यज्ञेयाधि-  
कारसमाप्तौ पूर्वोक्तभेदभावनायाः शुद्धात्मप्राप्तिरूपं फलं दर्शयति;—कत्ता स्वतन्त्रः स्वाधीनः कर्ता  
साधको निष्पादकोऽस्मि भवामि । स कः । अप्पत्ति आत्मेति । आत्मेति कोऽर्थः । अहमिति ।  
कथम्भूतः । एकः । कस्याः साधकः । निर्मलात्मानुभूतेः । किंविशिष्टः । निर्विकारपरमचै-  
तन्यपरिणामेन परिणतः सन् करणमतिशयेन साधकं साधकतमं करणमुपकरणं करणकारकम-  
हमेक एवास्मि भवामि । कस्याः साधकं । सहजशुद्धपरमात्मानुभूतेः । केन कृत्वा । रागादिविकल्पर-  
हितस्वसंवेदनज्ञानपरिणतिबलेन कम्मं शुद्धसुद्धैकस्वभावेन परमात्मना प्राप्यं व्याप्यमहमेक एव

है इसकारण वहां अशुद्धपरिणामोंका होना कह नहीं सकते । इसीलिये शुद्धद्रव्यके कथनमें  
शुद्धपर्यायमी द्रव्यके ही अंदर लीन हो जाते हैं भेदभाव नहीं रहता, और उस अवस्थामें  
शुद्धद्रव्य एक हायकमात्र हुआ स्थित रहता है ॥ ३३ ॥ आगे इस जीवके शुद्धस्वभावका निश्चय  
होनेसे ज्ञानभावकी सिद्धि होती है तब स्वज्ञेयरूप आत्माके शुद्धस्वरूपका लाभ होता है  
ऐसा कहते हुए द्रव्यके सामान्यकथनको पूर्ण करते हैं;—[ कर्ता ] कामका करनेवाला  
[ करणं ] जिससे क्रिया जाय ऐसा मुख्यकारण [ कर्म ] जो क्रिया जाय

चित्परिणमनस्वभावस्य निष्पाद्यं सौख्यं विपर्यस्तलक्षणं दुःखाख्यं कर्मफलमासं ।  
इदानीं पुनरनादिप्रसिद्धपौद्गलिककर्मबन्धनोपाधिसन्निधिध्वंसविस्फुरितसुविशुद्धसहजा-  
त्मवृत्तिर्जपापुष्पसंनिधिध्वंसविस्फुरितसुविशुद्धसहजात्मवृत्तिः स्फटिकमणिरिव विश्रान्त-  
परारोपितविकारोऽहमेकान्तेनास्मि मुमुक्षुः, इदानीमपि न नाम मम कोप्यस्ति, इदानी-  
मप्यहमेक इव सुविशुद्धचित्स्वभावेन स्वतन्त्रः कर्तास्मि, अहमेक एव च सुविशुद्धचित्स्व-  
भावेन साधकतमः करणमस्मि, अहमेक एव च सुविशुद्धचित्परिणमनस्वभावेनात्मना

कर्मकारकमस्मि । फलं च शुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मनः साध्यं निष्पाद्यं निजशुद्धात्मरुचिपरि-  
च्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपामेदरत्नत्रयात्मकपरमसमाधिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादपरिणतिरूपमहमेक  
एव फलं चास्मि निश्चिच्छदो एवमुक्तप्रकारेण निश्चितमतिः सन् समणो सुखदुःखजीवितमर-  
णशत्रुमित्रादिसमताभावनापरिणतः श्रमणः परममुनिः परिणमदि णेव अण्णं जदि परिणमति

वह कर्म [ च ] और [ फलं ] कर्मका फल ये चारों [ आत्मा इति ] आत्मा  
ही हैं ऐसा [ निश्चितः ] निश्चयकरनेवाला [ श्रमणः ] भेदविज्ञानी मुनि [ यदि ]  
जो [ अन्यत् ] परद्रव्यरूप [ नैव ] नहीं [ परिणमति ] परिणमन करता है  
[ तदा ] तभी [ शुद्धं आत्मानं ] शुद्ध अर्थात् कर्मोपाधिरहित शुद्धचिदानंदरूप  
आत्माको [ लभते ] पाता है ॥ भावार्थ—जब यह जीव परद्रव्यके संबंधसे आ-  
त्माको जुदा जानकर शुद्ध कर्ता शुद्ध करण शुद्ध कर्म शुद्ध फल—इन चारोंभेदोंसे  
आत्माको अभेदरूप समझता है इनसे एकताका निश्चयकर किसीकालमें भी परद्रव्यसे  
एकपना मानके परिणमन नहीं करता वही जीव अभेदरूप ज्ञायकमात्र अपने शुद्धस्वरू-  
पको प्राप्त होता है । इसी कथनको विशेषतासे दिखाते हैं—जैसे लालपुष्पके संयोगसे  
स्फटिकमणिमें रागविकार उत्पन्न हो जाता है, उसीतरह अनादिकालसे पुद्गलकर्मके  
बंधनरूप उपाधिके संबंधसे जिसके रागवृत्ति उत्पन्न हुई है ऐसा मैं परकृत विकार-  
सहित पूर्व ही अज्ञान दशामें संसारी था, उस समयमें भी मेरा अन्य द्रव्य कोईभी नहीं  
संबंधी था, ऐसी अवस्थामें भी अकेला ही मैं अपनी भूलसे सराग चैतन्यभाव कर  
कर्ता हुआ । मैं ही एक सराग चैतन्य भावकर अज्ञान भावका मुख्यकारण हुआ  
इससे करण भी मैं ही कहलाया । मैं ही एक सरागचैतन्यपरिणति स्वभावसे  
अपने अशुद्ध भावको प्राप्त हुआ इसलिये कर्म भी मैं ही होता हुआ । तथा मैं ही एक  
सरागचैतन्यभावसे उत्पन्न और आत्मीकसुखसे उलटा ऐसा दुःखरूप कर्मफल होता  
हुआ; इसकारण अज्ञान दशामें भी मैं इन चारों भेदोंसे अभेदरूप परिणत हुआ । और  
अव ज्ञानदशामें जैसे रक्तपुष्पके संयोगके छूटजानेसे स्फटिकमणि निर्मल स्वाभाविक  
शुद्ध हो जाता है वैसे मैं भी सर्वथा प्रकृतियोंके विकारसे रहित हुआ निर्मल मोक्षमा-  
गमें प्रवर्तता हूं तो अब भी मेरा कोई नहीं, अब मैं ही एक निर्मल चैतन्यभावसे

प्राप्यः कर्मास्मि, अहमेक एव च सुविशुद्धचित्परिणमनस्वभावस्य निष्पाद्यमनाकुलत्वलक्षणं सौख्याख्यं कर्मफलमस्मि । एवमस्य बन्धपद्धतौ मोक्षपद्धतौ चात्मानमेकमेव भावयतः परमाणोरिवैकत्वप्रभावानुसुखस्य परद्रव्यपरिणतिर्न जातु जायते । परमाणुरिव भावितैकत्वश्च परेण नो संपृच्यते । ततः परद्रव्यासंपृक्तत्वात्सुविशुद्धो भवति । कर्तृकरणकर्मकर्मफलानि चात्मत्वेन भावयन् पर्यायैर्न संकीर्यते, ततः पर्यायासंकीर्णत्वाच्च सुविशुद्धो भवतीति । द्रव्यान्तरव्यतिकरादपसारितात्मा सामान्यमजितसमस्तविशेषजातः इत्येष शुद्धनय, उद्धतमोहलक्ष्मीलुण्टाक उत्कटविवेकविविक्ततत्त्वः ॥ ३४ ॥

“इत्युच्छेदात्परपरिणतेः कर्तृकर्मादिभेदभ्रान्तिध्वंसादपि च सुचिरालम्बशुद्धात्मतत्त्वः । सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं स्थास्यत्युद्यत्सहजमहिमा सर्वदा मुक्त एव” ॥

“द्रव्यसामान्यविज्ञाननिम्नं कृत्वेति मानसम् । तद्विशेषपरिज्ञानप्राग्भारः क्रियतेऽधुना ॥”

इति द्रव्यसामान्यप्रज्ञापनम् ।

अथ द्रव्यविशेषप्रज्ञापनं तत्र द्रव्यस्य जीवाजीवत्वविशेषं निश्चिनोति;—

द्वञ्च जीवमजीवं जीवो पुण चेदणोवयोगमयो ।

पोग्गलद्ववप्पमुहं अचेदणं हवदि य अजीवं ॥ ३५ ॥

नैवान्यं रागादिपरिणामं यदिचेत्? अप्पाणं लहदि सुद्धम् तदात्मानं भावकर्मद्रव्यकर्मनोर्कर्मरहितत्वेन शुद्धं शुद्धबुद्धैकस्वभावं लभते प्राप्नोति इत्यभिप्रायो भगवतां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवानाम् ॥३४॥ एवमेकसूत्रेण पञ्चमखलं गतम् । इति सामान्यज्ञेयाधिकारमध्ये स्थलपञ्चकेन भेदभावना

स्वाधीन कर्ता हूं, मैं ही एक निर्मल चैतन्य भावकर शुद्ध स्वभावका अतिशयसे साधनेवाला करण हूं, मैं ही एक निर्मल चैतन्य परिणमन स्वभावसे शुद्ध स्वरूपको प्राप्त होता हूं इसलिये कर्म हूं, और मैं ही एक निर्मल चैतन्यस्वभावकर उत्पन्न आकुलतारहित आत्मीकसुखरूप कर्मफल हूं, इसवास्ते ज्ञानदशामें भी मैं ही अकेला हुआ इन चारों भेदोंसे अभेदरूप परिणमन करता हूं दूसरा कोई भी नहीं । इसप्रकार इस जीवके बंधपद्धति और मोक्षपद्धतिके होनेपर भी एक आत्मस्वरूपकी भावना ( चिंतवन ) से परद्रव्यरूप परिणति किसी समय भी नहीं हो सकती । जैसे एक भावरूप परिणत हुए परमाणुका अन्य परमाणुके साथ संयोग नहीं होता उसीतरह आत्माका भी परद्रव्यके साथ संबंध नहीं होता है, इसलिये अशुद्धपर्यायोंसे भी संबंध नहीं होता । इसतरह ज्ञानी निर्मल होता है । इसीकारण अन्यद्रव्योंसे भिन्नस्वरूप कर्ता करण कर्म फल आदि सब भेदोंसे रहित अभेदरूप शुद्धनयकर मोहका विनाशक ऐसा प्रकाशरूप ज्ञानतत्त्व इस जीवके शोभा पाता है । सारांश—जय इस जीवके परवस्तुमें परिणति मिटजाती है और कर्ता कर्मभेदरूप ध्रम ( अज्ञान ) का नाश होता है सभी शुद्ध स्वरूपको पाकर ज्ञानमात्र निर्मल आत्मीकप्रकाशमें साष्टजिक महिमासहित हमेशा मुक्त हुआ ही तिष्ठता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार द्रव्यका सामान्यवर्णन पूर्ण हुआ । आगे द्रव्यविशेषका कहना

द्रव्यं जीवोऽजीवो जीवः पुनश्चेतनोपयोगमयः ।

पुद्गलद्रव्यप्रमुखोचेतनो भवति चाजीवः ॥ ३५ ॥

इह हि द्रव्यमेकत्वनिबन्धनभूतं द्रव्यत्वसामान्यमनुज्झदेव तदधिरूढविशेषलक्षणस-  
द्भावादन्योन्यव्यवच्छेदेन जीवाजीवत्वविशेषमुपपद्यते । तत्र जीवस्यात्मद्रव्यमेवैका व्यक्तिः,  
अजीवस्य पुनः पुद्गलद्रव्यं धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यं कालद्रव्यमाकाशद्रव्यं चेति पञ्च व्यक्तयः ।  
विशेषलक्षणं जीवस्य चेतनोपयोगमयत्वं, अजीवस्य पुनरचेतनत्वं । तत्र यत्र स्वधर्मव्या-  
पकत्वात्स्वरूपत्वेन द्योतमानयानपायिन्या भगवत्या संवित्तिरूपया चेतनया तत्परि-

गता । इत्युक्तप्रकारेण “तम्हा तस्स णमाइं” इत्यादि पञ्चत्रिंशत्सूत्रैः सामान्यज्ञेयाधिकार-  
व्याख्यानं समाप्तम् । इत ऊर्ध्वमेकोनविंशतिगाथाभिर्जीवाजीवद्रव्यादिविवरणरूपेण विशेषज्ञेय-  
व्याख्यानं करोति । तत्राष्टस्थानानि भवन्ति । तेष्वामौ जीवाजीवत्वकथनेन प्रथमगाथा, लोकालोका-  
त्वकथनेन द्वितीया, सक्रियनिःक्रियत्वव्याख्यानेन तृतीया चेति । “द्वयं जीवमजीवं” इत्यादि-  
गाथात्रयेण प्रथमस्थलं, तदनन्तरं ज्ञानादिविशेषगुणानां स्वरूपकथनेन “लिंगेहिं जेहिं” इत्यादि-  
गाथाद्वयेन प्रथमस्थलम् । अथानन्तरं स्वकीयस्वकीयगुणोपलक्षितद्रव्याणां निर्णयार्थं “वण्णरसं”  
इत्यादिगाथात्रयेण तृतीयस्थलम् । अथ पञ्चास्तिकायकथनमुद्भवत्वेन “जीवा पोग्गलकाया”  
इत्यादिगाथाद्वयेन चतुर्थस्थलम् । अतः परं द्रव्याणां लोकाकाशमाधार इति कथनेन प्रथमा, यदे-  
वाकाशद्रव्यस्य प्रदेशलक्षणं तदेव शेषाणामिति कथनरूपेण द्वितीया चेति, “लोयालोएसु”  
इत्यादिसूत्रद्वयेन पञ्चमस्थलम् । तदनन्तरं कालद्रव्यस्याप्रदेशत्त्वापनरूपेण प्रथमा, समयरूपः  
पर्यायकालः कालाणुरूपो द्रव्यकाल इति कथनरूपेण द्वितीया चेति “समओ दु अप्पदेशो”  
इत्यादिगाथाद्वयेन षष्ठस्थलम् । अथ प्रदेशलक्षणकथनेन प्रथमा, तदनन्तरं तिर्यक्प्रचयोर्ध्वप्र-  
चयस्वरूपकथनेन द्वितीया चेति, “आयासमणुणिविद्धं” इत्यादिसूत्रद्वयेन सप्तमस्थलम् । तदन-  
न्तरं कालाणुरूपद्रव्यकालस्थापनरूपेण “उप्पादो पवमंसो” इत्यादिगाथात्रयेणाष्टमस्थलमिति विशे-  
षज्ञेयाधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ जीवाजीवत्वक्षणमात्रेदयति;—द्वयं जीव-  
मजीवं द्रव्यं जीवाजीवत्वक्षणं भवति जीवो पुण च्चेदणो जीवः पुनश्चेतनः स्वतःसिद्धया  
बहिरङ्गकारणनिरपेक्षया बहिरन्तश्च प्रकाशमानया नित्यरूपया निश्चयेन परमशुद्धचेतनया व्यव-  
हारेण पुनरशुद्धचेतनया च युक्तत्वाच्चेतनो भवति । पुनरपि किञ्चिद्विशिष्टः । उवजोगमओ

करते हुए पहले द्रव्यके “जीव और अजीव” ऐसे दो भेद दिखलाते हैं;—[ द्रव्यं ]  
सत्तारूप वस्तु [ जीवः अजीवः ] जीव अजीव—इसतरह दो भेदरूप है [ पुनः ]  
और इन दोनोंमेंसे [ जीवः ] जीवद्रव्य [ चेतनोपयोगमयः ] चेतना और ज्ञान-  
दर्शनोपयोगमयी है [ पुद्गलद्रव्यप्रमुखः ] तथा पुद्गल द्रव्यको आदिलेकर पांच द्रव्य  
[ अचेतनः ] चेतना रहित अर्थात् जड़स्वरूप [ अजीवः ] अजीव द्रव्य होता है ।  
भावार्थ—द्रव्यके दो भेद हैं । एक जीव दूसरा अजीव, इन दोनोंमें जीवद्रव्य एक



णामलक्षणेन द्रव्यवृत्तिरूपेणोपयोगेन च निर्वृत्तत्वमवतीर्णं प्रतिभाति - स जीवः । यत्र पुनरुपयोगसहचरितायाः यथोदितलक्षणायाश्चेतनाया अभावाद्बहिरन्तश्चाचेतनत्वमवतीर्णं प्रतिभाति सोऽजीवः ॥ ३५ ॥

अथ लोकालोकत्वविशेषं निश्चिनोति;—

पुद्गलजीवणिवद्धो धर्माधर्मास्तिकायकालद्वौ ।

वद्वदि आयासे जो लोगो सो सब्बकाले तु ॥ ३६ ॥

पुद्गलजीवणिवद्धो धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः ।

वर्तते आकाशे यो लोकः स सर्वकाले तु ॥ ३६ ॥

अस्ति हि द्रव्यस्य लोकालोकत्वेन विशेषविशिष्टं स्वलक्षणसद्भावात् । स्वलक्षणं हि लोकस्य पद्द्रव्यसमवायात्मकत्वं, अलोकस्य पुनः केवलाकाशात्मकत्वं । तत्र सर्वद्रव्य-

उपयोगमयः अखण्डैकप्रतिभासमयेन सर्वविशुद्धेन केवलज्ञानदर्शनलक्षणेनार्थग्रहणव्यापाररूपेण निश्चयनयेनेत्यभूतशुद्धोपयोगेन, व्यवहारेण पुनर्मतिज्ञानाद्यशुद्धोपयोगेन च निर्वृत्तत्वान्निष्पन्नत्वा-  
दुपयोगमयः पुद्गलद्रव्यमुहं अचेदणं हवदि अज्जीवं पुद्गलद्रव्यप्रमुखमचेतनं भवत्य-  
जीवद्रव्यं पुद्गलधर्माधर्माकाशकालसंज्ञं द्रव्यपञ्चकं पूर्वोक्तलक्षणचेतनाया उपयोगस्य चाभावादजी-  
वमचेतनं भवतीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ अथ लोकालोकरूपेणाकाशपदार्थस्य द्वैविध्यमाह्वयति;—**पु-  
गलजीवणिवद्धो** अणुस्कन्धभेदमिन्नाः पुद्गलास्तावत्तथैव मूर्तातीन्द्रियज्ञानमयत्वनिर्विकारपर-  
मानन्दैकमुखमयत्वादिलक्षणा जीवाश्चेत्यभूतजीवपुद्गलैर्निबद्धः संबद्धो भूतः पुद्गलजीवनिबद्धः  
**धर्माधर्मास्तिकायकालद्वौ** धर्माधर्मास्तिकायौ च कालश्च धर्माधर्मास्तिकायकालास्तौराढ्यो  
भूतो धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः जो यः एतेषां पञ्चानामित्यभूतसमुदायो राशिः समूहः  
वद्वदि वर्तते । कस्मिन् । आगासे अनन्तानन्ताकाशद्रव्यस्य मध्यवर्तिनि लोकाकाशे  
सो लोगो स पूर्वोक्तपञ्चानां समुदायस्तदाधारभूतं लोकाकाशं चेति पद्द्रव्यसमूहो लोको

प्रकारका ही है । अजीवके पुद्गल १ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ काल ५ इसतरह पांच भेद हैं । जीवका लक्षण चेतना और उपयोग है । जो स्वरूपसे सदाकाल प्रकाश-  
मान् है अविनाशी है, पूज्य है जीवका सर्वधन है जाननामात्र है उसे चेतना कहते  
हैं । उसी चेतनाका परिणाम पदार्थके जानने देखनेरूप व्यवहारमें प्रयुक्त होता है वह  
ज्ञानदर्शनरूप उपयोग है ॥ ३५ ॥ आगे लोक और अलोक इसतरह दो भेद दिख-  
लाते हैं;—[ यः ] जो क्षेत्र [ आकाशे ] अनंत आकाशमें [ पुद्गलजीवणिवद्धः ]  
पुद्गल और जीवकर संयुक्त है और [ धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः ] धर्मास्तिकाय,  
अधर्मास्तिकाय और काल इनसे भरा हुआ है [ स तु ] वही क्षेत्र [ सर्वकाले ]  
अतीत अनागत वर्तमान तीनों कालोंमें [ लोकः ] 'लोक' ऐसे नाममे कहा जाता है ॥  
भावार्थ—आकाशद्रव्यके लोक और अलोक ऐसे दो भेद हैं । अनंत सर्वव्यापी उम आ-

व्यापिनि परममहत्याकाशे यत्र यावति जीवपुद्गलौ गतिस्थितिधर्माणौ गतिस्थिती आस्क-  
न्दतस्तद्रतिस्थितिनिबन्धनभूतौ च धर्माऽधर्मावभिव्याप्यावस्थितौ, सर्वद्रव्यवर्तनानिमित्तभू-  
तश्च कालो नित्यदुर्ललितस्तत्तावदाकाशं शेषाप्यशेषाणि द्रव्याणि चेत्यमीपां समवाय  
आत्मत्वेन स्वलक्षणं यस्य स लोकः । तत्र यावति पुनराकाशे जीवपुद्गलयोर्गतिस्थिती न  
संभवतो धर्माधर्मौ नावस्थितौ न कालो दुर्ललितस्तावत्केवलमाकाशमात्मत्वेन स्वलक्षणं  
यस्य सोऽलोकः ॥ ३६ ॥

अथ क्रियाभावतद्भावविशेषं निश्चिनोति;—

उत्पादद्विदिभंगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स ।

परिणामा जायन्ते संघादादो व भेदादो ॥ ३७ ॥

उत्पादस्थितिभङ्गाः पुद्गलजीवात्मकस्य लोकस्य ।

परिणामा जायन्ते संघाताद्वा भेदात् ॥ ३७ ॥

क्रियाभाववत्त्वेन केवलभाववत्त्वेन च द्रव्यस्यास्ति विशेषः । तत्र भाववन्तौ क्रिया-  
वन्तौ च पुद्गलजीवौ परिणामाद्भेदसंघाताभ्यां चोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानत्वात् । शेष-

भवति । क सञ्चकाले तु सर्वकाले तु तद्वहिर्भूतमनन्तानन्ताकाशमलोक इत्यभिप्रायः ॥३६॥  
अथ द्रव्याणां सक्रियनिःक्रियत्वेन भेदं दर्शयतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु जीवपुद्गलयोरर्थ-  
व्यञ्जनपर्यायी द्वौ, शेषद्रव्याणां तु मुख्यवृत्त्यार्थपर्याय इति व्यवस्थापयति;—जायदि जायते ।  
के कर्तारः । उत्पादद्विदिभंगा उत्पादस्थितिभङ्गाः । कस्य संबन्धिनः । लोगस्स लोकस्य ।  
किं विशिष्टस्य । पोग्गलजीवप्पगस्स । पुद्गलजीवात्मकस्य पुद्गलजीवावित्युपलक्षणं पद्द्रव्यात्म-  
कस्य । कस्मात्सकाशात् जायन्ते । परिणामादो परिणामात् एकसमयवर्तिनोऽर्थपर्यायात्  
संघादादो व भेदादो न केवलमर्थपर्यायात्सकाशाज्जायन्ते जीवपुद्गलानामुत्पादादयः संघाता-  
द्वा भेदाद्वा व्यञ्जनपर्यायादित्यर्थः । तथाहि—धर्माधर्माकाशकालानां मुख्यवृत्त्यैकसमयवर्तिनोऽर्थ-

काशमें जितना आकाश पुद्गल—जीव—धर्म—अधर्म—कालद्रव्य, इनसे घिरा हुआ है उसे  
लोकाकाश कहते हैं । और केवल आकाश ही है अन्य ५ द्रव्य नहीं रहते वह  
अलोकाकाश कहा जाता है ॥ ३६ ॥ आगे छह द्रव्योंमेंसे क्रियावाले कितने द्रव्य हैं  
और भाववाले कितने हैं ऐसा भेद दिखलाते हैं;—[पुद्गलजीवात्मकस्य लोकस्य]  
पुद्गल और जीव इन दोनोंकी गतिस्थिति परिणति रूप लोकके [उत्पादस्थितिभङ्गाः]  
उत्पत्ति-ध्रुवपना—विनाश [परिणामाः] ऐसे तीन परिणाम [संघातात्] मिलनेसे  
[वा] अथवा [भेदात्] विच्छेदनेसे [जायन्ते] होते हैं ॥ भावार्थ—क्रिया  
और भाव इन दोनोंसे द्रव्यमें भेद होजाता है । उन द्रव्योंमेंसे पुद्गल और जीव क्रिया-  
वन्त हैं और भाववन्त भी हैं, इससे अन्य द्रव्य केवल भाववाले ही हैं । क्रियाका चिह्न  
एलना चलना है और भावका लक्षण परिणमनमात्र है । परिणमनरूप भावसे सब द्रव्य

द्रव्याणि तु भाववन्त्येव परिणामादेवोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानत्वादिति निश्चयः । तत्र परिणाममात्रलक्षणो भावः, परिस्पन्दनलक्षणा क्रिया । तत्र सर्वाण्यपि द्रव्याणि परिणामस्वभावत्वात् परिणामेनोपात्तान्वयव्यतिरेकाण्यवतिष्ठमानोत्पद्यमानभज्यमानानि भाववन्ति भवन्ति । पुद्गलास्तु परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन भिन्नाः संघातेन संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति । तथा जीवा अपि परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन नूतनकर्मनोकर्मपुद्गलेभ्यो भिन्नास्तैः सह संघातेन संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति ॥ ३७ ॥

अथ द्रव्यविशेषो गुणविशेषादिति प्रज्ञापयति;—

लिङ्गेहिं जेहिं दब्बं जीवमजीवं च ह्वदि विण्णादं ।

ते तब्भावविसिद्धा मुत्तामुत्ता गुणा णेया ॥ ३८ ॥

लिङ्गैर्यैर्द्रव्यं जीवोऽजीवश्च भवति विज्ञातम् ।

ते तद्भावविशिष्टा मूर्तामूर्ता गुणा ज्ञेयाः ॥ ३८ ॥

द्रव्यमाश्रित्य परानाश्रयत्वेन वर्तमानैर्लिङ्गयते गम्यते द्रव्यमेतैरिति लिङ्गानि गुणाः । ते

पर्याया एव जीवपुद्गलानामर्थपर्यायव्यञ्जनपर्यायाश्च । कथमिति चेत् ? प्रतिसमयपरिणतिरूपार्थपर्याया भण्यन्ते । यदा जीवोऽनेन शरीरेण सह भेदवियोगं त्यागं कृत्वा भवान्तरशरीरेण सह संघातं मेलापकं करोति तदा विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति, तस्मादेव भवान्तरसंक्रमणात्सक्रियत्वं भण्यते पुद्गलानां । तथैव विवक्षितस्कन्धविघटनात्सक्रियत्वेन स्कन्धान्तरसंयोगे सति विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति । मुक्तजीवानां तु निश्चयरत्नत्रयलक्षणेन परमकारणसमयसारसंज्ञेन निश्चयमोक्षमार्गबलेनायोगिचरमसमये नखकेशान्विहाय परमौदारिकशरीरस्य विलीयमानरूपेण विनाशे सति केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिलक्षणेन परमकार्यसमयसाररूपेण स्वभावव्यञ्जनपर्यायेण कृत्वा योऽसावुत्पादः स भेदादेव भवति न संघातात् । कस्मादिति चेत् ? शरीरान्तरेण सह संबन्धाभावादिति भावार्थः ॥ ३७ ॥ एवं जीवाजीवत्वलोकालोकात्वसक्रियनिःक्रियत्वकथनक्रमेण प्रथमस्थले

उत्पाद-व्यय-ध्रुवतासहित हैं, इसकारण हर एक समयमें पर्यायसे पर्यायांतर अर्थात् एक पर्यायसे दूसरे पर्यायरूप द्रव्य होते हैं । और क्रिया केवल जीव-पुद्गल हीमें होती है । पुद्गलका हलन चलन स्वभाव है इसकारण स्कंधसे मिलते भी हैं और विछुड़ते भी हैं । इसलिये मिलने और विछुड़नेकी अपेक्षा उत्पाद-व्यय और ध्रुवपने सहित हैं, क्रियावाले हैं । इसीतरह जीव भी कर्मके संयोगसे हलन चलनरूप होता हुआ नवीन कर्म नोकर्मरूप पुद्गलसे मिलता है और पुराने कर्म नोकर्म पुद्गलोंसे विछुड़ जाता है, इसकारण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हुआ क्रियावाला है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य तो क्रियावान् भी हैं और भाववाले भी हैं । तथा धर्मादिक चार द्रव्य केवल भाववन्त ( परिणामवाले ) ही हैं ॥ ३७ ॥ आगे गुणोंके भेदसे ही द्रव्योंमें

च यद्रव्यं भवति न तद्गुणा भवन्ति, ये गुणा भवन्ति ते न द्रव्यं भवतीति द्रव्यादतद्भावेन विशिष्टाः सन्तो लिङ्गलिङ्गिप्रसिद्धौ तल्लिङ्गत्वमुपढौकन्ते । अथ ते द्रव्यस्य जीवोऽयमजीवो-यमित्यादिविशेषमुत्पादयन्ति, स्वयमपि तद्भावविशिष्टत्वेनोपात्तविशेषत्वात् । यतो हि यस्य यस्य द्रव्यस्य यो यः स्वभावस्तस्य तस्य तेन तेन विशिष्टत्वात्तेषामस्ति विशेषः । अत एव च मूर्तानाममूर्तानां च द्रव्याणां मूर्तत्वेनामूर्तत्वेन च तद्भावेन विशिष्टत्वादिमे मूर्ता गुणा इमे अमूर्ता इति तेषां विशेषो निश्चयः ॥ ३८ ॥

अथ मूर्तामूर्तगुणानां लक्षणसंबन्धमाख्यातिः—

**मुक्ता इन्दियगेज्जा पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविधा ।**

**दव्वाणममुक्ताणं गुणा अमुक्ता मुणेदव्वा ॥ ३९ ॥**

गाथात्रयं गतम् । अथ ज्ञानादिविशेषगुणभेदेन द्रव्यभेदमावेदयति;—**लिंगेहिं जेहिं लिङ्गैयैः** सहजशुद्धपरमचैतन्यविलासरूपैस्तथैवाचेतनैर्जडरूपैर्वा लिङ्गैश्चिह्नैर्विशेषगुणैर्यैः करणभूतैर्जविन कर्तृभूतेन हृदिद्विषणादं विशेषेण ज्ञातं भवति । किं कर्मतापन्नं । द्रव्यं द्रव्यं । कथम्भूतं । जीवमजीवं च जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च ते मुक्तामुक्तागुणा णेया ते तानि पूर्वोक्तचेतनाचेतनलिङ्गानि मूर्तामूर्तगुणा ज्ञेया ज्ञातव्याः । ते च कथम्भूताः । अतद्भावविसिद्धा अतद्भावविशिष्टाः । तथा—शुद्धजीवद्रव्ये ये केवलज्ञानादिगुणास्तेषां शुद्धजीवप्रदेशैः सह यदेकत्वमभिन्नत्वं तन्मयत्वं स तद्भावो भण्यते, तेषामेव गुणानां तैः प्रदेशैः सह यदा संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदः क्रियते तदा पुनरतद्भावो भण्यते, तेनातद्भावेन संज्ञादिभेदरूपेण स्वकीयस्वकीयद्रव्येण सह विशिष्टा भिन्ना इति, द्वितीयव्याख्यानेन पुनः स्वकीयद्रव्येण सह सद्भावेन तन्मयत्वेनान्यद्रव्यादिविशिष्टा भिन्ना इत्यभिप्रायः ॥ ३८ ॥ एवं गुणभेदेन द्रव्यभेदो ज्ञातव्यः । अथ मूर्तामूर्तगुणानां

भेद है ऐसा दिखलाते हैं;—**[ चैर्लिङ्गैः ]** जिन चिन्होंसे **[ जीवः ]** जीव **[ च ]** और **[ अजीवः ]** अजीव **[ द्रव्यं ]** द्रव्य **[ ज्ञातं भवति ]** जाना जाता है **[ ते ]** वे चिह्न ( लक्षण ) **[ तद्भावविशिष्टाः ]** द्रव्योंके स्वरूपकी विशेषता लिये हुए **[ मूर्तामूर्ता गुणाः ]** मूर्ताक और अमूर्ताक गुण **[ ज्ञेयाः ]** जानने चाहिये ॥ **भावार्थ—**जो अपने द्रव्यके आधार रहें उन्हें गुण कहते हैं । वे गुण द्रव्यके चिह्न हैं । द्रव्यका स्वरूप गुणोंसे जाना जाता है इसकारण द्रव्य लक्ष्य है गुण लक्षण है । लक्ष्यलक्षण दोनोंमें कथंचित् भेदभी है और किसीप्रकारसे अभेदभी है । यही दिखलाते हैं—जो द्रव्य है वह गुण नहीं है जो गुण है वह द्रव्य नहीं है ऐसा जो गुणगुणी भेद कहाजावे तो भेद है, और यदि वस्तुका स्वरूप विचारा जाय तो लक्ष्यलक्षणमें भेद ही नहीं है, क्योंकि प्रदेशभेद नहीं है, एक ही है । जो जिस द्रव्यका स्वभाव है वह अपनी अपनी विशेषताको लियेहुये है, इसकारण मूर्ताक द्रव्यके मूर्ताक गुण होते हैं और अमूर्ताकके अमूर्ताक गुण होते हैं । एक पुद्गल द्रव्य मूर्ताक है और जीव—धर्म—अधर्म—आकाश—काल, ये पांच द्रव्य अमूर्ताक हैं ऐसा निश्चयसे जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ आगे मूर्त—

द्रव्याणि तु भाववन्त्येव परिणामादेवोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानत्वादिति निश्चयः । तत्र परिणाममात्रलक्षणो भावः, परिस्पन्दनलक्षणा क्रिया । तत्र सर्वाण्यपि द्रव्याणि परिणामस्वभावत्वात् परिणामेनोपात्तान्वयव्यतिरेकाण्यवतिष्ठमानोत्पद्यमानभज्यमानानि भाववन्ति भवन्ति । पुद्गलास्तु परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन भिन्नाः संघातेन संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति । तथा जीवा अपि परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन नूतनकर्मनोकर्मपुद्गलेभ्यो भिन्नास्तैः सह संघातेन संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति ॥ ३७ ॥

अथ द्रव्यविशेषो गुणविशेषादिति प्रज्ञापयति;—

लिङ्गेहिं जेहिं दब्बं जीवमजीवं च ह्वदि विण्णादं ।

ते तब्भावविसिद्धा मुत्तामुत्ता गुणा णेया ॥ ३८ ॥

लिङ्गैर्यैर्द्रव्यं जीवोऽजीवश्च भवति विज्ञातम् ।

ते तद्भावविशिष्टा मूर्तामूर्ता गुणा ज्ञेयाः ॥ ३८ ॥

द्रव्यमाश्रित्य परानाश्रयत्वेन वर्तमानैर्लिङ्गयते गम्यते द्रव्यभेदैरिति लिङ्गानि गुणाः । ते

पर्याया एव जीवपुद्गलानामर्थपर्यायव्यञ्जनपर्यायाश्च । कथमिति चेत् ? प्रतिसमयपरिणतिरूपा अर्थपर्याया भण्यन्ते । यदा जीवोऽनेन शरीरेण सह भेदवियोगं त्यागं कृत्वा भवान्तरशरीरेण सह संघातं भेदापकं करोति तदा विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति, तस्मादेव भवान्तरसंक्रमणात्सक्रियत्वं भण्यते पुद्गलानां । तथैव विवक्षितस्कन्धविघटनात्सक्रियत्वेन स्कन्धान्तरसंयोगे सति विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति । मुक्तजीवानां तु निश्चयरत्नत्रयलक्षणेन परमकारणसमयसारसंज्ञेन निश्चयमोक्षमार्गबलेनायोगिचरमसमये नखकेशान्विहाय परमौदारिकशरीरस्य विलीयमानरूपेण विनाशे सति केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिलक्षणेन परमकार्यसमयसाररूपेण स्वभावव्यञ्जनपर्यायेण कृत्वा योऽसावुत्पादः स भेदादेव भवति न संघातात् । कस्मादिति चेत् ? शरीरान्तरेण सह संबन्धाभावादिति भावार्थः ॥ ३७ ॥ एवं जीवाजीवत्वलोकोक्तव्यसक्रियनिःक्रियत्वकथनक्रमेण प्रथमस्थले

उत्पाद-व्यय-ध्रुवतासहित हैं, इसकारण हर एक समयमें पर्यायसे पर्यायांतर अर्थात् एक पर्यायसे दूसरे पर्यायरूप द्रव्य होते हैं । और क्रिया केवल जीव-पुद्गल हीमें होती है । पुद्गलका हलन चलन स्वभाव है इसकारण स्कंधसे मिलते भी हैं और विद्युद्गते भी हैं । इसलिये मिलने और विद्युद्गनेकी अपेक्षा उत्पाद-व्यय और ध्रुवपने सहित हैं, क्रियावाले हैं । इसीतरह जीव भी कर्मके संयोगसे हलन चलनरूप होता हुआ नवीन कर्म नोकरुमरूप पुद्गलसे मिलता है और पुराने कर्म नोकर्म पुद्गलोंसे विद्युद्ग जाता है, इसकारण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हुआ क्रियावाला है । इससे यह घात सिद्ध हुई कि जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य तो क्रियावान् भी हैं और भाववाले भी हैं । तथा धर्मादिक चार द्रव्य केवल भाववन्त ( परिणामवाले ) ही हैं ॥ ३७ ॥ आगे गुणोंके भेदसे ही द्रव्योंमें

क्तिवशात् गृह्यमाणा अगृह्यमाणाश्च आ एकद्रव्यात्मकसूक्ष्मपर्यायात्परमाणोः, आ अने-  
कद्रव्यात्मकस्थूलपर्यायात्पृथिवीस्कन्धाच्च सकलस्यापि पुद्गलस्याविशेषेण विशेषगुणत्वेन  
वेद्यन्ते । ते च मूर्तत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवन्तः पुद्गलमधिगमयन्ति । शब्दस्यापीन्द्रिय-  
ग्राह्यत्वाद्गुणत्वं न खल्वाशङ्कनीयं, तस्य वैचित्र्यप्रपञ्चितवैश्वरूपस्याप्यनेकद्रव्यात्मकपुद्गल-  
पर्यायत्वेनाभ्युपगम्यमानत्वात् । गुणत्वे वा न तावदमूर्तद्रव्यगुणः शब्दः गुणगुणिनो-  
वेभक्तप्रदेशत्वेनैकवेदनवेद्यत्वादमूर्तद्रव्यस्यापि श्रवणेन्द्रियविषयत्वापत्तेः । पर्यायलक्षणे-

ताः । सुहृमादो पुढवीपरियंतस्स य “पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणु ।  
।हमेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं”॥इति गाथाकथितक्रमेण परमाणुलक्षणसूक्ष्मस्वरूपादेः  
।स्कन्धलक्षणस्थूलस्वरूपपर्यन्तस्य च । तथाहि—यथानन्तज्ञानादिचतुष्टयं विशेषलक्षणभूतं  
सम्भवं सर्वजीवेषु साधारणं तथा वर्णादिचतुष्टयं विशेषलक्षणभूतं यथासम्भवं सर्वपुद्गलेषु  
रणम् । यथैव चानन्तज्ञानादिचतुष्टयं मुक्तजीवेशीन्द्रियविषयज्ञानमनुमानगम्यमागमगम्यं च,  
शुद्धपरमाणुद्रव्ये वर्णादिचतुष्टयमप्यतीन्द्रियज्ञानविषयमनुमानगम्यमागमगम्यं च । यथा  
तचतुष्टयस्य संसारिजीवे रागादिस्नेहनिमित्तेन कर्मबन्धवशादशुद्धत्वं भवति तथा वर्णादि-

पुद्गलद्रव्यमें [ वर्णरसगन्धस्पर्शाः ] रूप ५ रस ५ गंध २ स्पर्श ८ ये चार  
के गुण [ विद्यन्ते ] मौजूद हैं [ च ] और जो [ शब्दः ] शब्द है [ सः ]  
पौद्गलश्चित्रः ] भाषा ध्वनि आदिके भेदसे अनेक प्रकार वाला पुद्गलका पर्याय

वार्थ—पुद्गलद्रव्य सूक्ष्मसूक्ष्म १ सूक्ष्म २ सूक्ष्मस्थूल ३ स्थूलसूक्ष्म ४ स्थूल  
स्थूल ६ भेदोंसे छह प्रकार कहा गया है । उनमेंसे परमाणु सूक्ष्मसे सूक्ष्म है ?  
( कर्म होनेयोग्य ) वर्णणा सूक्ष्म हैं २ स्पर्श रस गंध शब्द ये सूक्ष्मस्थूल हैं  
नेत्र इंद्रियसे नहीं देखे जाते इसलिये सूक्ष्म हैं तथा चार इंद्रियोंसे जाने जाते  
ये स्थूल भी हैं ३ छाया ( परछाई ) स्थूलसूक्ष्म है क्योंकि नेत्रसे देखनेमें  
इसलिये स्थूल है तथा हाथसे ग्रहण नहीं कीजाती इसलिये सूक्ष्मभी है ४  
आदिक स्थूल हैं क्योंकि छेदन भेदन करनेसे फिर उसी तमय मिलजाते हैं ६  
वैत काठ वगैरः स्थूलस्थूल हैं । इसप्रकार भेदोंसे पुद्गल द्रव्य अनेक प्रकार है ।  
३ चारोंगुण इंद्रियोंसे जाने जाते हैं । यहां पर कोई प्रश्न करै कि परमाणु  
ग्रादिकमें भी ये चार गुण हैं वे अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे वहां रहनेपर इंद्रियोंसे  
नहीं हो सकते तो इनको इंद्रिय ग्राह्य किस तरह कहते हो ? इसका समा-  
ह है कि परमाणु आदि पुद्गल यद्यपि इंद्रियप्रत्यक्ष नहीं हैं तौभी उनमें इंद्रिय  
शक्ति अवश्य मौजूद है, जब स्कंधके संबंध होनेसे स्थूलपना धारण करते हैं  
वे प्रत्यक्ष नियमकर होते हैं । इसकारण व्यक्तिशक्तिकी अपेक्षा ग्रहण किये जावें  
किये जावें परंतु इंद्रिय ग्रहणयोग्य अवश्य हैं । सभी छह प्रकारके

मूर्ता इन्द्रियग्राह्याः पुद्गलद्रव्यात्मका अनेकविधाः ।

द्रव्याणाममूर्तानां गुणा अमूर्ता ज्ञातव्याः ॥ ३९ ॥

मूर्तानां गुणानामिन्द्रियग्राह्यत्वं लक्षणं । अमूर्तानां तदेव विपर्यस्तं । ते च मूर्ताः पुद्गलद्रव्यस्य, तस्यैवैकस्य मूर्तत्वात् । अमूर्ताः शेषद्रव्याणां, पुद्गलादन्येषां सर्वेषामप्यमूर्तत्वात् ॥ ३९ ॥

अथ मूर्तस्य पुद्गलद्रव्यस्य गुणान् गृणाति;—

वर्णरसगन्धफासा विज्जंते पुग्गलस्स सुहुमादो ।

पुढवीपरियंतस्स य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो ॥ ४० ॥

वर्णरसगन्धस्पर्शा विद्यन्ते पुद्गलस्य सूक्ष्मत्वात् ।

पृथिवीपर्यन्तस्य च शब्दः स पुद्गलश्चित्रः ॥ ४० ॥

इन्द्रियग्राह्याः किल स्पर्शरसगन्धवर्णास्तद्विषयत्वात्, ते चेन्द्रियग्राह्यत्वव्यक्तिस-

लक्षणं सम्बन्धं च निरूपयति;—मुक्ता इन्द्रियगोष्ठ्या मूर्ता गुणा इन्द्रियग्राह्या भवन्ति, अमूर्ताः पुनरिन्द्रियविषया न भवन्ति इति मूर्तामूर्तगुणानामिन्द्रियानिन्द्रियविषयत्वलक्षणमुक्तं । इदानीं मूर्तगुणाः कस्य सम्बन्धिनो भवन्तीति सम्बन्धं कथयति पोग्गलद्वेष्यगमा अणेषु विहा मूर्तगुणाः पुद्गलद्रव्यात्मका अनेकविधा भवन्ति पुद्गलद्रव्यसम्बन्धिनो भवन्तीत्यर्थः । अमूर्तगुणानां संबन्धं प्रतिपादयति दव्वाणममुत्ताणं विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रमृतीनाममूर्तद्रव्याणां संबन्धिनो भवन्ति । ते के गुणाः अमुक्ता अमूर्ताः गुणाः केवलज्ञानादय इत्यर्थः । इति मूर्तामूर्तगुणानां लक्षणसम्बन्धौ ज्ञातव्यौ ॥ ३९ ॥ एवं ज्ञानादिविशेषगुणभेदेन द्रव्यभेदो भवतीति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथ मूर्तपुद्गलद्रव्यस्य गुणानावेदयति;—वर्णरसगन्धफासा विज्जंते पोग्गलस्स वर्णरसस्पर्शगन्धा विद्यन्ते । कस्य । पुद्गलस्य । कथ-

अमूर्तका लक्षण-संबंध कहते हैं;—[ मूर्ताः ] जो मूर्त गुण हैं वे [ इन्द्रियग्राह्याः ] इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जाते हैं और वे [ पुद्गलद्रव्यात्मकाः ] पुद्गलद्रव्यके ही हैं तथा [ अनेकविधाः ] वर्णादिक भेदोंसे अनेक तरहके हैं । [ अमूर्तानां द्रव्याणां ] और जो अमूर्तक द्रव्योंके [ गुणाः ] गुण हैं वे [ अमूर्ताः ] अमूर्तक [ ज्ञातव्याः ] जानने चाहिये ॥ भावार्थ—मूर्तक गुण इन्द्रियोंसे जाने जाते हैं, अमूर्तकगुण इन्द्रियोंसे नहीं जाने जाते । इन्द्रियोंसे जानना यह तो मूर्तकका लक्षण हुआ, और पुद्गलके हैं यह पुद्गलके साथ उन मूर्तकगुणोंका संबंध घतलाया । इसीप्रकार इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं होना ये अमूर्तका लक्षण हुआ तथा अमूर्तक द्रव्यके हैं यह अमूर्तक द्रव्यके साथ उन अमूर्तक गुणोंका संबंध दिखलाया । इसतरह मूर्त और अमूर्त गुणोंका लक्षण और संबंध कहा गया है ॥ ३९ ॥ आगे मूर्त पुद्गलद्रव्यके गुणोंको कहते हैं;—[ सूक्ष्मात् पृथिवीपर्यन्तस्य ] परमाणुमे लेकर महासंघ पृथिवी पर्यंत [ पुद्गलद्रव्यस्य ]

क्तिवशात् गृह्यमाणा अगृह्यमाणाश्च आ एकद्रव्यात्मकसूक्ष्मपर्यायात्परमाणोः, आ अनेकद्रव्यात्मकस्थूलपर्यायात्पृथिवीस्कन्धाच्च सकलस्यापि पुद्गलस्याविशेषेण विशेषगुणत्वेन विद्यन्ते । ते च मूर्तत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवन्तः पुद्गलमधिगमयन्ति । शब्दस्यापीन्द्रियग्राह्यत्वाद्गुणत्वं न खल्वाशङ्कनीयं, तस्य वैचित्र्यप्रपञ्चितवैश्वरूपस्याप्यनेकद्रव्यात्मकपुद्गलपर्यायत्वेनाभ्युपगम्यमानत्वात् । गुणत्वे वा न तावदमूर्तद्रव्यगुणः शब्दः गुणगुणिनोरविभक्तप्रदेशत्वेनैकवेदनवेद्यत्वादमूर्तद्रव्यस्यापि श्रवणेन्द्रियविषयत्वापत्तेः । पर्यायलक्षणे-

मृताः । सुहुमादो पुढवीपरियंतस्स य “पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू । छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं”॥इति गाथाकथितक्रमेण परमाणुलक्षणसूक्ष्मस्वरूपादेः पृथ्वीस्कन्धलक्षणस्थूलस्वरूपपर्यन्तस्य च । तथाहि—यथानन्तज्ञानादिचतुष्टयं विशेषलक्षणभूतं यथासम्भवं सर्वजीवेषु साधारणं तथा वर्णादिचतुष्टयं विशेषलक्षणभूतं यथासम्भवं सर्वपुद्गलेषु साधारणम् । यथैव चानन्तज्ञानादिचतुष्टयं मुक्तजीवेऽतीन्द्रियविषयज्ञानमनुमानगम्यमागमगम्यं च, तथा शुद्धपरमाणुद्रव्ये वर्णादिचतुष्टयमभ्यतीन्द्रियज्ञानविषयमनुमानगम्यमागमगम्यं च । यथा वानन्तचतुष्टयस्य संसारिजीवे रागादिस्नेहनिमित्तेन कर्मबन्धवशादशुद्धत्वं भवति तथा वर्णादि-

ऐसे पुद्गलद्रव्यमें [ वर्णरसगन्धस्पर्शाः ] रूप ५ रस ५ गंध २ स्पर्श ८ ये चार प्रकारके गुण [ विद्यन्ते ] मौजूद हैं [ च ] और जो [ शब्दः ] शब्द है [ सः ] वह [ पौद्गलश्चित्रः ] भाषा ध्वनि आदिके भेदसे अनेक प्रकार वाला पुद्गलका पर्याय है ॥ भावार्थ—पुद्गलद्रव्य सूक्ष्मसूक्ष्म १ सूक्ष्म २ सूक्ष्मस्थूल ३ स्थूलसूक्ष्म ४ स्थूल ५ स्थूलस्थूल ६ भेदोंसे छह प्रकार कहा गया है । उनमेंसे परमाणु सूक्ष्मसे सूक्ष्म है १ कार्माण ( कर्म होनेयोग्य ) वर्णणा सूक्ष्म हैं २ स्पर्श रस गंध शब्द ये सूक्ष्मस्थूल हैं क्योंकि नेत्र इंद्रियसे नहीं देखे जाते इसलिये सूक्ष्म हैं तथा चार इंद्रियोंसे जाने जाते हैं इसलिये स्थूल भी हैं ३ छाया ( परछाई ) स्थूलसूक्ष्म है क्योंकि नेत्रसे देखनेमें आती है इसलिये स्थूल है तथा हाथसे ग्रहण नहीं कीजाती इसलिये सूक्ष्मभी है ४ जल तैल आदिक स्थूल हैं क्योंकि छेदन भेदन करनेसे फिर उसी तमय मिलजाते हैं ६ पृथिवी पर्वत काठ वगैरः स्थूलस्थूल हैं । इसप्रकार भेदोंसे पुद्गल द्रव्य अनेक प्रकार है । ये स्पर्शादि चारोंगुण इन्द्रियोंसे जाने जाते हैं । यहां पर कोई प्रश्न करे कि परमाणु कार्माणवर्णणादिकमें भी ये चार गुण हैं वे अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे वहां रहनेपर इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष ही नहीं हो सकते तो इनको इन्द्रिय ग्राह्य किस तरह कहते हो ? इसका समाधान यह है कि परमाणु आदि पुद्गल यद्यपि इन्द्रियप्रत्यक्ष नहीं हैं तौभी उनमें इंद्रिय ग्रहणयोग्य शक्ति अवश्य मौजूद है, जब स्कंधके संबंध होनेसे स्थूलपना धारण करते हैं तब इंद्रियोंसे प्रत्यक्ष नियमकर होते हैं । इसकारण व्यक्तिशक्तिकी अपेक्षा ग्रहण किये जावें अथवा नहीं किये जावें परंतु इन्द्रिय ग्रहणयोग्य अवश्य है । सभी छह प्रकारके



नोत्खातगुणलक्षणत्वान्मूर्तद्रव्यगुणोपि न भवति । पर्यायलक्षणं हि कादाचित्कत्वं गुणलक्षणं तु नित्यत्वं । ततः कादाचित्कत्वोत्खातनित्यत्वस्य न शब्दस्यास्ति गुणत्वं । यत्तु तत्र नित्यत्वं तत्तदारम्भकपुद्गलानां तद्गुणानां च स्पर्शादीनामेव न शब्दपर्यायसेति द्दतरं ग्राह्यं । न च पुद्गलपर्यायत्वे शब्दस्य पृथिवीस्कन्धस्येव स्पर्शनादीन्द्रियविषयत्वं । अपां घ्राणेन्द्रियाविषयत्वात्, ज्योतिषो घ्राणरसनेन्द्रियाविषयत्वात्, मरुतो घ्राणरसन-  
चक्षुरिन्द्रियाविषयत्वाच्च । न चागन्धागन्धरसागन्धरसवर्णाः, एवमज्योतिर्मास्तुः, सर्व-

चतुष्टयस्यापि त्रिगन्धरूपागुणनिमित्तेन द्युकादिबन्धावस्थायामशुद्धत्वम् । यथा वानन्तज्ञानादि-  
चतुष्टयस्य रागादिद्वेहरहितशुद्धात्मध्यानेन शुद्धत्वं भवति तथा वर्णादिचतुष्टयस्यापि त्रिगन्धगुण-  
भावे बन्धनेऽसति परमाणुपुद्गलवस्थायां शुद्धत्वमिति । सद्दो सो पोगगलो यस्तु शब्दः स  
पौद्गलः यथा जीवस्य नरनारकादिविभावपर्यायाः तथायं शब्दः पुद्गलस्य विभावपर्यायो न च  
गुणः । कस्मात् । गुणस्याविनश्वरत्वात् अयं च विनश्वरो । नैयायिकमतानुसारी कश्चिद्द्रव्या-  
काशगुणोऽयं शब्दः । परिहारमाह—आकाशगुणत्वे सत्यमूर्त्तौ भवति । अमूर्त्तश्च श्रवणेन्द्रियविषयो

पुद्गलके स्पर्शादि चार गुण नियमसे पाये जाते हैं और अमूर्त द्रव्यके ये चारों नहीं पाये जाते, इसीलिये ये गुण पुद्गलके चिह्न हैं । शब्द भी कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है परंतु वह पुद्गलका पर्याय है गुण नहीं है, क्योंकि अनेक पुद्गलस्कंधोंके संयोगसे उत्पन्न होता है इसलिये पर्याय है । जो कोई अन्यवादी शब्दको आकाशद्रव्यका गुण मानते हैं उनका कहना अप्रमाण है क्योंकि आकाशद्रव्य अमूर्त्तक है इसलिये इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता और कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है । नियम ऐसा है कि जिसका कारण इन्द्रियग्रहणयोग्य न हो उसका कार्य भी इन्द्रियग्रहणयोग्य नहीं हो सकता । यदि शब्द इन्द्रियसे ग्राह्य है तो अमूर्त आकाश भी कर्ण इन्द्रियसे ग्राह्य होना चाहिये । शब्द गुण है गुणगुणीके प्रदेश कभी जुड़े होते नहीं हैं इसकारण शब्दके ग्रहण होनेसे आकाश भी अवश्य कर्ण इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होना चाहिये । परंतु वह आकाश तो कभी इन्द्रियप्रत्यक्ष होता नहीं है इसलिये शब्द आकाशका गुण कदापि नहीं होसकता । यहां परभी कोई ऐसी तर्क करे कि पुद्गलद्रव्य मूर्त्तक है उसकाही गुण शब्द हो जाना चाहिये पुद्गलकी पर्याय क्यों कहते हो ? इसका समाधान इसतरह है कि पर्यायका लक्षण अनित्य है और गुणका लक्षण नित्य है । यदि शब्द पुद्गलका गुण कहा जावे तो पुद्गल हमेशा शब्दरूप ही प्राप्त होना चाहिये परंतु ऐसा नहीं है । जब स्कंधोंका संयोग होता है तब शब्द होता है इसलिये पर्याय ही है गुण नहीं है ऐसा निश्चयकर जानना । यदि कोई यह कहे कि जैसे भूमि पुद्गलका पर्याय है वह स्पर्शनादि चार इन्द्रियोंसे ग्रहण की जाती है उसीप्रकार शब्द भी चार इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होना चाहिये एक कर्ण इन्द्रियसे ही प्रत्यक्ष क्यों कहते हो ? उसका उत्तर इमतरहसे है कि जब पुद्गलका

पुद्गलानां स्पर्शादिचतुष्कोपेतत्वाभ्युपगमात् । व्यक्तस्पर्शादिचतुष्काणां च चन्द्रकान्तर-  
णियवानामारम्भकैरेव पुद्गलैरव्यक्तगन्धाव्यक्तगन्धरसाव्यक्तगन्धरसवर्णानामप्रद्योतिरुदर-  
मरुतामारम्भदर्शनात् । न च क्वचित्कस्यचित् गुणस्य व्यक्ताव्यक्तत्वं कादाचित्कपरिणाम-  
वैचिन्त्यप्रत्ययं नित्यद्रव्यस्वभावप्रतिघाताय । ततोऽस्तु शब्दः पुद्गलपर्याय एवेति ॥ ४० ॥

न भवति, दृश्यते च श्रवणेन्द्रियविषयत्वं । शेषेन्द्रियविषयः कस्मान्न भवतीति चेत्—अन्ये-  
न्द्रियविषयोऽन्येन्द्रियस्य न भवति वस्तुस्वभावादेव रसादिविषयवत् । पुनरपि कथंभूतः । चित्तो  
चित्रः भाषात्मकाभाषात्मकरूपेण प्रायोगिकत्रैश्रसिकरूपेण च नानाप्रकारः । तच्च “ सद्दे  
खंधप्पभवो ” इत्यादि गाथायां पञ्चास्तिकाये व्याख्यातं तिष्ठत्यत्रालं प्रसङ्गेन ॥ ४० ॥

पर्याय है वह नासिका इन्द्रियसे नहीं प्रत्यक्ष होता, अग्नि नासिका और जीभ इन  
दोनोंसे ग्रहण नहीं होती । पवन नासिका जीभ और नेत्र इन तीनोंसे ग्रहण नहीं होता;  
इसकारण “जिस इंद्रियका जो विषय है उस इंद्रियसे वही ग्रहण किया जाता है ऐसा  
नियम तो है, परंतु ऐसा नहीं कि जो पुद्गलका पर्याय है वह सभी इंद्रियोंसे ग्रहण  
होना चाहिये” । इसकारण शब्द केवल कर्णइन्द्रियसेही ग्रहण किया जाता है शेष  
चार इंद्रियोंसे ग्राह्य नहीं है । यदि यहांपर कोई अन्यवादी ऐसी तर्कणा करे कि—  
जलमें गंध गुण नहीं होनेसे नासिका जलको नहीं ग्रहण करती । अग्निमें गंध रस इन  
दोनों गुणोंके न होनेसे नासिका—जीभ ये दोनों उसको ग्रहण नहीं करसकतीं । पवनमें  
गंध रस रूप इन तीनोंके न होनेसे नासिका जीभ नेत्र उसको ग्रहण नहीं करती  
हैं ? इस तर्कका समाधान इस तरहसे है कि ऐसा कोई पुद्गल नहीं है जोकि स्पर्शादि  
चार गुणोंमेंसे एक या दो या तीन गुणोंको धारण करे क्योंकि सभी पुद्गलोंमें चार गुण  
अवश्य होते हैं इसका कारण यह है गुणोंमें कमतीपणा नहीं होता है ऐसी सर्वज्ञकी  
आज्ञा है । इसलिये पृथिवी जल अग्नि वायु इनमें स्पर्शादिक चारों गुण होते हैं ऐसा  
जानना चाहिये । केवल मुख्य गौणका भेद है वह इसप्रकार है—पृथिवीमें स्पर्श रस  
गंध वर्ण ये चारों गुण प्रगट पाये जाते हैं, जलमें गंधकी गौणता है, अग्निमें गंध रस  
इन दोनोंकी गौणता है, पवनमें गंध रस वर्ण इन तीनोंकी गौणता है । इसलिये सभी  
पुद्गलोंमें चारों गुण होते हैं । इस बातकी सिद्धिकेलिये दूसरी युक्तिभी दिखलाते हैं—  
चंद्रकांतमणि (पाषाण) पृथिवी कायसे जल झड़ता है जलसे पृथ्वीकाय मोती उत्पन्न होते  
हैं अरणी लकड़ीसे अग्नि उत्पन्न होती है जौ नामा अन्नके खानेसे पेटमें वायु हो जाता  
है । इसकारण पृथ्वी जल अग्नि वायुके पुद्गलोंमें भेद नहीं है केवल परिणामनके भेदसे  
भेद है । इससे सिद्ध हुआ कि सभी पुद्गलोंमें स्पर्शादि चार गुण पाये जाते हैं ॥ ४० ॥

नोत्खातगुणलक्षणत्वान्मूर्तद्रव्यगुणोपि न भवति । पर्यायलक्षणं हि कादाचित्कत्वं गुणलक्षणं तु नित्यत्वं । ततः कादाचित्कत्वोत्खातनित्यत्वस्य न शब्दस्यास्ति गुणत्वं । यत्तु तत्र नित्यत्वं तत्तदारम्भकपुद्गलानां तद्गुणानां च स्पर्शादीनामेव न शब्दपर्यायसेति दृढतरं ग्राह्यं । न च पुद्गलपर्यायत्वे शब्दस्य पृथिवीस्कन्धस्येव स्पर्शनादीन्द्रियविषयत्वं । अपां घ्राणेन्द्रियाविषयत्वात्, ज्योतिषो घ्राणरसनेन्द्रियाविषयत्वात्, मरुतो घ्राणरसन-  
चक्षुरिन्द्रियाविषयत्वाच्च । न चागन्धागन्धरसागन्धरसवर्णाः, एवमज्योतिर्मास्तः, सर्व-

चतुष्टयस्यापि स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तेन द्यणुकादिबन्धावस्थायामशुद्धत्वम् । यथा वानन्तज्ञानादि-  
चतुष्टयस्य रागादिलेहरहितशुद्धात्मध्यानेन शुद्धत्वं भवति तथा वर्णादिचतुष्टयस्यापि स्निग्धगुण-  
भावे बन्धनेऽस्ति परमाणुपुद्गलावस्थायां शुद्धत्वमिति । सहो सो पोगगलो यस्तु शब्दः स  
पौद्गलः यथा जीवस्य नरनारकादिविभावपर्यायाः तथायं शब्दः पुद्गलस्य विभावपर्यायो न च  
गुणः । कस्मात् । गुणस्याविनश्वरत्वात् अयं च विनश्वरो । नैयायिकमतानुसारी कश्चिद्ब्रह्म-  
काशगुणोऽयं शब्दः । परिहारमाह—आकाशगुणत्वे सत्यमूर्त्तौ भवति । अमूर्त्तश्च श्रवणेन्द्रियविषयो

पुद्गलके स्पर्शादि चारु गुण नियमसे पाये जाते हैं और अमूर्त द्रव्यके ये चारों नहीं पाये जाते, इसीलिये ये गुण पुद्गलके चिह्न हैं । शब्द भी कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है परंतु वह पुद्गलका पर्याय है गुण नहीं है, क्योंकि अनेक पुद्गलस्कंधोंके संयोगसे उत्पन्न होता है इसलिये पर्याय है । जो कोई अन्यवादी शब्दको आकाशद्रव्यका गुण मानते हैं उनका कहना अप्रमाण है क्योंकि आकाशद्रव्य अमूर्त्तिक है इसलिये इंद्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता और कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है । नियम ऐसा है कि जिसका कारण इंद्रियग्रहणयोग्य न हो उसका कार्य भी इंद्रियग्रहणयोग्य नहीं हो सकता । यदि शब्द इन्द्रियसे प्राप्त है तो अमूर्त आकाश भी कर्ण इन्द्रियसे ग्रह्य होना चाहिये । शब्द गुण है गुणगुणीके प्रदेश कभी जुदे होते नहीं हैं इसकारण शब्दके ग्रहण होतेसे आकाश भी अवश्य कर्ण इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होना चाहिये । परंतु वह आकाश तो कभी इंद्रिय-  
प्रत्यक्ष होता नहीं है इसलिये शब्द आकाशका गुण कदापि नहीं होसकता । यहाँ-  
परभी कोई ऐसी तर्क करे कि पुद्गलद्रव्य मूर्त्तिक है उसकाही गुण शब्द हो जाना चाहिये पुद्गलकी पर्यय क्यों कहते हो ! इसका समाधान इसतरह है कि पर्यायका लक्षण अनित्य है और गुणका लक्षण नित्य है । यदि शब्द पुद्गलका गुण कहा जावे तो पुद्गल हमेशा शब्दरूप ही प्राप्त होना चाहिये परंतु ऐसा नहीं है । जय स्कंधोंका संयोग होता है तब शब्द होता है इसलिये पर्याय ही है गुण नहीं है ऐसा निश्चयकर जानना । यदि कोई यह कहे कि जैसे भूमि पुद्गलका पर्याय है वह स्पर्शनादि चार इन्द्रियोंसे ग्रहण की जाती है उसीप्रकार शब्द भी चार इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होना चाहिये एक कर्ण इन्द्रियसे ही प्रत्यक्ष क्यों कहते हो ! उसका उत्तर इसतरहसे है कि जल पुद्गलका

लानां स्थानहेतुत्वमधर्मस्य, अशेषशेषद्रव्याणां प्रतिपर्यायं समयवृत्तिहेतुत्वं कालस्य, चैतन्य-  
परिणामो जीवस्य । एवममूर्तानां विशेषगुणसंक्षेपाधिगमे लिङ्गम् । तत्रैककालमेव सक-  
लद्रव्यसाधारणावगाहसंपादनमसर्वगतत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवदाकाशमधिगमयति ।  
तथैकवारमेव गतिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामालोकाद्रमनहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः  
समुद्घातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्रत्वाज्जीवस्य लोकालोकसीम्नोचलितत्वादाकाशस्य विरु-  
द्धकार्यहेतुत्वाद्धर्मसासंभवद्धर्ममधिगमयति । तथैकवारमेव स्थितिपरिणतसमस्तजीवपुद्ग-  
लानामालोकात्स्थानहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः, समुद्घातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्र-  
त्वाज्जीवस्य, लोकालोकसीम्नोचलितत्वादाकाशस्य, विरुद्धकार्यहेतुत्वाद्धर्मस्य चासंभवदध-

युगपर्य्यायपरिणतिहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसंभवत्कालद्रव्यं निश्चिनोति । सर्वजी-  
वसाधारणं सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वयं विशेषगुणत्वादेवान्याचेतनपञ्चद्रव्याणामसंभवत्सच्छुद्ध-  
बुद्धैकस्वभावं परमात्मद्रव्यं निश्चिनोति । अयमत्रार्थः यद्यपि पञ्चद्रव्याणि जीवस्योपकारं कुर्वन्ति,  
तथापि तानि दुःखकारणान्येवेति ज्ञात्वा । यदि वाक्ष्यानन्तसुखादिकारणं विशुद्धज्ञानदर्शनोप-

चिन्ह है, क्योंकि अन्य पांच द्रव्य हैं वे सर्व व्यापक नहीं है आकाश द्रव्यही सर्वगत  
( सबमें फैला हुआ ) है इसकारण पांच द्रव्योंका अवगाह गुण नहीं हो सकता;  
और आकाश सबका भाजन है क्योंकि सब द्रव्य इसीमें रहते हैं इससे इस आका-  
शका अवगाह चिन्ह है, वह गुण होता हुआ आकाशके अस्तिपने ( मौजूदगी ) को  
दिखाता है । जीवपुद्गलकी गतिको सहायता करनेवाला गतिहेतुत्व नामा गुण धर्म द्र-  
व्यका ही चिन्ह है, अन्य पांच द्रव्योंका बन नहीं सकता क्योंकि कालद्रव्य-पुद्गल  
अप्रदेशी हैं इससे काल-पुद्गलका गुण नहीं हो सकता जो द्रव्य अखंडरूप लोक  
प्रमाण हो वही पुद्गलकी सब जगह गतिमें सहायता करसकता है, और समुद्घातके  
विना जीवद्रव्य लोकके असंख्यातवें भागमें रहता है इससे जीवद्रव्यका भी गुण नहीं  
होसकता, और आकाशद्रव्य लोकालोकतक है । यदि आकाशका गुण हो तो जीव-  
पुद्गल अलोकमें गमन करसक्ते हैं सो ऐसा है नहीं । इसकारण आकाशका भी गुण नहीं  
है, अधर्मद्रव्य जीव पुद्गलकी स्थितिको सहायता देनेवाला है उसको गतिसहायता  
विरुद्ध पड़ती है इसकारण अधर्मद्रव्यका भी गुण नहीं होसक्ता । इसलिये  
यह गतिहेतुगुण एक धर्मद्रव्यहीको प्रगट दिखलाता है । उसीप्रकार एक ही चार  
स्थितिभावको परिणत हुए जीव-पुद्गलोंको स्थितिका हेतु होना ऐसा स्थितिहेतुत्व  
गुण एक अधर्मद्रव्यका ही है क्योंकि काल-पुद्गल अप्रदेशी और खंड हैं इसलिये इन  
दोनोंका गुण नहीं होसकता; आरै जीवद्रव्य समुद्घातके विना लोकप्रमाण होता ही  
नहीं इससे जीवका भी गुण नहीं बनसकता, आकाशद्रव्य लोकालोक प्रमाण है  
सो यदि आकाशका गुण मानाजावे तो अलोकमें भी जीव-पुद्गलकी स्थिति होनी चाहिय!

मूर्तीनां शेषद्रव्याणां गुणान् गृणाति;—

भागासस्सवगाहो धम्मद्ववस्स गमणहेतुत्तं ।

धम्मदरदव्वस्स दु गुणो पुणो ठाणकारणदा ॥ ४१ ॥

कालस्स वट्टणा से गुणोवओगोत्ति अप्पणो भणितो ।

शेषा संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणाणं ॥ ४२ ॥ जुगलं ।

आकाशस्यावगाहो धर्मद्रव्यस्य गमनहेतुत्वम् ।

धर्मेतरद्रव्यस्य तु गुणः पुनः स्थानकारणता ॥ ४१ ॥

कालस्य वर्तना स्यात् गुण उपयोग इति आत्मनो भणितः ।

ज्ञेया संक्षेपाद्गुणा हि मूर्तिप्रहीणानाम् ॥ ४२ ॥ युगलम् ।

शेषगुणो हि युगपत्सर्वद्रव्याणां साधारणावगाहहेतुत्वमाकाशस्य, सकृत्सर्वेषां गम-  
मिनां जीवपुद्गलानां गमनहेतुत्वं धर्मस्य, सकृत्सर्वेषां स्थानपरिणामिनां जीवपुद्ग-

लायमूर्त्तद्रव्याणां विशेषगुणान्प्रतिपादयति;—आकाशस्यावगाहहेतुत्वं, धर्मद्रव्यस्य गमन-

धर्मेतरद्रव्यस्य तु पुनः स्थानकारणतागुणो भवतीति प्रथमगाथा गता । कालस्य वर्तना

ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयमित्यात्मनो गुणो भणितः । एवं संक्षेपादमूर्त्तद्रव्याणां गुणा ज्ञेया इति ।

सर्वद्रव्याणां साधारणमवगाहहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसम्भवत्सदाकाशं निश्चि-

। गतिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामेकसमये साधारणं गमनहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवा-

णामसम्भवत्सद्धर्मद्रव्यं निश्चिनोति । तथैव च स्थितिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामेकसमये

स्थितिहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसम्भवदधर्मद्रव्यं निश्चिनोति । सर्वद्रव्याणां

अमूर्त्तिक पांच द्रव्योंके गुणोंको कहते हैं—[आकाशस्य] आकाश द्रव्यका

वगाहः] एक ही समय सब द्रव्योंको जगह देनेका कारण ऐसा अवगाह

विशेषगुण है [तु] और [धर्मस्य] धर्मद्रव्यका [गमनहेतुत्वं]

पुद्गलोंके गमनका कारण ऐसा गतिहेतुत्व नामा विशेषगुण है [पुनः] तथा

एतरद्रव्यस्य] अधर्मद्रव्यका [गुणः] विशेषगुण [स्थानकारणता]

के समय स्थितिभावको परिणत हुए जीवपुद्गलोंको स्थितिका कारणपना है ।

कालस्य] कालद्रव्यका [वर्तना] सभी द्रव्योंके समय २ परिणमनकी प्रवृत्तिका

ऐसा वर्तना नामका गुण [स्यात्] है [आत्मनः गुणः] जीवद्रव्य-

विशेष गुण [उपयोगः इति भणितः] चेतना परिणाम है ऐसा भगवानने कहा

[हि] निश्चयसे [एते गुणाः] पहले कहे जो विशेषगुण हैं वे [संक्षेपात्]

पर न करके थोड़ेमें ही [मूर्तिप्रहीणानां] मूर्तिरहित जो पांच द्रव्य हैं उनके

वगाहः] जानने चाहिये ॥ भावार्थ—अवगाहन नामा गुण आकाशद्रव्यका ही

लानां स्थानहेतुत्वमधर्मस्य, अशेषशेषद्रव्याणां प्रतिपर्यायं समयवृत्तिहेतुत्वं कालस्य, चैतन्य-परिणामो जीवस्य । एवममूर्तानां विशेषगुणसंक्षेपाधिगमे लिङ्गम् । तत्रैककालमेव सक-लद्रव्यसाधारणावगाहसंपादनमसर्वगतत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवदाकाशमधिगमयति । तथैकवारमेव गतिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामालोकाद्गमनहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः समुद्धातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्रत्वाजीवस्य लोकालोकसीमोचलितत्वादाकाशस्य विरु-द्धकार्यहेतुत्वाद्धर्मस्यासंभवद्धर्ममधिगमयति । तथैकवारमेव स्थितिपरिणतसमस्तजीवपुद्ग-लानामालोकात्स्थानहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः, समुद्धातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्र-त्वाजीवस्य, लोकालोकसीमोचलितत्वादाकाशस्य, विरुद्धकार्यहेतुत्वाद्धर्मस्य चासंभवदध-

शुगपत्पर्यायपरिणतिहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसंभवत्कालद्रव्यं निश्चिनोति । सर्वजी-वसाधारणं सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वयं विशेषगुणत्वादेवान्याचेतनपञ्चद्रव्याणामसंभवत्सच्छुद्ध-बुद्धैकस्वभावं परमात्मद्रव्यं निश्चिनोति । अयमत्रार्थः यद्यपि पञ्चद्रव्याणि जीवस्योपकारं कुर्वन्ति, तथापि तानि दुःखकारणान्येवेति ज्ञात्वा । यदि वाक्षयानन्तसुखादिकारणं विशुद्धज्ञानदर्शनोप-

चिन्ह है, क्योंकि अन्य पांच द्रव्य हैं वे सर्व व्यापक नहीं है आकाश द्रव्यही सर्वगत (सबमें फैला हुआ) है इसकारण पांच द्रव्योंका अवगाह गुण नहीं हो सकता; और आकाश सबका भाजन है क्योंकि सब द्रव्य इसीमें रहते हैं इससे इस आकाशका अवगाह चिन्ह है, वह गुण होता हुआ आकाशके अस्तित्वने (सौजूदगी) को दिखाता है । जीवपुद्गलकी गतिको सहायता करनेवाला गतिहेतुत्व नामा गुण धर्म द्रव्यका ही चिन्ह है, अन्य पांच द्रव्योंका वन नहीं सकता क्योंकि कालद्रव्य-पुद्गल अप्रदेशी हैं इससे काल-पुद्गलका गुण नहीं हो सकता जो द्रव्य अखंडरूप लोक प्रमाण हो वही पुद्गलकी सब जगह गतिमें सहायता करसकता है, और समुद्धातके विना जीवद्रव्य लोकके असंख्यातवें भागमें रहता है इससे जीवद्रव्यका भी गुण नहीं होसकता, और आकाशद्रव्य लोकालोकतक है । यदि आकाशका गुण हो तो जीव-पुद्गल अलोकमें गमन करसक्ते हैं सो ऐसा है नहीं । इसकारण आकाशका भी गुण नहीं है, अधर्मद्रव्य जीव पुद्गलकी स्थितिको सहायता देनेवाला है उसको गतिसहायता विरुद्ध पड़ती है इसकारण अधर्मद्रव्यका भी गुण नहीं होसक्ता । इसलिये यह गतिहेतुगुण एक धर्मद्रव्यहीको प्रगट दिखलाता है । उसीप्रकार एक ही वार स्थितिभावको परिणत हुए जीव-पुद्गलोंको स्थितिका हेतु होना ऐसा स्थितिहेतुत्व गुण एक अधर्मद्रव्यका ही है क्योंकि काल-पुद्गल अप्रदेशी और खंड हैं इसलिये इन दोनोंका गुण नहीं होसकता; आरै जीवद्रव्य समुद्धातके विना लोकप्रमाण होता ही नहीं इससे जीवका भी गुण नहीं वनसकता, आकाशद्रव्य लोकालोक प्रमाण है सो यदि आकाशका गुण मानाजावे तो अलोकमें भी जीव-पुद्गलकी स्थिति होनी चाहिय!

जीवस्य स्वांशाल्यबहुत्वाभावादसंख्येयप्रदेशत्वमेव । अमूर्तसंवर्तविस्तारसिद्धिश्च सूक्ष्म-  
शशिशुकुमारशरीरव्यापित्वादस्ति स्वसंवेदनसाध्यैव । पुद्गलस्य तु द्रव्येणैकप्रदेशमात्रत्वा-  
दप्रदेशत्वे यथोदिते सत्यपि द्विप्रदेशाद्युद्भवहेतुभूततथाविधस्निग्धरूक्षगुणपरिणामशक्तिस-  
भावात्प्रदेशोद्भवत्वमस्ति । ततः पर्यायेणानेकप्रदेशत्वस्यापि संभवात् द्वयादिसंख्येयासं-  
ख्येयानन्तप्रदेशत्वमपि न्याय्यं पुद्गलस्य ॥ ४५ ॥

अथ कालाणोरप्रदेशत्वमेवेति नियमयति;—

समओ दु अप्पदेशो पदेशमेत्तस्स दब्बजादस्स ।

वदिवददो सो वट्टदि पदेशमागासदब्बस्स ॥ ४६ ॥

समयस्त्वप्रदेशः प्रदेशमात्रस्य द्रव्यजातस्य ।

व्यतिपततः स वर्तते प्रदेशमाकाशद्रव्यस्य ॥ ४६ ॥

अप्रदेश एव समयो द्रव्येण प्रदेशमात्रत्वात् न च तस्य पुद्गलस्येव पर्यायेणाप्यनेकप्र-

रमाणुः तेण पदेशुब्भवो भणितो तेन परमाणुना प्रदेशस्योद्भव उत्पत्तिं भणिता । परमाणु-  
व्याप्तक्षेत्रं प्रदेशो भवति । तदग्रे विस्तरेण कथयति इह तु सूचितमेव ॥ ४५ ॥ एवं पञ्चम-  
स्थले स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतम् । अथ कालद्रव्यस्य द्वितीयादिप्रदेशरहितत्वेनाप्रदेशत्वं व्यवस्थाप-  
यति;—समओ समयपर्यायस्योपादानकारणत्वात्समयः कालाणुः दु पुनः । स च कथंभूतः ।

प्रदेशमात्र है [ तेन ] उस परमाणुसे [ प्रदेशोद्भवः ] प्रदेशोंकी उत्पत्ति [ भ-  
णितः ] कही गई है ॥ भावार्थ—सबसे सूक्ष्म ( छोटा ) अविभागी परमाणु होता  
है वह परमाणु जितनी जगह रोके उतनी जगहका नाम प्रदेश है । इसतरह आकाशके  
अनंतप्रदेश होते हैं । उसीप्रकार प्रदेशसे धर्मद्रव्य—अधर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्यका माप  
किया जावे तो असंख्यात २ प्रदेशी हैं, उनमेंभी धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य सदा ही स्थि-  
ररूप हैं तथा जीवद्रव्य संसारमें संकोच विस्तारकर अधिर है, जैसे सूका और आला चर्म  
अनवस्थित है तौभी अपने प्रदेशोंसे कम ज्यादा नहीं होता । इसप्रकार असंख्यातप्रदेशी है ।  
यहांपर कोई प्रश्न करे कि आत्मा अमूर्त है उसके संकोच विस्तार किसतरह होसकता है ?  
तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे कोई पुरुष मोटा है वह क्षीण होजाता है और कोई  
क्षीणसे मोटा होजाता है इसदशामें उस पुरुषके शरीरके मोटे वा क्षीण होनेके साथमें ही  
आत्माके प्रदेशभी संकोच और विस्तारको प्राप्त होते हैं । और जैसे घालक जब जवान  
होता है तब आत्माके प्रदेशभी विस्ताररूप हो जाते हैं; इसकारण आत्माके संकोच विस्तार  
अच्छीतरह अनुभवमें आते हैं संदेह नहीं रहता । पुद्गलद्रव्य परमाणुकी अपेक्षा यद्यपि  
एक प्रदेशी है तौभी द्व्यणुकादि होनेकी इसमें मिलनशक्ति है इसलिये द्व्यणुकवगैरः स्कंध  
( समूहरूप ) पर्यायोंकी अपेक्षा संख्यात—असंख्यात—अनंतप्रदेशी पुद्गलद्रव्य है ॥४५॥  
आगे कालाणुको अप्रदेशी दिखलाते हैं;—[ तु ] और [ समयः ] कालद्रव्य [ अ-

देशत्वं यतस्तस्य निरन्तरं प्रस्तारविस्तृतप्रदेशमात्रासंख्येयद्रव्यत्वेऽपि परस्परसंपर्कासंभवादे-  
कैकमाकाशप्रदेशमभिव्याप्य तस्थुषः प्रदेशमात्रस्य परमाणोस्तदभिव्याप्तमेकमाकाशप्रदेशं  
मन्दगत्या व्यतिपतत एव वृत्तिः ॥ ४६ ॥

अथ कालपदार्थस्य द्रव्यपर्यायौ प्रज्ञापयति;—

वदिवददो तं देसं तस्सम समओ तदो परो पुब्बो ।

जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी ॥ ४७ ॥

व्यतिपततस्तं देशं तत्समः समयस्ततः परः पूर्वः ।

योऽर्थः स कालः समय उत्पन्नप्रध्वंसी ॥ ४७ ॥

यो हि येन प्रदेशमात्रेण कालपदार्थेनाकाशस्य प्रदेशोऽभिव्याप्तस्तं प्रदेशं मन्दगत्याति-

अप्पदेशो अप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो भवति । स च किं करोति । सो वट्टदि स पूर्वो-  
क्तकालाणुः परमाणोर्गतिपरिणतेः सहकारित्वेन वर्तते । कस्य सम्बन्धी योऽसौ परमाणुः ?  
पदेसमेत्तस्स द्रव्यजादस्स प्रदेशमात्रपुद्गलजातिरूपपरमाणुद्रव्यस्य । किं कुर्वतः ? वदिव-  
ददो व्यतिपततो मन्दगत्या गच्छतः । किं प्रति । पदेसं कालाणुव्याप्तमेकप्रदेशम् । कस्य सम्ब-  
न्धिन् ? आगासदब्बस्स आकाशद्रव्यस्येति । तथाहि—कालाणुरप्रदेशो भवति । कस्मात् ?  
द्रव्यैकप्रदेशत्वात् । अथवा यथा खेहगुणेन पुद्गलानां परस्परबन्धो भवति तथाविधबन्धाभा-  
वात्पर्यायेणापि । अयमत्रार्थः—यस्मात्पुद्गलपरमाणोरेकप्रदेशगमनपर्यन्तं सहकारित्वं करोति  
नचाधिकं तस्मादेव ज्ञायते सोऽप्येकप्रदेश इति ॥ ४६ ॥ अथ पूर्वोक्तकालपदार्थस्य पर्यायस्वरूपं  
द्रव्यस्वरूपं च प्रतिपादयति;—वदिवददो तस्य पूर्वसूत्रोदितपुद्गलपरमाणोर्व्यतिपततो मन्दगत्या  
गच्छतः । किं कर्मतापन्नम् ? तं देसं तं पूर्वगाथोदितं कालाणुव्याप्तमाकाशप्रदेशम् तस्सम

**प्रदेशः ]** प्रदेशसे रहित है अर्थात् प्रदेशमात्र है [ सः ] वह कालाणू [ आकाश-  
द्रव्यस्य ] आकाशद्रव्यके [ प्रदेशं ] निर्धैभागक्षेत्ररूप प्रदेशमें [ व्यतिपततः ]  
मंदगतिसे गमनकरनेवाला [ प्रदेशमात्रस्य द्रव्यजातस्य ] तथा एक प्रदेशरूप ऐसे  
पुद्गलजातिरूप परमाणुके निमित्तसे [ वर्तते ] समयपर्यायकी प्रगटतासे प्रवर्तता है ॥  
**भावार्थ—**लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं और एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणू  
ठहरा हुआ है वह जुदी २ थिरता लिये हुए रत्नोंकी राशिकी तरह आपसमें मिलने-  
रूप शक्तिसे रहित है इसप्रकार वे असंख्यात हैं । जब पुद्गल परमाणू आकाशके एक  
प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें मंदगतिसे जाता है तब पुद्गलपरमाणुकी गतिसे उस आकाशमें  
तिष्ठे हुए कालाणूका समयरूप पर्याय प्रगट होता है । और एक कालाणू एक प्रदेशमात्र  
होनेसे ही अप्रदेशी है ॥ ४६ ॥ आगे कालपदार्थके द्रव्य और पर्याय दिखाते हैं;—  
[ तं देशं ] जो आकाशका एक प्रदेश है उसमें [ व्यतिपततः ] मंदगमनसे जाने-  
वाले पुद्गलपरमाणुको [ तत्समः ] जितना कुछ सूक्ष्मकाल लगे उस समान कालप-



क्रमतः परमाणोस्तत्प्रदेशमात्रातिक्रमणपरिमाणेन तेन समो यः कालपदार्थसूक्ष्मवृत्तिरूप-  
समयः स तस्य कालपदार्थस्य पर्यायस्ततः एवंविधात्पर्यायात्पूर्वोत्तरवृत्तिवृत्तत्वेन व्यञ्जित-  
नित्यत्वे योऽर्थः तत्तु द्रव्यं । एवमनुत्पन्नाविध्वस्तो द्रव्यसमयः, उत्पन्नप्रध्वंसी पर्यायस-  
मयः । अनंशः समयोऽयमाकाशप्रदेशस्यानंशत्वान्यथानुपपत्तेः । न चैकसमयेन परमाणो-  
रालोकान्तगमनेपि समयस्य सांशत्वं विशिष्टगतिपरिणामाद्विशिष्टावंगाहपरिणामवत् । त-

तेन कालाणुव्याप्तैकप्रदेशपुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः सदृशस्तत्समः समओ  
फालाणुद्रव्यस्य सूक्ष्मपर्यायभूतः समयो व्यवहारकालो भवतीति पर्यायव्याख्यानं गतम् । तदो  
परो पुब्वो तस्मात्पूर्वोक्तसमयरूपकालपर्यायात्परो भाविकाले पूर्वमतीतकाले च जो अत्थो यः  
पूर्वपर्यायेष्वन्वयरूपेण दत्तपदार्थो द्रव्यं सो कालो स कालः कालपदार्थो भवतीति द्रव्यव्या-  
ख्यानम् । समओ उप्पण्णपद्धंसी स पूर्वोक्तसमयर्यायो यच्चि पूर्वापरसमयसन्ताना-  
पेक्षया संख्येयासंख्येयानन्तसमयो भवति, तथापि वर्त्तमानसमयं प्रत्युत्पन्नप्रध्वंसी । यस्तु पूर्वो-  
क्तद्रव्यकालः स त्रिकालस्यायित्वेन नित्य इति । एवं कालस्य पर्यायस्वरूपं द्रव्यस्वरूपं च ज्ञात-  
व्यम् ॥ अथवानेन गाथाद्वयेन समयरूपव्यवहारकालव्याख्यानं क्रियते निश्चयकालव्याख्यानं  
तु 'उप्पादो पब्भंसो' इत्यादि गाथात्रयेणाग्रे करोति । तद्यथा । समओ परमार्थकालस्य पर्याय-  
भूतसमयः । अवप्पदेसो अपगतप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो निरंश इत्यर्थः । कथं निरंश  
इति चेत् ? पदेसमेत्तस्स दवियजादस्स प्रदेशमात्रपुद्गलद्रव्यस्य सम्बन्धी योऽसौ परमाणुः  
वदिवादादो वड्ढि व्यतिपातात् मन्दगतिगमनात्सकाशात्स परमाणुस्तावद्गमनरूपेण वर्त्तते ।  
कं प्रति ? पदेसमागासदवियस्स विवक्षितैकाकाशप्रदेशं प्रति । इति प्रथमगाथाव्याख्या-  
नम् । वदिवददो तं देसं स परमाणुस्तमाकाशप्रदेशं यदा व्यतिपतितोऽतिक्रान्तो भवति त-  
स्समसमओ तेन पुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः समयो भवतीति निरंशत्वमिति  
वर्त्तमानसमयो व्याख्यातः । इदानीं पूर्वपरसमयौ कथयति—तदो परो पुब्वो तस्मात्पूर्वो-  
क्तवर्त्तमानसमयात्परो भावी कोऽपि समयो भविष्यति पूर्वमपि कोऽपि गतः अत्थो जो एवं यः

दार्थ [ समयः ] समय नामा पर्याय कहा जाता है । [ ततः ] उसपर्यायसे [ परः  
पूर्वः ] आगे तथा पहले [ यः ] जो नित्यभूत [ अर्थः ] पदार्थ है [ सः ] वह  
[ कालः ] कालनामा द्रव्य है ॥ भावार्थ—एक आकाशके प्रदेशमें जो कालाणु है  
वह दूसरे प्रदेशमें रहनेवाले कालाणुसे कदापि नहीं मिलता इसकारण जब पुद्गलपरमाणु  
एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेश ( जगह ) में जाता है तब पहले प्रदेशमें रहनेवाले कालाणुसे  
दूसरे प्रदेशवर्ति कालाणुमें भेद है संयोग नहीं है, क्योंकि उसमें मिलनशक्तिका अभाव  
है । इसकारण सूक्ष्मकालका समय नामका पर्याय पुद्गलकी मंदगतिसे प्रगट जानाजाता  
है । जो कालाणु भिन्न नहीं होती तथा मिलनेकी शक्ति होती तो समयपर्याय कभी  
नहीं होता । अस्तं एक द्रव्यके परिणमनसे तथा कालाणुके भिन्न होनेसे समय भेद

याहि—यथा विशिष्टावगाहपरिणामादेकपरमाणुपरिमाणोऽनन्तपरमाणुस्कन्धः परमाणोर-  
नंशत्वात् पुनरप्यनन्तांशत्वं न साधयति तथा विशिष्टगतिपरिणामादेककालाणुव्याप्तैकाका-  
शप्रदेशातिक्रमणपरिमाणावच्छिन्नैकसमयैकस्माल्लोकान्ताद्वितीयं लोकान्तमाक्रामतः प-  
रमाणोरसंख्येया कालाणवः समयस्यानंशत्वादसंख्येयांशत्वं न साधयन्ति ॥ ४७ ॥

समयत्रगरूपोऽर्थः सो कालो सोऽतीतानागतवर्तमानरूपेण त्रिविधव्यवहारकालो भण्यते ।  
समओ उप्पण्णपद्धंसी तेषु त्रिषु मध्ये योऽसौ वर्तमानः स उत्पन्नप्रध्वंसी अतीतानागतौ तु  
संख्येयासंख्येयनन्तसमयावित्यर्थः । एवमुक्तलक्षणे काले त्रियमानेऽपि परमात्मतत्त्वमलभमानो-  
ऽतीतानन्तकाले संसारसागरे भ्रमितोऽयं जीवो यतस्ततः कारणात्तदेव निजपरमात्मतत्त्वं सर्वप्रका-  
रोपादयरूपेण श्रद्धेयं, स्वसंवेदनज्ञानरूपेण ज्ञातव्यमाहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्वरूपप्रभृतिसमस्त-

होता है । पुद्गलपरमाणु एककालाणुसे दूसरे कालाणुमें जब जाता है वहां भेद होता  
है । इसीलिये कालद्रव्यका समयपर्याय पुद्गलपरमाणुकी मंदगतिसे प्रगट होता है ।  
और जो समयपर्यायके उत्पन्न होनेसे न तो उत्पन्न होता है तथा न विनाश पाता है  
आगे पीछे सदा नित्य है वह कालाणु द्रव्यसमय है । तथा पर्यायसमय विनाशीक है,  
कालाणुरूप द्रव्यसमय नित्य है । पर्यायसमयसे अन्य कोई भी सूक्ष्मकाल नहीं है इस-  
कारण समय निरंशी है अर्थात् फिर उसका भेद नहीं होता । और जो समयके भी  
अंश (भाग) किये जावें तो सूक्ष्म आकाशके प्रदेशोंके भी अंश हो जाइंगे, परंतु प्रदेश तो  
सबसे सूक्ष्म क्षेत्र है उसमें अंशोंकी कल्पना किसतरह होसकती है ? कदापि नहीं हो  
सकती । उसीतरह समय भी सूक्ष्मकाल है इसमें भी अंश कल्पना नहीं होसकती ।  
यहांपर कोई प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु एक समयमें शीघ्रगतिसे जाकर लोकके अप्र-  
भागतक पहुंचता है उस अवस्थामें चौदह राजु तक श्रेणीबद्ध जितने आकाशप्रदेशोंमें  
कालाणु हैं उन सबको स्पर्श करता है इसलिये एकसमयमें गमन करनेसे जितने आकाश-  
प्रदेशोंमें कालाणु हैं उतने ही समयके अंश भेद होने चाहिये ? इसका उत्तर यह है कि  
परमाणुमें कोई एक गतिपरिणामकी विशेषता है, इसकारण बहुत शीघ्र चालसे १४ राजु  
चलाजाता है परंतु समयके अंश नहीं होते हैं; समय तो अत्यंत सूक्ष्मकाल है । जैसे एक  
परमाणुके प्रमाण आकाशप्रदेश है उसमें अनंतपरमाणुओंका स्कंध रहता है वहां पर प्रदेशके  
अनंत अंश नहीं होते, क्योंकि परमाणु निरंश है उसमें दूसरा अंश सिद्ध नहीं होता । इस-  
कारण उस आकाशके प्रदेशमें कोई एक ऐसी अवगाहशक्ति है जो उसमें एक परमाणुके  
बराबर अनंतपरमाणु स्कंध (समूह) रहते हैं, लेकिन अनंतपरमाणुओंसे उस प्रदेशके अनंत  
अंश नहीं होजाते, यह कोई अवगाहशक्तिकी ही विशेषता है । उसीतरह गतिपरिणा-  
मकी विशेषतासे एकसमयमें परमाणु लोकके अंततक चला जाता है वहां असंख्यात  
कालाणुओंको उलंघन करनेपर भी समयके असंख्यात अंश सिद्ध नहीं होते । समय तो

क्रमतः परमाणौस्तत्प्रदेशमात्रातिक्रमणपरिमाणेन तेन समो यः कालपदार्थसूक्ष्मवृत्तिरूप-  
समयः स तस्य कालपदार्थस्य पर्यायस्ततः एवंविधात्पर्यायात्पूर्वोत्तरवृत्तिवृत्तत्वेन व्यञ्जित-  
नित्यत्वे योऽर्थः तत्तु द्रव्यं । एवमनुत्पन्नाविध्वस्तो द्रव्यसमयः, उत्पन्नप्रध्वंसी पर्यायस-  
मयः । अनंशः समयोऽयमाकाशप्रदेशस्थानंशत्वान्यथानुपपत्तेः । न चैकसमयेन परमाणो-  
रालोकान्तगमनेपि समयस्य सांशत्वं विशिष्टगतिपरिणामाद्विशिष्टावगाहपरिणामवत् । त-

तेन कालाणुव्याप्तिकप्रदेशपुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः सदृशस्तत्समः समओ  
कालाणुद्रव्यस्य सूक्ष्मपर्यायभूतः समयो व्यवहारकालो भवतीति पर्यायव्याख्यानं गतम् । तदो  
परो पुञ्चो तस्मात्पूर्वोक्तसमयरूपकालपर्यायात्परो भाविकाले पूर्वमतीतकाले च जो अत्थो यः  
पूर्वपर्यायेष्वन्वयरूपेण दत्तपदार्थो द्रव्यं सो कालो स कालः कालपदार्थो भवतीति द्रव्यव्या-  
ख्यानम् । समओ उत्पण्णपद्धंसी स पूर्वोक्तसमयपर्यायो यद्यपि पूर्वापरसमयसन्ताना-  
पेक्षया संख्येयासंख्येयानन्तसमयो भवति, तथापि वर्त्तमानसमयं प्रत्युत्पन्नप्रध्वंसी । यस्तु पूर्वो-  
क्तद्रव्यकालः स त्रिकालस्थापित्वेन नित्य इति । एवं कालस्य पर्यायस्वरूपं द्रव्यस्वरूपं च ज्ञात-  
व्यम् ॥ अथवानेन गाथाद्वयेन समयरूपव्यवहारकालव्याख्यानं क्रियते निश्चयकालव्याख्यानं  
तु 'उष्पादो पद्भंसो' इत्यादि गाथात्रयेणाग्रे करोति । तद्यथा । समओ परमार्थकालस्य पर्याय-  
भूतसमयः । अवप्पदेशो अपगतप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो निरंश इत्यर्थः । कथं निरंश  
इति चेत् ? पदेसमेत्तस्स दवियजादस्स प्रदेशमात्रपुद्गलद्रव्यस्य सम्बन्धी योऽसौ परमाणुः  
वदिवादादो वट्टदि व्यतिपातात् मन्दगतिगमनात्सकाशात्स परमाणुस्तावद्गमनरूपेण वर्त्तते ।  
कं प्रति ? पदेसमागासदवियस्स विवक्षितैकाकाशप्रदेशं प्रति । इति प्रथमगाथाव्याख्या-  
नम् । वदिवददो तं देसं स परमाणुस्तमाकाशप्रदेशं यदा व्यतिपतितोऽतिक्रान्तो भवति तं-  
स्समसमओ तेन पुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः समयो भवतीति निरंशत्वमिति  
वर्त्तमानसमयो व्याख्यातः । इदानीं पूर्वपरसमयौ कथयति—तदो परो पुञ्चो तस्मात्पूर्वो-  
क्तवर्त्तमानसमयात्परो भावी कोऽपि समयो भविष्यति पूर्वमपि कोऽपि गतः अत्थो जो एवं यः

दार्थ [ समयः ] समय नामा पर्याय कहा जाता है । [ ततः ] इसपर्यायसे [ परः  
पूर्वः ] आगे तथा पहले [ यः ] जो नित्यभूत [ अर्थः ] पदार्थ है [ सः ] वह  
[ कालः ] कालनामा द्रव्य है ॥ भावार्थ—एक आकाशके प्रदेशमें जो कालाणु है  
वह दूसरे प्रदेशमें रहनेवाले कालाणुसे कदापि नहीं मिलता इसकारण जब पुद्गलपरमाणु  
एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेश ( जगह ) में जाता है तब पहले प्रदेशमें रहनेवाले कालाणुसे  
दूसरे प्रदेशवर्ति कालाणुमें भेद है संयोग नहीं है, क्योंकि उसमें मिलनशक्तिका अभाव  
है । इसकारण सूक्ष्मकालका समय नामका पर्याय पुद्गलकी मंदगतिसे प्रगट जानाजाता  
है । जो कालाणु भिन्न नहीं होती तथा मिलनेकी शक्ति होती तो समयपर्याय कभी  
नहीं होता । अखंड एक द्रव्यके परिणमनसे तथा कालाणुके भिन्न होनेसे समय भेद

दृष्ट्याद्यज्ञानामभावादाकाशस्य परमाणोरिव प्रदेशमात्रत्वं । भिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन चेत्  
अविभागैकद्रव्यस्यांशकल्पनमायातं । अनेकं चेत् किं सविभागानेकद्रव्यत्वेन किं वाऽवि-  
भागैकद्रव्यत्वेन ? सविभागानेकद्रव्यत्वेन चेत् एकद्रव्यस्याकाशस्यानन्तद्रव्यत्वं, अविभागै-  
कद्रव्यत्वेन चेत् अविभागैकद्रव्यस्यांशकल्पनमायातम् ॥ ४८ ॥

अथ तिर्यगूर्ध्वप्रचयावावेदयति;—

एको व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य ।

दब्वाणं च पदेसा संति हि समयत्ति कालस्स ॥ ४९ ॥

एको वा द्वौ बहवः संख्यातीतस्ततोऽनन्ताश्च ।

द्रव्याणां च प्रदेशाः सन्ति हि समया इति कालस्य ॥ ४९ ॥

प्रदेशप्रचयो हि तिर्यक्प्रचयः समयविशिष्टवृत्तिप्रचयस्तदूर्ध्वप्रचयः । तत्राकाशस्याव-  
स्थितानन्तप्रदेशत्वाद्धर्माधर्मयोरवस्थिताऽसंख्येयप्रदेशत्वाजीवस्थानवस्थितासंख्येयप्रदेशत्वा-

भावनिजात्मतत्त्वपरमैकाग्र्यलक्षणसमाधिंसंजातनिर्विकाराहृदैकरूपसुखसुधारसास्वादतृप्तमुनियुग-  
लस्यावस्थितक्षेत्रं किमेकमनेकं वा ? यद्येकं तर्हि द्वयोरप्येकत्वं प्राप्नोति न च तथा । भिन्नं  
चेत्तदा अखण्डस्यप्याकाशद्रव्यप्रदेशविभागो न विरुध्यत इत्यर्थः ॥ ४८ ॥ अथ तिर्यक्प्रच-  
योर्द्वप्रचयौ निरूपयति;—एको व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य एको वा द्वौ

फरै कि आकाशद्रव्य तो अखंड एक वस्तु है उसमें प्रदेशरूप अंशकल्पना कैसे होसकती  
है ? उसका समाधान इसतरहसे है कि निर्विभाग एक वस्तुमें भी अंश कल्पना बन-  
सकती है । यदि ऐसा कहो कि किसतरहसे होती है तो पहले अपने हाथकी दो अंगुली  
आकाशमें रखो अब धतलाओ कि दो उंगलियोंका एक क्षेत्र है कि दो  
क्षेत्र ? यदि कहो कि एक क्षेत्र है तो यह प्रश्न उठता है कि क्या वह अखंड एक  
आकाशकी अपेक्षा एक क्षेत्र है ? यदि ऐसा मानो तब तो ठीक ही है । और  
जो दो उंगलियोंकी भिन्नतासे दो अंश आकाशके कल्पना करनेपर उनकी अपेक्षा  
भी एकक्षेत्र कहोगे तो जिस अंशकर एक उंगलीका क्षेत्र है उसी अंशकर  
दूसरी उंगलीका भी क्षेत्र है ऐसा माननेसे अन्य अंशोंका अभाव हो जाइगा । इसी-  
तरह दो आदि आकाशके अनेक अंशोंकर भिन्न २ ही अनेकअंश मानोगे तो आकाश  
अनंत होजावेंगे और जो एक आकाशके अनेक अंश मानोगे तो एक अखंड आकाशमें  
अंशकल्पना सिद्ध ही है ॥ ४८ ॥ आगे तिर्यक्प्रचय—ऊर्ध्वप्रचय इनदोनोंका  
लक्षण कहते हैं;—[ द्रव्याणां प्रदेशाः ] कालद्रव्यके विना पांचद्रव्योंके  
निर्विभाग अंशरूप प्रदेश [ एकः ] एक [ वा ] अथवा [ द्वौ बहवः ] दो अथवा  
बहुत संख्याते [ च ] और [ संख्यातीताः ] असंख्यात [ च ] तथा [ ततः ]  
उसके बाद [ अनंताः ] अनंत इसतरह यथायोग्य [ सन्ति ] सदाकाल रहते हैं

अथाकाशस्य प्रदेशलक्षणं सूत्रयति;—

आगासमणुणिविष्टं आगासपदेससण्णया भणिटं ।

सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवकासं ॥ ४८ ॥

आकाशमनुनिविष्टमाकाशप्रदेशसंज्ञया भणितम् ।

सर्वेषां चाणूनां शक्नोति तदातुमवकाशम् ॥ ४८ ॥

आकाशस्यैकाणुव्याप्योऽंशः किलाकाशप्रदेशः, स खल्वेकोपि शेषपञ्चद्रव्यप्रदेशानां परम-  
सौक्ष्मपरिणतानन्तपरमाणुस्कन्धानां चावकाशदानसमर्थः । अस्ति चाविभागैकद्रव्यत्वेऽप्यं-  
शकल्पनमाकाशस्य, सर्वेषामणूनामवकाशदानस्यान्यथानुपपत्तेः । यदि पुनराकाशस्यांश न  
स्युरिति मतिस्तदाङ्गुलीयुगलं नभसि प्रसार्य निरूप्यतां किमेकं क्षेत्रं किमनेकं ? एकं चे-  
त्किमभिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन किं वा भिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन ? अभिन्नांशाऽवि-  
भागैकद्रव्यत्वेन चेत् येनांशैर्नैकस्या अङ्गुलेः क्षेत्रं तेनांशेनेतरस्या इत्यन्यतरांशाभावः । एवं

रागादिविभावत्यागेन ध्येयमिति तात्पर्यम् ॥ ४७ ॥ एवं कालव्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले  
गाथाद्वयं गतम् । अथ पूर्वं यत्सूचितं प्रदेशस्वरूपं तदिदानीं विवृणोति;—आगासमणुणि-  
विष्टं आकाशं अणुनिविष्टं पुद्गलपरमाणुव्याप्तम् । आगासपदेससण्णया भणिटं आकाश-  
प्रदेशसंज्ञया भणितं कथितम् । सव्वेसिं च अणूणं सर्वेषामणूनां चकारात्सूक्ष्मस्कन्धानां  
च सक्कदि तं देदुमवकासं शक्नोति स आकाशप्रदेशो दातुमवकाशम् । तस्याकाशप्र-  
देशस्य यदीत्यंभूतमवकाशदानसामर्थ्यं न भवति तदानन्तानन्तो जीवराशिस्तस्या-  
दप्यनन्तगुणपुद्गलशराशिक्ष्वांसल्येयप्रदेशलोके कथमवकाशं लभते । तच्च विस्तरेण पूर्वं भणि-  
तमेव । अथ मतं—अखण्डाकाशद्रव्यस्य प्रदेशविभावः कथं घटते ? परिहारमाह—चिदानन्दैकत्व-

अंशरूप ही है उससे दूसरे अंश किसतरह होसकते हैं ? कदाचित भी नहीं ॥ ४७ ॥  
आगे आकाशके प्रदेशका लक्षण कहते हैं;—[ अणुनिविष्टं ] परमाणुसे व्याप्त ( रोक  
गया ) जो [ आकाशं ] आकाशद्रव्य है वह [ आकाशप्रदेशसंज्ञया ] आकाशका  
प्रदेश ऐसे नामसे [ भणितं ] भगवन्तदेवने कहा है [ तत् ] वह आकाशका एक  
प्रदेश [ सर्वेषां ] अन्य सबद्रव्योंके प्रदेशोंको [ च ] और [ अणूनां ] परमसूक्ष्म-  
पनेको परिणत हुए ऐसे अनंतपुद्गलस्कंधोंको [ अचकाशं ] जगह [ दातुं ] देनेकी  
[ शक्नोति ] समर्थ है ॥ भावार्थ—जितने आकाशको एक परमाणु रोककर स्थित  
हो उतने आकाशका नाम प्रदेश है । इससे सूक्ष्म क्षेत्र कोईभी नहीं है जैसा कि यह  
प्रदेश सूक्ष्म है, इसमें अन्य अंशोंकी कल्पना नहीं होती । तथा उस सूक्ष्म आकाशके  
प्रदेशमें जगह देनेकी ऐसी ही शक्ति है कि पांचद्रव्योंके भी प्रदेश रहते  
हैं और अनंतपुद्गलपरमाणु तथा अनंतपुद्गलस्कंध भी रहते हैं । यह आकाशमें अबगाह  
( जगह ) देनेकी कोई एक ऐसी ही अतिशयमहिमायुक्त शक्ति है । यहां पर कोई प्रभ

वृत्तेर्हि समयादर्थान्तरभूतत्वादस्ति समयविशिष्टत्वं । कालवृत्तेस्तु स्वतः समयभूत-  
त्वात्तत्रास्ति ॥ ४९ ॥

अथ कालपदार्थोर्ध्वप्रचयनिरन्वयत्वमुपहन्ति;—

उत्पादो पद्वंसो विज्जदि जदि जस्स एकसमयस्मि ।

समयस्स सोवि समओ सभावसमवट्ठिदो हवदि ॥ ५० ॥

उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि यस्यैकसमये ।

समयस्य सोपि समयः स्वभावसमवस्थितो भवति ॥ ५० ॥

समयो हि समयपदार्थस्य वृत्त्यंशः तस्मिन् कस्याप्यवश्यमुत्पादप्रध्वंसौ संभवतः, पर-  
माणोर्व्यतिपातोत्पद्यमानत्वेन कारणपूर्वत्वात् । तौ यदि वृत्त्यंशस्यैव किं यौगपद्येन किं  
क्रमेण ? यौगपद्येन चेत् नास्ति यौगपद्यं, सममेकस्य विरुद्धधर्मयोरनवतारात् । क्रमेण चेत्  
नास्ति क्रमः, वृत्त्यंशस्य सूक्ष्मत्वेन विभागाभावात् । ततो वृत्तिमान् कोप्यवश्यमनुस-

यस्तु कालस्य समयसन्तानरूप ऊर्ध्वताप्रचयस्तस्य काल एवोपादानकारणं सहकारिकारणं च ।  
कस्मात्? कालस्य भिन्नसमयाभावात्पर्याया एव समया भवन्तीत्यभिप्रायः ॥ ४९ ॥ एवं सप्तमस्थले स्वत-  
न्नगाथाद्वयं गतम् । अथ समयसन्तानरूपस्योर्ध्वप्रचयस्थान्वयिरूपेणाधारभूतं कालद्रव्यं व्यवस्थाप-  
यति;—उत्पादो पद्वंसो विज्जदि जदि उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि चेत् । कस्य । जस्स  
यस्य कालाणोः । क ? एकसमयस्मि एकसमये वर्तमानसमये समयस्स समयोत्पादकत्वात्स-  
मयः कालाणुस्तस्य सोवि समओ सोऽपि कालाणुः सहावसमवट्ठिदो होदि स्वभावसमव-  
स्थितो भवति । पूर्वोक्तमुत्पादप्रध्वंसद्वयं तदाधारभूतं कालाणुद्रव्यरूपं ध्रौव्यमिति त्रयात्मकस्वभा-  
वसत्तास्तिवमिति यावत् । तत्र सम्यगवस्थितः स्वभावः समवस्थितो भवति । तथाहि—यथाङ्गुलिद्रव्ये  
यस्मिन्नेव वर्तमानक्षणे वक्रपरिणामस्योत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैवाङ्गुलिद्रव्यस्य पूर्वजुपर्यायेण

कालका ऊर्ध्वप्रचय अन्यसे नहीं, क्योंकि कालकी परिणतिका भेद कालहीके समयपर्याय-  
यसे गिननेमें आता है । इसकारण कालके ऊर्ध्वप्रचयको निमित्त व उपादानकारण आप  
काल ही जानना । अन्य पांचद्रव्य अपने ऊर्ध्वप्रचयको उपादानकारण हैं, कालका ऊर्ध्वप्रचय  
उसजगह निमित्तकारण है ॥ ४९ ॥ आगे कहते हैं कि यद्यपि समयसंतानरूप ऊर्ध्व-  
प्रचयसे कालपदार्थ उत्पन्न होता है तथा विनाश पाता है तौभी द्रव्यपनेसे ध्रौव्य है;—  
[ यस्य समयस्य ] जिस कालाणुरूप द्रव्यसमयका [ एकसमये ] एकही अति-  
सूक्ष्म कालसमयमें [ यदि ] जो [ उत्पादः ] उत्पन्न होना [ प्रध्वंसः ] विनाश  
होना [ विद्यते ] प्रवर्तता है तो [ सोपि ] वह भी [ समयः ] कालपदार्थ [ स्व-  
भावसमवस्थितः ] अविनाशीस्वभावमें स्थिररूप [ भवति ] होता है ॥ भा-  
वार्थ—कालपदार्थका समयपर्याय है उसमें पूर्वपर्यायका नाश उत्तरपर्यायका उत्पाद अ-  
वश्य होता है, क्योंकि जब पुद्गलपरमाणु पूर्वकालाणुको छोड़कर आगेकी कालाणुके

सुद्रलस्यं द्रव्येणानेकप्रदेशत्वशक्तियुक्तैकप्रदेशत्वात्पर्यायेण द्विबहुप्रदेशत्वाच्चास्ति तिर्यक्प्रचयः । न पुनः कालस्य शक्त्या, व्यक्त्या चैकप्रदेशत्वात् । ऊर्ध्वप्रचयस्तु त्रिकोटिस्त्रि-  
त्वेन सांशत्वाद्द्रव्यवृत्तेः सर्वद्रव्याणामनिवारित एव । अयं तु विशेषः समयविशिष्टवृत्ति-  
प्रचयः शेषद्रव्याणामूर्ध्वप्रचयः समयप्रचयः एव कालस्योर्ध्वप्रचयः । शेषद्रव्याणां

वहवः संख्यातीतास्ततोऽनन्ताश्च । द्रव्याणां च पदेसा संति हि कालद्रव्यं विहाय पञ्चद्रव्याणां  
सम्बन्धिन एते प्रदेशा यथासम्भवं सन्ति हि स्फुटम् । समयत्ति कालस्य कालस्य पुनः पूर्वो-  
क्तसंख्योपेताः समयाः सन्तीति । तथा—एकाकारपरमसमरसीभाद्यपरिणतपरमानन्दैकलक्षणसु-  
खामृतभरितावस्थानां केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपानन्तगुणाधारभूतानां लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येय-  
प्रदेशानां मुक्तात्मपदार्थे योऽसौ प्रचयः समूहः समुदायो राशिः स । किं किं भण्यते । तिर्यक्प्रचयाः  
तिर्यक्सामान्यमिति विस्तारसामान्यमिति अक्रमानेकान्त इति च भण्यते । स च प्रदेशप्रचयलक्षण-  
स्तिर्यक्प्रचयो यथा मुक्तात्मद्रव्ये भणितस्तथा कालं विहाय स्वकीयस्वकीयप्रदेशसंख्यानुसारेण  
शेषद्रव्याणां स भवतीति तिर्यक्प्रचयो व्याख्यातः । प्रतिसमयवर्तिनां पूर्वोत्तरपर्यायाणां मुक्ता-  
फलमालावत्सन्तान ऊर्ध्वप्रचय इत्युक्तसामान्यमित्यायतसामान्यमिति क्रमानेकान्त इति च भण्यते ।  
स च सर्वद्रव्याणां भवति । किन्तु पञ्चद्रव्याणां सम्बन्धी पूर्वापरपर्यायसन्तानरूपो योऽसावूर्ध्व-  
ताप्रचयस्तस्य स्वकीयस्वकीयद्रव्यमुपादानकारणम् । कालस्तु प्रतिसमयं सहकारिकारणं भवति ।

[ कालस्य ] कालद्रव्यका [ समय इति ] समय पर्यायरूप एक प्रदेश [ हि ]  
निश्चयकर जानना चाहिये ॥ भावार्थ—जिनद्रव्योंके बहुत प्रदेश होने उन्हें तिर्यक्-  
प्रचय कहते हैं, क्योंकि प्रदेशोंके समूहका नाम तिर्यक्प्रचय है । अनेक समयोंका  
नाम ऊर्ध्वप्रचय है । सो यह ऊर्ध्वप्रचय सब द्रव्योंके होता है, क्योंकि अतीत अना-  
गत वर्तमान कालके अनेक समयोंमें सब द्रव्य परिणमन करते हैं । तिर्यक्प्रचय एक  
कालद्रव्यके बिना सबके जानना चाहिये । आकाशद्रव्यके निश्चल अनंत प्रदेश हैं, धर्म  
और अधर्म इन द्रव्योंके निश्चल असंख्यातप्रदेश हैं, जीवके संकोच विस्तारकी अपेक्षा  
अधिर असंख्यातप्रदेश हैं, पुद्गलके यद्यपि द्रव्यपनेसे एक प्रदेश है तौ भी मिलनशक्ति-  
रूप पर्यायकी अपेक्षा दोसे लेकर संख्यात-असंख्यात-अनंतप्रदेश जानने, कालद्रव्य एक-  
प्रदेशमात्र है इसमें कालाणुओंकी आपसमें मिलनशक्ति नहीं है । इसकारण पांच  
द्रव्योंके बहुतप्रदेश होनेसे तिर्यक्प्रचय है, काल प्रदेशमात्र है इसलिये उसके तिर्यक्  
प्रचय नहीं है । ऊर्ध्वप्रचय तो सब द्रव्योंके है, क्योंकि सभी द्रव्य समय २ में परिणमन  
करते हैं । यहांपर इतना विशेष जानना कि पांच द्रव्योंका जो ऊर्ध्वप्रचय है वह  
कालके ऊर्ध्वप्रचयसे जाना जाता है, क्योंकि कालद्रव्य सब द्रव्योंकी परिणति होनेको  
सहायक है । इसकारण कालके समयपर्यायसे सब द्रव्योंकी परिणतिका भेद गिनाजाता  
है । इसीलिये कालके ऊर्ध्वप्रचयसे अन्यपांचद्रव्योंका ऊर्ध्वप्रचयरूप भेद गिनलेना,

वृत्तेर्हि समयादर्थान्तरभूतत्वादस्ति समयविशिष्टत्वं । कालवृत्तेस्तु स्वतः समयभूत-  
त्वात्तत्रास्ति ॥ ४९ ॥

अथ कालपदार्थोर्ध्वप्रचयनिरन्वयत्वमुपहन्ति;—

उत्पादो पद्वंसो विज्जदि जदि जस्स एकसमयस्मि ।

समयस्स सोवि समओ सभावसमवट्ठिदो हवदि ॥ ५० ॥

उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि यस्यैकसमये ।

समयस्य सोपि समयः स्वभावसमवस्थितो भवति ॥ ५० ॥

समयो हि समयपदार्थस्य वृत्त्यंशः तस्मिन् कस्याप्यवश्यमुत्पादप्रध्वंसौ संभवतः, पर-  
माणोर्व्यतिपातोत्पद्यमानत्वेन कारणपूर्वत्वात् । तौ यदि वृत्त्यंशस्यैव किं यौगपद्येन किं  
क्रमेण ? यौगपद्येन चेत् नास्ति यौगपद्यं, समभेकस्य विरुद्धधर्मयोरनवतारात् । क्रमेण चेत्  
नास्ति क्रमः, वृत्त्यंशस्य सूक्ष्मत्वेन विभागाभावात् । ततो वृत्तिमान् कोप्यवश्यमनुस-

यस्तु कालस्य समयसन्तानरूप ऊर्ध्वताप्रचयस्तस्य काल एवोपादानकारणं सहकारिकारणं च ।  
कस्मात्? कालस्य भिन्नसमयाभावात्पर्याया एव समया भवन्तीत्यभिप्रायः ॥ ४९ ॥ एवं सप्तमस्थले स्वत-  
न्त्राथाद्वयं गतम् । अथ समयसन्तानरूपस्योर्ध्वप्रचयस्यान्वयिरूपेणाधारभूतं कालद्रव्यं व्यवस्थाप-  
यति;—उत्पादो पद्वंसो विज्जदि जदि उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि चेत् । कस्य । जस्स  
यस्य कालाणोः । क ? एकसमयस्मि एकसमये वर्तमानसमये समयस्स समयोत्पादकत्वात्स-  
मयः कालाणुस्तस्य सोवि समओ सोऽपि कालाणुः सहावसमवट्ठिदो होदि स्वभावसमव-  
स्थितो भवति । पूर्वोक्तमुत्पादप्रध्वंसद्वयं तदाधारभूतं कालाणुद्रव्यरूपं ध्रौव्यमिति त्रयात्मकस्वभा-  
वसत्तास्तित्वमिति यावत् । तत्र सम्यगवस्थितः स्वभावः समवस्थितो भवति । तथाहि—यथाङ्गुलिद्रव्ये  
यस्मिन्नेव वर्तमानक्षणे वक्रपरिणामस्थोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैवाङ्गुलिद्रव्यस्य पूर्वोत्पत्पर्यायेण

कालका ऊर्ध्वप्रचय अन्यसे नहीं, क्योंकि कालकी परिणतिका भेद कालहीके समयपर्या-  
यसे गिननेमें आता है । इसकारण कालके ऊर्ध्वप्रचयको निमित्त व उपादानकारण आप  
काल ही जानना । अन्य पांचद्रव्य अपने ऊर्ध्वप्रचयको उपादानकारण हैं, कालका ऊर्ध्वप्रचय  
उसजगह निमित्तकारण है ॥ ४९ ॥ आगे कहते हैं कि यद्यपि समयसंतानरूप ऊर्ध्व-  
प्रचयसे कालपदार्थ उत्पन्न होता है तथा विनाश पाता है तौभी द्रव्यपनेसे ध्रौव्य है;—  
[ यस्य समयस्य ] जिस कालाणुरूप द्रव्यसमयका [ एकसमये ] एकही अति-  
सूक्ष्म कालसमयमें [ यदि ] जो [ उत्पादः ] उत्पन्न होता [ प्रध्वंसः ] विनाश  
होना [ विद्यते ] प्रवर्तता है तो [ सोपि ] वह भी [ समयः ] कालपदार्थ [ स्व-  
भावसमवस्थितः ] अविनाशीस्वभावमें स्थिररूप [ भवति ] होता है ॥ भा-  
वार्थ—कालपदार्थका समयपर्याय है उसमें पूर्वपर्यायका नाश उत्तरपर्यायका उत्पाद अ-  
वश्य होता है, क्योंकि जब पुद्गलपरमाणु पूर्वकालाणुको छोड़कर आगेकी कालाणुके



सुद्रलस्य द्रव्येणानेकप्रदेशत्वशक्तिसुक्तैकप्रदेशत्वात्पर्यायेण द्विबहुप्रदेशत्वाच्चास्ति तिर्यक्प्रचयः । न पुनः कालस्य शक्त्या, व्यक्त्या चैकप्रदेशत्वात् । ऊर्ध्वप्रचयस्तु त्रिकोदिसार्धित्वेन सांशत्वाद्द्रव्यवृत्तेः सर्वद्रव्याणामनिवारित एव । अयं तु विशेषः समयविशिष्टवृत्तिप्रचयः शेषद्रव्याणामूर्ध्वप्रचयः समयप्रचयः एव कालस्योर्ध्वप्रचयः । शेषद्रव्याणां

वहवः संख्यातीतास्ततोऽनन्ताश्च । द्रव्याणं च पदेसा संति हि कालद्रव्यं विहाय पञ्चद्रव्याणां सम्बन्धिन एते प्रदेशा यथासम्भवं सन्ति हि स्फुटम् । समयस्ति कालस्य कालस्य पुनः पूर्वोक्तसंख्योपेताः समयाः सन्तीति । तद्यथा—एकाकारपरमसमरसीभावपरिणतपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतभरितावस्थानां केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपानन्तगुणाधारभूतानां लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयप्रदेशानां मुक्तात्मपदार्थे योऽसौ प्रचयः समूहः समुदायो राशिः स । किं किं भण्यते । तिर्यक्प्रचयाः तिर्यक्सामान्यमिति विस्तारसामान्यमिति अक्रमानेकान्त इति च भण्यते । स च प्रदेशप्रचयलक्षणस्तिर्यक्प्रचयो यथा मुक्तात्मद्रव्ये भणितस्तथा कालं विहाय स्वकीयस्वकीयप्रदेशसंख्यानुसारेण शेषद्रव्याणां स भवतीति तिर्यक्प्रचयो व्याख्यातः । प्रतिमयवर्तिनां पूर्वोत्तरपर्यायाणां मुक्ताफलमालावत्सन्तान ऊर्ध्वप्रचय इत्युक्तसामान्यमित्यायंतसामान्यमिति क्रमानेकान्त इति च भण्यते । स च सर्वद्रव्याणां भवति । किन्तु पञ्चद्रव्याणां सम्बन्धी पूर्वापरपर्यायसन्तानरूपो योऽसौ पूर्वोत्तरप्रचयस्तस्य स्वकीयस्वकीयद्रव्यमुपादानकारणम् । कालस्तु प्रतिसमयं सहकारिकारणं भवति ।

[ कालस्य ] कालद्रव्यका [ समय इति ] समय पर्यायरूप एक प्रदेश [ हि ] निश्चयकर जानना चाहिये ॥ भावार्थ—जिनद्रव्योंके बहुत प्रदेश होवें उन्हें तिर्यक्प्रचय कहते हैं, क्योंकि प्रदेशोंके समूहका नाम तिर्यक्प्रचय है । अनेक समयोंका नाम ऊर्ध्वप्रचय है । सो यह ऊर्ध्वप्रचय सब द्रव्योंके होता है, क्योंकि अतीत अनागत वर्तमान कालके अनेक समयोंमें सब द्रव्य परिणमन करते हैं । तिर्यक्प्रचय एक कालद्रव्यके बिना सबके जानना चाहिये । आकाशद्रव्यके निश्चल अनंत प्रदेश हैं, धर्म और अधर्म इन द्रव्योंके निश्चल असंख्यातप्रदेश हैं, जीवके संकोच विस्तारकी अपेक्षा अधिर असंख्यातप्रदेश हैं, पुद्गलके यद्यपि द्रव्यपनेसे एक प्रदेश है तो भी मिलनशक्तिरूप पर्यायकी अपेक्षा दोसे लेकर संख्यात-असंख्यात-अनंतप्रदेश जानने, कालद्रव्य एक-प्रदेशमात्र है इसमें कालाणुओंकी आपसमें मिलनशक्ति नहीं है । इसकारण पांच द्रव्योंके बहुतप्रदेश होनेसे तिर्यक्प्रचय है, काल प्रदेशमात्र है इसलिये उसके तिर्यक्प्रचय नहीं है । ऊर्ध्वप्रचय तो सब द्रव्योंके है, क्योंकि सभी द्रव्य समय २ में परिणमन करते हैं । यहांपर इतना विशेष जानना कि पांच द्रव्योंका जो ऊर्ध्वप्रचय है वह कालके ऊर्ध्वप्रचयसे जाना जाता है, क्योंकि कालद्रव्य सब द्रव्योंकी परिणति होनेकी सहायक है । इसकारण कालके समयपर्यायसे सब द्रव्योंकी परिणतिका भेद गिनाजाता है । इसीलिये कालके ऊर्ध्वप्रचयसे अन्यपांचद्रव्योंका ऊर्ध्वप्रचयरूप भेद गिनलेना,

अथ सर्ववृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यवत्त्वं साधयति;—

एकस्मि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्टा ।

समयस्स सव्वकालं एस हि कालाणुसव्भावो ॥ ५१ ॥

एकस्मिन् सन्ति समये संभवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः ।

समयस्य सर्वकालं एष हि कालाणुसद्भावः ॥ ५१ ॥

अस्ति हि समस्तेष्वपि वृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वमेकस्मिन् वृत्त्यंशे तस्य दर्शनात्, उपपत्तिमञ्चैतत् विशेषास्तित्वस्य सामान्यास्तित्वमन्तरेणानुपपत्तेः । अयमेव च समयपदार्थस्य सिद्ध्यति सद्भावः । यदि विशेषसामान्यास्तित्वे सिद्ध्यतस्तदा त अस्तित्वमन्तरेण न सिद्ध्यतः कथञ्चिदपि ॥ ५१ ॥

अथ कालपदार्थस्यास्तित्वान्यथानुपपत्त्या प्रदेशमात्रत्वं साधयति;—

क्तप्रकारेण यथा वर्त्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितम् तथा सर्वसमयेष्वस्तीति निश्चिनोति;—एगम्हि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्टा एकस्मिन्समये सन्ति विद्यन्ते । के । सम्भवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः धर्माः स्वभावा इति यावत् । कस्य सम्बन्धिनः ? समयस्स समयरूपपर्यायस्योत्पादकत्वात् समयः कालाणुस्तस्य सव्वकालं यद्येकस्मिन् वर्त्तमानसमये सर्वदा तथैव एस हि कालाणुसव्भावो एष प्रत्यक्षीभूतो हि स्फुटमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मककालाणुसद्भाव इति । तद्यथा—यथा पूर्वमेकसमयोत्पादप्रध्वंसाधारेणाङ्गुलिद्रव्यादिदृष्टान्तेन वर्त्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितं तथा सर्वसमयेषु ज्ञातव्यमिति । अत्र यद्यप्यतीतानन्तकाले दुर्लभायाः सर्वप्रकारोपादेयभूतायाः सिद्ध्यगतेः काललब्धिरूपेण बहिरङ्गसहकारी भवति कालस्तथापि निश्चयनयेन निजशुद्धात्मतत्त्वसम्बन्धज्ञानज्ञानानुष्ठानसमस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणरूपा तपश्चरणरूपा या तु निश्चयचतुर्विधाराधना सैव तत्रोत्पादनकारणं न च कालस्तेन कारणेन स हेय इति भावार्थः ॥ ५१ ॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकास्तित्वावष्ट-

पर्यायोंमें कालपदार्थके उत्पाद व्यय ध्रौव्य सिद्ध होते हैं ऐसा कहते हैं;—[ एकस्मिन् समये ] एक समयपर्यायमें [ समयस्य ] कालाणुरूप कालपदार्थके [ संभवस्थितिनाशसंज्ञिताः ] उत्पाद स्थिति नाश नामके [ अर्थाः ] तीनों भाव [ सन्ति ] प्रवर्तते हैं [ एषः हि ] यह उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप ही [ कालाणुसद्भावः ] कालद्रव्यका अस्तित्व [ सर्वकालं ] सदाकाल रहता है ॥ भावार्थ—एक ही समय कालपदार्थके उत्पाद—व्यय और ध्रौव्य ये तीनों भाव होते हैं । और जैसे कालद्रव्य एकसमयमें उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यरूप परिणमन करता है उसीप्रकार सयसमयोंमें भी परिणमता है । कालाणुद्रव्य तो ध्रौव्य रहता है पूर्वसमयका नाश और आगेके समयका उत्पाद होता है । इसतरह ये तीनों भाव हमेशा सिद्ध होते हैं ॥ ५१ ॥ आगे कालपदार्थ प्रदेशमात्र कालाणुरूप न होवे तो उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यरूप अस्तित्व

तैव्यः, स च समयपदार्थ एव । तस्य खल्वेकस्मिन्नपि वृत्त्यंशे समुत्पादप्रध्वंसो संभवतः । यो हि यस्य वृत्तिमतो यस्मिन् वृत्त्यंशे तद्वृत्त्यंशविशिष्टत्वेनोत्पादः स एव तस्यैव वृत्तिमतस्तस्मिन्नेव वृत्त्यंशे पूर्ववृत्त्यंशविशिष्टत्वेन प्रध्वंसः । यद्येवमुत्पादव्ययावेकस्मिन्नपि वृत्त्यंशे संभवतः समयपदार्थस्य कथं नाम निरन्वयत्वं, यतः पूर्वोत्तरवृत्त्यंशविशिष्टत्वाभ्यां युगपदुपात्तप्रध्वंसोत्पादस्यापि स्वभावेनाप्रध्वस्तानुत्पन्नत्वादवस्थितत्वमेव न भवेत् । एवमेकस्मिन् वृत्त्यंशे समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यवत्त्वं सिद्धम् ॥ ५० ॥

प्रध्वंसस्तदाधारभूताङ्गुलिद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । अथवा स्वस्वभावरूपसुखेनोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैवात्मद्रव्यस्य पूर्वानुभूताकुलत्वदुःखरूपेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । अथवा मोक्षपर्यायरूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे रत्नत्रयामकनिश्चयमोक्षमार्गपर्यायरूपेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । तथा वर्त्तमानसमयरूपपर्यायेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैव कालाणुद्रव्यस्य पूर्वसमयरूपपर्यायेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारभूताङ्गुलिद्रव्यस्थानीयेन कालाणुद्रव्यरूपेण ध्रौव्यमिति कालद्रव्यसिद्धिरित्यर्थः ॥५०॥ अथ पूर्वो-

समीप मंदगतिसे जाता है वहां समयपर्याय उत्पन्न होता है । इसकारण पूर्वका नाश और आगेकी पर्यायकी उत्पत्ति एकसमय होती है । यहांपर कोई प्रश्न करे कि कालद्रव्यमें उत्पाद व्यय होना क्यों कहते हो समयपर्यायको ही उत्पाद व्ययसहित होना मानलेना चाहिये ? तो इसका समाधान इसतरहसे है कि—जो समयपर्यायका ही उत्पाद व्यय मानाजावे तो एकसमयमें उत्पाद—व्यय नहीं बनसकते, क्योंकि उत्पाद—व्यय ये दोनों प्रकाश—अंधकारकी तरह आपसमें विरोधी हैं । इसकारण एकपर्यायसमयका उत्पाद—व्यय एक कालमें किसतरह होसकता है ? नहीं होसकता । यदि ऐसा कहो “कि एकसमयमें क्रमसे समयपर्यायका उत्पाद—व्यय होता है” तो ऐसाभी ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि समय अत्यंत सूक्ष्म है उसमें क्रमसे भेद हो ही नहीं सकता । इसीलिये एकसमयमें समयपर्यायका उत्पाद व्यय नहीं संभव होता है । कालाणुरूप द्रव्यसमयको अंगीकार करनेसे उत्पाद—व्यय एकही समयमें अच्छीतरह सिद्ध होते हैं । इसकारण कालाणुरूप द्रव्यसमय ही अविनाशी ध्रौव्यद्रव्य स्वीकार करना चाहिये । उस द्रव्यकालाणुके एकसमयमें पूर्वसमयपर्यायका नाश और उत्तरसमयपर्यायका उत्पाद होता है तथा द्रव्यपने ध्रौव्य है । इसप्रकार द्रव्यके ध्रौव्य माननेसे एकसमयमें उत्पाद—व्यय—ध्रौव्य अच्छीतरह सिद्ध होते हैं । यदि कालाणुद्रव्य न मानाजावे तो ये उत्पादादि तीनों भाव सिद्ध नहीं होसके । जैसे हाथकी उंगली टेढी करनेसे उस उंगलीके पूर्व सीधे पर्यायका नाश होता है, वक्र ( टेढा ) पर्यायका उत्पाद होता है, और अंगुलीपने ध्रौव्य है; उसीप्रकार कालद्रव्यके उत्पाद व्यय और ध्रौव्य जानने चाहिये ॥ ५० ॥ आगे सब समय-

अथ सर्ववृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यवत्त्वं साधयति;—

एकस्मि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्टा ।

समयस्स सब्बकालं एस हि कालाणुसब्भावो ॥ ५१ ॥

एकस्मिन् सन्ति समये संभवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः ।

समयस्य सर्वकालं एष हि कालाणुसद्भावः ॥ ५१ ॥

अस्ति हि समस्तेष्वपि वृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वमेकस्मिन् वृत्त्यंशे तस्य दर्शनात्, उपपत्तिमच्चैतत् विशेषास्तित्वस्य सामान्यास्तित्वमन्तरेणानुपपत्तेः । अयमेव च समयपदार्थस्य सिद्धयति सद्भावः । यदि विशेषसामान्यास्तित्वे सिद्धयतस्तदा त अस्तित्वमन्तरेण न सिद्धयतः कथञ्चिदपि ॥ ५१ ॥

अथ कालपदार्थस्यास्तित्वान्यथानुपपत्त्या प्रदेशमात्रत्वं साधयति;—

कप्रकारेण यथा वर्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितम् तथा सर्वसमयेष्वस्तीति निश्चिनोति;—एगम्हि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्टा एकस्मिन्समये सन्ति विद्यन्ते । के । सम्भवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः धर्माः स्वभावा इति यावत् । कस्य सम्बन्धिनः ? समयस्स समयरूपपर्यायस्योत्पादकत्वात् समयः कालाणुस्तस्य सब्बकालं यथेकस्मिन् वर्तमानसमये सर्वदा तथैव एस हि कालाणुसब्भावो एष प्रत्यक्षीभूतो हि स्फुटमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मककालाणुसद्भाव इति । तद्यथा—यथा पूर्वमेकसमयोत्पादप्रध्वंसाधारेणाङ्गुलिद्रव्यादिदृष्टान्तेन वर्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितं तथा सर्वसमयेषु ज्ञातव्यमिति । अत्र यद्यप्यतीतानन्तकाले दुर्लभायाः सर्वप्रकारोपादेयभूतायाः सिद्धगतेः काललब्धिरूपेण बहिरङ्गसहकारी भवति कालस्तथापि निश्चयनयेन निजशुद्धात्मतत्त्वसम्बन्धनज्ञानानुष्ठानसमस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणरूपा तपश्चरणरूपा या तु निश्चयचतुर्विधाराधना सैव तत्रोत्पादनकारणं न च कालस्तेन कारणेन स हेय इति भावार्थः ॥ ५१ ॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकास्तित्वावष्ट-

पर्यायोंमें कालपदार्थके उत्पाद व्यय ध्रौव्य सिद्ध होते हैं ऐसा कहते हैं;—[ एकस्मिन् समये ] एक समयपर्यायमें [ समयस्य ] कालाणुरूप कालपदार्थके [ संभवस्थितिनाशसंज्ञिताः ] उत्पाद स्थिति नाश नामके [ अर्थाः ] तीनों भाव [ सन्ति ] प्रवर्तते हैं [ एषः हि ] यह उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप ही [ कालाणुसद्भावः ] कालद्रव्यका अस्तित्व [ सर्वकालं ] सदाकाल रहता है ॥ भावार्थ—एक ही समय कालपदार्थके उत्पाद—व्यय और ध्रौव्य ये तीनों भाव होते हैं । और जैसे कालद्रव्य एकसमयमें उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यरूप परिणमन करता है उसीप्रकार सयसमयोंमें भी परिणमता है । कालाणुद्रव्य तो ध्रौव्य रहता है पूर्वसमयका नाश और आगेके समयका उत्पाद होता है । इसतरह ये तीनों भाव हमेशा सिद्ध होते हैं ॥ ५१ ॥ आगे कालपदार्थ प्रदेशमात्र कालाणुरूप न होवे तो उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यरूप अस्तित्व

जस्स ण संतिं पदेसा पदेसमेत्तं व तच्चदो णाहुं ।

सुण्णं जाण तमत्थं अत्थंतरभूदमत्थीदो ॥ ५२ ॥

यस्य न सन्ति प्रदेशाः प्रदेशमात्रं वा तत्त्वतो ज्ञातुम् ।

शून्यं जानीहि तमर्थमर्थान्तरभूतमस्तित्वात् ॥ ५२ ॥

अस्तित्वं हि तावदुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मिका वृत्तिः । न खलु सा प्रदेशमन्तरेण सूच्य-  
माणा कालस्य संभवति, यतः प्रदेशभावे वृत्तिमदभावः । स तु शून्य एव, अस्तित्वसं-  
ज्ञाया वृत्तेरर्थान्तरभूतत्वात् । न च वृत्तिरेव केवला कालो भवितुमर्हति, वृत्तेर्हि वृत्ति-  
मन्तमन्तरेणानुपपत्तेः । उपपत्तौ वा कथमुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मकत्वं । अनाद्यन्तनिर-  
न्तरानेकांशवशीकृतैकात्मकत्वेन पूर्वपूर्वांशप्रध्वंसादुत्तरोत्तरांशोत्पादादेकात्मध्रौव्यादिति चेत् ।  
नैवं । यस्मिन्नंशे प्रध्वंसो यस्मिंश्चोत्पादस्तयोः सह प्रवृत्त्यभावात् कुतस्त्वमैक्यं । तथा  
प्रध्वस्तांशस्य सर्वथास्तमितत्वादुत्पद्यमानांशस्य वा संभवितात्मलाभत्वात्प्रध्वंसोत्पादैक्यव-

म्भेन कालस्यैकप्रदेशत्वं साधयति;—जस्स ण संतिं यस्य पदार्थस्य न सन्ति न विद्यन्ते ।  
के ? पएसा प्रदेशाः पएसमेत्तं तु प्रदेशमात्रमेकप्रदेशप्रमाणं पुनस्तद्वस्तु तच्चदो णाहुं  
तत्त्वतः पदार्थतो ज्ञातुं शक्यते । सुण्णं जाण तमत्थं यस्यैकोऽपि प्रदेशो नास्ति तमर्थं पदार्थं  
शून्यं जानीहि हे शिष्य ! कस्माच्छून्यमिति चेत् ? अत्थंतरभूदं एकप्रदेशभावे सत्यर्थान्तर-  
भूतं भिन्नं भवति यतः कारणात् । कस्याः सकाशाद्भिन्नम् ? अत्थीदो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकस-  
त्ताया इति । तथाहि—कालपदार्थस्य तावत्पूर्वसूत्रोदितप्रकारेणोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमस्तित्वं विद्यते  
तच्चास्तित्वं प्रदेशं विना न घटते । यच्च प्रदेशवान् स कालपदार्थ इति । अथ मतं कालद्रव्या-  
भावेऽप्युत्पादव्ययध्रौव्यत्वं घटते । नैवं । अङ्गुलिद्रव्याभावे वर्त्तमानवक्रपर्यायोत्पादो भूतर्जुपर्यायस्य

भी नहीं बनसकता यह सिद्ध करते हैं;—[ यस्य ] जिस द्रव्यके [ प्रदेशाः ] क्षेत्रके  
निर्विभाग अनेक अंश [ न सन्ति ] नहीं हैं [ च ] और [ प्रदेशमात्रं ] एकप्रदे-  
शमात्रभी [ तत्त्वतः ] स्वरूपसे [ ज्ञातुं ] जाननेको [ 'न' ] नहीं है तो [ तं  
अर्थ ] उस द्रव्यको [ शून्यं ] अस्तित्वरहित अर्थात् अवस्तुभूत [ जानीहि ] तुम  
जानो ॥ भाचार्य—पदार्थका अस्तित्व उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यसे होता है । इसलिये वह  
अस्तित्व जो द्रव्यके प्रदेश न होवें तो नहीं होता । यदि कालद्रव्यका एकप्रदेश भी न  
मानाजाये तो उस कालपदार्थका मूलसे नाश होजावेगा । यदि कोई ऐसा कहे कि स-  
मयपर्याय ही मानो प्रदेशमात्र कालाणुद्रव्य माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है । तो उससे  
यह पूछना है कि, पर्यायवाले ध्रौव्यके बिना समयपर्याय किसतरह होसकताहै ? जो  
ऐसा कहो कि द्रव्यविना ही समयपर्याय उत्पन्न होता है तो उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकता  
एककाल किसतरह होसकती है ? जो ऐसा मानो “कि अनादिअनंत निरंतर अनेकसमयप-  
र्याय अंशोंकी परंपरामें पूर्वपूर्व समय अंशका नाश होता है अगले अंशका उत्पाद है

तिर्ध्रौव्यमेव कुतस्त्वं । एवं सति नश्यति त्रैलक्षण्यं, उल्लसति क्षणभङ्गः, अस्तमुपैति नित्यं द्रव्यं, उदीर्यन्ते क्षणक्षयिणो भावाः । ततस्तत्त्वविप्लवभयात्कश्चिदवश्यमाश्रयो भूतो वृत्ते-  
वृत्तिमाननुसर्तव्यः । स तु प्रदेश एवाप्रदेशस्यान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वाप्रसिद्धेः । एवं  
सप्रदेशत्वे हि कालस्य कुत एकद्रव्यनिबन्धनं लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वं नाम्युप-  
गम्येत । पर्यायसमयाप्रसिद्धेः । प्रदेशमात्रं हि द्रव्यसमयमतिक्रामतः परमाणोः पर्यायः  
समयः प्रसिद्धयति । लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वे तु द्रव्यसमयस्य कुतस्त्या तत्सिद्धिः ।  
लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशैकद्रव्यत्वेपि तस्यैकप्रदेशमतिक्रामतः परमाणोस्तत्सिद्धिरिति

विनाशस्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं । कस्य भविष्यति ? न कस्यापि । तथा कालद्रव्याभावे वर्तमान-  
समयरूपोत्पादो भूतसमयरूपो विनाशस्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं । कस्य भविष्यति ? न कस्यापि ।  
एवं सत्येतदायाति—अन्यस्य भङ्गोऽन्यस्योत्पादोऽन्यस्य ध्रौव्यमिति सर्वं वस्तुस्वरूपं विप्लवते ।  
तस्माद्द्वस्तुविप्लवभयादुत्पादव्ययध्रौव्याणां कोऽप्येक आधारभूतोऽस्तीत्यभ्युपगन्तव्यः । स चैकप्रदेश-  
रूपः कालाणुपदार्थ एवेति । अत्रातीतानन्तकाले ये केचन सिद्धसुखभाजनं जाता, भाविकाले  
चात्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवदित्यादिविशेषेण विशिष्टसिद्धसुखस्य भाजनं भविष्यन्ति ते सर्वेऽपि  
परंपरासंतान द्रव्यपनेसे ध्रौव्य है । इसतरह द्रव्यविना ही ये तीनों भाव सधसकते हैं”  
तो ऐसा माननेसे तीनों भाव एकसमयमें सिद्ध नहीं होसकते, क्योंकि जिस अंशका  
नाश है उसका नाश ही है और जिसका उत्पाद है वह उत्पादरूपही है । उत्पाद—व्यय  
एकमें किसतरह होसकते हैं और ध्रौव्य भी कहां रहसक्ता है । और ऐसा माननेपर  
इन भावोंके नाश होनेका प्रसंग आता है तथा बौद्धमतका प्रवेश होता है । ऐसा होनेसे  
नित्यपनेका अभाव होजाइगा और द्रव्य क्षणविनाशी होने लगैगा इत्यादि अनेक दोष  
आजावेंगे । इसकारण समयपर्यायका आधारभूत प्रदेशमात्र कालद्रव्य अवश्य स्वीकार  
करना चाहिये । प्रदेशमात्रद्रव्यमें एक ही समय अच्छीतरह उत्पाद—व्यय—ध्रौव्य सध  
जाते हैं । जो कोई ऐसा कहै “कि कालद्रव्यके जव प्रदेशकी स्थापना की तो असंख्यात  
कालाणुओंको भिन्नमाननेकी क्या आवश्यकता है ? एक अखंड लोकपरिमाण द्रव्य मान-  
लेना चाहिये । उसीसे समय उत्पन्न होसकता है” तो उसका समाधान यह है कि जो  
अखंडकालद्रव्य होवे तो समयपर्याय उत्पन्न नहीं होसकता, क्योंकि पुद्गलपरमाणू जव  
एक कालाणूको छोड़कर दूसरी कालाणूप्रति मंदगतिसे जाता है तव उसजगह दोनों  
कालाणू जुदे २ होनेसे समयका भेद होता है । जो एक अखंड लोकपरिमाण कालद्रव्य  
होवे तो समयपर्यायकी सिद्धि किसतरह होसकती है । यदि कहो “कि कालद्रव्य लोक-  
परिमाण असंख्यातप्रदेशी है उसके एकप्रदेशसे दूसरे प्रदेश प्रति जव पुद्गलपरमाणू  
जाइगा तव समयपर्यायकी सिद्धि होजायगी” तो उसका उत्तर यह है कि ऐसा कहनेसे  
बड़ाभारी दोष आवेगा । वह इसप्रकार है—एक अखंडकालद्रव्यके एकप्रदेशसे दूसरे

जस्स ण संति पदेसा पदेसमेत्तं व तच्चदो णाहुं ।

सुण्णं जाण तमत्थं अत्थंतरभूदमत्थीदो ॥ ५२ ॥

यस्य न सन्ति प्रदेशाः प्रदेशमात्रं वा तत्त्वतो ज्ञातुम् ।

शून्यं जानीहि तमर्थमर्थान्तरभूतमस्तित्वात् ॥ ५२ ॥

अस्तित्वं हि तावदुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मिका वृत्तिः । न खलु सा प्रदेशमन्तरेण सूत्र्य-  
माणा कालस्य संभवति, यतः प्रदेशाभावे वृत्तिमदभावः । स तु शून्य एव, अस्तित्वसं-  
ज्ञाया वृत्तेरर्थान्तरभूतत्वात् । न च वृत्तिरेव केवला कालो भवितुमर्हति, वृत्तेर्हि वृत्ति-  
मन्तमन्तरेणानुपपत्तेः । उपपत्तौ वा कथमुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मकत्वं । अनाद्यन्तनि-  
न्तरानेकांशवशीकृतैकात्मकत्वेन पूर्वपूर्वांशप्रध्वंसादुत्तरोत्तरांशोत्पादादेकात्मध्रौव्यादितिचेत् ।  
नैवं । यस्मिन्नंशे प्रध्वंसो यस्मिंश्चोत्पादस्तयोः सह प्रवृत्त्यभावात् कुतस्त्यमैक्यं । तथा  
प्रध्वस्तांशस्य सर्वथास्तमितत्वादुत्पद्यमानांशस्य वा संभवितात्मलाभत्वात्प्रध्वंसोत्पादैक्यव-

म्भेन कालस्यैकप्रदेशत्वं साधयति;—जस्स ण संति यस्य पदार्थस्य न सन्ति न विद्यन्ते ।  
के ? पएसा प्रदेशाः पएसमेत्तं तु प्रदेशमात्रमेकप्रदेशप्रमाणं पुनस्तद्वस्तु तच्चदो णाहुं  
तत्त्वतः पदार्थतो ज्ञातुं शक्यते । सुण्णं जाण तमत्थं यस्यैकोऽपि प्रदेशो नास्ति तमर्थं पदार्थं  
शून्यं जानीहि हे शिष्य ! कस्माच्छून्यमिति चेत् ? अत्थंतरभूदं एकप्रदेशाभावे सत्यर्थान्तर-  
भूतं भिन्नं भवति यतः कारणात् । कस्याः सकाशाद्भिन्नम् ? अत्थीदो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकस-  
त्ताया इति । तथाहि—कालपदार्थस्य तावत्पूर्वसूत्रोदितप्रकारेणोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमस्तित्वं विद्यते  
तच्चास्तित्वं प्रदेशं विना न घटते । यश्च प्रदेशवान् स कालपदार्थ इति । अथ मतं कालद्रव्या-  
भावेप्युत्पादव्ययध्रौव्यत्वं घटते । नैवं । अङ्गुलिद्रव्याभावे वर्तमानवक्रपर्यायोत्पादो भूतर्जुपर्यायस्य

भी नहीं घनसकता यह सिद्ध करते हैं;—[ यस्य ] जिस द्रव्यके [ प्रदेशाः ] क्षेत्रके  
निर्बिभाग अनेक अंश [ न सन्ति ] नहीं हैं [ च ] और [ प्रदेशमात्रं ] एकप्रदे-  
शमात्रभी [ तत्त्वतः ] स्वरूपसे [ ज्ञातुं ] जाननेको [ 'न' ] नहीं है तो [ तं  
अर्थ ] उस द्रव्यको [ शून्यं ] अस्तित्वरहित अर्थात् अवस्तुभूत [ जानीहि ] तुम  
जानो ॥ भाचार्य—पदार्थका अस्तित्व उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यसे होता है । इसलिये वह  
अस्तित्व जो द्रव्यके प्रदेश न होवें तो नहीं होता । यदि कालद्रव्यका एकप्रदेश भी न  
मानाजावे तो उस कालपदार्थका मूलसे नाश होजावेगा । यदि कोई ऐसा कहे कि स-  
मयपर्याय ही मानो प्रदेशमात्र फालाणुद्रव्य माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है । तो उससे  
यह पूछना है कि, पर्यायवाले ध्रौव्यके विना समयपर्याय किसतरह होसकताई ? जो  
ऐसा कहे कि द्रव्यविना ही समयपर्याय उत्पन्न होता है तो उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकता  
एककाल किसतरह होसकती है ? जो ऐसा मानो “कि अनादिअनंत निरंतर अनेकसमयप-  
र्याय अंशोंकी परंपरामें पूर्वपूर्व समय अंशका नाश होता है अगले अंशका उत्पाद है

एव यः समाप्तिं नीतो लोकस्तं खलु तदन्तःपातित्वेप्यचिन्त्यस्वपरपरिच्छेदशक्ति-  
संपदा जीव एव जानीते नत्वितरः । एवं शेषद्रव्याणि ज्ञेयमेव, जीवद्रव्यं तु ज्ञेयं  
ज्ञानं चेति ज्ञानज्ञेयविभागः । अथास्य जीवस्य सहजविवृम्भितानन्तज्ञानशक्तिहेतुके त्रिसम-  
यावस्थायित्वलक्षणे वस्तुस्वरूपभूततया सर्वदानपायिनि निश्चयजीवत्वे सत्यपि संसारा-  
वस्थायामनादिप्रवाहप्रवृत्तपुद्गलसंश्लेषदूषितात्मतया प्राणचतुष्काभिसंबद्धत्वं व्यवहारजी-  
वत्वहेतुर्विभक्तव्योऽस्ति ॥ ५३ ॥

अतःपरं शुद्धजीवस्य द्रव्यभावप्राणैः सह भेदनिमित्तं “सपदेसेहिं समगो” इत्यादि यथाक्रमेण  
गाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावनाव्याख्यानं करोति । तद्यथा । अथ ज्ञानज्ञेयज्ञापनार्थं तथै-  
वात्मनः प्राणचतुष्केन सह भेदभावनार्थं वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—**‘लोगो’** लोको भवति ।  
कथंभूतः । **‘णिट्टिदो’** निष्ठितः समाप्तिं नीतो भूतो वा । **‘कैः कर्तृभूतैः’** । **‘अट्टेहिं’** सहजशुद्धबुद्धै-  
कस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतयो येष्योऽर्थास्तैः । पुनरपि किंविशिष्टः । **‘सपदेसेहिं’**  
**‘समगो’** स्वकीयप्रदेशैः समग्रः परिपूर्णः । अथवा पदार्थैः कथंभूतैः । सप्रदेशैः प्रदेशसहितैः ।  
पुनरपि किंविशिष्टो लोकः । **‘णिच्चो’** द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः लोकाकाशापेक्षया वा । अथवा  
नित्यो न केनापि पुरुषविशेषेण कृतः **‘जो तं जाणदि’** यः कर्त्ता तं ज्ञेयभूतलोकं जानाति  
**‘जीवो’** स जीवपदार्थो भवति । एतावता किमुक्तं भवति योऽसौ विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो जीवः स  
ज्ञानं ज्ञेयश्च भण्यते । शेषपदार्थास्तु ज्ञेया एवेति ज्ञातृज्ञेयविभागः । पुनरपि किंविशिष्टो जीवः ।  
**‘पाणचउक्केण संबद्धो’** यद्यपि निश्चयेन स्वतःसिद्धपरमचैतन्यस्वभावेन निश्चयप्राणेन जीव इति  
तथा व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशादायुराद्यशुद्धप्राणचतुष्केनापि सम्बद्धः सन् जीवति । तच्च

कहते हैं;—[ **सप्रदेशैः** ] अपने २ प्रदेशोंसे संयुक्त [ **अर्थैः** ] सब पदार्थोंसे [ **स-  
मग्रः** ] भराहुआ ऐसा जो [ **लोकः** ] यह तीनलोक है वह [ **नित्यः** ] अनादिअ-  
नंत [ **निष्ठितः** ] निश्चल ठहरा हुआ है [ **तं** ] उस द्रव्यस्वरूपलोकको [ **यः** ] जो  
द्रव्य जानता है [ **सः** ] वह द्रव्य [ **जीवः** ] चेतनालक्षणवाला जीवनामा जानना  
चाहिये । वह जीवद्रव्य [ **प्राणचतुष्काभिसंबद्धः** ] इंद्रिय-बल-आयु-उच्छ्वास इन  
चार प्राणोंसे युक्त है ॥ **भावार्थ**—यह लोक ६ द्रव्योंसे रचित है सदाकाल अवि-  
नाशी है । तथा इसलोकमें छह द्रव्योंमेंसे अचिंत्यशक्ति और अपना-परका जाननेवाला  
एक जीवद्रव्य ही है दूसरा कोई नहीं । इससे यह बातसिद्ध हुई कि अन्य पांचद्रव्य  
तो ज्ञेय हैं और जीवद्रव्य ज्ञानभी है तथा ज्ञेयभी है, ऐसे ज्ञानज्ञेयका भेद जानना ।  
और यद्यपि यह जीव वस्तुस्वरूपसे स्वाभाविक उत्पन्न ज्ञानादि शक्तिसहित तीनोंकाल  
अविनाशी टंकोत्कीर्ण है तौभी संसार अवस्थामें अनादिपुद्गलके संयोगसे दूषित हुआ  
चार प्राणोंसे संबन्ध रखता है । वे चार प्राण व्यवहारजीवके कारण हैं । इन चार प्रा-  
णोंसे इस जीवका भेद करने योग्य है, जिससे कि यह जीव साहजिक (स्वाभाविक) अ-



चेन्नैवं, एकदेशवृत्तेः सर्ववृत्तित्वविरोधात् । सर्वस्यापि हि कालपदार्थस्य यः सूक्ष्मो वृत्त्यंशः स समयो न तत्तदेकदेशस्य, तिर्यक्प्रचयस्योर्ध्वप्रचयत्वप्रसंगाच्च । तथाहि—प्रथममेकेन प्रदेशेन वर्तते ततोऽन्येन ततोऽप्यन्यतरेणेति तिर्यक्प्रचयोऽप्यूर्ध्वप्रचयीभूय प्रदेशमात्रं द्रव्यमवस्थापयति । ततस्तिर्यक्प्रचयस्योर्ध्वप्रचयत्वमनिच्छता प्रथममेव प्रदेशमात्रं कालद्रव्यं व्यवस्थापयितव्यम् ॥ ५२ ॥

अथैवं ज्ञेयतत्त्वमुक्त्वा ज्ञानज्ञेयविभागेनात्मानं निश्चिन्वन्नात्मनोत्यन्तविभक्तत्वाय व्यवहारजीवत्वहेतुमालोचयति;—

सपदेसेहिं समग्गो लोगो अट्टेहिं णिट्ठिदो णिच्चो ।

जो तं जाणदि जीवो पाणचडुक्काहिसंबद्धो ॥ ५३ ॥

स्वप्रदेशैः समग्रो लोकोऽर्थैर्निष्ठितो नित्यः ।

यस्तं जानाति जीवः प्राणचतुष्काभिसंबद्धः ॥ ५३ ॥

एवमाकाशपदार्थादाकालपदार्थाच्च समस्तैरेव संभावितप्रदेशसद्भावैः पदार्थैः समग्र

काललब्धिवशेनैव । तथापि तत्र निजपरमात्मोपादेयरुचिरूपं वीतरागचारित्राविनाभूतं यन्निश्चयसम्पत्त्वं तस्यैव मुख्यत्वं, न च कालस्य, तेन स हेय इति । तथा चोक्तम्—“किं पलत्रि-एणबहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले सिद्धिहहिं जेवि भविया तं जाणह सम्ममाहणं” ॥ ५२ ॥ एवं निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टमस्थले गाथात्रयं गतम् । इति पूर्वोक्तप्रकारेण “द्वयं जीवमजीवं” इत्याद्येकोनविंशतिगाथाभिः स्थलांशकेन विशेषज्ञेयाधिकारः समाप्तः ॥

प्रदेश प्रति जानेसे समयपर्यायका भेद नहीं होता, क्योंकि अखंडद्रव्यसे एकप्रदेशमें समयपर्यायके होनेपर सभी जगह समयपर्याय है । कालकी एकतासे समयका भेद नहीं होसक्ता । इसलिये ऐसा है कि सबसे सूक्ष्म कालपर्याय समय है । वह कालाणूके भिन्न २ पनेसे सिद्ध होता है, एकतासे नहीं । और भी कालके अखंड माननेसे दोष आता है—कालके तिर्यक्प्रचय नहीं है ऊर्ध्वप्रचय है । जो कालको असंख्यातप्रदेशी मानाजावे तो कालके तिर्यक्प्रचय होना चाहिये वही तिर्यक् ऊर्ध्वप्रचय होजावेगा । वह इसतरहसे है—असंख्यातप्रदेशी काल प्रथम तो एकप्रदेशकर प्रवृत्त होता है इससे आगे अन्यप्रदेशकर प्रवृत्त होता है उससे भी आगे अन्यप्रदेशकर प्रवृत्त होता है इसतरह क्रमसे असंख्यातप्रदेशोंसे प्रवृत्त होवै तो तिर्यक्प्रचयही ऊर्ध्वप्रचय होजावेगा । एक एक प्रदेशवियें कालद्रव्यको क्रमसे प्रवृत्त होनेसे कालद्रव्यभी प्रदेशमात्र ही स्थित ( सिद्ध ) होता है । इसकारण जो पुरुष तिर्यक्प्रचयको ऊर्ध्वप्रचयदोष नहीं चाहते हैं वे पहलेही प्रदेशमात्र कालद्रव्यको मानें जिससे कि कालद्रव्यकी सिद्धि अच्छीतरह होवै ॥ ५२ ॥ इसतरह पूर्वोक्त विशेषज्ञेयतत्त्वका वर्णन किया । आगे ज्ञान-ज्ञेयसे आत्माका निश्चयकरके उसको समस्त परभावोंसे शुद्ध दिखलानेके लिये व्यवहारजीवपनेका कारण

प्राणसामान्येन जीवति जीविष्यति जीवितवांश्च पूर्वमिति जीवः । एवमनादिसंतानप्रवर्तमानतया त्रिसमयावस्थत्वात्प्राणसामान्यं जीवस्य जीवत्वहेतुरस्त्येव । तथापि तन्न जीवस्य स्वभावत्वमवाप्नोति पुद्गलद्रव्यनिर्वृत्तत्वात् ॥ ५५ ॥

अथ प्राणानां पौद्गलिकत्वं साधयति;—

जीवो पाणनिबद्धो बद्धो मोहादिएहिं कम्मेहिं ।

उचभुंजं कम्मफलं वज्झदि अण्णेहिं कम्मेहिं ॥ ५६ ॥

जीवः प्राणनिबद्धो बद्धो मोहादिकैः कर्मभिः ।

उपभुञ्जानः कर्मफलं वध्यतेऽन्यैः कर्मभिः ॥ ५६ ॥

यतो मोहादिभिः पौद्गलिककर्मभिर्बद्धत्वाज्जीवः प्राणनिबद्धो भवति । यतश्च प्राणनिब-

भेदेन दश प्राणास्तेऽपि चिदानन्दैकस्वभावात्परमात्मनो निश्चयेन भिन्ना ज्ञातव्या इत्यभिप्रायः ॥ १ ॥ अथप्राणशब्दव्युत्पत्त्या जीवस्य जीवत्वं प्राणानां पुद्गलस्वरूपत्वं च निरूपयति;—  
पाणेहिं चउहिं जीवदि यद्यपि निश्चयेन सत्ताचैतन्यसुखबोधादिशुद्धभावप्राणैर्जीवति तथापि व्यवहारेण वर्तमानकाले द्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिरशुद्धप्राणैर्जीवति जीवस्सदि जीविष्यति भाविकाले जो हि जीविदो यो हि स्फुटं जीवितः पुवं पूर्वकाले सो जीवो स जीवो भवति ते पाणा ते पूर्वोक्ताः प्राणाः पुगलदव्वेहिं णिव्वत्ता उदयागतपुद्गलकर्मणा निर्वृत्ता निष्पन्ना इति । तत एव कारणात्पुद्गलद्रव्यविपरीतादनन्तज्ञानदर्शनसुखश्रीर्याद्यनन्तगुणस्वभावात्परमात्मतत्त्वाद्भिन्ना भावयितव्या इति भावः ॥ ५५ ॥ अथ प्राणानां यत्पूर्वसूत्रोदितं पौद्गलिकत्वं तदेव दर्शयति;—जीवो पाणनिबद्धो जीवः कर्त्ता चतुर्भिः प्राणैर्निबद्धः सम्बद्धो भवति । कथंभूतः सन् । बद्धो शुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षादिविलक्षणैर्बद्धः । कैर्बद्धः । मोहादिएहिं कम्मेहिं मोहनीयादिकर्मभिर्बद्धस्ततो ज्ञायते मोहादिकर्मभिर्बद्धः सन् प्राणनिबद्धो भवति, न च

आत्मा [ हि ] निश्चयसे [ चतुर्भिः प्राणैः ] पहले कहेहुए इंद्रियादि चार प्राणोंसे [ जीवति ] जीता है [ जीविष्यति ] जीवेगा [ पूर्व जीवितः ] पहले जीता था [ सः ] वह [ जीवः ] जीवद्रव्य है [ पुनः ] और [ प्राणाः ] चारों प्राण [ पुद्गलद्रव्यैः ] पुद्गलद्रव्यसे [ निर्वृत्ताः ] रचेगये हैं ॥ भावार्थ—यद्यपि यह जीव निश्चयसे आत्मीक निजलक्षणरूप मुख सत्ता अवबोध चैतन्यरूप प्राणोंकर सदा अविनाशी जीवित है तौभी संसारअवस्थामें अनादिकालसे परद्रव्यसंतानके संबंधसे तीनकालवर्ती चारोंगतिके पर्यायोंमें जीवितव्यके कारण व्यवहार प्राणोंसे जीवित कहागया है । वास्तवमें ये चारोंप्राण आत्माके निजस्वरूप नहीं है पुद्गलद्रव्यसे रचित हैं । इसलिये परभावरूपही हैं ॥ ५५ ॥ आगे प्राणोंको पुद्गलीक दिखलाते हैं;—[ मोहादिकैः कर्मभिः ] मोहरागद्वेषभावआदि पुद्गलीक अनेककर्मोंसे [ बद्धः ] बंधाहुआ [ जीवः ] आत्मा [ प्राणनिबद्धः ] चार प्राणोंमें बंधा है और उन प्राणोंके संबंधसे ही [ कर्मफलं ]

अथ के प्राणा इत्यावेदयति;—

इंद्रियपाणो य तथा बलपाणो तह य आउपाणो य ।

आणप्पाणप्पाणो जीवानां होंति प्राणा ते ॥ ५४ ॥

इन्द्रियप्राणश्च तथा बलप्राणस्तथा चायुःप्राणश्च ।

आनपानप्राणो जीवानां भवन्ति प्राणास्ते ॥ ५४ ॥

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रपञ्चकमिन्द्रियप्राणाः, कायवाङ्मनस्त्रयं बलप्राणाः, भवधारण-  
निमित्तमायुःप्राणः । उदञ्चनन्यञ्चनात्मको मरुदानपानप्राणः ॥ ५४ ॥

अथ प्राणानां निरुक्त्या जीवत्वहेतुत्वं पौद्गलिकत्वं च सूत्रयति;—

पाणेहि चद्दुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हि जीविदो पुवं ।

सो जीवो पाणा पुण पोग्गलदब्बेहिं णिव्वत्ता ॥ ५५ ॥

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीविष्यति यो हि जीवितः पूर्वम् ।

स जीवः प्राणाः पुनः पुद्गलद्रव्यैर्निर्वृत्ताः ॥ ५५ ॥

शुद्धनयेन जीवस्वरूपं न भवतीति भेदभावना ज्ञातव्येत्यभिप्रायः ॥ ५३ ॥ अथेन्द्रियादिप्रा-  
णचतुष्कस्वरूपं प्रतिपादयति;—अतीन्द्रियानन्तसुखाभावादात्मनो विलक्षण इन्द्रियप्राणः, मनो-  
वाकायव्यापाररहितात्परमात्मद्रव्यादिसदृशो बलप्राणः, अनाद्यनन्तस्वभावात्परमात्मपदार्थादिपरीतः  
साद्यन्त आयुःप्राणः, उच्छ्वासनिश्वासजनितखेदरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वात्प्रतिपक्षभूत आनपानप्राणः ।  
एवमायुरिन्द्रियबलोच्छ्वासरूपेणाभेदनयेन जीवानां सम्बन्धिनश्चत्वारः प्राणा भवन्ति । ते च  
शुद्धनयेन जीवाद्भिन्ना भावयित्तव्या इति ॥ ५४ ॥ अथ त एव प्राणा भेदनयेन दशविधा भ-  
वन्तीत्यावेदयति;—

पंचवि इंद्रियपाणा मणवच्चिकाया य तिण्णि बलपाणा ।

आणप्पाणप्पाणो आउगपाणेण होंति दसपाणा ॥ १ ॥

इन्द्रियप्राणः पञ्चविधः, त्रिधा बलप्राणः, पुनश्चैक आनपानप्राणः, आयुःप्राणः । इति

पने निश्चयस्वभावको प्राप्त होजावे ॥ ५३ ॥ आगे व्यवहारजीवके कारण जो प्राण कहे  
उन्हींको कहते हैं;—[ इन्द्रियप्राणः ] पांच इन्द्रियप्राण [ च तथा ] और इसी-  
तरह [ बलप्राणः ] तीन बलप्राण [ च तथा ] और इसीप्रकार [ आयुःप्राणः ]  
आयुप्राण [ च ] और [ आनपानप्राणाः ] उस्वासनिश्वास नामा प्राण [ ते ]  
ये सब [ प्राणाः ] १० प्राण [ जीवानां ] जीवोंके होते हैं ॥ भावार्थ—स्पर्शन-  
रसन-घ्राण-चक्षु-कर्ण ये पांच इंद्रियप्राण, कायबल १ वचनबल २ मनोबल ३ ये तीन  
बलप्राण, मनुष्यादिपर्यायकी स्थितिका हेतु आयुःप्राण और श्वासोच्छ्वासप्राण इसप्रकार १०  
विशेषप्राण हैं और चार सामान्य प्राण सभी जीवोंके होते हैं ॥ ५४ ॥ आगे इन प्राणोंको  
व्यवहार जीवके कारण कहते हुए पुद्गलीक हैं ऐसा दिखाते हैं;—[यः] जो पैतृन्यस्वरूप

प्राणसामान्येन जीवति जीविष्यति जीवितवांश्च पूर्वमिति जीवः । एवमनादिसंतानप्रवर्तमानतया त्रिसमयावस्थत्वात्प्राणसामान्यं जीवस्य जीवत्वहेतुरस्त्येव । तथापि तत्र जीवस्य स्वभावत्वमवाप्नोति पुद्गलद्रव्यनिर्वृत्तत्वात् ॥ ५५ ॥

अथ प्राणानां पौद्गलिकत्वं साधयति;—

जीवो पाणणिबद्धो बद्धो मोहादिगृहिं कम्मेहिं ।

उवभुजं कम्मफलं वज्झदि अण्णेहिं कम्मेहिं ॥ ५६ ॥

जीवः प्राणनिबद्धो बद्धो मोहादिकैः कर्मभिः ।

उपभुञ्जानः कर्मफलं वध्यतेऽन्यैः कर्मभिः ॥ ५६ ॥

यतो मोहादिभिः पौद्गलिककर्मभिर्वद्धत्वाजीवः प्राणनिबद्धो भवति । यतश्च प्राणनिब-

भेदेन दश प्राणास्तेऽपि चिदानन्दैकस्वभावात्परमात्मनो निश्चयेन भिन्ना ज्ञातव्या इत्यभिप्रायः ॥ १ ॥ अथप्राणशब्दव्युत्पत्त्या जीवस्य जीवत्वं प्राणानां पुद्गलस्वरूपत्वं च निरूपयति;— पाणेहिं चउहिं जीवदि यद्यपि निश्चयेन सत्ताचैतन्यसुखबोध्यादिशुद्धभावप्राणैर्जीवति तथापि व्यवहारेण वर्तमानकाले द्रव्यभावस्वरूपैश्चतुर्भिरशुद्धप्राणैर्जीवति जीवस्सदि जीविष्यति भाविकाले जो हि जीविदो यो हि स्फुटं जीवितः पुञ्चं पूर्वकाले सो जीवो स जीवो भवति ते पाणा ते पूर्वोक्ताः प्राणाः पुग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता उदयागतपुद्गलकर्मणा निर्वृत्ता निष्पन्ना इति । तत एव कारणात्पुद्गलद्रव्यविपरीतादनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्याद्यनन्तगुणस्वभावात्परमात्मतत्त्वाद्भिन्ना भावयितव्या इति भावः ॥ ५५ ॥ अथ प्राणानां यत्पूर्वसूत्रोदितं पौद्गलिकत्वं तदेव दर्शयति;—जीवो पाणणिबद्धो जीवः कर्त्ता चतुर्भिः प्राणैर्निबद्धः सम्बद्धो भवति । कथंभूतः सन् । बद्धो शुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षादिविलक्षणैर्वद्धः । कैर्वद्धः । मोहादिगृहिं कम्मेहिं मोहनीयादिकर्मभिर्वद्धस्ततो ज्ञायते मोहादिकर्मभिर्वद्धः सन् प्राणनिबद्धो भवति, न च

आत्मा [ हि ] निश्चयसे [ चतुर्भिः प्राणैः ] पहले कहेहुए इंद्रियादि चार प्राणोंसे [ जीवति ] जीता है [ जीविष्यति ] जीवेगा [ पूर्व जीवितः ] पहले जीता था [ सः ] वह [ जीवः ] जीवद्रव्य है [ पुनः ] और [ प्राणाः ] चारों प्राण [ पुद्गलद्रव्यैः ] पुद्गलद्रव्यसे [ निर्वृत्ताः ] रचेगये हैं ॥ भावार्थ—यद्यपि यह जीव निश्चयसे आत्मीक निजलक्षणरूप सुख सत्ता अवबोध चैतन्यरूप प्राणोंकर सदा अविनाशी जीवित है तौभी संसारअवस्थामें अनादिकालसे परद्रव्यसंतानके संबंधसे तीनकालवर्ती चारोंगतिके पर्यायोंमें जीवितव्यके कारण व्यवहार प्राणोंसे जीवित कहागया है । वास्तवमें ये चारोंप्राण आत्माके निजस्वरूप नहीं हैं पुद्गलद्रव्यसे रचित हैं । इसलिये परभावरूपही हैं ॥ ५५ ॥ आगे प्राणोंको पुद्गलीक दिखलाते हैं;—[ मोहादिकैः कर्मभिः ] मोहरागद्वेषभावआदि पुद्गलीक अनेककर्मोंसे [ बद्धः ] बंधाहुआ [ जीवः ] आत्मा [ प्राणनिबद्धः ] चार प्राणोंमे बंधा है और उन प्राणोंके संबंधसे ही [ कर्मफलं ]

द्वत्वात्पौद्गलिककर्मफलमुपभुञ्जानः पुनरप्यन्यैः पौद्गलिककर्मभिर्बध्यते । ततः पौद्गलिककर्मकार्यत्वात्पौद्गलिककर्मकारणत्वाच्च पौद्गलिका एव प्राणा निश्चीयन्ते ॥ ५६ ॥

अथ प्राणानां पौद्गलिककर्मकारणत्वमुन्मीलयति;—

पाणाबाधं जीवो मोहपदेसेहिं कुणदि जीवाणं ।

जदि सो हवदि हि बंधो पाणावरणादिकम्मेहिं ॥ ५७ ॥

प्राणाबाधं जीवो मोहप्रद्वेषाभ्यां करोति जीवयोः ।

यदि स भवति हि बन्धो ज्ञानावरणादिकर्मभिः ॥ ५७ ॥

प्राणैर्हि तावज्जीवः कर्मफलमुपभुङ्क्ते, तदुपभुञ्जानो मोहप्रद्वेषावाप्नोति ताभ्यां स्वजीवप-

कर्मबन्धरहित इति । तत एव ज्ञायते प्राणाः पुद्गलकर्मोदयजनिता इति । तथाविधः सन् किं करोति । उवभुंजदि कम्मफलं परमसमाधिसमुत्पन्नित्यानन्दैकलक्षणसुखामृतभोजनमलभमानः सन् कटुकविषसमानमपि कर्मफलमुपभुङ्क्ते । वज्झदि अण्णेहि कम्मेहिं तत्कर्मफलमुपभुञ्जानः सन्नयं जीवः कर्मरहितात्मनो विसदृशैरन्यकर्मभिर्नवतर्कर्मभिर्बध्यते । यतः कारणात्कर्मफलं भुञ्जानो नवतरकर्माणि बध्नाति, ततो ज्ञायते प्राणा नवतरपुद्गलकर्मणां कारणभूता इति ॥ ५६ ॥ अथ प्राणा नवतरपुद्गलकर्मबन्धस्य कारणं भवन्तीति पूर्वोक्तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति;—पाणाबाधं आयुरादिप्राणानां बाधां पीडां कुणदि करोति । स कः । जीवो जीवः । काम्यां कृत्वा । मोहपदेसेहिं सकलविमलकेवलज्ञानप्रदीपेन मोहान्धकारविनाशकात्परमात्मनो विपरीताभ्यां मोहप्रद्वेषाभ्यां । केषां प्राणबाधां करोति ? जीवाणं एकेन्द्रियप्रमुखजीवानाम् । जदि यदि चेत् सो हवदि बंधो तदा स्वात्मोपलम्भप्राप्तिरूपान्मोक्षाद्विपरीतो मूलोत्तरप्रकृत्यादिभेदभिन्नः स परमागमप्रसिद्धो हि स्फुटं बन्धो भवति । कैः कृत्वा । पाणा-

उदयअवस्थाको प्राप्तहुए कर्मोंके फलको [ उपभुञ्जानः ] भोगता हुआ [ अन्यैः कर्मभिः ] अन्य नवीन ज्ञानावरणादि कर्मोंसे [ बध्यते ] बंधता है ॥ भावार्थ—यह आत्मा राग द्वेष मोहभावोंकर परिणमन करनेसे ही पुद्गलीक चार प्राणोंको धारण करता है । और यह पुद्गलीक मोहादिक भावोंसे बंधाहुआ प्राणोंसे बद्ध होता है । इसकारण इन प्राणोंका कारण पुद्गलद्रव्य है । कारणके समान ही कार्य होता है इसलिये ये प्राणभी पुद्गलीक हैं । और इन प्राणोंकर उदयको प्राप्तहुए कर्मोंके भोगसे नवीन पुद्गलीककर्म बंधते हैं इसकारण ये प्राण पुद्गलके कारण हैं, इसतरहभी प्राण पुद्गलीक जानने । इससे यह यात सिद्ध हुई कि ये प्राण पुद्गलसे उत्पन्न हुए हैं और पुद्गलको उत्पन्न भी करते हैं इसवासे पुद्गलीक हैं ॥ ५६ ॥ आगे नूतन पुद्गलीककर्मके कारण प्राण हैं ऐसा दिखलाते हैं;—[ यदि ] जो [ सः ] वह . प्राणसंयुक्त [ जीवः ] संसारी आत्मा [ मोहप्रद्वेषाभ्यां ] रागद्वेषभावोंसे [ जीवयोः ] स्वजीव तथा परजीवोंके [ प्राणाबाधं ] प्राणोंका घात [ करोति ] करता है [ तदा ] तब [ हि ] निश्चयसे

रजीवयोः प्राणावाधं विदधाति । तदा कदाचित्परस्य द्रव्यप्राणानावाध्य कदाचिदना-  
वाध्य स्वस्य भावप्राणानुपरक्तत्वेन वाधमानो ज्ञानावरणादीनि कर्माणि वधाति । एवं  
प्राणाः पौद्गलिककर्मकारणतामुपयान्ति ॥ ५७ ॥

अथ पुद्गलप्राणसन्ततिप्रवृत्तिहेतुमन्तरङ्गमासूत्रयति;—

आदा कम्ममल्लिमसो धारदि पाणे पुणो पुणो अण्णे ।

ण जहदि जाव ममत्तं देहपधानेसु विसएसु ॥ ५८ ॥

आत्मा कर्ममलीमसो धारयति प्राणान् पुनः पुनरन्यान् ।

न जहाति यावन्ममत्वं देहप्रधानेषु विषयेषु ॥ ५८ ॥

वरणादिकम्मेहिं ज्ञानावरणादिकर्मभिरिति । ततो ज्ञायते प्राणाः पुद्गलकर्मबन्धकारणं भव-  
न्तीति । अयमत्रार्थः—यथा कोऽपि तप्तलोहपिण्डेन परं हन्तुकामः सन् पूर्वं तावदात्मानमेव  
हन्ति पश्चादन्यघाते नियमो नास्ति, तथायमज्ञानी जीवोऽपि तप्तलोहपिण्डस्थानीयमोहादिपरिणा-  
मेन परिणतः सन् पूर्वं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्वरूपं स्वकीयशुद्धप्राणं हन्ति पश्चादुत्तरकाले  
परप्राणघाते नियमो नास्तीति ॥ ५७ ॥ अथेन्द्रियादिप्राणोत्पत्तेरन्तरङ्गहेतुमुपदिशति;—आ-  
दाकम्ममल्लिमसो अयमात्मा स्वभावेन भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहितत्वेनात्यन्तनिर्मलोऽपि  
व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशात्मलीमसो भवति । तथाभूतः सन् किं करोति । धरेदि पाणे  
पुणो पुणो अण्णे धारयति प्राणान् पुनःपुनः अन्यान्यवतरान् । यावरिकम् ? ण चयदि जाव  
ममत्तं निस्सेहचिच्चमत्कारपरिणतेर्विपरीतां ममतां यावत्कालं न त्यजति । केषु विषयेषु ? देह-  
पधानेषु विसयेसु देहविषयरहितपरमचैतन्यप्रकाशपरिणतेः प्रतिपक्षभूतेषु देहप्रधानेषु पञ्चेन्द्रि-

इसके [ ज्ञानावरणादिकर्मभिः ] ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे [ बन्धः ] प्रकृति-  
स्थित्यादिरूप बंध [ भवति ] होता है ॥ भावार्थ—यह जीव प्राणोंकर कर्मफलको  
भोगता है और उस फलको भोगताहुआ इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष करता है, उन  
रागद्वेषभावोंसे अपने ज्ञानप्राणका नाश करता है तथा अन्यजीवोंके द्रव्यप्राणोंका घात  
करता है । जब यह रागद्वेषभावोंसे परिणमन करता है तब अन्यजीवके द्रव्यप्राणोंका  
घात होवे अथवा न होवे परंतु आप तो अवश्य रागी द्वेषी हुवा अपना घात करलेता  
है । दूसरी बात यह है कि जब यह जीव रागी द्वेषी होता है तब अनेकतरहके बंध  
करता है, और प्राणोंके संबंधसे पुद्गलीक बंधको करता है । इसलिये ये प्राण पुद्गलीक  
कर्मके कारण हैं ॥ ५७ ॥ आगे इन प्राणोंकी संतानकी उत्पत्तिका अंतरंगकारण बत-  
लाते हैं;—[ कर्ममलीमसः ] अनादिकालसे लेकर कर्मोंकर मैला जो [ आत्मा ]  
जीवद्रव्य है वह [ तावत् ] तबतक [ पुनः पुनः ] धारधार [ अन्यान् ] दूसरे  
नवीन [ प्राणान् ] प्राणोंको [ धारयति ] धारण करता है [ यावत् ] जयतक  
कि [ देहप्रधानेषु ] शरीर है मुख्य जिनमें ऐसे [ विषयेषु ] संसार शरीर भोग

योऽयमात्मनः पौद्गलिकप्राणानां सन्तानेन प्रवृत्तिः तस्या अनादिपौद्गलकर्म मूलं; शरी-  
रादिममत्वरूपमुपरक्तत्वमन्तरङ्गो हेतुः ॥ ५८ ॥

अथ पुद्गलप्राणसंततिनिवृत्तिहेतुमन्तरङ्गं ग्राहयति;—

जो इंदियादिविजई भवीय उवओगमप्पगं झादि ।

कम्मोहिं सो ण रंजदि किह तं पाणा अणुचरंति ॥ ५९ ॥

य इन्द्रियादिविजयी भूत्वोपयोगमात्मकं ध्यायति ।

कर्मभिः स न रज्यते कथं तं प्राणा अनुचरन्ति ॥ ५९ ॥

पुद्गलप्राणसंततिनिवृत्तेरन्तरङ्गो हेतुर्हि पौद्गलिककर्ममूलस्योपरक्तत्वस्याभावः । स तु  
समस्तोन्द्रियादिपरद्रव्यानुविजयिनो भूत्वा समस्तोपाश्रयानुवृत्तिव्यावृत्तस्य स्फटिकमणेरि-

यविषयेष्विति । ततः स्थितमेतत् इन्द्रियादिप्राणोत्पत्तेर्देहादिममत्वमेवान्तरङ्गकारणमिति ॥ ५८ ॥

अथेन्द्रियादिप्राणानामभ्यन्तरविनाशकारणमावेदयति;—जो इंदियादिविजईभवीय यः क-  
र्त्तातीन्द्रियात्मोत्थसुखामृतसन्तोषबलेन जितेन्द्रियत्वेन निःकषायनिर्मलानुभूतिबलेन कषायजयेन  
पञ्चेन्द्रियादिविजयीभूत्वा उवओगमप्पगं झादि केवलज्ञानदर्शनोपयोगं निजात्मानं ध्यायति  
कम्मोहिं सो ण रंजदि कर्मभिश्चिचमत्कारादात्मनः प्रतिबन्धकैर्ज्ञानावरणादिकर्मभिः स न रज्यते  
न वष्यते । किह तं पाणा अणुचरंति कर्मबन्धाभावे सति तं पुरुषं प्राणाः कर्त्तारः कथमनु-  
चरन्ति कथमाश्रयन्ति ? न कथमपीति । ततो ज्ञायते कषायेन्द्रियविजयएव पञ्चेन्द्रियादिप्राणानां

आदिक विषयोंमें [ ममतां ] ममत्व बुद्धिको [ न जहाति ] नहीं छोड़देता ॥

भावार्थ—जयतक इस जीवके शरीरादिमेंसे ममत्वबुद्धि नहीं छूटती तबतक चतुर्गति-  
रूपसंसारके कारण प्राणोंको धारण करता है । इसकारण प्राणोंका अंतरंगकारण मम-  
ताभाव है वह सबतरहसे त्यागने योग्य है ॥ ५८ ॥ आगे इन पुद्गलीक प्राणोंकी संता-  
नके नाशका अंतरंगकारण कहते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ इन्द्रियादिविजयी-  
भूत्वा ] इंद्रिय कषाय अग्रतादिक विषयोंके जीतनेवाला होकर [ आत्मकं ] अपने  
[ उपयोगं ] समस्तपरभावोंसे भिन्न शुद्धचैतन्यस्वरूपका [ ध्यायति ] एकाग्रचित्त  
होकर अनुभवकरता है [ सः ] वह भेदविज्ञानी [ कर्मभिः ] समस्त शुभाशुभक-  
र्मोंसे [ न रज्यते ] रागी नहीं होता [ तं ] उसमहात्माको [ प्राणाः ] संसारसं-  
तानके कारण पुद्गलीक प्राण [ कथं ] किसतरह [ अनुचरन्ति ] संबंध करसके हैं ?  
किसीतरहसे भी नहीं ॥ भावार्थ—पुद्गलसंतानके अभावका कारण एक वीतरागभाव  
है । जैसे स्फटिकमणिकी शुद्धताका कारण उसके सनीप काली पीली हरीआदि वस्तुका  
अभाव है उसीतरह यह आत्मा सकलइंद्रियविकारोंसे रहित होके निजस्वरूपमें धिर हो-  
नेसे शुद्धस्वरूपको प्राप्त होता है, उसके बाद फिर प्राणधारणरूप दूसरा जन्म नहीं धा-

वात्यन्तविशुद्धमुपयोगमात्रमात्मानं सुनिश्चलं केवलमधिवसतः स्यात् । इदमत्र तात्पर्य-  
आत्मनोत्यन्तविभक्तसिद्धये व्यवहारजीवत्वहेतवः पुद्गलप्राणा एवमुच्छेतव्याः ॥ ५९ ॥

अथ पुनरस्यात्मनोत्यन्तविभक्तत्वसिद्धये गतिविशिष्टव्यवहारजीवत्वहेतुपर्यायस्वरूप-  
मुपवर्णयति;—

अत्थित्तणिच्छदस्स हि अत्थस्सत्थंतरम्मि संभूदो ।

अत्थो पज्जायो सो संठाणादिप्पभेदेहिं ॥ ६० ॥

अस्तित्वनिश्चितस्य ह्यर्थस्यार्थान्तरे संभूतः ।

अर्थः पर्यायः स संस्थानादिप्रभेदैः ॥ ६० ॥

खलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चितस्यैकस्यार्थस्य खलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चित एवा-  
न्यस्मिन्नर्थे विशिष्टरूपतया संभावितात्मलाभोर्थोऽनेकद्रव्यात्मकः पर्यायः । स खलु पुद्गलस्य  
पुद्गलान्तर इव जीवस्य पुद्गले संस्थानादिविशिष्टतया समुपजायमानः संभाव्यत एव । उ-

विनाशकारणमिति ॥ ५९ ॥ “एवं सपदेसेहिं सम्मगो” इत्यादि गाथाष्टकेन सामान्यभेदभा-  
वनाधिकारः समाप्तः । अथानन्तरमेकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावनाधिकारः कथ्यते । तत्र  
विशेषान्तराधिकारचतुष्टयं भवति । तेषु चतुर्षु मध्ये शुभाशुभयोगत्रयमुद्भवत्वेनैकादशगाथाप-  
र्यन्तं प्रथमविशेषान्तराधिकारः प्रारभ्यते । तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति । तस्मिन्नादौ नरादि-  
पर्यायैः सह शुद्धात्मस्वरूपस्य पृथक्त्वपरिज्ञानार्थं “अत्थित्तणिच्छदस्स हि” इत्यादि यथाक्रमेण  
गाथात्रयम् । तदनन्तरं तेषां संयोगकारणं “अप्पा उवओगप्पा” इत्यादि गाथाद्वयम् । तदन-  
न्तरं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुद्भवत्वेन “जो जाणादि जिणिंदे” इत्यादि गाथात्रयम् । तद-  
नन्तरं कायवाग्मनसां शुद्धात्मना सह भेदकथनरूपेण “णाहं देहो” इत्यादि गाथात्रयम् । एवमेका-  
दशगाथाभिः प्रथमविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ पुनरपि शुद्धात्मनो

रण करता । इसलिये इष्ट अनिष्टपदार्थमें रागभाव त्यागना योग्य है ॥ ५९ ॥ आगे  
फिर परभावोंसे जुदा आत्माको दिखलानेकेलिये व्यवहारजीवके चारगतियोंके पर्यायोंका  
स्वरूप कहते हैं;—[ अस्तित्वनिश्चितस्य ] अपने सहजस्वभावरूप स्वरूपके अस्तित्व-  
कर निश्चल जो [ अर्थस्य ] जीवपदार्थ है उसके [ हिं ] निश्चयसे [ यः ] जो  
[ अर्थान्तरे संभूतः ] अन्यपदार्थ पुद्गलद्रव्यके संयोगसे उत्पन्न हुआ [ अर्थः ]  
जो अनेकद्रव्यस्वरूप पदार्थ है [ सः ] वह संयोगजनितभाव [ संस्थानादिप्रभेदैः ]  
संस्थान संहननादिके भेदोंसे [ पर्यायः ] नरनारक आदिविभाव ( विकार ) पर्याय  
है ॥ भावार्थ—जीवके पुद्गलके संयोगसे नरनारकादि विभावपर्याय उत्पन्न होते हैं ।

१ उपर्युक्तके तदनन्तरं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुद्भवत्वेन “अप्पा उवओगप्पा” इत्यादिसूत्रद्वयं,  
तदनन्तरं शरीरवाग्मनसां संबन्धित्वेन शुद्धात्मनः कर्तृकरणादिनिषेधकथनमुद्भवत्वेन “णाहं देहो” इत्यादि  
गाथात्रयम्, ततः परं तत्संयोगपर्यायस्य विशेषव्याख्यानार्थं “जो जाणादि जिणिंदे” इत्यादि गाथात्रयम् ।



पपन्नश्चैवंविधः पर्यायः । अनेकद्रव्यसंयोगात्मत्वेन केवलजीवव्यतिरेकमात्रस्यैकद्रव्यपर्यायस्यास्त्वलितस्यान्तरवभासनात् ॥ ६० ॥

अथ पर्यायव्यक्तीर्दशयति;—

णरणारयतिरियसुरा संठाणादीहिं अण्णहा जादा ।

पज्जाया जीवाणं उदयाद्दि हि णामकम्मस्स ॥ ६१ ॥

नरनारकतिर्यक्सुराः संस्थानादिभिरन्यथा जाताः ।

पर्याया जीवानामुदयाद्धि नामकर्मणः ॥ ६१ ॥

नारकस्तिर्यङ्मनुष्यो देव इति किल पर्याया जीवानां । ते खलु नामकर्मपुद्गलविपा-

विशेषभेदभावनार्थं नरनारकादिपर्यायरूपं व्यवहारजीवत्वहेतुं दर्शयति;—अत्थित्तणिच्छिद-  
स्स हि चिदानन्दैकलक्षणस्वरूपास्तित्वेन निश्चितस्य ज्ञानस्य हि स्फुटं । कस्य ? अत्थस्स  
परमात्मपदार्थस्य अर्थांतरमि श्रुद्धात्माधीदन्त्यस्मिन् ज्ञानावरणादिकर्मरूपे अर्थान्तरे संभूदो  
संजात उत्पन्नः अत्थो यो नरनारकादिरूपोऽर्थः । पज्जाओ सो निर्विकारश्रुद्धात्मानुभूतिलक्ष-  
णत्वभावव्यञ्जनपर्यायाद्यादृशः सन् त्रिभावव्यञ्जनपर्यायो भवति । स इत्थंभूतपर्यायो जीवस्य ।  
कैः कृत्वा जातः । संठाणादिप्पभेदेहिं संस्थानादिरहितपरमात्मद्रव्यविलक्षणैः संस्थानसंहनन-  
शरीरादिप्रभेदैरिति ॥ ६० ॥ अथ तानेव पर्यायभेदान् व्यक्तीकरोति;—णरणारयतिरिय-  
सुरा नरनारकतिर्यग्देवरूपा अवस्थाविशेषाः । संठाणादीहिं अण्णहा जादा संस्थानादि-  
भिरन्यथा जाताः, मनुष्यभवे यत्समचतुरस्रादिसंस्थानमौदारिकशरीरादिकं च तदपेक्षया भवन्त-  
रेऽप्यद्विसदृशं संस्थानादिकं भवति । तेन कारणेन ते नरनारकादिपर्याया अन्यथा जाता भिन्ना  
भण्यन्ते । नच शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मद्रव्यत्वेन । कस्मात् ? तृणकाष्ठपत्राकारादिभेदभिन्नस्या-  
धेरिव स्वरूपम् तदेव । पज्जाया जीवाणं ते च नरनारकादयो जीवानां विभावव्यञ्जन-  
पर्याया भण्यन्ते । कैः कृत्वा । उदयादिहिं णामकम्मस्स उदयादिभिर्नामकर्मणो निर्दोषपर-

वे पर्याय व्यवहार जीवके कारण हैं, सर्वथा विनाशवान् हैं तथा त्यागने योग्य हैं । और  
जो जीवके पुद्गलसंयोगसे भिन्न असंख्यातप्रदेशी अंतरंगमें प्रकाशमान नित्य अखंडित  
ज्ञानदर्शनादिपर्याय हैं वे उपादेय ( ग्रहण करने योग्य ) हैं ॥ ६० ॥ आगे द्रव्यपर्यायके  
भेद दिखलाते हैं;—[ हि ] निश्चयसे [ जीवानां ] संसारी जीवोंके [ नरनारक-  
तिर्यक्सुराः पर्यायाः ] मनुष्यनारकीतिर्यच और देवपर्याय हैं वे [ नामकर्मणः  
उदयात् ] पुद्गलविपाकी नामकर्मके उदयसे [ संस्थानादिभिः ] संस्थान संहनन  
स्पर्श रसादिके भेदोंसे [ अन्यथा जाताः ] स्वभावपर्यायसे भिन्न विभावस्वरूप उत्पन्न  
होते हैं ॥ भावार्थ—जैसे अग्नि, गोबरके छानेसे तथा लकड़ी तृण इत्यादि अनेकप्रकारके  
इंधनके संयोगसे उत्पन्न अनेकतरहके आकारोंसे विभाव ( विकार ) रूप पर्याय-

ककारणत्वेनानेकद्रव्यसंयोगात्मकत्वात् कुकूलाङ्गारादिपर्याया जातवेदंसः क्षोभखिल्वसंस्थानादिभिरिव संस्थानादिभिरन्यथैव भूता भवन्ति ॥ ६१ ॥

अथात्मनोऽन्यद्रव्यसंकीर्णत्वेप्यर्थनिश्चायकमस्तित्वं स्वपरविभागहेतुत्वेनोद्योतयति;—  
तं सञ्भावणिवद्धं द्रव्यसहावं तिहा समक्खादं ।

जाणदि जो सवियर्पं ण मुहदि सो अण्णदवियग्ग्हि ॥ ६२ ॥

तं सद्भावनिवद्धं द्रव्यस्वभावं त्रिधा समाख्यातम् ।

जानाति यः सविकल्पं न मुह्यति सोऽन्यद्रव्ये ॥ ६२ ॥

यत्खलु स्वलक्षणभूतं स्वरूपास्तित्वमर्थनिश्चायकमाख्यातं स खलु द्रव्यस्य स्वभाव एव, सद्भावनिवद्धत्वाद्व्यस्वभावस्य । यथासौ द्रव्यस्वभावो द्रव्यगुणपर्यायत्वेन स्थित्युत्पादव्ययत्वेन च त्रितयीं विकल्पभूमिकामधिरूढः परिज्ञायमानः परद्रव्ये मोहमपोह्य स्वपर-

मात्मशब्दवाच्यान्निर्गामनिर्गोत्रादिलक्षणाच्छुद्धात्मद्रव्यादन्यादृशैर्नामकर्मजनितैर्बन्धोदयोदीरणादिभिरिति । यत एव ते कर्मोदयजनितास्ततो ज्ञायन्ते शुद्धात्मस्वरूपं न सम्भवन्तीति ॥ ६१ ॥

अथ स्वरूपास्तित्वलक्षणं परमात्मद्रव्यं योऽसौ जानाति स परद्रव्ये मोहं न करोतीति प्रकाशयति;—जाणदि जानाति जो यः कर्त्ता । कं । तं पूर्वोक्तं द्रव्यसहावं परमात्मद्रव्यस्वभावं । किं विशिष्टं । सञ्भावणिवद्धं स्वभावः स्वरूपसत्ता तत्र निवद्धमाधीनं तन्मयं सद्भावनिवद्धम् । पुनरपि किं विशिष्टं । तिहा समक्खादं त्रिधा समाख्यातं कथितं । केवलज्ञानादयो गुणाः सिद्धत्वादिविशुद्धपर्यायास्तदुभयाधारभूतं परमात्मद्रव्यं द्रव्यत्वमित्युक्तलक्षणत्रयात्मकं तथैव शुद्धोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयात्मकं च यत्पूर्वोक्तं स्वरूपास्तित्वं तेन कृत्वा त्रिधा सम्यगाख्यातं कथितं प्रतिपादितम् । पुनरपि कथंभूतं आत्मस्वभावं । सवियर्पं सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्यायरूपेण सभेदं । इत्थंभूतमात्मस्वभावं जानाति, ण मुहदि सो अण्णदवियग्ग्हि न

सहित होती है उसीतरह इसजीवके पुद्गलके संयोगसे देवादिक नानाविकार उत्पन्न होते हैं ॥ ६१ ॥ आगे यद्यपि परद्रव्योंसे आत्मा मिलाहुआ है तौभी स्वपरभेदके निमित्त स्वरूपास्तित्वको दिखलाते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ तं ] उस पूर्वकथित [ सद्भावनिवद्धं ] द्रव्यके स्वरूपास्तित्वकर संयुक्त और [ त्रिधा समाख्यातं ] द्रव्यगुणपर्याय अथवा उत्पादव्ययध्रौव्य ऐसे तीनप्रकार कहेहुए [ द्रव्यस्वभावं ] द्रव्यके निजलक्षणको [ सविकल्पं ] भेदसहित [ जानाति ] जानता है [ सः ] वह भेदविज्ञानी [ अन्यद्रव्ये ] अपनेसे भिन्न अचेतनद्रव्योंमें [ न मुह्यति ] मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ भावार्थ—जो पुरुष द्रव्यगुणपर्यायभेदोंसे तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनभेदोंसे स्वरूप और पररूपको अच्छीतरह जानता है वह स्वरूपास्तित्वका जाननेवाला स्वपरका ज्ञायक ही होता है । परपदार्थमें रागी द्वेषी तथा मोदी नहीं होता । इसी स्वपरभेदको विशेषतासे दिखाते हैं—जो जीव फाललब्धि ( अच्छी होनहार ) पा-

निर्वर्तयति । यदा तु द्विविधस्याप्यस्याशुद्धस्याभावः क्रियते तदा खलूपयोगः शुद्ध एवाव-  
तिष्ठते । स पुनरकारणमेव परद्रव्यसंयोगस्य ॥ ६४ ॥

अथ शुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति;—

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तथेव अणगारे ।

जीवे य साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥ ६५ ॥

यो जानाति जिनेन्द्रान् पश्यति सिद्धांस्तथैवानागारान् ।

जीवे च सानुकम्प उपयोगः स शुभस्तस्य ॥ ६५ ॥

विशिष्टक्षयोपशमदशाविश्रान्तदर्शनचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिग्रहीतशो-

इत्यर्थः । असुहो वा तह पावं अशुभोपयोगो वा तथा तेनैव प्रकारेण पुण्यवद्द्रव्यपापं संचयं  
याति तेसिमभावे ण चयमत्थि तयोरभावे न चयोऽस्ति । निर्दोषिनिजपरमात्मभावनारूपेण  
शुद्धोपयोगबलेन यदा तयोर्द्वयोः शुभाशुभोपयोगयोरभावः क्रियते तदोभयः संचयः कर्मबन्धो  
नास्तीत्यर्थः ॥ ६४ ॥ एवं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयस्य सामान्यकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथा-  
द्वयं गतम् । अथ विशेषेण शुभोपयोगस्वरूपं व्याख्याति;—जो जाणादि जिणिंदे यः कर्ता  
जानाति । कान् ? अनन्तज्ञानादिचतुष्टयसहितान् क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितौश्व जिनेन्द्रान्  
पेच्छदि सिद्धे पश्यति । कान् ? ज्ञानावर्णाद्यष्टकर्मरहितान्सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतानन्त-  
गुणसहितांश्च सिद्धान् तथेव अणगारे तथैवानागारान् । अनागारशब्दवाच्यान्निश्चयव्य-  
वहारपञ्चाचारादियथोक्तलक्षणानाचार्योपाध्यायसाधून् । जीवेषु साणुकंपो त्रसत्स्वार-

[ अशुभः ] जिससमय आत्माके मिथ्यात्वविषयकपायादिरूप अशुभोपयोग होता है  
तो [ तथा ] उसीप्रकार इकट्ठा होकर [ पापं ] असाताको करनेवाला पापरूप पुद्गलवर्गेणा  
पिंड आकर बंधता है । [ तयोः ] उन शुभोपयोग अशुभोपयोग परिणामोंके [ अ-  
भावे ] नाश होनेपर [ चयः ] परद्रव्यका संचयरूप बंध [ न अस्ति ] नहीं होता  
है ॥ भावार्थ—इस आत्माके शुभ अशुभरूप दोनोंप्रकारका जो अशुद्धोपयोग है वह  
बंधका ही कारण है, उस अशुद्धोपयोगका अभाव होनेसे तथा निर्मल शुद्धोपयोगभावरूप  
परिणमन करनेसे ही इसके परद्रव्यका संयोग नहीं होता । इससे यह बात सिद्ध हुई  
कि शुभ अशुभरूप अशुद्धोपयोग परद्रव्यके संयोगका कारण है और शुद्धोपयोग मोक्षका  
कारण है ॥ ६४ ॥ आगे शुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[ यः ] जो जीव [ जि-  
नेन्द्रान् ] परमपूज्य देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग जो अरहंतदेव हैं उनके स्वरूपको  
[ जानाति ] जानता है [ सिद्धान् ] अष्टकर्मोपाधिरहित सिद्ध परमेश्वरोंको  
[ पश्यति ] ज्ञानदृष्टिसे देखता है [ तथैव ] उसीप्रकार [ अनगारान् ] आचार्य  
उपाध्याय साधुओंकोभी जानता है देखता है [ च ] और [ जीवे ] समस्त प्राणियों-  
पर [ सानुकम्पः ] दयाभावयुक्त है [ तस्य ] उस जीवके [ सः ] यह [ शुभः ]

भनोपरागत्वात् परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुश्रद्धाने समस्तभूतग्रामानु-  
कम्पाचरणे च प्रवृत्तः शुभ उपयोगः ॥ ६५ ॥

अथाशुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति;—

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुष्टगोद्विजुदो ।

उगो उम्मगपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥ ६६ ॥

विपयकपायावगाढो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः ।

उग्र उन्मार्गपर उपयोगो यस्य सोशुभः ॥ ६६ ॥

विशिष्टोदयदशाविश्रान्तदर्शनज्ञानचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिग्रहीताशोभ-

जीवेषु सानुकम्पः सद्यः उवओगो सो सुहो स इत्थंभूत उपयोगः शुभो  
मण्यते । स च कस्य भवति । तस्स तस्य पूर्वोक्तलक्षणजीवस्येत्यभिप्रायः ॥ ६५ ॥

अथाशुभोपयोगस्वरूपं निरूपयति;—विसयकसाओगाढो विपयकपायावगाढः दुस्सुदि-  
दुच्चित्तदुष्टगोद्विजुदो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः उगो उग्रः उम्मगपरो उन्मार्गपरः  
उवओगो एवं विशेषणचतुष्टययुक्त उपयोगः परिणामः जस्स यस्य जीवस्य भवति सो अ-  
सुहो स उपयोगस्त्वशुभोपयोगो मण्यते, अभेदेन पुरुषो वा । तथाहि—विपयकपायरहि-  
तशुद्धचैतन्यपरिणतेः प्रतिपक्षभूतो विपयकपायावगाढो विपयकपायपरिणतः । शुद्धात्मतत्त्वप्र-  
तिपादिका श्रुतिः सुश्रुतिस्तद्विलक्षणा दुःश्रुतिः मिथ्याशास्त्रश्रुतिर्वा । निश्चिन्तात्मध्यानपरिणतं  
सुचित्तं तद्विनाशकं दुश्चित्तम्, स्वपरनिमित्तेष्टकामभोगचिन्तापरिणतं रागाद्यपध्यानं वा । पर-

शुभरूप [ उपयोगः ] चैतन्यविकाररूप परिणाम जानना चाहिये ॥ भावार्थ—

जिस जीवके दर्शनमोहनीय अथवा चारित्र मोहनीयकर्मकी विशेषतारूप क्षयोपशम अ-  
वस्था तो न हुई हो और शुभरागका उदय हो उस जीवके भक्तिपूर्वक पंच परमेष्ठीके  
देखने जानने श्रद्धानकरनेरूप परिणाम होवें तथा सब जीवोंमें दयाभाव होयही शुभोप-  
योगका लक्षण जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ आगे अशुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[ यस्य ]

जिस जीवका [ उपयोगः ] अशुद्ध चैतन्यविकार परिणाम [ विपयकपायावगाढः ]  
इन्द्रियविपय तथा क्रोधादिकपाय इनसे अत्यंत गाढ हो, [ दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगो-  
ष्ठियुतः ] मिथ्या शास्त्रोंका सुनना आर्तरौद्रअशुभध्यानरूप मन पराईनिंदाआदि चर्चा-  
इनमें उपयोग सहित हो, [ उग्रः ] हिंसादि आचरणके करनेमें महा उद्यमी हो और  
[ उन्मार्गपरः ] वीतरागसर्वज्ञकथित मार्गसे उलटा जो मिथ्यामार्ग उसमें सावधान  
हो [ सः ] वह परिणाम [ अशुभः ] अशुभोपयोग कहा है ॥ भावार्थ—जब इस

जीवके दर्शनमोह तथा चारित्रमोहका तीव्र उदय होता है तब वह अशुभरागके  
ग्रहणकरनेसे पंच परमेष्ठीमें रुचि नहीं करता, मिथ्यामार्गका श्रद्धानी होकर विप-  
यकपायोंमें प्रवर्तता है, मिथ्यासिद्धांतशास्त्रोंको सुनता है, छोटे आचारका आचरण क-

निर्वर्तयति । यदा तु द्विविधस्वाप्यस्याशुद्धसाभावः क्रियते तदा खलूपयोगः शुद्ध एवाव-  
तिष्ठते । स पुनरकारणमेव परद्रव्यसंयोगस्य ॥ ६४ ॥

अथ शुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति;—

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तथेव अणगारे ।

जीवे य साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥ ६५ ॥

यो जानाति जिनेन्द्रान् पश्यति सिद्धान्स्तथैवानागारान् ।

जीवे च सानुकम्प उपयोगः स शुभस्तस्य ॥ ६५ ॥

विशिष्टक्षयोपशमदशाविश्रान्तदर्शनचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिग्रहीतशो-

इत्यर्थः । असुहो वा तह पावं अशुभोपयोगो वा तथा तेनैव प्रकारेण पुण्यवद्व्यपापं संचयं  
याति तेसिमभावे ण चयमत्थि तयोरभावे न चयोऽस्ति । निर्दोषिनिजपरमात्मभावनारूपेण  
शुद्धोपयोगबलेन यदा तयोर्द्वयोः शुभाशुभोपयोगयोरभावः क्रियते तदोभयः संचयः कर्मबन्धो  
नास्तीत्यर्थः ॥ ६४ ॥ एवं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयस्य सामान्यकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथा-  
द्वयं गतम् । अथ विशेषेण शुभोपयोगस्वरूपं व्याख्याति;—जो जाणादि जिणिंदे यः कर्त्ता  
जानाति । कान् ? अनन्तज्ञानादिचतुष्टयसहितान् क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितौश्च जिनेन्द्रान्  
पेच्छदि सिद्धे पश्यति । कान् ? ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मरहितान्सम्पत्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतानन्त-  
गुणसहितांश्च सिद्धान् तहेव अणगारे तथैवानागारान् । अनागारशब्दवाच्यानिश्चयव्य-  
वहारपञ्चाचारादियथोक्तलक्षणानाचार्योपाध्यायसाधून् । जीवेषु साणुकंपो त्रसत्यावर-

[ अंशुभः ] जिससमय आत्माके मिथ्यात्वविषयकपायादिरूप अशुभोपयोग होता है  
तो [ तथा ] उसीप्रकार इकट्ठा होकर [ पापं ] असाताको करनेवाला पापरूप पुद्गलवर्गणा  
पिंड आकर बंधता है । [ तथोः ] उन शुभोपयोग अशुभोपयोग परिणामोंके [ अ-  
भावे ] नाश होनेपर [ चयः ] परद्रव्यका संचयरूप बंध [ न अस्ति ] नहीं होता  
है ॥ भावार्थ—इस आत्माके शुभ अंशुभरूप दोनोंप्रकारका जो अशुद्धोपयोग है वह  
बंधका ही कारण है, उस अशुद्धोपयोगका अभाव होनेसे तथा निर्मल शुद्धोपयोगभावरूप  
परिणमन करनेसे ही इसके परद्रव्यका संयोग नहीं होता । इससे यह बात सिद्ध हुई  
कि शुभ अशुभरूप अशुद्धोपयोग परद्रव्यके संयोगका कारण है और शुद्धोपयोग मोक्षका  
कारण है ॥ ६४ ॥ आगे शुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[ यः ] जो जीव [ जि-  
नेन्द्रान् ] परमपूज्य देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग जो अरहंतदेव हैं उनके स्वरूपको  
[ जानाति ] जानता है [ सिद्धान् ] अष्टकर्मोपाधिरहित सिद्ध परमेष्ठियोंको  
[ पश्यति ] ज्ञानदृष्टिसे देखता है [ तथैव ] उसीप्रकार [ अनगारान् ] आचार्य  
उपाध्याय साधुओंकोभी जानता है देखता है [ च ] और [ जीवे ] समस्त प्राणियों-  
पर [ सानुकम्पः ] दयाभावयुक्त है [ तस्य ] उस जीवके [ सः ] वह [ शुभः ]

भनोपरागत्वात् परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुश्रद्धाने समस्तभूतग्रामानु-  
कम्पाचरणे च प्रवृत्तः शुभ उपयोगः ॥ ६५ ॥

अथाशुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति;—

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुष्टगोष्टियुतो ।

उगो उम्मगपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥ ६६ ॥

विपयकपायावगाढो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्टियुतः ।

उग्र उन्मार्गपर उपयोगो यस्य सोशुभः ॥ ६६ ॥

विशिष्टोदयदशाविश्रान्तदर्शनज्ञानचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिग्रहीताशोभ-

जीवेषु सानुकम्पः सद्यः उवओगो सो सुहो स इत्थंभूत उपयोगः शुभो  
मण्यते । स च कस्य भवति । तस्स तस्य पूर्वोक्तलक्षणजीवस्येत्यभिप्रायः ॥ ६५ ॥

अथाशुभोपयोगस्वरूपं निरूपयति;—विसयकसाओगाढो विपयकपायावगाढः दुस्सुदि-  
दुच्चित्तदुष्टगोष्टियुतो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्टियुतः उगो उग्रः उम्मगपरो उन्मार्गपरः  
उवओगो एवं विशेषणचतुष्टययुक्त उपयोगः परिणामः जस्स यस्य जीवस्य भवति सो अ-  
सुहो स उपयोगस्त्वशुभोपयोगो मण्यते, अभेदेन पुरुषो वा । तथाहि—विपयकपायरहि-  
तशुद्धचैतन्यपरिणतेः प्रतिपक्षभूतो विपयकपायावगाढो विपयकपायपरिणतः । शुद्धात्मतत्त्वप्र-  
तिपादिका श्रुतिः सुश्रुतिस्तद्विलक्षणा दुःश्रुतिः मिथ्याशास्त्रश्रुतिर्वा । निश्चिन्ताऽमिथ्यानपरिणतं  
सुचित्तं तद्दिनाशकं दुश्चित्तम्, स्वपरनिमित्तेष्टकामभोगचिन्तापरिणतं रागाद्यपध्यानं वा । पर-

शुभरूप [ उपयोगः ] चैतन्यविकाररूप परिणाम जानना चाहिये ॥ भावार्थ—

जिस जीवके दर्शनमोहनीय अथवा चारित्र मोहनीयकर्मकी विशेषतारूप क्षयोपशम अ-  
वस्था तो न हुई हो और शुभरागका उदय हो उस जीवके भक्तिपूर्वक पंच परमेष्ठीके  
देखने जानने श्रद्धानकरनेरूप परिणाम होंवें तथा सब जीवोंमें दयाभाव होयही शुभोप-  
योगका लक्षण जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ आगे अशुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[ यस्य ]

जिस जीवका [ उपयोगः ] अशुद्ध चैतन्यविकार परिणाम [ विपयकपायावगाढः ]  
इन्द्रियविपय तथा क्रोधादिकपाय इनसे अत्यंत गाढ हो, [ दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगो-  
ष्टियुतः ] मिथ्या शास्त्रोंका सुनना आतंरौद्रअशुमध्यानरूप मन पराईनिंदाआदि चर्चा-  
इनमें उपयोग सहित हो, [ उग्रः ] हिंसादि आचरणके करनेमें महा उद्यमी हो और  
[ उन्मार्गपरः ] बीतरागसर्वज्ञकथित मार्गसे उलटा जो मिथ्यामार्ग उसमें सावधान

हो [ सः ] वह परिणाम [ अशुभः ] अशुभोपयोग कहा है ॥ भावार्थ—जब इस  
जीवके दर्शनमोह तथा चारित्रमोहका तीव्र उदय होता है तब वह अशुभरागके  
ग्रहणकरनेसे पंच परमेष्ठीमें रुचि नहीं करता, मिथ्यामार्गका श्रद्धानी होकर विप-  
यकपायोंमें प्रवर्तता है, मिथ्यासिद्धांतशास्त्रोंको सुनता है, खोटे आचारका आचरण क-

नोपरागत्वात्परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुभ्योऽन्यत्रोन्मार्गश्रद्धाने विष-  
यकपायदुःश्रवणदुराशयदुष्टसेवनोग्रताचरणे च प्रवृत्तोऽशुभोपयोगः ॥ ६६ ॥

अथ परद्रव्यसंयोगकारणविनाशमभ्यसति;—

असुहोवओगरहितो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्मि ।

होज्जं मज्झत्थोऽहं णाणप्पगमप्पगं झाए ॥ ६७ ॥

अशुभोपयोगरहितः शुभोपयुक्तो न अन्यद्रव्ये ।

भवन्मध्यस्थोऽहं ज्ञानात्मकमात्मकं ध्यायामि ॥ ६७ ॥

यो हि नामायं परद्रव्यसंयोगकारणत्वेनोपन्यस्तोऽशुद्ध उपयोगः स खलु मन्दतीव्रोदय-  
दशाविश्रान्तपरद्रव्यानुवृत्तितत्रत्वादेव प्रवर्तते न पुनरन्यस्मात् । ततोऽहमेव सर्वस्मिन्नेव  
परद्रव्ये मध्यस्थो भवामि । एवं भवंश्चाहं परद्रव्यानुवृत्तितत्रत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वा

मचैतन्यपरिणतेर्विनाशिका दुष्टगोष्ठी तत्प्रतिपक्षभूतकुशीलपुरुषगोष्ठी वा । इत्थंभूतं दुःश्रुतिदु-  
श्चित्तदुष्टगोष्ठीभिर्युतो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुक्तः परमोपशमभावंपरिणतपरमचैतन्यस्वभावात्प्रति-  
कूलः उग्रः वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाद्विलक्षण उन्मार्गपरः । इत्थंभूतविशेषण-  
चतुष्टयसहित उपयोगः परिणामः । तत्परिणतपुरुषोवेत्यशुभोपयोगो भण्यत इत्यर्थः ॥ ६६ ॥

अथ शुभाशुभरहितशुद्धोपयोगं प्ररूपयति;—असुहोवओगरहितो अशुभोपयोगरहितो भ-  
वामि । स कः अहं अहं कर्ता । पुनरपि कथंभूतः । सुहोवजुत्तो ण शुभोपयोगयुक्तः  
परिणतो न भवामि । क विषयेऽसौ शुभोपयोगः अण्णदवियम्मि निजपरमात्मद्रव्यादन्यद्रव्ये ।  
तर्हि कथंभूतो भवामि । होज्जं मज्झत्थो जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिन्दाप्रशं-  
सादिविषये मध्यस्थो भवामि । इत्थंभूतः सन् किं करोमि । णाणप्पगमप्पगं झाए ज्ञानात्म-

रता है इत्यादि पापक्रियाओंमें लीन होता है इसीसे वह जीव अशुभोपयोगी कहा जाता  
है ॥ ६६ ॥ आगे परद्रव्यसंयोगके कारण जो शुभ अशुभभाव हैं उनके नाश होनेका  
कारण दिखलाते हैं;—[ अशुभोपयोगरहितः ] मिध्यात्व विषय कपायादिरहित  
हुआ [ शुभोपयुक्तः न ] शुभोपयोगरूप भावोंमें भी उपयोग नहीं करनेवाला [अ-  
न्यद्रव्ये मध्यस्थो भवन् ] और शुभ अशुभद्रव्य भावरूप पर भावोंमें मध्यवर्ती  
हुआ अर्थात् दोनोंको समान माननेवाला ऐसा जो [ अहं ] स्वपरविवेकी मैं हूं सो  
[ ज्ञानात्मकं ] ज्ञानस्वरूप [ आत्मानं ] शुद्ध जीवद्रव्यका [ ध्यायामि ] पर-  
मसमरसीभावमें मग्न हुआ अनुभव करता हूं ॥ भावार्थ—यह जो परसंयोगका  
कारण शुभ अशुभरूप अशुद्ध उपयोग होता है वह मोहनीकर्मकी मंद तीव्र दशाके आ-  
धीन होकर प्रवर्तता है, शुद्ध आत्मीक भावसे विपरीत ( उलटा ) है परद्रव्यरूप है  
इसकारण इन दोनों शुभ अशुभभावोंमें मेरी समान बुद्धि है इसीलिये मैं मध्यस्थ हूं  
परद्रव्यको अंगीकार नहीं करता हूं, इसकारण मैं अशुद्धोपयोगसे रहित हुआ केवल

शुद्धोपयोगेन निर्मुक्तो भूत्वा केवलस्वद्रव्यानुवृत्तिपरिग्रहात् प्रसिद्धशुद्धोपयोग उपयोगात्म-  
नात्मन्येव नित्यं निश्चलमुपयुक्तंस्तिष्ठामि । एष मे परद्रव्यसंयोगकारणविनाशभ्यासः ॥६७॥

अथ शरीरादावपि परद्रव्ये माध्यस्थ्यं प्रकटयति;—

णाहं देहो ण मनो ण चैव वाणी ण कारणं तेसिं ।

कत्ता ण ण कारयिदा अणुमत्ता णेव कत्तीणं ॥ ६८ ॥

नाहं देहो न मनो न चैव वाणी न कारणं तेषाम् ।

कर्ता न न कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥ ६८ ॥

शरीरं च वाचं च मनश्च परद्रव्यत्वेनाहं प्रतिपद्ये ततो न तेषु कश्चिदपि मम पक्षपा-  
तोस्ति । सर्वत्राप्यहमत्यन्तं मध्यस्थोऽस्मि । तथाहि—न खल्वहं शरीरवाङ्मनसां स्वरू-  
पाधारभूतमचेतनद्रव्यमस्मि, तानि खलु मां स्वरूपाधारार्थान्तरेणाप्यात्मनः स्वरूपं धार-  
यन्ति । ततोऽहं शरीरवाङ्मनःपक्षपातमपास्यात्यन्तमध्यस्थोऽस्मि । न च मे शरीर वाङ्मनः-  
कारणाचेतनद्रव्यत्वमस्ति, तानि खलु मां कारणमन्तरेणापि कारणं भवन्ति । ततोऽहं  
तत्कारणत्वपक्षपातमपास्यास्म्ययमत्यन्तमध्यस्थः । न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारणाचे-

कमात्मानं ध्यायामि । ज्ञानेन निर्वृत्तज्ञानात्मकं केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणात्मकं निजात्मानं  
शुद्धध्यानप्रतिपक्षभूतसमस्तमनोरथरूपचिन्ताजालस्यागेन ध्यायामीति शुद्धोपयोगलक्षणं ज्ञातव्यम्  
॥ ६७ ॥ एवं शुभाशुभशुद्धोपयोगविवरणरूपेण तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ देहमनो-  
वचनविषयेत्यन्तमाध्यस्थ्यमुद्योतयति;—णाहं देहो ण मनो ण चैव वाणी नाहं देहो न  
मनो न चैव वाणी । मनोवचनकायव्यापाररहितात्परमात्मद्रव्याद्भिन्नं यन्मनोवचनकायत्रयं निश्च-  
यनयेन तन्नाहं भवामि । ततः कारणात्तत्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मि । ण कारणं तेसिं  
न कारणं तेषाम् । निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतपरिणतेर्यदुपादानकारणभूतमा-  
त्मद्रव्यं तद्विलक्षणो मनोवचनकायानामुपादानकारणभूतः पुद्गलपिण्डो न भवामि ।

स्वरूपकी प्रवृत्तिसे शुद्धोपयोगी होकर आत्मामें सदा काल निश्चल होकर तिष्ठता  
हूं । यह जो मेरे आत्मलीन शुद्धोपयोग वृत्ति है वही परद्रव्यसंयोगकारणके  
विनाशका अभ्यास है, यही भोक्षमार्ग है, यही साक्षात् जीवन्मोक्ष है, और  
यही कर्तृत्व भोक्तृत्व आस्रव बंधभाव दशासे रहित सिद्धस्वरूप शुद्धभाव है  
॥ ६७ ॥ आगे शरीरादि परद्रव्यमें भी मध्यस्थ भाव दिखलाते हैं;—[अहं]  
मैं जो शुद्धचिन्मात्र स्वपरविवेकी हूं सो [ देहः न ] शरीररूप नहीं हूं [ मनो न ]  
मनयोगरूपभी नहीं हूं [ च ] और [ एव ] निश्चयसे [ वाणी न ] वचनयोगरूप  
भी नहीं हूं [ तेषां कारणं न ] उन काय वचन मनका उपादानकारणरूप पुद्गल-  
पिंड भी नहीं हूं [ कर्ता न ] उन तीन योगोंका कर्ता नहीं हूं अर्थात् मुझ कर्ताके  
विना ही वे योग्य पुद्गलपिंडकर किये जाते हैं, [ कारयिता न ] उन तीन योगोंका



नोपरागत्वात्परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुभ्योऽन्यत्रोन्मार्गश्रद्धाने विष-  
यकषायदुःश्रवणदुराशयदुष्टसेवनोपताचरणे च प्रवृत्तौशुभोपयोगः ॥ ६६ ॥

अथ परद्रव्यसंयोगकारणविनाशमभ्यस्यति;—

असुहोवओगरहिदो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्मि ।

होज्जं मज्झत्थोऽहं णाणप्पगमप्पगं ज्ञाए ॥ ६७ ॥

अशुभोपयोगरहितः शुभोपयुक्तो न अन्यद्रव्ये ।

भवन्मध्यस्थोऽहं ज्ञानात्मकमात्मकं ध्यायामि ॥ ६७ ॥

यो हि नामायं परद्रव्यसंयोगकारणत्वेनोपन्यस्तोऽशुद्ध उपयोगः स खलु मन्दतीव्रौदय-  
दशाविश्रान्तपरद्रव्यानुवृत्तितत्रत्वादेव प्रवर्तते न पुनरन्यस्मात् । ततोऽहमेव सर्वस्मिन्नेव  
परद्रव्ये मध्यस्थो भवामि । एवं भवंश्चाहं परद्रव्यानुवृत्तितत्रत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वा

मचैतन्यपरिणतेर्विनाशिका दुष्टगोष्ठी तत्प्रतिपक्षभूतकुशीलपुरुषगोष्ठी वा । इत्थंभूतं दुःश्रुतिदु-  
श्चित्तदुष्टगोष्ठीभिर्युतो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुक्तः परमोपशमभावपरिणतपरमचैतन्यस्वभावात्प्रति-  
क्लः उग्रः वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाद्विलक्षण उन्मार्गपरः । इत्थंभूतविशेषण-  
चतुष्टयसहित उपयोगः परिणामः । तत्परिणतपुरुषोवेत्यशुभोपयोगो भण्यत इत्यर्थः ॥ ६६ ॥  
अथ शुभाशुभरहितशुद्धोपयोगं प्ररूपयति;—असुहोवओगरहिदो अशुभोपयोगरहितो भ-  
वामि । स कः अहं अहं कर्ता । पुनरपि कथंभूतः । सुहोवजुत्तो ण शुभोपयोगयुक्तः  
परिणतो न भवामि । क विषयेऽसौ शुभोपयोगः अण्णदवियम्मि निजपरमात्मद्रव्यादन्यद्रव्ये ।  
साहिं कथंभूतो भवामि । होज्जं मज्झत्थो जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिन्दाप्रशं-  
सादिविषये मध्यस्थो भवामि । इत्थंभूतः सन् किं करोमि । णाणप्पगमप्पगं ज्ञाए ज्ञानात्म-

रता है इत्यादि पापक्रियाओंमें लीन होता है इसीसे वह जीव अशुभोपयोगी कहा जाता  
है ॥ ६६ ॥ आगे परद्रव्यसंयोगके कारण जो शुभ अशुभभाव हैं उनके नाश होनेका  
कारण विखलाते हैं;—[ अशुभोपयोगरहितः ] मिथ्यात्व विषय कषायादिरहित  
हुआ [ शुभोपयुक्तः न ] शुभोपयोगरूप भावोंमें भी उपयोग नहीं करनेवाला [अ-  
न्यद्रव्ये मध्यस्थो भवन् ] और शुभ अशुभद्रव्य भावरूप पर भावोंमें मध्यवर्ती  
हुआ अर्थात् दोनोंको समान माननेवाला ऐसा जो [ अहं ] स्वपरविवेकी मैं हूं तो  
[ ज्ञानात्मकं ] ज्ञानस्वरूप [ आत्मानं ] शुद्ध जीवद्रव्यका [ ध्यायामि ] पर-  
मसमरसीभावमें मग्न हुआ अनुभव करता हूं ॥ भावार्थ—यह जो परसंयोगका  
कारण शुभ अशुभरूप अशुद्ध उपयोग होता है वह मोहनीकर्मकी मंड तीव्र दशाके आ-  
धीन होकर प्रवर्तता है, शुद्ध आत्मीक भावसे विपरीत ( उलटा ) है परद्रव्यरूप है  
इसकारण इन दोनों शुभ अशुभभावोंमें मेरी समान बुद्धि है इसीलिये मैं मध्यस्थ हूं  
परद्रव्यको अंगीकार नहीं करता हूं, इसकारण मैं अशुद्धोपयोगसे रहित हुआ केवल

तेषां पुद्गलद्रव्यस्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चितत्वात् । तथाविधपुद्गलद्रव्यं त्वनेकपरमाणुद्रव्याणामेकपिण्डपर्यायेण परिणामः । अनेकपरमाणुद्रव्यस्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वानामनेकत्वेपि कथंचिदेकत्वेनावभासनात् ॥ ६९ ॥

अथात्मनः परद्रव्यत्वाभावं परद्रव्यकर्तृत्वाभावं च साधयति;—

णाहं पोग्गलमइओ ण ते मया पोग्गला कया पिंडं ।

तम्हा हि ण देहोऽहं कत्ता वा तस्स देहस्स ॥ ७० ॥

नाहं पुद्गलमयो न ते मया पुद्गलाः कृताः पिण्डम् ।

तस्माद्धि न देहोऽहं कर्ता वा तस्य देहस्य ॥ ७० ॥

यदेतत्प्रकरणनिर्धारितं पुद्गलात्मकमन्तर्नीतवाच्यनो द्वैतं शरीरं नाम परद्रव्यं न तावदहमस्मि, ममापुद्गलमयस्य पुद्गलात्मकशरीरत्वविरोधात् । न चापि तस्य कारणद्वारेण कर्तृद्वारेण कर्तृप्रयोजनद्वारेण कर्तृनुमन्तृद्वारेण वा शरीरस्य कर्ताहमस्मि, ममानेकपरमाणुद्र-

समूहो भवति । केषां । परमाणुद्रव्याणामित्यर्थः ॥ ६९ ॥ अथात्मनः शरीररूपपरद्रव्यभावं तत्कर्तृत्वाभावं च निरूपयति;—णाहं पुग्गलमइओ नाहं पुद्गलमयः ण ते मया पुग्गला कया पिंडा न च ते पुद्गला मया कृताः पिण्डाः तम्हा हि ण देहोऽहं तस्मादेहो न भवाम्यहं हि स्फुटं कत्ता वा तस्स देहस्स कर्ता वा न भवामि तस्य देहस्येति । अयमत्रार्थः—देहोऽहं न भवामि । कस्मात् । अशरीरसहजशुद्धचैतन्यपरिणतत्वेन

सूक्ष्म अविभागी पुद्गलपरमाणुओंका [ पिण्डं ] स्कंधरूप ( समूहरूप ) पिंड है ॥

भावार्थ—ये तीन योग निश्चयसे पुद्गलद्रव्यस्वरूप हैं । अनंत परमाणू मिलकर एक-रूप हुए विभावपर्याय ही हैं, इस कारण ये योग पुद्गलपर्याय हैं । यद्यपि योगरूप पुद्गलपर्यायमें अपने स्वरूपास्तित्वसे परमाणू जुड़े २ हैं तौभी स्निग्धरुक्ष गुणके बंध परिणामकी अपेक्षाकर एक पिंडरूप भासते (मालूम पड़ते) हैं ॥ ६९ ॥ आगे आत्माके परद्रव्यका अभाव और परद्रव्यके कर्तापनेका अभाव सिद्ध करते हैं;—[अहं] में शुद्ध चैतन्यमात्रवस्तु [पुद्गलमयः न] अचेतन पुद्गलद्रव्यरूप नहीं हूं [ते पुद्गलाः] वे सूक्ष्मपरमाणूरूप पुद्गल [मया] स्वरूप गुप्त मुझ चैतन्यसे [पिण्डं कृता न] स्कंधरूप नहीं किये गये हैं, अपनी शक्तिसे ही पिंडरूप हो जाते हैं । [तस्मात्] इसकारण [हि] निश्चयसे [अहं] ज्ञानस्वरूप मैं [देहः] पुद्गलविकार शरीरमयी [न] नहीं हूं मैं तो अमूर्त चैतन्य हूं [वा] अथवा [तस्य देहस्य] उस पुद्गलमयी देहका [कर्ता 'न'] उत्पन्न करनेवाला भी नहीं हूं ॥ भावार्थ—यह मन वचन सहित शरीर है वह अवश्य पुद्गलीक ही है इसमें कुछ भी संदेह नहीं ऐसा मैंने निश्चय किया है । इसकारण मैं इसका कृत कारित अनुमोदभावोंसे कर्ता नहीं हूं क्योंकि यह शरीर तो अनंत परमाणुओंका पिंड है और मुझमें अनंतपरमाणूरूप परिणमन शक्ति नहीं है;—इसलिये

तनद्रव्यत्वमस्ति, तानि खलु मां कर्तारमन्तरेणापि क्रियमाणानि । ततोहं तत्कर्मत्वपक्षपातं-  
पास्यास्म्ययमत्यन्तमध्यस्थः । न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारकाचेतनद्रव्यप्रयोजकत्वमस्ति,  
तानि खलु मां कारकप्रयोजकमन्तरेणापि क्रियमाणानि । ततोऽहं तत्कारकप्रयोजकपक्षपात-  
मपास्यास्म्ययमत्यन्तमध्यस्थः । न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारकाचेतनद्रव्यानुज्ञातृ-  
त्वमस्ति, तानि खलु मां कारकानुज्ञातारमन्तरेणापि क्रियमाणानि ततोऽहं तत्कारकातृ-  
ज्ञातृत्वपक्षपातमपास्यास्म्ययमत्यन्तं मध्यस्थः ॥ ६८ ॥

अथ शरीरवाङ्मनसां परद्रव्यत्वं निश्चिनोति;—

देहो य मणो वाणी पोग्गलदब्बप्पगत्ति णिदिट्ठा ।

पोग्गलदब्बंपि पुणो पिंडो परमाणुदब्बाणं ॥ ६९ ॥

देहश्च मनो वाणी पुद्गलद्रव्यात्मका इति निर्दिष्टाः ।

पुद्गलद्रव्यमपि पुनः पिण्डः परमाणुद्रव्याणाम् ॥ ६९ ॥

शरीरं च वाक् च मनश्च त्रीण्यपि परद्रव्यं पुद्गलद्रव्यात्मकत्वात् । पुद्गलद्रव्यत्वं तु

ततः कारणात्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मि । कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता  
णेव कत्तीणं कर्त्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्त्तृणाम् । स्वशुद्धा-  
त्मभावनाविषये यत्कृतकारितानुमतस्वरूपं तद्विलक्षणं यन्मनोवचनकाव्यपये कृतकारितानुमत-  
स्वरूपं तन्नाहं भवामि । ततः कारणात्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मीति तात्पर्यम् ॥ ६८ ॥

अथ कायवाङ्मनसां शुद्धात्मस्वरूपात्परद्रव्यत्वं व्यवस्थापयति;—देहो य मणो वाणी पुग्ग-  
लदब्बप्पगत्ति णिदिट्ठा देहश्च मनो वाणी तिस्रोऽपि पुद्गलद्रव्यात्मका इति निर्दिष्टाः । कस्मात् ।  
व्यवहारेण जीवेन सहैकत्वेऽपि निश्चयेन परमचैतन्यप्रकाशपरिणतेर्भिन्नत्वात् । पुद्गलद्रव्यं किं  
मप्यते । पुग्गलदब्बं हि पुणो पिंडो परमाणुदब्बाणं पुद्गलद्रव्यं हि स्फुटं पुनः पिण्डः

प्रेरक होकर करानेवाला नहीं हूँ पुद्गलद्रव्य ही उनका कर्ता है [ कर्त्तृणां ] और उन  
योगोंके करनेवाले पुद्गलपिंडोंका [ अनुमन्ता ] अनुमोदनेवाला भी नहीं हूँ । मेरी  
अनुमोदनाके बिना ही पुद्गलपिंड उन योगोंका कर्ता है । इसकारण मैं परद्रव्यमें अत्यंत  
मध्यस्थ हूँ ॥ भावार्थ—स्वपर विवेकी जीव सब द्रव्योंके स्वरूपका जाननेवाला है, इस-  
कारण इन तीन योगोंको पुद्गलीक जानता है । इनमें कृत कारित अनुमोदना भाव नहीं करता,  
परद्रव्यके भाव जानकर त्यागी होता है, स्वरूपमें निश्चल हुआ तिष्ठता है और शुभ अशुभ-  
रूप अशुद्धोपयोगको बिनाश करके निरास्रव हुआ शुद्धोपयोगी होता है ॥ ६८ ॥ आगे इन  
शरीर वचन मन तीनोंको निश्चयकर परद्रव्य दिखलाते हैं;—[ देहः ] शरीर [ मनः ]  
चित्त [ च ] और [ वाणी ] वचन ये तीनोंयोग [ पुद्गलद्रव्यात्मकाः ] पुद्गल-  
द्रव्यरूप हैं [ इति ] ऐसे [ निर्दिष्टाः ] वीतरागदेवने कहे हैं [ पुनः ] और  
[ पुद्गलद्रव्यं ] तीन योगरूप पुद्गलद्रव्य [ अपि ] निश्चयसे [ परमाणुद्रव्याणां ]

नामविरोधेन सद्भावात् स्निग्धो वा रूक्षो वा स्यात् । तत एव तस्य पिण्डपर्यायपरिणति-  
रूपा द्विप्रदेशादित्वानुभूतिः । अथैवं स्निग्धरूक्षत्वं पिण्डत्वसाधनम् ॥ ७१ ॥

अथ कीदृशं तस्निग्धरूक्षत्वं परमाणोरित्यावेदयति;—

एगुत्तरमेगादी अणुस्स णिद्धत्तणं व लुक्खत्तं ।

परिणामादो भणिदं जाव अणंतत्तमणुहवदि ॥ ७२ ॥

एकोत्तरमेकाद्यणोः स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वम् ।

परिणामाद्भणितं यावदनन्तत्वमनुभवति ॥ ७२ ॥

परमाणोर्हि तावदस्ति परिणामः तस्य वस्तुस्वभावत्वेनानतिक्रमात् । ततस्तु परिणामाद्-

दिरूपं बन्धमनुभवतीति । तथाहि—यथायमात्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावेन बन्धरहितोऽपि  
पश्चादशुद्धनयेन स्निग्धस्थानीयरागभावेन रूक्षस्थानीयद्वेषभावेन यदा परिणमति तदा  
परमागमकथितप्रकारेण बन्धमनुभवति । तथा परमाणुरपि स्वभावेन बन्धरहितोऽपि  
यदा बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणेन परिणतो भवति तदा पुद्गलान्तरेण सह विभावपर्या-  
यरूपं बन्धमनुभवतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥ अथ कीदृशं तस्निग्धरूक्षत्वमितिपृष्ठे प्रत्युत्तरं ददाति;—

एगुत्तरमेगादी एकोत्तरमेकादि । किं । णिद्धत्तणं च लुक्खत्तं स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च कर्म-  
तापन्नं भणिदं भणितं कथितम् । किं पर्यन्तम् ? जाव अणंतत्तमणुभवदि अनन्तत्वमन-  
न्तपर्यन्तं यावदनुभवति प्राप्नोति । कस्मात्सकाशात् परिणामादो परिणतिविशेषात्परिणामि-  
त्वादित्यर्थः । कस्य सम्बन्धि ? अणुस्स अणोः पुद्गलपरमाणोः । तथाहि—यथा जीवे जलाजा-  
गोमहिषीक्षीरे स्नेहदृष्टद्विवत्स्नेहस्थानीयं रागत्वं रूक्षस्थानीयं द्वेषत्वं बन्धकारणभूतं जघन्यविशुद्धसंक्ले-  
शस्थानीयमादि कृत्वा परमागमकथितक्रमेणोक्कृष्टविशुद्धसंक्लेशपर्यन्तं वर्द्धते । तथा पुद्गलपरमाणुद्र-

मात्र है, और इसमें वर्णादि पांच गुण अविरोधी पाये जाते हैं तथा प्रगट शब्द पर्याय  
रहित है, इसकारण यह शुद्ध परमाणू कहा जाता है । इसमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, इन  
गुणोंके परिणमनेसे ही एक परमाणू दूसरे परमाणूसे मिलजाता है इसकारण पिंडरूप  
स्कंधपर्याय हो जाता है और वह अनेकप्रदेशी भी कहा जाता है ॥ ७१ ॥ आगे

परमाणुओंमें स्निग्ध रूक्षगुण किसतरहका है यह कहते हैं;—[ अणोः ] परमाणुके  
[ परिणामात् ] स्निग्धरूक्षगुणमें अनेकप्रकार परिणमन शक्ति होनेसे [ एकादि ]  
एकसे लेकर [ एकोत्तरं ] एक एक बढ़ता हुआ तब तक [ स्निग्धत्वं ] चिकनभाव  
[ वा ] अथवा [ रूक्षत्वं ] रूक्षभाव [ भणितं ] कहा गया है । [ यावत् ]  
जब तक कि [ अनन्तत्वं ] अनंतभेदोंको [ अनुभवति ] प्राप्त होजाता है ॥

भावार्थ—परमाणूमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, उन गुणोंकी अनंतप्रकार परि-  
णति होती है इसलिये स्निग्ध रूक्ष गुणके अनंत भेद होजाते हैं। वे भेद इसतरहके होते  
हैं कि जिनका दूसरा फिर अंश नहीं होता, उन्हीका नाम अविभागप्रतिच्छेद भी

व्यैकपिण्डपर्यायपरिणामस्याकर्तुरनेकपरमाणुद्रव्यैकपिण्डपर्यायपरिणामात्मकशरीरकर्तृत्वस्य सर्वथा विरोधात् ॥७०॥

अथ कथं परमाणुद्रव्याणां पिण्डपर्यायपरिणतिरिति संदेहमपनुदति;—

अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य सयमसहो जो ।

णिहो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुहवदि ॥ ७१ ॥

अप्रदेशः परमाणुः प्रदेशमात्रश्च स्वयमशब्दो यः ।

स्निग्धो वा रूक्षो वा द्विप्रदेशादित्वमनुभवति ॥ ७१ ॥

परमाणुर्हि ह्यादिप्रदेशानामभावादप्रदेशः, एकप्रदेशसद्भावात्प्रदेशमात्रः, स्वयमनेक-  
परमाणुद्रव्यात्मकशब्दपर्यायव्यक्त्यसंभवादशब्दश्च । यतश्चतुःस्पर्शपञ्चरसद्विगन्धपञ्चवर्णा-

मम देहत्वविरोधात् । कर्त्ता वा न भवामि तस्य देहस्य । तदपि कस्मात् ? निःक्रियपरमचिज्ज्योतिः-  
परिणतत्वेन मम देहकर्तृत्वविरोधादिति ॥ ७० ॥ एवं कायवाङ्मनसां शुद्धात्मना सह भेदक-  
धनरूपेण चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम् । इति पूर्वोक्तप्रकारेण “अधित्तिगिस्सदस्स हि” इत्याद्ये-  
कादशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन प्रथमो ‘विशेषान्तराधिकारः’ समाप्तः । अथ केवलपुद्गलमु-  
ह्यत्वेन नयगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तत्र स्थलद्वयं भवति । परमाणूनां परस्परबन्ध-  
कथनार्थं “अपदेसो परमाणू” इत्यादि प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम् । तदनन्तरं स्कन्धानां बन्ध-  
मुह्यत्वेन “दुवदेसादी खंधा” इत्यादिद्वितीयस्थले गाथापञ्चकम् । एवं द्वितीयविशेषान्तराधिकारे  
समुदायपातनिका । अथ यद्यात्मा पुद्गलानां पिण्डं न करोति तर्हि कथं पिण्डपर्यायपरिणतिरिति  
प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;—अपदेसो अप्रदेशः । स कः । परमाणू पुद्गलपरमाणुः । पुनरपि कथं-  
भूतः । पदेसमेत्तो य द्वितीयादिप्रदेशाभावात् प्रदेशमात्रश्च । पुनश्च किं रूपः । सयमसहो  
य स्वयं व्यक्तिरूपेणाशब्दः । एवं विशेषणत्रयविशिष्टः सन् णिहो वा लुक्खो वा स्निग्धो  
वा रूक्षो वा यतः कारणात्संभवति ततः कारणात् । दुपदेसादित्तमणुभवदि द्विप्रदेशा-

मैं इस शरीरका कर्ता किस तरह हो सकता हूँ ? नहीं होसकता । पुद्गलकी निजश-  
क्तिसे वह पुद्गलपर्याय ही है मुझमें और शरीरमें बड़ा भारी विरोध है । इसकारण मैं  
भिन्न द्रव्य हूँ ॥ ७० ॥ आगे कहते हैं कि परमाणुरूपद्रव्योंके स्कंध पर्याय किसतरहसे  
होते हैं इस संदेहको दूर करते हैं;—[ परमाणुः ] जो सूक्ष्म अविभागी पुद्गलपरमाणु  
है वह [ अप्रदेशः ] दोआदि प्रदेशोंसे रहित है, [ प्रदेशमात्रः ] एक प्रदेशमात्र  
है [ च ] और [ स्वयं अंशब्दः ] आप ही शब्दपर्यायरहित है, “शब्द तो अनंत  
पुद्गलपरमाणुओंके स्कंधसे उत्पन्न होता है” [ यत् ] इसीकारणसे यह परमाणु  
[ स्निग्धो वा ] चिकना परिणाम सहित हुआ [ वा ] और रूक्ष ( रूखा ) परि-  
णाम सहित भी हुआ [ द्विप्रदेशादित्वं ] दो प्रदेशको आदिलेकर अनेकप्रदेश भा-  
गोंको [ अनुभवति ] प्राप्त होता है ॥ भावार्थ—यह ‘परमाणु’ अविभागी प्रदेश-

नामविरोधेन सद्भावात् स्निग्धो वा रूक्षो वा स्यात् । तत एव तस्य पिण्डपर्यायपरिणति-  
रूपा द्विप्रदेशादित्वानुभूतिः । अथैवं स्निग्धरूक्षत्वं पिण्डत्वसाधनम् ॥ ७१ ॥

अथ कीदृशं तस्मिन् स्निग्धरूक्षत्वं परमाणोरित्यावेदयति;—

एगुत्तरमेगादी अणुस्स णिद्वत्तणं व लुक्खत्तं ।

परिणामादो भणिदं जाव अणंतत्तमणुहवदि ॥ ७२ ॥

एकोत्तरमेकाद्यणोः स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वम् ।

परिणामाद्भणितं यावदनन्तत्वमनुभवति ॥ ७२ ॥

परमाणोर्हि तावदस्ति परिणामः तस्य वस्तुस्वभावत्वेनानतिक्रमात् । ततस्तु परिणामाद्-

दिरूपं बन्धमनुभवतीति । तथाहि—यथायमात्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावेन बन्धरहितोऽपि  
पश्चादशुद्धनयेन स्निग्धस्थानीयरागभावेन रूक्षस्थानीयद्वेषभावेन यदा परिणमति तदा  
परमागमकथितप्रकारेण बन्धमनुभवति । तथा परमाणुरपि स्वभावेन बन्धरहितोऽपि  
यदा बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणेन परिणतो भवति तदा पुद्गलान्तरेण सह विभावपर्या-  
यरूपं बन्धमनुभवतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥ अथ कीदृशं तस्मिन् स्निग्धरूक्षत्वमितिपृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—

एगुत्तरमेगादी एकोत्तरमेकादि । किं । णिद्वत्तणं च लुक्खत्तं स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च कर्म-  
तापन्नं भणिदं भणितं कथितम् । किं पर्यन्तम् ? जाव अणंतत्तमणुभवदि अनन्तत्वमन-  
न्तपर्यन्तं यावदनुभवति प्राप्नोति । कस्मात्सकाशात् परिणामादो परिणतिविशेषात्परिणामि-  
त्वादित्यर्थः । कस्य सम्बन्धि ? अणुस्स अणोः पुद्गलपरमाणोः । तथाहि—यथा जीवे जलजा-  
गोमहिषीक्षीरे भेहवृद्धिवस्नेहस्थानीयं रागत्वं रूक्षस्थानीयं द्वेषत्वं बन्धकारणभूतं जघन्यविशुद्धसंक्ले-  
शस्थानीयमार्दि कृत्वा परमागमकथितक्रमेणोःकृष्टविशुद्धसंक्लेशपर्यन्तं वर्द्धते । तथा पुद्गलपरमाणुद-

मात्र है, और इसमें वर्णादि पांच गुण अविरोधी पाये जाते हैं तथा प्रगट शब्द पर्याय  
रहित है, इसकारण यह शुद्ध परमाणू कहा जाता है । इसमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, इन  
गुणोंके परिणमनेसे ही एक परमाणू दूसरे परमाणूसे मिलजाता है इसकारण पिंडरूप  
स्कंधपर्याय हो जाता है और वह अनेकप्रदेशी भी कहा जाता है ॥ ७१ ॥ आगे

परमाणुओंमें स्निग्ध रूक्षगुण किसतरहका है यह कहते हैं;—[ अणोः ] परमाणुके  
[ परिणामात् ] स्निग्धरूक्षगुणमें अनेकप्रकार परिणमन शक्ति होनेसे [ एकादि ]  
एकसे लेकर [ एकोत्तरं ] एक एक बढ़ता हुआ तब तक [ स्निग्धत्वं ] चिक्कनभाव  
[ वा ] अथवा [ रूक्षत्वं ] रूक्षभाव [ भणितं ] कहा गया है । [ यावत् ]  
जब तक कि [ अनन्तत्वं ] अनंतभेदोंको [ अनुभवति ] प्राप्त होजाता है ॥

भावार्थ—परमाणुमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, उन गुणोंकी अनंतप्रकार परि-  
णति होती है इसलिये स्निग्ध रूक्ष गुणके अनंत भेद होजाते हैं। वे भेद इसतरहके होते  
हैं, कि जिनका दूसरा फिर अंश नहीं होता, उन्हीका नाम अविभागप्रतिच्छेद भी

व्यैकपिण्डपर्यायपरिणामस्याकर्तुरनेकपरमाणुद्रव्यैकपिण्डपर्यायपरिणामात्मकशरीरकर्तृत्वस्य सर्वथा विरोधात् ॥७० ॥

अथ कथं परमाणुद्रव्याणां पिण्डपर्यायपरिणतिरिति संदेहमपनुदति;—

अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य सयमसद्दो जो ।

णिद्धो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुहवदि ॥ ७१ ॥

अप्रदेशः परमाणुः प्रदेशमात्रश्च स्वयमशब्दो यः ।

स्निग्धो वा रूक्षो वा द्विप्रदेशादित्वमनुभवति ॥ ७१ ॥

परमाणुर्हि ह्यादिप्रदेशानामभावादप्रदेशः, एकप्रदेशसद्भावात्प्रदेशमात्रः, स्वयमनेक-परमाणुद्रव्यात्मकशब्दपर्यायव्यक्त्यसंभवादशब्दश्च । यतश्चतुःस्पर्शपञ्चरसद्विगन्धपञ्चवर्णा-

मम देहत्वविरोधात् । कर्ता वा न भवामि तस्य देहस्य । तदपि कस्मात् ? निःक्रियपरमन्त्रिज्योतिः-परिणतत्वेन मम देहकर्तृत्वविरोधादिति ॥ ७० ॥ एवं कायवाङ्मनसां शुद्धामना सह भेदक-धनरूपेण चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम् । इति पूर्वोक्तप्रकारेण “अथित्तणिससदस्स हि” इत्याद्ये-कादशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन प्रथमो ‘विशेषान्तराधिकारः’ समाप्तः । अथ केवलपुद्गलमु-ख्यत्वेन नयगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तत्र स्थलद्वयं भवति । परमाणूनां परस्परबन्ध-कथनार्थं “अपदेसो परमाणू” इत्यादि प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम् । तदनन्तरं स्कन्धानां बन्ध-मुख्यत्वेन “दुवदेसादी खंधा” इत्यादिद्वितीयस्थले गाथापञ्चकम् । एवं द्वितीयविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका । अथ यद्यात्मा पुद्गलानां पिण्डं न करोति तर्हि कथं पिण्डपर्यायपरिणतिरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;—अपदेसो अप्रदेशः । स कः । परमाणू पुद्गलपरमाणुः । पुनरपि कथं-भूतः । पदेसमेत्तो य द्वितीयादिप्रदेशाभावात् प्रदेशमात्रश्च । पुनश्च किं रूपः । सयमसद्दो-य स्वयं व्यक्तिरूपेणाशब्दः । एवं विशेषणत्रयविशिष्टः सन् णिद्धो वा लुक्खो वा स्निग्धो वा रूक्षो वा यतः कारणात्संभवति ततः कारणात् । दुपदेसादित्तमणुभवदि द्विप्रदेशा-

मैं इस शरीरका कर्ता किस तरह हो सकता हूँ ? नहीं होसकता । पुद्गलकी निजश-क्तिसे वह पुद्गलपर्याय ही है, मुझमें और शरीरमें बड़ा भारी विरोध है । इसकारण मैं भिन्न द्रव्य हूँ ॥ ७० ॥ आगे कहते हैं कि परमाणुरूपद्रव्योंके स्कंध पर्याय किसतरहसे होते हैं इस संदेहको दूर करते हैं;—[ परमाणुः ] जो सूक्ष्म अविभागी पुद्गलपरमाणू है वह [ अप्रदेशः ] दोआदि प्रदेशोंसे रहित है, [ प्रदेशमात्रः ] एक प्रदेशमात्र है [ च ] और [ स्वयं अंशब्दः ] आप ही शब्दपर्यायरहित है, “शब्द तो अनंत पुद्गलपरमाणुओंके स्कंधसे उत्पन्न होता है” [ यत् ] इसीकारणसे यह परमाणु [ स्निग्धो वा ] चिकना परिणाम सहित हुआ [ वा ] और रूक्ष ( रूखा ) परि-णाम सहित भी हुआ [ द्विप्रदेशादित्वं ] दो प्रदेशको आदिलेकर अनेकप्रदेश भा-गोंको [ अनुभवति ] प्राप्त होता है ॥ भावार्थ—यह ‘परमाणु’ अविभागी प्रदेश-

नामविरोधेन सद्भावात् स्निग्धो वा रूक्षो वा स्यात् । तत एव तस्य पिण्डपर्यायपरिणति-  
रूपा द्विप्रदेशादित्वानुभूतिः । अथैवं स्निग्धरूक्षत्वं पिण्डत्वसाधनम् ॥ ७१ ॥

अथ कीदृशं तस्निग्धरूक्षत्वं परमाणोरित्यावेदयति;—

एगुत्तरमेगादी अणुस्स णिद्धत्तणं च लुक्खत्तं ।

परिणामादो भणिदं जाव अणंतत्तमणुहवदि ॥ ७२ ॥

एकोत्तरमेकाद्यणोः स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वम् ।

परिणामाद्भणितं यावदनन्तत्वमनुभवति ॥ ७२ ॥

परमाणोर्हि तावदस्ति परिणामः तस्य वस्तुस्वभावत्वेनानतिक्रमात् । ततस्तु परिणामाद्-

दिरूपं बन्धमनुभवतीति । तथाहि—यथायमात्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावेन बन्धरहितोऽपि  
पश्चादशुद्धनयेन स्निग्धस्थानीयरागभावेन रूक्षस्थानीयद्वेषभावेन यदा परिणमति तदा  
परमागमकथितप्रकारेण बन्धमनुभवति । तथा परमाणुरपि स्वभावेन बन्धरहितोऽपि  
यदा बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणेन परिणतो भवति तदा पुद्गलन्तरेण सह विभावपर्या-  
यरूपं बन्धमनुभवतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥ अथ कीदृशं तस्निग्धरूक्षत्वमितिपृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—  
एगुत्तरमेगादी एकोत्तरमेकादि । किं । णिद्धत्तणं च लुक्खत्तं स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च कर्म-  
तापन्नं भणिदं भणितं कथितम् । किं पर्यन्तम् ? जाव अणंतत्तमणुहवदि अनन्तत्वमन-  
न्तपर्यन्तं यावदनुभवति प्राप्नोति । कस्मात्सकाशात् परिणामादो परिणतिविशेषात्परिणामि-  
त्वादित्यर्थः । कस्य सम्बन्धि ? अणुस्स अणोः पुद्गलपरमाणोः । तथाहि—यथा जीवे जलाजा-  
गोमहिषीक्षीरे क्लेशद्विवत्तनेहस्थानीयं रागत्वं रूक्षस्थानीयं द्वेषत्वं बन्धकारणभूतं जघन्यविशुद्धसंक्ले-  
शस्थानीयमादि कृत्वा परमागमकथितक्रमेणोत्कृष्टविशुद्धसंक्लेशपर्यन्तं वर्द्धते । तथा पुद्गलपरमाणुद-

मात्र है, और इसमें वर्णादि पांच गुण अविरोधी पाये जाते हैं तथा प्रगट शब्द पर्याय  
रहित है, इसकारण यह शुद्ध परमाणू कहा जाता है । इसमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, इन  
गुणोंके परिणमनेसे ही एक परमाणू दूसरे परमाणूसे मिलजाता है इसकारण पिंडरूप  
स्कंधपर्याय हो जाता है और वह अनेकप्रदेशी भी कहा जाता है ॥ ७१ ॥ आगे  
परमाणुओंमें स्निग्ध रूक्षगुण किसतरहका है यह कहते हैं;—[ अणोः ] परमाणुके  
[ परिणामात् ] स्निग्धरूक्षगुणमें अनेकप्रकार परिणमन शक्ति होनेसे [ एकादि ]  
एकसे लेकर [ एकोत्तरं ] एक एक बढ़ता हुआ तब तक [ स्निग्धत्वं ] चिक्कनभाव  
[ वा ] अथवा [ रूक्षत्वं ] रूक्षभाव [ भणितं ] कहा गया है । [ यावत् ]  
जब तक कि [ अनन्तत्वं ] अनंतभेदोंको [ अनुभवति ] प्राप्त होजाता है ॥  
भावार्थ—परमाणूमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, उन गुणोंकी अनंतप्रकार परि-  
णति होती है इसलिये स्निग्ध रूक्ष गुणके अनंत भेद होजाते हैं । वे भेद इसतरहके होते  
हैं कि जिनका दूसरा फिर अंश नहीं होता, उन्हीका नाम अविभागप्रतिच्छेद भी



पात्तकादाचित्कवैचित्र्यं चित्रगुणयोगित्वात्परमाणोरेकाद्येकोत्तरानन्तावसानाविभागपरिच्छे-  
दव्यापि स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वं वा भवति ॥ ७२ ॥

अथात्र कीदृशास्निग्धरूक्षत्वात्पिण्डत्वमित्यावेदयति;—

णिद्धा वा लुक्त्वा वा अणुपरिणामा समा च विसमा वा ।

समदो दुराधिगा जदि बज्झन्ति हि आदिपरिहीणा ॥ ७३ ॥

स्निग्धा वा रूक्षा वा अणुपरिणामा समा वा विपमा वा ।

समतो द्व्यधिका यदि बध्यन्ते हि आदिपरिहीणाः ॥ ७३ ॥

समतो द्व्यधिकगुणाद्धि स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध इत्युत्सर्गः, स्निग्धरूक्षद्व्यधिकगुणत्वस्य

व्येऽपि स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च बन्धकारणभूतं पूर्वोक्तजलादितारतम्पशक्तिदृष्टान्तेनैकगुणसंज्ञाजबन्ध-  
क्तिमादिं कृत्वा गुणसंज्ञेनाविभागपरिच्छेदद्वितीयनामाभिधेयेन शक्तिविशेषेण वर्द्धते । किं पर्यन्तं ।  
यावदनन्तसंख्यानम् । कस्मात् ? पुद्गलद्रव्यस्य परिणामित्वात् परिणामस्य वस्तुस्वभावादेव  
निषेधितुमशक्यत्वादिति ॥ ७२ ॥ अथात्र कीदृशास्निग्धरूक्षत्वगुणात् पिण्डो भवतीति प्रश्ने  
समाधानं ददाति;—बज्झन्ति हि बध्यन्ते हि स्फुटं । के । कर्मतापन्नाः अणुपरिणामा अणुपरि-  
णामाः।अणुपरिणामशब्देनात्र परिणामपरिणता अणवो गृह्यन्ते । कथंभूताः। णिद्धा वा लुक्त्वा वा  
स्निग्धपरिणामपरिणता वा रूक्षपरिणामपरिणता वा । पुनरपि किं विशिष्टाः समा च विसमा वा  
द्विशक्तिचतुःशक्तिपटशक्यादिपरिणतानां सम इति संज्ञा । त्रिशक्तिपञ्चशक्तिसप्तशक्त्यादिपरिणतानां  
विपम इति संज्ञा । पुनश्च किं रूपा । समदो दुराधिगा जदि समतः समसंख्यानात्सकाशाद् द्वाभ्यां  
गुणाभ्यामधिका यदि चेत् । कथं द्विगुणाधिकत्वमितिचेत् ? एको द्विगुणस्तिस्रति द्वितीयोऽपि द्विगुण  
इति द्वौ समसंख्यानौ तिष्ठतस्तावत् एकस्य विवक्षितद्विगुणस्य द्विगुणाधिकत्वे कृते सति सः चतुर्गुणो-  
भवति शक्तिचतुष्टयपरिणतो भवति । तस्य चतुर्गुणस्य पूर्वोक्तद्विगुणेन सह बन्धो भवतीति । तथैव  
द्वौ त्रिशक्तियुक्तौ तिष्ठतस्तावत्, तत्राप्येकस्य त्रिगुणशब्दाभिधेयस्य त्रिशक्तियुक्तस्य परमाणोः शक्तिद्व-  
यमेलापके कृते सति पञ्चगुणत्वं भवति । तेन पञ्चगुणेन सह पूर्वोक्तत्रिगुणस्य बन्धो भवति । एवं  
द्वयोर्द्वयोः स्निग्धयोर्द्वयोर्द्वयो रूक्षयोर्द्वयोर्द्वयोःस्निग्धरूक्षयोर्वा समयो विपमयोश्च द्विगुणाधिकत्वे सति

कहा गया है । जैसे बकरी गाय भैंस ऊंटनीके दूधमें अथवा घी बगैरः में बढते २ विक-  
नाईका भेद होता है और जैसे धूलि राख रेत इत्यादि वस्तुओंमें रूखापन अधिक  
अधिक होता है उसीप्रकार स्निग्ध रूक्ष गुणके अनंतभेद जानने चाहिये ॥ ७२ ॥ आगे  
त्रिसतरहके स्निग्धरूक्षगुणके परिणमनसे बंध होकर पिंड होजाता है यह दिखलाते हैं;—  
[ अणुपरिणामाः ] परमाणुके पर्यायभेद [ स्निग्धा वा ] स्निग्ध होवें [ वा ]  
अथवा [ रूक्षाः ] रूखे होवें [ समा वा ] दो चार छद् इत्यादि अंशोंकी गिनतीकर  
समान हों [ विपमा वा ] अथवा तीन पांच सात इत्यादि अंशोंकर विपम हों, परंतु

हि परिणामकत्वेन बन्धसाधनत्वात् । न खल्वेकगुणात् स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध इत्यपवादः,  
एकगुणस्निग्धरूक्षत्वस्य हि परिणम्यपरिणामकत्वाभावेन बन्धस्यासाधनत्वात् ॥ ७३ ॥

अथ परमाणूनां पिण्डत्वस्य यथोदितहेतुत्वमवधारयति;—

णिद्धत्तणेण दुग्णो चदुग्णणिद्धेण बंधमणुभवदि ।

लुक्त्वेण वा तिगुणितो अणु बद्धदि पंचगुणजुत्तो ॥ ७४ ॥

स्निग्धत्वेन द्विगुणश्चतुर्गुणस्निग्धेन बन्धमनुभवति ।

रूक्षेण वा त्रिगुणितोऽणुर्वध्यते पञ्चगुणयुक्तः ॥ ७४ ॥

यथोदितहेतुकमेव परमाणूनां पिण्डत्वमवधार्य द्विचतुर्गुणयोस्त्रिपञ्चगुणयोश्च द्वयोः स्नि-  
ग्धयोः द्वयो रूक्षयोर्द्वयोः स्निग्धरूक्षयोर्वा परमाण्वोर्वन्धस्याप्रसिद्धेः । उक्तं च “णिद्धा णिद्धे-

बन्धो भवतीत्यर्थः, किन्तु विशेषोऽस्ति । आदिपरिहीणा आदिशब्देन जलस्थानीयं जघन्यस्निग्धत्वं  
वालुकस्थानीयं जघन्यरूक्षत्वं भण्यते ताम्यां विहीना आदि परिहीना बध्यन्ते । किञ्च—परम-  
चैतन्यपरिणतिलक्षणपरमात्मतत्त्वभावनारूपधर्मध्यानशुद्धध्यानब्रह्मेण यथा जघन्यस्निग्धशक्ति-  
स्थानीये क्षीणरागत्वे सति जघन्यरूक्षशक्तिस्थानीये क्षीणद्वेषत्वे च सति जलवालुकयोरिव  
जीवस्य बन्धो न भवति, तथा पुद्गलपरमाणोरपि जघन्यस्निग्धरूक्षशक्तिप्रस्तावे बन्धो न भव-  
तीत्यभिप्रायः ॥ ७३ ॥ अथ तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति;—गुणशब्दवाच्यशक्तिद्वययुक्तस्य  
स्निग्धपरमाणोश्चतुर्गुणः स्निग्धेन रूक्षेण वा समशब्दसंज्ञेन तथैव त्रिशक्तियुक्तरूक्षस्य पञ्चगुणरूक्षेण  
स्निग्धेन वा विपमसंज्ञेन द्विगुणाधिकत्वेन सति बन्धो भवतीति ज्ञातव्यम् । अयं तु विशेषः—

[ यदि ] जो [ आदिपरिहीनाः ] जघन्य अंशसे रहित [ समनः ] गिनतीकी  
समानतासे [ द्वयधिकाः ] दो अंश अधिक होवैं तब [ बध्यन्ति ] आपसमें बंधते  
हैं अन्यरीतिसे नहीं ॥ भावार्थ—स्निग्ध रूक्ष गुणमें अनंत अंश भेद हैं परंतु एक  
परमाणू दूसरे परमाणुसे तब बंधता है जब कि दो अंश अधिक स्निग्ध अथवा रूक्ष  
गुणका परिणमन हो, क्योंकि दो ही अंशकी अधिकतासे बंध होनेकी योग्यता परमा-  
गममें दिखलाई है अन्यप्रकारसे बंध नहीं होता, पूर्वोक्त परिणमनसे ही होता है । एक  
अंशरूप स्निग्धरूक्षभाव परिणत परमाणूसे बंध नहीं होता क्योंकि अति जघन्यभावकर  
बंधपरिणाम होनेकी अयोग्यता है । इसकारण एक अंशकर बंध नहीं होता ॥ ७३ ॥ आगे  
किसतरह बंध होता है यह दिखलाते हैं;—[स्निग्धत्वेन] चिकनेपनेसे [द्विगुणः] दो  
अंशरूप परिणत परमाणु [ चतुर्गुणस्निग्धेन ] चार अंशरूप परिणत हुए परमाणूसे  
[ बंध ] बंध अवस्थाको [ अनुभवति ] प्राप्त होता है [ वा ] अथवा [ रूक्षेण ]  
रूखेपनेसे [ त्रिगुणितः ] तीन अंशरूप परिणत परमाणू [ पञ्चगुणयुक्तः ] पांच  
अंशरूप परिणत हुए परमाणूसे संयुक्त हुआ [ अनुबध्यते ] बंधको प्राप्त होता है ॥  
भावार्थ—एक परमाणूमें दो अंश स्निग्ध हों तथा दूसरी परमाणूमें चार अंश हों तो

ण वज्जंति लुक्खा लुक्खा य पोग्गला । णिद्ध लुक्खा य वज्जंति रूवारूवीय पोग्गला ॥”  
 “णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिण्ण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिण्ण । णिद्धस्स लुक्खेण ह्वेदि  
 वन्धो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥” ॥ ७४ ॥

अथात्मनः पुद्गलपिण्डात्मकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

दुपदेसादी खंधा सुहुमा वा चादरा ससंठाणा ।

पुढविजलतेउवाज्ज सगपरिणामेहिं जायंते ॥ ७५ ॥

परमानन्दैकलक्षणस्वसंवेदज्ञानचलेन हीयमानरागद्वेषादे सति पूर्वोक्तजलवायुकाद्यद्यन्तेन यथा जी-  
 वानां बन्धो न भवति तथा जघन्यस्निग्धरूक्षत्वगुणे सति परमाणूनां चेति । तथाचोक्तम्—  
 “णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिगेण लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिगेण । णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि वंधो जव-  
 ण्णवज्जे विसमे समे वा” ॥ ७४ ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्निग्धरूक्षपरिणतपरमाणुस्वरूपकथनेन  
 दोनो परमाणुओंका आपसमें बंध होता है अथवा एकमें ४ अंश हों तथा दूसरीमें ६  
 अंश हों तौभी बंध होता है । इसप्रकार अपने अनंत अंश भेद तक दो अंश  
 अधिक स्निग्धतासे स्निग्ध परमाणुओंका अथवा स्कंधोंका बंध जानना । तथा  
 एक परमाणु ३ अंश रूक्ष हो और दूसरा परमाणु ५ अंश रूक्ष हो तो दो-  
 नोंका बंध होता है, अथवा एक परमाणु ५ अंश दूसरा ७ अंश हो तौ भी बंध होता  
 है । इसप्रकार अपने अंश भेद तक दो अंश अधिक रूक्षतासे रूक्ष परमाणुओंका अथवा  
 स्कंधोंका बंध जानना चाहिये । एक परमाणुमें २ अंश रूखेपनेके हैं और दूसरी पर-  
 माणुमें ४ अंश स्निग्धताके हैं तौभी बंध होता है, इसप्रकार दो अंश अधिक स्निग्ध रू-  
 क्षगुणोंके अंशोंसेभी परमाणु तथा स्कंधोंका बंध जानना चाहिये । इससे यह बात सिद्ध  
 हुई कि स्निग्धतासे दो अंश अधिक स्निग्धताकर बंध होता है तथा रूक्षतासे दो अंश  
 अधिक रूक्षताकर बंध होता है, और रूक्षता स्निग्धतामें भी दो अंश अधिक होनेसे  
 बंध होता है । जो दो परमाणुओंमें अंश बराबर हों तो बंध नहीं होता और  
 जो एक अंश अधिक हो तो भी बंध होना संभव नहीं है, परंतु जब दो अंश  
 अधिक हों तभी बंध होसकता है दूसरी तरह बंध होनेकी योग्यता नहीं है ।  
 तथा जो एक अंश चिकनाई अथवा रूखाई हो तौभी बंध नहीं होता, क्योंकि १ अंश  
 अति जघन्य है इसकारण बंध योग्य नहीं है । दो अंशसे लेकर आगे अनंतभेदतक दो  
 अंश अधिक चिकनाई रूखाई जो होवे तब बंध होता है एक अंशसे बंधका अभाव ही  
 जानना । एक परमाणु एक अंश चिकनाई अथवा रूखाईपने परिणत हो और दूसरा तीन  
 अंश चिकनाई अथवा तीन अंश रूखापनेसे परिणत हो तौभी बंध नहीं होता यद्यपि  
 यहां पर दो अंश अधिक भी हैं तौभी बंधकी योग्यता नहीं है, इसकारण एक अंशसे  
 बंध फभी नहीं होना ॥ ७४ ॥ आगे आत्माके पुद्गलपिण्डके कर्तापनेका अभाव दिखलाते

द्विप्रदेशादयः स्कन्धाः सूक्ष्मा वा वादरा ससंस्थानाः ।  
पृथिवीजलतेजोवायवः स्वकपरिणामैर्जायन्ते ॥ ७५ ॥

एवममी समुपजायमाना द्विप्रदेशादयः स्कन्धा विशिष्टावगाहनशक्तिवशादुपात्तसौ-  
क्ष्म्यस्थौल्यविशेषा विशिष्टाकारधारणशक्तिवशाद्द्रहीतविचित्रसंस्थानाः सन्तो यथास्वं स्पर्शादि-  
चतुष्कस्याविर्भावतिरोभावस्वशक्तिवशमासाद्य पृथिव्यसेजोवायवः स्वपरिणामैरेव जायन्ते ।  
अतोऽवधार्यते द्व्यणुकाद्यनन्तानन्तपुद्गलानां न पिण्डकर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७५ ॥

प्रथमगाथा । स्निग्धरूक्षगुणविवरणेन द्वितीया । स्निग्धरूक्षगुणाम्यां व्यधिकत्वे सति बन्धकथ-  
नेन तृतीया । तस्यैव दृढीकरणेन चतुर्थी चेति परमाणूनां परस्परबन्धव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथम-  
स्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथात्मा द्व्यणुकादिपुद्गलस्कन्धानां कर्ता न भवतीत्युपदिशति;—  
जायन्ते उत्पद्यन्ते । के कर्तारः । दुपदेशादी खंदा द्विप्रदेशाद्यनन्ताणुपर्यन्ताः स्कन्धा  
जायन्ते । पुढविजलतेउवाऊ पृथ्वीजलतेजोवायवः । कथंभूताः सन्तः । सुहुमा वा वादरा  
सूक्ष्मा वादराः । पुनरपि किंविशिष्टाः सन्तः । ससंठाणा यथासम्भवं वृत्तचतुरस्रादिस्वकी-  
यस्वकीयसंस्थानाकारयुक्ताः । कैः कृत्वा जायन्ते ? सगपरिणामेहि स्वकीयस्वकीयस्निग्धरूक्षप-  
रिणामैरिति । अथ विस्तरः—जीवा हि तावद्दस्तुतष्टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेण शुद्धबुद्धैकत्वभा-  
वा एव पश्चाद्ब्रह्महारेणानादिकर्मबन्धोपाधिवशेन शुद्धात्मस्वभावमलभमानाः सन्तः पृथिव्यतेजो-  
वातकायिकेषु समुत्पद्यन्ते, तथापि स्वकीयाभ्यन्तरसुखदुःखादिरूपपरिणतेरेवाशुद्धोपादानका-  
रणं भवन्ति । न च पृथिव्यादिकायाकारपरिणतेः । कस्मादिति चेत् ? तत्र स्कन्धानामेवोपादानकारण-

हैं;—[ द्विप्रदेशादयः स्कन्धाः ] दो प्रदेशको आदि लेकर परमाणुओंके स्कंध अ-  
र्थात् दो परमाणुका स्कंध तीन परमाणुओंका स्कंध इत्यादि अनंत परमाणुओंके खंध  
पर्यंत जो स्कंध हैं वे सब [ स्वकपरिणामैः ] अपने ही स्निग्ध रूक्ष गुणके परिण-  
मनकी योग्यतासे [ जायन्ते ] उत्पन्न होते हैं [ वा ] अथवा [ सूक्ष्मा वादराः ]  
सूक्ष्मजाति और स्थूलजातिके [ पृथ्वीजलतेजोवायवः ] पृथिवीकाय जलकाय अत्रिकाय  
वायुकाय ये भी स्निग्ध रूक्षभावके परिणमनसे पुद्गलात्मक स्कंध पर्यायरूप उत्पन्न होते हैं ।  
वे पुद्गलपर्याय [ससंस्थानाः] तिकोने चौकोने गोलाकार इत्यादि अनेक आकार सहित  
होते हैं ॥ भावार्थ—दो परमाणुओंके स्कंधसे लेकर अनंतानंत परमाणुस्कंध पर्यंत नाना-  
प्रकार आकारोंको धारणकिये हुए सूक्ष्म स्थूलरूप जो पुद्गलपर्याय होते हैं तथा स्पर्शरसगंधव-  
र्णकी मुख्यता या गौणता लिये हुए पृथ्वी जल तेज वायुरूप पिंड हैं उन सब पर्या-  
योंका कर्ता पुद्गलद्रव्य जानना चाहिये । इससे यह सिद्धांत निकला कि आत्मा(पुरुष)  
पुद्गलपिंडका कर्ता नहीं है पुद्गलद्रव्यमें ही पिंड होनेकी स्निग्धरूक्ष शक्ति है, इसलिये

ण वञ्चति लुक्खा लुक्खा य पोगला । णिद्ध लुक्खा य वञ्चति रूवारूवीय पोगला ॥  
 “णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिण्ण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिण्ण । णिद्धस्स लुक्खेण ह्वेदि  
 वन्धो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥” ॥ ७४ ॥

अथात्मनः पुद्गलपिण्डात्मकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

दुपदेसादी खंधा सुहुमा वा वादरा ससंठाणा ।

पुढविजलतेउवाज सगपरिणामेहिं जायंते ॥ ७५ ॥

परमानन्दैकलक्षणस्वसंबेदज्ञानबलेन हीयमानरागद्वेष्ये सति पूर्वोक्तजलत्रालुकाद्यन्तेन यथा जी-  
 वानां बन्धो न भवति तथा जघन्यस्निग्धरूक्षत्वगुणे सति परमाणूनां चेति । तथाचोक्तम्—  
 “णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिगेण लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिगेण । णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि वंधो जघ-  
 ण्णवज्जे विसमे समे वा” ॥ ७४ ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्निग्धरूक्षपरिणतपरमाणुस्वरूपकथनेन

दोनों परमाणुओंका आपसमें बंध होता है अथवा एकमें ४ अंश हों तथा दूसरीमें ६  
 अंश हों तौभी बंध होता है । इसप्रकार अपने अनंत अंश भेद तक दो अंश  
 अधिक स्निग्धतासे स्निग्ध परमाणुओंका अथवा स्कंधोंका बंध जानना । तथा  
 एक परमाणु ३ अंश रूक्ष हो और दूसरा परमाणु ५ अंश रूक्ष हो तो दो-  
 नोंका बंध होता है, अथवा एक परमाणु ५ अंश दूसरा ७ अंश हो तौ भी बंध होता  
 है । इसप्रकार अपने अंश भेद तक दो अंश अधिक रूक्षतासे रूक्ष परमाणुओंका अथवा  
 स्कंधोंका बंध जानना चाहिये । एक परमाणुमें २ अंश रूखेपनेके हैं और दूसरी पर-  
 माणुमें ४ अंश स्निग्धताके हैं तौभी बंध होता है, इसप्रकार दो अंश अधिक स्निग्ध रू-  
 क्षगुणोंके अंशोंसेभी परमाणु तथा स्कंधोंका बंध जानना चाहिये । इससे यह बात सिद्ध  
 हुई कि स्निग्धतासे दो अंश अधिक स्निग्धताकर बंध होता है तथा रूक्षतासे दो अंश  
 अधिक रूक्षताकर बंध होता है, और रूक्षता स्निग्धतामें भी दो अंश अधिक होनेसे  
 बंध होता है । जो दो परमाणुओंमें अंश बराबर हों तो बंध नहीं होता और  
 जो एक अंश अधिक हो तो भी बंध होना संभव नहीं है, परंतु जब दो अंश  
 अधिक हों तभी बंध होसकता है दूसरी तरह बंध होनेकी योग्यता नहीं है ।  
 तथा जो एक अंश चिकनाई अथवा रूखाई हो तौभी बंध नहीं होता, क्योंकि १ अंश  
 अति जघन्य है इसकारण बंध योग्य नहीं है । दो अंशसे लेकर आगे अनंतभेदतक दो  
 अंश अधिक चिकनाई रूखाई जो होये तब बंध होता है एक अंशसे बंधका अभाव ही  
 जानना । एक परमाणु एक अंश चिकनाई अथवा रूखाईपने परिणत हो और दूसरा तीन  
 अंश चिकनाई अथवा तीन अंश रूखापनेसे परिणत हो तौभी बंध नहीं होता यद्यपि  
 यहां पर दो अंश अधिक भी हैं तौभी बंधकी योग्यता नहीं है, इसकारण एक अंशसे  
 बंध कमी नहीं होता ॥ ७४ ॥ आगे आत्माके पुद्गलपिण्डके कर्तापनेका अभाव विसलाते

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।

गच्छंति कम्मभावं ण तु ते जीवेण परिणमिदा ॥ ७७ ॥

कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धा जीवस्य परिणतिं प्राप्य ।

गच्छन्ति कर्मभावं न तु ते जीवेन परिणमिताः ॥ ७७ ॥

यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढजीवपरिणाममात्रं वहिरङ्गसाधनमाश्रित्य जीवं परिणमयितार-  
मन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिनः पुद्गलस्कन्धाः स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ति ।  
ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७७ ॥

अथात्मनः कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीरकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो हि जीवस्स ।

संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा ॥ ७८ ॥

तीति ॥ ७६ ॥ अथ कर्मस्कन्धानां जीव उपादानकर्त्ता न भवतीति प्रज्ञापयति;—कम्मत्त-  
णपाओग्गा खंधा कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धाः कर्त्तारः जीवस्स परिणइं पप्पा जीवस्य परि-  
णतिं प्राप्य निर्दोषिपरमात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखामृतपरिणतेः प्रतिपक्षभूतां जीवस-  
म्बन्धिर्नो मिथ्यात्वरामादिपरिणतिं प्राप्य गच्छंति कम्मभावं गच्छन्ति परिणमन्ति । कं ।  
कर्मभावं ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायं ण हि ते जीवेण परिणमिदा न हि नैव ते कर्म-  
स्कन्धा जीवेनोपादानकर्तृभूतेन परिणमिताः परिणतिं नीता इत्यर्थः । अनेन व्याख्यानेनैतदुक्तं  
भवति कर्मस्कन्धानां निश्चयेन जीवः कर्त्ता न भवतीति ॥ ७७ ॥ अथ शरीराकारपरिणतपुद्ग-  
लपिण्डानां जीवः कर्त्ता न भवतीत्युपदिशति;—ते ते कम्मत्तगदा ते ते पूर्वसूत्रोदिताः

कारण आत्मा पुद्गलपिण्डका प्रेरक नहीं है ॥ ७६ ॥ आगे आत्माको पुद्गलपिण्डरूप कर्मका  
अकर्ता दिखलाते हैं;—[ कर्मत्वप्रायोग्याः ] अष्टकर्मरूप होनेयोग्य जो [स्कन्धाः]  
पुद्गलवर्गणाओंके पिण्ड हैं वे [ जीवस्य ] संसारी आत्माकी [ परिणति ] अशुद्ध  
परिणतिको [ प्राप्य ] पाकर [ कर्मभावं ] आठ कर्मरूप परिणामको [ गच्छन्ति ]  
प्राप्त होते हैं [ तु ] परंतु [ ते ] वे कर्मयोग्यबंध [ जीवेन ] आत्माने [ न परि-  
णमिताः ] नहीं परिणमाये हैं अपनीशक्तिसे ही परिणत हुए हैं ॥ भावार्थ—  
जिस क्षेत्रमें कार्माण वर्गणा हैं उसी क्षेत्रमें जीव भी हैं । वे जीव अनादि बंधके संयो-  
गसे अशुद्धभावोंस्वरूप परिणमते हैं । उस अशुद्धपरिणामका बंधरूप वहिरंग निमित्तकारण  
पाकर कर्मवर्गणा अपनी अंतरंग निजशक्तिसे आठ कर्मरूप परिणम जाती हैं । इसका-  
रण यह आत्मा उनका परिणमानेवाला नहीं है कार्माणवर्गणा अपने आप परिणमतीं  
हैं । इसीलिये “उनका कर्ता आत्मा नहीं है” यह सिद्ध हुआ ॥ ७७ ॥ आगे आ-  
त्माको नोकर्मरूप शरीरका अकर्ता दिखलाते हैं;—[ ते ते ] वे वे [ कर्मत्वगताः ]

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानेतृत्वाभावमवधारयति;—

ओग्गाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो ।

सुहुमेहिं चादरेहिं य अप्पाउग्गेहिं जोग्गेहिं ॥ ७६ ॥

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः ।

सूक्ष्मैर्वादरैश्चाप्रायोग्यैर्योग्यैः ॥ ७६ ॥

यतो हि सूक्ष्मत्वपरिणतैर्वादरपरिणतैश्चानतिसूक्ष्मत्वस्थूलत्वात् कर्मत्वपरिणमनश्च-  
क्तियोगिभिरतिसूक्ष्मस्थूलतया तदयोगिभिश्चावगाहविशिष्टत्वेन परस्परमबाधमानैः स्वय-  
मेव सर्वत एव पुद्गलकायैर्गाढं निचितो लोकः । ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानामानेता  
पुरुषोस्ति ॥ ७६ ॥

त्वादिति । ततो ज्ञायते पुद्गलपिण्डानां जीवः कर्त्ता न भवतीति ॥७५॥ अथात्मा बन्धकाले बन्धयो-  
ग्यपुद्गलान् बहिर्भागात्नैवानयतीत्यावेदयति;—ओग्गाढगाढणिचिदो अवगाह्यावगाहनैरन्तर्येण  
निचितो भृतः । स कः । लोगो लोकः । कथंभूतः ? सव्वदो सर्वतः सर्वप्रदेशेषु । कैः कर्तृभूतैः ?  
पुग्गलकायेहि पुद्गलकायैः । किंविशिष्टैः ? सुहुमेहि चादरेहि य इन्द्रियाग्रहणयोग्यैः सू-  
क्ष्मैस्तद्ग्रहणयोग्यैर्वादरैश्च । पुनश्च कथंभूतैः ? अप्पाओग्गेहिं अतिसूक्ष्मस्थूलत्वेन कर्मवर्ग-  
णायोग्यतारहितैः । पुनश्च किंविशिष्टैः । जोग्गेहिं अतिसूक्ष्मस्थूलत्वाभावात्कर्मवर्गणायोग्यै-  
रिति । अयमत्रार्थः—निश्चयेन शुद्धस्वरूपैरपि व्यवहारेण कर्मोदयाधीनतया पृथिव्यादिपञ्चसूक्ष्म-  
स्थावरत्वं प्रातैर्जीवैर्व्यथा लोको निरन्तरं भृत्स्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपि । ततो ज्ञायते यत्रैव शरी-  
रावगाढक्षेत्रे जीवस्तिष्ठति बन्धयोग्यपुद्गला अपि तत्रैव तिष्ठन्ति न च बहिर्भागाज्जीव आनय-

अपने परिणामसे वह अनेकप्रकार हो जाता है ॥ ७५ ॥ आगे आत्मा पुद्गलपिण्डका प्रेरक  
भी नहीं है यह निश्चय करते हैं;—[ लोकः ] असंख्यप्रदेशी लोक [ सर्वतः ] सब  
जगह [ सूक्ष्मैः ] सूक्ष्मरूप [ च ] और [ चादरैः ] स्थूलरूप [ आत्मप्रा-  
योग्यैः ] आत्माके ग्रहणकरनेयोग्य [ योग्यैः ] कर्मरूप होनेयोग्य अथवा  
कर्मरूप न होनेयोग्य ऐसे [ पुद्गलकायैः ] पुद्गलद्रव्यके पिण्डोंसे [ अवगाढ-  
गाढनिचितः ] अत्यंत गाढ भर रहा है ॥ भावार्थ—यह लोक सब जगह एक  
एक प्रदेशमें अनंत अनंत कार्माण ( कर्म होनेयोग्य ) वर्गणाओंसे भरपूर है, अवगाहना  
शक्ति होनेसे कहींपर बाधा नहीं होती । इसकारण इसलोकमें सब जगह जीव ठहरे  
हुए हैं, और कर्मबंधके योग्य पुद्गलवर्गणा भी सब जगह मौजूद हैं । जीवके जिसतरहके  
परिणाम होते हैं उसीतरहका आत्माके कर्मबंध होता है । ऐसा नहीं है कि यह  
आत्मा आप किसी जगहसे प्रेरणा करके कार्माण वर्गणाओंका बंध करता हो । जिस  
जगह जीव है उसीजगह अनंतवर्गणा हैं वहां पर ही आपसमें बंध होजाता है । इस-

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।

गच्छंति कम्मभावं ण तु ते जीवेण परिणमिदा ॥ ७७ ॥

कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धा जीवस्य परिणतिं प्राप्य ।

गच्छन्ति कर्मभावं न तु ते जीवेन परिणमिताः ॥ ७७ ॥

यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढजीवपरिणाममात्रं बहिरङ्गसाधनमाश्रित्य जीवं परिणमयितार-  
मन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिनः पुद्गलस्कन्धाः स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ति ।  
ततोऽवधारयते न पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७७ ॥

अथात्मनः कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीरकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो हि जीवस्स ।

संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा ॥ ७८ ॥

तीति ॥ ७६ ॥ अथ कर्मस्कन्धानां जीव उपादानकर्त्ता न भवतीति प्रज्ञापयति;—कम्मत्त-  
णपाओग्गा खंधा कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धाः कर्त्तारः जीवस्स परिणइं पप्पा जीवस्य परि-  
णतिं प्राप्य निर्दोषिपरमात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखाद्युत्पणितेः प्रतिपक्षभूतां जीवस-  
म्बन्धिनां मिथ्यात्वरगादिपरिणतिं प्राप्य गच्छंति कम्मभावं गच्छन्ति परिणमन्ति । कं ।  
कर्मभावं ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायं ण हि ते जीवेण परिणमिदा न हि नैव ते कर्म-  
स्कन्धा जीवेनोपादानकर्तृभूतेन परिणमिताः परिणतिं नीता इत्यर्थः । अनेन व्याख्यानेनैतदुक्तं  
भवति कर्मस्कन्धानां निश्चयेन जीवः कर्त्ता न भवतीति ॥ ७७ ॥ अथ शरीराकारपरिणतपुद्ग-  
लपिण्डानां जीवः कर्त्ता न भवतीत्युपदिशति;—ते ते कम्मत्तगदा ते ते पूर्वसूत्रोदिताः

कारण आत्मा पुद्गलपिण्डका प्रेरक नहीं है ॥ ७६ ॥ आगे आत्माको पुद्गलपिण्डरूप कर्मका  
अकर्ता दिखलाते हैं;—[ कर्मत्वप्रायोग्याः ] अष्टकर्मरूप होनेयोग्य जो [स्कन्धाः]  
पुद्गलवर्गणाओंके पिण्ड हैं वे [ जीवस्य ] संसारी आत्माकी [ परिणति ] अशुद्ध  
परिणतिको [ प्राप्य ] पाकर [ कर्मभावं ] आठ कर्मरूप परिणामको [ गच्छन्ति ]  
प्राप्त होते हैं [ तु ] परंतु [ ते ] वे कर्मयोग्यबंध [ जीवेन ] आत्माने [ न परि-  
णमिताः ] नहीं परिणमाये हैं अपनीशक्तिसे ही परिणत हुए हैं ॥ भावार्थ—  
जिस क्षेत्रमें कार्माण वर्गणा हैं उसी क्षेत्रमें जीव भी हैं । वे जीव अनादि बंधके संयो-  
गसे अशुद्धभावोंस्वरूप परिणमते हैं । उस अशुद्धपरिणामका बंधरूप बहिरंग निमित्तकारण  
पाकर कर्मवर्गणा अपनी अंतरंग निजशक्तिसे आठ कर्मरूप परिणम जाती हैं । इसका-  
रण यह आत्मा उनका परिणमानेवाला नहीं है कार्माणवर्गणा अपने आप परिणमतीं  
हैं । इसीलिये “उनका कर्ता आत्मा नहीं है” यह सिद्ध हुआ ॥ ७७ ॥ आगे आ-  
त्माको नोकर्मरूप शरीरका अकर्ता दिखलाते हैं;—[ ते ते ] वे वे [ कर्मत्वगताः ]



अथात्मनः पुद्गलपिण्डानेतृत्वाभावमवधारयति;—

ओग्गाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो ।  
सुहुमेहिं वादरेहिं य अप्पाउग्गेहिं जोग्गेहिं ॥ ७६ ॥

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः ।

सूक्ष्मैर्वादरैश्चाप्रायोग्यैर्योग्यैः ॥ ७६ ॥

यतो हि सूक्ष्मत्वपरिणतैर्वादरपरिणतैश्चानतिसूक्ष्मत्वस्थूलत्वात् कर्मत्वपरिणमनश्र-  
क्तियोगिभिरतिसूक्ष्मस्थूलतया तदयोगिभिश्चावगाहविशिष्टत्वेन परस्परमबाधमानैः स्वय-  
मेव सर्वत एव पुद्गलकायैर्गाढं निचितो लोकः । ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानामानेता  
पुरुषोस्ति ॥ ७६ ॥

त्वादिति । ततो ज्ञायते पुद्गलपिण्डानां जीवः कर्त्ता न भवतीति ॥७५॥ अथात्मा बन्धकाले बन्धयो-  
ग्यपुद्गलान् बहिर्भागाज्ञैवानयतीत्यावेदयति;—ओग्गाढगाढणिचिदो अवगाह्यावगाह्यनैरन्तरेण  
निचितो भूतः । स कः । लोगो लोकः । कथंभूतः ? सव्वदो सर्वतः सर्वप्रदेशेषु । कैः कर्तृभूतैः ?  
पुग्गलकायेहि पुद्गलकायैः । किंविशिष्टैः ? सुहुमेहि वादरेहि य इन्द्रियाग्रहणयोग्यैः सू-  
क्ष्मैस्तद्ग्रहणयोग्यैर्वादरैश्च । पुनश्च कथंभूतैः ? अप्पाओग्गेहिं अतिसूक्ष्मस्थूलत्वेन कर्मवर्ग-  
णायोग्यतारहितैः । पुनश्च किंविशिष्टैः । जोग्गेहिं अतिसूक्ष्मस्थूलत्वाभावात्कर्मवर्गणायोग्यै-  
रिति । अयमत्रार्थः—निश्चयेन शुद्धस्वरूपैरपि व्यवहारेण कर्मोदयाधीनतया पृथिव्यादिपञ्चसूक्ष्म-  
स्यावरत्वं प्राप्तैर्जीवैर्विधा लोको निरन्तरं भूतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपि । ततो ज्ञायते यत्रैव शरी-  
रावगाढक्षेत्रे जीवस्तिष्ठति बन्धयोग्यपुद्गला अपि तत्रैव तिष्ठन्ति न च बहिर्भागाजीव आनय-

अपने परिणामसे वह अनेकप्रकार हो जाता है ॥ ७५ ॥ आगे आत्मा पुद्गलपिण्डका प्रेरक  
भी नहीं है यह निश्चय करते हैं;—[ लोकः ] असंख्यप्रदेशी लोक [ सर्वतः ] सब  
जगह [ सूक्ष्मैः ] सूक्ष्मरूप [ च ] और [ वादरैः ] स्थूलरूप [ आत्मप्रा-  
योग्यैः ] आत्माके ग्रहणकरनेयोग्य [ योग्यैः ] कर्मरूप होनेयोग्य अथवा  
कर्मरूप न होनेयोग्य ऐसे [ पुद्गलकायैः ] पुद्गलद्रव्यके पिण्डोंसे [ अवगाढ-  
गाढनिचितः ] अत्यंत गाढ भर रहा है ॥ भावार्थ—यह लोक सब जगह एक  
एक प्रदेशमें अनंत अनंत कार्माण ( कर्म होनेयोग्य ) वर्गणाओंसे भरपूर है, अवगाहना  
शक्ति होनेसे कहींपर बाधा नहीं होती । इसकारण इसलोकमें सब जगह जीव उठरे  
हुए हैं, और कर्मबंधके योग्य पुद्गलवर्गणा भी सब जगह मौजूद हैं । जीवके जिसतरहके  
परिणाम होते हैं उमीतरहका आत्माके कर्मबंध होता है । ऐसा नहीं है कि यह  
आत्मा आप किसी जगहसे प्रेरणा करके कार्माण वर्गणाओंका बंध करता हो । जिस  
जगह जीव है उसीजगह अनंतवर्गणा हैं वहां पर ही आपसमें बंध होजाता है । इस-

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।

गच्छंति कम्मभावं ण तु ते जीवेण परिणमिदा ॥ ७७ ॥

कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धा जीवस्य परिणतिं प्राप्य ।

गच्छन्ति कर्मभावं न तु ते जीवेन परिणमिताः ॥ ७७ ॥

यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढजीवपरिणाममात्रं बहिरङ्गसाधनमाश्रित्य जीवं परिणमयितार-  
मन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिनः पुद्गलस्कन्धाः स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ति ।  
ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७७ ॥

अथात्मनः कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीरकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो हि जीवस्स ।

संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा ॥ ७८ ॥

तीति ॥ ७६ ॥ अथ कर्मस्कन्धानां जीव उपादानकर्त्ता न भवतीति प्रज्ञापयति;—कम्मत्त-  
णपाओग्गा खंधा कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धाः कर्त्तारः जीवस्स परिणइं पप्पा जीवस्य परि-  
णतिं प्राप्य निर्दोषिपरमात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखाद्युत्पत्तिपरिणतेः प्रतिपक्षभूतां जीवस-  
म्बन्धिनां मिथ्यात्वरगादिपरिणतिं प्राप्य गच्छंति कम्मभावं गच्छन्ति परिणमन्ति । कं ।  
कर्मभावं ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायं ण हि ते जीवेण परिणमिदा न हि नैव ते कर्म-  
स्कन्धा जीवेनोपादानकर्तृभूतेन परिणमिताः परिणतिं नीता इत्यर्थः । अनेन व्याख्यानेनैतदुक्तं  
भवति कर्मस्कन्धानां निश्चयेन जीवः कर्त्ता न भवतीति ॥ ७७ ॥ अथ शरीराकारपरिणतपुद्ग-  
लपिण्डानां जीवः कर्त्ता न भवतीत्युपदिशति;—ते ते कम्मत्तगदा ते ते पूर्वसूत्रोदिताः

कारण आत्मा पुद्गलपिण्डका प्रेरक नहीं है ॥ ७६ ॥ आगे आत्माको पुद्गलपिण्डरूप कर्मका  
अकर्ता दिखलाते हैं;—[ कर्मत्वप्रायोग्याः ] अष्टकर्मरूप होनेयोग्य जो [स्कन्धाः]  
पुद्गलवर्णणाओंके पिण्ड हैं वे [ जीवस्य ] संसारी आत्माकी [ परिणति ] अशुद्ध  
परिणतिको [ प्राप्य ] पाकर [ कर्मभावं ] आठ कर्मरूप परिणामको [ गच्छन्ति ]  
प्राप्त होते हैं [ तु ] परंतु [ ते ] वे कर्मयोग्यबंध [ जीवेन ] आत्माने [ न परि-  
णमिताः ] नहीं परिणमाये हैं अपनीशक्तिसे ही परिणत हुए हैं ॥ भावार्थ—  
जिस क्षेत्रमें कार्माण वर्णणा हैं उसी क्षेत्रमें जीव भी हैं । वे जीव अनादि बंधके संयो-  
गसे अशुद्धभावोंस्वरूप परिणमते हैं । उस अशुद्धपरिणामका बंधरूप बहिरंग निमित्तकारण  
पाकर कर्मवर्णणा अपनी अंतरंग निजशक्तिसे आठ कर्मरूप परिणम जाती हैं । इसका-  
रण यह आत्मा उनका परिणमानेवाला नहीं है कार्माणवर्णणा अपने आप परिणमतीं  
हैं । इसीलिये “उनका कर्ता आत्मा नहीं है” यह सिद्ध हुआ ॥ ७७ ॥ आगे आ-  
त्माको नोकर्मरूप शरीरका अकर्ता दिखलाते हैं;—[ ते ते ] वे वे [ कर्मत्वगताः ]

ते ते कर्मत्वगताः पुद्गलकायाः पुनर्हि जीवस्य ।

संजायन्ते देहा देहान्तरसंक्रमं प्राप्य ॥ ७८ ॥

ये ये नामामी यस्य जीवस्य परिणामं निमित्तमात्रीकृत्य पुद्गलकायाः स्वयमेव कर्म-  
त्वेन परिणमन्ति, अथ ते ते तस्य जीवस्यानादिसंतानप्रवृत्तिशरीरान्तरसंक्रान्तिमाश्रित्य  
स्वयमेव च शरीराणि जायन्ते । अतोऽवधार्यते न कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीर-  
कर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७८ ॥

अथात्मनः शरीरत्वाभावमवधारयति;—

ओरालिओ य देहो देहो वेउब्बिओ य तेजयिओ ।

आहारय कम्मइओ पुग्गलदब्बप्पगा सव्वे ॥ ७९ ॥

औदारिकश्च देहो देहो वैक्रियिकश्च तैजसः ।

आहारकः कर्मणः पुद्गलद्रव्यात्मकाः सर्वे ॥ ७९ ॥

कर्मत्वं गता द्रव्यकर्मपर्यायपरिणताः पुग्गलकाया पुद्गलस्कन्धाः पुणोवि जीवस्स पुनरपि  
भवान्तरेऽपि जीवस्य संजायन्ते देहा संजायन्ते सम्परजायन्ते देहाः शरीराणीति । किं  
कृत्वा । देहान्तरसंक्रमं पप्पा देहान्तरसंक्रमं भवान्तरं प्राप्य लब्ध्वेति । अनेन किमुक्तं भ-  
वति—औदारिकादिशरीरनामकर्मरहितपरमात्मानमलभमानेन जीवेन यान्युपार्जितान्यौदारिका-  
दिशरीरनामकर्माणि तानि भवान्तरे प्राप्ते सत्युदयमागच्छन्ति तदुदयेन नोकर्मपुद्गला औदा-  
रिकादिशरीराकारेण स्वयमेव परिणमन्ति । ततः कारणादौदारिकादि कायानां जीवः कर्ता न  
भवतीति ॥ ७८ ॥ अथ शरीराणि जीवस्वरूपं न भवन्तीति निश्चिनोति; ओरलिओ य  
देहो औदारिकश्च देहः देहो वेउब्बियो य देहो वैक्रियिकश्च तेजइओ तैजसिकः आहा-  
रय कम्मइयो आहारः कर्मणश्च पुग्गलदब्बप्पगा सव्वे एते पञ्च देहाः पुद्गलद्रव्यात्मकाः

द्रव्यकर्मरूप परिणत हुए [ पुद्गलकायाः ] कर्मवर्गणापिंड [ देहान्तरसंक्रमं प्राप्य ]  
अन्य पर्यायका संबंध पाके [ पुनः ] फिर [ हि ] निश्चयसे [ जीवस्य ] आत्माके  
[ देहाः ] शरीररूप [ संजायन्ते ] उत्पन्न होते हैं ॥ भावार्थ—जीवके परिणा-  
मका निमित्त पाकर द्रव्यकर्मबंधरूप जो पुद्गल हुए थे वे ही अन्यपर्यायमें शरीराकार  
हो जाते हैं और अपनी ही शक्तिसे द्रव्यकर्मका नोकर्मरूप शरीर फल होजाता है । इसकारण  
नोकर्मका भी कर्ता पुद्गल ही है आत्मा नहीं है ॥ ७८ ॥ आगे आत्माके पांच शरीरोंका  
अभाव दिखलाते हैं;—[ औदारिकः देहः ] मनुष्य तिर्यंच संबंधी औदारिकशरीर  
[ च ] और [ वैक्रियिकः ] नारकी देवता संबंधी वैक्रियिकशरीर [ च ] और  
[ तैजसः ] शुभ अशुभ तैजसशरीर [ आहारकः ] आहारक पुतलेका शरीर  
[ कर्मणः ] आठ कर्मरूप शरीर—इसतरह ये ५ शरीर हैं वे [ सर्वे ] सब ही  
[ पुद्गलद्रव्यात्मकाः ] पुद्गलद्रव्यमयी हैं । इसकारण पांच शरीर आत्मा नहीं है ।

यतो ह्यौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकर्मणानि शरीराणि सर्वाण्यपि पुद्गलद्रव्यात्म-  
कानि । ततोऽवधार्यते न शरीरं पुरुषोस्ति ॥ ७९ ॥

अथ किं तर्हि जीवस्य शरीरादिसर्वपरद्रव्यविभागसाधनमसाधारणं स्वलक्षणमि-  
त्यावेदयति;—

अरसमरूचमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।

जाण अलिंगगद्दणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ ८० ॥

अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम् ।

जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानम् ॥ ८० ॥

आत्मनो हि रसरूपगन्धगुणाभावस्वभावत्वात्स्पर्शगुणव्यक्त्यभावस्वभावत्वात् शब्दप-  
र्यायाभावस्वभावत्वात्तथा तन्मूलादलिङ्गग्राह्यत्वात्सर्वसंस्थानाभावस्वभावत्वाच्च पुद्गलद्रव्यवि-  
भागसाधनमरसत्वमरूपत्वमगन्धत्वमव्यक्तत्वमशब्दत्वमलिङ्गग्राह्यत्वमसंस्थानत्वं चास्ति ।  
सकलपुद्गलापुद्गलाजीवद्रव्यविभागसाधनं तु चेतनागुणत्वमस्ति । तदेव च तस्य स्वजीवद्र-

सर्वेऽपि मम स्वरूपं न भवन्ति । कस्मादिति चेत् ? ममाशरीरचैतन्यचमत्कारपरिणतत्वेन  
सर्वदेवाचेतनशरीरत्वविरोधादिति ॥ ७९ ॥ एवं पुद्गलस्कन्धानां बन्धव्याख्यानमुख्यातया द्वि-  
यस्थले गाथापञ्चकं गतम् । इति “अपदेशो परमाणु” इत्यादि गाथानवकेन परमाणुस्कन्धमे-  
दभिन्नपुद्गलानां पिण्डनिष्पत्तिव्याख्यानमुख्यतया ‘द्वितीयविशेषान्तराधिकारः’ समाप्तः ।  
अथैकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलेन सह बन्धमुख्यतया व्याख्यानं करोति, तत्र पदस्थ-  
लानि भवन्ति । तेष्वद्वा “अरसमरूचं” इत्यादि शुद्धजीवव्याख्यानगाथैका “मुक्तो रूवादि”  
इत्यादिपूर्वपक्षपरिहारमुख्यतया गाथाद्वयमिति प्रथमस्थले गाथात्रयम् । तदनन्तरं भावबन्धमुख्य-  
त्वेन “उबओगमओ” इत्यादि गाथाद्वयम् । अथ परस्परं द्वयोः पुद्गलयोः बन्धो जीवस्य रागा-  
दिपरिणामेन सह बन्धो जीवपुद्गलयोर्बन्धश्चेति त्रिविधबन्धमुख्यत्वेन “पासेहि पुग्गलाणं”  
इत्यादि सूत्रद्वयम् । ततः परं निश्चयेन द्रव्यबन्धकारणत्वाद्वागादिपरिणाम एव बन्ध इति कथन-  
मुख्यतया “रत्तो बंधदि” इत्यादि गाथात्रयम् । अथ भेदभावनामुख्यत्वेन “भणिदा पुढवी”  
इत्यादि सूत्रद्वयम् । तदनन्तरं जीवो रागादिपरिणामानामेव कर्त्ता न च द्रव्यकर्मणामिति कथ-  
नमुख्यत्वेन “कुब्बं सहावमादा” इत्यादि पष्ठस्थले गाथासप्तकम् । यत्र मुख्यत्वमिति वदति  
तत्र यथासम्भवमन्योऽप्यर्थो लभ्यत इति सर्वत्र ज्ञातव्यः । एवमेकोनविंशतिगाथाभिस्तृतीय-  
विशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ किं तर्हि जीवस्य शरीरादिपरद्रव्येभ्यो  
भिन्नमन्यद्रव्यासाधारणं स्वस्वरूपमिति ? प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;—अरसमरूचमगंधं रसरूप-  
आत्मा तो इनसे भिन्न स्वरूप है ॥ ७९ ॥ आगे जीवका शरीरादिक पर द्रव्योंसे भिन्न  
शुद्धस्वरूप, जो कि अन्य द्रव्यमें नहीं पाया जावे ऐसा लक्षण दिखलाते हैं,—[ त्वं ]  
हे भव्य तू [ जीवं ] शुद्धस्वरूप आत्माको [ अरसं ] ५ प्रकारके रससे रहित

ते ते कर्मत्वगताः पुद्गलकायाः पुनर्हि जीवस्य ।

संजायन्ते देहा देहान्तरसंक्रमं प्राप्य ॥ ७८ ॥

ये ये नामामी यस्य जीवस्य परिणामं निमित्तमात्रीकृत्य पुद्गलकायाः स्वयमेव कर्म-  
त्वेन परिणमन्ति, अथ ते ते तस्य जीवस्यानादिसंतानप्रवृत्तिशरीरान्तरसंक्रान्तिमाश्रित्य  
स्वयमेव च शरीराणि जायन्ते । अतोऽवधार्यते न कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीर-  
कर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७८ ॥

अथात्मनः शरीरत्वाभावमवधारयति;—

ओरालिओ य देहो देहो वेडव्विओ य तेजयिओ ।

आहारय कम्मइओ पोग्गलदव्वप्पगा सव्वे ॥ ७९ ॥

औदारिकश्च देहो देहो वैक्रियिकश्च तैजसः ।

आहारकः कार्मणः पुद्गलद्रव्यात्मकाः सर्वे ॥ ७९ ॥

कर्मत्वं गता द्रव्यकर्मपर्यायपरिणताः पुद्गलकाया पुद्गलस्कन्धाः पुणोवि जीवस्य पुनरपि  
भवान्तरेऽपि जीवस्य संजायन्ते देहा संजायन्ते सम्पजायन्ते देहाः शरीराणीति । किं  
कृत्वा । देहन्तरसंक्रमं पप्पा देहान्तरसंक्रमं भवान्तरं प्राप्य लब्ध्वेति । अनेन किमुक्तं भ-  
वति—औदारिकादिशरीरनामकर्मरहितपरमात्मानमलभमानेन जीवेन यान्मुपार्जितान्यौदारिका-  
दिशरीरनामकर्माणि तानि भवान्तरे प्राप्ते सत्युदयमागच्छन्ति तद्दुदयेन नो कर्मपुद्गला औदा-  
रिकादिशरीराकारेण स्वयमेव परिणमन्ति । ततः कारणादौदारिकादि कायानां जीवः कर्ता न  
भवतीति ॥ ७८ ॥ अथ शरीराणि जीवस्वरूपं न भवन्तीति निश्चिनोति; ओरलिओ य  
देहो औदारिकश्च देहः देहो वेडव्वियो य देहो वैक्रियिकश्च तेजइओ तैजसिकः आहा-  
रय कम्मइओ आहारः कार्मणश्च पुग्गलदव्वप्पगा सव्वे एते पञ्च देहाः पुद्गलद्रव्यात्मकाः

द्रव्यकर्मरूप परिणत इए [ पुद्गलकायाः ] कर्मवर्गणापिंड [ देहान्तरसंक्रमं प्राप्य ]  
अन्य पर्यायका संबंध पाके [ पुनः ] फिर [ हि ] निश्चयसे [ जीवस्य ] आत्माके  
[ देहाः ] शरीररूप [ संजायन्ते ] उत्पन्न होते हैं ॥ भावार्थ—जीवके परिणा-  
मका निमित्त पाकर द्रव्यकर्मबंधरूप जो पुद्गल इए थे वे ही अन्यपर्यायमें शरीराकार  
हो जाते हैं और अपनी ही शक्तिसे द्रव्यकर्मका नोकर्मरूप शरीर फल होजाता है । इसकारण  
नोकर्मका भी कर्ता पुद्गल ही है आत्मा नहीं है ॥ ७८ ॥ आगे आत्माके पांच शरीरोंका  
अभाव दिखलाते हैं;—[ औदारिकः देहः ] मनुष्य तिर्यच संबंधी औदारिकशरीर  
[ च ] और [ वैक्रियिकः ] नारकी देवता संबंधी वैक्रियिकशरीर [ च ] और  
[ तैजसः ] शुभ अशुभ तैजसशरीर [ आहारकः ] आहारक पुतलेका शरीर  
[ कार्मणः ] आठ कर्मरूप शरीर—इसतरह से ५ शरीर हैं वे [ सर्वे ] सब ही  
[ पुद्गलद्रव्यात्मकाः ] पुद्गलद्रव्यमयी हैं । इसकारण पांच शरीर आत्मा नहीं है ।

लिङ्गेभ्य इन्द्रियेभ्यो ग्रहणं विषयाणामुपभोगे यस्येति विषयोपभोक्तृत्वाभावस्य । न लिङ्गात्मनो वेन्द्रियादिलक्षणाद्ग्रहणं जीवस्येति शुक्रार्तवानुविधायित्वाभावस्य । न लिङ्गस्य मेहनाकारस्य ग्रहणं यस्येति लौकिकसाधनमात्रत्वाभावस्य । न लिङ्गेनामेहनाकारेण ग्रहणं लोकव्याप्तिर्यस्येति कुहुकप्रसिद्धसाधनाकारलोकव्याप्तित्वाभावस्य । न लिङ्गानां स्त्रीपुत्रपुंसकवेदानां ग्रहणं यस्येति स्त्रीपुत्रपुंसकद्रव्यभावाभावस्य । न लिङ्गानां धर्मध्वजानां ग्रहणं यस्येति वहिरङ्गयतिलिङ्गाभावस्य । न लिङ्गगुणो ग्रहणमर्थावबोधो यस्येति गुणविशेषानालीढशुद्धद्रव्यत्वस्य । न लिङ्गं गुणपर्यायो ग्रहणमर्थावबोधविशेषो यस्येति पर्यायविशेषानालीढशुद्धद्रव्यत्वस्य । न लिङ्गं प्रत्यभिज्ञानहेतुर्ग्रहणमर्थावबोधसामान्यं यस्येति द्रव्यानालीढशुद्धपर्यायत्वस्य ॥ ८० ॥

दीन्द्रियेणान्यजीवानां यस्य ग्रहणं परिच्छेदनं कर्तुं नायाति तेनालिङ्गग्रहण उच्यते । तदपि कस्मात् । निर्धकारातीन्द्रियस्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानगम्यत्वात् । लिङ्गं धूमादि तेन धूमलिङ्गोद्भवानुमानेनाग्निवदनुमेयभूतपरपदार्थानां ग्रहणं न करोति तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मात् ? स्वयमेवाल्लिङ्गोद्भवातीन्द्रियज्ञानसहितत्वात्, तेनैव लिङ्गोद्भवानुमानेनाग्निग्रहणवत् परपुरुषाणां यस्यात्मनो ग्रहणं परिज्ञानं कर्तुं नायाति तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मात् ? अलिङ्गोद्भवातीन्द्रियज्ञानगम्यत्वात् । अथवा लिङ्गं चिह्नं लच्छनं शिखाजटाधारणादि तेनार्थानां ग्रहणं परिच्छेदनं न करोति, तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मात् ? स्वाभाविकाचिह्नोद्भवातीन्द्रियज्ञानसहितत्वात् । तेनैव चिह्नोद्भवज्ञानेन परपुरुषाणां यस्यात्मनो ग्रहणं परिज्ञानं कर्तुं नायाति तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मान्निरुपरागस्वसंवेदनज्ञानगम्यत्वादिति । एवमलिङ्गग्रहणशब्दस्य व्याख्या-

धोंको जानता है इसलिये अलिंगग्रहण है । अथवा इन्द्रियोंसे अन्यजीवभी इस आत्माका ग्रहण नहीं करसकते, यह तो अतीन्द्रिय स्वसंवेदनज्ञानगम्य (अपने अनुभवगोचर) है इसलिये भी अलिंगग्रहण है । जैसे धूम चिह्नको देखकर अग्निका ज्ञान करते हैं वैसे अनुमानज्ञानकर लिंग अर्थात् चिह्नकर यह आत्मा अन्यपदार्थोंका जाननेवाला नहीं है, यह तो अतीन्द्रियप्रत्यक्षज्ञानकर जानता है इसकारण भी अलिंगग्रहण है । कोई भी जीव इंद्रियगम्यचिह्नकर इस आत्माका अनुमान नहीं करसकता अर्थात्—इंद्रियज्ञान जनित अनुमानसे ग्रहण नहीं किया जासकता इसकारण भी अलिंग ग्रहण है । इत्यादि अलिंगग्रहण शब्दके अनेक अर्थ होते हैं । यह शुद्ध आत्मा केवल अनुभवगम्य है वचनसे नहीं कहा जासकता, कहनेसे अशुद्धताका प्रसंग आता है । इसलिये शुद्ध जीवद्रव्य ज्ञानगम्य है । जो अनुभवी हैं वे ही शांतरसके स्वादको जानते हैं, इसका अन्यकथन है वह व्यवहारमात्र है । जिनके काललट्टिच निकट आगई है वे ही व्यवहारमात्र शब्दप्रज्ञाका निमित्त पाकर स्वरूपमें लीन होते हैं । इसकारण अवाच्य शुद्धजीवद्रव्य अनुभवयोग्य ही है

व्यमात्राश्रितत्वेन स्वलक्षणतां चिन्नां शेषद्रव्यान्तरविभागं साधयति । अलिङ्गब्राह्म इति वक्तव्ये यदलिङ्गग्रहणमित्युक्तं तद्बहुतरार्थप्रतिपत्तये । तथाहि—न लिङ्गैरिन्द्रियैर्ग्राह्यता-  
मापन्नस्य ग्रहणं यस्येत्यतीन्द्रियज्ञानमयत्वस्य प्रतिपत्तिः । न लिङ्गैरिन्द्रियैर्ग्राह्यतामापन्नस्य  
ग्रहणं यस्येतीन्द्रियप्रत्यक्षाविपयत्वस्य । न लिङ्गादिन्द्रियगम्याद्भूमादग्नेरिव ग्रहणं यस्येतीन्द्रि-  
यप्रत्यक्षपूर्वकानुमानाविपयत्वस्य । न लिङ्गादेव परैः ग्रहणं यस्येत्यनुमेयमात्रत्वाभावस्य । न  
लिङ्गादेव परेषां यस्येत्यनुमातृमात्रत्वाभावस्य । न लिङ्गात्स्वभावेन ग्रहणं यस्येति प्रत्य-  
क्षज्ञानत्वस्य । न लिङ्गेनोपयोगाख्यलक्षणेन ग्रहणं ज्ञेयार्थालम्बनं यस्येति वहिरर्थालम्बन-  
ज्ञानाभावस्य । न लिङ्गस्योपयोगाख्यलक्षणस्य ग्रहणं स्वयमाहरणं यस्येत्यनाहार्य-  
ज्ञानत्वस्य । न लिङ्गस्योपयोगाख्यलक्षणस्य ग्रहणं परेण हरणं यस्येत्यानाहार्यज्ञानत्वस्य ।  
न लिङ्गे उपयोगाख्यलक्षणे ग्रहणं सूर्य इवोपरागो यस्येति शुद्धोपयोगस्वभावस्य । न  
लिङ्गादुपयोगाख्यलक्षणाद्ग्रहणं पौद्गलिककर्मादानं यस्येति द्रव्यकर्मासंपृक्तत्वस्य । न

गन्धरहितत्वात्तथा चाव्याहार्यमाणास्पर्शरूपगन्धत्वाच्च अव्यक्तं अव्यक्तत्वात् असद् अशब्द-  
त्वात् अलिङ्गग्रहणं अलिङ्गग्रहणत्वात् अणिदिष्टसंस्थानत्वाच्च जाण  
जीवं जानीहि जीवम् । अरसमरूपगन्धमस्पर्शमव्यक्तमशब्दमलिङ्गग्रहणमनिर्दिष्टसंस्थानलक्षणं  
च हे शिष्य । जीवं जीवद्रव्यं जानीहि । पुनरपि कथंभूतं । चेदणागुणं समस्तपुद्गलादिभ्यो-  
ऽचेतनेभ्यो भिन्नः समस्तान्यद्रव्यासाधारणः स्वकीयानन्तजीवजातिसाधारणश्च चेतना गुणो यस्य  
तं चेतनागुणं चालिङ्गब्राह्ममिति वक्तव्ये यदलिङ्गग्रहणमित्युक्तं तत्किमर्थमिति चेत् ? बहुतरा-  
र्थप्रतिपत्त्यर्थम् । तथाहि—लिङ्गमिन्द्रियं तेनार्थानां ग्रहणं परिच्छेदनं न करोति तेनालिङ्गग्रहणो  
भवति । तदपि कस्मात्स्वयमेवातीन्द्रियाखण्डज्ञानसहितत्वात् । तेनैव लिङ्गशब्दवाच्येन चक्षुरा-

[ अरूपं ] ५ वर्णोंसे रहित [ अगन्धं ] दो प्रकार गंधगुणरहित [ अव्यक्तं ]  
आठ प्रकार स्पर्शगुणरहित इसीसे अप्रगट [ अशब्दं ] शब्दपर्यायसे रहित स्वभाव-  
वाला [ अलिङ्गग्रहणं ] पुद्गलके चिह्नसे ग्रहण नहीं होनेवाला [ अनिर्दिष्टसं-  
स्थानं ] सब आकारोंसे रहित निराकार स्वभावयुक्त [ चेतनागुणं ] और ज्ञान  
दर्शन गुणवाला ऐसा शुद्ध निर्विकारद्रव्य जानना ॥ भावार्थ—यह आत्मा  
अमूर्तस्वभाव होनेसे रसरूपगंधस्पर्श शब्द संस्थानादिक पुद्गलीकभावोंसे रहित है,  
अपने चेतनागुणसे धर्म अधर्म आकाश काल इन चार अमूर्तद्रव्योंसे भी  
भिन्न है, स्वजीवसत्ताकी अपेक्षा अन्यजीवद्रव्यसे भी भिन्न है अपने अ-  
स्तित्वकर सद्रूप वस्तुमात्र है । और यहां पर अलिङ्गग्रहण विशेषण इसलिये कहा है  
कि यह आत्मा किसी पुद्गलीकचिन्हसे ग्रहण नहीं किया जाता । इस विशेषणपदके  
अनेक अर्थ हैं उनमेंसे कुछ थोड़े दिखलाते हैं—लिङ्ग नाम इंद्रियोंका है उन इंद्रियोंमें  
यह आत्मा पदार्थोंका ग्रहण ( ज्ञान ) करनेवाला नहीं है, अतीन्द्रियस्वभावसे पदा-

रूपादिकै रहितः पश्यति जानाति रूपादीनि ।

द्रव्याणि गुणांश्च यथा तथा बन्धस्तेन जानीहि ॥ ८२ ॥

येन प्रकारेण रूपादिरहितो रूपीणि द्रव्याणि तद्गुणांश्च पश्यति जानाति च, तेनैव प्रकारेण रूपादिरहितो रूपिभिः कर्मपुद्गलैः किल घट्यते । अन्यथा कथममूर्तो मूर्तं पश्यति जानाति चेत्यत्रापि पर्यनुयोगस्यानिवार्यत्वात् । न चैतदत्यन्तदुर्घटत्वाद्वाद्यान्ति-कीकृतं, किंतु दृष्टान्तद्वारेणावालगोपालप्रकटितं । तथाहि—यथा बालकस्य गोपालकस्य

भवतीति प्रत्युत्तरं ददाति;—रूपादिपहि रहिदो अमूर्त्तपरमचिज्ज्योतिःपरिणतत्वेन तावदय-मात्मा रूपादिरहितः । तथाविधः सन् किं करोति ? पेच्छदि जाणादि मुक्तावस्थायां युग-पत्परिच्छित्तिरूपसामान्यविशेषप्राहककेवलदर्शनज्ञानोपयोगेन यद्यपि तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति त-थापि ग्राह्यप्राहकलक्षणसम्बन्धेन पश्यति जानाति । कानि कर्मतापन्नानि ? रूवमादीणि द-व्याणि रूपरसगन्धस्पर्शसहितानि मूर्त्तद्रव्याणि । न केवलं द्रव्याणि गुणे य जधा तद्गुणांश्च यथा । अथवा यः कश्चित्संसारी जीवो विशेषभेदज्ञानरहितः सन् काष्ठपापाणाद्यचेतनजिनप्रतिमां दृष्ट्वा मदीयाराध्योऽयमिति मन्यते । यद्यपि तत्र सत्तावलोकदर्शनेन सह प्रतिमायास्तादात्म्यस-म्बन्धो नास्ति तथापि परिच्छेद्यपरिच्छेदकलक्षणसम्बन्धोऽस्ति । यथा वा समवसरणे प्रत्यक्ष-जिनेश्वरं दृष्ट्वा विशेषभेदज्ञानी मन्यते मदीयाराध्योऽयमिति । तत्रापि यद्यप्यवलोकनज्ञानस्य जिने-श्वरेण सह तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति तथाप्याराध्याराधकसम्बन्धोऽस्ति । तह बंधो तेण जा-णाहि तथा बन्धं तेनैव दृष्टान्तेन जानीहि । अयमत्रार्थः—यद्यप्ययमात्मा निश्चयेनामूर्त्तस्तथा-

दिकैः रहितः ] रूपादिसे रहित यह आत्मा [ यथा ] जैसे [ रूपादीनि द्र-व्याणि ] रूपादिगुणोंवाले घटपटादिस्वरूप अनेक पुद्गलद्रव्योंको [ च ] और [ गुणान् ] उन द्रव्योंके रूपादिगुणोंको [ जानाति ] जानता है [ पश्यति ] देखता है [ तथा ] उसीप्रकार [ तेन ] पुद्गलद्रव्यके साथ [ बन्धं ] आत्माका बंध [ जानीहि ] जानो ॥ भावार्थ—आत्मा अमूर्त्तिक है परंतु मूर्त्तिकद्रव्यका देखने जाननेवाला है । देखना जानना इसका स्वभाव है उस देखने जाननेसे ही मूर्त्तिकद्रव्यसे बंध होता है जो देखता जानता न होता तो बंध न होता । जब देखता जानता है तभी बंध है । यही बात दृष्टांतसे दिखलते हैं—जैसे एक बालक मट्टीके बलय ( कंकण ) को अपना समझकर देखता है जानता है मानता है परंतु वह बलय उस बालकसे जुदा है कुछ संबंध नहीं है, तौभी जो उस कंकणको कोई तोड डाले फोड डाले अथवा लेजावे तो वह बालक अति दुःखी होता है और इसी तरह ग्वालिया सधे कंकणको अपना समझ कर देखता है जानता है मानता है सो सधा बलयभी उस ग्वालियेसे जुदा है उस बलयसे कुछ संबंध नहीं है, तौभी उस सधे बलयको जो कोई तोड डाले अथवा लेजावे तो ग्वालियाभी अति दुःखी होता है । इसजगद्



अथ कथममूर्तस्यात्मनः स्निग्धरूक्षत्वाभावाद्बन्धो भवतीति ? पूर्वपक्षयति;—

मुक्तो रूपादिगुणो वज्रदि फासेहिं अणमणोहिं ।

तन्विचरीदो अप्पा बंधदि किध पोग्गलं कम्मं ॥ ८१ ॥

मूर्तो रूपादिगुणो वध्यते सर्वैरन्योन्यैः ।

तद्विपरीत आत्मा वध्नाति कथं पौद्गलं कर्म ॥ ८१ ॥

मूर्तयोहिं तावत्पुद्गलयो रूपादिगुणयुक्तत्वेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषादन्योन्यबन्धोऽवधार्यते एव । आत्मकर्मपुद्गलयोस्तु स कथमवधार्यते ? मूर्तस्य कर्मपुद्गलस्य रूपादिगुणयुक्तत्वेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषसंभवेव्यमूर्तस्यात्मनो रूपादिगुणयुक्तत्वाभावेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषासंभावनया चैकाङ्गविकलत्वात् ॥ ८१ ॥

अथैवममूर्तस्याप्यात्मनो बन्धो भवतीति सिद्धान्तयति;—

रूपादिणहिं रहिदो पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि ।

दब्बाणि गुणे य जधा तध बंधो तेण जाणीहि ॥ ८२ ॥

नक्रमेण शुद्धजीवस्वरूपं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः ॥ ८० ॥ अयामूर्त्तशुद्धात्मनो व्याख्याने कृते सत्यमूर्त्तजीवस्य मूर्त्तपुद्गलकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति पूर्वपक्षं करोति;—मुक्तो रूपादिगुणो मूर्तो रूपरसगन्धस्पर्शवान् पुद्गलद्रव्यगुणः वज्रदि अन्योन्यसंश्लेषेण वध्यते बन्धमनुभवति, तत्र दोषो नास्ति । कैः कृत्वा ? पासेहि अणमणोहिं स्निग्धरूक्षगुणलक्षणस्पर्शसंयोगैः । किं विशिष्टैः । अन्योन्यैः परस्परनिमित्तैः । तं विचरीदो अप्पा वज्रदि किह पोग्गलं कम्मं तद्विपरीतात्मा वध्नाति कथं पौद्गलं कर्मेति । अयं परमात्मा निर्विकारपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतत्वेन बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणस्थानीयद्वेषादिविभावरिणामरहितत्वादमूर्त्तत्वाच्च पौद्गलकर्म कथं वध्नाति न कथमपीति पूर्वपक्षः ॥ ८१ ॥ अथैवममूर्त्तस्याप्यात्मनो नयत्रिभागेन बन्धो

॥ ८० ॥ आगे अमूर्त आत्माके स्निग्धरूक्षगुणका अभाव होनेसे बंध किसतरह होसकता है ? ऐसा तर्क करते हैं;—[ रूपादिगुणः ] रूप रस गंध स्पर्शगुणवाला [मूर्तः] स्कंध वा परमाणुरूप पुद्गलद्रव्य [ अन्योन्यैः ] परस्पर [ स्पर्शैः ] स्निग्धरूक्षरूप स्पर्शगुणसे [ वध्यते ] बंधको प्राप्त होसकता है [ तद्विपरीतः ] पुद्गलके स्निग्धरूक्षगुण रहित [ आत्मा ] जीवद्रव्य [ पौद्गलिकं कर्म ] पुद्गलीक कर्मवर्गणाओंको [ कथं ] कैसे [ वध्नाति ] बांधसकता है ? भावार्थ—पुद्गलद्रव्य मूर्त्तिक है वह अपने स्निग्ध रूक्ष गुणकर आपसमें बांधता है । आत्मा तो अमूर्त्तिक है स्निग्ध रूक्ष गुणकरके रहित है वह कर्मवर्गणासे किसतरह बांध सक्ता है ? यह बड़ा संशय है कि एक तरफ तो स्निग्धरूक्षगुणसहित कर्मवर्गणा और दूसरी तरफ स्निग्धरूक्षगुणरहित आत्मा, ये दोनों आपसमें किस तरह बांधको प्राप्त हो सकते हैं ऐसा शिष्यका प्रश्न है ॥ ८१ ॥ आगे अमूर्त आत्माके भी बांध होना है ऐसा उत्तर दृष्टान्तद्वारा कहते हैं;—[ रूपा-

रूपादिकै रहितः पश्यति जानाति रूपादीनि ।

द्रव्याणि गुणांश्च यथा तथा बन्धस्तेन जानीहि ॥ ८२ ॥

येन प्रकारेण रूपादिरहितो रूपीणि द्रव्याणि तद्गुणांश्च पश्यति जानाति च, तेनैव प्रकारेण रूपादिरहितो रूपिभिः कर्मपुद्गलैः किल वच्यते । अन्यथा कथममूर्तो मूर्तं पश्यति जानाति चेत्यत्रापि पर्यनुयोगस्यानिवार्यत्वात् । न चैतदत्यन्तदुर्घटत्वाद्दार्ष्टान्तिकीकृतं, किंतु दृष्टान्तद्वारेणावालकगोपालप्रकटितं । तथाहि—यथा बालकस्य गोपालकस्य

भवतीति प्रत्युत्तरं ददाति;—रूपादिपहि रहिदो अमूर्त्तपरमचिज्ज्योतिःपरिणतत्वेन तावदय-  
मात्मा रूपादिरहितः । तथाविधः सन् किं करोति ? पेच्छदि जाणादि मुक्तावस्थायां युग-  
परिच्छित्तिरूपसामान्यविशेषप्राहककेवलदर्शनज्ञानोपयोगेन यद्यपि तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति त-  
थापि ग्राह्यप्राहकलक्षणसम्बन्धेन पश्यति जानाति । कानि कर्मतापन्नानि ? रूवमादीणि द-  
व्याणि रूपरसगन्धस्पर्शसहितानि मूर्त्तद्रव्याणि । न केवलं द्रव्याणि गुणे य जधा तद्गुणांश्च  
यथा । अथवा यः कश्चित्संसारी जीवो विशेषभेदज्ञानरहितः सन् काष्ठपापाणाद्यज्ञेयतनजिनप्रतिमां  
दृष्ट्वा मदीयाराध्योऽयमिति मन्यते । यद्यपि तत्र सत्तावलोकदर्शनेन सह प्रतिमायास्तादात्म्यस-  
म्बन्धो नास्ति तथापि परिच्छेद्यपरिच्छेदकलक्षणसम्बन्धोऽस्ति । यथा वा समवसरणे प्रत्यक्ष-  
जिनेश्वरं दृष्ट्वा विशेषभेदज्ञानी मन्यते मदीयाराध्योऽयमिति । तत्रापि यद्यप्यवलोकनज्ञानस्य जिने-  
श्वरेण सह तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति तथाप्याराध्याराधकसम्बन्धोऽस्ति । तद् बंधो तेण जा-  
णाहि तथा बन्धं तेनैव दृष्टान्तेन जानीहि । अयमत्रार्थः—यद्यप्ययमात्मा निश्चयेनामूर्त्तस्तथा-

**दिकैः रहितः ]** रूपादिसे रहित यह आत्मा [ यथा ] जैसे [ रूपादीनि द्र-  
व्याणि ] रूपादिगुणोंवाले घटपटादिस्वरूप अनेक पुद्गलद्रव्योंको [ च ] और  
[ गुणान् ] उन द्रव्योंके रूपादिगुणोंको [ जानाति ] जानता है [ पश्यति ]  
देखता है [ तथा ] उसीप्रकार [ तेन ] पुद्गलद्रव्यके साथ [ बन्धं ] आत्माका  
बंध [ जानीहि ] जानो ॥ **भावार्थ**—आत्मा अमूर्त्तिक है परंतु मूर्त्तिकद्रव्यका  
देखने जाननेवाला है । देखना जानना इसका स्वभाव है उस देखने जाननेसे ही  
मूर्त्तिकद्रव्यसे बंध होता है जो देखता जानता न होता तो बंध न होता । जब देखता  
जानता है तभी बंध है । यही बात दृष्टांतसे दिखलाते हैं—जैसे एक बालक मट्टीके  
बलय ( कंकण ) को अपना समझकर देखता है जानता है मानता है परंतु वह बलय  
उस बालकसे जुदा है कुछ संबंध नहीं है, तौभी जो उस कंकणको कोई तोड डाले फोड  
डाले अथवा लेजावे तो वह बालक अति दुःखी होता है और इसी तरह ग्वालिया  
सघे कंकणको अपना समझ कर देखता है जानता है मानता है सो सघा बलयभी  
उस ग्वालियेसे जुदा है उस बलयसे कुछ संबंध नहीं है, तौभी उस सघे बलयको जो  
कोई तोड डाले अथवा लेजावे तो ग्वालियाभी अति दुःखी होता है । इसजगद्

वा पृथगवस्थितं मृद्वलीवर्दं बलीवर्दं वा पश्यतो जानतश्च न बलीवर्देन सहास्ति संबन्धः,  
विषयभावावस्थितबलीवर्दनिमित्तोपयोगाधिरूढबलीवर्दाकारदर्शनज्ञानसंबन्धो बलीवर्दसं-  
बन्धव्यवहारसाधकस्त्वस्त्येव; तथा किलात्मनो नीरूपत्वेन स्पर्शशून्यत्वान्न कर्मपुद्गलैः  
सहास्ति संबन्धः, एकावगाहभावावस्थितकर्मपुद्गलनिमित्तोपयोगाधिरूढरागद्वेषादिभावसं-  
बन्धः कर्मपुद्गलबन्धव्यवहारसाधकस्त्वस्त्येव ॥ ८२ ॥

अथ भावबन्धस्वरूपं ज्ञापयति;—

उचओगमओ जीवो मुञ्जदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि ।

पप्पा विविधे विसए जो हि पुणो तेहिं संबंधो ॥ ८३ ॥

उपयोगमयो जीवो मुह्यति रज्यति वा प्रद्वेष्टि ।

प्राप्य विविधान् विषयान् यो हि पुनस्तैः संबन्धः ॥ ८३ ॥

प्यनादिकर्मबन्धवशाद्ब्यवहारेण मूर्त्तः सन् द्रव्यबन्धनिमित्तभूतं रागादिविकल्परूपं भावबन्धो-  
पयोगं करोति । तस्मिन्सति मूर्त्तद्रव्यकर्मणा सह यद्यपि तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति तथापि  
पूर्वोक्तदृष्टान्तेन संश्लेषसम्बन्धोऽस्तीति नास्ति दोषः ॥ ८२ ॥ एवं शुद्धबुद्धैकत्वभावजी-  
वकथनमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । मूर्त्तिरहितजीवस्य मूर्त्तकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति  
पूर्वपञ्जरूपेण द्वितीया तत्परिहाररूपेण तृतीया चेति गाथान्तरेण प्रथमस्थलं गतम् । अथ  
रागद्वेषमोहलक्षणं भावबन्धस्वरूपमाह्वयति;—उचओगमओ जीवो उपयोगमयो जीवः,  
धर्मं जीवो निश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगमस्तावत्तथाभूतोऽप्यनादिबन्धवशात्सोपाधिस्फ-  
टिकवत् परोपाधिभावेन परिणतः सन् । किं करोति । मुञ्जदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि मुह्यति  
रज्यति वा प्रद्वेष्टि द्वेषं करोति । किं कृत्वा । पूर्वं पप्पा प्राप्य । कान् ? विविधे विसये

विचारना चाहिये कि माटीका बलय और सच्चा बलय दोनों बाल गोपालसे जुड़े हैं  
उनके जानेसे बालक और ग्वालिया क्यों दुःखी होते हैं । इससे यह बात विचारमें आती  
है कि वे बालगोपाल उन बलयोंको अपना देखते हैं जानते हैं । इसकारण अपने परिणा-  
मोंसे बंध रहे हैं, उनका ज्ञान बलयके निमित्तसे तदाकार परिणत हो रहा है । इसलिये  
परस्वरूप बलयोंसे संबंधका व्यवहार आजाता है । उसीप्रकार इस आत्माका पुद्गलसे  
कुछ संबंध नहीं है परंतु अनादिकालसे लेकर एक क्षेत्रावगाहकर ठहरे हुए जो पुद्गल  
हैं उनका निमित्त पाकर उत्पन्न हुआ जो राग द्वेष मोहरूप अशुद्धोपयोग वही भावबंध  
है उसीसे आत्मा बंधा हुआ है पुद्गलीक कर्मबंध व्यवहारमात्र है । इससे यह बात  
सिद्ध हुई कि जो यह आत्मा परद्रव्यको रागी द्वेषी मोही होकर देखता है जानता है  
वही अशुद्धोपयोगरूप परिणाम बंधका कारण है । और अपने ही अशुद्धपरिणामसे बंध  
है ॥ ८२ ॥ आगे भावबंधका स्वरूप दिखलाते हैं;—[ यः ] जो [ उपयोगमयः ]  
ज्ञान दर्शनमयी [ जीवः ] आत्मा [ विविधान् ] अनेक तरहके [ विषयान् ]

अयमात्मा सर्व एव तावत्सविकल्पनिर्विकल्पपरिच्छेदात्मकत्वादुपयोगमयः । तत्र यो हि नाम नानाकारान् परिच्छेदानर्थानासाद्य मोहं वा रागं वा द्वेषं वा समुपैति स नाम तैः परप्रत्ययैरपि मोहरागद्वेषैरुपरक्तात्मस्वभावत्वाच्चीलपीतरक्तोपाश्रयप्रत्ययनीलपीतरक्तत्वैरुपरक्तस्वभावः स्फटिकमणिरिव स्वयमेक एव तद्भावद्वितीयत्वाद्बन्धो भवति ॥ ८३ ॥

अथ भावबन्धयुक्तिं द्रव्यबन्धस्वरूपं च प्रज्ञापयति;—

भावेण जेण जीवो पेच्छदि जाणादि आगदं विसए ।

रज्जदि तेणेव पुणो बज्जदि कम्मत्ति उवएसो ॥ ८४ ॥

भावेन येन जीवः पश्यति जानात्यागतं विषयः ।

रज्यति तेनैव पुनर्वध्यते कर्मत्युपदेशः ॥ ८४ ॥

अयमात्मा साकारनिराकारपरिच्छेदात्मकत्वात्परिच्छेद्यतामापद्यमानमर्थजातं येनैव मोह-  
रूपेण रागरूपेण द्वेषरूपेण वा भावेन पश्यति जानाति च तेनैवोपरज्यत एव । योयमुप-

निर्विषयपरमात्मस्वरूपभावनाविषयभूतान्विविधपञ्चेन्द्रियविषयान् । जो हि पुणो यः पुनरित्थं-  
भूतोऽस्ति जीवो हि स्फुटं तेहि संबन्धो तैः सम्बद्धो भवति तैः पूर्वोक्तरागद्वेषमोहैः  
कर्तृभूतैर्मोहरागद्वेषरहित जीवस्य शुद्धपरिणामलक्षणं परमधर्ममलभमानः सन् स जीवो बद्धो  
भवतीति । अत्र योसौ रागद्वेषमोहपरिणामः स एव भावबन्ध इत्यर्थः ॥ ८३ ॥ अथ भाव-  
बन्धयुक्तिं द्रव्यबन्धस्वरूपं च प्रतिपादयति;—भावेण जेण भावेन परिणामेन येन जीवो  
जीवः कर्त्ता पेच्छदि जाणदि निर्विकल्पदर्शनपरिणामेन पश्यति सविकल्पज्ञानपरिणामेन  
जानाति । किं कर्मतापन्नम् ? आगदं विसये आगतं प्राप्तं किमपीष्टानिष्टं वस्तु पञ्चेन्द्रिय-  
विषये रज्जदि तेणेव पुणो रज्यते तेनैव पुनः आदिमध्यान्तवर्जितं रागादिदोपरहितं चि-

इष्ट अनिष्ट विषयोंको [ प्राप्य ] पाकर [ मुह्यति ] मोही होता है [ वा ] अथवा  
[ रज्यति ] रागी होता है अथवा [ प्रद्वेष्टि ] द्वेषी होता है [ सः ] वह [ पुनः ]  
फिर [ तैः ] उन राग द्वेष मोहभावोंसे [ बद्धः ] बंधा हुआ है ॥ भावार्थ—यह  
संसारी जीव इंद्रियोंके विषयोंमें उपयोगी होता हुआ राग द्वेष मोहभावको प्राप्त होता  
है । वे रागद्वेष मोहभाव परके निमित्तसे होते हैं । यद्यपि यह आत्मा एकभावस्वरूप है  
परंतु रागद्वेष मोहभावके परिणामनसे द्वैतभावरूप हुआ है इससे बंध है । जैसे स्फटिकमणि  
स्वभावसे एक स्वेतभावरूप है परंतु नील पीत रक्तवस्तुके संबंधसे नील पीत रक्तरूप  
दूसरे परिणामको प्राप्त होती है तदाकार संबंधको धारण करती है, उसीप्रकार यह  
आत्मा परसंयोगसे रागद्वेष मोहभावरूप भावबंधसे बंधता है ॥ ८३ ॥ आगे भावबंधके  
अनुसार द्रव्यबंधका स्वरूप दिखलाते हैं,—[ जीवः ] आत्मा [ येन भावेन ]  
जिस रागद्वेष मोहभावकर [ विषये ] इंद्रियोंके विषयमें [ आगतं ] आये हुए इष्ट  
अनिष्ट पदार्थको [ पश्यति ] देखता है [ जानाति ] जानता है [ नेन एव ]

रागः स खलु स्निग्धरूक्षत्वस्थानीयो भावबन्धः । अथ पुनस्तेनैव पौद्गलिकं कर्म बध्यत एव, इत्येष भावबन्धप्रत्ययो द्रव्यबन्धः ॥ ८४ ॥

अथ पुद्गलजीवतदुभयबन्धस्वरूपं ज्ञापयति;—

पासेहिं पोग्गलाणं बंधो जीवस्स रागमादीहिं ।

अण्णोण्णं अवगाहो पोग्गलजीवप्पगो भणिदो ॥ ८५ ॥

स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धो जीवस्य रागादिभिः ।

अन्योन्यमवगाहः पुद्गलजीवात्मको भणितः ॥ ८५ ॥

यस्तावदत्र कर्मणां स्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषैरेकत्वपरिणामः स केवलपुद्गलबन्धः । यस्तु जीवस्यौपाधिक मोहराग द्वेषपर्यायैरेकत्व परिणामः स केवलजीवबन्धः । यः पुनः जीव-

उज्योतिःस्वरूपं निजात्मद्रव्यमरोचमानस्तथैवाजानन्सन् समस्तरागादिविकल्पपरिहारेण भावबंध तेनैव पूर्वोक्तज्ञानदर्शनोपयोगेन रज्यते रागं करोति इति भावबन्धयुक्तिः । वज्झदि कम्मत्ति उचदेसो तेन भावबन्धेन नवतरद्रव्यकर्म बन्नातीति द्रव्यबन्धस्वरूपं चेत्युपदेशः ॥ ८४ ॥ एवं भावबन्धकथनमुत्पद्यतया गाथाद्वयेन द्वितीयस्थलं गंतम् । अथ पूर्वनवतरपुद्गलद्रव्यकर्मणोः परस्परबन्धो जीवस्य तु रागादिभावेन सह बन्धो जीवस्यैव नवतरद्रव्यकर्मणा सह चेति त्रिविध-बन्धस्वरूपं प्रज्ञापयति;—पासेहि पुग्गलाणं बंधो स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धः पूर्वनवतरपुद्गल-द्रव्यकर्मणोर्जीवगतरागादिभावनिमित्तेन स्वकीयस्निग्धरूक्षोपादानकारणेन च परस्परस्पर्शसंयोगेन योसौ बन्धः स पुद्गलबन्धः । जीवस्स रागमादीहिं जीवस्य रागादिभिर्निरुपरागपरम-

और उसी रागद्वेष मोहरूप परिणामकर [ रज्यते ] तदाकार हो लीन होजाता है [ पुनः ] फिर [ तेनैव ] उसी भावबंधके निमित्तसे [ कर्म ] ज्ञानावरणादि आठ प्रकार द्रव्यकर्म [ बध्यते ] बंधते हैं [ इति उपदेशः ] यह भगवन्तका उपदेश है ॥ भावार्थ—यह आत्मा ज्ञान दर्शन स्वभाव सहित है । जब यह रागद्वेषमोहभावोंसे ज्ञेय पदार्थको देखता है जानता है तब इसके चिद्विकाररूप रागद्वेष मोह परिणाम होते हैं । उन अशुद्धोपयोगरूप परिणामोंका जो होना वही भावबंध है । इसी भावकर्मके अनुसार द्रव्यकर्म बंधते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवका उपदेश मनमें धारण करने योग्य है ॥ ८४ ॥ आगे पुद्गलकर्मका बंध पुद्गलकर्मोंसे होता है, जीवका बंध अशुद्धरागादि भावोंसे होता है और आत्मा पुद्गल इन दोनोंका भी बंध आपसमें होता है ऐसा तीन तरहका बंध दिखलते हैं;—[ स्पर्शैः ] यथायोग्य स्निग्धरूक्षस्पर्शगुणोंसे [ पुद्गलानां ] पुद्गलकर्मवर्गणाओंका आपसमें [ बन्धः ] मिलकर एकपिंडरूप बंध होता है [ रागादिभिः ] पर उपाधिसे उत्पन्न चिद्विकाररूप रागद्वेषमोहपरिणामोंसे [ जीवस्य ] आत्माका बंध होता है [ अन्योन्यं ] परस्परमें परिणामोंका निमित्त पाकर [ अवगाहः ] एक क्षेत्रमें जीवकर्मका बंध होना [ पुद्गलजीवात्मकः ] वह

कर्मपुद्गलयोः परस्परपरिणामनिमित्तमात्रत्वेन विशिष्टतरः परस्परमवगाहः स तदु-  
भयबन्धः ॥ ८५ ॥

अथ द्रव्यबन्धस्य भावबन्धहेतुकत्वमुजीवयति;—

सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पुग्गला काया ।

पविसंति जहाजोग्गं तिट्ठंति य जंति वज्झंति ॥ ८६ ॥

सप्रदेशः स आत्मा तेषु प्रदेशेषु पुद्गलाः कायाः ।

प्रविशन्ति यथायोग्यं तिष्ठन्ति च यान्ति वध्यन्ते ॥ ८६ ॥

अयमात्मा लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वात्सप्रदेशः । अथ तेषु तस्य प्रदेशेषु काय-  
वाङ्मनोवर्गणालम्बनः परिस्पन्दो यथा भवति तथा कर्मपुद्गलकायाः स्वयमेव परिस्पन्द-

चैतन्यरूपनिजात्मतत्त्वभावनाद्युत्पत्तय जीवस्य यद्रागादिभिः सह परिणमनं स जीवबन्ध इति ।  
अण्णोण्णस्सवगाहो पुग्गलजीवप्पगो भणिदो अन्योन्यस्यावगाहः पुद्गलजीवात्मको भणितः ।  
निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरहितत्वेन स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषपरिणतजीवस्य बन्धयोग्यस्निग्धरूक्ष-  
परिणामपरिणतपुद्गलस्य च योऽसौ परस्परावगाहलक्षणः स इत्थंभूतबन्धो जीवपुद्गलबन्ध इति  
त्रिविधबन्धलक्षणं ज्ञातव्यम् ॥ ८५ ॥ अथ बन्धो “जीवस्स रायमादीहिं” पूर्वसूत्रे यदुक्तं  
तदेव रागत्यं द्रव्यबन्धस्य कारणमिति विशेषेण समर्थयति;—सपदेसो सो अप्पा  
स प्रसिद्धात्मा लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वात्तावत्सप्रदेशः । तेसु पदेसेसु पुग्गला  
काया तेषु प्रदेशेषु कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलकायाः कर्तारः पविसंति प्रविशन्ति ।  
कथम्? जहाजोग्गं मनोवचनकायवर्गणालम्बनवीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितात्मप्रदेशपरिस्प-  
न्दलक्षणयोगानुसारेण यथायोग्यम् । न केवलं प्रविशन्ति चिट्ठंति हि प्रवेशानन्तरं स्वकीय-

पुद्गलकर्म और जीव इन दोनोंका बंध [ भणितः ] कहा गया है ॥ भावार्थ—जब  
जीवके नवीन कर्मबंध होता है तब वह तीन जातिका बंध होता है । जो जीवके  
प्रदेशोंमें पूर्वबद्ध वर्गणा हैं उनसे तो नूतन कर्मवर्गणा स्निग्धरूक्षभावकर बंधती हैं,  
और जो जीवके रागादि अशुद्धोपयोग होता है उससे जीवबंध होता है तथा जीव और  
पुद्गलके परिणमनसे निमित्तनैमित्तिकभावकर जो दोनोंका एकक्षेत्रावगाह है वह  
आपसमें जीवपुद्गलका बंध होता है—इसप्रकार तीन जातिका बंध जानना चाहिये ॥८५॥  
आगे द्रव्यबंधका कारण भावबंध प्रगट दिखलाते हैं;—[ सः ] सो [ आत्मा ] यह  
आत्मा [ सप्रदेशः ] लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है [ तेषु प्रदेशेषु ] उन असंख्यात-  
प्रदेशोंमें [ पुद्गलाः कायाः ] पुद्गलकर्मवर्गणापिंड [ यथायोग्यं ] मनवचनकायवर्ग-  
णाओंकी सहायतासे जो आत्मके प्रदेशोंका कं पररूप योगका परिणमन है उसीके अनु-  
सार [ प्रविशन्ति ] जीवके प्रदेशोंमें आके प्रवेश करते हैं [ च ] और [ वध्यन्ते ] राग-  
परस्परमें एक क्षेत्रावगाहकर बंधते हैं तथा वे कर्मवर्गणा पिंड [ तिष्ठन्ति ] राग-

रागः स खलु स्निग्धरूक्षत्वस्थानीयो भावबन्धः । अथ पुनस्तेनैव पौद्गलिकं कर्म कथ्यते  
एव, इत्येव भावबन्धप्रत्ययो द्रव्यबन्धः ॥ ८४ ॥

अथ पुद्गलजीवतदुभयबन्धस्वरूपं ज्ञापयति;—

पासेहिं पौग्गलाणं बंधो जीवस्स रागमादीहिं ।

अण्णोण्णं अवगाहो पौग्गलजीवप्पगो भणिदो ॥ ८५ ॥

स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धो जीवस्य रागादिभिः ।

अन्योन्यमवगाहः पुद्गलजीवात्मको भणितः ॥ ८५ ॥

यस्तावदत्र कर्मणां स्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषैरेकत्वपरिणामः स केवलपुद्गलबन्धः । यत्तु  
जीवस्यौपाधिक मोहराग द्वेषपर्यायैरेकत्व परिणामः स केवलजीवबन्धः । यः पुनः जीव-

उच्योतिःस्वरूपं निजात्मद्रव्यमरोचमानस्तथैवाजानन्तन् समस्तरागादिविकल्पपरिहारेण भावबंध  
तेनैव पूर्वोक्तज्ञानदर्शनोपयोगेन रज्यते रागं करोति इति भावबन्धयुक्तिः । वज्झदि कम्मत्ति  
उवदेसो तेन भावबन्धेन नवतरद्रव्यकर्म भन्नातीति द्रव्यबन्धस्वरूपं चेत्युपदेशः ॥ ८४ ॥  
एवं भावबन्धकथनमुख्यतया गाथाद्वयेन द्वितीयस्थलं गंतम् । अथ पूर्वनवतरपुद्गलद्रव्यकर्मणोः  
परस्परबन्धो जीवस्य तु रागादिभावेन सह बन्धो जीवस्यैव नवतरद्रव्यकर्मणा सह चेति त्रिविध-  
बन्धस्वरूपं प्रज्ञापयति;—पासेहि पुग्गलाणं बंधो स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धः पूर्वनवतरपुद्गल-  
द्रव्यकर्मणोर्जीवगतरागादिभावनिमित्तेन स्वकीयस्निग्धरूक्षोपादानकारणेन च परस्परस्पर्शसंयो-  
गेन योसौ बन्धः स पुद्गलबन्धः । जीवस्स रागमादीहिं जीवस्य रागादिभिर्निरुपरागपरम-

और उसी रागद्वेष मोहरूप परिणामकर [ रज्यते ] तदाकार हो लीन होजाता है  
[ पुनः ] फिर [ तेनैव ] उसी भावबंधके निमित्तसे [ कर्म ] ज्ञानावरणादि आठ  
प्रकार द्रव्यकर्म [ बध्यते ] बंधते हैं [ इति उपदेशः ] यह भगवन्तका उपदेश है ॥  
भावार्थ—यह आत्मा ज्ञान दर्शन स्वभाव सहित है । जब यह रागद्वेषमोहभावोंसे  
क्षेय पदार्थको देखता है जानता है तब इसके चिद्धिकाररूप रागद्वेष मोह परिणाम  
होते हैं । उन अशुद्धोपयोगरूप परिणामोंका जो होना वही भावबंध है । इसी  
भावकर्मके अनुसार द्रव्यकर्म बंधते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवका उपदेश मनमें धारण करने  
योग्य है ॥ ८४ ॥ आगे पुद्गलकर्मका बंध पुद्गलकर्मोंसे होता है, जीवका बंध  
अशुद्धरागादि भावोंसे होता है और आत्मा पुद्गल इन दोनोंका भी बंध आपसमें होता  
है ऐसा तीन तरहका बंध दिखलाते हैं;—[ स्पर्शैः ] यथायोग्य स्निग्धरूक्षस्पर्शगुणोंसे  
[ पुद्गलानां ] पुद्गलकर्मवर्गणाओंका आपसमें, [ बन्धः ] मिलकर एकपिंडरूप बंध  
होता है [ रागादिभिः ] पर उपाधिसे उत्पन्न चिद्धिकाररूप रागद्वेषमोहपरिणामोंसे  
[ जीवस्य ] आत्माका बंध होता है [ अन्योन्यं ] परस्परमें परिणामोंका निमित्त  
पाकर [ अवगाहः ] एक क्षेत्रमें जीवकर्मका बंध होना [ पुद्गलजीवात्मकः ] वह

संचितेन पुराणेन च वैराग्यपरिणतो न बध्यते । ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य साधक-  
तमत्वाद्रागपरिणाम एव निश्चयेन बन्धः ॥ ८७ ॥

अथ परिणामस्य द्रव्यबन्धसाधकतमरागविशिष्टत्वं सविशेषं प्रकटयति;—

**परिणामादो बंधो परिणामो रागदोसमोहजुदो ।**

**असुहो मोहपदोसो सुहो व असुहो हवदि रागो ॥ ८८ ॥**

परिणामाद्बन्धः परिणामो रागद्वेषमोहयुतः ।

अशुभौ मोहप्रद्वेषौ शुभो वाशुभो भवति रागः ॥ ८८ ॥

द्रव्यबन्धोस्ति तावद्विशिष्टपरिणामात् । विशिष्टत्वं तु परिणामस्य रागद्वेषमोहमयत्वेन ।

निश्चयनयाभिप्रायेणेति । एवं रागपरिणाम एव बन्धकारणं ज्ञात्वा समस्तरागादिविकल्पजाल-  
त्यागेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वे निरन्तरं भावना कर्त्तव्येति ॥ ८७ ॥ अथ  
जीवपरिणामस्य द्रव्यबन्धसाधकं रागाद्युपाधिजनितभेदं दर्शयति;—परिणामादो बंधो  
परिणामात्तकाशाद्बन्धो भवति । स च परिणामः किंविशिष्टः । परिणामो रागदोसमोहजुदो  
धीतरागपरमात्मनो विलक्षणत्वेन परिणामो रागद्वेषमोहोपाधित्रयेण संयुक्तः असुहो मोहपदो-  
सो अशुभौ मोहप्रद्वेषौ परोपाधिजनितपरिणामत्रयमध्ये मोहप्रद्वेषद्वयमशुभम् । सुहो  
व असुहो हवदि रागो शुभोशुभो वा भवति रागः । पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिरूपः शुभराग  
उच्यते, विषयकपायरूपश्चाशुभइति । अयं परिणामः सर्वोऽपि सोपाधित्वात् बन्धहेतुरिति ज्ञात्वा

परिणमता है वही नवीन द्रव्य कर्मकर बंधता है और जो जीव वैराग्यस्वरूप परिणमन  
करता है वह कर्मोंसे नहीं बंधता । रागपरिणत जीव नूतनकर्मसे छूटता ही नहीं और वैराग्यप-  
रिणतिवाला नवीनकर्मोंसे छूट जाता है तथा पुराने कर्मोंसे छूटता है । रागपरिणतिवाला जीव  
नवीन कर्मोंसे भी बंधता है और पुराने कर्मोंसे भी पहलेका बंधाहुआ है । वैराग्यसे परणत जीव  
बंध अवस्थाके होनेपर भी अबंध कहागया है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्यबंधका कारण  
रागादि अशुद्धोपयोग है वही निश्चयबंध है द्रव्य उपचारमात्र है ॥८७॥ आगे द्रव्यबंधका  
कारण जो परिणाम है उसमें रागकी विशेषता दिखलाते हैं;—[परिणामात्]  
अशुद्धोपयोगरूप परिणामसे [बन्धः] पुद्गलकर्मवर्णारूप द्रव्यबंध होता है [परि-  
णामः] और वह परिणाम [रागद्वेषमोहयुतः] रागद्वेषमोहभावोंकर सहित है ।  
वह परिणाम शुभ और अशुभके भेदसे दोतरहका है उनमेंसे [मोहप्रद्वेषौ] मोहभाव  
और द्वेषभाव ये दोनों [अशुभौ] अशुभ हैं । और [रागः] रागभाव [शुभः]  
पंचपरमेष्ठीभक्तिआदिस्वरूप शुभ है [वा] और [अशुभः] विषयरतिरूप अशुभ  
भी है ॥ भावार्थ—जो परिणाम रागद्वेषमोहकी विशेषता लियेहुए हो वही परिणाम  
बंधका कारण है । मोहसामान्य रागद्वेषमोहके भेदकर तीनप्रकार है उनमेंसे द्वेषमोह तो  
अशुभभावही हैं और राग शुभ-अशुभके भेदसे दो प्रकार है । धर्मानुराग शुभ है और



वन्तः प्रविशन्त्यपि तिष्ठन्त्यपि च । अस्ति चेज्जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावो बध्यतेपि च । ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य भावबन्धो हेतुः ॥ ८६ ॥

अथ द्रव्यबन्धहेतुत्वेन रागपरिणाममात्रस्य भावबन्धस्य निश्चयबन्धत्वं साधयति;—

रक्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा ।

एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥ ८७ ॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते कर्मभी रागरहितात्मा ।

एष बन्धसमासो जीवानां जानीहि निश्चयतः ॥ ८७ ॥

यतो रागपरिणत एवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा बध्यते न वैराग्यपरिणतः, अभिनवेन द्रव्यकर्मणा रागपरिणतो न मुच्यते वैराग्यपरिणत एव, संस्पृश्यतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिरसंचितेन पुराणेन च न मुच्यते रागपरिणतः, मुच्यत एव संस्पृश्यतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिर-

स्थितिकालपर्यन्तं तिष्ठन्ति हि स्फुटम् । न केवलं तिष्ठन्ति जंति स्वकीयोदयकालं प्राप्य फलं दत्त्वा गच्छन्ति वज्झंति केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपमोक्षप्रतिपक्षभूतबन्धस्य कारणं रागादिकं लब्ध्वा पुनरपि द्रव्यबन्धरूपेण बध्यन्ते च । अत एतदायातं रागादिपरिणाम एव द्रव्यबन्धकारणमिति । अथवा द्वितीयव्याख्यायानम्—प्रविशन्ति प्रदेशबन्धास्तिष्ठन्ति स्थितिबन्धाः फलं दत्त्वा गच्छन्त्यनुभागबन्धा बध्यन्ते प्रकृतिबन्धा इति ॥ ८६ ॥ एवं त्रिविधबन्धमुह्यतया सूत्रद्वयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथ द्रव्यबन्धकारणत्वानिश्चयेन रागादिविकल्परूपो भावबन्ध एव बन्ध इति प्रज्ञापयति;—रक्तो बंधदि कम्मं रक्तो बध्नाति कर्म । रक्त एव कर्म बध्नाति नच वैराग्यपरिणतः मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा मुच्यते कर्मभ्यां रागरहितात्मा मुच्यत एव शुभाशुभकर्मभ्यां रागरहितात्मा न च बध्यते एसो बंधसमासो एष प्रत्यक्षीभूतो बन्धसंक्षेपः । जीवाणं जीवानां सम्बन्धी जाण णिच्छयदो जानीहि त्वं हे शिष्य ! निश्चयतो

द्वेषमोहभावके अनुसार अपनी स्थिति लेकर ठहरते हैं, उसके बाद [यान्ति] अपना फल देकर क्षय होजाते हैं ॥ भावार्थ— जो पहले तो जीवके रागादि अशुद्धोपयोगरूप भावबन्ध होता है उसके बाद द्रव्यबन्ध होता है । इसकारण द्रव्यबन्धका कारण भावबन्ध जानना । प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगपरिणामसे होते हैं, स्थिति और अनुभाग बन्ध रागद्वेषरूप कपाय परिणामसे होते हैं ॥ ८६ ॥ आगे द्रव्यबन्धका कारण रागादिभाव है इसलिये रागादिभावको ही निश्चयबन्ध दिखलाते हैं;—[रक्तः] जो जीव परद्रव्यमें रागी है वही [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्मोंको [बध्नाति] बांधता है [रागरहितात्मा] और जो रागभावकर रहित है वह [कर्मभिः] सब कर्मकालकोंसे [मुच्यते] मुक्त होता है । [निश्चयतः] निश्चयनयकर [जीवानां] संसारी आत्माओंके [एषः] यह रागादिविभावरूप अशुद्धोपयोग ही भावबन्ध है ऐसा [बन्धसमासः] बन्धका संक्षेपकथन [जानीहि] हे शिष्य तू समझ ॥ भावार्थ—जो जीव रागभावकर

संचितेन पुराणेन च वैराग्यपरिणतो न बध्यते । ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य साधक-  
तमत्वाद्वागपरिणाम एव निश्चयेन बन्धः ॥ ८७ ॥

अथ परिणामस्य द्रव्यबन्धसाधकतमरागविशिष्टत्वं सविशेषं प्रकटयति;—

परिणामादो बंधो परिणामो रागदोसमोहजुदो ।

असुहो मोहपदोसो सुहो च असुहो ह्वदि रागो ॥ ८८ ॥

परिणामाद्बन्धः परिणामो रागद्वेपमोहसुतः ।

अशुभौ मोहप्रद्वेपौ शुभो वाशुभो भवति रागः ॥ ८८ ॥

द्रव्यबन्धोस्ति तावद्विशिष्टपरिणामात् । विशिष्टत्वं तु परिणामस्य रागद्वेपमोहमयत्वेन ।

निश्चयनयाभिप्रायेणेति । एवं रागपरिणाम एव बन्धकारणं ज्ञात्वा समस्तरागादिविकल्पजाल-  
स्यागेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वे निरन्तरं भावना कर्त्तव्येति ॥ ८७ ॥ अथ

जीवपरिणामस्य द्रव्यबन्धसाधकं रागाद्युपाधिजनितभेदं दर्शयति;—परिणामादो बंधो  
परिणामात्सकाशाद्बन्धो भवति । स च परिणामः किंविशिष्टः । परिणामो रागदोसमोहजुदो  
वीतरागपरमात्मनो विलक्षणत्वेन परिणामो रागद्वेपमोहोपाधित्रयेण संयुक्तः असुहो मोहपदो-  
सो अशुभौ मोहप्रद्वेपौ परोपाधिजनितपरिणामत्रयमध्ये मोहप्रद्वेपद्वयमशुभम् । सुहो  
व असुहो ह्वदि रागो शुभोशुभो वा भवति रागः । पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिरूपः शुभराग  
उच्यते, विषयकपायरूपश्चाशुभइति । अयं परिणामः सर्वोऽपि सोपाधित्वात् बन्धहेतुरिति ज्ञात्वा

परिणामता है वही नवीन द्रव्य कर्मकर बंधता है और जो जीव वैराग्यस्वरूप परिणामन  
करता है वह कर्मोंसे नहीं बंधता । रागपरिणत जीव नूतनकर्मसे छूटता ही नहीं और वैराग्यप-  
रिणतिवाला नवीनकर्मोंसे छूट जाता है तथा पुराने कर्मोंसे छूटता है । रागपरिणतिवाला जीव  
नवीन कर्मोंसे भी बंधता है और पुराने कर्मोंसेभी पहलेका बंधाहुआ है । वैराग्यसे परणत जीव  
बंध अवस्थाके होनेपर भी अबंध कहागया है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्यबंधका कारण  
रागादि अशुद्धोपयोग है वही निश्चयबंध है द्रव्य उपचारमात्र है ॥८७॥ आगे द्रव्यबंधका  
कारण जो परिणाम है उसमें रागकी विशेषता दिखलाते हैं;—[ परिणामात् ]  
अशुद्धोपयोगरूप परिणामसे [ बन्धः ] पुद्गलकर्मवर्णारूप द्रव्यबंध होता है [ परि-  
णामः ] और वह परिणाम [ रागद्वेपमोहयुतः ] रागद्वेपमोहभावोंकर सहित है ।  
वह परिणाम शुभ और अशुभके भेदसे दोतरहका है उनमेंसे [ मोहप्रद्वेपौ ] मोहभाव  
और द्वेपभाव ये दोनों [ अशुभौ ] अशुभ हैं । और [ रागः ] रागभाव [ शुभः ]  
पंचपरमेष्ठीभक्तिआदिस्वरूप शुभ है [ वा ] और [ अशुभः ] विषयरतिरूप अशुभ  
भी है ॥ भावार्थ—जो परिणाम रागद्वेपमोहकी विशेषता लियेहुए हो वही परिणाम  
बंधका कारण है । मोहसामान्य रागद्वेपमोहके भेदकर तीनप्रकार है उनमेंसे द्वेपमोह तो  
अशुभभावही हैं और राग शुभ-अशुभके भेदसे दो प्रकार है । धर्मानुराग शुभ है और

वन्तः प्रविशन्त्यपि तिष्ठन्त्यपि च । अस्ति चेजीवस्य मोहरागद्वैपरूपो भावो बध्यतेपि च । ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य भावबन्धो हेतुः ॥ ८६ ॥

अथ द्रव्यबन्धहेतुत्वेन रागपरिणाममात्रस्य भावबन्धस्य निश्चयबन्धत्वं साधयति;—

रक्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्महिं रागरहिदप्पा ।

एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥ ८७ ॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते कर्मभी रागरहितात्मा ।

एष बन्धसमासो जीवानां जानीहि निश्चयतः ॥ ८७ ॥

यतो रागपरिणत एवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा बध्यते न वैराग्यपरिणतः, अभिनवेन द्रव्यकर्मणा रागपरिणतो न मुच्यते वैराग्यपरिणत एव, संस्पृश्यतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिरसंचितेन पुराणेन च न मुच्यते रागपरिणतः, मुच्यत एव संस्पृश्यतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिर-

स्थितिकालपर्यन्तं तिष्ठन्ति हि स्फुटम् । न केवलं तिष्ठन्ति जंति स्वकीयोदयकालं प्राप्य फलं दत्त्वा गच्छन्ति बज्जंति केवलज्ञानायनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपमोक्षप्रतिपक्षभूतबन्धस्य कारणं रागादिकं लब्ध्वा पुनरपि द्रव्यबन्धरूपेण बध्यन्ते च । अत एतदायातं रागादिपरिणाम एव द्रव्यबन्धकारणमिति । अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—प्रविशन्ति प्रदेशबन्धास्तिष्ठन्ति स्थितिबन्धाः फलं दत्त्वा गच्छन्त्यनुभागबन्धा बध्यन्ते प्रकृतिबन्धा इति ॥ ८६ ॥ एवं त्रिविधबन्धमुल्लयतया सूत्रद्वयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथ द्रव्यबन्धकारणत्वाविश्वयेन रागादिविकल्परूपो भावबन्ध एव बन्ध इति प्रज्ञापयति;—रक्तो बंधदि कम्मं रक्तो बध्नाति कर्म । रक्त एव कर्म बध्नाति न च वैराग्यपरिणतः मुच्चदि कम्महिं रागरहिदप्पा मुच्यते कर्मभ्यां रागरहितात्मा मुच्यत एव शुभाशुभकर्मभ्यां रागरहितात्मा न च बध्यते एसो बंधसमासो एष प्रत्यक्षीभूतो बन्ध-संक्षेपः । जीवाणं जीवानां सम्बन्धी जाण णिच्छयदो जानीहि त्वं हे शिष्य ! निश्चयतो

द्वैपमोहभावके अनुसार अपनी स्थिति लेकर ठहरते हैं, उसके बाद [यान्ति] अपना फल देकर क्षय होजाते हैं ॥ भावार्थ— जो पहले तो जीवके रागादि अशुद्धोपयोगरूप भाव-बंध होता है उसके बाद द्रव्यबंध होता है । इसकारण द्रव्यबंधका कारण भावबंध जानना । प्रकृति और प्रदेशबंध योगपरिणामसे होते हैं, स्थिति और अनुभाग बंध रागद्वैपरूप कपाय परिणामसे होते हैं ॥ ८६ ॥ आगे द्रव्यबंधका कारण रागादिभाव है इसलिये रागादिभावको ही निश्चयबंध दिखलाते हैं;—[रक्तः] जो जीव परद्रव्यमें रागी है वही [कर्म] ज्ञानापरणादि कर्मोंको [बध्नाति] बांधता है [रागरहितात्मा] और जो रागभावकर रहित है वह [कर्मभिः] सब कर्मकलंकोंसे [मुच्यते] मुक्त होता है । [निश्चयतः] निश्चयनयकर [जीवानां] संसारी आत्माओंके [एषः] यह रागादिविभावरूप अशुद्धोपयोग ही भावबंध है ऐसा [बन्धसमासः] बंधका संक्षेपकथन [जानीहि] हे शिष्य नू संग्रह ॥ भावार्थ—जो जीव रागभावकर

परिणामस्य विशेषौ, शुभपरिणामोऽशुभपरिणामश्च । तत्र पुण्यपुद्गलबन्धकारणत्वात् शुभपरिणामः पुण्यं, पापपुद्गलबन्धकारणत्वाद्दशुभपरिणामः पापं । अविशिष्टपरिणामस्य तु शुद्धत्वेनैकत्वान्नास्ति विशेषः । स काले संसारदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयकारणत्वात्संसारदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयात्मको मोक्ष एव ॥ ८९ ॥

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिवृत्तिसिद्धये स्वपरविभागं दर्शयति;—

भणिदा पुढविप्पमुहा जीवनिकायाध थावरा य तसा ।

अण्णा ते जीवादो जीवोवि य तेहिंदो अण्णो ॥ ९० ॥

भणिताः पृथिवीप्रमुखा जीवनिकाया अथ स्थावराश्च त्रसाः ।

अन्ये ते जीवाजीवोऽपि च तेम्योऽन्यः ॥ ९० ॥

स्थानेषु तारतम्येन शुद्धोपयोगोऽपि भणितः । नयविवक्षायां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकपायान्तगुणस्थानेषु पुनरशुद्धनिश्चयनयो भवत्येव । तत्राशुद्धनिश्चयमध्ये शुद्धोपयोगः कथं लभ्यत इति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति प्रत्युत्तरं ददाति—वस्त्वेकदेशपरीक्षा तावन्नयलक्षणं शुभाशुभशुद्धद्रव्यालम्बनमुपयोगलक्षणं चेति तेन कारणेनाशुद्धनिश्चयमध्येऽपि शुद्धात्मावलम्बनत्वात् शुद्धध्येयत्वात् शुद्धसाधकत्वाच्च शुद्धोपयोगपरिणामो लभ्यत इति नयलक्षणमुपयोगलक्षणं च यथासम्भवं सर्वत्र ज्ञातव्यम् । अत्र योसौ रागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधिलक्षणशुद्धोपयोगो मुक्तिकारणं भणितः स शुद्धात्मद्रव्यलक्षणाद्वैयभूताच्छुद्धपरिणामिकभावादभेदप्रधानद्रव्यार्थिकनयेनाभिन्नोऽपि भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन भिन्नः कस्मादिति चेत् ? अयमेकदेशनिरावरणत्वेन क्षायोपशमिकखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः स च परिणामिकः सकलावरणरहितत्वेनाखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः । अयं तु सादिसान्तत्वेन विनश्वरः, स च अनायनन्तत्वेनाविनश्वरः । यदि पुनरेकान्तेनाभेदो भवति तर्हि घटोत्पत्तौ मृत्पिण्डविनाशवद् ध्यानपर्यायविनाशे मोक्षे जाते सति ध्येयरूपपरिणामकस्यापि विनाशो भवतीत्यर्थः । तत एव ज्ञायते शुद्धपरिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानभावनारूपो न भवति । कस्मात् ? ध्यानस्य विनश्वरत्वादिति ॥ ८९ ॥ एवं द्रव्यबन्धकारणत्वात् मिथ्यात्वरगादिविकल्परूपो भावबन्ध एव निश्च-

कहाजाता है और जो स्वरूपमें प्रवर्तता है वह बंधकारणविशेष रहित है इसकारण अविशेष परिणाम कहा जाता है । विशेषपरिणामके शुभ अशुभ ऐसे दो भेद हैं । जो पुण्यरूप पुद्गलबंधका कारण है वह शुभपरिणाम है और जो पापरूप पुद्गलोंके बंधका कारण है उसे अशुभपरिणाम जानना चाहिये । ये शुभ अशुभपरिणाम पुण्यपापभी कहेजाते हैं, वास्तवमें पुण्यादिकके कारण हैं परंतु कारणमें कार्यका उपचार होता है उसकी अपेक्षा पुण्यपाप कहेजाते हैं । तथा जो अविशेष परिणाम है वह शुद्ध एकभाव है इसलिये उसमें भेद नहीं है, वह संसारमें दुःखरूपपुद्गलक्षयका कारण है और सकलकर्मक्षयलक्षणमोक्षका बीजभूत है । यहांपर भी कारणमें कार्यके उपचारकी अपेक्षा यह शुद्धोपयोग मोक्षरूप ही जानना चाहिये ॥ ८९ ॥ आगे जीवकी स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति

तत्र शुभाशुभत्वेन द्वैतानुवर्ति । तत्र मोहद्वेषमयत्वेनाशुभत्वं, रागमयत्वेन तु शुभत्वं चाशुभत्वं च । विशुद्धिसंक्लेशाङ्गत्वेन रागस्य द्वैविध्यात् भवति ॥ ८८ ॥

अथ विशिष्टपरिणामविशेषमविशिष्टपरिणामं च कारणे कार्यमुपचर्य कार्यत्वेन निर्दिशति;—

सुहृपरिणामो पुण्यं असुहो पावति भणियमण्येसु ।

परिणामोऽनन्यगतो दुःखस्वस्वकारणं समये ॥ ८९ ॥

शुभपरिणामः पुण्यमशुभः पापमिति भणितमन्येषु ।

परिणामोऽनन्यगतो दुःखस्वकारणं समये ॥ ८९ ॥

द्विविधस्तावत्परिणामः परद्रव्यप्रवृत्तः स्वद्रव्यप्रवृत्तश्च । तत्र परद्रव्यप्रवृत्तः परोपरक्तत्वा-  
द्विशिष्टपरिणामः, स्वद्रव्यप्रवृत्तस्तु परानुपरक्तत्वादविशिष्टपरिणामः । तत्रोक्तौ द्वौ विशिष्ट-

बन्धे शुभाशुभसमस्तरागद्वेषविनाशार्थं समस्तरागाशुपाधिरहिते सहजानन्दैकलक्षणसुखाद्गतस्व-  
भावे निजात्मद्रव्ये भावना कर्त्तव्येति तात्पर्यम् ॥ ८८ ॥ अथ द्रव्यरूपपुण्यपापबन्धकारणत्वा-  
च्छुभाशुभपरिणामयोः पुण्यपापसंज्ञां शुभाशुभरहितशुद्धोपयोगपरिणामस्य मोक्षकारणत्वं च  
कथयति;—सुहृपरिणामो पुण्यं द्रव्यपुण्यबन्धकारणत्वाच्छुभपरिणामः पुण्यं भण्यते  
असुहो पावति भणितं द्रव्यपापबन्धकारणत्वादशुभपरिणामः पापं भण्यते । केषु विषयेषु  
योऽसौ शुभाशुभपरिणामः । अपण्येसु निजशुद्धात्मनः सकाशादन्येषु शुभाशुभवहिरद्रव्येषु परि-  
णामो णण्यगतो परिणामो नान्यगतोऽनन्यगतः स्वस्वरूपस्य इत्यर्थः । स इत्यभूतः शुद्धो-  
पयोगलक्षणः परिणामः दुःखस्वस्वकारणं दुःखस्वकारणं दुःखस्वस्वभिधानमोक्षस्य कारणं  
भणितो भणितः । क्व भणितः ? समये परमागमे लब्धिकाले वा । किञ्च । मिथ्यादृष्टि-  
सादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभपरिणामो भवतीति पूर्वं भणितमस्ति, अविरतदेशविरत-  
प्रमत्तसंपतसंज्ञगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभपरिणामश्च भणितः, अप्रमत्तादिक्षीणकपायान्तगुण-

विषयराग अशुभभाव है । इसप्रकार ये शुभाशुभ दोतरहके परिणाम बंधके ही कारण हैं  
॥ ८८ ॥ आगे बंधके कारणविशेष जो शुभाशुभपरिणाम हैं उनको तथा मोक्षका  
कारण शुद्धपरिणामको कारणमें कार्यका उपचारकर कार्यरूप दिखलाते हैं;—[अन्येषु]  
अपनी आत्मसत्तासे भिन्नरूप पंचपरमेष्ठी आदिकोंमें [यः] जो [शुभपरिणामः]  
भक्तिआदि प्रशस्तरागरूप परिणाम है वह [पुण्यं] पुण्य है । और जो [अशुभः]  
परद्रव्यमें ममत्व विषयानुरागरूप अप्रशस्त (खोट) रागपरिणाम है वह [पापं]  
पाप है [अनन्यगतः परिणामः] जो अन्यद्रव्यमें नहीं प्रवर्तते ऐसा वीतराग शुद्धो-  
पयोगरूप भाव है वह [दुःखस्वस्वकारणं] दुःखके नाशका कारणरूप मोक्षस्वरूप है  
[इति] ऐसा [समये] परमागममें [भणितं] कहा है ॥ भावार्थ—परिणाम  
दो प्रकारका है एक तो परद्रव्यमें प्रवर्तता है दूसरा निजद्रव्यमें प्रवर्तता है । जो परद्र-  
व्यमें प्रवर्तता है वह बंधकारणरूप विशेषतामहित है इसलिये विशेष परिणाम

परिणामस्य विशेषौ, शुभपरिणामोऽशुभपरिणामश्च । तत्र पुण्यपुद्गलबन्धकारणत्वात् शुभ-  
परिणामः पुण्यं, पापपुद्गलबन्धकारणत्वाद् अशुभपरिणामः पापं । अविशिष्टपरिणामस्य तु  
शुद्धत्वेनैकत्वान्नास्ति विशेषः । स काले संसारदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयकारणत्वात्संसा-  
रदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयात्मको मोक्ष एव ॥ ८९ ॥

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिवृत्तिसिद्धये स्वपरविभागं दर्शयति;—

भणिदा पुढविप्पमुहा जीवनिकायाध थावरा य तसा ।

अण्णा ते जीवादो जीवोवि य तेहिंदो अण्णो ॥ ९० ॥

भणिताः पृथिवीप्रमुखा जीवनिकाया अथ स्थावराश्च त्रसाः ।

अन्ये ते जीवाज्जीवोऽपि च तेभ्योऽन्यः ॥ ९० ॥

स्थानेषु तारतम्येन शुद्धोपयोगोऽपि भणितः । नयविवक्षायां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकपायान्तगुण-  
स्थानेषु पुनरशुद्धनिश्चयनयो भवयेव । तत्राशुद्धनिश्चयमध्ये शुद्धोपयोगः कथं लभ्यत इति शिष्येण  
पूर्वपक्षे कृते सति प्रत्युत्तरं ददाति—वस्त्वेकदेशपरीक्षा तावन्नयलक्षणं शुभाशुभशुद्धद्रव्यालम्बनमुपयो-  
गलक्षणं चेति तेन कारणेनाशुद्धनिश्चयमध्येऽपि शुद्धात्मावलम्बनत्वात् शुद्धध्येयत्वात् शुद्धसाधकत्वाच्च  
शुद्धोपयोगपरिणामो लभ्यत इति नयलक्षणमुपयोगलक्षणं च यथासम्भवं सर्वत्र ज्ञातव्यम् । अत्र  
योसौ रागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधिलक्षणशुद्धोपयोगो मुक्तिकारणं भणितः स शुद्धात्मद्रव्यलक्ष-  
णाद्ध्येयभूताच्छुद्धपरिणामिकभावादभेदप्रधानद्रव्यार्थिकनयेनाभिन्नोऽपि भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन  
भिन्नः कस्मादिति चेत् ? अयमेकदेशनिरावरणत्वेन क्षायोपशमिकखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः स च परिणा-  
मिकः सकलावरणरहितत्वेनाखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः । अयं तु सादिसान्तत्वेन विनश्वरः, स च अनाद्यन-  
न्तत्वेनाविनश्वरः । यदि पुनरेकान्तेनाभेदो भवति तर्हि घटोत्पत्तौ मृत्पिण्डविनाशवद् ध्यानपर्याय-  
विनाशो मोक्षे जाते सति ध्येयरूपपरिणामकस्यापि विनाशो भवतीत्यर्थः । तत एव ज्ञायते शुद्ध-  
परिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानभावनारूपो न भवति । कस्मात् ? ध्यानस्य विनश्वर-  
त्वादिति ॥ ८९ ॥ एवं द्रव्यबन्धकारणत्वात् मिथ्यात्वरगादिविकल्परूपो भावबन्ध एव निश्च-

कहाजाता है और जो स्वरूपमें प्रवर्तता है वह बंधकारणविशेष रहित है इसकारण  
अविशेष परिणाम कहा जाता है । विशेषपरिणामके शुभ अशुभ ऐसे दो भेद हैं । जो  
पुण्यरूप पुद्गलबंधका कारण है वह शुभपरिणाम है और जो पापरूप पुद्गलोंके बंधका  
कारण है उसे अशुभपरिणाम जानना चाहिये । ये शुभ अशुभपरिणाम पुण्यपापभी  
कहेजाते हैं, वास्तवमें पुण्यादिकके कारण हैं परंतु कारणमें कार्यका उपचार होता है  
उसकी अपेक्षा पुण्यपाप कहेजाते हैं । तथा जो अविशेष परिणाम है वह शुद्ध एकभाव  
है इसलिये उसमें भेद नहीं है, वह संसारमें दुःखरूपपुद्गलक्षयका कारण है और सक-  
लकर्मक्षयलक्षणमोक्षका धीजभूत है । यद्वांपर भी कारणमें कार्यके उपचारकी अपेक्षा  
यह शुद्धोपयोग मोक्षरूप ही जानना चाहिये ॥ ८९ ॥ आगे जीवकी स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति

य एते पृथिवीप्रभृतयः पद्जीवनिकायास्त्रसंस्थावरभेदेनाभ्युपगम्यन्ते । ते स्वत्वचे-  
तनत्वादन्ये जीवात्, जीवोपि च चेतनत्वादन्यस्तेभ्यः । अत्र पद्जीवनिकायात्मनः  
परद्रव्यमेक एवात्मा स्वद्रव्यम् ॥ ९० ॥

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन स्वपरविभागज्ञानाऽज्ञाने अवधारयति;—

जो ण विजाणदि एवं परमप्पाणं सहावमासेज्ज ।

कीरदि अज्झवसाणं अहं ममेदत्ति मोहादो ॥ ९१ ॥

यो न विजानात्येवं परमात्मानं स्वभावमासाद्य ।

कुरुतेऽध्यवसानमहं ममेदमिति मोहात् ॥ ९१ ॥

यो हि नाम नैवं प्रतिनियतचेतनाचेतनत्वस्वभावेन जीवपुद्गलयोः स्वपरविभागं पश्यति

येन बन्ध इति कथनमुद्घयतया गाथात्रयेण चतुर्थस्थले गतम् । अथ जीवस्य स्वद्रव्यप्रवृत्तिपरद्र-  
व्यनिवृत्तिनिमित्तं पद्जीवनिकायैः सह भेदविज्ञानं दर्शयति;—भणिदा पुढविप्पमुहा भणिताः  
परमागमे कथिताः पृथिवीप्रमुखाः । ते के । जीवणिकाया जीवसमुहाः अथ अहो । कथंभूताः  
थावरा य तसा स्थावराश्च त्रसाः । ते च किंविशिष्टाः । अण्णा ते अन्ये भिन्नास्ते । कस्मात् ?  
जीवादो शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावात् । जीवोपि य तेहिंदो अण्णो जीवोऽपि च तेभ्योऽन्य  
इति । तथाहि— टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मतत्त्वभावनारहितेन जीवने यदुपाजितं त्रस-  
स्थावरनामकर्म तदुदयजनितत्वाद्चेतनत्वाच्च त्रसस्थावरजीवनिकायाः शुद्धचेतन्यस्वभावजीवा-  
द्विन्नाः । जीवोऽपि च तेभ्यो विलक्षणत्वाद्विन्न इति । अत्रैवं भेदविज्ञाने जाते सति मोक्षार्थं  
जीवः स्वद्रव्ये प्रवृत्तिं परद्रव्ये निवृत्तिं च करोतीति भावार्थः ॥ ९० ॥ अथैतदेव भेदविज्ञानं  
प्रकारान्तरेण दृढयति;—जो णवि जाणदि एवं यः कर्त्ता नैव जानात्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण ।  
कं । परं पद्जीवनिकायादिपरद्रव्यम् अप्पाणं निर्दोपिपरमात्मद्रव्यरूपं निजात्मानम् ।

और परद्रव्यसे निवृत्ति इस बातकी सिद्धिकेलिये स्वपरभेद दिखलाते हैं;—[अथ]  
इसके बाद [ये] जो [पृथिवीप्रमुखाः] पृथ्वीको आदिलेकर [जीवनिकायाः]  
जीवके छः फाय जो [स्थावराः] स्थावर [च] और [त्रसाः] त्रस [भणिताः]  
कहे गये हैं [ते] वे सब भेद [जीवात् अन्ये] चेतनालक्षण जीवसे अन्य अचे-  
तन पुद्गलपिंडरूप हैं [च] और [जीवः अपि] जीवद्रव्यभी निश्चयसे [तेभ्यः]  
उन त्रसस्थावररूप छह प्रकारके भेदोंसे [अन्यः] जुदा टंकोत्कीर्ण ज्ञायकरूप है ॥  
भावार्थ—जो कुछ कर्मजनित सामग्री है वह सब परद्रव्यरूप है । उससे निवृत्त  
होकर निजद्रव्यमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥ ९० ॥ आगे जीवके स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति  
करनेसे भेदविज्ञान होता है और परद्रव्यमें प्रवृत्ति करनेसे स्वपरभेदविज्ञानका अभाव  
होता है यह दिखलाते हैं;—[यः] जो जीव [एवं] पूर्वोक्तप्रकारमे अर्थात् चेतन  
और अचेतनस्वभावोंका निश्चयकरके [स्वभावं आसाद्य] सबिद्वानंरूप शुद्ध नित्य

स एवाहमिदं ममेदमित्यात्मात्मीयत्वेन परद्रव्यमध्यवस्यति मोहान्नान्यः । अतो जीवस्य परद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तं स्वपरपरिच्छेदाभावमात्रमेव सामर्थ्यात्स्वद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तं तदभावः ॥ ९१ ॥

अथात्मनः किं कर्मेति निरूपयति;—

कुर्वन् स्वभावमादा हवदि हि कत्ता सगस्स भावस्स ।

पोग्गलदब्बमयाणं णट्ठु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ९२ ॥

कुर्वन् स्वभावमात्मा भवति हि कर्ता स्वकस्य भावस्य ।

पुद्गलद्रव्यमयानां न तु कर्ता सर्वभावानाम् ॥ ९२ ॥

आत्मा हि तावत्स्वं भावं करोति तस्य स्वधर्मत्वादात्मनस्तथाभवनशक्तिसंभवेनावश्यमेव कार्यत्वात् । स तं च स्वतन्त्रः कुर्वाणस्तस्य कर्तावश्यं स्यात्, क्रियमाणश्चात्मना स्वो भावस्तेनाप्यत्वात्तस्य कर्मावश्यं स्यात् । एवमात्मनः स्वपरिणामः कर्म न त्वात्मा

किञ्चत्वा । सहावमासिज्ज शुद्धोपयोगलक्षणनिजशुद्धस्वभावमाश्रित्य कीरदि अज्झवसाणं स पुरुषः करोत्यध्यवसानं परिणामं । केन रूपेण । अहं ममेदत्ति अहं ममेदमिति । ममकारा-हंकारादिरहितपरमात्मभावनाच्युतो भूत्वा परद्रव्यं रागादिकमहमिति देहादिकं ममेतिरूपेण । कस्मात् ? मोहादो मोहाधीनत्वादिति । ततः स्थितमेतत्स्वपरभेदविज्ञानबलेन स्वसंवेदनज्ञानी जीवः स्वद्रव्ये रतिं परद्रव्ये निवृत्तिं करोतीति ॥ ९१ ॥ एवं भेदभावनाकथनमुख्यतया सूत्रद्वयेन पञ्चमस्थलं गतम् । अथात्मनो निश्चयेन रागादिस्वपरिणाम-एव कर्म न च द्रव्यकर्मेति प्ररूपयति;—कुर्वन् सहावं कुर्वन्स्वभावम्, अत्र स्वभावशब्देन यद्यपि, शुद्धनिश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावो भण्यते, तथापि कर्मबन्धप्रस्तावे रागादिपरिणामोऽप्यशुद्धनिश्चयेन स्वभावो भण्यते । तं स्वभावं कुर्वन् । स कः । आदा आत्मा हवदि हि कत्ता कर्ता भवति हि स्फुटम् । कस्य ? सगस्स भावस्स स्वकीयचिद्रूपस्वभावस्य

आत्मीक भावको उपादेयरूप अंगीकार कर [ परं ] पुद्गलको [ आत्मानं ] तथा जीवको स्व और परके भेदकर [ न जानाति ] नहीं जानता है वह [ मोहात् ] रागद्वेषमोहसे [ अहं इदं ] मैं शरीरादिस्वरूप हूँ [ मम इदं ] मेरे ये शरीरादि हैं [ इति ] ऐसा [ अध्यवसानं ] मिथ्या परिणाम [ कुरुते ] करता है ॥ भावार्थ—जो जीव स्वरूपको अंगीकारकर स्वपरका भेद नहीं जानता है वह भेदविज्ञानी नहीं है और भेदविज्ञानी न होनेसे परद्रव्यमें अहंकार ममकार करता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि परद्रव्यमें प्रवृत्तिका कारण स्वपरभेदका नहीं जानना है और स्वद्रव्यमें प्रवृत्तिका कारण स्वपरभेदका जानना है ॥ ९१ ॥ आगे आत्माका कर्म कौनसा है ऐसा कहते हैं;— [ आत्मा ] जीव [ स्वभावं ] अपने चेतनास्वरूपपरिणामको [ कुर्वन् ] करता हुआ [ स्वकस्य ] अपने [ भावस्य ] चेतनास्वरूपभावका [ कर्ता ] कर्ता



य एते पृथिवीप्रभृतयः पद्मजीवनिकायास्त्रसस्थावरभेदेनाभ्युपगम्यन्ते । ते खल्वचे-  
तनत्वादन्ये जीवात्, जीवोपि च चेतनत्वादन्यस्तेभ्यः । अत्र पद्मजीवनिकायात्मनः  
परद्रव्यमेक एवात्मा स्वद्रव्यम् ॥ ९० ॥

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन स्वपरविभागज्ञानाऽज्ञाने अवधारयति;—

जो ण विजाणदि एवं परमप्पाणं सहावमासेज्ज ।

कीरदि अज्झवसाणं अहं ममेदत्ति मोहादो ॥ ९१ ॥

यो न विजानालेवं परमात्मानं स्वभावमासाद्य ।

कुरुतेऽध्यवसानमहं ममेदमिति मोहात् ॥ ९१ ॥

यो हि नाम नैवं प्रतिनियतचेतनाचेतनत्वस्वभावेन जीवपुद्गलयोः स्वपरविभागं पश्यति

येन बन्ध इति कथनमुद्घृतया गाथात्रयेण चतुर्थस्थलं गतम् । अथ जीवस्य स्वद्रव्यप्रवृत्तिपरद्र-  
व्यनिवृत्तिनिमित्तं पद्मजीवनिकायैः सह भेदविज्ञानं दर्शयति;—भणिदा पुढविप्पमुहा भणिताः  
परमागमे कथिताः पृथिवीप्रमुखाः । ते के । जीवणिकाया जीवसमूहाः अथ अहो । कथंभूताः  
थावरा य तसा स्थावराश्च त्रसाः । ते च किंविशिष्टाः । अण्णा ते अन्ये भिन्नास्ते । कस्मात् ?  
जीवादो शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावात् । जीवोवि य तेहिंदो अण्णो जीवोऽपि च तेभ्योऽन्य  
इति । तथाहि— टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मतत्त्वभावनारहितेन जीवेन यदुपाजितं त्रस-  
स्थावरनामकर्म तद्दुदयजनितत्वादचेतनत्वाच्च त्रसस्थावरजीवनिकायाः शुद्धचेतन्यस्वभावजीवा-  
द्विन्नाः । जीवोऽपि च तेभ्यो विलक्षणत्वाद्विन्न इति । अत्रैवं भेदविज्ञाने जाते सति मोक्षार्थी  
जीवः स्वद्रव्ये प्रवृत्तिं परद्रव्ये निवृत्तिं च करोतीति भावार्थः ॥ ९० ॥ अथैतदेव भेदविज्ञानं  
प्रकारान्तरेण दृढयति;—जो णवि जाणदि एवं यः कर्त्ता नैव जानालेवं पूर्वोक्तप्रकारेण ।  
कं । परं पद्मजीवनिकायादिपरद्रव्यम् अण्णाणं निर्दोषिपरमात्मद्रव्यरूपं निजात्मानम् ।

और परद्रव्यसे निवृत्ति इस बातकी सिद्धिकेलिये स्वपरभेद दिखलाते हैं;—[ अथ ]  
इसके वाद [ ये ] जो [ पृथिवीप्रमुखाः ] पृथ्वीको आदिलेकर [ जीवनिकायाः ]  
जीवके छः काय जो [ स्थावराः ] स्थावर [ च ] और [ त्रसाः ] त्रस [ भणिताः ]  
कहे गये हैं [ ते ] वे सब भेद [ जीवात् अन्ये ] चेतनालक्षण जीवसे अन्य अचे-  
तन पुद्गलपिंडरूप हैं [ च ] और [ जीवः अपि ] जीवद्रव्यभी निश्चयसे [ तेभ्यः ]  
उन त्रसस्थावररूप छह प्रकारके भेदोंसे [ अन्यः ] जुदा टंकोत्कीर्ण ज्ञायकरूप है ॥  
भावार्थ—जो कुछ कर्मजनित सामग्री है वह सब परद्रव्यरूप है । उससे निवृत्त  
होकर निजद्रव्यमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥ ९० ॥ आगे जीवके स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति  
करनेसे भेदविज्ञान होता है और परद्रव्यमें प्रवृत्ति करनेसे स्वपरभेदविज्ञानका अभाव  
होता है यह दिखलाते हैं;—[ यः ] जो जीव [ एवं ] पूर्वोक्तप्रकारसे अर्थात् चेतन  
और अचेतनस्वभावोंका निश्चयकरके [ स्वभावं आसाद्य ] सबिद्वानंदरूप शुद्ध नित्य

णमयिता दृष्टः स तदुपादानहानशून्यो दृष्टः, यथाग्निरयःपिण्डस्य । आत्मा तु तुल्यक्षेत्रव-  
र्तित्वेपि परद्रव्योपादानहानशून्य एव । ततो न स पुद्गलानां कर्मभावेन परिणमयिता  
स्यात् ॥ ९३ ॥

अथात्मनः कुतस्तर्हि पुद्गलकर्मभिरुपादानं हानं चेति निरूपयति;—

स इदाणिं कत्ता सं सगपरिणामस्स दब्बजादस्स ।

आदीयदे कदाई विमुच्चदे कम्मधूलीहिं ॥ ९४ ॥

स इदानीं कर्ता सन् स्वकपरिणामस्य द्रव्यजातस्य ।

आदीयते कदाचिद्विमुच्यते कर्मधूलिभिः ॥ ९४ ॥

सोयमात्मा परद्रव्योपादानहानशून्योपि सांप्रतं संसारावस्थायां निमित्तमात्रीकृतपरद्र-

परममुनिः परमाद्यं न गृह्णाति न मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण लोहपिण्डो वाग्निं तथायमात्मा  
न च गृह्णाति न च मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण पुद्गलकर्माणीति । किं कुर्वन्नपि ? पुग्ग-  
लमज्जे वड्डणवि सव्वकालेसु क्षीरन्यायेन पुद्गलमध्ये वर्त्तमानोऽपि सर्वकालेषु । अनेन  
किमुक्तं भवति—यथा सिद्धो भगवान् पुद्गलमध्ये वर्त्तमानोऽपि परद्रव्यग्रहणमोचनकरणरहित-  
स्तथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण संसारी जीवोऽपीति भावार्थः ॥ ९३ ॥ अथ यद्ययमात्मा पुद्ग-  
लकर्म न करोति न च मुञ्चति तर्हि बन्धः कथं तर्हि मोक्षोऽपि कथमितिप्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;—  
स इदानीं कत्ता सं स इदानीं कर्ता सन् स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा इदानीं कोऽर्थः एवं पूर्वो-  
क्तनयविभागेन कर्ता सन् । कस्य ? सगपरिणामस्स निर्विकारनित्यानन्दैकलक्षणपरममुखा-  
मृतव्यक्तिरूपकार्यसमयसारसाधकनिश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारविलक्षणस्य मिथ्यात्वरागादि-  
विभावरूपस्य स्वकीयपरिणामस्य । पुनरपि किं विशिष्टस्य ? दब्बजादस्स स्वकीयात्मद्रव्योपा-  
दानकारणजातस्य । आदीयदे कदाई कम्मधूलीहिं आदीयते बध्यते । काभिः ? कर्मधू-

नहीं है ॥ भावार्थ—पुद्गलीक परिणाम आत्माके नहीं हैं क्योंकि आत्माके परद्रव्यका  
ग्रहण करना तथा छोड़ना नहीं है । जैसे कि अग्नि स्वभावसे लोहेके पिंडको ग्रहण  
करती वा छोड़ती नहीं है । जो द्रव्य जिसका परिणामावनेवाला होता है वही उसका  
ग्रहण करनेवाला वा छोड़नेवाला होता है ऐसा नियम है । आत्मा पुद्गलका परिणामाव-  
नेवाला नहीं है इसकारण पुद्गलको न तो ग्रहणकरता है न छोड़ता है और न करनेवाला  
कर्ता ही है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलीकपरिणाम आत्माका नहीं है ॥ ९३ ॥  
आगे आत्माका पुद्गलमयी कर्मोंसे ग्रहण त्याग किसतरह होता है यह कहते हैं;—

[सः] वह परद्रव्यके ग्रहणत्यागसे रहित आत्मा [इदानीं] अब संसार अवस्थामें  
परद्रव्यका निमित्त पाके [द्रव्यजातस्य] आत्मद्रव्यसे उत्पन्न हुए [स्वकपरि-  
णामस्य] चेतनाके विकाररूप अशुद्ध अपने परिणामोंका [कर्ता सन्] कर्ता  
होता हुआ [कर्मधूलीभिः] उस अशुद्ध चेतनारूप आत्मपरिणामका ही निमित्त

पुद्गलस्य भावान् करोति तेषां परधर्मत्वादात्मनस्तथाभवनशक्त्यसंभवेनाकार्यत्वात् ।  
स तानकुर्वाणो न तेषां कर्ता स्यात् अक्रियमाणाश्चात्मना ते न तस्य कर्म स्युः । एवमा-  
त्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म ॥ ९२ ॥

अथ कथमात्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म स्यादिति संदेहमपनुदति;—

गेणहृदि णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पुग्गलाणि कम्माणि ।

जीवो पुग्गलमज्झे चट्टण्णावि सञ्चकालेसु ॥ ९३ ॥

गृह्णाति नैव न मुञ्चति करोति न हि पुद्गलानि कर्माणि ।

जीवः पुद्गलमध्ये वर्तमानोपि सर्वकालेषु ॥ ९३ ॥

न खल्वात्मनः पुद्गलपरिणामः कर्म परद्रव्योपादानहानशून्यत्वात्, यो हि यस्य परि-

रागादिपरिणामस्य तदेव तस्य रागादिपरिणामरूपं निश्चयेन भावकर्म भण्यते । कस्मात् ।  
तत्तायःपिण्डवत्तेनात्मना प्राप्यत्वाद्वाप्यत्वादिति । पुग्गलद्वयमयाणं ण तु कत्ता सञ्च-  
भावाणं चिद्रूपामनो-विलक्षणानां पुद्गलद्रव्यमंयानां न तु कर्त्ता सर्वभावानां ज्ञानावरणादिद्रव्यक-  
र्मपर्यायाणामिति । ततो ज्ञायते जीवस्य रागादिस्वपरिणाम एव कर्म तस्यैव स कर्त्तैति ॥ ९२ ॥  
अथात्मनः कथं द्रव्यकर्मरूपपरिणामः कर्म न स्यादिति प्रश्नसमाधानं ददाति;—गेणहृदि  
णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पुग्गलाणि कम्माणि जीवो यथा निर्विकल्पसमाधितः

(करनेवाला) [ हि ] निश्चयसे [ भवति ] होता है । [ तु ] और [ पुद्गलद्रव्य-  
मयानां ] पुद्गलद्रव्यमयी [ सर्वभावानां ] सब द्रव्यकर्मशरीरादिभावोंका [कर्ता]  
करनेवाला [ न ] नहीं है ॥ भावार्थ—जीवद्रव्य अपने परिणामका कर्ता है क्योंकि  
वे परिणाम जीवके स्वभाव हैं जीवमें उस भावरूप होनेकी शक्ति है, इसकारण परि-  
णाम कार्य है । उसकार्यको स्वाधीन होके करता हुआ आत्मा कर्ता होता है । और जो  
आत्माकर कियाजावे वह परिणामरूपकार्य सो आत्माका कर्म है । यही आत्माके परि-  
णामपरिणामीभावरूप कर्ताकर्मभाव है । आत्मा द्रव्यकर्मादि पुद्गलीकभावोंका कर्ता  
नहीं है क्योंकि वे परद्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके उन भावोंरूप होनेकी शक्तिका  
अभाव है । इसलिये उन पुद्गलीकभावोंका अकर्ता हुआ यह आत्मा अकर्ता है, क्योंकि  
वे भाव आत्माकर नहीं किये जाते हैं इसीकारण वे आत्माके कर्म नहीं हैं । उनभावोंसे  
कर्ताकर्मभाव पुद्गलका ही है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गलपरिणाम आत्माके कर्म  
नहीं हैं ॥ ९२ ॥ आगे आत्माका पुद्गलपरिणाम कर्म किसतरह नहीं है यह संदेह दूर  
करते हैं;—[ जीवः ] आत्मा [ सर्वकालेषु ] सदाकाल [ पुद्गलमध्ये ] पुद्गलके  
धीचमें एक क्षेत्रायगाहकर [ प्रवर्तमानः अपि ] मौजूद है तौभी [ पुद्गलानि कर्मा-  
णि ] पुद्गलीक द्रव्यकर्मादिकोंको [ नैव गृह्णाति ] न तो ग्रहण करता है और  
[ न मुञ्चति ] न छोड़ता है तथा [ हि ] निश्चयसे [ न करोति ] करता भी

णमयिता दृष्टः स तदुपादानहानशून्यो दृष्टः, यथाग्निरयःपिण्डस्य । आत्मा तु तुल्यक्षेत्रव-  
र्तित्वेपि परद्रव्योपादानहानशून्य एव । ततो न स पुद्गलानां कर्मभावेन परिणमयिता  
स्यात् ॥ ९३ ॥

अथात्मनः कुतस्तर्हि पुद्गलकर्मभिरुपादानं हानं चेति निरूपयति;—

स इदाणि कत्ता सं सगपरिणामस्स दब्बजादस्स ।

आदीयदे कदाई विमुच्चदे कम्मधूलीहिं ॥ ९४ ॥

स इदानीं कर्ता सन् स्वकपरिणामस्य द्रव्यजातस्य ।

आदीयते कदाचिद्विमुच्यते कर्मधूलिभिः ॥ ९४ ॥

सोयमात्मा परद्रव्योपादानहानशून्योपि सांप्रतं संसारावस्थायां निमित्तमात्रोक्तपरद्र-

परममुनिः परभावं न गृह्णाति न मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण लोहपिण्डो वाग्निं तथायमात्मा  
न च गृह्णाति न च मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण पुद्गलकर्माणीति । किं कुर्वन्नपि ? पुग्ग-  
लमज्जे वट्टण्णवि सव्वकालेसु क्षीरन्यायेन पुद्गलमध्ये वर्तमानोऽपि सर्वकालेषु । अनेन  
किमुक्तं भवति—यथा सिद्धो भगवान् पुद्गलमध्ये वर्तमानोऽपि परद्रव्यग्रहणमोचनकरणरहित-  
स्तथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण संसारी जीवोऽपीति भावार्थः ॥ ९३ ॥ अथ यद्यमात्मा पुद्ग-  
लकर्म न करोति न च मुञ्चति तर्हि बन्धः कथं तर्हि मोक्षोऽपि कथमितिप्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;—  
स इदाणीं कत्ता सं स इदानीं कर्ता सन् स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा इदानीं कोऽर्थः एवं पूर्वो-  
क्तनयविभागेन कर्ता सन् । कस्य ? सगपरिणामस्स निर्विकारनित्यानन्दैकलक्षणपरममुखा-  
मृतव्यक्तिरूपकार्यसमयसारसाधकनिश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारविलक्षणस्य मिथ्यात्वरगादि-  
विभावस्वरूपस्य स्वकीयपरिणामस्य । पुनरपि किं विशिष्टस्य ? दब्बजादस्स स्वकीयात्मद्रव्योपा-  
दानकारणजातस्य । आदीयदे कदाई कम्मधूलीहिं आदीयते बध्यते । काभिः ? कर्मधू-

नहीं है ॥ भावार्थ—पुद्गलीक परिणाम आत्माके नहीं हैं क्योंकि आत्माके परद्रव्यका  
ग्रहण करना तथा छोड़ना नहीं है । जैसे कि अग्नि स्वभावसे लोहेके पिण्डको ग्रहण  
करती वा छोड़ती नहीं है । जो द्रव्य जिसका परिणमावनेवाला होता है वही उसका  
ग्रहण करनेवाला वा छोड़नेवाला होता है ऐसा नियम है । आत्मा पुद्गलका परिणमाव-  
नेवाला नहीं है इसकारण पुद्गलको न तो ग्रहणकरता है न छोड़ता है और न करनेवाला  
कर्ता ही है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलीकपरिणाम आत्माका नहीं है ॥ ९३ ॥  
आगे आत्माका पुद्गलमयी कर्मोंसे ग्रहण त्याग किसतरह होता है यह कहते हैं;—

[सः] यह परद्रव्यके ग्रहणत्यागसे रहित आत्मा [इदानीं] अब संसार अवस्थामें  
परद्रव्यका निमित्त पाके [द्रव्यजातस्य] आत्मद्रव्यसे उत्पन्न हुए [स्वकपरि-  
णामस्य] चेतनाके विकाररूप अशुद्ध अपने परिणामोंका [कर्ता सन्] कर्ता  
होता हुआ [कर्मधूलीभिः] उस अशुद्ध चेतनारूप आत्मपरिणामका ही निमित्त

पुद्गलस्य भावान् करोति तेषां परधर्मत्वादात्मनस्तथाभवनशक्त्यसंभवेनाकार्यत्वात् ।  
स तानकुर्वाणो न तेषां कर्ता स्यात् अक्रियमाणाश्चात्मना ते न तस्य कर्म स्युः । एवमा-  
त्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म ॥ ९२ ॥

अथ कथमात्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म स्यादिति संदेहमपनुदति;—

गेण्हदि णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पोग्गलाणि कम्माणि ।

जीवो पोग्गलमज्जे वट्टणवि सब्बकालेसु ॥ ९३ ॥

गृह्णाति नैव न मुञ्चति करोति न हि पुद्गलानि कर्माणि ।

जीवः पुद्गलमध्ये वर्तमानोपि सर्वकालेषु ॥ ९३ ॥

न खल्वात्मनः पुद्गलपरिणामः कर्म परद्रव्योपादानहानशून्यत्वात्, यो हि यस्य परि-

रागादिपरिणामस्य तदेव तस्य रागादिपरिणामरूपं निश्चयेन भावकर्म भण्यते । कस्मात् ।  
तप्तायःपिण्डवत्तेनात्मना प्राप्यत्वाद्वाप्यत्वादिति । पुग्गलदब्बमयाणं ण दु कत्ता सब्ब-  
भावाणं चिद्रूपात्मनो विलक्षणानां पुद्गलद्रव्यमयानां न तु कर्ता सर्वभावानां ज्ञानावरणादिद्रव्यक-  
र्मपर्यायाणामिति । ततो ज्ञायते जीवस्य रागादिस्वपरिणाम एव कर्म तस्यैव स कर्तेति ॥ ९२ ॥  
अथात्मनः कथं द्रव्यकर्मरूपपरिणामः कर्म न स्यादिति प्रश्नसमाधानं ददाति;—गेण्हदि  
णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पुग्गलाणि कम्माणि जीवो यथा निर्विकल्पसमाधिरतः

(करनेवाला) [ हि ] निश्चयसे [ भवति ] होता है । [ तु ] और [ पुद्गलद्रव्य-  
मयानां ] पुद्गलद्रव्यमयी [ सर्वभावानां ] सब द्रव्यकर्मशरीरादिभावोंका [कर्ता]  
करनेवाला [ न ] नहीं है ॥ भावार्थ—जीवद्रव्य अपने परिणामका कर्ता है क्योंकि  
वे परिणाम जीवके स्वभाव हैं जीवमें उस भावरूप होनेकी शक्ति है; इसकारण परि-  
णाम कार्य है । उसकार्यको स्वाधीन होके करता हुआ आत्मा कर्ता होता है । और जो  
आत्माकर कियाजावे वह परिणामरूपकार्य सो आत्माका कर्म है । यही आत्माके परि-  
णामपरिणामीभावरूप कर्ताकर्मभाव है । आत्मा द्रव्यकर्मादि पुद्गलीकभावोंका कर्ता  
नहीं है क्योंकि वे परद्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके उन भावोंरूप होनेकी शक्तिका  
अभाव है । इसलिये उन पुद्गलीकभावोंका अकर्ता हुआ यह आत्मा अकर्ता है, क्योंकि  
वे भाव आत्माकर नहीं किये जाते हैं इसीकारण वे आत्माके कर्म नहीं हैं । उनभावोंके  
कर्ताकर्मभाव पुद्गलका ही है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गलपरिणाम आत्माके कर्म  
नहीं हैं ॥ ९२ ॥ आगे आत्माका पुद्गलपरिणाम कर्म किसतरह नहीं है यह संदेह दूर  
करते हैं;—[ जीवः ] आत्मा [ सर्वकालेषु ] सदाकाल [ पुद्गलमध्ये ] पुद्गलके  
धीचमें एक क्षेत्रावगाहकर [ प्रवर्तमानः अपि ] मौजूद है तौभी [ पुद्गलानि कर्मा-  
णि ] पुद्गलीक द्रव्यकर्मादिकोंको [ नैव गृह्णाति ] न तो ग्रहण करता है और  
[ न मुञ्चति ] न छोड़ता है तथा [ हि ] निश्चयसे [ न करोति ] करता भी

यथा यदा नवघनाम्बुभूमिसंयोगेन परिणमति तदान्ये पुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यैः  
शाद्वलशिलीन्द्रशक्रगोपादिभावैः परिणमन्ते, तथा यदायमात्मा रागद्वेषवशीकृतः शुभाशु-  
भभावेन परिणमति तदा अन्ये योगद्वारेण प्रविशन्तः कर्मपुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचि-  
त्र्यैर्ज्ञानावरणादिभावैः परिणमन्ते । अतः स्वभावकृतं कर्मणां वैचित्र्यं न पुनरात्मकृतम् ॥९५॥

अथैक एव आत्मा बन्ध इति विभावयति;—

सपदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरागदोसेहिं ।

कम्मरजेहिं सिलिट्ठो बंधोत्ति परूविदो समये ॥ ९६ ॥

दिभावेहिं भूमेर्मेघजलसंयोगे सति यथाऽन्ये पुद्गलाः स्वयमेव हरितपल्लवादिभावैः परिणमन्ति  
तथा स्वयमेव नानाभेदपरिणतैर्मूलोत्तरप्रकृतिरूपज्ञानावरणादिभावैः पर्यायैरिति । ततो ज्ञायते  
ज्ञानावरणादि कर्मणामुत्पत्तिः स्वयंकृता तथा मूलोत्तरप्रकृतिरूपवैचित्र्यमपि, न च जीवकृतमिति  
॥ ९५ ॥ अथ पूर्वोक्तज्ञानावरणादिप्रकृतीनां जघन्योत्कृष्टानुभागस्वरूपं प्रतिपादयति;—

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसम्मि ।

विवरीदो दु जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥ १ ॥

अणुभागो अनुभागः फलदानशक्तिविशेषः भवतीति क्रियाध्याहारः । कथंभूतो भवति ?

तिव्वो तीव्रः प्रकृष्टः परामृतसमानः । कासां सम्बन्धी । सुहपयडीणं सद्देहादिशुभप्रकृ-  
तीनाम् । कया कारणभूतया ? विसोही तीव्रधर्मानुरागरूपविशुद्ध्या असुहाण संकिलेसम्मि  
असद्देहाद्यशुभप्रकृतीनां तु मिथ्यात्वादिरूपतीव्रसंक्षेपे सति तीव्रो हालाहलविपसदृशो भवति ।  
विवरीदो दु जहण्णो विपरीतस्तु जघन्यो गुडनिम्बरूपो भवति । जघन्यविशुद्ध्या जघन्यसंक्षे-  
पेन च मध्यमविशुद्ध्या मध्यमसंक्षेपेन तु शुभाशुभप्रकृतीनां खण्डशर्करारूपः काजीरविपस्थपथेति ।  
एवंविधो जघन्यमध्यमोत्कृष्टरूपोऽनुभागः कासां सम्बन्धी भवति ? सव्वपयडीणं मूलोत्तरप्रकृतिर-  
हितनिजपरमानन्दैकस्वभावलक्षणसर्वप्रकारोपादेयभूतपरमात्मद्रव्याङ्घ्रिज्ञानां हेयभूतानां सर्वमूलो-  
त्तरकर्मप्रकृतीनामिति कर्मशक्तिस्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥१॥ अथाभेदनयेन बन्धकारणभूतरागादिपरिण-

मर्जः ] वह कर्मरूपी धूली [ प्रविशति ] इस आत्माके योगोंद्वारा प्रवेश करती  
है ॥ भावार्थ—जैसे वर्षाकालमें नवीन मेघोंका जल जिससमय भूमीके साथ संयोग  
करता है तब उस मेघजलका निमित्त पाके अन्य पुद्गल अपनेसे ही निजशक्तिकर हरी  
दूब ( घास ) और हरे पीलेआदि पत्र अंकुर वगैरः भावोंस्वरूप परिणमन करते हैं  
उसीप्रकार जब यह आत्मा शुभ अशुभरूप रागद्वेषभावोंसे परिणत होता है तब इसके  
शुभाशुभभावोंका निमित्त पाकर पुद्गलद्रव्य अपने आप नानाप्रकार ज्ञानावरणादि आठ  
कर्मरूप परिणमता है । इसकारण यह सिद्धांत हुआ कि पुद्गलद्रव्य स्वभावसे ही क-  
र्मोंकी विचित्रताका कर्ता है आत्मा कर्ता नहीं होसकता ॥ ९५ ॥ आगे अभेदनयकी  
विषयासे आत्माको एक बंधस्वरूप दिखलाते हैं;—[ स आत्मा ] वह संसारी जीव

च्यपरिणामस्य स्वपरिणाममात्रस्य द्रव्यत्वभूतत्वात्केवलस्य कलयन् कर्तृत्वं तदेव तस्य स्व-  
परिणामं निमित्तमात्रीकृत्योपात्तकर्मपरिणामाभिः पुद्गलधूलीभिर्विशिष्टावगाहरूपेणोपादीयते  
कदाचिन्मुच्यते च ॥ ९४ ॥

अथ किंकृतं पुद्गलकर्मणां वैचित्र्यमिति निरूपयति;—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो ।

तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं ॥ ९५ ॥

परिणमति यदात्मा शुभेऽशुभे रागद्वेषयुतः ।

तं प्रविशति कर्मरजो ज्ञानावरणादिभावैः ॥ ९५ ॥

अस्ति खत्वात्मनः शुभाशुभपरिणामकाले स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यकर्मपुद्गलपरिणामः  
नवधनाम्बुनो भूमिसंयोगपरिणामकाले समुपात्तवैचित्र्यान्यपुद्गलपरिणामवत् । तथाहि—

लीभिः कर्तृभूताभिः कदाचित्पूर्वोक्तविभावपरिणामकाले । न केवलमादीयते विमुंचदे विशेषेण  
मुच्यते त्यज्यते ताभिः कर्मधूलीभिः कदाचित्पूर्वोक्तकारणसमयसारपरिणतिकाले । एतावता  
किमुक्तं भवति—अशुद्धपरिणामेन वध्यते शुद्धपरिणामेन मुच्यत इति ॥ ९४ ॥ अथ यथा द्र-  
व्यकर्माणि निश्चयेन स्वयमेवोत्पद्यन्ते तथा ज्ञानावरणादिविचित्रभेदरूपेणापि स्वयमेव परिणम-  
न्तीति कथयति;—परिणमदि जदा अप्पा परिणमति यदात्मा समस्तशुभाशुभपरद्रव्यविषये  
परमोपेक्षालक्षणं शुद्धोपयोगपरिणामं मुक्त्वा यदायमात्मा परिणमति । क ? सुहम्मिह असुहम्मिह  
शुभेऽशुभे वा परिणामे । कथंभूतः सन् । रागदोसजुदो रागद्वेषयुक्तः परिणत इत्यर्थः ।  
तं पविसदि कम्मरयं तदा काले तत्प्रसिद्धं कर्मरजः प्रविशति । कैः क्त्वा ? णाणावरणा-

पाकर ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणत हुई पुद्गलकर्मरूपी धूलिसे [ उपादीयते ] ग्रहण  
किया जाता है और [ कदाचित् ] किसी कालमें अपना रस ( फल ) देकर [ वि-  
मुच्यते ] छोड़ दिया जाता है ॥ भावार्थ—संसार अवस्थामें यह जीव परद्रव्य सं-  
योगके निमित्तसे अशुद्धोपयोगभावोंस्वरूप परिणमन करनेसे उनका कर्ता है परिणमनकी  
अपेक्षा अशुद्धोपयोगभाव आत्माके परिणाम हैं इसकारण उनका तो कर्ता होसकता है  
लेकिन पुद्गलकर्मका कर्ता नहीं होता । उस आत्माके अशुद्धपरिणामोंका निमित्त पाकर  
पुद्गलद्रव्य अपनी निजशक्तिसे ज्ञानावरणादिकर्मरूप परिणमन करके आत्मासे एक  
क्षेत्रावगाह होके अपने आप बँधते हैं फिर अपना रस ( फल ) देकर आपही क्षयको  
प्राप्त होजाते हैं । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गलकर्मका आत्मा ग्रहण करनेवाला  
वा छोड़नेवाला नहीं है, पुद्गलही पुद्गलको ग्रहण करता है तथा छोड़ता है ॥ ९४ ॥  
[ यदा ] जिससमय [ आत्मा ] यह आत्मा [ रागद्वेषयुतः ] रागद्वेष भावोंस-  
हित हुआ [ शुभे अशुभे ] शुभ अशुभ भावोंमें [ परिणमति ] परिणमन करता  
है उसी समय [ ज्ञानावरणादिभावैः ] ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप होकर [ तत्क-

यथा यदा नवघनाम्बुभूमिसंयोगेन परिणमति तदान्ये पुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यैः  
शाद्वलशिलीन्द्रशक्रगोपादिभावैः परिणमन्ते, तथा यदायमात्मा रागद्वेषवशीकृतः शुभाशु-  
भभावेन परिणमति तदा अन्ये योगद्वारेण प्रविशन्तः कर्मपुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचि-  
त्र्यैर्ज्ञानावरणादिभावैः परिणमन्ते । अतः स्वभावकृतं कर्मणां वैचित्र्यं न पुनरात्मकृतम् ॥ ९५ ॥

अथैक एव आत्मा बन्ध इति विभावयति;—

सपदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरागदोसेहिं ।

कम्मरजेहिं सिलिट्ठो बंधोत्ति परूविदो समये ॥ ९६ ॥

दिभावेहिं भूमेर्मेवजलसंयोगे सति यथाऽन्ये पुद्गलाः स्वयमेव हरितपल्लवादिभावैः परिणमन्ति  
तथा स्वयमेव नानाभेदपरिणतैर्मूलोत्तरप्रकृतिरूपज्ञानावरणादिभावैः पर्यायैरिति । ततो ज्ञायते  
ज्ञानावरणादि कर्मणामुत्पत्तिः स्वयंकृता तथा मूलोत्तरप्रकृतिरूपवैचित्र्यमपि, न च जीवकृतमिति  
॥ ९५ ॥ अथ पूर्वोक्तज्ञानावरणादिप्रकृतीनां जघन्योत्कृष्टानुभागस्वरूपं प्रतिपादयति;—

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसम्मि ।

विवरीदो दु जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं ॥ १ ॥

अणुभागो अनुभागः फलदानशक्तिविशेषः भवतीति क्रियाध्याहारः । कथंभूतो भवति ?  
तिव्वो तीव्रः प्रकृष्टः परामृतसमानः । कासां सम्बन्धी । सुहपयडीणं सद्देहादिशुभप्रकृ-  
तीनाम् । कया कारणभूतया ? विसोही तीव्रधर्मानुरागरूपविशुद्ध्या असुहाण संकिलेसम्मि  
असद्देहाद्यशुभप्रकृतीनां तु मिथ्यात्वादिरूपतीव्रसंक्षेपे सति तीव्रो हालाहलविपसदृशो भवति ।  
विवरीदो दु जहण्णो विपरीतस्तु जघन्यो गुडनिम्बरूपो भवति । जघन्यविशुद्ध्या जघन्यसंक्षे-  
शेन च मध्यमविशुद्ध्या मध्यमसंक्षेपेन तु शुभाशुभप्रकृतीनां खण्डशर्करारूपः काजीरविपस्थपश्चेति ।  
एवंविधो जघन्यमध्यमोत्कृष्टरूपोऽनुभागः कासां सम्बन्धी भवति ? सव्वपयडीणं मूलोत्तरप्रकृतिर-  
हितनिजपरमानन्दैकस्वभावलक्षणसर्वप्रकारोपादेयभूतपरमात्मद्रव्याद्विज्ञानां हेयभूतानां सर्वमूलो-  
त्तरकर्मप्रकृतीनामिति कर्मशक्तिस्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥ अथाभेदनयेन बन्धकारणभूतरागादिपरिण-

र्मरजः ] वह कर्मरूपी धूली [ प्रविशति ] इस आत्माके योगोंद्वारा प्रवेश करती  
है ॥ भावार्थ—जैसे वर्षाऋतुमें नवीन मेघोंका जल जिससमय भूमीके साथ संयोग  
करता है तब उस मेघजलका निमित्त पाके अन्य पुद्गल अपनेसे ही निजशक्तिकर हरी  
दूब ( घास ) और हरे पीलेआदि पत्र अंकुर वगैरः भावोंस्वरूप परिणमन करते हैं  
उसीप्रकार जब यह आत्मा शुभ अशुभरूप रागद्वेषभावोंसे परिणत होता है तब इसके  
शुभाशुभभावोंका निमित्त पाकर पुद्गलद्रव्य अपने आप नानाप्रकार ज्ञानावरणादि आठ  
कर्मरूप परिणमता है । इसकारण यह सिद्धांत हुआ कि पुद्गलद्रव्य स्वभावसे ही क-  
र्मोंकी विचित्रताका कर्ता है आत्मा कर्ता नहीं होसकता ॥ ९५ ॥ आगे अभेदनयकी  
विनक्षासे आत्माको एक बंधस्वरूप दिखलाते हैं;—[ स आत्मा ] वह संसारी जीव



व्यपरिणामस्य स्वपरिणाममात्रस्य द्रव्यत्वभूतत्वात्केवलस्य कलयन् कर्तृत्वं तदेव तस्य स्व-  
परिणामं निमित्तमात्रीकृत्योपात्तकर्मपरिणामाभिः पुद्गलधूलीभिर्विशिष्टावगाहरूपेणोपादीयते  
कदाचिन्मुच्यते च ॥ ९४ ॥

अथ किंकृतं पुद्गलकर्मणां वैचित्र्यमिति निरूपयति;—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो ।

तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं ॥ ९५ ॥

परिणमति यदात्मा शुभेऽशुभे रागद्वेषयुतः ।

तं प्रविशति कर्मरजो ज्ञानावरणादिभावैः ॥ ९५ ॥

अस्ति खत्वात्मनः शुभाशुभपरिणामकाले स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यकर्मपुद्गलपरिणामः  
नवघनाम्बुनो भूमिसंयोगपरिणामकाले समुपात्तवैचित्र्यान्यपुद्गलपरिणामवत् । तथाहि—

लीभिः कर्तृभूताभिः कदाचित्पूर्वोक्तविभावपरिणामकाले । न केवलमादीयते विमुंचदे विशेषेण  
मुच्यते त्यज्यते ताभिः कर्मधूलीभिः कदाचित्पूर्वोक्तकारणसमयसारपरिणतिकाले । एतावता  
किमुक्तं भवति—अशुद्धपरिणामेन वच्यते शुद्धपरिणामेन मुच्यत इति ॥ ९४ ॥ अथ यथा द्र-  
व्यकर्माणि निश्चयेन स्वयमेवोत्पद्यन्ते तथा ज्ञानावरणादिविचित्रभेदरूपेणापि स्वयमेव परिणम-  
न्तीति कथयति;—परिणमदि जदा अप्पा परिणमति यदात्मा समस्तशुभाशुभपरद्रव्यविषये  
परमोपेक्षालक्षणं शुद्धोपयोगपरिणामं मुक्त्वा यदायमात्मा परिणमति । क ? सुहम्मि असुहम्मि  
शुभेऽशुभे वा परिणामे । कथंभूतः सन् । रागदोसजुदो रागद्वेषयुक्तः परिणत इत्यर्थः ।  
तं पविसदि कम्मरयं तदा काले तत्प्रसिद्धं कर्मरजः प्रविशति । कैः कृत्वा ? णाणावरणा-

पाकर ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणत हुई पुद्गलकर्मरूपी धूलिसे [ उपादीयते ] ग्रहण  
क्रिया जाता है और [ कदाचित् ] किसी कालमें अपना रस ( फल ) देकर [ वि-  
मुच्यते ] छोड़ दिया जाता है ॥ भावार्थ—संसार अवस्थामें यह जीव परद्रव्य सं-  
योगके निमित्तसे अशुद्धोपयोगभावोंस्वरूप परिणमन करनेसे उनका कर्ता है परिणमनकी  
अपेक्षा अशुद्धोपयोगभाव आत्माके परिणाम हैं इसकारण उनका तो कर्ता होसकता है  
लेकिन पुद्गलकर्मका कर्ता नहीं होता । उस आत्माके अशुद्धपरिणामोंका निमित्त पाकर  
पुद्गलद्रव्य अपनी निजशक्तिसे ज्ञानावरणादिकर्मरूप परिणमन करके आत्मासे एक  
क्षेत्रावगाह होके अपने आप बँधते हैं फिर अपना रस ( फल ) देकर आपही क्षयको  
प्राप्त होजाते हैं । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गलकर्मका आत्मा ग्रहण करनेवाला  
वा छोड़नेवाला नहीं है, पुद्गलही पुद्गलको ग्रहण करता है तथा छोड़ता है ॥ ९४ ॥  
[ यदा ] जिससमय [ आत्मा ] यह आत्मा [ रागद्वेषयुतः ] रागद्वेष भावोंस-  
हित हुआ [ शुभे अशुभे ] शुभ अशुभ भावोंमें [ परिणमति ] परिणमन करता  
है उसी समय [ ज्ञानावरणादिभावैः ] ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप होकर [ तत्क-

एष बन्धसमासो जीवानां निश्चयेन निर्दिष्टः ।

अर्हद्विर्यतीनां व्यवहारोऽन्यथा भणितः ॥ ९७ ॥

रागपरिणाम एवात्मनः कर्म, स एव पुण्यपापद्वैतं । रागादिपरिणामस्यैवात्मा कर्ता तस्यैवोपादाता हाता चेत्येष शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको निश्चयनयः । यस्तु पुद्गलपरिणाम आत्मनः कर्म स एव पुण्यपापद्वैतं पुद्गलपरिणामस्यात्मा कर्ता तस्योपादाता हाता चेति सोऽअशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको व्यवहारनयः । उभावप्येतौ स्तः, शुद्धाशुद्धत्वेनोभयथा

कर्तृभूतैः । अरहंतेहिं अर्हद्विः निर्दोषिपरमात्मभिः । केपाम् ? जदीणं जितेन्द्रियत्वेन शुद्धात्मस्वरूपे यत्नपराणां गणधरदेवादियतीनाम् । व्यवहारो द्रव्यकर्मरूपव्यवहारबन्धः अण्णहा भणितो निश्चयनयापेक्ष्यान्यथा व्यवहारनयेनेति भणितः । किंच रागादीनेवात्मा करोति तानेव भुङ्क्ते चेति निश्चयनयलक्षणमिदम् । अयं तु निश्चयनयो द्रव्यकर्मबन्धप्रतिपादकासद्भूतव्यवहारनयापेक्षया शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको विवक्षितनिश्चयनयस्तथैवाशुद्धनिश्चयश्च भण्यते । द्रव्यकर्माप्यात्मा करोति भुङ्क्ते चेत्यशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकासद्भूतव्यवहारनयो भण्यते । इदं नयद्वयं तावदस्ति । किंत्वत्र निश्चयनय उपादेयः न चासद्भूतव्यवहारः । ननु रागादीनात्मा करोति भुङ्क्ते चेत्येवं लक्षणो निश्चयनयो व्याख्यातः स कथमुपादेयो भवति ? परिहारमाह—रागादीनेवात्मा करोति न च द्रव्यकर्मागादय एव बन्धकारणमिति यदा जानाति जीवस्तदा रागद्वेषादिविकल्प-

पूर्वोक्तप्रकार यह रागपरिणाम ही [ निश्चयेन ] निश्चयसे बंध है ऐसा [ बन्धसमासः ] बंधका संक्षेप कथन (सारांश) [ यतीनां ] मुनीश्वरोंको [ निर्दिष्टः ] दिखलाया है । [ अन्यथा ] इस निश्चय बंधसे जुदा जो जीवोंके एक क्षेत्रावगाहरूप द्रव्यकर्मबंध है वह [ व्यवहारः ] उपचारसे बंध [ भणितः ] भगवंतने कहा है ॥  
**भावार्थः**—जो पुण्य पापस्वरूप आत्माका रागपरिणाम है वह उसका कर्म है उसीका आत्मा कर्ता है उस राग परिणामको अपने ही परिणामनसे ग्रहण करता है और अपनेहीसे छोड़ता है । इसकारण यह शुद्धद्रव्यका कहनेवाला निश्चयनय जानना । तथा जो द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म है उसका वह कर्ता है और ग्रहण करनेवाला तथा छोड़नेवाला है सो यह अशुद्धद्रव्यका कहनेवाला व्यवहार नय है । इसप्रकार निश्चय व्यवहार नयकर शुद्धाशुद्धरूप बंधका स्वरूप दो प्रकार दिखलाया है । परंतु इतना विशेष है कि निश्चय नय ग्रहण करने योग्य है क्योंकि वह केवल द्रव्यके परिणामको दिखलाता है और साध्यरूप शुद्धद्रव्यके शुद्धस्वरूपको दिखलाता है । तथा व्यवहारनय परद्रव्यके परिणामको आत्मपरिणाम दिखलानेसे द्रव्यको अशुद्ध दिखलाता है इसकारण ग्रहण योग्य नहीं है । यहांपर कोई प्रश्न करै “कि तुमने रागपरिणामको निश्चयबंध कहा और इसीको शुद्धद्रव्यका कथन तथा ग्रहण योग्य कहा है सो क्या कारण है ? यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि यह रागपरिणाम तो द्रव्यकी अशुद्धता करता है वह ग्रहण योग्य कैसे होस-

सप्रदेशः स आत्मा कपायितो मोहरागद्वेषैः ।

कर्मरजोभिः श्लिष्टो बन्ध इति प्ररूपितः समये ॥ ९६ ॥

यथात्र सप्रदेशत्वे सति लोभादिभिः कपायितत्वात् मक्षिष्टरङ्गादिभिरुपश्लिष्टमेकं रक्तं दृष्टं वासः, तथात्मापि सप्रदेशत्वे सति काले मोहरागद्वेषैः कपायितत्वात् कर्मरजोभिरुपश्लिष्ट एको बन्धो द्रष्टव्यः शुद्धद्रव्यविषयत्वान्निश्चयस्य ॥ ९६ ॥

अथ निश्चयव्यवहारविरोधं दर्शयति;—

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छएण णिद्धिट्ठो ।

अरहंतेहिं जदीणं वचहारो अण्णहा भणिदो ॥ ९७ ॥

तात्पर्यैव बन्धो भण्यत इत्यावेदयति;—सपदेशो लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वात्सप्रदेशत्वात् वद्भवति सो अप्पा स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा । पुनरपि किं विशिष्टः ? कसायदो कपायितः परिणतो रजितः । कैः । मोहरागदोसेहिं निर्मोहस्वशुद्धात्मतत्त्वभावनाप्रतिबन्धिर्मोहरागद्वेषैः । पुनश्च किरूपः । कम्मरएहि सिलिट्ठो कर्मरजोभिः श्लिष्टः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलरजोभिः संश्लिष्टो बद्धः । बंधोत्ति परूविदो अभेदेनात्मैव बन्ध इति प्ररूपितः । क? समये परमागमे । अत्रेदं भणितं भवति—यथा बद्धं लोभादिद्रव्यैः कपायितं रजितं सन्मञ्जीष्ठादिरङ्गद्रव्येण रजितं स-दभेदेन रक्तमित्युच्यते तथा वस्त्रस्थानीय आत्मा लोभादिद्रव्यस्थानीयमोहरागद्वेषैः कपायितो रजितः परिणतो मञ्जीष्ठास्थानीयकर्मपुद्गलैः संश्लिष्टः संबद्धः सन् भेदेऽप्यभेदोपचारलक्षणेनासद्भूतव्यवहारेण बन्ध इत्यभिधीयते । कस्मात् ? अशुद्धद्रव्यनिरूपणार्थविषयत्वादसद्भूतव्यवहारनयस्येति ॥ ९६ ॥ एसो बंधसमासो एष बन्धसमासः एष बहुधा पूर्वोक्तप्रकारो रागादिपरिणतिरूपो बन्धसंक्षेपः केयां सम्बन्धी । जीवाणं जीवानाम् । णिच्छयेण णिद्धिट्ठो निश्चयेन निर्दिष्टः कथितः । कैः

[ सप्रदेशः ] लोकमात्र असंख्यात प्रदेशोंवाला होनेसे [ मोहरागद्वेषैः कपायितः ] मोह राग द्वेषरूप रंगसे कसैला हुआ [ कर्मरजोभिः ] ज्ञानावरणादि आठकर्मरूपी धूलिसमूहकर [ श्लिष्टः ] बंधा हुआ है [ इति ] इसप्रकार [ समये ] जैन सिद्धान्तमें [ बंधः ] बंधरूप [ प्ररूपितः ] कहागया है ॥ भावार्थः—जैसे बद्ध प्रदेशोंवाला होनेसे लोभ फिटकरी आदिकर कसैला होता है फिर वही बद्ध मंजीठादि रंगसे लाल होजाता है उसीप्रकार यह आत्मा प्रदेशी है इसलिये बंधके समयमें रागद्वेषमोहभावोंकर रंजित हुआ कसैला होता है तब कर्मरूपी धूलिकर बंध अवस्थाको प्राप्त होता है । इसकारण रागद्वेषभावोंरूप परिणमनं निश्चयबंध है कर्मवर्गणारूप व्यवहारबंध है । निश्चयनय तो केवल द्रव्यके परिणामको दिखलाता है और व्यवहारनय अन्यद्रव्यके परिणामको दिखलाता है ॥ ९६ ॥ आगे निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयोंका आपसमें अविरोध दिखलाते हैं;—[ अर्हद्भिः ] अर्हत्तदेवने [ जीवानां ] संसारी जीवोंका [ एषः ]

एष बन्धसमाप्तो जीवानां निश्चयेन निर्दिष्टः ।

अर्हद्विर्यतीनां व्यवहारोऽन्यथा भणितः ॥ ९७ ॥

रागपरिणाम एवात्मनः कर्म, स एव पुण्यपापद्वैतं । रागादिपरिणामस्यैवात्मा कर्ता तस्यैवोपादाता हाता चेत्येव शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको निश्चयनयः । यस्तु पुद्गलपरिणाम आत्मनः कर्म स एव पुण्यपापद्वैतं पुद्गलपरिणामस्यात्मा कर्ता तस्योपादाता हाता चेति सोऽयं शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको व्यवहारनयः । उभावप्येतौ स्तः, शुद्धाशुद्धत्वेनोभयथा

कर्तृभूतैः । अरहंतेहिं अर्हद्विः निर्दोषिपरमात्मभिः । केपाम् ? जदीणं जितेन्द्रियत्वेन शुद्धात्मस्वरूपे यत्नपराणां गणधरदेवादियतीनाम् । व्यवहारो द्रव्यकर्मरूपव्यवहारबन्धः अण्णहा भणिदो निश्चयनयापेक्षयान्यथा व्यवहारनयेनेति भणितः । किंच रागादीनेवात्मा करोति तानेव मुञ्जे चेति निश्चयनयलक्षणमिदम् । अयं तु निश्चयनयो द्रव्यकर्मबन्धप्रतिपादकासद्भूतव्यवहारनयापेक्षया शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको विवक्षितनिश्चयनयस्तथैवाशुद्धनिश्चयश्च भण्यते । द्रव्यकर्माप्यात्मा करोति मुञ्जे चेत्यशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकासद्भूतव्यवहारनयो भण्यते । इदं नपदयं तावदस्ति । किंत्वत्र निश्चयनय उपादेयः न चासद्भूतव्यवहारः । ननु रागादीनात्मा करोति मुञ्जे चेत्येवं लक्षणो निश्चयनयो व्याख्यातः स कथमुपादेयो भवति ? परिहारमाह—रागादीनेवात्मा करोति न च द्रव्यकर्मरागादय एव बन्धकारणमिति यदा जानाति जीवस्तदा रागद्वेषादिविकल्प-

पूर्वोक्तप्रकार यह रागपरिणाम ही [ निश्चयेन ] निश्चयसे बंध है ऐसा [ बन्धसमाप्तः ] बंधका संक्षेप कथन (सारांश) [ यतीनां ] सुनीश्वरोंको [ निर्दिष्टः ] दिखलाया है । [ अन्यथा ] इस निश्चय बंधसे जुदा जो जीवोंके एक क्षेत्रावगाहरूप द्रव्यकर्मबंध है वह [ व्यवहारः ] उपचारसे बंध [ भणितः ] भगवंतने कहा है ॥ भावार्थः—जो पुन्य पापस्वरूप आत्माका रागपरिणाम है वह उसका कर्म है उसीका आत्मा कर्ता है उस राग परिणामको अपने ही परिणामनसे ग्रहण करता है और अपनेहीसे छोड़ता है । इसकारण यह शुद्धद्रव्यका कहनेवाला निश्चयनय जानना । तथा जो द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म है उसका वह कर्ता है और ग्रहण करनेवाला तथा छोड़नेवाला है सो यह अशुद्धद्रव्यका कहनेवाला व्यवहार नय है । इसप्रकार निश्चय व्यवहार नयकर शुद्धाशुद्धरूप बंधका स्वरूप दो प्रकार दिखलाया है । परंतु इतना विशेष है कि निश्चय नय ग्रहण करने योग्य है क्योंकि वह केवल द्रव्यके परिणामको दिखलाता है और साध्यरूप शुद्धद्रव्यके शुद्धस्वरूपको दिखलाता है । तथा व्यवहारनय परद्रव्यके परिणामको आत्मपरिणाम दिखलानेसे द्रव्यको अशुद्ध दिखलाता है इसकारण ग्रहण योग्य नहीं है । यहांपर कोई प्रश्न करे “कि तुमने रागपरिणामको निश्चयबंध कहा और इसीको शुद्धद्रव्यका कथन तथा ग्रहण योग्य कहा है सो क्या कारण है ? यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि यह रागपरिणाम तो द्रव्यकी अशुद्धता करता है वह ग्रहण योग्य कैसे होस-

द्रव्यस्य प्रतीयमानत्वात् । किन्त्वत्र निश्चयनयः साधकतमत्वादुपात्तः, साध्यस्य हि शुद्ध-  
त्वेन द्रव्यस्य शुद्धत्वघोतकत्वान्निश्चयनय एव साधकतमो न पुनरशुद्धघोतको व्यव-  
हारनयः ॥ ९७ ॥

अथाशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एवेत्यावेदयति;—

ण जहदि जो दु ममत्तिं अहं ममेदत्ति देहद्विणेषु ।

सो सामण्णं चत्ता पडिवण्णो होइ उम्मग्गं ॥ ९८ ॥

न जहाति यस्तु ममतामहं ममेदमिति देहद्विणेषु ।

स श्रामण्यं त्यक्त्वा प्रतिपन्नो भवत्युन्मार्गम् ॥ ९८ ॥

यो हि नाम शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकनिश्चयनयनिरपेक्षोशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारन-

जालत्यागेन रागादिविनाशार्थं निजशुद्धात्मानं भावयति । ततश्च रागादिविनाशो भवति । रागा-  
दिविनाशे चात्मा शुद्धो भवति । ततः परंपरया शुद्धात्मसाधकत्वादयमशुद्धनयोऽप्युपचारेण  
शुद्धनयो भण्यते निश्चयनयो न भण्यते तथैवोपादेयो भण्यते इत्यभिप्रायः ॥ ९७ ॥ एवमात्मा  
स्वपरिणामानामेव कर्त्ता न च द्रव्यकर्मणामिति कथनमुच्यतया गाथासप्तकेन षष्ठस्थले गतम् ।  
इति 'अरसमरूवं' इत्यादिगाथात्रयेण पूर्वं शुद्धात्मव्याख्याने कृते सति शिष्येण यदुक्तममूर्त्तस्या-  
त्मनो मूर्त्तकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति तत्परिहारार्थं नयविभागेन बन्धसमर्थनमुच्यतयैको-  
नविंशतिगाथाभिः स्थलपट्टेन तृतीयविशेषान्तराधिकारः समाप्तः । अतः परं द्वादश गाथाप-  
र्यन्तं चतुर्भिः स्थलैः शुद्धात्मानुभूतिकक्षणविशेषभेदभावनारूपचूलिका व्याख्यानं करोति । तत्र  
शुद्धात्मनो भावना प्रधानत्वेन 'ण चयदि जो दु ममत्तिं' इत्यादिपाठक्रमेण प्रथमस्थले गाथा चतु-  
ष्टयम् । तदनन्तरं शुद्धात्मोपलम्भभावनाफलेन दर्शनमोहप्रन्थिविनाशस्तथैव चारित्रमोहप्रन्थिवि-  
नाशः क्रमेण तदुभयविनाशो भवतीति कथनमुच्यत्वेन 'जो एवं जाणित्ता' इत्यादि द्वितीय-

कता है" तो उसका समाधान इस तरहसे है कि रागपरिणाम तो आत्माकी अशुद्धताको  
ही करता है इसमें कुछभी संदेह नहीं परन्तु इस जगह दूसरी विवक्षासे कथन  
किया गया है । वही दिखलाते हैं—यहांपर शुद्धद्रव्यका कथन एक द्रव्याश्रित  
परिणामकी अपेक्षासे जानना चाहिये और अशुद्धकथन अन्यद्रव्यका परिणाम  
अन्यद्रव्यमें लगाना जानना । तथा जो इस जगह बंधरूप निश्चय नय ग्रहण  
योग्य कहा है सो इसलिये कि यह जीव अपनेही परिणामोंसे अपनेको बंधा हुआ सम-  
झेगा तो आपहीकर अपनेको छुड़ावेगा । इसकारण ऐसी समझ होनेकेलिये ग्रहण  
योग्य कहा है । और जो अपनेको दूसरेसे बंधा हुआ मानेगा तो कभी छूटनेका उपाय  
नहीं करेगा । इसलिये अपनेसे अपनेको बंधा मानता हुआ ही रागादि परिणामोंका  
त्यागी होके अपने वीतराग परिणामको धारण करेगा । इसी अपेक्षासे निश्चयबंध शुद्ध-  
द्रव्यका साधक कहा गया है ॥ ९७ ॥ आगे अशुद्धनयसे अशुद्धात्माका लाभ होता है

योपजनितमोहः सन् अहमिदं ममेदमित्यात्मात्मीयत्वेन देहद्रविणादौ परद्रव्ये ममत्वं न जहाति स खलु शुद्धात्मपरिणतिरूपं श्रामण्याख्यं मार्गं दूरादपहायाशुद्धात्मपरिणतिरूप-मुन्मार्गमेव प्रतिपद्यते । अतोऽवधार्यते अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव ॥ ९८ ॥

अथ शुद्धनयात् शुद्धात्मलाभ एवेत्यवधारयति;—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे सन्ति णाणमहमेक्को ।

इदि जो ज्ञायदि ज्ञाणे सो अप्पाणं ह्वदि ज्ञादा ॥ ९९ ॥

स्थले गाथात्रयम् । ततः परं केवल्लिध्यानोपचारकथनरूपेण 'णिहदवणवाइक्कम्मा' इत्यादि तृ-  
तीयस्थले गाथाद्वयम् । तदनन्तरं दर्शनाधिकारोपसंहारप्रधानत्वेन 'एवं जिणा जिणिंदा' इत्यादि  
चतुर्थस्थले गाथाद्वयम् । ततःपरं 'दंसणसंसुद्धाणं' इत्यादि नमस्कारगाथा चेति द्वादशगाथा-  
मिश्रतुर्थस्थले विशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका । अथाशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव भवती-  
त्युपदिशति;—ण चयदि जो दु ममत्तिं न त्यजति यस्तु ममतां ममकाराहंकारादिसमस्तवि-  
भावरहितसकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वरूपनिजात्मपदार्थनिश्चलानुभूतिलक्षणनिश्चयनयरहि-  
तत्वेन व्यवहारमोहितहृदयः सन् ममतां ममत्वभावं न त्यजति यः । केन रूपेण अहं ममेदंति  
अहं ममेदमिति । केपु विपयेपु ? देहद्रविणेषु देहद्रव्येषु देहे देहोऽहमिति परद्रव्येषु ममेदमिति  
सो सामण्यं चत्ता पडिवण्णो होदि उम्मगं स श्रामण्यं त्यक्त्वा प्रतिपन्नो भवत्युन्मार्गं स  
पुरुषो जीवितमरणलाभालामसुखदुःखशत्रुमित्रनिन्दाप्रशंसादिपरममाध्यस्थ्यलक्षणं श्रामण्यं य-  
त्तित्वं चारित्रं दूरादपहाय तत्प्रतिपक्षभूतमुन्मार्गं मिध्यामार्गं प्रतिपन्नो भवति । उन्मार्गाच्च संसारं  
परिभ्रमति । ततः स्थितं अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव ॥९८॥ अथ शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभो भव-  
तीति निश्चिनोति;—णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति नाहं भवामि परेपाम् । न मे परे स-

यह दिखलाते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ देहद्रविणेषु ] शरीर तथा धनादिकमें  
[ अहं इदं ] मैं शरीरादिरूप हूं [ तु ] और [ मम इदं ] मेरे ये शरीर धनादिक  
हैं [ इति ] इसप्रकार [ ममता ] ममत्व बुद्धिको [ न जहाति ] नहीं छोड़ता  
है [ सः ] वह पुरुष [ श्रामण्यं ] समस्त परद्रव्यके त्यागरूप मुनिपदको [ त्यक्त्वा ]  
छोड़कर [ उन्मार्गं ] अशुद्धपरिणतिरूप विपरीतमार्गको [ प्रतिपन्नः भवति ]  
प्राप्त होता है ॥ भावार्थ—जो पुरुष शुद्धद्रव्यके दिखानेवाले निश्चयनयको छोड़कर  
अशुद्धद्रव्यके स्वरूपको कहता है और ऐसे व्यवहारनयकी सहायता लेकर मोही हुआ  
देह धनादिपरभावोंमें "ये मेरे मैं इन स्वरूप हूं" इसतरह ममताभावको धारण करता  
हुआ मोहको नहीं छोड़ता है वह पुरुष अशुद्धपरिणतिरूप हुआ मुनिपदको छोड़के वि-  
परीतमार्गपर चलनेवाला है । इससे यह निश्चय हुआ कि अशुद्धनयके ग्रहण करनेसे  
अशुद्धात्माका लाभ होता है ॥ ९८ ॥ आगे शुद्धनयसे शुद्ध आत्माका लाभ होता है  
यह कहते हैं;—[ अहं ] मैं शुद्धात्मा [ परेपां ] शरीरादि परद्रव्योंका [ न भ-

द्रव्यस्य प्रतीयमानत्वात् । किन्त्वत्र निश्चयनयः साधकतमत्वादुपात्तः, साध्यस्य हि शुद्ध-  
त्वेन द्रव्यस्य शुद्धत्वद्योतकत्वान्निश्चयनय एव साधकतमो न पुनरशुद्धद्योतको व्यव-  
हारनयः ॥ ९७ ॥

अथाशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एवेत्यावेदयति;—

ण जहदि जो दु ममत्तिं अहं ममेदत्ति देहद्विणेसु ।

सो सामण्णं चत्ता पडिवण्णो होइ उम्मग्गं ॥ ९८ ॥

न जहाति यस्तु ममतामहं ममेदमिति देहद्रविणेषु ।

स श्रामण्यं त्यक्त्वा प्रतिपन्नो भवत्युन्मार्गम् ॥ ९८ ॥

यो हि नाम शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकनिश्चयनयनिरपेक्षोशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारन-

जालस्यागेन रागादिविनाशार्थं निजशुद्धात्मानं भावयति । ततश्च रागादिविनाशो भवति । रागा-  
दिविनाशो चात्मा शुद्धो भवति । ततः परंपरया शुद्धात्मसाधकत्वादयमशुद्धनयोऽप्युपचारेण  
शुद्धनयो भण्यते निश्चयनयो न भण्यते तथैवोपादेयो भण्यते इत्यभिप्रायः ॥ ९७ ॥ एवमात्मा  
स्वपरिणामानामेव कर्त्ता न च द्रव्यकर्मणामिति कथनमुख्यतया गाथासप्तकेन पष्ठस्थलं गतम् ।  
इति 'अरसमरूवं' इत्यादिगाथात्रयेण पूर्वं शुद्धात्मव्याख्यानं कृते सति शिष्येण यदुक्तममूर्त्तस्या-  
त्मनो मूर्त्तकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति तत्परिहारार्थं नयविभागेन बन्धसमर्थनमुख्यतयैको-  
नविंशतिगाथाभिः स्थलपट्केन तृतीयविशेषान्तराधिकारः समाप्तः । अतः परं द्वादश गाथाप-  
र्यन्तं चतुर्भिः स्थलैः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणविशेषभेदभावनारूपचूलिका व्याख्यानं करोति । तत्र  
शुद्धात्मनो भावना प्रधानत्वेन 'ण चयदि जो दु ममत्तिं' इत्यादिपाठक्रमेण प्रथमस्थले गाथाचतु-  
ष्टयम् । तदनन्तरं शुद्धात्मोपलम्भभावनाफलेन दर्शनमोहप्रन्थिविनाशस्तथैव चारित्रमोहप्रन्थिवि-  
नाशः क्रमेण तदुभयविनाशो भवतीति कथनमुख्यत्वेन 'जो एवं जाणित्ता' इत्यादि द्वितीय-

फता है" तो उसका समाधान इस तरहसे है कि रागपरिणाम तो आत्माकी अशुद्धताको  
ही करता है इसमें कुछभी संदेह नहीं परंतु इस जगह दूसरी विवक्षासे कथन  
किया गया है । वही दिखलाते हैं—यहांपर शुद्धद्रव्यका कथन एक द्रव्याश्रित  
परिणामकी अपेक्षासे जानना चाहिये और अशुद्धकथन अन्यद्रव्यका परिणाम  
अन्यद्रव्यमें लगाना जानना । तथा जो इस जगह बंधरूप निश्चय नय ग्रहण  
योग्य कहा है सो इसलिये कि यह जीव अपनेही परिणामोंसे अपनेको बंधा हुआ सम-  
झेगा तो आपहीकर अपनेको छुड़ावेगा । इसकारण ऐसी समझ होनेकेलिये ग्रहण  
योग्य कहा है । और जो अपनेको दूसरेसे बंधा हुआ मानेगा तो कभी छूटनेका उपाय  
नहीं करेगा । इसलिये अपनेसे अपनेको बंधा मानता हुआ ही रागादि परिणामोंका  
त्यागी होके अपने वीतराग परिणामको धारण करेगा । इसी अपेक्षासे निश्चयबंध शुद्ध-  
द्रव्यका साधक कहा गया है ॥ ९७ ॥ आगे अशुद्धनयसे अशुद्धात्माका लाभ होता है

एवं ज्ञानात्मानं दर्शनभूतमतीन्द्रियमहार्थम् ।

ध्रुवमचलमनालम्बं मन्येऽहमात्मकं शुद्धम् ॥ १०० ॥

आत्मनो हि शुद्ध आत्मैव सदहेतुकत्वेनानाद्यनन्तत्वात् स्वतःसिद्धत्वाच्च ध्रुवो न किञ्च-  
नाप्यन्यत् शुद्धत्वं चात्मनः परद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चैकत्वात् । तच्च ज्ञानात्म-  
कत्वाद्दर्शनभूतत्वादतीन्द्रियमहार्थत्वादचलत्वादानालम्बत्वाच्च तत्र ज्ञानमेवात्मनि विप्रतः  
स्वयं दर्शनभूतस्य चातिशयपरद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वं । तथा प्रतिनि-  
यतस्पर्शरसगन्धवर्णगुणशब्दपर्यायग्राहीण्यनेकानीन्द्रियाण्यतिक्रम्य सर्वस्पर्शरसगन्धवर्ण-  
गुणशब्दपर्यायग्राहकस्यैकस्य सतोऽर्थस्येन्द्रियात्मकपरद्रव्यविभागेन स्पर्शादिग्रहणात्मकस्व-  
धर्माविभागेन चास्त्येकत्वं । तथा क्षणक्षयप्रवृत्तपरिच्छेद्यपर्यायग्रहणमोक्षणाभावेनाचलस्य

वत्वाच्छ्रुद्धात्मानमेव भावयेऽहमिति विचारयति;—मण्णे “मण्णे” इत्यादिपदखण्डनारूपेण व्या-  
ख्यानं क्रियते—मन्ये ध्यायामि सर्वप्रकारोपादेयत्वेन भावये । स कः । अहं कर्ता । कं कर्मता-  
पत्रं । अप्पगं सहजपरमाह्लादैकलक्षणनिजात्मानम् । किं विशिष्टम् ? सुद्धं रागादिसमस्तवि-  
भावरहितम् । पुनरपि किं विशिष्टम् ? ध्रुवं टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकत्वभावत्वेन ध्रुवमविनश्वरम् ।  
पुनरपि कथंभूतम् ? एवं गाणप्पाणं दंसणभूदं एवं बहुविधपूर्वाक्तप्रकारेणाखण्डैकज्ञानदर्श-  
नात्मकम् । पुनश्च किंरूपम् ? अइंदियं अतीन्द्रियं मूर्त्तविनश्वरानेकेन्द्रियरहितत्वेनामूर्त्ताविन-  
श्वरैकातीन्द्रियस्वभावम् । पुनश्च कीदृशम् ? महत्त्वं मोक्षलक्षणमहापुरुषार्थसाधकत्वान्महार्थम् ।  
पुनरपि किंस्वभावम् ? अचलं अतिचलचञ्चलमनोवाक्कायव्यापाररहितत्वेन स्वस्वरूपे निश्चलं  
स्थिरम् । पुनरपि किंविशिष्टम् ? अणालंबं स्वाधीनस्वद्रव्यत्वेन सालम्बनं भरितावस्थमपि समस्त-

[ एवं ] इसतरह [ आत्मानं ] आत्माको [ मन्ये ] मानता हूं कि आत्मा  
[ शुद्ध ] परभावोंसे रहित निर्मल है [ ध्रुवं ] निश्चल एक रूप है [ ज्ञानात्मानं ]  
ज्ञानस्वरूप है [ दर्शनभूतं ] दर्शनमयी है [ अतीन्द्रियमहार्थं ] अपने अतीं-  
द्रिय स्वभावसे सचका ज्ञाता महान् पदार्थ है [ अचलं ] अपने स्वरूपकर निश्चल है  
[ अनालम्बं ] परद्रव्यके आलंबन (सहायता)से रहित स्वाधीन है । इसप्रकार शुद्ध  
टङ्कोत्कीर्ण आत्माको अविनाशी वस्तु मानता हूं ॥ भावार्थ—आत्मा किसी कार-  
णसे उत्पन्न नहीं हुआ है इसलिये अनादि अनंत शुद्ध स्वतःसिद्ध अविनाशी है  
और दूसरी कोईभी वस्तु ध्रुव नहीं है । यह आत्मा अपने स्वभावकर एकस्वरूप  
है इसकारण शुद्ध है । यह अपने ज्ञानदर्शन गुणमयी है इसके परद्रव्यसे जुदापना  
है अपने धर्मसे जुदा नहीं है इसकारण एक है । निश्चयकर एक स्पर्शरसगंधवर्ण  
शब्दरूप विषयोंकी ग्रहण करनेवाली जो पांच इन्द्रियां हैं उनको त्यागकर अपने अखंड  
ज्ञानसे एक ही समय इन पांच विषयोंका ज्ञाता यह आत्मा महापदार्थ है, इसलिये  
इस आत्माको पांच विषयरूप परद्रव्यसे जुदापना है परंतु इनके जाननेरूप स्वभा-



नाहं भवामि परेषां न मे परे सन्ति ज्ञानमहमेकः ।

इति यो ध्यायति ध्यानेन स आत्मा भवति ध्याता ॥ ९९ ॥

यो हि नाम स्वविषयमात्रप्रवृत्ताशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारनयाविरोधमध्यस्थः शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकनिश्चयनयापहस्तितमोहः सन् नाहं परेषामस्मि न परे मे सन्तीति स्वपरयोः परस्परस्वस्वामिसंबन्धमुद्भूय शुद्धज्ञानमेवैकमहमित्यनात्मानमुत्सृज्यात्मानमेवात्मत्वेनोपादाय परद्रव्यव्यावृत्तत्वादात्मन्येवैकस्मिन्नग्रे चिन्तां निरुणद्धि स खल्वेकाग्रचिन्तानिरोधकस्तस्मिन्नेकाग्रचिन्तानिरोधसमये शुद्धात्मा स्यात् । अतोऽवधार्यते शुद्धनयादेव शुद्धात्मलाभः ॥ ९९ ॥

अथ ध्रुवत्वात् शुद्ध आत्मैवोपलम्भनीय इत्युपदिशति;—

एवं गाणप्पाणं दंसणभूदं अदिदिधमहत्थं ।

ध्रुवमचलमणालंबं मणणेऽहं अप्पगं सुद्धं ॥ १०० ॥

न्तीति समस्तचेतनाचेतनपरद्रव्येषु स्वस्वामिसम्बन्धं मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च स्वात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयनयवलेन पूर्वमपहाय निराकृत्य । पश्चात् किं करोति ? गाणमहमेको ज्ञानमहमेकः सकलविमलकेवलज्ञानमेवाहं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितत्वेनैकश्च । इदि जो ज्ञायदि इत्यनेन प्रकारेण योऽसौ ध्यायति चिन्तयति भावयति । क ? ज्ञाणे निजशुद्धात्मध्याने स्थितः सो अप्पाणं हवदि ज्ञादा स आत्मानं भवति ध्याता । स चिदानन्दैकस्वभावपरमात्मानं ध्याता भवतीति । ततश्च परमात्मध्यानात्तादृशमेव परमात्मानं लभते । तदपि कस्मात् ? उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात् । ततो ज्ञायते शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभ इति ॥ ९९ ॥ अथ ध्रु-

वामि ] नहीं हूं और [ परे मे ] शरीरादिक परद्रव्य मेरे [ न सन्ति ] नहीं हैं [ अहं ] मैं परमात्मा [ एकः ज्ञानं ] सकल परभावोंसे रहित एक ज्ञानस्वरूपही हूं [ इति ] इसप्रकार [ यः ] जो भेदविज्ञानी जीव [ ध्याने ] एकाग्रतारूप ध्यानमें समस्त ममत्व भावोंसे रहित हुआ [ ध्यायति ] अपने निजस्वरूपका चितवन करता है [ सः ] वही पुरुष [ आत्मानं ] आत्माके प्रति [ ध्याता ] ध्यानका करनेवाला [ भवति ] होता है ॥ भावार्थ—जो पुरुष व्यवहारनयके अशुद्ध कथनमें अविरोधी होके मध्यस्थ हुआ निश्चयनयके शुद्ध कथनसे मोहको दूर करता है अर्थात् शरीरादि परभाव मेरे नहीं हैं मैं इनका नहीं हूं ऐसी भावनाकर परमें स्वामीपनेकी बुद्धिको छोड़कर शुद्धज्ञानमात्र अपना स्वरूप जानके अंगीकार करता हुआ वाद्य वस्तुसे चित्तको हटाकर और समस्त संकल्पविकल्प त्यागके अन्य चिन्ताको रोकता है वह जीव एकाग्रतारूप ध्यानके समय शुद्धात्मा होता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि शुद्धनयके अवलम्बनसे शुद्धात्माका लाभ होता है ॥ ९९ ॥ आगे कहते हैं कि आत्मा अविनाशी ध्रुव शुद्ध वस्तु है इसकारण यही प्रहण योग्य है;—[ अहं ] भेदविज्ञानी मैं

एवं ज्ञानात्मानं दर्शनभूतमतीन्द्रियमहार्थम् ।

ध्रुवमचलमनालम्बं मन्येऽहमात्मकं शुद्धम् ॥ १०० ॥

आत्मनो हि शुद्ध आत्मैव सदहेतुकत्वेनानाघनन्तत्वात् स्वतःसिद्धत्वाच्च ध्रुवो न किञ्च-  
नाप्यन्यत् शुद्धत्वं चात्मनः परद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चैकत्वात् । तच्च ज्ञानात्म-  
कत्वाद्दर्शनभूतत्वादतीन्द्रियमहार्थत्वादचलत्वादनालम्बत्वाच्च तत्र ज्ञानमेवात्मनि धिभ्रतः  
स्वयं दर्शनभूतस्य चातिशयपरद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वं । तथा प्रतिनि-  
यतस्पर्शरसगन्धवर्णगुणशब्दपर्यायग्राहीण्यनेकानीन्द्रियाण्यतिक्रम्य सर्वस्पर्शरसगन्धवर्ण-  
गुणशब्दपर्यायग्राहकस्यैकस्य सतोऽर्थस्येन्द्रियात्मकपरद्रव्यविभागेन स्पर्शादिग्रहणात्मकस्व-  
धर्माविभागेन चास्त्येकत्वं । तथा क्षणक्षयप्रवृत्तपरिच्छेद्यपर्यायग्रहणमोक्षणाभावेनाचलस्य

वत्वाच्छुद्धात्मानमेव भावयेऽहमिति विचारयति;—मण्णे "मण्णे" इत्यादिपदखण्डनारूपेण व्या-  
ख्यानं क्रियते—मन्ये व्यायामि सर्वप्रकारोपादेयत्वेन भावये । स कः । अहं कर्ता । कं कर्मता-  
पन्नं । अप्पगं सहजपरमाह्लादैकलक्षणनिजात्मानम् । किं विशिष्टम् ? सुद्धं रागादिसमस्तवि-  
भावरहितम् । पुनरपि किं विशिष्टम् ? ध्रुवं टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन ध्रुवमविनश्वरम् ।  
पुनरपि कथंभूतम् ? एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं एवं बहुविधपूर्वोक्तप्रकारेणाखण्डैकज्ञानदर्श-  
नात्मकम् । पुनश्च किरूपम् ? अङ्गदियं अतीन्द्रियं मूर्त्तविनश्वरानेकेन्द्रियरहितत्वेनामूर्त्तविन-  
श्वरैकातीन्द्रियस्वभावम् । पुनश्च कीदृशम् ? महत्त्वं मोक्षलक्षणमहापुरुषार्थसाधकत्वान्महार्थम् ।  
पुनरपि किंस्वभावम् ? अचलं अतिचपलचञ्चलमनोवाकायव्यापाररहितत्वेन स्वस्वरूपे निश्चलं  
स्विरम् । पुनरपि किंविशिष्टम् ? अणालंबं स्वाधीनस्वद्रव्यत्वेन सालम्बनं भरितावस्थमपि समस्त-

[ एवं ] इसतरह [ आत्मानं ] आत्माको [ मन्ये ] मानता हूँ कि आत्मा  
[ शुद्धं ] परभावोंसे रहित निर्मल है [ ध्रुवं ] निश्चल एक रूप है [ ज्ञानात्मानं ]  
ज्ञानस्वरूप है [ दर्शनभूतं ] दर्शनमयी है [ अतीन्द्रियमहार्थं ] अपने अती-  
न्द्रिय स्वभावसे सबका ज्ञाता महान् पदार्थ है [ अचलं ] अपने स्वरूपकर निश्चल है  
[ अनालम्बं ] परद्रव्यके आलंबन (सहायता)से रहित स्वाधीन है । इसप्रकार शुद्ध  
टङ्कोत्कीर्ण आत्माको अविनाशी वस्तु मानता हूँ ॥ भावार्थ—आत्मा किसी कार-  
णसे उत्पन्न नहीं हुआ है इसलिये अनादि अनंत शुद्ध स्वतःसिद्ध अविनाशी है  
और दूसरी कोईभी वस्तु ध्रुव नहीं है । यह आत्मा अपने स्वभावकर एकस्वरूप  
है इसकारण शुद्ध है । यह अपने ज्ञानदर्शन गुणमयी है इसके परद्रव्यसे जुदापना  
है अपने धर्मसे जुदा नहीं है इसकारण एक है । निश्चयकर एक स्पर्शरसगंधवर्ण  
शब्दरूप विषयोंकी ग्रहण करनेवाली जो पांच इन्द्रियां हैं उनको त्यागकर अपने अखंड  
ज्ञानसे एक ही समय इन पांच विषयोंका ज्ञाता यह आत्मा महापदार्थ है, इसलिये  
इस आत्माको पांच विषयरूप परद्रव्यसे जुदापना है परंतु इनके जाननेरूप स्वभा-

परिच्छेद्यपर्यायात्मकपरद्रव्यविभागेन तत्प्रत्ययपरिच्छेदात्मकस्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वं तथा नित्यप्रवृत्तपरिच्छेद्यद्रव्यालम्बनाभावेनानालम्ब्यस्य परिच्छेद्यपरद्रव्यविभागेन तत्प्रत्यय-परिच्छेदात्मकस्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वं । एवं शुद्ध आत्मा चिन्मात्रशुद्धनयस्य तावन्मात्र-निरूपणात्मकत्वात् अयमेक एव च ध्रुवत्वादुपलब्धव्यः, किमन्यैरध्वनीनाङ्गसङ्गच्छमानाने-कमार्गपादपञ्चायास्थानीयैरधुवैः ॥ १०० ॥

अथाध्रुवत्वादात्मनोऽन्यत्रोपलभनीयमित्युपदिशति;—

देहा वा द्रविणा वा सुहृदुक्त्वा वाऽथ सत्तुमित्तजणा ।

जीवस्स ण संति ध्रुवा ध्रुवोवओगप्पगो अप्पा ॥ १०१ ॥

देहा वा द्रविणानि वा सुखदुःखे वाय शशुमित्रजनाः ।

जीवस्य न सन्ति ध्रुवा ध्रुव उपयोगात्मक आत्मा ॥ १०१ ॥

आत्मनो हि परद्रव्याविभागेन ; परद्रव्योपरज्यमानस्वधर्मविभागेन चाशुद्धत्वनिबन्धनं

पराधीनपरद्रव्यालम्बनरहितत्वेन निरालम्बनमित्यर्थः ॥ १०० ॥ अथात्मनः पृथग्भूतं देहादिक-मध्रुवत्वान्न भावनीयमित्याख्याति;—ण संति ध्रुवा ध्रुवा अविनश्वरा नित्या न सन्ति । कस्य ? जीवस्स जीवस्य । के ते ? देहा वा द्रविणा वा देहा वा द्रव्याणि वा सर्वप्रकार-शुचीभूतादेहरहितात्परमात्मनो विलक्षणा औदारिकादिपञ्चदेहास्तथैव च पञ्चेन्द्रियभोगो-पभोगसाधकानि परद्रव्याणि च । न केवलं देहादयो ध्रुवा न भवन्ति सुहृदुक्त्वा वा निर्वािकारपरमानन्दैकलक्षणस्वात्मोत्थसुखाभृतविलक्षणानि सांसारिकसुखदुःखानि वा । अथ

वसे जुदापना नहीं है इसलिये भी यह एक रूप है । इसीप्रकार यह आत्मा समयर विनाशीक ज्ञेयपदार्थोंके ग्रहण करनेवाला और त्यागनेवाला नहीं है अचल है इसकारण इसके ज्ञेयपर्यायरूप परद्रव्यसे जुदापना है उसके जाननेरूप भावसे जुदापना नहीं है इसलिये भी एक है । और अन्यभावसहित ज्ञेयपदार्थोंके अवलंबनका अभाव है यह आत्मा तो स्वाधीन है इसकारण इसके ज्ञेयपदार्थोंसे भिन्नपना है परंतु इनके जाननेरूप भावसे जुदापना नहीं है इससे भी एक रूप है । इसप्रकार अनेक परद्रव्योंके भेदसे अपनी एकताको नहीं छोड़ता है इसकारण शुद्धनयसे शुद्ध चिन्मात्र वस्तु है यही एक टंकोत्कीर्ण ध्रुव है और अंगीकार करने योग्य है । जैसे मार्गमें गमन करते हुए पथिक जनकों अनेक दृश्योंकी छाया विनाशीक और अध्रुव होती है उसीप्रकार इस आत्माके पर-द्रव्यके संबंधसे अनेक अध्रुवभाव उत्पन्न होते हैं उनसे कुछ साध्य [ इष्ट ] की सिद्धि नहीं होती । इसलिये एक नित्यस्वरूप यही अवलंबन योग्य है बाकी सब त्याज्य हैं ॥१००॥ आगे कहते हैं कि आत्मा ध्रुव है इसकारण इसके सिवाय अन्यवस्तुको अंगीकार करना योग्य नहीं है;—[ देहाः ] औदारिकादि पांच शरीर [ वा ] अथवा [ द्रविणानि ] घन घान्मादिक [ वा ] अथवा [ सुखदुःखे ] इष्ट अनिष्ट पंच-

न किंचनाप्यन्यदसद्भेतुमत्वेनाद्यन्तत्वात्परतः सिद्धत्वाच्च ध्रुवमस्ति । ध्रुव उपयोगात्मा शुद्ध आत्मैव । अतोऽध्रुवं शरीरादिकमुपलभ्यमानमपि नोपलभे शुद्धात्मानमुपलभे ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

अथैव शुद्धात्मोपलम्भात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो एवं जाणित्ता ज्ञादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा ।

सागाराणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं ॥ १०२ ॥

य एवं ज्ञात्वा ध्यायति परमात्मानं विशुद्धात्मा ।

साकारानाकारः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम् ॥ २०२ ॥

अमुना यथोदितेन विधिना शुद्धात्मानं ध्रुवमधिगच्छतस्तस्मिन्नेव प्रवृत्तेः शुद्धात्मत्वं

अहो भव्याः सत्तुमित्तजणा शत्रुमित्रादिभावरहितादात्मनो भिन्नाः शत्रुमित्रादि-जनाश्च । यद्येतत्सर्वमध्रुवं तर्हि किं ध्रुवमिति चेत्? ध्रुवो ध्रुवः शाश्वतः । स कः । अप्पा निजात्मा । किंविशिष्टः । उवओगप्पगो त्रैलोक्योदरविवरवात्त्रिकालविषयसमस्तद्रव्यगुणपर्याय-युगपत्परिच्छित्तिसमर्थकेवलज्ञानदर्शनोपयोगात्मक इति । एवमध्रुवत्वं ज्ञात्वा ध्रुवस्वभावे स्वात्मनि भावना कर्तव्येति तात्पर्यम् ॥ १०१ ॥ एवमशुद्धनयादशुद्धात्मलाभो भवतीति कथनेन प्रथमगाथा । शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभो भवतीति कथनेन द्वितीया । ध्रुवत्वादात्मैव भावनीय इति प्रतिपादनेन तृतीया । आत्मनोऽन्यदध्रुवं न भावनीयमिति कथनेन चतुर्थी चेति शुद्धात्मव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथैव पूर्वोक्तप्रकारेण शुद्धात्मोपलम्भे सति किं फलं भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह;—ज्ञादि ध्यायति जो यः कर्ता । कम्? अप्पगं निजात्मानम् । कथंभूतम्? परं परमानन्तज्ञानादिगुणाधारत्वात्परमुक्त-

न्द्रियविषयजन्य सुख दुःख [ वा अथ ] अथवा और [ शत्रुमित्रजनाः ] शत्रु मित्रआदिक लोक ये सभी संयोगजन्यपदार्थ [ जीवस्य ] आत्माके [ ध्रुवाः ] अविनाशी [ न सन्ति ] नहीं हैं, केवल [ उपयोगात्मकः ] ज्ञानदर्शनस्वरूप [ आत्मा ] शुद्धजीव [ ध्रुवः ] अविनाशी वस्तु है ॥ भावार्थ—जो शरीरादिक भाव हैं वे परद्रव्यसे तन्मयी हैं आत्मासे भिन्न हैं और अशुद्धताके कारण हैं । वे आत्माके कुछ नहीं लगते विनाशीक हैं । और जो यह आत्मा है वह अनादि अनंत है, उत्कृष्टसे उत्कृष्ट है, सदा सिद्धरूप है, ज्ञानदर्शनमयी है और एक ध्रुव है इसकारण मैं शरीरादि अध्रुव ( विनाशीक ) वस्तुको अंगीकार नहीं करता हूं शुद्ध आत्माको ही प्राप्त होता हूं ॥ १०१ ॥ आगे शुद्धात्माकी प्राप्तिसे क्या होता है यह कहते हैं; [ यः ] जो [ साकारः ] अणुव्रती श्रावक तथा [ अनाकारः ] मुनी-श्वर [ एवं ] पूर्वोक्तरीतिसे [ ज्ञात्वा ] स्वरूपको ध्रुव जानकर [ परमात्मानं ] सबसे उत्कृष्ट शुद्धात्माको [ ध्यायति ] एकाग्रपनेसे चिंतवन करता है [ सः ]

सात् । ततोऽनन्तशक्तिचिन्मात्रस्य परमस्यात्मन एकाग्रसंचेतनलक्षणं ध्यानं सात्, ततः साकारोपयुक्तस्य चाविशेषेणैकाग्रचेतनप्रसिद्धेरासंसारबद्धदृढतरमोहदुःखग्रन्थेरुद्धत्यनं सात् । अतः शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदः फलम् ॥ १०२ ॥

अथ मोहग्रन्थिभेदात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे ।

होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥ १०३ ॥

यो निहतमोहग्रन्थी रागप्रद्वेषौ क्षपयित्वा श्रामण्ये ।

भवेत् समसुखदुःखः स सौख्यमक्षयं लभते ॥ १०३ ॥

मोहग्रन्थिक्षपणाद्धि तन्मूलरागद्वेषक्षपणं ततः समसुखदुःखस्य परममाध्यस्थलक्षणं

ष्टम् । किञ्चत्वा पूर्वम् ? एवं जाणित्ता एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वात्मोपलम्भलक्षण-  
स्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा । कथंभूतः सन् ध्यायति ? विसुद्धप्पा ख्यातिपूजात्वाभादिसमल-  
मनोरथजाळरहितत्वेन विशुद्धात्मा सन् । पुनरपि कथंभूतः । सागारोऽणागारो सागारोऽ-  
नागारः । अथवा साकारानाकारः । सहाकारेण विकल्पेन वर्तते साकारो ज्ञानोपयोगः,  
अनाकारो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगस्ताम्यां युक्तः साकारानाकारः । अथवा साकारः सवि-  
कल्पो गृहस्थः अनाकारो निर्विकल्पस्तपोधनः अथवा सहाकारेण लिङ्गेन चिह्नेन वर्तते  
साकारो यतिः अनाकारश्चिह्नरहितो गृहस्थः । खवेदि सो मोहदुग्गंथिं य एवं गुणवि-  
शिष्टः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम् । मोह एव दुर्ग्रन्थिः शुद्धात्मरुचिप्रतिबन्धको दर्शनमोहस्तम् ।  
ततः स्थितमेतत्—आत्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिविनाश एव फलम् ॥ १०२ ॥ अथ दर्शन-  
मोहग्रन्थिभेदात्किं भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति;—जो णिहदमोहगंथी यः पूर्व-  
सूत्रोक्तप्रकारेण निहतदर्शनमोहग्रन्थिर्भूत्वा रागपदोसे खवीय निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूति-  
लक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चरित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ क्षपयित्वा । क ? सामण्णे

वह [ विशुद्धात्मा ] निर्मल आत्मा होता हुआ [ मोहदुर्ग्रन्थि ] मोहकी अना-  
दिकालकी विपरीतबुद्धिरूपी गांठको [ क्षपयति ] क्षीण ( नष्ट ) करता है ॥  
भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध अविनाशी आत्माके स्वभावको प्राप्त होता है अर्थात्  
उस स्वभावमें रमण करता है उसके शुद्धात्मभाव प्रगट होता है उसके बाद अनंत  
चैतन्यशक्तिसहित परमात्माका जाननेरूप एकाग्र ध्यान होता है इसलिये गृहस्थ  
अथवा मुनि यदि निश्चल होके स्वरूपको ध्यावे तो अनादि बंधवाली मोहकी गांठको  
खोल सकता है । इसकारण शुद्धात्माकी प्रात्रिका फल मोहकी गांठका खुलना है  
॥ १०२ ॥ आगे मोहगांठके खुलनेसे क्या होता है यह कहते हैं;—[ यः ] जो  
पुरुष [ निहतमोहग्रन्थिः ] मोहकी गांठको दूर करता हुआ [ श्रामण्ये ]  
यति अवस्थामें [ रागद्वेषौ ] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति [ क्षपयित्वा ]

श्रामण्ये भवनं ततोऽनाकुलत्वलक्षणाक्षयसौख्यलाभः । अतो मोहग्रन्थिभेदादक्षयसौख्यं फलम् ॥ १०३ ॥

अथैकाग्र्यसंचेतनलक्षणं ध्यानमशुद्धत्वमात्मनो नावहतीति निश्चिनोति;—

जो खविदमोहकलुसो विसयविरक्तो मणो णिरुंभित्ता ।

समवट्टिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि धादा ॥ १०४ ॥

यः क्षपितमोहकलुपो विषयविरक्तो मनो निरुध्य ।

समवस्थितः स्वभावे स आत्मानं भवति ध्याता ॥ १०४ ॥

आत्मनो हि परिक्षपितमोहकलुपस्य तन्मूलपरद्रव्यप्रवृत्त्यभावाद्विषयविरक्तत्वं स्यात्, ततोऽधिकरणभूतद्रव्यान्तराभावादुदधिमध्यप्रवृत्तैकपोतपतत्रिण इव अनन्यशरणस्य मनसो

स्वभावलक्षणे श्रामण्ये । पुनरपि किं कृत्वा । होज्जं भूत्वा । किंविशिष्टः । समसुखदुःखो निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमसुखानुभवेन सांसारिकसुखदुःखोत्पन्नहर्षविपादरहितत्वात्समसुखदुःखः । सो सोक्खं अक्खयं लहदि स एव गुणविशिष्टो भेदज्ञानी सौख्यमक्षयं लभते । ततो ज्ञायते दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहसंज्ञरागद्वेषविनाश-तश्च सुखदुःखमाध्यस्थ्यलक्षणश्रामण्येऽवस्थानं तेनाक्षयसुखलाभो भवतीति ॥ १०३ ॥

अथ निजशुद्धात्मैकाग्र्यलक्षणध्यानमात्मनोऽत्यन्तविशुद्धिं करोतीत्यावेदयति;—जो खविदमोह-कलुसो यः क्षपितमोहकलुपः मोहो दर्शनमोहः कलुपश्चारित्रमोहः पूर्वसूत्रद्वयकथितक्रमेण क्षपितौ मोहकलुपौ येन स भवति क्षपितमोहकलुपः । पुनरपि किंविशिष्टः । विसयविरक्तो मोहकलुपरहितस्वात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखसुधारसात्त्वादवलेन कलुपमोहोदयजनितविषयसुखा-काङ्क्षारहितत्वाद्विषयविरक्तः । पुनरपि कथंभूतः? समवट्टिदो सम्यगवस्थितः । क? सहावे निजपरमात्मद्रव्ये स्वभावे । किंकृत्वा पूर्वं? मणो णिरुंभित्ता विषयकपायोत्पन्नविकल्पजाल-

छोड़कर [ समसुखदुःखः ] सुख दुःखमें समानदृष्टिवाला [ भवेत् ] होता है [ सः ] वह समबुद्धि पुरुष [ अक्षयं सौख्यं ] अविनाशी अतीन्द्रिय आत्मीक मोक्षसुखको [ लभते ] पाता है ॥ भावार्थ—इस मोहकी गांठके खुलनेसे आत्माके राग द्वेषका नाश होता है और जहांपर राग द्वेषका अभाव है वहीं सुखदुः-खमें समान भाव होते हैं तथा वहां ही आकुलतारहित स्वाधीन आत्मीक सुख अवश्य होता है । इसकारण मोहकी गांठके खुलनेसे अविनाशीक सुख होनेरूप ही फल होता है ॥ १०३ ॥ आगे एकाग्रतासे निश्चल स्वरूपका अनुभव करनेवाला ध्यान आत्माकी अशुद्धताको दूर करता है यह कहते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ क्षपितमोहकलुपः ] मोहरूप मैलको क्षय करता हुआ तथा [ विषयविरक्तः ] परद्रव्यरूप इष्ट अनिष्ट इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त हुआ [ मनः निरुध्य ] चंचल चित्तको वाह्य विषयोंसे

स्यात् । ततोऽनन्तशक्तिचिन्मात्रस्य परमस्यात्मन एकाग्रसंचेतनलक्षणं ध्यानं स्यात्, ततः साकारोपयुक्तस्य चाविशेषैकैकाग्रचेतनप्रसिद्धैरासंसारवद्धृदतरमोहदुर्ग्रन्थेरुद्बन्धनं स्यात् । अतः शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदः फलम् ॥ १०२ ॥

अथ मोहग्रन्थिभेदात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे ।

होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥ १०३ ॥

यो निहतमोहग्रन्थी रागप्रद्वेषौ क्षपयित्वा श्रामण्ये ।

भवेत् समसुखदुःखः स सौख्यमक्षयं लभते ॥ १०३ ॥

मोहग्रन्थिक्षपणाद्धि तन्मूलरागद्वेषक्षपणं ततः समसुखदुःखस्य परममाध्यस्थलक्षणो

ष्टम् । किञ्चत्वा पूर्वम् ? एवं जाणित्ता एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वात्मोपलम्भलक्षण-  
स्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा । कथंभूतः सन् ध्यायति ? विसुद्धप्पा ह्यातिपूजालाभादिसमस्त-  
मनोरथजालरहितत्वेन विशुद्धात्मा सन् । पुनरपि कथंभूतः । सागारोऽणागारो सागारोऽ-  
नागारः । अथवा साकारानाकारः । सहाकारेण विकल्पेन वर्तते साकारो ज्ञानोपयोगः,  
अनाकारो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगस्ताभ्यां युक्तः साकारानाकारः । अथवा साकारः सवि-  
कल्पो गृहस्थः अनाकारो निर्विकल्पस्तपोधनः अथवा सहाकारेण लिङ्गेन चिहेन वर्तते  
साकारो यतिः अनाकारश्चिहरहितो गृहस्थः । खवेदिं सो मोहदुर्ग्रन्थिं य एवं गुणवि-  
शिष्टः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम् । मोह एव दुर्ग्रन्थिः शुद्धात्मरुचिप्रतिबन्धको दर्शनमोहस्तम् ।  
ततः स्थितमेतत्—आत्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिविनाश एव फलम् ॥ १०२ ॥ अथ दर्शन-  
मोहग्रन्थिभेदात्किं भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति;—जो णिहदमोहगंठी यः पूर्व-  
सूत्रोक्तप्रकारेण निहतदर्शनमोहग्रन्थिर्भूत्वा रागपदोसे खवीय निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूति-  
लक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चरित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ क्षपयित्वा । कः ? सामण्णे

वह [ विशुद्धात्मा ] निर्मल आत्मा होता हुआ [ मोहदुर्ग्रन्थि ] मोहकी अना-  
दिकालकी विपरीतबुद्धिरूपी गांठको [ क्षपयति ] क्षीण ( नष्ट ) करता है ॥  
भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध अविनाशी आत्माके स्वभावको प्राप्त होता है अर्थात्  
उस स्वभावमें रमण करता है उसके शुद्धात्मभाव प्रगट होता है उसके बाद अनंत  
चैतन्यशक्तिसहित परमात्माका जाननेरूप एकाग्र ध्यान होता है इसलिये गृहस्थ  
अथवा मुनि यदि निश्चल होके स्वरूपको ध्यावे तो अनादि बंधवाली मोहकी गांठको  
खोल सकता है । इसकारण शुद्धात्माकी प्राप्तिका फल मोहकी गांठका सुलना है  
॥ १०२ ॥ आगे मोहगांठके सुलनेसे क्या होता है यह कहते हैं;—[ यः ] जो  
पुरुष [ निहतमोहग्रन्थिः ] मोहकी गांठको दूर करता हुआ [ श्रामण्ये ]  
यति अवस्थामें [ रागद्वेषौ ] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति अप्रीतिभावको [ क्षपयित्वा ],

श्रामण्ये भवनं ततोऽनाकुलत्वलक्षणाक्षयसौख्यलाभः । अतो मोहग्रन्थिभेदादक्षयसौख्यं  
फलम् ॥ १०३ ॥

अथैकाग्र्यसंचेतनलक्षणं ध्यानमशुद्धत्वमात्मनो नावहतीति निश्चिनोति;—

जो खविदमोहकलुसो विसयविरक्तो मणो णिरुंभित्ता ।

समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि धादा ॥ १०४ ॥

यः क्षपितमोहकलुपो विषयविरक्तो मनो निरुध्य ।

समवस्थितः स्वभावे स आत्मानं भवति ध्याता ॥ १०४ ॥

आत्मनो हि परिक्षपितमोहकलुपस्य तन्मूलपरद्रव्यप्रवृत्त्यभावाद्विषयविरक्तत्वं स्यात्,  
ततोऽधिकरणभूतद्रव्यान्तराभावादुदधिमध्यप्रवृत्तैकपोतपतत्रिण इव अनन्यशरणस्य मनसो

स्वभावलक्षणे श्रामण्ये । पुनरपि किं कृत्वा । होज्जं भूत्वा । किंविशिष्टः । समसुखदुःखो  
निजशुद्धात्मसंविचित्तिसमुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमसुखानुभवेन सांसारिकसुखदुःखो-  
त्पन्नहर्षविपादरहितत्वात्समसुखदुःखः । सो सोक्खं अक्खयं लहदि स एवं गुणवि-  
शिष्टो भेदज्ञानी सौख्यमक्षयं लभते । ततो ज्ञायते दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहसंज्ञारागद्वेषविनाश-  
तथ सुखदुःखमाध्यस्थलक्षणश्रामण्येऽवस्थानं तेनाक्षयसुखलाभो भवतीति ॥ १०३ ॥  
अथ निजशुद्धात्मैकाग्र्यलक्षणध्यानमात्मनोऽत्यन्तविशुद्धिं करोतीत्यावेदयति;—जो खविदमोह-  
कलुसो यः क्षपितमोहकलुपः मोहो दर्शनमोहः कलुपश्चारित्रमोहः पूर्वसूत्रद्वयकथितक्रमेण  
क्षपितौ मोहकलुपौ येन स भवति क्षपितमोहकलुपः । पुनरपि किंविशिष्टः । विसयविरक्तो  
मोहकलुपरहितत्वात्मसंविचित्तिसमुत्पन्नसुखसुधारसास्वादवलेन कलुपमोहोदयजनितविषयसुखा-  
काङ्क्षारहितत्वाद्विषयविरक्तः । पुनरपि कथंभूतः ? समवट्ठिदो सम्यगवस्थितः । क ? सहावे  
निजपरमात्मद्रव्ये स्वभावे । किंकृत्वा पूर्वं ? मणो णिरुंभित्ता विषयकपायोत्पन्नविकल्पजाल-

छोड़कर [ समसुखदुःखः ] सुख दुःखमें समानदृष्टिवाला [ भवेत् ] होता है  
[ सः ] वह समशुद्धि पुरुष [ अक्षयं सौख्यं ] अविनाशी अतीन्द्रिय आत्मीक  
मोक्षसुखको [ लभते ] पाता है ॥ भावार्थ—इस मोहकी गांठके खुलनेसे  
आत्माके राग द्वेषका नाश होता है और जहांपर राग द्वेषका अभाव है वहीं सुखदुः-  
खमें समान भाव होते हैं तथा वहां ही आकुलतारहित स्वाधीन आत्मीक सुख  
अवश्य होता है। इसकारण मोहकी गांठके खुलनेसे अविनाशीक सुख होनेरूप ही फल  
होता है ॥१०३॥ आगे एकाग्रतासे निश्चल स्वरूपका अनुभव करनेवाला ध्यान आत्माकी  
अशुद्धताको दूर करता है यह कहते हैं;—[यः] जो पुरुष [क्षपितमोहकलुपः]  
मोहरूप मैलको क्षय करता हुआ तथा [ विषयविरक्तः ] परद्रव्यरूप इष्ट अनिष्ट  
इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त हुआ [ मनः निरुध्य ] चंचल चित्तको बाह्य विषयोंसे



स्यात् । ततोऽनन्तशक्तिचिन्मात्रस्य परमस्यात्मन एकाग्रसंचेतनलक्षणं ध्यानं स्यात्, ततः साकारोपयुक्तस्य चाविशेषेणैकाग्रचेतनप्रसिद्धेरासंसारबद्धद्वतरमोहदुःखैरुद्धृत्यनं स्यात् । अतः शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदः फलम् ॥ १०२ ॥

अथ मोहग्रन्थिभेदात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे ।

होळं समसुहदुखो सो सौख्यं अक्खयं लहदि ॥ १०३ ॥

यो निहतमोहग्रन्थी रागप्रद्वेषौ क्षपयित्वा श्रामण्ये ।

भवेत् समसुखदुःखः स सौख्यमक्षयं लभते ॥ १०३ ॥

मोहग्रन्थिक्षपणाद्धि तन्मूलरागद्वेषक्षपणं ततः समसुखदुःखस्य परममाध्यस्थलक्षणं

धम् । किञ्चत्वा पूर्वम् ? एवं जाणित्ता एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वात्मोपलम्भलक्षण-  
स्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा । कथंभूतः सन् ध्यायति ? विसुद्धप्पा ख्यातिपूजालाभादिसमस्त-  
मनोरथजालरहितत्वेन विशुद्धात्मा सन् । पुनरपि कथंभूतः । सागारोऽणागारो सागारोऽ-  
नागारः । अथवा साकारानाकारः । सहाकारेण विकल्पेन वर्तते साकारो ज्ञानोपयोगः,  
अनाकारो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगस्ताभ्यां युक्तः साकारानाकारः । अथवा साकारः सवि-  
कल्पो गृहस्थः अनाकारो निर्विकल्पस्तपोधनः अथवा सहाकारेण लिङ्गेन चिह्नेन वर्तते  
साकारो यतिः अनाकारश्चिहरहितो गृहस्थः । खवेदि सो मोहदुग्गंथिं य एवं गुणवि-  
शिष्टः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम् । मोह एव दुर्ग्रन्थिः शुद्धात्मरुचिप्रतिबन्धको दर्शनमोहस्तम् ।  
ततः स्थितमेतत्—आत्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिविनाश एव फलम् ॥ १०२ ॥ अथ दर्शन-  
मोहग्रन्थिभेदात्किं भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति;—जो णिहदमोहगंथी यः पूर्व-  
सूत्रोक्तप्रकारेण निहतदर्शनमोहग्रन्थिर्भूत्वा रागपदोसे खवीय निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूति-  
लक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चरित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ क्षपयित्वा । क ? सामण्णे

वह [ विशुद्धात्मा ] निर्मल आत्मा होता हुआ [ मोहदुर्ग्रन्थि ] मोहकी अना-  
दिकालकी विपरीतबुद्धिरूपी गांठको [ क्षपयति ] क्षीण ( नष्ट ) करता है ॥  
भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध अविनाशी आत्माके स्वभावको प्राप्त होता है अर्थात्  
उस स्वभावमें रमण करता है उसके शुद्धात्मभाव प्रगट होता है उसके बाद अन्त  
चैतन्यशक्तिसहित परमात्माका जाननेरूप एकाग्र ध्यान होता है इसलिये गृहस्थ  
अथवा मुनि यदि निश्चल होके स्वरूपको ध्यावे तो अनादि बंधवाली मोहकी गांठको  
खोल सकता है । इसकारण शुद्धात्माकी प्राप्तिका फल मोहकी गांठका खुलना है  
॥ १०२ ॥ आगे मोहगांठके खुलनेसे क्या होता है यह कहते हैं;—[ यः ] जो  
पुरुष [ निहतमोहग्रन्थिः ] मोहकी गांठको दूर करता हुआ [ श्रामण्ये ]  
यति अवस्थामें [ रागद्वेषौ ] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति अप्रीतिभावको [ क्षपयित्वा ]

श्रामण्ये भवनं ततोऽनाकुलत्वलक्षणाक्षयसौख्यलाभः । अतो मोहग्रन्थिभेदादक्षयसौख्यं  
फलम् ॥ १०३ ॥

अथैकाग्र्यसंचेतनलक्षणं ध्यानमशुद्धत्वमात्मनो नावहतीति निश्चिनोति;—

जो खविदमोहकलुसो विसयविरक्तो मणो गिरुंभित्ता ।

समवद्विदो सहावे सो अप्पाणं हवदि धादा ॥ १०४ ॥

यः क्षपितमोहकलुपो विषयविरक्तो मनो निरुध्य ।

समवस्थितः स्वभावे स आत्मानं भवति ध्याता ॥ १०४ ॥

आत्मनो हि परिक्षपितमोहकलुपस्य तन्मूलपरद्रव्यप्रवृत्त्यभावाद्विषयविरक्तत्वं स्यात्,  
ततोऽधिकरणभूतद्रव्यान्तराभावादुदधिमध्यप्रवृत्तैकपोतपतत्रिण इव अनन्यशरणस्य मनसो

स्वभावलक्षणे श्रामण्ये । पुनरपि किं कृत्वा । होज्जं भूत्वा । किंविशिष्टः । समसुखदुःखो  
निजशुद्धात्मसंविचित्समुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमसुखानुभवेन सांसारिकसुखदुःखो-  
त्पन्नहर्षविपादरहितत्वात्समसुखदुःखः । सो सोक्खं अक्खयं लहदि स एवं गुणवि-  
शिष्टो भेदज्ञानी सौख्यमक्षयं लभते । ततो ज्ञायते दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहसंज्ञरागद्वेषविनाश-  
तश्च सुखदुःखमाध्यस्थलक्षणश्रामण्येऽवस्थानं तेनाक्षयसुखलाभो भवतीति ॥ १०३ ॥  
अथ निजशुद्धात्मैकाग्र्यलक्षणध्यानमात्मनोऽत्यन्तविशुद्धिं करोतीत्यावेदयति;—जो खविदमोह-  
कलुसो यः क्षपितमोहकलुपः मोहो दर्शनमोहः कलुपश्चारित्रमोहः पूर्वसूत्रद्वयकथितक्रमेण  
क्षपितौ मोहकलुपौ येन स भवति क्षपितमोहकलुपः । पुनरपि किंविशिष्टः । विसयविरक्तो  
मोहकलुपरहितत्वात्संविचित्समुत्पन्नसुखसुधारसात्त्वादवलेन कलुपमोहोदयजनितविषयसुखा-  
काह्वारहितत्वाद्विषयविरक्तः । पुनरपि कथंभूतः ? समवद्विदो सम्यगवस्थितः । क ? सहावे  
निजपरमात्मद्रव्ये स्वभावे । किंकृत्वा पूर्वं ? मणो गिरुंभित्ता विषयकपायोत्पन्नविकल्पजाल-

छोड़कर [ समसुखदुःखः ] सुख दुःखमें समानदृष्टिवाला [ भवेत् ] होता है  
[ सः ] वह समशुद्धि पुरुष [ अक्षयं सौख्यं ] अविनाशी अतीन्द्रिय आत्मीक  
मोक्षसुखको [ लभते ] पाता है ॥ भावार्थ—इस मोहकी गांठके खुलनेसे  
आत्माके राग द्वेषका नाश होता है और जहांपर राग द्वेषका अभाव है वहीं सुखदुः-  
खमें समान भाव होते हैं तथा वहां ही आकुलतारहित स्वाधीन आत्मीक सुख  
अवश्य होता है । इसकारण मोहकी गांठके खुलनेसे अविनाशीक सुख होनेरूप ही फल  
होता है ॥ १०३ ॥ आगे एकामतासे निश्चल स्वरूपका अनुभव करनेवाला ध्यान आत्माकी  
अशुद्धताको दूर करता है यह कहते हैं;—[यः] जो पुरुष [क्षपितमोहकलुपः]  
मोहरूप मैलको क्षय करता हुआ तथा [ विषयविरक्तः ] परद्रव्यरूप इष्ट अनिष्ट  
इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त हुआ [ मनः निरुध्य ] चंचल चित्तको बाह्य विषयोंसे

स्यात् । ततोऽनन्तशक्तिचिन्मात्रस्य परमस्यात्मन एकाग्रसंचेतनलक्षणं ध्यानं स्यात्, ततः साकारोपयुक्तस्य चाविशेषणैकाग्रचेतनप्रसिद्धेरासंसारबद्धदृढतरमोहदुर्ग्रन्थेरुद्धन्त्यं स्यात् । अतः शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदः फलम् ॥ १०२ ॥

अथ मोहग्रन्थिभेदात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे ।

होज्जं समसुखदुःखो सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥ १०३ ॥

यो निहतमोहग्रन्थी रागप्रदेषौ क्षपयित्वा श्रामण्ये ।

भवेत् समसुखदुःखः स सौख्यमक्षयं लभते ॥ १०३ ॥

मोहग्रन्थिक्षपणाद्धि तन्मूलरागद्वेषक्षपणं ततः समसुखदुःखस्य परममाध्यस्थलक्षणे

ष्टम् । किञ्चत्वा पूर्वम् ? एवं जाणित्ता एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वात्मोपलम्भलक्षण-  
स्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा । कथंभूतः सन् ध्यायति ? विसुद्धप्पा ख्यातिपूजालाभादिसमल-  
मनोरथजाजरहितत्वेन विशुद्धात्मा सन् । पुनरपि कथंभूतः । सागारोऽणागारो सागारोऽ-  
नागारः । अथवा साकारानाकारः । सहाकारेण विकल्पेन वर्तते साकारो ज्ञानोपयोगः,  
अनाकारो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगस्तान्म्यां युक्तः साकारानाकारः । अथवा साकारः सवि-  
कल्पो गृहस्थः अनाकारो निर्विकल्पस्तपोधनः अथवा सहाकारेण लिङ्गेन चिह्नेन वर्तते  
साकारो यतिः अनाकारोश्चिह्नरहितो गृहस्थः । खवेदि सो मोहदुर्ग्रन्थिं य एवं गुणवि-  
शिष्टः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम् । मोह एव दुर्ग्रन्थिः शुद्धात्मरुचिप्रतिबन्धको दर्शनमोहस्तम् ।  
ततः स्थितमेतत्—आत्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिविनाश एव फलम् ॥ १०२ ॥ अथ दर्शन-  
मोहग्रन्थिभेदात्किं भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति;—जो णिहदमोहगंठी यः पूर्व-  
सूत्रोक्तप्रकारेण निहतदर्शनमोहग्रन्थिर्भूत्वा रागपदोसे खवीय निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूति-  
लक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चरित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ क्षपयित्वा । क ? सामण्णे

यह [ विशुद्धात्मा ] निर्मल आत्मा होता हुआ [ मोहदुर्ग्रन्थि ] मोहकी अना-  
दिकालकी विपरीतबुद्धिरूपी गांठको [ क्षपयति ] क्षीण ( नष्ट ) करता है ॥  
भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध अविनाशी आत्माके स्वभावको प्राप्त होता है अर्थात्  
उस स्वभावमें रमण करता है उसके शुद्धात्मभाव प्रगट होता है उसके बाद अनंत  
चैतन्यशक्तिसहित परमात्माका जाननेरूप एकाम ध्यान होता है इसलिये गृहस्थ  
अथवा मुनि यदि निश्चल होके स्वरूपको ध्यावे तो अनादि बंधवाली मोहकी गांठको  
खोल सकता है । इसकारण शुद्धात्माकी प्राप्तिका फल मोहकी गांठका सुलना है  
॥ १०२ ॥ आगे मोहगांठके सुलनेसे क्या होता है यह कहते हैं;—[ यः ] जो  
पुरुष [ निहतमोहग्रन्थिः ] मोहकी गांठको दूर करता हुआ [ श्रामण्ये ]  
यदि अवस्थामें [ रागद्वेषौ ] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति अप्रीतिभावको [ क्षपयित्वा ]

श्रामण्ये भवनं ततोऽनाकुलत्वलक्षणाक्षयसौख्यलामः । अतो मोहग्रन्थिभेदादक्षयसौख्यं फलम् ॥ १०३ ॥

अथैकाग्र्यसंचेतनलक्षणं ध्यानमशुद्धत्वमात्मनो नावहतीति निश्चिनोति;—

जो खविदमोहकलुसो विसयविरक्तो मणो गिरुंभित्ता ।

समवट्टिदो सहावे सो अप्पाणं ह्वदि धादा ॥ १०४ ॥

यः क्षपितमोहकलुपो विषयविरक्तो मनो निरुध्य ।

समवस्थितः स्वभावे स आत्मानं भवति ध्याता ॥ १०४ ॥

आत्मनो हि परिक्षपितमोहकलुपस्य तन्मूलपरद्रव्यप्रवृत्त्यभावाद्विषयविरक्तत्वं स्यात्, ततोऽधिकरणमृतद्रव्यान्तराभावादुदधिमध्यप्रवृत्तैकपोतपतत्रिण इव अनन्यशरणस्य मनसो

स्वभावलक्षणे श्रामण्ये । पुनरपि किं कृत्वा । होर्जां भूत्वा । किंविशिष्टः । समसुहदुःखो निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नागादिविकल्पोपाधिरहितपरममुखानुभवेन सांसारिकमुखदुःखोत्पन्नहर्षविषादरहितत्वात्सममुखदुःखः । सो सोःखं अस्वखं लहदि स एव गुणविशिष्टो भेदज्ञानी सौख्यमक्षयं लभते । ततो ज्ञायते दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहसंज्ञरागद्वेषविनाशतश्च मुखदुःखमाव्यस्यलक्षणश्रामण्येऽवस्थानं तेनाक्षयमुखलाभो भवतीति ॥ १०३ ॥ अथ निजशुद्धात्मैकाग्र्यलक्षणध्यानमात्मनोऽत्यन्तविशुद्धिं करोतीत्यावेदयति;—जो खविदमोहकलुसो यः क्षपितमोहकलुपः मोहो दर्शनमोहः कलुपश्चारित्रमोहः पूर्वसूत्रद्वयकथितक्रमेण क्षपितो मोहकलुपो येन स भवति क्षपितमोहकलुपः । पुनरपि किंविशिष्टः । विसयविरक्तो मोहकलुपरहितस्वात्मसंवित्तिसमुत्पन्नमुखसुधारसास्यादवलेन कलुपमोहोदयजनितविषयमुखाकाङ्क्षारहितत्वाद्विषयविरक्तः । पुनरपि कथंभूतः? समवट्टिदो सम्यगवस्थितः । क? सहावे निजपरमात्मद्वये स्वभावे । किंकृत्वा पूर्वं? मणो गिरुंभित्ता विषयकपायोत्पन्नविकल्पजाड-

छोडकर [ समसुखदुःखः ] मुख दुःखमें समानदृष्टिवाला [ भवेत् ] होता है [ सः ] वह समबुद्धि पुरुष [ अक्षयं सौख्यं ] अविनाशी अतीन्द्रिय आत्मीक मोक्षमुखको [ लभते ] पाता है ॥ भावार्थ—इस मोहकी गांठके मुलनेसे आत्माके राग द्वेषका नाश होता है और जहांपर राग द्वेषका अभाव है वही मुखदुःखमें समान भाव होते हैं तथा वहां ही आकुलतारहित स्वाधीन आत्मीक मुख अवश्य होता है। इसकारण मोहकी गांठके मुलनेसे अविनाशीक मुख होनेरूप ही फल होता है ॥१०३॥ आगे एकाग्रतासे निश्चल स्वरूपका अनुभव करनेवाला ध्यान आत्माकी अशुद्धताको दूर करना है यह कहते हैं;—[यः] जो पुरुष [क्षपितमोहकलुपः] मोहरूप भंडको क्षय करता हुआ तथा [ विषयविरक्तः ] परद्रव्यरूप इष्ट अनिष्ट इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त हुआ [ मनः निरुध्य ] चंचल चित्तको घाह विषयोंसे

स्यात् । ततोऽनन्तशक्तिचिन्मात्रस्य परमस्यात्मन एकाग्रसंचेतनलक्षणं ध्यानं स्यात्, ततः साकारोपयुक्तस्य चाविशेषणैकाग्रचेतनप्रसिद्धेरासंसारवद्दृढतरमोहदुःखान्धेयैरुद्धन्येन स्यात् । अतः शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदः फलम् ॥ १०२ ॥

अथ मोहग्रन्थिभेदात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो णिहृदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे ।

होज्जं समसुहदुखो सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥ १०३ ॥

यो निहतमोहग्रन्थी रागप्रद्वेषौ क्षपयित्वा श्रामण्ये ।

भवेत् समसुखदुःखः स सौख्यमक्षयं लभते ॥ १०३ ॥

मोहग्रन्थिक्षपणाद्धि तन्मूलरागद्वेषक्षपणं ततः समसुखदुःखस्य परममाध्यस्थलक्षण-

धम् । किञ्चत्वा पूर्वम् ? एवं जाणित्ता एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वात्मोपलम्भलक्षण-  
स्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा । कथंभूतः सन् ध्यायति ? विमुद्धप्पा ख्यातिपूजाळाभादिसमस्त-  
मनोरथजाळरहितत्वेन विशुद्धात्मा सन् । पुनरपि कथंभूतः । सागारोऽणागारो सागारोऽ-  
नागारः । अथवा साकारानाकारः । सहाकारेण विकल्पेन वर्तते साकारो ज्ञानोपयोगः,  
अनाकारो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगस्ताम्यां युक्तः साकारानाकारः । अथवा साकारः सवि-  
कल्पो गृहस्थः अनाकारो निर्विकल्पस्तपोधनः अथवा सहाकारेण लिङ्गेन चिह्नेन वर्तते  
साकारो यतिः अनाकारश्चिहरहितो गृहस्थः । खवेदि सो मोहदुग्गंथिं य एवं गुणवि-  
शिष्टः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम् । मोह एव दुर्ग्रन्थिः शुद्धात्मरुचिप्रतिबन्धको दर्शनमोहस्तम् ।  
ततः स्थितमेतत्—आत्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिविनाश एव फलम् ॥ १०२ ॥ अथ दर्शन-  
मोहग्रन्थिभेदात्किं भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति;—जो णिहृदमोहगंठी यः पूर्व-  
सूत्रोक्तप्रकारेण निहतदर्शनमोहग्रन्थिर्भूत्वा रागपदोसे खवीय निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूति-  
लक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चरित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ क्षपयित्वा । क ? सामण्णे

वह [ विशुद्धात्मा ] निर्मल आत्मा होता हुआ [ मोहदुर्ग्रन्थि ] मोहकी अना-  
दिकालकी विपरीतबुद्धिरूपी गांठको [ क्षपयति ] क्षीण ( नष्ट ) करता है ॥  
भावार्थ—जो पुरुष शुद्ध अविनाशी आत्माके स्वभावको प्राप्त होता है अर्थात्  
उस स्वभावमें रमण करता है उसके शुद्धात्मभाव प्रगट होता है उसके बाद अनंत  
चैतन्यशक्तिसहित परमात्माका जाननेरूप एकाग्र ध्यान होता है इसलिये गृहस्थ  
अथवा मुनि यदि निश्चल होके स्वरूपको ध्यावे तो अनादि बंधवाली मोहकी गांठको  
खोल सकता है । इसकारण शुद्धात्माकी प्राप्तिका फल मोहकी गांठका खुलना है  
॥ १०२ ॥ आगे मोहगांठके शुद्धनेसे क्या होता है यह कहते हैं;—[ यः ] जो  
पुरुष [ निहतमोहग्रन्थिः ] मोहकी गांठको दूर करता हुआ [ श्रामण्ये ]  
यति अवस्थामें [ रागद्वेषौ ] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति अप्रीतिभावको [ क्षपयित्वा ]

अथोपलब्धशुद्धात्मा सकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमासूत्रयति;—

णिहृदघणघादिकम्मो पच्चक्खं सब्बभावतच्चण्हू ।

णेयंतगदो समणो ज्ञादि किमट्ठं असंदेहो ॥ १०५ ॥

निहृतघनघातिकर्मा प्रत्यक्षं सर्वभावतत्त्वज्ञः ।

ज्ञेयान्तगतः श्रमणो ध्यायति किमर्थमसंदेहः ॥ १०५ ॥

लोको हि मोहसद्भावे ज्ञानशक्तिप्रतिबन्धकसद्भावे च सतृष्णत्वादप्रत्यक्षार्थत्वानवच्छि-  
न्नविषयत्वाभ्यां चाभिलषितं जिज्ञासितं संदिग्धं चार्थं ध्यायन् दृष्टः, भगवान् सर्वज्ञस्तु

ध्यानव्याख्यानं तदन्यत्र कथितमस्ति ॥१०४॥ एवमात्मपरिज्ञानादर्शनमोहक्षपणं भवतीति कथन-  
रूपेण प्रथमगाथा दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहक्षपणं भवतीति कथनेन द्वितीया तदुभयक्षयेण  
मोक्षो भवतीति प्रतिपादनेन तृतीया चेत्यात्मोपलम्भफलकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं  
गतम् । अथोपलब्धशुद्धात्मतत्त्वसकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमाक्षेपद्वारेण पूर्वपक्षं  
वा करोति;—णिहृदघणघादिकम्मो पूर्वसूत्रोदितनिश्चलनिजपरमात्मतत्त्वपरिणतिरूपशुद्ध-  
ध्यानेन निहृतघनघातिकर्मा । पच्चक्खं सब्बभावतच्चण्हू प्रत्यक्षं यथा भवति तथा  
सर्वभावतत्त्वज्ञः सर्वपदार्थपरिज्ञातस्वरूपः णेयंतगदो ज्ञेयान्तगतः ज्ञेयभूतपदार्थानां परिच्छि-  
त्तरूपेण पारंगतः । एवं विशेषणत्रयविशिष्टः समणो जीवितमरणादिसमभावपरिणतात्म-  
स्वरूपः श्रमणो महाश्रमणः सर्वज्ञः ज्ञादि कमट्ठं ध्यायति कमर्थमिति प्रश्नः । अथवा  
कमर्थं ध्यायति न कमपीत्याक्षेपः । कथंभूतः सन् । असंदेहो असन्देहः संशयादिरहित  
इति । अयमत्रार्थः—यथा कोऽपि देवदत्तो विषयमुखनिमित्तं विद्याराधनाध्यानं करोति यदा  
विद्या सिद्धा भवति तत्फलभूतं विषयमुखं च सिद्धं भवति तदाराधनाध्यानं न करोति,  
तथायं भगवानपि केवलज्ञानविद्यानिमित्तं तत्फलभूतानन्तमुखनिमित्तं च पूर्वं छद्मस्थावस्थायं

परमशुद्धताका कारण है ॥१०४॥ आगे कहते हैं कि जिन केवली भगवानने शुद्धस्वरू-  
पको पाया है उनके भी ध्यान कहागया है सो वे केवली क्या ध्यान करते हैं ऐसा  
प्रश्न करते हैं;—[निहृतघनघातिकर्मा] जिन्होंने अत्यंतदृढबद्ध घातियाकर्माका नाश  
किया है, [प्रत्यक्षं] परोक्षतासे रहित साक्षात् [सर्वभावतत्त्वज्ञः] समस्त-  
पदार्थोंके जाननेवाले [ज्ञेयान्तगतः] जाननेयोग्य पदार्थोंके पारको प्राप्त [असंदेहः]  
संशय विमोह विभ्रमसे रहित ऐसे [श्रमणः] महामुनि केवली [किमर्थं]  
किसलिये [ध्यायति] ध्यान करते हैं ॥ भावार्थ—इस संसारमें मोहकर्मके  
उदयसे ज्ञानके घातक कर्मके उदयकर ये संसारी जीव तृष्णावन्त हैं इसलिये  
इन जीवोंको सकलपदार्थ प्रत्यक्ष नहीं होते और सबके अंतःप्रविष्ट इनका ज्ञान नहीं  
है इसकारण वांछित अर्थका ध्यान करते हैं इनके तो ध्यानका होना संभव है, परंतु  
केवली भगवान तो घातियाकर्मरहित हैं समस्त पदार्थोंके साक्षात्कार करनेवाले हैं और

निरोधः स्यात् । ततस्तन्मूलचञ्चलत्वविलयादनन्तसहजचैतन्यात्मनि स्वभावे समवस्थानं स्यात् । तच्च स्वरूपप्रवृत्तानाकुलैकाग्रसंचेतनत्वात् ध्यानमित्युपगीयते । अतः स्वभाववस्थानरूपत्वेन ध्यानमात्मनोऽनन्यत्वात् ध्यानमात्मैवेति ॥ १०४ ॥

रूपं मनो निरुध्य निश्चलं कृत्वा सौ अप्पाणं हवदि ज्ञादा स एवंगुणयुक्तः पुरुषः स्वात्मानं भवति ध्याता । तेनैव शुद्धात्मध्यानेनात्यन्तिकीं मुक्तिलक्षणां शुद्धिं लभत इति । ततः स्थितं शुद्धात्मध्यानाजीवो विशुद्धो भवतीति । किंच ध्यानेन किंलात्मा शुद्धो जातः तत्र विषये चतुर्विधव्याख्यानं क्रियते । तथाहि—ध्यानं ध्यानसन्तानस्तथैकध्यानचिन्ता ध्यानान्वयसूचनमिति । तत्रैकाग्र्यचिन्तानिरोधो ध्यानम् तच्च शुद्धाशुद्धरूपेण द्विधा । अथ ध्यानसन्तानः कथ्यते—यत्रान्तर्मुहूर्त्तपर्यन्तं ध्यानं तदनन्तरमन्तर्मुहूर्त्तपर्यन्तं तत्त्वचिन्ता पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तपर्यन्तं ध्यानम् पुनरपि ततः चिन्तेति प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानवदन्तर्मुहूर्त्तंऽन्तर्मुहूर्त्तं गते सति परावर्त्तनमस्ति स ध्यानसन्तानो भण्यते । स च धर्म्यध्यानसम्बन्धी । शुद्धध्यानं पुनरुपशमश्रेणिक्षपकश्रेण्यारोहणे भवति । तत्र चाल्पकालत्वात्परावर्त्तनरूपध्यानसन्तानो न घटते । इदानीं ध्यानचिन्ता कथ्यते—यत्र ध्यानसन्तानवद्भ्यानपरावर्त्तो नास्ति ध्यानसम्बन्धिनी चिन्तास्ति तत्र यद्यपि क्वापि काले ध्यानं करोति तथापि सा ध्यानचिन्ता भण्यते । अथ ध्यानान्वयसूचनं कथ्यते—यत्र ध्यानसामग्रीभूता द्वादशानुप्रेक्षा अन्यद्वा ध्यानसम्बन्धि संवेगवैराग्यवचनं व्याख्यानं वा तत् ध्यानान्वयसूचनमिति । अन्यथा वा चतुर्विधं ध्यानव्याख्यानं ध्याता ध्यानं फलं ध्येयमिति । अथवात्तरीन्द्रधर्म्यशुक्लविभेदेन चतुर्विधं

शोककर [स्वभावे समवस्थितः] अपने अनंत सहज चैतन्यस्वरूपमें [समवस्थितः] एकाग्र निश्चलभावमें ठहरता है [स] वह पुरुष [आत्मानं] टंकोत्कीर्ण निज शुद्ध जीवद्रव्यका [ध्याता] ध्यान करनेवाला [भवति] होता है ॥ भावार्थ—जब यह आत्मा निर्मोही होता है तब मोहके आधीन जो परद्रव्यमें प्रवृत्ति है उसका अभाव होता है और परप्रवृत्तिके अभावसे इन्द्रियोंके विषयोंमें वैराग्यभाव होता है ऐसा होनेसे सहज ही मनका निरोध होता है और यह मन अत्यंत चंचल है जब इंद्रियविषयोंसे वैराग्यभाव होता है तब विषयरूप आधारके अभावसे अपने आप चंचलपनेसे रहित होजाता है । जैसे समुद्रके मध्यमें जिहाजका पक्षी उड़कर चारों दिशाओंमें दृक्षादि आधारके अभावसे अन्य आश्रयके बिना जहाजके ही ऊपर आपहीसे निश्चल होकर विद्यता है उसीप्रकार यह मनभी वैराग्यभावसे परद्रव्यरूप इन्द्रिय विषय आधारके बिना निराश्रय हुआ सहज ही निश्चल होता है तब चंचलताके अभावसे स्वरूपमें एकाग्र होता है उस एकाग्रतासे अनंत चैतन्यस्वरूपका स्वसंवेदन (अनुभव) रूप ध्यान होता है उस ध्यानसे आत्मा शुद्ध होता है, इसकारण

अथोपलब्धशुद्धात्मा सकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमासूत्रयति;—

णिहृदघणघादिकम्मो पच्चक्खं सच्चभावतच्चण्हू ।

णेयंतगदो समणो ज्ञादि किमट्ठं असंदेहो ॥ १०५ ॥

निहतघनघातिकर्मा प्रत्यक्षं सर्वभावतत्त्वज्ञः ।

ज्ञेयान्तगतः श्रमणो ध्यायति किमर्थमसंदेहः ॥ १०५ ॥

लोको हि मोहसद्भावे ज्ञानशक्तिप्रतिबन्धकसद्भावे च सतृष्णत्वादप्रत्यक्षार्थत्वानवच्छि-  
न्नविषयत्वाभ्यां चाभिलषितं जिज्ञासितं संदिग्धं चार्थं ध्यायन् दृष्टः, भगवान् सर्वज्ञस्तु

ध्यानव्याख्यानं तदन्यत्र कथितमस्ति ॥ १०४ ॥ एवमात्मपरिज्ञानादर्शनमोहक्षपणं भवतीति कथन-

रूपेण प्रथमगाथा दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहक्षपणं भवतीति कथनेन द्वितीया तदुभयक्षयेण

मोक्षो भवतीति प्रतिपादनेन तृतीया चेत्यात्मोपलब्धफलकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं

गतम् । अथोपलब्धशुद्धात्मतत्त्वसकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमाक्षेपद्वारेण पूर्वपक्षं

वा करोति;—णिहृदघणघादिकम्मो पूर्वसूत्रोदितनिश्चलनिजपरमात्मतत्त्वपरिणतिरूपशुद्ध-

ध्यानेन निहतघनघातिकर्मा । पच्चक्खं सच्चभावतच्चण्हू प्रत्यक्षं यथा भवति तथा

सर्वभावतत्त्वज्ञः सर्वपदार्थपरिज्ञातस्वरूपः णेयंतगदो ज्ञेयान्तगतः ज्ञेयभूतपदार्थानां परिच्छि-

त्तिरूपेण पारंगतः । एवं विशेषणत्रयविशिष्टः समणो जीवितमरणादिसमभावपरिणतात्म-

स्वरूपः श्रमणो महाश्रमणः सर्वज्ञः ज्ञादि कमट्ठं ध्यायति कमर्थमिति प्रश्नः । अथवा

कमर्थं ध्यायति न कमपीत्याक्षेपः । कथंभूतः सन् । असंदेहो असन्देहः संशयादिरहित

इति । अयमत्रार्थः—यथा कोऽपि देवदत्तो विषयसुखनिमित्तं विद्याराधनाध्यानं करोति यदा

विद्या सिद्धा भवति तत्फलभूतं विषयसुखं च सिद्धं भवति तदाराधनाध्यानं न करोति,

तथायं भगवानपि केवलज्ञानविद्यानिमित्तं तत्फलभूतानन्तसुखनिमित्तं च पूर्वं छद्मस्थावस्थायं

परमशुद्धताका कारण है ॥ १०४ ॥ आगे कहते हैं कि जिन केवली भगवानने शुद्धस्वरू-

पको पाया है उनके भी ध्यान कहागया है सो वे केवली क्या ध्यान करते हैं ऐसा

प्रश्न करते हैं;—[निहतघनघातिकर्मा] जिन्होंने अत्यंतदृढबद्ध धातियाकर्मोंका नाश

किया है, [प्रत्यक्षं] परोक्षतासे रहित साक्षात् [सर्वभावतत्त्वज्ञः] समस्त-

पदार्थोंके जाननेवाले [ज्ञेयान्तगतः] जाननेयोग्य पदार्थोंके पारको प्राप्त [असंदेहः]

संशय विमोह विभ्रमसे रहित ऐसे [श्रमणः] महामुनि केवली [किमर्थं]

किसलिये [ध्यायति] ध्यान करते हैं ॥ भावार्थ—इस संसारमें मोहकर्मके

उदयसे ज्ञानके घातक कर्मके उदयकर ये संसारी जीव तृष्णावन्त हैं इसलिये

इन जीवोंको सकलपदार्थ प्रत्यक्ष नहीं होते और सबके अंतःप्रविष्ट इनका ज्ञान नहीं

है इसकारण चांछित अर्थका ध्यान करते हैं इनके तो ध्यानका होना संभव है, परंतु

केवली भगवान तो धातियाकर्मरहित हैं समस्त पदार्थोंके साक्षात्कार करनेवाले हैं और



निहितघनघातिकर्मतया मोहाभावे ज्ञानशक्तिप्रतिबन्धकाभावे च निरस्ततृष्णत्वात्प्रलक्ष-  
सर्वभावतत्त्वज्ञेयान्तगतत्वाभ्यां च नाभिलपति न जिज्ञासति न संदिह्यति च कुतोऽभि-  
लपितो जिज्ञासितः संदिग्धश्चार्थः । एवं सति किं ध्यायति ? ॥ १०५ ॥

अथैतदुपलब्धिद्विधात्मा सकलज्ञानी ध्यायतीत्युत्तरमासूत्रयति;—

**सब्वाबाधविजुत्तो समंतसब्बक्खसोक्खणाणडो ।**

**भूदो अक्खादीदो झादि अणक्खो परं सोक्खं ॥ १०६ ॥**

सर्वाबाधवियुक्तः समन्तसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः ।

भूतोक्षातीतो ध्यायत्यनक्षः परं सौख्यम् ॥ १०६ ॥

अयमात्मा यदैव सहजसौख्यज्ञानवाधायतनानामसार्वदिक्कासकलपुरुषसौख्यज्ञाना-  
यतनानां चाक्षाणामभावात्स्वयमनक्षत्वेन वर्तते तदेव परेषामक्षातीतो भवन् निराबाध-  
सहजसौख्यज्ञानत्वात् सर्वाबाधवियुक्तः, सार्वदिक्कसकलपुरुषसौख्यज्ञानपूर्णत्वात्समन्त-

शुद्धात्मभावनारूपं ध्यानं कृतवान् इदानीं तद्ध्यानेन केवलज्ञानविद्या सिद्धा तत्फलभूतमनन्त-  
सुखं च सिद्धम् किमर्थं ध्यानं करोतीति प्रश्नः आक्षेपो वा, द्वितीयं च कारणं परोक्षेऽर्थे  
ध्यानं भवति भगवतः सर्वं प्रत्यक्षं कथं ध्यानमिति पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता ॥ १०५ ॥  
अथात्र पूर्वपक्षे परिहारं ददाति;—झादि ध्यायति एकाकारसमरसीभावेन परिणमत्यनु-  
भवति । स कः कर्त्ता । भगवान् । किं ध्यायति सोक्खं सौख्यम् । किंविशिष्टम् ? परं  
उत्कृष्टं सर्वात्मप्रदेशाह्लादकपरमानन्तसुखम् । कस्मिन्प्रस्तावे । यस्मिन्नेव क्षणे भूदो भूतः  
संजातः । किंविशिष्टः । अक्खातीदो अक्षातीतः इन्द्रियरहितः न केवलं स्वयमतीन्द्रियो जातः  
परेषां च अणक्खो अनक्षः इन्द्रियविषयो न भवतीत्यर्थः । पुनरपि किंविशिष्टः । सब्वाबाध-  
विजुत्तो “प्राकृतलक्षणबलेन बाधाशब्दस्य हसत्वं” सर्वाबाधवियुक्तः । आसमन्ताद्बाधाः पीडा  
आबाधाः सर्वाश्च ता आबाधाश्च सर्वाबाधास्ताभिर्वियुक्तो रहितः सर्वाबाधवियुक्तः । पुनश्च किरूपः ।  
समंतसब्बक्खसोक्खणाणडो समन्ततः सामस्येन स्पर्शनादिसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः । समन्ततः

सब पदार्थोंका प्रमाण ( माप ) करनेवाले हैं इसलिये इस सर्वज्ञके कोई चीजकी इच्छा  
नहीं रही और कुछ जानना भी बाकी न रहा, इसकारण केवली भगवानके ध्यान  
कैसे होसकता है ऐसा शिष्यका प्रश्न है ॥ १०५ ॥ आगे इस प्रश्नका उत्तर कहते  
हैं कि यद्यपि स्वरूपको प्राप्त हुए हैं तौभी केवली ध्यान करते हैं;—[ अक्षातीतः ]  
इन्द्रियोंसे रहित [ भूतः ] हुए [ अनक्षः ] दूसरेको इन्द्रिय ज्ञानगम्य न होने-  
वाले, [ सर्वाबाधवियुक्तः ] समस्त ज्ञानावरणादि घातिया कर्मोंसे रहित और  
[ समन्तसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः ] सर्वांग परिपूर्ण आत्माके अनन्तसुख और

१ ( १८ पुनःके ) सर्वात्मप्रदेशेषु सर्वे । सर्वे षोडशः परिपूर्णज्ञानात् आत्मनः सम्बन्धिनी ये द्वे ज्ञानसौख्ये  
इति पाठान्तरम् ।

सर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यश्च भवति । एवंभूतश्च सर्वाभिलाषजिज्ञासासंदेहासंभवेप्यपूर्वमनां-  
कुलत्वलक्षणं परमसौख्यं ध्यायति । अनाकुलत्वसंगतैकाग्रसंचेतनमात्रेणावतिष्ठत इति  
यावत् । ईदृशमवस्थानं च सहजज्ञानानन्दस्वभावस्य सिद्धत्वस्य सिद्धिरेव ॥ १०६ ॥

अथायमेव शुद्धात्मोपलम्भलक्षणो मोक्षस्य मार्ग इत्यवधारयति;—

एवं जिना जिणिंदा सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा सम्मणा ।

जादा णमोत्थु तेसिं तस्स य णिव्वाणमग्गस्स ॥ १०७ ॥

एवं जिना जिनेन्द्राः सिद्धा मार्गं समुत्थिताः श्रमणाः ।

जाता नमोऽस्तु तेम्यस्तस्मै च निर्वाणमार्गाय ॥ १०७ ॥

यतः सर्व एव सामान्यचरमशरीरास्तीर्थकराः अचरमशरीरा मुमुक्षवश्चामुनैव यथोदि-

सर्वात्मप्रदेशैर्वा स्पर्शनादिसर्वेन्द्रियाणां सम्बन्धित्वेन ये ज्ञानसौख्ये द्वे ताम्यामाढ्यः परिपूर्ण  
इत्यर्थः । तद्यथा—अयं भगवानेकदेशोद्भवसांसारिकज्ञानसुखकारणभूतानि सर्वात्मप्रदेशोद्भवस्वाभा-  
विकातीन्द्रियज्ञानसुखविनाशकानि च यानीन्द्रियाणि निश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारवलेना-  
तिक्रामति विनाशयति यदा तस्मिन्नेव क्षणे समस्तवाधारहितः सन्नतीन्द्रियमनन्तमात्मी-  
त्यसुखं ध्यायत्यनुभवति परिणमति । ततो ज्ञायते केवलिनामन्यच्चिन्तानिरोधलक्षणं ध्यानं नास्ति  
किंत्विदमेव परमसुखानुभवनं वा ध्यानकार्यभूतां कर्मनिर्जरां दृष्ट्वा ध्यानशब्देनोपचर्यते । यत्पुनः  
सयोगिकेवलिनस्तृतीयशुक्लध्यानमयोगिकेवलिनक्षतुर्थशुक्लध्यानं भवतीत्युक्तं तदुपचारेण ज्ञातव्य-  
मिति सूत्राभिप्रायः ॥ १०६ ॥ एवं केवली किं ध्यायतीति प्रश्नमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । परमसुखं

अनंतज्ञान इन दोनोंसे पूर्ण ऐसे केवली भगवान् [ परं ] उत्कृष्ट [ सौख्यं ]  
आत्मीकसुखका [ ध्यायति ] चिंतवन अर्थात् एकाग्रतासे अनुभव करते हैं ॥  
भावार्थ—यह आत्मा जिस समय अनंत ज्ञान अनंत सुखके आवरण करनेवाले एक  
देशी ज्ञान सुखके हेतु इन्द्रियोंके नाशसे अतीन्द्रिय दशाको जय प्राप्त होता है तब वाधा-  
ओंसे रहित हुआ अनंतज्ञान अनंतसुख सहित होता है ऐसे केवली भगवानमें यद्यपि  
कुछ प्राप्ति करनेकी इच्छा नहीं रही और कुछ जाननेकी भी अभिलाषा नहीं रही  
तथा कुछ संशय भी नहीं रहा तौभी यह भगवान् एकाग्रताकर अपने अनंत अनाकुल  
परमसुखको अनुभवता है । इसकारण उपचारकर 'ध्यान करता है' ऐसा कहते हैं ।  
ध्यान करनेका फल यह है कि जो पूर्वबंध हुए कर्मोंकी निर्जरा होती है और आगामी  
बंधका परमसंवर होता है इसकारण केवली भगवानके अपने अनंतसुखका अनुभव  
करनेसे पूर्व कर्मोंकी निर्जरा होती है आगेका संवर है इसलिये उपचारमात्र केवलीके  
ध्यान है । इसप्रकार स्वाभाविक ज्ञानानंदस्वरूप सिद्धत्वकी सिद्धि भगवानके ही  
है ॥ १०६ ॥ आगे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति ही मोक्षमार्ग है यह निश्चय करते हैं;—

तेन शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिलक्षणेन विधिना प्रवृत्तमोक्षस्य मार्गमधिगम्य सिद्धा बभूवुः न पुनरन्यथापि । ततोऽवधार्यते केवलमयमेक एव मोक्षस्य मार्गो न द्वितीय इति । अलं च प्रपञ्चेन । तेषां शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तानां तस्य शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपस्य मोक्षमार्गस्य चाप्रत्यस्तमितभाव्यभावकविभागत्वेन तोआगमभावनमस्कारोऽस्तु ॥ १०७ ॥ अवधारितो मोक्षमार्गः कृत्यमनुष्ठीयते

ध्यायत्यनुभवतीति परिहारमुद्ध्यत्वेन द्वितीया चेति ध्यानविषयपूर्वपक्षपरिहारद्वारेण तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथायमेव निजशुद्धात्मोपलब्धलक्षणमोक्षमार्गो नान्य इति विशेषेण समर्थयति;—जादा । उत्पन्नाः । कथंभूताः । सिद्धा सिद्धाः सिद्धपरमेष्ठिनो मुक्तात्मान इत्यर्थः । के कर्तारः । जिणा जिनाः अनागारकेवलिनः । जिणिंदा न केवलं जिनां जिनेन्द्राश्च तीर्थंकरपरमदेवाः । कथंभूताः सन्तः एते सिद्धा जाताः । मगं समुद्धिदा निजपरमात्मतत्त्वानुभूतिलक्षणमार्गं मोक्षमार्गं समुत्थिता आश्रिताः । केन । एवं पूर्वं बहुधा व्याख्यातक्रमेण । न केवलं जिना जिनेन्द्रा अनेन मार्गेण सिद्धा जाताः समणा सुखदुःखादिसमताभावनापरिणतात्मतत्त्वलक्षणाः शेषा अचरमदेहश्रमणाश्च । अचरमदेहानां कथं सिद्धत्वमिति चेत् ? “तवसिद्धे ण्यसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य णाणंमि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥” इति गाथाकथितक्रमेणैकदेशेन णमोत्थु तेसिं नमोऽस्तु तेभ्यः । अनन्तज्ञानादिसिद्धगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोऽस्तु तस्स य णिब्वाणमग्गस्स तस्सै निर्धिकारस्वसंवित्तिलक्षणनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्वाणमार्गाय च । ततोऽवधार्यते अयमेव मोक्षमार्गो नान्य इति ॥ १०७ ॥

[ एवं ] इस पूर्वोक्त प्रकारसे [ मार्ग ] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी शुद्धात्मप्रवृत्तिरूप मोक्षमार्गके प्रति [ समुत्थिताः ] उद्यमी होके प्राप्त हुए जो [ जिनाः ] उसी भवसे मोक्ष जानेवाले सामान्य चरमशरीरी जीव [ जिनेन्द्राः ] अर्हत पदके धारक तीर्थंकर और [ श्रमणाः ] एक दो पर्याय धारणकर मोक्षजानेवाले ऐसे मोक्षाभिलाषी मुनि हैं वे [ सिद्धाः ] मोक्षमें सिद्ध अवस्थाको [ जाताः ] प्राप्त हुए हैं [ तेभ्यः ] उन सबको [ च ] तथा [ तस्सै निर्वाणमार्गाय ] शुद्धात्माकी प्रवृत्तिमयी अनुभवरूप मोक्षमार्गको [ नमः अस्तु ] द्रव्य भावरूप नमस्कार होवे ॥ भावार्थ—जो तीर्थंकर वा सामान्यकेवली अथवा अन्य मुनी मोक्षको गये हैं वे केवल शुद्ध आत्माकी प्रवृत्तिरूप मोक्षमार्गको पाकर ही मुक्त हुए हैं । शुद्धात्माके अनुभव विना दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है यही अद्वितीयमार्ग है । अब बहुत बिलार कहाँतक कियाजावे सारांश इतना है कि, जो शुद्धात्मतत्त्वमें प्रवर्तमान हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठियोंको और जो शुद्धात्मतत्त्वकी प्रवृत्तिमयी अनुभवरूप मोक्षमार्ग है उसको

अयोपसंपद्ये साम्यमिति पूर्वप्रतिज्ञां निर्वहन् मोक्षमार्गभूतं स्वयमपि शुद्धात्मप्रवृत्ति-  
मासृज्यति;—

तम्हा तद्य जाणित्ता अप्पाणं जाणगं सभावेण ।

परिवज्जामि ममत्तिं उचट्टिदो णिम्ममत्तम्मि ॥ १०८ ॥

तस्मात्तथा ज्ञात्वात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन ।

परिवर्जयामि भमतामुपस्थितो निर्ममत्वे ॥ १०८ ॥

अहमेव मोक्षाधिकारी ज्ञायकस्वभावात्मतत्त्वपरिज्ञानपुरस्सरममत्वनिर्ममत्वहानोपादा-  
नविधानेन कृत्यान्तरस्याभावात्सर्वारम्भेण शुद्धात्मनि प्रवर्तते । तथाहि—अहं हि तावत्  
ज्ञायक एव स्वभावेन, केवलज्ञायकस्य च सतो मम विश्वेनापि सहजज्ञेयज्ञायकलक्षण एव  
संबन्धः न पुनरन्ये स्वस्वामिलक्षणादयः संबन्धाः । ततो मम न क्वचनपि ममत्वं सर्वत्र निर्म-  
मत्वमेव । अथैकस्य ज्ञायकभावस्य समस्तज्ञेयभावस्वभावत्वात्प्रोत्कीर्णलिखितनिखातकीलि-  
तमजितसमावर्तितप्रतिविम्बितवत्तत्र क्रमप्रवृत्तानन्तभूतभवद्भाविविचित्रपर्यायप्राग्भारमगा-  
धस्वभावं गम्भीरं समस्तमपि द्रव्यजातमेकक्षण एव प्रत्यक्षयन्तं ज्ञेयज्ञायकलक्षणसंबन्ध-

अथ 'उत्रसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती' इत्यादि पूर्वप्रतिज्ञां निर्वहयन् स्वयमपि मो-  
क्षमार्गपरिणतिं स्वीकरोतीति प्रतिपादयति;—तम्हा यस्मात्पूर्वोक्तशुद्धात्मोपलम्बलक्षणमोक्षमा-  
र्गेण जिना जिनेन्द्राः श्रमणाश्च सिद्धा जातास्तस्मादहमपि तद्दृष्ट्वा तथैव तेनैव प्रकारेण जाणित्ता  
ज्ञात्वा । कम् ? अप्पाणं निजपरमात्मानम् । किं विशिष्टं ? जाणगं ज्ञायकं केवलज्ञानायनन्त-  
गुणस्वभावं । केन कृत्या ज्ञात्वा । सहावेण समस्तरागादिविभावरहितशुद्धबुद्धैकस्वभावेन । पश्चात्  
किं करोमि ? परिवज्जामि परि समन्ताद्दर्जयामि । कां ? ममत्तिं समस्तचेतनाचेतनमिश्रपरद्र-  
व्यसम्बन्धिनां ममताम् । कथंभूतः सन् । उचट्टिदो उपस्थितः परिणतः । क ? णिम्ममत्तिम्मिह  
समस्तपरद्रव्यममकाराहंकाररहितत्वेन निर्ममत्वलक्षणे परमसाम्याभिधाने वीतरागचारित्रे तत्परिण-  
तनिजशुद्धात्मस्वभावे वा । तथाहि—अहं तावत्केवलज्ञानदर्शनस्वभावत्वेन ज्ञायकैकटङ्कोत्कीर्णस्व-

द्रव्यभावरूप नमस्कार होवे ॥ १०७ ॥ आगे आचार्यने जो पूर्व प्रतिज्ञा की थी कि  
मैं समताभावोंको अवलंबता हूं अत्र उसीका निर्वाह ( पालन ) करते हुए मोक्षमार्ग-  
रूप शुद्धआत्माकी प्रवृत्ति दिखलाते हैं;—[ तस्मात् ] इसकारणसे अर्थात् जो मुक्त  
हुए हैं वे शुद्धआत्माके श्रद्धान ज्ञान आचरणसे हुए हैं इसकारणसे [ तथा ] उसीप्रकार  
अर्थात् जैसे तीर्थकरादिकोंने स्वरूप जानके शुद्धात्माका अनुभव किया है उसीतरह  
मैं भी [ स्वभावेन ] अपने आत्मीक भावकर [ ज्ञायकं ] सकल ज्ञेयपदार्थोंको  
जाननेवाले [ आत्मानं ] आत्माको [ ज्ञात्वा ] समस्त परद्रव्यसे मित्र जानकर  
[ ममतां ] पर वस्तुमें ममत्वबुद्धिको [ परिवर्जयामि ] सब तरहसे छोड़ता हूं  
और [ निर्ममत्वे ] स्वरूपमें निश्चल होके वीतरागभावमें [ उपस्थितः ] स्थित होता हूं ॥  
भावार्थ—जो पुरुष मोक्षका इच्छुक है वह ज्ञानस्वरूप आत्माका जाननेवाला

तेन शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिलक्षणेन विधिना प्रवृत्तमोक्षस्य मार्गमधिगम्य सिद्धा चमूतुः न पुनरन्यथापि । ततोऽवधार्यते केवलमयमेक एव मोक्षस्य मार्गो न द्वितीय इति । अलं च प्रपञ्चेन । तेषां शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तानां तस्य शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपस्य मोक्षमार्गस्य चाप्रत्यस्तमितभाव्यभावकविभागत्वेन नोद्भागमभावनमस्कारोऽस्तु ॥ १०७ ॥ अवधारितो मोक्षमार्गः कृत्यमनुष्ठीयते

ध्यायत्यनुभवतीति परिहारमुख्यत्वेन द्वितीया चेति ध्यानविषयपूर्वपक्षपरिहारद्वारेण तृतीयस्यले गाथाद्वयं गतम् । अधायमेव निजशुद्धात्मोपलब्धलक्षणमोक्षमार्गो नान्य इति विशेषेण समर्थयति;—जादा । लपनाः । कथंभूताः । सिद्धा सिद्धाः सिद्धपरमेष्ठिनो मुक्तात्मान इत्यर्थः । के कर्त्तारः । जिणा जिनाः अनागारकेवलिनः । जिणिंदा न केवलं जिनां जिनेन्द्राथ तीर्थंकरपरमदेवाः । कथंभूताः सन्तः एते सिद्धा जाताः । मगं समुद्धिदा निजपरमात्मतत्त्वानुभूतिलक्षणमार्गं मोक्षमार्गं समुत्थिता आश्रिताः । केन । एवं पूर्वं बहुधा व्याख्यातक्रमेण । न केवलं जिना जिनेन्द्रा अनेन मार्गेण सिद्धा जाताः समणा सुखदुःखादिसमताभावनापरिणतात्मतत्त्वलक्षणाः शेषा अचरमदेहश्रमणाश्च । अचरमदेहानां कथं सिद्धत्वमिति चेत् ? “तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य णाणंमि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंस्सामि ॥” इति गाथाकथितक्रमेणैकदेशेन णमोत्थु तेसिं नमोऽस्तु तेभ्यः । अनन्तज्ञानादिसिद्धगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोऽस्तु तस्स य णिव्वाणमग्गस्स तस्सै निर्वाणस्वसंवित्थिलक्षणनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्वाणमार्गाय च । ततोऽवधार्यते अयमेव मोक्षमार्गो नान्य इति ॥ १०७ ॥

[ एवं ] इस पूर्वोक्त प्रकारसे [ मार्ग ] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी शुद्धात्मप्रवृत्तिरूप मोक्षमार्गके प्रति [ समुत्थिताः ] उद्यमी होके प्राप्त हुए जो [ जिनाः ] उसी भवसे मोक्ष जानेवाले सामान्य चरमशरीरी जीव [ जिनेन्द्राः ] अर्हंत पदके धारक तीर्थंकर और [ श्रमणाः ] एक दो पर्याय धारणकर मोक्षजानेवाले ऐसे मोक्षाभिलाषी मुनि हैं वे [ सिद्धाः ] मोक्षमें सिद्ध अवस्थाको [ जाताः ] प्राप्त हुए हैं [ तेभ्यः ] उन सबको [ च ] तथा [ तस्सै निर्वाणमार्गाय ] शुद्धात्माकी प्रवृत्तिमयी अनुभवरूप मोक्षमार्गको [ नमः अस्तु ] द्रव्य भावरूप नमस्कार होवे ॥ भावार्थ—जो तीर्थंकर वा सामान्यकेवली अथवा अन्य मुनी मोक्षको गये हैं वे केवल शुद्ध आत्माकी प्रवृत्तिरूप मोक्षमार्गको पाकर ही मुक्त हुए हैं । शुद्धात्माके अनुभव विना दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है यही अद्वितीयमार्ग है । अब बहुत विस्तार कहांतक कियाजावे सारांश इतना है कि, जो शुद्धात्मतत्त्वमें प्रवर्तमान हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठियोंको और जो शुद्धात्मतत्त्वकी प्रवृत्तिमयी अनुभवरूप मोक्षमार्ग है उसको

नित्यं युक्तैः स्वीयतेऽस्माभिरेवम् ॥ १ ॥ ज्ञेयीकुर्वन्नज्ञसासीमविश्वं ज्ञानीकुर्वन् ज्ञेयमाक्रान्तभेदम् । आत्मीकुर्वन् ज्ञानमात्मान्यभासि स्फुर्यत्यात्मा ब्रह्म संपद्य सद्यः ॥ २ ॥ द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम् । तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्गं द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य ॥ ३ ॥”

इति तत्त्वदीपिकायां प्रवचनसारवृत्तौ श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितां ज्ञेयतत्त्व-प्रज्ञापनो नाम द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

रमदेहत्वाभावादिति ॥ १०८ ॥ एवं ज्ञानदर्शनाधिकारसमाप्तिरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ।

एवं निजशुद्धात्मभावनारूपमोक्षमार्गेण ये सिद्धिं गता ये च तदाराधकास्तेषां दर्शनाधिका-रापेक्षयावसानमङ्गलार्थं ग्रन्थापेक्षया मध्यमङ्गलार्थं च तत्पदाभिलाषी भूत्वा नमस्कारं करोति;—

दंसणसंसुद्धाणं सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं ।

अव्वावाधरदाणं णमो णमो सिद्धसाहूणं ॥ १ ॥

णमो णमो नमो नमः पुनः पुनर्नमस्करोमीति भक्तिप्रकर्षं दर्शयति । केम्यः ? सिद्धसाहूणं सिद्धसाधुम्यः । पुनरपि कथंभूतेम्यः । सिद्धशब्दवाच्यस्वामोपलब्धिलक्षणाहंतिद्वेभ्यः साधुशब्दवाच्यमोक्षसाधकाचार्योपाध्यायसाधुम्यः । पुनरपि कथंभूतेम्यः । दंसणसंसुद्धाणं मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितसम्यग्दर्शनसंशुद्धेभ्यः । पुनरपि कथंभूतेम्यः ? सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं संशयादिरहितं सम्यग्ज्ञानं तस्योपयोगः सम्यग्ज्ञानोपयोगः, योगो निर्विकल्पसमाधिवर्तिरागचारित्रमित्यर्थः ताभ्यां युक्ताः सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्तास्तेभ्यः । पुनश्च किरूपेभ्यः । अव्वावाधरदाणं सम्यग्ज्ञानादिभावनोत्पन्नाव्यावाधानन्तसुखरतेभ्यश्च ॥ १ ॥ इति नमस्कारगाथासहितस्थलचतुष्टयेन चतुर्थविशेषान्तराधिकारः समाप्तः । एवं ‘अत्थित्तिणिच्छिदस्स हि’ इत्याद्येकादशगाथापर्यन्तं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयमुद्भवत्वेन प्रथमो विशेषान्तराधिकारस्तदनन्तरं ‘अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य’ इत्यादिगाथानवकपर्यन्तं पुद्गलानां परस्परबन्धमुद्भवत्वेन द्वितीयो विशेषान्तराधिकारस्ततः परं ‘अरसमरूवं’ इत्यादि एकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलकर्मणा सह बन्धमुद्भवत्वेन तृतीयो विशेषान्तराधिकारस्ततश्च ‘ण चयदि जो दु ममत्ति’ इत्यादि द्वादशगाथापर्यन्तं विशेषभेदभावनाचूलिकाव्याख्यानरूपधत्तुर्थो चारित्रविशेषान्तराधिकार इत्येकाधिकपञ्चाशद्गाथाभिर्विशेषान्तराधिकारचतुष्टयेन विशेषभेदभावनाभिधानश्चतुर्थोन्तराधिकारः समाप्तः ।

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ ‘तम्हा दंसणमाई’ इत्यादि पञ्चविंशद्गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं तदनन्तरं ‘दव्वं जीवं’ इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवपुद्गलधर्मादिभेदेन विशेषज्ञेयव्याख्यानं ततश्च ‘सपदेसेहि समग्गो’ इत्यादि गाथाएकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना ततःपरं ‘अत्थित्तिणिच्छिदस्स हि’ इत्याद्येकाधिकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन त्रयोदशधिकशतगाथाभिः सम्यग्दर्शनाधिकारनामा ज्ञेयाधिकारापरसंज्ञो द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः ॥ २ ॥

परमात्मभावको प्राप्त हुए हैं उनको भी हमारा यहुत भक्तिसे भावनमस्कार होवे ॥ १०८ ॥

इति श्रीपांडे हेमराजकृत श्रीप्रवचनसार सिद्धांतकी षालावयोधभाषाटीकामें ज्ञेयतत्त्वका अधिकार पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

स्यानिवार्यत्वेनाशक्यविवेचनत्वादुपात्तवैश्वरूप्यमपि सहजानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावनैक्यरूप्यमनुज्झन्तमासंसारमनयैव स्थित्वा स्थितं मोहेनान्यथाध्यवसमानं शुद्धात्मानमेष मोहस्तत्त्वाय यथास्थितमेवातिनिःप्रकम्पः संप्रतिपद्ये । स्वयमेव भवतु चास्यैवं दर्शनविशुद्धिभूत्या सम्यग्ज्ञानोपयुक्ततयात्यन्तमव्यावाधरतत्वात्साधोरपि साक्षात्सिद्धभूतस्य स्वात्मनस्तथाभूतानां परमात्मनां च नित्यमेव तदेकपरायणतत्त्वलक्षणो भावनमस्कारः ॥ १०८ ॥

“जैनं ज्ञानं ज्ञेयतत्त्वप्रणेतृ स्फीतं शब्दब्रह्म सम्यग्विगाह्य । संशुद्धात्मद्रव्यमात्रैकवृत्त्या

भावः । तथाभूतस्य सतो मम नु केवलं स्वत्वाम्यादयः परद्रव्यसम्बन्धा न सन्ति । निश्चयेन ज्ञेयज्ञायकसम्बन्धो नास्ति । ततः कारणात्समस्तपरद्रव्यममत्वरहितो भूत्वा परमशाभ्यलक्षणे निजशुद्धात्मनि तिष्ठामीति । किंच ‘उवसंपयामि सम्म’ इत्यादित्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन्स्वयमपि मोक्षमार्गपरिणतिं स्वीकरोत्येवं यदुक्तं गाथापातनिका प्रारम्भे तेन किमुक्तं भवति—ये तां प्रतिज्ञां गृहीत्वा सिद्धिगतास्तैरेव सा प्रतिज्ञा वस्तुवृत्त्या समाप्तिं नीता । कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पुनर्ज्ञानदर्शनाधिकारद्वयरूपप्रत्यसमाप्तिरूपेण समाप्तिं नीता । शिवकुमारमहाराजेन नु तद्ग्रन्थश्रवणेन च । कस्मादिति चेत् ? ये मोक्षं गतास्तेषां सा प्रतिज्ञा परिपूर्णा जाता । न चैतेषां कस्मात् ? च-

होता है इसके वाद ममताभावका त्यागी होके वीतरागभावोंका आचरण करता है, तथा अन्य सब कार्य मिथ्या भ्रमरूप समझकर सर्वप्रकार उद्यमवाला होके शुद्धात्मामें प्रवर्तता है । उस प्रवृत्तिकी रीति इसतरह है—मैं निजस्वभावसे ज्ञायक ( जाननेवाला ) हूँ इसकारण समस्त परवस्तुओंके साथ मेरा ज्ञेयज्ञायक संबंध है लेकिन वे पदार्थ मेरे हैं मैं उनका स्वामी हूँ ऐसा मेरा संबंध नहीं है इसलिये मेरे किसी परवस्तुमें ममत्वभाव नहीं है सबमें ममताभाव रहित हूँ । और जो मैं एक स्वभाव हूँ सो मेरा समस्त ज्ञेयपदार्थोंका जानना स्वभाव है इसकारण ने ज्ञेय मुझमें ऐसे मालूम होते हैं कि मानों प्रतिमाकी तरह गढदिये हैं वा लिखे हैं या मेरेमें समागये ( मिलगये ) हैं या कीलित हैं या डूब गये हैं वा पलट रहे हैं अथवा प्रतिबिंबित हैं क्या, इसतरह मेरे ज्ञेयज्ञायक संबंध है अन्य कोई भी संबंध नहीं है । इसवास्ते अब मैं मोहको दूरकर अपने यथास्थित ( जैसा था वैसा ) स्वरूपको निश्चल होकर आपसे ही अंगीकार करता हूँ । जिस मेरे स्वरूपमें त्रिकालसंबंधी अनेक प्रकार अतिगंभीर सब ही द्रव्यपर्याय एक ही समयमें प्रत्याह्न हैं और मेरा यह स्वरूप ज्ञेयज्ञायकसंबंधसे यद्यपि समस्त लोकके स्वरूप हुआ है तौमी स्वाभाविक अनंत ज्ञायक शक्तिकर अपने एक स्वरूपको नहीं छोड़ता । और यह मेरा स्वरूप अनादि कालसे इसीप्रकारका था परंतु मोहके बशीभूत होके अन्यका अन्य ( दूसरा ) जाना इसीकारण मैं अज्ञानी हुआ । अब मैंने जैसेका तैसा ( यथार्थ ) जान लिया इसकारण भ्रममादी होके स्वरूपको स्वीकार करता हूँ और सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञानकर अखंडित मुखमें तिष्ठे हुए साक्षान् सिद्ध स्वरूप भगवान् अपना जो आत्मा है उसको हमारा भावनमस्कार होवे । तथा जो अन्य जीव उस

नित्यं युक्तैः स्वीयतेऽस्माभिरेवम् ॥ १ ॥ ज्ञेयीकुर्वन्नज्ञसासीमविश्वं ज्ञानीकुर्वन् ज्ञेयमाक्रान्तभेदम् । आत्मीकुर्वन् ज्ञानमात्मान्यभासि स्फूर्थेत्यात्मा ब्रह्म संपद्य सद्यः ॥ २ ॥ द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम् । तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्गं द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य ॥ ३ ॥”

इति तत्त्वदीपिकायां प्रवचनसारवृत्तौ श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितां ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनो नाम द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

रमदेहत्वाभावादिति ॥ १०८ ॥ एवं ज्ञानदर्शनाधिकारसमातिरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ।

एवं निजशुद्धात्मभावनारूपमोक्षमार्गेण ये सिद्धिं गता ये च तदाराधकास्तेषां दर्शनाधिकारापेक्षयावसानमङ्गलार्थं ग्रन्थापेक्षया मध्यमङ्गलार्थं च तत्पदाभिलाषी भूत्वा नमस्कारं करोति;—

दंसणसंसुद्धाणं सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं ।

अब्बावाधरदाणं णमो णमो सिद्धसाहूणं ॥ १ ॥

णमो णमो नमो नमः पुनः पुनर्नमस्करोमीति भक्तिप्रकर्षं दर्शयति । केभ्यः ? सिद्धसाहूणं सिद्धसाधुभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । सिद्धशब्दवाच्यस्वात्मोपलब्धिलक्षणाहंत्सिद्धेभ्यः साधुशब्दवाच्यमोक्षसाधकाचार्योपाध्यायसाधुभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । दंसणसंसुद्धाणं मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितसम्यग्दर्शनसंशुद्धेभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः ? सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं संशयादिरहितं सम्यग्ज्ञानं तस्योपयोगः सम्यग्ज्ञानोपयोगः, योगो निर्बिकल्पसमाधिवातिरागचारित्रमित्यर्थः ताम्यां युक्ताः सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्तास्तेभ्यः । पुनश्च किरूपेभ्यः । अब्बावाधरदाणं सम्यग्ज्ञानादिभावनोत्पन्नाव्यावाधानन्तसुखरत्नेभ्यश्च ॥ १ ॥ इति नमस्कारगाथासहितस्थलचतुष्टयेन चतुर्थविशेषान्तराधिकारः समाप्तः । एवं ‘अत्थित्तणिच्छिदस्त हि’ इत्याद्येकादशगाथापर्यन्तं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयमुद्घृत्येन प्रथमो विशेषान्तराधिकारस्तदनन्तरं ‘अपदेसो परमाणु पदेसमेत्तो य’ इत्यादिगाथानवकपर्यन्तं पुद्गलानां परस्परबन्धमुद्घृत्येन द्वितीयो विशेषान्तराधिकारस्ततः परं ‘अरसमरूवं’ इत्यादि एकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलकर्मणा सह बन्धमुद्घृत्येन तृतीयो विशेषान्तराधिकारस्ततश्च ‘ण चयदि जो दु ममत्ति’ इत्यादि द्वादशगाथापर्यन्तं विशेषभेदभावनाचूलिकाव्याख्यानरूपश्वतुर्थो चारित्रविशेषान्तराधिकार इत्येकाधिकपञ्चाशद्गाथाभिर्विशेषान्तराधिकारचतुष्टयेन विशेषभेदभावनामिधानश्वतुर्थोन्तराधिकारः समाप्तः ।

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ ‘तम्हा दंसणमाई’ इत्यादि पञ्चविंशद्गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं तदनन्तरं ‘दव्यं जीवं’ इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवपुद्गलधर्मादिभेदेन विशेषज्ञेयव्याख्यानं ततश्च ‘सपदेसेहि समगो’ इत्यादि गाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना ततः परं ‘अत्थित्तणिच्छिदस्त हि’ इत्याद्येकाधिकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन त्रयोदशधिकशतगाथाभिः सम्यग्दर्शनाधिकारनामा ज्ञेयाधिकारापरसंज्ञो द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः ॥ २ ॥

परमात्मभावको प्राप्त हुए हैं उनको भी हमारा बहुत भक्तिये भावनमस्कार होवे ॥१०८॥

इति श्रीपांडे हेमराजकृत श्रीप्रवचनसार सिद्धांतकी षालावयोधभापाटीकामें ज्ञेयतत्त्वका अधिकार पूर्ण हुआ ॥ २ ॥



स्वानिवार्यत्वेनाशक्यविवेचनत्वाद्गुपात्तवैश्वरूप्यमपि सहजानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावेनैक्यरूप्यमनुज्झन्तमासंसारमनयैव स्थित्वा स्थितं मोहेनान्यथाध्यवस्यमानं शुद्धात्मानमेव मोहमुत्थाय यथास्थितमेवातिनिःप्रकम्पः संप्रतिपद्ये । स्वयमेव भवतु चास्यैवं दर्शनविशुद्धिमूल्या सम्यग्ज्ञानोपयुक्ततयात्यन्तमव्यावाधरतत्वात्साधोरपि साक्षात्सिद्धभूतस्य स्वात्मनस्तथाभूतानां परमात्मनां च नित्यमेव तदेकपरायणतत्त्वलक्षणो भावनमस्कारः ॥ १०८ ॥

“जैनं ज्ञानं ज्ञेयतत्त्वप्रणेतु स्फीतं शब्दब्रह्म सम्यग्विगाद्य । संशुद्धात्मद्रव्यमात्रैकवृत्त्या

भावः । तथाभूतस्य सतो मम नु केवलं स्वस्वाम्यादयः परद्रव्यसम्बन्धा न सन्ति । निश्चयेन ज्ञेयज्ञायकसम्बन्धो नास्ति । ततः कारणारसमस्तपरद्रव्यममत्वरहितो भूत्वा परमशाम्यलक्षणे निजशुद्धात्मनि तिष्ठामीति । किञ्च ‘उवसंपयामि सम्भं’ इत्यादिस्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन्स्वयमपि मोक्षमार्गपरिणतिं स्वीकरोत्येवं यदुक्तं गाथापातनिका प्रारम्भे तेन किमुक्तं भवति—ये तां प्रतिज्ञां गृहीत्वा सिद्धिगतास्तेरेव सा प्रतिज्ञा वस्तुवृत्त्या समाप्तिं नीता । कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पुनर्ज्ञानदर्शनाधिकारद्वयरूपप्रत्यसमाप्तिरूपेण समाप्तिं नीता । शिवकुमारमहाराजेन नु तद्ग्रन्थश्रवणेन च । कस्मादिति चेत् ? ये मोक्षं गतास्तेषां सा प्रतिज्ञा परिपूर्णा जाता । न चैतेषां कस्मात् ? च-

होता है इसके बाद ममताभावका त्यागी होके वीतरागभावोंका आचरण करता है, तथा अन्य सब कार्य सिध्या भ्रमरूप समझकर सर्वप्रकार उद्यमवाला होके शुद्धात्मामें प्रवर्तता है । उस प्रवृत्तिकी रीति इसतरह है—मैं निजस्वभावसे ज्ञायक ( जाननेवाला ) हूँ इसकारण समस्त परवस्तुओंके साथ मेरा ज्ञेयज्ञायक संबंध है लेकिन वे पदार्थ मेरे हैं मैं उनका स्वामी हूँ ऐसा मेरा संबंध नहीं है इसलिये मेरे किसी परवस्तुमें ममत्वभाव नहीं है सबमें ममताभाव रहित हूँ । और जो मैं एक स्वभाव हूँ सो मेरा समस्त ज्ञेयपदार्थोंका जानना स्वभाव है इसकारण वे ज्ञेय मुझमें ऐसे मालूम होते हैं कि मानों प्रतिमाकी तरह गढ़दिये हैं वा लिये हैं वा मेरेमें समागये ( मिलगये ) हैं वा कीलित हैं वा डूब गये हैं वा पलट रहे हैं अथवा प्रतिबिंबित हैं क्या, इसतरह मेरे ज्ञेय ज्ञायक संबंध है अन्य कोई भी संबंध नहीं है । इसवास्ते अब मैं मोहको दूरकर अपने यथास्थित ( जैसा था वैसा ) स्वरूपको निश्चल होकर आपसे ही अंगीकार करता हूँ । जिस मेरे स्वरूपमें विकालसंबंधी अनेक प्रकार अतिगंभीर सब ही द्रव्यपर्याय एक ही समयमें प्रत्यक्ष हैं और मेरा यह स्वरूप ज्ञेयज्ञायकसंबंधसे यद्यपि समस्त लोकके स्वरूप हुआ है तौभी स्वाभाविक अनंत ज्ञायक शक्तिकर अपने एक स्वरूपको नहीं छोड़ता । और यह मेरा स्वरूप अनादि कालसे इसीप्रकारका था परंतु मोहके बन्दीभूत होके अन्यका अन्य ( दूसरा ) जाना इसीकारण मैं अज्ञानी हुआ । अब मैंने जैसेका तैसा ( यथार्थ ) जान लिया इसकारण अप्रमादी होके स्वरूपको स्वीकार करता हूँ और सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञानकर अखंडित मुरमें तिष्ठे हुए साक्षात् सिद्ध स्वरूप भगवान् अपना जो आत्मा है उसको हमारा भावनमस्कार होवे । तथा जो अन्य जीव उस

नित्यं युक्तैः स्थीयतेऽस्माभिरेवम् ॥ १ ॥ ज्ञेयीकुर्वन्नज्ञसासीमविश्वं ज्ञानीकुर्वन् ज्ञेयमाक्रान्तभेदम् । आत्मीकुर्वन् ज्ञानमात्मान्यभासि स्फूर्यत्यात्मा ब्रह्म संपद्य सद्यः ॥ २ ॥ द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम् । तस्मान्नुसुक्षुरधिरो-  
हतु मोक्षमार्गं द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य ॥ ३ ॥”

इति तत्त्वदीपिकायां प्रवचनसारवृत्तौ श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितां ज्ञेयतत्त्व-  
प्रज्ञापनो नाम द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

रमदेहत्वाभावादिति ॥ १०८ ॥ एवं ज्ञानदर्शनाधिकारसमाप्तिरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ।

एवं निजशुद्धात्मभावनारूपमोक्षमार्गेण ये सिद्धिं गता ये च तदाराधकास्तेषां दर्शनाधिका-  
रापेक्षयावसानमङ्गलार्थं ग्रन्थापेक्षया मध्यमङ्गलार्थं च तत्पदाभिलाषी भूत्वा नमस्कारं करोतिः—

दंसणसंसुद्धाणं सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं ।

अव्वावाधरदाणं णमो णमो सिद्धसाहूणं ॥ १ ॥

णमो णमो नमो नमः पुनः पुनर्नमस्करोमीति भक्तिप्रकर्षं दर्शयति । केभ्यः ? सिद्धसा-  
हूणं सिद्धसाधुभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । सिद्धशब्दवाच्यस्वात्मोपलब्धिलक्षणार्हस्तिद्धेभ्यः सा-  
धुशब्दवाच्यमोक्षसाधकाचार्योपाध्यायसाधुभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । दंसणसंसुद्धाणं मूढत्र-  
यादिपञ्चविंशतिमलरहितसम्यग्दर्शनसंशुद्धेभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः ? सम्मण्णाणोवजोगजु-  
त्ताणं संशयादिरहितं सम्यग्ज्ञानं तस्योपयोगः सम्यग्ज्ञानोपयोगः, योगो निर्विकल्पसमाधिर्वतिरा-  
गचारित्रमित्यर्थः ताभ्यां युक्ताः सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्तास्तेभ्यः । पुनश्च किरूपेभ्यः । अव्वा-  
वाधरदाणं सम्यग्ज्ञानादिभावनोत्पन्नाव्यावाधानन्तसुखरतेभ्यश्च ॥ १ ॥ इति नमस्कारगाथा-  
सहितस्थलचतुष्टयेन चतुर्थविशेषान्तराधिकारः समाप्तः । एवं ‘अथित्तणिच्छिदस्स हि’ इत्याद्येका-  
दशगाथापर्यन्तं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयमुद्घृत्यत्वेन प्रथमो विशेषान्तराधिकारस्तदनन्तरं ‘अपदेसो  
परमाणू पदेसमेत्तो य’ इत्यादिगाथानवकपर्यन्तं पुद्गलानां परस्परबन्धमुद्घृत्यत्वेन द्वितीयो विशेषा-  
न्तराधिकारस्ततः परं ‘अरसमरूवं’ इत्यादि एकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलकर्मणा सह  
बन्धमुद्घृत्यत्वेन तृतीयो विशेषान्तराधिकारस्ततश्च ‘ण चयदि जो दु ममत्ति’ इत्यादि द्वादशगा-  
थापर्यन्तं विशेषभेदभावनाचूलिकाव्याख्यानरूपश्चतुर्थो चारित्रविशेषान्तराधिकार इत्येकाधिक-  
पञ्चाशद्गाथाभिर्विशेषान्तराधिकारचतुष्टयेन विशेषभेदभावनाभिधानधतुर्थोन्तराधिकारः समाप्तः ।

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ ‘तम्हा दंसणमाई’ इत्यादि पञ्चत्रिंशद्गाथापर्यन्तं  
सामान्यज्ञेयव्याख्यानं तदनन्तरं ‘दव्यं जीवं’ इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवपुद्गलधर्मादिभेदेन  
विशेषज्ञेयव्याख्यानं ततश्च ‘अपदेसेहि समगो’ इत्यादि गाथाएकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना ततःपरं  
‘अथित्तणिच्छिदस्स हि’ इत्याद्येकाधिकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेत्यन्तराधिकार-  
चतुष्टयेन त्रयोदशधिकशतगाथाभिः सम्यग्दर्शनाधिकारनामा ज्ञेयाधिकारापरसंज्ञो  
द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः ॥ २ ॥

परमात्मभावको प्राप्तं हुए हें उनको भी हमारा बहुत भक्तिसे भावनमस्कार होवे ॥१०८॥

इति श्रीपांडे हेमराजकृत श्रीप्रवचनसार सिद्धांतकी मालावयोधभापाटीकामें  
ज्ञेयतत्त्वका अधिकार पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

## अथ चारित्राधिकारः ॥ ३ ॥

अथ परेषां चरणानुयोगसूचिका चूलिका ।

तत्र “द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धौ । बुद्धेति कर्मा-  
विरताः परेषु द्रव्याविरुद्धं चरणं चरन्तु” इति चरणाचरणे परान् प्रयोजयति;—“एस  
सुरे”त्यादि “सैसे” इत्यादि “ते ते” इत्यादि ।

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे ।

पडिवज्जद सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं ॥ १ ॥

कार्यं प्रत्यत्रैवं ग्रन्थः समाप्त इति ज्ञातव्यम् । कस्मादिति चेत् । ‘उवसंपयामि सम्मं’ इति  
प्रतिज्ञासमाप्तेः । अतःपरं यथाक्रमेण सप्ताधिकनवतिगाथापर्यन्तं चूलिकारूपेण चारित्राधिकार-  
व्याख्यानं प्रारम्भ्यते । तत्र तावदुत्सर्गरूपेण चारित्रस्य संक्षेपव्याख्यानम् । तदनन्तरमपवादरू-  
पेण तस्यैव चारित्रस्य विस्तरव्याख्यानम् । ततश्च श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गव्याख्यानम् । तदन-  
न्तरं शुभोपयोगव्याख्यानमित्यन्तराधिकारचतुष्टयं भवति । तत्रापि प्रथमान्तराधिकारे पञ्चस्य-  
छानि ‘एवं पणमिय सिद्धे’ इत्यादि गाथासप्तकेन दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुख्य-  
तया प्रथमस्यलम् । अतःपरं ‘वदसमिदिदिय’ इत्यादिमूलगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्व-  
यम् । तदनन्तरं मुख्यवस्थाज्ञापनार्थं ‘लिगग्गहणे’ इत्यादि एका गाथा । तथैव प्रायश्चित्तकथ-  
नमुख्यतया ‘पयदंहि’ इत्यादि गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयम् । अथाधारा-  
दिशास्त्रकथितक्रमेण तपोधनस्य संक्षेपसमाचारकथनार्थं ‘अधिवासे व वि’ इत्यादि चतुर्थस्थले

इसके बाद चारित्रका अधिकार प्रारंभ करते हैं—जो जीव मोक्षाभिलाषी हैं वे  
द्रव्यके स्वरूपको भी यथार्थ जानते हैं और चारित्रके स्वरूपको भी यथार्थ जानते हैं  
क्योंकि द्रव्यके ज्ञानके अनुसार चारित्र होता है और चारित्रके अनुसार द्रव्यज्ञान होता  
है । इसकारण ये दोनों एकत्र रहते हैं । इन दोनोंमें जो एक न होवे तो मोक्षमार्गभी  
न हो इसलिये इन दोनोंका जानना योग्य है । इसीकारण चारित्रका स्वरूप कहते हैं ।  
आगे चारित्रके आचरणमें अन्य जीवोंको युक्त करते हैं । जो द्रव्यका ज्ञान होवे तो  
चारित्रके आचरणकी अच्छीतरह सिद्धि होवे और जो चारित्र हो तो द्रव्यका ज्ञान सफल  
होवे । इन दोनोंकी परस्पर सिद्धि है । इसकारण जो जीव क्रियामें प्रवृत्त होते  
हैं वे आत्मद्रव्यके जाननेसे अविरोधी क्रियाका आचरण करो, अहंबुद्धिरहित निरमि-  
लाषी होके आचरौ । इसीलिये आचार्य अन्य जीवोंके हितके निमित्त यथाचार कहते  
हैं । पूर्व ही ग्रंथआरंभके आदिमें “एस सुरासुर” इत्यादि गाथाओंसे पंच परमेष्ठियोंको  
नमस्कार किया था उन्ही गाथाओंसे इस यथाचारके आरंभमें भी आचार्य नमस्कार

एवं प्रणम्य सिद्धान् जिनवरवृषभान् पुनः पुनः श्रमणान् ।

प्रतिपद्यतां श्रामण्यं यदीच्छति दुःखपरिमोक्षम् ॥ १ ॥

यथा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिना, “किञ्चा अरिहंताणं” इति “तेसिं” इत्यादि इति अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां प्रणतिवन्दनात्मकनमस्कारपुरःसरं विशुद्धदर्शन-ज्ञानप्रधानं साम्यनाम श्रामण्यमवान्तरग्रन्थसन्दर्भोभयसंभावितसौस्थित्यं स्वयं प्रतिपन्नं

गाथात्रयम् । तदनन्तरं भावहिंसाद्रव्यहिंसापरिहारार्थं ‘अपयत्तादो चरिया’ इत्यादिपञ्चमस्थले सूत्रपट्टमित्येकविंशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेन प्रथमान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—अधा-संज्ञभयजीवांश्चारित्रे प्रेरयति;—परिवज्जदु प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु किम्? सामण्यं श्रामण्यं चारित्रम् । यदि किम्? इच्छति यदि दुःखपरिमोक्षं यदि च दुःखपरिमोक्षमिच्छति । स कः कर्त्ता । परेपामात्मा । कथं प्रतिपद्यताम्? एवं एवं पूर्वोक्तप्रकारेण ‘एस सुरासुरमणुसिद’ इत्यादि गाथापञ्चकेन पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिनाभ्यः पूर्वोक्तभ-व्यैर्वा यथा तच्चारित्रं प्रतिपन्नं तथा प्रतिपद्यताम् । किं कृत्वा पूर्वं । पणमिय प्रणम्य । कान्? सिद्धे अज्ञनपादुकादिसिद्धिविलक्षणस्वात्मोपलब्धिसिद्धिसमेतसिद्धान् । जिणवरवसहे सासाद-नादिकीणकपायान्ता एकदेशजिना उच्यन्ते शेषाश्चानागारकेवलिनो जिनवरा भण्यन्ते । तीर्थकर-परमदेवाश्च जिनवरवृषभा इति तान् जिनवरवृषभान् । न केवलं तान् प्रणम्य पुणो पुणो समणे चिञ्चमत्कारमात्रनिजात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयाचरणप्रतिपादनसाधक-त्वोद्यतान् श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसाधूँश्च पुनः पुनः प्रणम्येति । किञ्च पूर्वं ग्रन्थप्रारम्भ-काले शाम्यमाश्रयामीति शिवकुमारमहाराजनामा प्रतिज्ञां करोतीति भणितम् । इदानीं तु महा-त्मना चारित्रं प्रतिपन्नमिति पूर्वापरविरोधः । परिहारमाह—ग्रन्थप्रारम्भात्पूर्वमेव दीक्षा गृहीता ति-ष्ठति परं किन्तु ग्रन्थकरणव्याजेन काप्यात्मानं भवनापरिणतं दर्शयति । कापि शिवकुमारम-हाराजं काप्यन्यं भव्यजीवं वा । तेन कारणेनात्र ग्रन्थे पुरुषनियमो नास्ति कालनियमो नास्ती-

करते हैं । अव फिर आचार्य नमस्कारपूर्वक दयालु होके कहते हैं;—[ एवं ] इसप्रकार “एस सुरासुर” इत्यादि गाथाओंकर [ जिनवरवृषभान् ] जिनवरोंमें श्रेष्ठ ऐसे अरहंतोंको [ सिद्धान् ] सिद्धोंको [ पुनः पुनः ] अनेकवार [ श्रमणान् ] मुनियोंको [ प्रणम्य ] नमस्कार करके ‘भव्यजीवोंको चारित्रमें प्रेरणाकरनेका उपदेश करते हैं कि हे भव्यजीवो! जैसे दुःखका नाश करनेके लिये मेरे आत्माने पंच परमेष्ठियोंको बंदना ( नमस्कार ) पूर्वक निर्मल ज्ञान दर्शनरूप समताभाव नामवाला यतिमार्ग अंगीकार किया है उसीप्रकार’ [ यदि ] जो तुमारा आत्मा भी [ दुःख-परिमोक्षं ] दुःखसे मुक्त होनेकी [ इच्छति ] अमिलापा करता है तो [ श्रामण्यं ] यतिधर्मको [ प्रतिपद्यतां ] प्राप्त होवै ॥ भावार्थ—जैसा हमने वह साम्यभावरूप मोक्षका मार्गभूत चारित्र अनुभव किया है वैसाही तुमको भी कहते हैं कि तुमभी मुनिमार्गका

परेषामात्मापि यदि दुःखमोक्षार्थी तथा तत्प्रतिपद्यतां यथानुभूतस्य तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः  
प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम इति ॥ १ ॥

अथ श्रमणो भवितुमिच्छन् पूर्व किं किं करोतीत्युपदिशति;—

आपिच्छ यंधुवर्गं विमोहदो गुरुकलत्रपुत्रेहि ।

आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारम् ॥ २ ॥

आपृच्छय बन्धुवर्गं विमोचितो गुरुकलत्रपुत्रैः ।

आसाद्य ज्ञानदर्शनचरित्रतपोवीर्याचारम् ॥ २ ॥

यो हि नाम श्रमणो भवितुमिच्छति स पूर्वमेव बन्धुवर्गमापृच्छते, गुरुकलत्रपुत्रेभ्य  
आत्मानं विमोचयति, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति । तथाहि—एवं बन्धुवर्ग-  
मापृच्छते अहो इदं जनशरीरबन्धुवर्गवर्तिन आत्मानः ! अस्य जनस्य आत्मा न किंच-  
नापि युष्माकं भवतीति निश्चयेन यूयं जानीत तत आपृष्टा यूयं, अयमात्मा अद्योद्भिन्न-  
ज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिवन्धुमुपसर्पति । अहो इदं जनशरीरजनकस्यात्मन् !  
अहो इदं जनशरीरजनन्या आत्मन् ! अस्य जनस्यात्मा न युवाभ्यां जनितो भवतीति  
निश्चयेन युवां जानीतं तत इममात्मानं युवां विमुञ्चतं, अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः

त्यभिप्रायः ॥१॥ अथ श्रमणो भवन्निच्छन्पूर्वं क्षमितव्यं करोति;—‘उवट्टिदो होदि सो समणो  
इत्यग्रे पष्ठगाथायां यद्वधाख्यानं तिष्ठति तन्मनसि धृत्वा पूर्वं किं कृत्वा श्रमणो भविष्यतीति व्या-  
ख्याति;—आपिच्छ आपृच्छय पृष्ट्वा । कम् ? बंधुवर्गं गोत्रम् । ततः कथंभूतो भवति ?  
विमोचिदो विमोचितस्यक्तो भवति । कैः कर्तुंभूतैः ? गुरुकलत्रपुत्रेहि पितृमातृकलत्रपुत्रैः ।  
पुनरपि किं कृत्वा श्रमणो भविष्यति । आसिज्ज आसाद्य आश्रित्य । कम् ? णाणदंसणच-  
रित्ततववीरियायारं ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमिति । अथ विस्तरः—अहो बन्धुवर्गपितृ-  
मानृकलत्रपुत्राः ! अयं मदीयात्मा साम्प्रतमुद्भिन्नपरमविवेकज्योतिस्सन् स्वकीयचिदानन्दैकत्वमात्रं  
परमात्मानमेव निश्चयनयेनानादिवन्धुवर्गं पितरं मातरं कलत्रं पुत्रं चाश्रयति तेन कारणेन मां  
मुञ्चत यूयमिति क्षमितव्यं करोति । ततश्च किं करोति । परमचैतन्यमात्रनिजात्मतत्त्वसर्वप्रकारो-  
पादेयश्चिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिसमस्तपरद्रव्येच्छानिवृत्तिलक्षणतपधरणत्वशक्त्यनवगूहनवीर्या-  
चाररूपं निश्चयपञ्चाचारमाचारादिचरणग्रन्थकथिततत्साधकव्यवहारपञ्चाचारं चाश्रयतीत्यर्थः ।

आचरण करो ॥ १ ॥ आगे जो मुनि होना चाहता है वह पहले क्या २ करे उसकी  
परिपाटीको कहते हैं—[ यंधुवर्ग ] अपने कुटुंबसमूहको [ आपृच्छय ] पूछकर  
[ गुरुकलत्रपुत्रैः ] मा याप स्त्रीजन और पुत्र इनकर [ विमोचितः ] मुक्त  
हुआ [ ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारं ] आठ प्रकारका ज्ञानाचार आठ  
तरहका दर्शनाचार तेरह प्रकारका चारित्राचार बारहप्रकार तपआचार और आठतरहकी  
प्राप्त करनेवाला ऐसा वीर्याचार दसतरह पांच आचारोंको [ आसाद्य ] स्वीकार करके वि-

आत्मानमेवात्मनोऽनादिजनकमुपसर्पति । अहो इदं जनशरीररमण्या आत्मन् ! अस्य जन-  
स्यात्मानं न त्वं रमयसीति निश्चयेन त्वं जानीहि तत इममात्मानं विमुञ्च, अयमात्मा  
अधोद्भिन्नज्ञानज्योतिः खानुभूतिमेवात्मनोऽनादिरमणीमुपसर्पति । अहो इदं जनशरीरपुत्र-  
स्यात्मन् ! अस्य जनस्यात्मनो न त्वं जन्वो भवसीति निश्चयेन त्वं जानीहि तत इममा-  
त्मानं विमुञ्च, अयमात्मा अधोद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिजन्यमुपसर्पति ।  
एवं गुरुकलत्रपुत्रेभ्य आत्मानं विमोचयति । तथा अहो कालविनयोपधानबहुमानानिह-  
वार्थव्यञ्जनतदुभयसंपन्नलक्षणज्ञानाचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि त-  
थापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । अहो निःशङ्कितत्व-  
निःकाङ्क्षितत्वनिर्विचिकित्सत्वनिर्मूढदृष्टित्वोपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनालक्षणदर्श-

अत्र यद्गोत्रादिभिः सह क्षमितव्यव्याख्यानं कृतं तदत्रातिप्रसङ्गनिषेधार्थम् । तत्र नियमो नास्ति ।  
कथमिति चेत् ? पूर्वकाले प्रचुरेण भरतसगररामपाण्डवादयो राजान एव जिनदीक्षां गृह्णन्ति,  
तत्परिवारमध्ये यदा कोऽपि मिथ्यादृष्टिर्भवति तदा धर्मस्योपसर्गं करोतीति । यदि पुनः कोऽपि

रक्त होता है ॥ **भावार्थ**—जो जीव मुनि होना चाहता है वह पहले ही कुटुंबके  
लोकोंको पृथकर अपनेको छुड़ावे । छुड़ानेकी रीति इसतरहसे है—भो इस जनके  
शरीरके तुम भाईबंधुओ ! इस जनका ( मेरा ) आत्मा तुम्हारा नहीं है ऐसा तुम  
निश्चयकर समझो इसलिये तुमको पृथता हूं कि यह मेरा आत्मा ज्ञान ज्योतिकर  
प्रगट हुआ है इसीकारण अपना आत्मास्वरूप ही अनादि भाईबंधुको प्राप्त होता है । अहो  
इस जनके शरीरके तुम माता पिताओ ! इस जनका आत्मा तुमने नहीं उत्पन्न किया  
यह तुम निश्चयसे समझो इसवास्ते तुम इस मेरे आत्माके विषयमें ममताभाव छोड़ो  
यह आत्मा ज्ञानज्योतिकर प्रगट हुआ है सो अपने आत्मास्वरूप ही मातापिताको  
प्राप्त होता है । हे इस जनके शरीरका मन हरनेवाली स्त्री ! तू इस जनके आत्माको  
नहीं रमण कराती ( प्रसन्न करती ) यह निश्चयसे जान इसकारण इस आत्मासे मम-  
त्वभाव छोड़ दे यह आत्मा ज्ञानज्योतिकर प्रगट हुआ है इसलिये अपनी अनुभूतिरूप  
स्त्रीके साथ रमण स्वभावी है । हे जनके शरीरका पुत्र ! तू इस जनके आत्मासे नहीं  
उत्पन्न हुआ यह निश्चयसे समझ इसकारण इसमें ममताभाव छोड़, यह आत्मा ज्ञान  
ज्योतिकर प्रगट हुआ है इसवास्ते अपने आत्माका यह आत्मा ही अनादि पुत्र है  
वसको प्राप्त होता है । इसप्रकार मातापिता स्त्री पुत्रादि कुटुंबसे अपना पीछा छुड़ावे ।  
अथवा जो कोई जीव मुनि होना चाहता है वह तो सब तरह कुटुंबसे विरक्त ही है  
उसको कुटुंबसे पृथनेका कुछ कार्य ही नहीं रहा परंतु यदि कुटुंबमें विरक्त होवे जब  
कुछ फटना पड़े तब वैराग्यके कारण कुटुंबके समझानेको इसतरहके वचन निकलते  
हैं । यहांपर ऐसा नहीं समझना कि जो विरक्त होवे तो कुटुंबको राजीकरके ही होवे ।

परेयामात्मापि यदि दुःखमोक्षार्थी तथा तत्प्रतिपद्यतां यथानुभूतस्य तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः  
प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम इति ॥ १ ॥

अथ श्रमणो भवितुमिच्छन् पूर्वं किं किं करोतीत्युपदिशति;—

आपिच्छ धंधुवर्गं विमोचिदो गुरुकलत्रपुत्रेहि ।

आसिज्ज णाणदंसणचरित्तववीरियायारम् ॥ २ ॥

आपृच्छय वन्धुवर्गं विमोचितो गुरुकलत्रपुत्रैः ।

आसाद्य ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारम् ॥ २ ॥

यो हि नाम श्रमणो भवितुमिच्छति स पूर्वमेव वन्धुवर्गमापृच्छते, गुरुकलत्रपुत्रेभ्य  
आत्मानं विमोचयति, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति । तथाहि—एवं वन्धुवर्ग-  
मापृच्छते अहो इदं जनशरीरवन्धुवर्गवर्तिन आत्मानः ! अस्य जनस्य आत्मा न किंच-  
नापि युष्माकं भवतीति निश्चयेन यूयं जानीत तत आपृष्टा यूयं, अयमात्मा अधोद्भिन्न-  
ज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिवन्धुमुपसर्पति । अहो इदं जनशरीरजनकस्यात्मन् !  
अहो इदं जनशरीरजनन्या आत्मन् ! अस्य जनस्यात्मा न युवाभ्यां जनितो भवतीति  
निश्चयेन युवां जानीतं तत इममात्मानं युवां विमुञ्चतं, अयमात्मा अधोद्भिन्नज्ञानज्योतिः

स्वमिप्रायः ॥ १ ॥ अथ श्रमणो भवन्निच्छन्पूर्वं क्षमितव्यं करोति;—‘उवडिदो होदि सो समणो’  
इत्यग्रे षट्पगाथायां यद्दद्याख्यानं तिष्ठति तन्मनसि धृत्वा पूर्वं किं कृत्वा श्रमणो भविष्यतीति व्या-  
ख्याति;—आपिच्छ आपृच्छय पृष्ट्वा । कम् ? वंधुवर्गं गोत्रम् । ततः कथंभूतो भवति ?  
विमोचिदो विमोचितस्यक्तो भवति । कैः कर्तृभूतैः ? गुरुकलत्रपुत्रेहि पितृमातृकलत्रपुत्रैः ।  
पुनरपि किं कृत्वा श्रमणो भविष्यति । आसिज्ज आसाद्य आश्रित्य । कम् ? णाणदंसणच-  
रित्तववीरियायारं ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमिति । अथ विस्तरः—अहो वन्धुवर्गपितृ-  
मातृकलत्रपुत्राः ! अयं मदीयात्मा साम्प्रतमुद्भिन्नपरमविवेकज्योतिस्सन् स्वकीयचिदानन्दैकत्वमात्रं  
परमात्मानमेव निश्चयनयेनानादिवन्धुवर्गं पितरं मातरं कलत्रं पुत्रं चाश्रयति तेन कारणेन मां  
मुञ्चत यूयमिति क्षमितव्यं करोति । ततश्च किं करोति । परमचैतन्यमात्रनिजात्मतत्त्वसर्वप्रकारो-  
पादेयसुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिसमस्तपरद्रव्येच्छानिष्टित्तिलक्षणतपश्चरणस्वशक्तयनवगूहनवीर्या-  
चाररूपं निश्चयपञ्चाचारमाचारादिचरणप्रत्यकथिततत्साधकव्यवहारपञ्चाचारं चाश्रयतीत्यर्थः ।

आचरण करो ॥ १ ॥ आगे जो मुनि होना चाहता है वह पहले क्या २ करे उसकी  
परिपाटीको कहते हैं—[ वंधुवर्ग ] अपने कुटुंबसमूहको [ आपृच्छय ] पूछकर  
[ गुरुकलत्रपुत्रैः ] मा याप स्त्रीजन और पुत्र इनकर [ विमोचितः ] मुक्त  
हुआ [ ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारं ] आठ प्रकारका ज्ञानाचार आठ  
तरहका दर्शनाचार षेरह प्रकारका पारित्राचार बारहप्रकार तपआचार और आरमशाक्तिको  
प्राप्त करनेवाला ऐसा वीर्याचार इसतरह पांच आचारोंको [ आसाद्य ] स्वीकार करके वि-

स्तेतराचारप्रवर्तकस्वशक्त्यनिगूहनलक्षणवीर्याचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । एवं ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति च ॥ २ ॥

अथातः कीदृशो भवतीत्युपदिशति;—

समणं गणिं गुणङ्गं कुलरूपवयोविसिद्धमिद्धरं ।

समणेहि तंपि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो ॥ ३ ॥

श्रमणं गणिनं गुणाढ्यं कुलरूपवयोविशिष्टमिष्टतरम् ।

श्रमणैस्तमपि प्रणतः प्रतीच्छ मां चेत्यनुगृहीतः ॥ ३ ॥

ततो हि श्रामण्यार्थी प्रणतोऽनुगृहीश्च भवति । तथाहि—आचरिताचारितसमस्तवि-

“जो सकलणयररजं पुवं चइऊण कुणइ य ममत्ति । सो णवरिलिं गधारी संज-  
मसारेण णिस्तारो” ॥ २ ॥ अथ जिनदीक्षार्थी भव्यो जैनाचार्यमाश्रयति;—समणं  
निग्दाप्रशंसादिसमचित्तत्वेन पूर्वसूत्रोदितनिश्चयव्यवहारपञ्चाचारस्य चरणाभरणप्रवीणत्वात्  
श्रमणम् । गुणङ्गं चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलसहकारिकारणोत्तमनिजशुद्धात्मा-

भाव नहीं है तौभी मैं तवत्तक अंगीकार करता हूँ जबतक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको प्राप्त होजाऊँ । अहो निःशंकितत्व निःकांक्षितत्व निर्विचिकित्सत्व निर्मूढदृष्टित्व उपबृंहण स्थितिकरण वात्सल्य प्रभावनास्वरूप दर्शनाचार ! तू शुद्धात्माका स्वरूप नहीं है ऐसा मैं निश्चयसे जानता हूँ तौभी तुझको तवत्तक स्वीकार करता हूँ जबतक तेरे प्रसादसे शुद्ध आत्माको प्राप्त होजाऊँ । अहो मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके कारण पंच महाव्रत तीन गुप्ति पांच समितिरूप तेरह प्रकार चारित्राचार ! मैं जानता हूँ कि निश्चयसे तू शुद्धात्माका स्वरूप नहीं है तथापि तवत्तक अंगीकार करता हूँ जबतक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको प्राप्त होऊँ । अहो अनशन अवमौदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्त शय्यासन काय-  
छेश प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय ध्यान व्युत्सर्गस्वरूप वारहप्रकार तपआचार ! मैं निश्चयसे जानता हूँ कि तू शुद्धात्माका स्वभाव नहीं है परंतु तौभी तुझको तवत्तक स्वीकार करता हूँ जबतक तेरे प्रसादसे शुद्धस्वरूपको प्राप्त होजाऊँ । अहो समस्त आ-  
चारकी प्रवृत्तिके बढ़ानेमें स्वशक्तिके प्रगट करनेवाले वीर्याचार ! मैं निश्चयकर जानता हूँ कि तू शुद्धात्माका स्वरूप नहीं है परंतु तौभी तुझको तवत्तक अंगीकार करता हूँ जबतक कि तेरे प्रसाद ( कृपा ) से शुद्धस्वरूपको प्राप्त होजाऊँ । इसप्रकार ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्यरूप पांचप्रकार आचारको अंगीकार करता हूँ ॥ २ ॥ आगे इसके बाद कैसा होता है यह कहते हैं;—[ तं ] उस [ गणिणं ] परम आचार्यको प्राप्त होके [ प्रणतः ] नमस्कार करता हुआ [ चापि ] और निश्चयकर [ मां ] हे प्रभो ! तुझको [ प्रतीच्छ ] शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धिकर अंगीकार करो [ इति ] इसप्रकार विनती करता हुआ [ अनुगृहीतः ] आचार्यकर दीक्षाके उपदेश द्वारा अंगीकार किया.



नाचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । अहो मोक्षमार्गप्रवृत्तिकारणपञ्चमहात्रतोपेतकायवा-  
ञ्जनोशुशीर्याभापैपणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनसमितिलक्षणचारित्राचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्व-  
मसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपल-  
भते । अहो अनशनावमौर्दर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशप्रायश्चित्त-  
विनयवैयावृत्यस्वाध्यायध्यानव्युत्सर्गलक्षणतपआचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन  
जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । अहो सम-

मन्यते गोत्रसम्मतं कृत्वा पश्चात्तपश्चरणं करोमि तस्य प्रचुरेण तपश्चरणमेव नास्ति कथमपि  
तपश्चरणे गृहीतेऽपि यदि गोत्रादिममत्वं करोति तदा तपोधन एव न भवति । तथाचोक्तं—

कुटुंब यदि किसीतरह राजी न होवे तब कुटुंबके भरोसे रहनेसे विरक्त कभी होय  
ही नहीं सकता । इसकारण कुटुंबके पृष्ठनेका नियम नहीं है । जो कभी किसी  
जीवको मुनिदशा धारणके समय कुछ कहना ही होवे तो पूर्वोक्त प्रकार उपदेशरूप  
वचन निकलते हैं उसतरहके वैराग्यरूप वचनोंको सुनकर जो निकट संसारी जीव  
कुटुंबमें हों वे भी विरक्त होसकते हैं । तथा इसकेबाद सम्यग्दृष्टी जीव अपने स्वरूपको  
देखता है जानता है अनुभव करता है अन्य समस्त ही व्यवहारभावोंसे अपनेको  
भिन्न मानता है और परभावरूप सभी शुभाशुभ क्रियाओंको हेयरूप जानता है  
अंगीकार नहीं करता । लेकिन वही सम्यग्दृष्टी जीव पूर्वबंधे हुए कर्मोंके उदयसे अनेकप्रका-  
रके विभाव ( विकार ) भावोंस्वरूप परिणमता है तौभी उन भावोंसे विरक्त है यह  
जानता है कि जबतक इस अशुद्धपरिणतिकी स्थिति है तबतक यह अवश्य होती है इस-  
कारण आकुलतारूपभावोंको भी नहीं प्राप्त होता । यह सम्यग्दृष्टी जीव तो सकलद्रव्य-  
भावरूप विभावभावोंका तभी त्याग करचुका जब इसके स्वपरविवेकरूप भेदविज्ञान प्रगट  
हुआ था और तभी टंकोत्कीर्ण निजभाव भी अंगीकारकिये । इसलिये सम्यग्दृष्टीको न तो कुछ  
त्यागनेको रहा है और न कुछ स्वीकार करनेको ही है परंतु वही सम्यग्दृष्टि जीव चारित्रमोहके  
उदयसे शुभभावोंरूप परिणमनकरता है उस परिणमनकी अपेक्षा त्यागता है और अंगीकार  
करता है । यही कथन दिखलते हैं—प्रथम ही गुणस्थानोंकी परिपाटीके क्रमसे अशुभ  
परिणतिकी हानि होती है उसके बाद धीरे २ शुभपरिणति भी छूटती जाती है,  
इसकारण पहले तो गृहवास कुटुंबका त्यागी होता है पीछे शुभरागके उदयसे व्यवहार-  
रत्नत्रयरूप पंचाचारोंको अंगीकार करता है । यद्यपि ज्ञानभावकरके समस्त ही शुभाशुभ-  
क्रियाओंका त्यागी है परंतु शुभरागके उदयसे ही पंचाचारोंको ग्रहण करता है । उसकी  
रीति घतलते हैं—हे फाल विनय उपधान यहुमान अनिह्वष अथे ध्यंजन तदुभयरूप  
आठप्रकार शान्ताचार ! मैं तुमको जानता हूं कि तू शुद्धात्मस्वरूपका निश्चयकरके स्व-

प्रणतो भवति । एवमियं ते शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसिद्धिरिति तेन प्रार्थितार्थेन संयुज्यमानोऽ-  
नुग्रहीतो भवति ॥ ३ ॥

अथातोपि कीदृशो भवतीत्युपदिशति;—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि ।

इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूवधरो ॥ ४ ॥

नाहं भवामि परेषां न मे परे नास्ति ममेह किंचित् ।

इति निश्चितो जितेन्द्रियः यातो यथाजातरूपधरः ॥ ४ ॥

ततोपि श्रामण्यार्थी यथाजातरूपधरो भवति । तथाहि—अहं तावन्न किंचिदपि परेषां  
भवामि परेषु न किंचिदपि मम भवन्ति, सर्वद्रव्याणां परैः सह तत्त्वतः समस्तसंबन्धशू-  
न्यत्वात् । तदिह पद्द्रव्यात्मके लोके न मम किंचिदप्यात्मनोऽन्यदस्तीति निश्चित-

न केवलं प्रणतो भवति, तेनाचार्येणानुगृहीतः स्वीकृतश्च भवति । हे मय्य ! निस्तारसंसारे दुर्ल-  
भवोधि प्राप्य निजशुद्धात्मभावनारूपया निश्चयचतुर्विधाराधनया मनुष्यजन्म सफलं कुर्वित्यनेन  
प्रकारेणानुगृहीतो भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ अथ गुरुणा स्वीकृतः सन्नोदृशो भवतीत्युपदिशति;—

णाहं होमि परेसिं नाहं भवामि परेषाम् । निजशुद्धात्मनः सकाशात्परेषां भिन्नद्रव्याणां  
सम्बन्धी न भवाम्यहम् । ण मे परे न मे सम्बन्धीनि परद्रव्याणि णत्थि मज्झमिह

किंचि नास्ति ममेह किंचिदपि परद्रव्यं मम नास्ति इदि णिच्छिदो इति निश्चितम-  
तिर्जातः जिदिंदो जादो इन्द्रियमनोजनितविकल्पजालरहितानन्तज्ञानादिगुणस्वरूप पनि-  
जपरमात्मद्रव्याद्विपरीतेन्द्रियनोइन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च संजातः सन् जधजादरूवधरो

जोड़कर चिन्तनी करता है कि हे प्रभो ! मैं संसारसे भयभीत हुआ हूँ सो मुझको शुद्धा-  
त्मतत्त्वकी सिद्धि होनेकेलिये दीक्षा दो । तब आचार्य कहते हैं कि तुझको शुद्धात्मत-  
त्त्वकी सिद्धि ( प्राप्ति ) करनेवाली यह भगवती दीक्षा है । ऐसा कहकर वह मुसुसु  
आचार्यसे कृपायुक्त किया जाता है ॥३॥ आगे फिर वह कैसा होता है यह कहते हैं;—

[ अहं ] मैं [ परेषां ] शुद्धचिन्मात्रसे अन्य जो परद्रव्य हैं उनका [ न भवामि ]  
नहीं हूँ और [ न मे ] न मेरे [ परे ] परद्रव्य हैं इसलिये [ इह ] इस लोकमें [ मम ]  
मेरा [ किंचित् ] कुछ भी [ नास्ति ] नहीं है [ इति ] इसतरह [ निश्चितः ]  
निश्चय करता हुआ [ जितेन्द्रियः ] पांच इंद्रियोंका जीतनेवाला [ यथाजात-  
रूपधरः जातः ] आत्माका जैसा कुछ स्वयं सिद्ध स्वरूप है उसको धारण करता है ॥

भावार्थ—जो पुरुष मुनि होना चाहता है उसके प्रथम तो ऐसे भाव होते हैं कि न मैं  
परद्रव्यका हूँ और न मेरे परद्रव्य हैं क्योंकि कोई द्रव्य अपना स्वरूप छोड़कर किसीसे  
मिलता नहीं है सब जुदे २ हैं । इसलिये संसारमें जो नोकर्म द्रव्यकर्म भावकर्मरूप समस्त  
परभाव हैं उनमें मेरा स्वरूप कुछ भी नहीं है । मैं सबसे भिन्न अविनाशी टंकोत्कीर्ण

रतिप्रवृत्तिसमानात्मरूपश्रामण्यत्वात् श्रमणं एवंविधश्रामण्याचरणाचारणप्रवीणत्वात् गुणाढ्यं, सकललौकिकजननिःशङ्कसेवनीयत्वात् कुलक्रमागतकौर्यादिदोषवर्जितत्वाच्च कुलविशिष्टं, अन्तरङ्गशुद्धरूपानुमापकवहिरङ्गशुद्धरूपत्वात् रूपविशिष्टं, शैशववार्धक्यकृतबुद्धिविक्रवत्वाभावाद्यौवनोद्रेकविक्रियाविक्रतबुद्धित्वाच्च वयोविशिष्टं, निःशेषितयथोक्तश्रामण्याचरणाचारणविषयपौरुषेयदोषत्वेन मुमुक्षुभिरभ्युपगततरत्वात् श्रमणैरिष्टतरं च गणितं शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसाधकमाचार्यं शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसिद्ध्या मामनुग्रहाणेत्युपसर्पन्

नुभूतिगुणेनाढ्यं भूतम् परिपूर्णत्वाद्गुणाढ्यम् । कुलरूपवयोविसिद्धं लोकदुग्च्छारहितत्वेन जिनदीक्षायोग्यं कुलं भण्यते । अन्तरङ्गशुद्धात्मानुभूतिरूपकं निर्ग्रन्थनिर्विकारं रूपमुच्यते । शुद्धात्मसंवित्तिविनाशकारिवृद्धवाल्यौवनोद्रेकजनितबुद्धिवैकल्यरहितं वयश्चेति तैः कुलरूपवयोभिर्विशिष्टत्वात्कुलरूपवयोविशिष्टम् । इष्टदरं सम्मतम् । कैः ? समणेहिं निजपरमात्मतत्त्वभावनासहितसमचित्तश्रमणैरन्याचार्यैः गुणिं एवंविधगुणविशिष्टं, परमभावनासाधकदीक्षादायकमाचार्यम् । तं पि पणदो न केवलमाचार्यमाश्रितो भवति प्रणतोऽपि भवति । केन रूपेण । पडिच्छ मं हे भगवन् अनन्तज्ञानादिजिनगुणसम्पत्तिकारणभूताया अनादिकालेऽयन्तदुर्लभाया भावसहितजिनदीक्षायाः प्रदानेन प्रसादेन मां प्रतीच्छ स्वीकुरु चेदि अणुगहिदो

जाता है । कैसे वे आचार्य हैं । कि[अवर्णं] पंचाचारके आचरण करनेमें तथा करानेमें प्रवीण अर्थात् साम्यभावलीन हैं, [ गुणाढ्यं ] यतिपदवीका आप आचरण करनेमें अन्यको आचरण करानेमें प्रवीण होनेसे गुणोंकर परिपूर्ण हैं [ कुलरूपवयोविशिष्टं ] कुलसे रूपसे उमरसे विशेषता लियेहुए ( उच्छ्रष्ट ) हैं और वे [ श्रमणैः ] मुक्तिके इच्छुक महागुनियोंकर [ इष्टतरं ] अतिप्रिय हैं ॥ भावार्थ—जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ है उसकी सब लोक निःशंक होते हुए सेवा करते हैं और जो उत्तम कुलोत्पन्न होगा उसके कुलकी परिपाटीसेही क्रूरभावादिक दोषोंका अभाव निश्चयसे होगा इससे कुलकी विशेषता लियेहुए ही आचार्य होते हैं, आचार्यके बाहरसे रूपकी विशेषता ऐसी है कि देखनेसे उनमें अंतरंगकी शुद्ध अनुभव मुद्रा पायी जाती है तौभी बाहरके शुद्ध रूपकर मानों अंतरंगकी शुद्धता बतलाई जा रही है इसकारण रूपकी विशेषताकर सहित होते हैं, तथा वय ( उमर ) करके विशेषता इसतरह है कि बालक-शुद्धअवस्थामें बुद्धिकी विकलता रहित हैं और जवान अवस्थामें कामविकारकर बुद्धिकी विकलता होती है उससे भी रहित हैं । ऐसी अवस्थाकी विशेषता लियेहुए आचार्य कहेगये हैं । और समस्त सिद्धांतोक्त मुनिकी क्रियाके आचरण करने तथा करानेमें जो कभी पीछे दोष हुआ हो उसको बतलाने वाले हैं तथा गुणका उपदेश करनेवाले हैं । इसलिये अत्यंतप्रिय हैं । इत्यादि अनेकगुणोंकर शोभायमान जो आचार्य हैं उनके पास जाकर यह दीक्षा(श्रत)का ग्रहण करनेवाला पुरुष पहले तो नमस्कार करता है उसके पाद शुद्धात्मतत्त्वके सापक आचार्यको हाथ

नभूषणधारणस्य मूर्धजव्यञ्जनपालनस्य सर्किचनत्वस्य सावधयोगयुक्तत्वस्य शरीरसंस्कार-  
करणत्वस्य चाभावाद्यथाजातरूपत्वमुत्पादितकेशश्मश्रुत्वं शुद्धत्वं हिंसादिरहितत्वमप्रति-  
कर्मत्वं च भवत्येव, तदेतद्वहिरङ्गं लिङ्गं । तथात्मनो यथाजातरूपधरत्वापसारितायथा-  
जातरूपधरत्वप्रत्ययमोहरागद्वेषादिभावानामभावादेव तद्भावभाविनो ममत्वकर्मप्रक्रमप-  
रिणामस्य शुभाशुभोपरक्तोपयोगतत्पूर्वकतथाविधयोगाशुद्धियुक्तत्वस्य परद्रव्यसापेक्षत्वस्य

रहितत्वादप्रतिकर्म भवति । किं । लिङ्गं एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं लिङ्गं द्रव्यलिङ्गं ज्ञातव्यमिति  
प्रथमगाथा गता ॥ मुच्छारंभविमुक्तं परद्रव्यकाङ्क्षारहितनिर्मोहपरमात्मज्योतिर्विलक्षणा वाह्य-  
द्रव्ये ममत्वबुद्धिर्मूर्च्छा भण्यते, मनोवाक्यव्यापाररहितचिच्चमत्कारप्रतिपक्षभूत आरम्भो व्यापार-  
स्ताम्यां मूर्च्छारम्भाम्यां त्रिमुक्तं मूर्च्छारम्भविमुक्तम् । जुक्तं उवओगजोगसुद्धीर्हि निर्वि-  
कारस्वसंवेदनलक्षण उपयोगः निर्विकल्पसमाधियोगः तयोरुपयोगयोगयोः शुद्धिरुपयोगयोगशुद्धि-  
स्तथा युक्तः ण परावेकत्वं निर्मलानुभूतिपरिणतेः परस्य परद्रव्यस्यापेक्षया रहितम् न  
परापेक्षम् । अपुणवभवकारणं पुनर्भवविनाशकशुद्धात्मपरिणामाविपरीतापुनर्भवस्य मोक्षस्य  
कारणमपुनर्भवकारणम् । जेण्हं जिनस्य सम्बन्धीदं जिनेन प्रोक्तं वा जैनम् । एवं पञ्च-

[ लिङ्गं ] मुनीश्वरके द्रव्यलिङ्ग [ भवति ] होता है । तथा [ मूर्च्छारम्भविमुक्तं ]  
परद्रव्यमें मोहसे उत्पन्न ममत्तारूपपरिणामोंके आरंभसे रहित [ उपयोगयोगशु-  
द्धिभ्यां ] ज्ञानदर्शनरूप चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग और मनवचनकायकी  
क्रियारूपयोग इनकी शुद्धि अर्थात् शुभाशुभरूपरंजकतासे रहित भावरूप उपयोग-  
शुद्धि और योगपरिणतिकी निश्चलत्वारूप योगशुद्धि इसतरह दोप्रकारकी शुद्धताकर  
[ युक्तं ] सहित [ न परापेक्षं ] परकी अपेक्षा नहीं रखनेवाला [ अपुनर्भवका-  
रणं ] और मोक्षका कारण ऐसा [ जैनं लिङ्गं ] जिनेन्द्रकर कहाहुआ भावलिङ्ग  
होता है ॥ भावार्थ—यथाजातरूप ( निर्ग्रथपने ) पदके रोकनेवाले जो रागद्वेष मोह-  
भाव हैं उनका जब अभाव होता है तब यह आत्मा आपहीसे परिपाटी ( क्रम ) के  
अनुसार यथाजातरूपका धारक होता है । उस अवस्थामें इस जीवके रागादि भावोंके  
घटानेवाले जो ब्रह्म आभूषण हैं उनका अभाव तथा सिर डाढीके वालोंकी रक्षाका  
अभाव होता है, निष्परिग्रहदशा होती है, पापक्रियासे रहित होता है और शरीरमं-  
डनादिक क्रियासे रहित होता है अर्थात् जैसा मुनिका स्वरूप बाह्यदशाकर होता है  
वैसा ही बनजाता है—यह द्रव्यलिङ्ग जानना । तथा इस आत्माके जैसा निर्ममत्वादि  
अंतरंगमें मुनिपद कहा है वैसी ही अवस्थाकर जो स्वरूपका होना उसके रोकनेवाले जो  
रागद्वेष मोहभाव हैं उनका जब अभाव होता है तब इस आत्माके स्वाभाविक मोक्षका  
कारण, अहंकार ममतामाधरहित, उपयोगकी शुद्धतासंयुक्त स्वाधीन अंतरंगलिङ्ग प्रगट  
होता है । इसप्रकार जब यह आत्मा बाह्यचिन्होंसे और अंतरंग चिन्होंसे यथाजातरू-

मतिः परद्रव्यं स्वस्वामिसंबन्धानामिन्द्रियनो इन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च सन् घृतयथा-  
निष्पन्नात्मद्रव्यशुद्धरूपत्वेन यथाजातरूपधरो भवति ॥ ४ ॥

अथैतस्य यथाजातरूपधरत्वस्यासंसारानभ्यस्तत्वेनात्यन्तमप्रसिद्धसाभिनवाभ्यासकौ-  
शल्योपलभ्यमानायाः सिद्धेर्गमकं वहिरङ्गान्तरङ्गलिङ्गद्वैतमुपदिशति;—

जघजादरूवजादं उप्पाडिकेसमंसुगं सुद्धं ।

रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं ॥ ५ ॥

मुच्छारं भविजुत्तं जुत्तं उवजोगजोगसुद्धीहिं ।

लिङ्गं ण परावेक्खं अपुणं भवकारणं जोण्हं ॥ ६ ॥ जुगलं ।

यथाजातरूपजातमुत्पादितकेशश्मश्रुकं शुद्धम् ।

रहितं हिंसादितोप्रतिकर्म भवति लिङ्गम् ॥ ५ ॥

मूर्छारम्भविजुक्तं युक्तमुपयोगयोगशुद्धिम्याम् ।

लिङ्गं न परापेक्खमपुनर्भवकारणं जैनम् ॥ ६ ॥ युगलम् ।

आत्मनो हि तावदात्मना यथोदितक्रमेण यथाजातरूपधरस्य जातस्यायथाजातरूपध-  
रत्वप्रत्ययानां मोहरागद्वेषादिभावानां भवत्येवाभावः, तदभावाच्च तद्भावभाविनो निवस-

यथाजातरूपधरः व्यवहारेण न प्रत्वं यथाजातरूपं निश्चयेन तु स्वात्मरूपं तदित्यंभूतं यथाजातरूपं  
धरतीति यथाजातरूपधरः निर्ग्रन्थो जात इत्यर्थः ॥४॥ अथ तस्य पूर्वसूत्रोदितयथाजातरूपधरस्य

निर्ग्रन्थस्यानादिकालदुर्लभायाः स्वात्मोपलब्धिर्लक्षणसिद्धेर्गमकं चिह्नं बाह्याभ्यन्तरलिङ्गद्वयमा-  
दिशति;—जघजादरूवजादं पूर्वसूत्रोक्तलक्षणयथाजातरूपेण निर्ग्रन्थत्वेन जातमुत्पन्नं

यथाजातरूपजातम् उप्पादियकेसमस्सुगं केशश्मश्रुसंस्कारोत्पन्नारागादिदोषवर्जनार्थमुत्पादि-  
तकेशश्मश्रुकम् । सुद्धं निरवयवैतन्यचमत्कारविसदृशेन सर्वसावययोगेन रहितत्वाच्छुद्धम् ।

रहिदं हिंसादीदो शुद्धचैतन्यरूपनिश्चयप्राणहिंसाकारणभूताया रागादिपरिणतिलक्षणनिश्चय-  
हिंसाया अभावात् हिंसादिरहितम् । अप्पडिकम्मं हवदि परमोपेक्षासंयमबलेन देहप्रतिकार-

वस्तुमात्रं हं ऐसा निश्चय करके जितेंद्री होता हुआ जैसा कुछ मुनिका स्वरूप है  
उसको धारण करता है ॥४॥ आगे अनादिकालसे लेकर कभी जिसका अभ्यास नहीं किया

था ऐसा जो यथाजातरूपधारक मुनिपद है उसकी बतलानेवाली अंतरंग बहिरंग भेद-  
कर लिंगकी द्वैतता दिखलाते हैं अर्थात् जिनचिन्होंसे मुनिपदकी अच्छीतरह जानी जावे

ऐसे द्रव्यभावलिङ्गोंको कहते हैं;—[ यथाजातरूपजातं ] जैसा निर्ग्रन्थ अर्थात् पर-  
माणुमात्र परिग्रहसे भी रहित मुनिका स्वरूप होता है वैसे स्वरूपवाला [ उत्पादित-

केशश्मश्रुकं ] लोंच फरडाले हैं शिर डाढीके वाल जिसमें ऐसा [ शुद्धं ] समस्त  
परिग्रहरहित होनेसे निर्मल [ हिंसादितः रहितं ] हिंसा आदि पापयोगोंसे रहित

और [ अप्रतिकर्म ] शरीरके सन्हालनेकी अथवा सजानेकी क्रियाकर रहित ऐसा

दीक्षाचार्येण तदादानविधानप्रतिपादकत्वेन व्यवहारतो दीयमानत्वाद्दत्तमादानक्रियया संभाव्य तन्मयो भवति । ततो भाव्यभावकभावप्रवृत्तेरेतरसंवलनप्रत्यस्तमितस्वपरविभागत्वेन दत्तसर्वस्वमूलोत्तरपरमगुरुनमस्कृत्यया संभाव्य भावस्तववन्दनामयो भवति । ततः सर्वसावधयोगप्रत्याख्यानलक्षणैकमहाव्रतश्रवणात्मना श्रुतज्ञानेन समये भवन्तमात्मानं जानन् सामायिकमधिरोहति । ततः समस्तावधकर्मायतनं कायमुत्सृज्य यथाजातरूपं स्वरूपमेकमेकाग्रेणालम्ब्य व्यवतिष्ठमान उपस्थितो भवति, उपस्थितस्तु सर्वत्र समदृष्टित्वात्साक्षाच्छ्रमणो भवति ॥ ७ ॥

अथाविच्छिन्नसामायिकाधिरूढोपि श्रमणः कदाचिच्छेदोपस्थापनमर्हतीत्युपदिशति;—

**वदसमिदिदियरोधो लोचावस्सकमचेलमण्हाणं ।**

**खिदिसयणमदंतयणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ ८ ॥**

रणरूपेण भावनमस्कारेण तथैव तद्गुणप्रतिपादकवचनरूपेण द्रव्यनमस्कारेण च गुरुं नमस्करोति । ततः परं समस्तशुभाशुभपरिणामनिवृत्तिरूपं स्वरूपे निश्चलावस्थानं परमसामायिकव्रतमारोहति स्वीकरोति । मनोवचनकायैः कृतकारितानुमत्तैश्च जगत्रये कालत्रयेऽपि समस्तशुभाशुभकर्मभ्यो भिन्ना निजशुद्धात्मपरिणतिलक्षणा या तु क्रिया सा निश्चयेन बृहत्प्रतिक्रमणा भण्यते । व्रतारोपणानन्तरं तां च शृणोति । ततो निर्विकल्पं समाधिवलेन कायमुत्सृज्योपस्थितो भवति, ततश्चैवं परिपूर्णश्रमणसामग्र्यां सत्यां परिपूर्णश्रमणो भवतीत्यर्थः ॥७॥ एवं दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुद्द्यत्वेन प्रथमस्थले गाथासप्तकं गतम् । अथ निर्विकल्पसामायिकसंयमे यदा च्युतो

गुरुके उपदेशसे दोप्रकारके लिंगको धारण करता है । वह दोप्रकारका लिंग व्यवहारसे गुरुकर दिया हुआ कहा जाता है, क्योंकि गुरुने ही द्रव्यभावलिंगकी विधि बतलाई है । और यह शिष्य जब इस लिंगको स्वीकार करता है तब मानता है कि गुरुने मुझको मुनिपद दीना है ऐसी भावनासे तन्मय होता है । पीछे गुरुको परम उपकारी जानकर नमस्कार करता है उसके वाद बहुत भक्तिसे स्तुति करता है और सब पापयोगोंकी क्रियाके दूर करनेवाले पांच महाव्रतोंको यत्नाचाररूप श्रुतज्ञानसे सुनता है । तथा जैसा सिद्धांतमें टंकोत्कीर्ण शुद्ध सिद्ध समान आत्माका स्वरूप कहा है । वैसा ही जानता हुआ रागद्वेषसे रहित सामायिक दशाको प्राप्त होता है और प्रतिक्रमण आलोचन प्रत्याख्यान स्वरूप श्रुतज्ञानसे सुनता है सुनकर तीन कालके कर्मोंसे भी भिन्न अपने स्वरूपका अनुभव करता है । तीन कालकी मनवचनकायकी क्रियासे रहित स्थिर स्वरूपको प्राप्त होता है और जिस शरीरकी क्रियासे पाप होवे ऐसे काययोगका त्यागी होता है तथा यथा जातस्वरूपको धारणकर एकाग्रसे तिष्ठता है । जब इतनी संपूर्ण क्रियायें होती हैं तभी मुनिपदवी होती है ॥ ७ ॥ आगे यद्यपि अखंडित सामायिकदशाको मुनि प्राप्त है तौभी किसी कालमें छेदोपस्थापक होता है यह कहते हैं;—[ व्रतसमितीन्द्र-

चाभावान्मूर्च्छारम्भवियुक्तत्वमुपयोगयोगशुद्धियुक्तत्वमपरापेक्षत्वं च भवत्येव, तदेतदन्तरङ्ग-  
लिङ्गम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथैतदुभयलिङ्गमादायैतदेतत्कृत्वा च श्रमणो भवतीति भवतिक्रियायां वन्धुवर्गप्रच्छन-  
क्रियादिशेषसकलक्रियाणां चैककर्तृकत्वमुद्योतयन्नियता श्रामण्यप्रतिपत्तिर्भवतीत्युपदिशति;—

आदाय तं पि लिङ्गं गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता ।

सोच्चा सवदं किरियं उवट्ठिदो होदि सो समणो ॥ ७ ॥

आदाय तदपि लिङ्गं गुरुणा परमेण तं नमस्कृत्य ।

श्रुत्वा सन्नतं क्रियामुपस्थितो भवति स श्रमणः ॥ ७ ॥

ततोपि श्रमणो भवितुमिच्छन् लिङ्गद्वैतमादत्ते गुरुं नमस्यति व्रतक्रिये शृणोति अथोपति-  
ष्ठते उपस्थितश्च पर्याप्तश्रामण्यसामग्रीकः श्रमणो भवति । तथाहि—तत इदं यथाजातरू-  
पधरत्वस्य गमकं बहिरङ्गमन्तरङ्गमपि लिङ्गं प्रथममेव गुरुणा परमेणाहर्द्धद्वारकेण तदात्वे च

विशेषणविशिष्टं भवति । किं । लिङ्गं भावलिङ्गमिति । इति द्रव्यलिङ्गभावलिङ्गस्वरूपं ज्ञातव्यम्  
॥ ५ । ६ ॥ अथैतद्विद्वैतमादाय पूर्वं भाविनैगमनयेन यदुक्तं पञ्चाचारस्वरूपं तदिदानीं  
स्वीकृत्य तदाधारेणोपस्थितः स्वस्थो भूत्वा श्रमणो भवतीत्याख्याति;—आदाय तं पि लिङ्गं  
आदाय गृहीत्वा तत्पूर्वोक्तं लिङ्गद्वयमपि । कथंभूतं । दत्तमिति क्रियाध्याहारः । केन दत्तम् ?  
गुरुणा परमेण दिव्यध्वनिकाले परमागमोपदेशरूपेणाहर्द्धद्वारकेण । दीक्षाकाले तु दीक्षागुरुणा,  
लिङ्गग्रहणानन्तरं तं णमंसित्ता तं गुरुं नमस्कृत्य सोच्चा तदनन्तरं श्रुत्वा । काम् ? किरियं  
क्रियां बृहत्प्रतिक्रमणाम् । किं विशिष्टाम् ? सवदं सन्नतं व्रतारोपणसहिताम् । उवट्ठिदो  
ततश्चोपस्थितः स्वस्थः सन् होदि सो समणो स पूर्वोक्तस्तपोधन इदानीं श्रमणो भवतीति ।  
इतो विस्तरः—पूर्वोक्तलिङ्गद्वयग्रहणानन्तरं पूर्वसूत्रोक्तपञ्चाचारमाश्रयति ततश्चानन्तज्ञानादिगुणस-

पका धारक होता है तब इसके मुनिपद कहा है ॥ ५ । ६ । आगे दो प्रकारके लिंगको  
अंगीकारकर अन्यक्रियाओंकरके ही मुनि होता है इसकारण कुटुंबीलोंकोको पृथने आदिक  
क्रियासे लेकर आगे जो समस्त क्रिया मुनिपदकी पूर्णतातक हैं उन सब क्रियाओंका जब यह  
एक कर्ता होता है तब इसके विश्रयकर मुनिपदकी सिद्धि होती हे यह कहते है;—[ परमेण  
गुरुणा ] उत्कृष्ट गुरुजो अरहतं केवली अथवा दीक्षा देनेवाले आचार्यगुरु हैं उनसे उपदे-  
शित [ तदपि लिङ्गं ] द्रव्यभावभेदकर दोप्रकारके लिंगको [ आदाय ] अंगीकार-  
करके, [ तं नमस्कृत्य ] दीक्षाके देनेवाले अर्हत वा आचार्यको [ नमस्कृत्य ] नमस्कार  
करके और [ सन्नतं ] पांच महाव्रतोंसहित [ क्रियां ] मुनिकी आचार विधिको  
[ श्रुत्वा ] सुनकर [ सः ] यह मुनिपदका इच्छुक पुरुष [ उपस्थितः ] मुनि-  
पदको एकप्रतासे अवलम्बनकर विष्टता हुआ [ श्रमणः ] सयमें गमदृष्टि होनेसे  
परिपूर्ण साक्षात् मुनि होगा है ॥ भावार्थ—जो मुनि होना चाहता है यह प्रथम तो

वश्यकमाचेलक्यमस्नानं क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तश्चैवं एते निर्विकल्पसामायिकसंयमविकल्पत्वात् श्रमणानां मूलगुणा एव । तेषु यदा निर्विकल्पसामायिकसंयमाधिरूढत्वेनानभ्यस्तविकल्पत्वात्प्रमाद्यति तदा केवलकल्याणमात्रार्थिनः कुण्डलवल्याङ्गुलीयादिपरिग्रहः किल श्रेयान्, न पुनः सर्वथा कल्याणलाभ एवेति संप्रधार्य विकल्पेनात्मानमुपस्थापयन् छेदोपस्थापको भवति ॥ ८ । ९ ॥

अथास्य प्रव्रज्यादायक इव छेदोपस्थापकः परोप्यस्तीत्याचार्यविकल्पप्रज्ञापनद्वारेणोपदिशति;—

लिंगग्रहणं तेसिं गुरुत्ति पञ्चज्जदायगो होदि ।

छेदेसूचदृग्गा सेसा णिज्जावया समणा ॥ १० ॥

लिङ्गग्रहणं तेषां गुरुरिति प्रव्रज्यादायको भवति ।

छेदयोरुपस्थापका शेषा निर्यापकाः, श्रमणाः ॥ १० ॥

गुणो भवति । यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधौ समर्थो न भवत्ययं जीवस्तदा यथा कोऽपि सुवर्णार्थी पुरुषः सुवर्णमलममानस्तत्पर्यायानपि कुण्डलादीन् गृह्णाति न च सर्वथा त्यागं करोति, तथायं जीवोऽपि निश्चयमूलगुणाभिधानपरमसमाध्यभावे छेदोपस्थापनं चारित्रं गृह्णाति । छेदे सत्युपस्थापनं छेदोपस्थापनम् । अथवा छेदेन व्रतभेदेनोपस्थापनं छेदोपस्थापनम् । तच्च संक्षेपेण पञ्चमहाव्रतरूपं भवति । तेषां व्रतानां च रक्षणार्थं पञ्चसमित्यादिभेदेन पुनरष्टाविंशतिमूलगुणभेदा भवन्ति । तेषां च मूलगुणानां रक्षणार्थं द्वाविंशतिपरीपहजयद्वादशविधतपश्चरणभेदेन चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणा भवन्ति तेषां च रक्षणार्थं देवमनुष्यतिर्यगचेतनछतचतुर्विधोपसर्गजयद्वादशानुप्रेक्षाभावनादयश्चेत्यभिप्रायः ॥ ८ । ९ ॥ एवं मूलोत्तरगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले सूत्रद्वयं गतम् । अथास्य तपोधनस्य प्रव्रज्यादायक इवान्योऽपि निर्या-

तो उसीं भेदमें फिर आत्माको स्थापन करे उस अवस्थामें छेदोपस्थापक होता है । जैसे कोई पुरुष सुवर्णका इच्छुक है उस पुरुषको सोनेके जितने कंकण कुंडल मुद्रिका आदि पर्यायभेद हैं वे सब ग्रहण करने कल्याणकारी हैं ऐसा नहीं है कि सोना ही ग्रहण योग्य है उसके भेद ग्रहण योग्य नहीं हैं । यदि भेदोंको ग्रहण नहीं करेगा तो सोनेकी प्राप्ति कहाँसे होसकती है क्योंकि सोना तो उन भेदोंस्वरूपही है, इसकारण सोनेके सब पर्यायभेद ग्रहण करने योग्य हैं । उसीप्रकार निर्विकल्प सामायिकसंयमका जो अभिलाषी है उसको उस सामायिकके भेद २८ मूलगुण भी ग्रहण करने योग्य हैं क्योंकि सामायिक इन मूलगुणोंरूप है इसकारण इन गुणोंमें वह मुनि सावधान होता है यदि किसीकारणसे कभी भंग होजावे तो फिर स्थापन करता है ॥ ८ । ९ ॥ आगे जैसे इम मुनिको दीक्षाके देनेवाले आचार्य होते हैं उसीप्रकार इसके संयम भंग हुआ हो तो उपदेश देकर संयमके भेदोंमें फिर स्थापन करे इसप्रकार भेदका बतलानेवाला दूसरा



एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पणत्ता ।  
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि ॥ ९ ॥ जुम्मं ।

व्रतसमितीन्द्रियरोधो लोचावश्यकमचैलक्यमस्नानम् ।  
क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तं च ॥ ८ ॥

एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः ।

तेषु प्रमत्तः श्रमणः छेदोपस्थापको भवति ॥ ९ ॥ युग्मम् ।

सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणैकमहाव्रतव्यक्तवशेन हिंसांनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहविरत्या-  
त्मकं पञ्चतयं व्रतं तत्परिकरश्च पञ्चतयी समितिः पञ्चतय इन्द्रियरोधो लोचः पदतयमा-

भवति तदा सविकल्पं छेदोपस्थापनचारित्रमारोहतीति प्रतिपादयति;—वदसमिदिन्द्रियरोधो  
व्रतानि च समितयश्चेन्द्रियरोधश्च व्रतसंमितीन्द्रियरोधः। लोचावस्सयं लोचं चावश्यकानि च लोचा-  
वश्यकम् । “समाहारस्यैकवचनं” अचेलमण्हाणं खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणा  
मेयभत्तं च अचेलकास्नानक्षितिशयनदन्तधावनस्थितिभोजनैकभक्तानि ॥ एदे खलु मूलगुणा  
समणाणं जिणवरेहिं पणत्ता एते खलु स्फुटं अष्टाविंशतिमूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः  
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होहि तेषु मूलगुणेषु यदा प्रमत्तः च्युतो भवति । सः कः ।  
श्रमणस्तपोधनस्तदाकाले छेदोपस्थापको भवति । छेदे व्रतखण्डने सति पुनरप्युपस्थापकश्छेदोपस्था-  
पक इति । तथाहि—निश्चयेन मूलमात्मा तस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुणा मूलगुणास्ते च निर्विकल्प  
समाधिरूपेण परमसामायिकाभिधानेन निश्चयैकव्रतेन मोक्षबीजभूतेन मोक्षे जाते सति सर्वे  
प्रकटा भवन्ति । तेन कारणेन तदेव सामायिकं मूलगुणव्यक्तिकारणात्वात् निश्चयमूल-

यरोधाः ] पापयोगक्रियासे रहित पंच महाव्रत पांच समिति और पांच इन्द्रियोंका  
निरोध ( रोकना ) [ लोचावश्यकं ] केशोंका लोच छह आवश्यक क्रियायें  
[ अचैलक्यं ] दिगंबर अवस्था [ अस्नानं ] अंग प्रक्षालनादि क्रियासे रहित होना  
[ क्षितिशयनं ] भूमिमें सोवना [ अदन्तधावनं ] दांतोंन नहीं करना [ स्थि-  
तिभोजनं ] खड़े होकर भोजन करना [ च ] और [ एकमुक्तः ] एकवार भोजन  
[ एते ] ये २८ [ मूलगुणाः ] मूलगुण [ श्रमणानां ] मुनीश्वरोंके [ जिनवरैः ]  
सर्वज्ञवीतरागदेवने [ खलु ] निश्चयकर [ प्रज्ञप्ताः ] कहे हैं, इन मूलगुणोंसे ही यति-  
पदवी स्थिर रहती है । [ तेषु ] उन मूलगुणोंमें जो किसीसमय [ प्रमत्तः ] प्रमादी  
हुआ [ श्रमणः ] मुनि हो तो [ छेदोपस्थापकः ] संयमके छेद ( भंग ) का फिर  
स्थापनकरनेवाला होता है ॥ भावार्थ—ये अष्टाईस मूलगुण निर्विकल्प सामायिकके  
भेद हैं इसकारण ये मुनिके मूलगुण हैं इन्हींसे मुनिपदकी सिद्धि होती है जो कभी इन  
गुणोंमें प्रमादी होजावे तो निर्विकल्प सामायिकका भंग होजाता है इसलिये इनमें  
सावधान होना योग्य है । जो यह मालूम हो कि मेरे इस भेदमें संयमका भंग हुआ है

प्रयतायां समारब्धायां छेदः श्रमणस्य कायचेष्टायाम् ।

जायते यदि तस्य पुनरालोचनापूर्विका क्रिया ॥ ११ ॥

छेदोपयुक्तः श्रमणः श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते ।

आसाद्यालोच्योपदिष्टं तेन कर्तव्यम् ॥ १२ ॥ युगलम् ।

द्विविधः किल संयमस्य छेदः, वहिरङ्गोऽन्तरङ्गश्च । तत्र कायचेष्टामान्नाधिकृतो वहि-  
रङ्ग, उपयोगाधिकृतः पुनरन्तरङ्गः । तत्र यदि सम्यगुपयुक्तस्य श्रमणस्य प्रयत्नसमारब्धायाः  
कायचेष्टायाः कथंचिद्दहिरङ्गछेदो जायते तदा तस्य सर्वधान्तरङ्गछेदवर्जितत्वादालोचनपू-  
र्विक्रिया क्रिययैव प्रतीकारः । यदा तु स एवोपयोगाधिकृतछेदत्वेन साक्षाच्छेद एवोपः

श्रमणस्य कायचेष्टायां जायते यदि चेत् । अथ विस्तारः—छेदो जायते यदि चेत् । स्वस्थभावच्युतिल-  
क्षणः छेदो भवति । कस्याम् ? कायचेष्टायाम् । कथंभूतायां । प्रयतायां स्वस्थभावलक्षणप्रयत्नपरायां  
समारब्धायां अशनशयनयानस्थानादिप्रारब्धायाम् । तस्स पुणो आलोच्यणपुञ्जिचया किरिया  
तस्य पुनरालोचनपूर्विका क्रिया । तदा काले तस्य तपोधनस्य स्वस्थभावस्य वहिरङ्गसहकारि-  
कारणभूता प्रतिक्रमणलक्षणालोचनपूर्विका पुनः क्रियैव प्रायश्चित्तं प्रतिकारो भवति नचाधि-  
कम् । कस्मादिति चेत् ? अभ्यन्तरे स्वस्थभावचलनाभावादिति प्रथमगाथा गता । छेदपउत्तो  
समणो छेदे प्रयुक्तः श्रमणो निर्विकारस्वसंवित्तिभावनाच्युतिलक्षणछेदेन यदि चेत् प्रयुक्तः  
सहितः श्रमणो भवति समणं व्यवहारिणं जिनमदम्हि श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते तदा  
जिनमते व्यवहारिणं प्रायश्चित्तकुशलं श्रमणं आसेज्य आसाद्य प्राप्य न केवलमासाद्य आलो-  
चित्ता निःप्रपञ्चभावेनालोच्य दोषनिवेदनं कृत्वा उवदिष्टं तेण कायव्वं उपदिष्टं तेन कर्त-  
व्यम् । तेन प्रायश्चित्तपरिज्ञानसहिताचार्येण निर्विकारस्वसंवेदनभावनानुकूलं यदुपदिष्टं प्राय-

होनेपर [ यदि ] जो [ श्रमणस्य ] मुनिके [ छेदः ] संयमका भंग [ जायते ]  
उत्पन्न हो तो [ पुनः ] फिर [ तस्य ] उस मुनिको [ आलोचनपूर्विका क्रिया ]  
जैसी कुछ यत्नाचारग्रंथोंमें आलोचनाक्रिया कही गई है वैसी ही करनी यह उपाय है ।  
[ छेदोपयुक्तः श्रमणः ] अंतरंग उपयोगरूप यतिपद जिसके भंग हुआ हो ऐसा मुनि  
[ जिनमते व्यवहारिणं ] वीतरागमार्गमें व्यवहार क्रियामें चतुर [ श्रमणं ]  
महामुनिको [ आसाद्य ] प्राप्तहोकर [ आलोच्य ] और अपने दोष प्रकाशित क-  
रके ( कहकरके ) [ तेन ] उस महामुनिकर [ उपदिष्टं ] उपदेश किया गया जो  
मुनिपद भंगका दंड वह [ कर्तव्यं ] करना चाहिये ॥ भावार्थ—संयमका भंग  
दोप्रकार होता है, एक तो वहिरंग दूसरा अंतरंग । जो उपयोगके बिना शरीरही की  
क्रियासे भंग हुआ हो वह वहिरंग है और जो उपयोगकर भंग हुआ हो वह अंतरंग  
है । इसतरह दो प्रकार संयमका भंग जानना । जो मुनि अंतरंगमें उपयोगकी निर्म-  
लवासे संयममें सावधान है और वहिरंग चलना बैठना सोवना आदि शरीरकी क्रिया-

यतो लिङ्गग्रहणकाले निर्विकल्पसामायिकसंयमप्रतिपादकत्वेन यः किलाचार्यः प्रव्रज्यादायकः स गुरुः, यः पुनरनन्तरं सविकल्पछेदोपस्थापनसंयमप्रतिपादकत्वेन छेदं प्रत्युपस्थापकः स निर्यापकः, योपि छिन्नसंयमप्रतिसंधानविधानप्रतिपादकत्वेन छेदे सत्युपस्थापकः सोपि निर्यापक एव । ततश्छेदोपस्थापकः परोप्यस्ति ॥ १० ॥

अथ छिन्नसंयमप्रतिसंधानविधानमुपदिशति;—

पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेद्धम्मि ।

जायदि जदि तस्स पुणो आलोयणपुब्बिया किरिया ॥ ११ ॥

छेदुवजुत्तो समणो समणं ववहारिणं जिणमदम्मि ।

आसेज्जालोचित्ता उवदिद्धं तेण कायव्वं ॥ १२ ॥ जुगलं ।

पकसंज्ञो गुरुरस्ति इति गुरुव्यवस्थां निरूपयति;—**लिङ्गग्रहणे** तेषां लिङ्गग्रहणे तेषां तपोधनानां गुरुत्ति होदि गुरुर्भवतीति । स कः । पव्वज्जदायगो निर्विकल्पसमाधिरूपपरमसामायिकप्रतिपादको योऽसौ प्रव्रज्यादायकः स एव दीक्षागुरुः छेदेषु अवष्टगा छेदयोश्च वर्त्तकाः ये सेसा णिज्जावगा समणा ते शेषाः श्रमणा निर्यापका भवन्ति शिक्षागुरवश्च भवन्तीति । अयमत्रार्थः—निर्विकल्पकसमाधिरूपसामायिकस्यैकदेशेन च्युतिरेकदेशछेदः, सर्वथा च्युतिः सकलदेशछेद इति देशसकलभेदेन द्विधा छेदः । तयोश्छेदयोरेयं प्रायश्चित्तं दत्त्वा संवेगवैराग्यजनकपरमागमवचनैः संवरणं कुर्वन्ति ते निर्यापकाः शिक्षागुरवः श्रुतगुरवश्चेति भव्यन्ते । दीक्षादायकस्तु दीक्षागुरुरित्यभिप्रायः ॥ १० ॥ अथ पूर्वसूत्रोक्तछेदद्वयस्य प्रायश्चित्तविधानं कथयति;—**पयदं हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेद्धम्मि जायदि जदि** प्रयतायां समारब्धायां छिदः

भी इसका गुरु होता है यह कहते हैं;—[ **तेषां** ] पूर्वोक्त मुनियोंके [ **लिङ्गग्रहणे** ] मुनिलिङ्गग्रहणकी अवस्थामें [ **गुरुः** ] जो गुरु होता है वह [ **प्रव्रज्यादायकः** ] दीक्षाको देनेवाला [ **भवति** ] होता है अर्थात् कहा जाता है [ **छेदयोः** ] एक देश सर्वदेशके भेदकर जो दो प्रकारके छेद अर्थात् संयमके भेद उनके [ **उपस्थापकाः** ] उपदेश देकर फिर स्थापन करनेवाले [ **शेषाः** ] अन्य [ **श्रमणाः** ] यत्थाचारमें अतिप्रचीण महासुनि हैं वे [ **निर्यापकाः** ] निर्यापक गुरु कहे जाते हैं ॥ **भावार्थ**—प्रथम तो जिस आचार्यके पाससे मुनिपदकी दीक्षा लीजावे वह गुरु दीक्षादायक कहा जाता है, और दीक्षा लेनेके बाद अंतरंग एकदेश जो कभी संयमका भंग हुआ हो तो जिस गुरुके उपदेशसे फिर उस संयमकी स्थापना कीजावे वह गुरु निर्यापक कहा जाता है अथवा यदि जिस संयमका सर्वथा ही नाश हुआ हो तो वह संयम जिस गुरुके उपदेशसे फिर अंगीकार कियाजावे वह गुरु भी **निर्यापक** कहा जाता है ॥ १० ॥ आगे जो संयमरूप पृथक् भंग हुआ हो तो उसके जोड़नेकी विधि विगलते हैं;—[ **प्रयतायां** ] यत्पूर्वक [ **समारब्धायां** ] आरंभ हुई [ **कायचेष्टायां** ] शरीरकी क्रियाके

प्रयतायां समारब्धायां छेदः श्रमणस्य कायचेष्टायाम् ।

जायते यदि तस्य पुनरालोचनापूर्विका क्रिया ॥ ११ ॥

छेदोपयुक्तः श्रमणः श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते ।

आसाद्यालोच्योपदिष्टं तेन कर्तव्यम् ॥ १२ ॥ युगलम् ।

द्विविधः किल संयमस्य छेदः, वहिरङ्गोऽन्तरङ्गश्च । तत्र कायचेष्टामात्राधिकृतो वहि-  
रङ्गः, उपयोगाधिकृतः पुनरन्तरङ्गः । तत्र यदि सम्यगुपयुक्तस्य श्रमणस्य प्रयत्नसमारब्धायाः  
कायचेष्टायाः कथंचिद्वहिरङ्गछेदो जायते तदा तस्य सर्वथान्तरङ्गछेदवर्जितत्वादालोचनपूर्-  
र्विक्रिया क्रिययैव प्रतीकारः । यदा तु स एवोपयोगाधिकृतछेदत्वेन साक्षाच्छेद एवोपः

श्रमणस्य कायचेष्टायां जायते यदि चेत् । अथ विस्तरः—छेदो जायते यदि चेत् । स्वस्थभावच्युतिल-  
क्षणः छेदो भवति । कस्याम् ? कायचेष्टायाम् । कथंभूतायां । प्रयतायां स्वस्थभावलक्षणप्रयत्नपरायां  
समारब्धायां अशनशयनयानस्थानादिप्रारब्धायाम् । तस्स पुणो आलोचनपुञ्जिया किरिया  
तस्य पुनरालोचनपूर्विका क्रिया । तदा काले तस्य तपोधनस्य स्वस्थभावस्य वहिरङ्गसहकारि-  
कारणभूता प्रतिक्रमणलक्षणालोचनपूर्विका पुनः क्रियैव प्रायश्चित्तं प्रतिकारो भवति नचाधि-  
कम् । कस्मादिति चेत् ? अभ्यन्तरे स्वस्थभावचलनाभावादिति प्रथमगाथा गता । छेदपउत्तो  
समणो छेदे प्रयुक्तः श्रमणो निर्विकारस्वसंवित्तिभावनाच्युतिलक्षणछेदेन यदि चेत् प्रयुक्तः  
सहितः श्रमणो भवति समणं व्यवहारिणं जिणमदग्धि श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते तदा  
जिनमते व्यवहारज्ञं प्रायश्चित्तकुशलं श्रमणं आसेज्य आसाद्य प्राप्य न केवलमासाद्य आलो-  
चित्ता निःप्रपञ्चभावेनालोच्य दोषनिवेदनं कृत्वा उपदिष्टं तेण कायव्वं उपदिष्टं तेन कर्त-  
व्यम् । तेन प्रायश्चित्तपरिज्ञानसहिताचार्येण निर्विकारस्वसंवेदनभावनानुकूलं यदुपदिष्टं प्राय-

होनेपर [यदि] जो [श्रमणस्य] मुनिके [छेदः] संयमका भंग [जायते]  
उत्पन्न हो तो [पुनः] फिर [तस्य] उस मुनिको [आलोचनपूर्विका क्रिया]  
जैसी कुछ यत्नाचारग्रंथोंमें आलोचनाक्रिया कही गई है वैसी ही करनी यह उपाय है ।  
[छेदोपयुक्तः श्रमणः] अंतरंग उपयोगरूप यतिपद जिसके भंग हुआ हो ऐसा मुनि  
[जिनमते व्यवहारिणं] वीतरागमार्गमें व्यवहार क्रियामें चतुर [श्रमणं]  
महामुनिको [आसाद्य] प्राप्तहोकर [आलोच्य] और अपने दोष प्रकाशित क-  
रके (कहकरके) [तेन] उस महामुनिकर [उपदिष्टं] उपदेश किया गया जो  
मुनिपद भंगका दंड वह [कर्तव्यं] करना चाहिये ॥ भावार्थ—संयमका भंग  
दोप्रकार होता है, एक तो वहिरंग दूसरा अंतरंग । जो उपयोगके बिना शरीरही की  
क्रियासे भंग हुआ हो वह वहिरंग है और जो उपयोगकर भंग हुआ हो वह अंतरंग  
है । इसतरह दो प्रकार संयमका भंग जानना । जो मुनि अंतरंगमें उपयोगकी निर्म-  
लतासे संयममें सावधान है और वहिरंग चलना बैठना सोचना आदि शरीरकी क्रिया-

युक्तो भवति तदा जिनोदितव्यवहारविधिविदग्धश्रमणाश्रययालोचनपूर्वकतदुपदिष्टानुष्ठा-  
नेन प्रतिसंधानम् ॥ ११ । १२ ॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् परद्रव्यप्रतिबन्धा प्रतिषेध्या इत्युपदिशति;—

अधिवासे व विवासे छेदविह्वणो भवीय सामण्ये ।

समणो विहरदु णिच्चं परिहरमाणो णिवंधाणि ॥ १३ ॥

अधिवासे वा विवासे छेदविहीनो भूत्वा श्रामण्ये ।

श्रमणो विहरतु नित्यं परिहरमाणो निबन्धान् ॥ १३ ॥

सर्व एव हि परद्रव्यप्रतिबन्धा उपयोगोपरञ्जकत्वेन निरुपरागोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

श्वित्तं तत्कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ एवं गुरुव्यवस्थाकथनरूपेण प्रथमगाथा  
तथैव प्रायश्चित्तकथनार्थं गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ निर्वि-  
कारश्रामण्यछेदजनकान्परद्रव्यानुबन्धान्निषेधयति;—विहरदु विहरतु विहारं करोतु । स कः ।  
समणो शत्रुमित्रादिसमचित्तश्रमणः णिच्चं नित्यं सर्वकालं । किं कुर्वन्सन् ? परिहरमाणो  
परिहरन्सन् । कान् ? णिवंधाणि चेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्येष्वनुबन्धान् । क विहरतु ? अधिवासे  
अधिकृतगुरुकुलवासे निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मवासे वा विवासे गुरुरिहितवासे वा । किं  
कृत्वा । सामण्ये निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्र्ये छेदविहीणो भवीय छेदविहीनो

ओंमें यत्नसे प्रवर्तते हैं तथा यत्न करनेपर भी जो किसीतरह शरीरमात्र क्रियासे उपयोग  
बिना ही संयमका भंग हुआ हो तो उस मुनिके सर्वथा अंतरंगमें संयमका भंग नहीं हुआ  
किंतु वहांपर किसी जातिका बहिरंगमें उस मुनिके उस समयके स्थापन करनेका उपाय  
आलोचनादिक क्रिया है । आलोचनादिक क्रियासे उस दोषकी निवृत्ति होती  
है । और जो अंतरंगमें उपयोगकर संयमका घात हुआ हो तो यह साक्षात्  
संयमका घात है । वह मुनि इस दोषको दूर करनेके लिये जो आचार्य महामुनि भगवंत  
कथित व्यवहारमार्गमें प्रवीण (चतुर) हो उसके पास जाकर अपना दोष प्रकाशै (कहै)  
आलोचनादि क्रिया करै । और वह आचार्य जो संयमके शुद्ध करनेका उपाय ( आच-  
रण ) बतलावै उसको अंगीकार करै । इसप्रकार फिर संयमको स्थापन करना चाहिये ।  
ऐसे यह अंतरंग बहिरंगरूप दो प्रकार संयमका छेदोपस्थापन जानना योग्य है ॥  
॥१११२॥ आगे मुनिपदके भंगका कारण परद्रव्योंके साथ संबंध है इसलिये परके संय-  
मोंका निषेध करते हैं;—[ श्रामण्ये ] समताभावरूप यति अवस्थामें [ छेदवि-  
हीनो भूत्वा ] अंतरंग बहिरंग भेदसे दोतरहका जो मुनिपदका भंग है उससे रहित  
होकर [ नित्यं ] सर्वदा ( हमेशा ) [ निबन्धान् ] परद्रव्यमें दृष्ट अनिष्ट संबंधोंको  
[ परिहरमाणः ] त्यागता हुआ [अधिवासे] आत्मामें आत्माको अंगीकार कर जहां  
गुरुका घात हो वहांपर जयान् पश्य गुरुओंकी संगतिमें रहो [वा] अथवा[विवासे]

छेदायतनानि तदभावादेवाच्छिन्नश्रामण्यं । अत आत्मन्येवात्मनो नित्याधिकृत्य वासे वा गुरुभ्यो विशिष्टे वासे वा नित्यमेव प्रतिषेधयन् परद्रव्यप्रतिबन्धान् श्रामण्ये छेदविहीनो मूत्वा श्रमणो वर्तताम् ॥ १३ ॥

अथ श्रामण्यस्य परिपूर्णयतनत्वात् स्वद्रव्य एव प्रतिबन्धो विधेय इत्युपदिशति;—

चरदि णिवद्धो णिच्चं समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि ।

पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्णसामण्णो ॥ १४ ॥

चरति निबद्धो नित्यं श्रमणो ज्ञाने दर्शनमुखे ।

प्रयतो मूलगुणेषु च यः स परिपूर्णश्रामण्यः ॥ १४ ॥

एक एव हि स्वद्रव्यप्रतिबन्ध उपयोगमार्जकत्वेन मार्जितोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

मूत्वा रागादिरहितनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रच्युतिरूपछेदरहितो मूत्वा । तथाहि—  
गुरुपार्श्वे यावन्ति शास्त्राणि तावन्ति पठित्वा तदनन्तरं गुरुं पृष्ट्वा च समशीलतपोधनैः सह भेदाभेदरत्नत्रयभावनया भव्यानामानन्दं जनयन् तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसन्तोषभावनापञ्चकं भावयन् तीर्थंकरपरमदेवगणधरदेवादिमहापुरुषाणां चरितानि स्वयं भावयन् परेषां प्रकाशयंश्च विहरतीति भावः ॥ १३ ॥ अथ श्रामण्यपरिपूर्णकारणत्वात्स्वशुद्धात्मद्रव्ये निरन्तरमवस्थानं कर्त्तव्यमित्याख्याति;—चरदि चरति वर्त्तते । कथंभूतः णिवंधो आधीनः णिच्चं नित्यं सर्वकालं । स कः कर्त्ता । समणो लाभालाभादिसमचित्तश्रमणः । क निबद्धः ? णाणम्मि वीतरागसर्वज्ञप्रणीत-

अथवा उससे दूसरी जगह रहकर [ विहरतु ] व्यवहार कर्म करो ॥ भावार्थ—जो मुनि अपने गुरुओंके पास रहे तब तो बहुत अच्छी बात है अथवा अन्य जगह रहे तब भी अच्छा है परंतु सव जगह इष्ट अनिष्ट विषयोंमें संबंध ( रागद्वेष ) का त्याग होना चाहिये तथा मुनिपदवीके भंग होजानेका कारण परद्रव्यके साथ संबंध होना ही है क्योंकि परद्रव्यके संबंधसे अवश्य ही उपयोगभूमिमें रागभाव होता है, जिस जगह रागभाव है वहांपर वीतरागभावरूप यतिपदका भंग होता ही है । इसकारण परद्रव्यके साथ संबंध होने उपयोगकी अशुद्धताके कारण हैं । इसलिये परद्रव्यसंबंध मुनिको सर्वथा निषेध किया है । जब परद्रव्यका संबंध मुनिके दूर होजाइगा तो सहजही अंतरंग संयमका घात न होगा तभी निर्दोष मुनिपदकी सिद्धि होगी । इसतरह परद्रव्यसे विरक्त वीतरागभावोंमें लीन मुनि कहीं भी रहो चाहे गुरुके पास रहौ अथवा अन्य जगह रहो सभी जगह वह निर्दोष है । और जो परभावोंमें रागी द्वेषी होता है तो वह सव जगह संयमका घाती होता है तथा महा सदोष है । इसलिये परद्रव्यके संबंध मुनिको सर्वथा निषेध किये गये हैं ॥ १३ ॥ आगे मुनिपदकी पूरणताका कारण अपने आत्माका संबंध है इसलिये आत्मामें लीन होना योग्य है यह कहते हैं;—[ यः ] जो [ श्रमणः ] मुनि [ दर्शनमुखे ] सम्यक् दर्शन आदि अनंतगुण सहित [ ज्ञाने ]

युक्तो भवति तदा जिनोदितव्यवहारविधिविदग्धश्रमणाश्रययालोचनपूर्वकतदुपदिष्टानुष्ठानेन प्रतिसंधानम् ॥ ११ । १२ ॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् परद्रव्यप्रतिबन्धा प्रतिषेध्या इत्युपदिशति;—

अधिवासे व विवासे छेदविह्वणो भवीय सामण्ये ।

समणो विहरद्दु णिच्चं परिहरमाणो णिवंधाणि ॥ १३ ॥

अधिवासे वा विवासे छेदविहीनो भूत्वा श्रामण्ये ।

श्रमणो विहरतु नित्यं परिहरमाणो निवन्धान् ॥ १३ ॥

सर्व एव हि परद्रव्यप्रतिबन्धा उपयोगपरज्जकत्वेन निरुपरागोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

श्वित्तं तत्कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ एवं गुरुव्यवस्थाकथनरूपेण प्रथमगाथा तथैव प्रायश्चित्तकथनार्थं गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ निर्विकारश्रामण्यछेदजनकान्परद्रव्यानुबन्धान्निषेधयति;—विहरद्दु विहरतु विहारं करोतु । स कः । समणो शत्रुमित्रादिसमचित्तश्रमणः णिच्चं नित्यं सर्वकालं । किं कुर्वन्सन् ? परिहरमाणो परिहरन्सन् । कान् ? णिवंधाणि चेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्येष्वनुबन्धान् । क विहरतु ? अधिवासे अधिकृतगुरुकुलवासे निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मवासे वा विवासे गुरुविरहितवासे वा । किं कृत्वा । सामण्ये निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्र्ये छेदविहीणो भवीय छेदविहीनो

ओंमें यत्नसे प्रवर्तते हैं तथा यत्न करनेपर भी जो किसीतरह शरीरमात्र क्रियासे उपयोग बिना ही संयमका भंग हुआ हो तो उस मुनिके सर्वथा अंतरंगमें संयमका भंग नहीं हुआ किंतु वहांपर किसी जातिका बहिरंगमें उस मुनिके उस समयके स्थापन करनेका उपाय आलोचनादिक क्रिया है । आलोचनादिक क्रियासे उस दोषकी निवृत्ति होती है । और जो अंतरंगमें उपयोगकर संयमका घात हुआ हो तो यह साक्षात् संयमका घात है । वह मुनि इस दोषको दूर करनेके लिये जो आचार्य महामुनि भगवंत कथित व्यवहारमार्गमें प्रवीण (चतुर) हो उसके पास जाकर अपना दोष प्रकाशै (कहै) आलोचनादि क्रिया करै । और वह आचार्य जो संयमके शुद्ध करनेका उपाय (आचरण) बतलावै उसको अंगीकार करै । इसप्रकार फिर संयमको स्थापन करना चाहिये । ऐसे यह अंतरंग बहिरंगरूप दो प्रकार संयमका छेदोपस्थापन जानना योग्य है ॥ ॥११॥१२॥ आगे मुनिपदके भंगका कारण परद्रव्योंके साथ संबंध है इसलिये परके संबंधोंका निषेध करते हैं;—[ श्रामण्ये ] समताभावरूप यत्ति अवस्थामें [ छेदविहीनो भूत्वा ] अंतरंग बहिरंग भेदसे दोतरहका जो मुनिपदका भंग है उससे रहित होकर [ नित्यं ] सर्वदा ( दृग्गशा ) [ निवन्धान् ] परद्रव्यमें इष्ट अनिष्ट संबंधोंको [ परिहरमाणः ] त्यागता हुआ [ अधिवासे ] आत्मामें आत्माको अंगीकार कर जहां गुरुपास हो वहांपर अर्थात् ————— संगतिमें रहो [ वा ] अथवा [ विवासे ]

छेदायतनानि तदभावादेवाच्छिन्नश्रामण्यं । अत आत्मन्येवात्मनो नित्याधिकृत्य वासे वा गुरुभ्यो विशिष्टे वासे वा नित्यमेव प्रतिषेधयन् परद्रव्यप्रतिबन्धान् श्रामण्ये छेदविहीनो भूत्वा श्रमणो वर्तताम् ॥ १३ ॥

अथ श्रामण्यस्य परिपूर्णायतनत्वात् स्वद्रव्य एव प्रतिबन्धो विधेय इत्युपदिशति;—

चरदि णिवद्धो णिच्चं समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि ।

पयदो मूलगुणेषु य जो सो पड्डिपुण्णसामण्णो ॥ १४ ॥

चरति निवद्धो नित्यं श्रमणो ज्ञाने दर्शनमुखे ।

प्रयतो मूलगुणेषु च यः स परिपूर्णश्रामण्यः ॥ १४ ॥

एक एव हि स्वद्रव्यप्रतिबन्ध उपयोगमार्जकत्वेन मार्जितोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

भूत्वा रागादिरहितनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्र्युतिरूपछेदरहितो भूत्वा । तथाहि—  
गुरुपार्श्वे यावन्ति शास्त्राणि तावन्ति पठित्वा तदनन्तरं गुरुं पृष्ट्वा च समशीलतपोधनैः सह भेदाभेदरत्नत्रयभावनाया भव्यानामानन्दं जनयन् तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसन्तोपभावनापञ्चकं भावयन् तीर्थंकरपरमदेवगणधरदेवादिमहापुरुषाणां चरितानि स्वयं भावयन् परेषां प्रकाशयंश्च विहरतीति भावः ॥ १३ ॥ अथ श्रामण्यपरिपूर्णकारणत्वात्स्वशुद्धात्मद्रव्ये निरन्तरमवस्थानं कर्त्तव्यमित्या-  
ख्यातिः;—चरदि चरति वर्त्तते । कथंभूतः णिवंधो आधीनः णिच्चं नित्यं सर्वकालं । स कः कर्त्ता । समणो लाभालाभादिसमचित्तश्रमणः । क्व निवद्धः ? णाणम्मि वीतरागसर्वज्ञप्रणीत-

अथवा उससे दूसरी जगह रहकर [ विहरतु ] व्यवहार कर्म करो ॥ भावार्थ—जो मुनि अपने गुरुओंके पास रहे तब तो बहुत अच्छी बात है अथवा अन्य जगह रहे तब भी अच्छा है परंतु सब जगह इष्ट अनिष्ट विषयोंमें संबंध ( रागद्वेष ) का त्याग होना चाहिये तथा मुनिपदवीके भंग होजानेका कारण परद्रव्यके साथ संबंध होना ही है क्योंकि परद्रव्यके संबंधसे अवश्य ही उपयोगभूमिमें रागभाव होता है, जिस जगह रागभाव है वहांपर वीतरागभावरूप यतिपदका भंग होता ही है । इसकारण परद्रव्यके साथ संबंध होने उपयोगकी अशुद्धताके कारण हैं । इसलिये परद्रव्यसंबंध मुनिको सर्वथा निषेध किया है । जब परद्रव्यका संबंध मुनिके दूर होजाइगा तो सहजही अंतरंग संयमका घात न होगा तभी निर्दोष मुनिपदकी सिद्धि होगी । इसतरह परद्रव्यसे विरक्त वीतरागभावोंमें लीन मुनि कहीं भी रहो चाहे गुरुके पास रहो अथवा अन्य जगह रहो सभी जगह वह निर्दोष है । और जो परभावोंमें रागी द्वेषी होता है तो वह सब जगह संयमका घाती होता है तथा महा सदोष है । इसलिये परद्रव्यके संबंध मुनिको सर्वथा निषेध किये गये हैं ॥ १३ ॥ आगे मुनिपदकी पूरणताका कारण अपने आत्माका संबंध है इसलिये आत्मामें लीन होना योग्य है यह कहते हैं;—[ यः ] जो [ श्रमणः ] मुनि [ दर्शनमुखे ] सम्यक् दर्शन आदि अनंतगुण सहित [ ज्ञाने ]



युक्तो भवति तदा जिनोदितव्यवहारविधिविदग्धश्रमणाश्रययालोचनपूर्वकतदुपदिष्टानुष्ठानेन प्रतिसंधानम् ॥ ११ । १२ ॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् परद्रव्यप्रतिबन्धा प्रतिषेध्या इत्युपदिशति;—

अधिवासे व विवासे छेदविहणो भवीय सामण्ये ।

समणो विहरद्दु णिच्चं परिहरमाणो णिवंधाणि ॥ १३ ॥

अधिवासे वा विवासे छेदविहीनो भूत्वा श्रामण्ये ।

श्रमणो विहरतु नित्यं परिहरमाणो निवन्धान् ॥ १३ ॥

सर्व एव हि परद्रव्यप्रतिबन्धा उपयोगोपरह्यक्त्वेन निरुपरागोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

श्वित्तं तत्कर्त्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ एवं गुरुव्यवस्थाकथनरूपेण प्रथमगाथा तथैव प्रायश्चित्तकथनार्थं गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ निर्विकारश्रामण्यछेदजनकान्परद्रव्यानुबन्धान्निषेधयति;—विहरद्दु विहरतु विहारं करोतु । स कः । समणो शत्रुमित्रादिसमचित्तश्रमणः णिच्चं नित्यं सर्वकालं । किं कुर्वन्सन् ? परिहरमाणो परिहरन्सन् । कान् ? णिवंधाणि चेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्येष्वनुबन्धान् । क विहरतु ? अधिवासे अधिकृतगुरुकुलवासे निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मवासे वा विवासे गुरुविरहितवासे वा । किं कृत्वा । सामण्ये निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्र्ये छेदविहीणो भवीय छेदविहीनो

ओंमें यत्नसे प्रवर्तते हैं तथा यत्न करनेपर भी जो किसीतरह शरीरमात्र क्रियासे उपयोग विना ही संयमका भंग हुआ हो तो उस मुनिके सर्वथा अंतरंगमें संयमका भंग नहीं हुआ किंतु वहांपर किसी जातिका वहिरंगमें उस मुनिके उस समयके स्थापन करनेका उपाय आलोचनादिक क्रिया है । आलोचनादिक क्रियासे उस दोषकी निवृत्ति होती है । और जो अंतरंगमें उपयोगकर संयमका घात हुआ हो तो यह साक्षात् संयमका घात है । वह मुनि इस दोषको दूर करनेके लिये जो आचार्य महामुनि भगवंत कथित व्यवहारमार्गमें प्रवीण (चतुर) हो उसके पास जाकर अपना दोष प्रकाशै (कहै) आलोचनादि क्रिया करै । और वह आचार्य जो संयमके शुद्ध करनेका उपाय ( आचरण ) बतलावै उसको अंगीकार करै । इसप्रकार फिर संयमको स्थापन करना चाहिये । ऐसे यह अंतरंग वहिरंगरूप दो प्रकार संयमका छेदोपस्थापन जानना योग्य है ॥ ॥११॥१२॥ आगे मुनिपदके भंगका कारण परद्रव्योंके साथ संबंध है इसलिये परके संबंधोंका निषेध करते हैं;—[ श्रामण्ये ] समताभावरूप यति अवस्थामें [ छेदविहीनो भूत्वा ] अंतरंग पहिरंग भेदसे दोषरहका जो मुनिपदका भंग है उससे रहित होकर [ नित्यं ] सर्वदा ( दमेश ) [ निवन्धान् ] परद्रव्यमें इष्ट अनिष्ट संबंधोंको [ परिहरमाणः ] त्यागता हुआ [अधिवासे] आश्रममें आत्माको अंगीकार कर जहां गुरुका पास दो वहांपर अर्थात् उनपूज्य गुरुओंकी संगतिमें रहो [वा] अथवा[विवासे]

छेदायतनानि तदभावादेवाच्छिन्नश्रामण्यं । अत आत्मन्येवात्मनो नित्याधिकृत्य वासे वा गुरुभ्यो विशिष्टे वासे वा नित्यमेव प्रतिषेधयन् परद्रव्यप्रतिबन्धान् श्रामण्ये छेदविहीनो भूत्वा श्रमणो वर्तताम् ॥ १३ ॥

अथ श्रामण्यस्य परिपूर्णायतनत्वात् स्वद्रव्य एव प्रतिबन्धो विधेय इत्युपदिशति;—

चरदि णिवद्धो णिच्चं समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि ।

पयदो मूलगुणेषु य जो सो पडिपुण्णसामणो ॥ १४ ॥

चरति निबद्धो नित्यं श्रमणो ज्ञाने दर्शनमुखे ।

प्रयतो मूलगुणेषु च यः स परिपूर्णश्रामण्यः ॥ १४ ॥

एक एव हि स्वद्रव्यप्रतिबन्ध उपयोगमार्जकत्वेन मार्जितोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

भूत्वा रागादिरहितनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रच्युतिरूपछेदरहितो भूत्वा । तथाहि—  
गुरुपार्श्वे यावन्ति शास्त्राणि तावन्ति पठित्वा तदनन्तरं गुरुं पृष्ट्वा च समशीलतपोधनैः सह भेदाभेदरत्नत्रयभावनया भव्यानामानन्दं जनयन् तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसन्तोपभावनापञ्चकं भावयन् तीर्थकरपरमदेवगणधरदेवादिमहापुरुषाणां चरितानि स्वयं भावयन् परेषां प्रकाशयंश्च विहरतीति भावः ॥ १३ ॥ अथ श्रामण्यपरिपूर्णकारणत्वात्स्वशुद्धात्मद्रव्ये निरन्तरमवस्थानं कर्त्तव्यमित्याख्याति;—चरदि चरति वर्त्तते । कथंभूतः णिवंधो आधीनः णिच्चं नित्यं सर्वकालं । स कः कर्त्ता । समणो लामालाभादिसमचित्तश्रमणः । क्व निबद्धः ? णाणम्मि वीतरागसर्वज्ञप्रणीत-

अथवा उससे दूसरी जगह रहकर [ विहरतु ] व्यवहार कर्म करो ॥ भावार्थ—जो मुनि अपने गुरुओंके पास रहे तब तो बहुत अच्छी बात है अथवा अन्य जगह रहे तब भी अच्छा है परंतु सब जगह इष्ट अनिष्ट विषयोंमें संबंध ( रागद्वेष ) का त्याग होना चाहिये तथा मुनिपदवीके भंग होजानेका कारण परद्रव्यके साथ संबंध होना ही है क्योंकि परद्रव्यके संबंधसे अवश्य ही उपयोगभूमिमें रागभाव होता है, जिस जगह रागभाव है वहांपर वीतरागभावरूप यतिपदका भंग होता ही है । इसकारण परद्रव्यके साथ संबंध होने उपयोगकी अशुद्धताके कारण हैं । इसलिये परद्रव्यसंबंध मुनिको सर्वथा निषेध किया है । जब परद्रव्यका संबंध मुनिके दूर होजाइगा तो सहजही अंतरंग संयमका घात न होगा तभी निर्दोष मुनिपदकी सिद्धि होगी । इसतरह परद्रव्यसे विरक्त वीतरागभावोंमें लीन मुनि कहीं भी रहो चाहे गुरुके पास रहौ अथवा अन्य जगह रहो सभी जगह वह निर्दोष है । और जो परभावोंमें रागी द्वेषी होता है तो वह सब जगह संयमका घाती होता है तथा महा सदोष है । इसलिये परद्रव्यके संबंध मुनिको सर्वथा निषेध किये गये हैं ॥ १३ ॥ आगे मुनिपदकी पूरणताका कारण अपने आत्माका संबंध है इसलिये आत्मामें लीन होना योग्य है यह कहते हैं;—[ यः ] जो [ श्रमणः ] मुनि [ दर्शनमुखे ] सम्यक् दर्शन आदि अनंतगुण सहित [ ज्ञाने ]

युक्तो भवति तदा जिनोदितव्यवहारविधिविदग्धश्रमणाश्रययालोचनपूर्वकतदुपदिष्टानुष्ठानेन प्रतिसंधानम् ॥ ११ । १२ ॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् परद्रव्यप्रतिबन्धा प्रतिषेध्या इत्युपदिशति;—

अधिवासे च विवासे छेदविह्वणो भवीय सामण्ये ।

समणो विहरदु णिच्चं परिहरमाणो णिवंधाणि ॥ १३ ॥

अधिवासे वा विवासे छेदविहीनो भूत्वा श्रामण्ये ।

श्रमणो विहरतु नित्यं परिहरमाणो निबन्धान् ॥ १३ ॥

सर्व एव हि परद्रव्यप्रतिबन्धा उपयोगोपरलक्षकत्वेन निरुपरागोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

श्रित्तं तत्कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ एवं गुरुव्यवस्थाकथनरूपेण प्रथमगाथा तथैव प्रायश्चित्तकथनार्थं गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्यल्ले गाथात्रयं गतम् । अथ निर्विकारश्रामण्यछेदजनकान्परद्रव्यानुबन्धान्निषेधयति;—विहरदु विहरतु विहारं करोतु । स कः । समणो शत्रुमित्रादिसमचित्तश्रमणः णिच्चं नित्यं सर्वकालं । किं कुर्वन्सन् ? परिहरमाणो परिहरन्सन् । कान् ? णिवंधाणि चेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्येष्वनुबन्धान् । क्व विहरतु ? अधिवासे अधिकृतगुरुकुलवासे निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मवासे वा विवासे गुरुविरहितवासे वा । किं कृत्वा । सामण्ये निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्र्ये छेदविहीणो भवीय छेदविहीनो

ओंमें यत्नसे प्रवर्तते हैं तथा यत्न करनेपर भी जो किसीतरह शरीरमात्र क्रियासे उपयोग बिना ही संयमका भंग हुआ हो तो उस मुनिके सर्वथा अंतरंगमें संयमका भंग नहीं हुआ किंतु वहांपर किसी जातिका वहिरंगमें उस मुनिके उस संयमके स्थापन करनेका उपाय आलोचनादिक क्रिया है । आलोचनादिक क्रियासे उस दोषकी निवृत्ति होती है । और जो अंतरंगमें उपयोगकर संयमका घात हुआ हो तो यह साक्षात् संयमका घात है । वह मुनि इस दोषको दूर करनेके लिये जो आचार्य महामुनि भगवंत कथित व्यवहारमार्गमें प्रवीण (चतुर) हो उसके पास जाकर अपना दोष प्रकाशै (कहै) आलोचनादि क्रिया करै । और वह आचार्य जो संयमके शुद्ध करनेका उपाय (आचरण) बतलावै उसको अंगीकार करै । इसप्रकार फिर संयमको स्थापन करना चाहिये । ऐसे यह अंतरंग वहिरंगरूप दो प्रकार संयमका छेदोपस्थापन जानना योग्य है ॥ ॥११॥१२॥ आगे मुनिपदके भंगका कारण परद्रव्योंके साथ संबंध है इसलिये परके संबंधोंका निषेध करते हैं;—[ श्रामण्ये ] समताभावरूप यति अवस्थामें [ छेदविहीनो भूत्वा ] अंतरंग वहिरंग भेदसे दोतरहका जो मुनिपदका भंग है उससे रहित होकर [ नित्यं ] सर्वदा ( हमेशा ) [ निबन्धान् ] परद्रव्यमें दृष्ट अनिष्ट संबंधोंको [ परिहरमाणः ] त्यागता हुआ [ अधिवासे ] आत्मामें आत्माको अंगीकार कर जहां गुरुका पास हो वहांपर अर्थात् उनपूज्य गुरुजोंकी संगतिमें रहो [ वा ] भयमा[विवासे]

श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुमात्रत्वेनादीयमाने भक्ते तथाविधशरीरवृत्त्य-  
विरोधेन शुद्धात्मद्रव्यनीरङ्गनिस्तरङ्गविश्रान्तिसूत्रणानुसारेण प्रवर्तमाने क्षपणे नीरङ्गनि-  
स्तरङ्गान्तरङ्गद्रव्यप्रसिद्धवर्धमध्यास्यमाने गिरीन्द्रकन्दरप्रभृतावावसथे यथोक्तशरीरवृत्ति-  
हेतुमार्गणार्थमारभ्यमाणे विहारकर्मणि श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमाने  
केवलदेहमात्रे उपधौ अन्योन्यबोधवोधकभावमात्रेण कथंचित्परिचिते श्रमणे शब्दपुद्गलो-  
ल्लाससंवलनकश्मलितचिद्धित्तिभागायां शुद्धात्मद्रव्यविरुद्धायां चैतेष्वपि तद्विकल्पाचित्रि-  
तचित्तमित्तितया प्रतिषेध्यः प्रतिबन्धः ॥ १५ ॥

दर्पविनाशकारणभूतत्वेन निर्विकल्पसमाधिहेतुभूते क्षपणे वानशने आवसहे वा परमात्मतत्त्वो-  
पलब्धिसहकारिभूते गिरिगुहावावसथे वा पुणो विहारे वा शुद्धात्मभावनासहकारिभूताहारनी-  
हारार्थव्यवहारार्थव्यवहारे वा । पुनर्देशान्तरविहारे वा उपधिम्हि शुद्धोपयोगभावनासहकारि-  
भूतशरीरपरिग्रहे ज्ञानोपयोगकरणादौ वा समणम्हि परमात्मपदार्थविचारसहकारिकारणभूते  
श्रमणे समशीलसंघातकतपोधने वा । विकथम्हि परमसमाधिविवातशृङ्गारवीररागादिकथायां  
चेति । अयमत्रार्थः—आगमविरुद्धाहारविहारादिषु तावत्पूर्वमेव निषिद्धः । योग्याहारविहारादिष्वपि

[ आवसथे ] गुफा आदिक निवासस्थलमें [ वा पुनः ] अथवा [ विहारे ]  
विहारकार्यमें [ वा ] अथवा [ उपधौ ] शरीरमात्रपरिग्रहमें [ वा ] अथवा [ श्रमणे ]  
दूसरे मुनियोंमें [ वा ] अथवा [ विकथायां ] अधर्मचर्चामें [ निबन्ध ] ममत्व-  
पूर्वकसम्बन्धको [ न ] नहीं [ इच्छति ] चाहता है ॥ भावार्थ—मुनिपदका  
निमित्तकारण शरीर है और शरीरका आधार आहार है इसलिये उसको मुनि ग्रहण  
करते हैं । और अपनी शक्तिके अनुसार शुद्धात्मामें निश्चल स्थिरताके निमित्तभूत उप-  
वासको स्वीकार करते हैं । और मनकी चंचलताको रोकनेकेलिये एकान्त पर्वतकी  
गुफादिकके निवासको तथा शरीरकी प्रवृत्तिकेलिये आहार नीहार क्रियामें विहारका-  
र्यको भी करते हैं । और उनके मुनिपदकीका निमित्तकारण शरीरमात्र परिग्रह भी  
है तथा गुरुशिष्यके भेदसे पठन पाठन अवस्थामें दूसरे मुनियोंका सम्बन्ध भी है और  
शुद्धात्मद्रव्यकी विरोधिनी पौद्गलिक शब्दोंके द्वारा कथा चर्चा भी है । इत्यादि यद्यपि  
मुनिके परद्रव्यरूप परिग्रह है तथापि इनमें ममत्वबुद्धिरूप चित्तवृत्तिका निषेध है । यद्यपि  
मुनिने स्थूल परद्रव्यका त्याग तो प्रथम ही करदिया है तथापि मुनिपदमें भी इसप्रका-  
रके सूक्ष्म परद्रव्यके अस्तित्वमें ममत्वभाव नहीं करने चाहिये, क्योंकि इनमें भी ममत्व  
भाव करनेसे शुद्धात्मद्रव्यवृत्तिरूप मुनिपदका भंग होजाता है । इसलिये सूक्ष्म परद्रव्योंमें

परिपूर्णतायतनं, तत्सद्भावादेव परिपूर्णं श्रामण्यं । अतो नित्यमेव ज्ञाने दर्शनादौ च प्रति-  
बद्धेन मूलगुणप्रयततया चरितव्यं ज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मद्रव्यप्रतिबद्धशुद्धास्तित्वमात्रेण  
वर्तितव्यमिति तात्पर्यम् ॥ १४ ॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् यतिजनासन्नः सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्धोपि प्रतिषेध्य  
इत्युपदिशति;—

भक्ते वा खचणे वा आवसथे वा पुणो विहारे वा ।

उवधिम्मि वा णिवद्धं णेच्छदि समणम्मि विकथम्मि ॥ १५ ॥

भक्ते वा क्षपणे वा आवसथे वा पुनर्विहारे वा ।

उपधौ वा निवद्धं नेच्छति श्रमणे विकथायाम् ॥ १५ ॥

परमागमज्ञाने तत्कलभूतस्वसंवेदनज्ञाने वा दंसणमुहम्मि दर्शने तत्त्वार्थश्रद्धानं तत्कलभूतनिज-  
शुद्धात्मोपादेयरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वं वा तत्प्रमुखेष्वनन्तसुखादिगुणेषु पयदो मूलगुणेषु य  
प्रणतः प्रयत्नपरश्च । केषु । मूलगुणेषु निश्चयमूलगुणाधारपरमात्मद्रव्ये वा जो सो पडिपुण्ण-  
सामण्यो य एवं गुणविशिष्टश्रमणः स परिपूर्णश्रामण्यो भवतीति । अयमत्रार्थः—निजशुद्धात्म-  
भावनारतानामेव परिपूर्णश्रामण्यं भवतीति ॥ १४ ॥ अथ श्रामण्यछेदकारणत्वात्प्रासुकाहारादि-  
ष्वपि ममात्वं निषेधयति;—णेच्छदि नेच्छति । कम्? णिवद्धं निबद्धमांबद्धम् । क? भक्ते वा  
शुद्धात्मभावनासहकारिभूतदेहस्थितिहेतुत्वेन गुह्यमाणे भक्ते वा प्रासुकाहारे खमणे वा इन्द्रिय-

ज्ञानस्वरूप आत्मानं [ नित्यं ] हमेशा [ चरति ] प्रवृत्त ( लीन ) होता है [ सः ]  
वह [ मूलगुणेषु ] २८ मूलगुणोंमें [ प्रयतः ] सावधान होकर उद्यमी हुआ  
[ परिपूर्णश्रामण्यः ] अंतरंग ब्राह्म संयम भंगसे रहित अखंडित यतिपदवी अर्थात्  
परिपूर्णमुनिपदका धारक होता है ॥ भावार्थ—अपने आत्मानं जो रत ( लीन ) होता  
वह परिपूर्ण मुनिपदवीका कारण है क्योंकि जब यह अपनेमें रत होता है तभी इसके  
परद्रव्यमें ममत्वभाव छूटता है । और जिस अवस्थामें यह परद्रव्यसे विरक्त हुआ कि  
वही इसका उपयोगभी निर्मल हो जाता है जिस जगह उपयोगकी निर्मलता है वहां  
अवश्य ही मुनिपदकी सिद्धि होती है । इसलिये आत्मानं रत होना परिपूर्ण मुनिपदका  
कारण है । ऐसा समझकर अपने ज्ञान दर्शनादि अनंतगुणोंमें अपना सर्वस्व जान रत होना  
योग्य है और अट्टावीस मूलगुणोंमें यत्नसे प्रवृत्त होना योग्य है । इससे यह बात सिद्ध  
हुई कि मुनिपदकी पूर्णता एक आत्मानं लीन होनेसे ही होती है इसकारण अन्य  
परद्रव्यका संबंध त्यागना ही योग्य है ॥ १४ ॥ आगे मुनिके निकटमें यद्यपि सूक्ष्म पर-  
द्रव्य भी हैं तथापि उनमें मुनिको रागभावपूर्वक सम्बन्ध निषिद्ध है यह कहते हैं;—  
जो महागुनि है वह [ भक्ते ] आहारमें [ वा ] अथवा [ क्षपणे ] इन्द्रियोंको उत्तेजित  
न होने देनेका कारण तथा निर्बिकल्प समाधिके कारणभूत अनदानमें [ वा ] अथवा

यता या चर्या सा खलु तस्य सर्वकालमेव सन्तानवाहिनी छेदानर्थान्तरभूता हिंसैव ॥ १६ ॥

अथान्तरङ्गबहिरङ्गत्वेन छेदस्य द्वैविध्यमुपदिशति;—

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।

पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदीसु ॥ १७ ॥

प्रियतां वा जीवतु वा जीवोऽयताचारस्य निश्चिता हिंसा ।

प्रयतस्य नास्ति बन्धो हिंसामात्रेण समितिपु ॥ १७ ॥

अशुद्धोपयोगोऽन्तरङ्गछेदः, परप्राणव्यपरोपो बहिरङ्गः । तत्र परप्राणव्यपरोपसद्भावे तदसद्भावे वा तदविनाभाविनाप्रयताचारेण प्रसिद्धचदशुद्धोपयोगसद्भावस्य सुनिश्चितहिंसाभावप्रसिद्धेस्तथा तद्विनाभाविना प्रयताचारेण प्रसिद्धचदशुद्धोपयोगसद्भावपरस्य पर-

स्वत्वा तपोधनैः अशनशयनादिव्यापारः पुनस्त्यक्तो नायाति । ततः कारणादन्तरङ्गक्रोधादिश-  
शुनिप्रहार्थं तत्रापि सङ्कुशो न कर्त्तव्य इति ॥ १६ ॥ अथान्तरङ्गबहिरङ्गहिंसारूपेण द्विविध-

छेदमाख्याति;—मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा प्रियतां वा

जीवतु वा जीवः प्रयत्नरहितस्य निश्चिता हिंसा भवति बहिरङ्गान्यजीवस्य मरणेऽमरणे वा निर्वि-

कारस्वसंवित्तिक्षणप्रयत्नरहितस्य निश्चयशुद्धचैतन्यप्राणव्यपरोपणरूपा निश्चयहिंसा भवति ।

पयदस्स णत्थि बंधो बाह्याभ्यन्तरप्रयत्नपरस्य नास्ति बन्धः । केन? हिंसामेत्तेण द्रव्य-

हिंसामात्रेण । कथंभूतस्य पुरुषस्य । समिदस्स समितस्य शुद्धात्मस्वरूपे सम्यगितो गतः

परिणतः समितस्तस्य समितस्य । व्यवहारेणैर्यादिपञ्चसमितियुक्तस्य च । अयमत्रार्थः—स्वस्वभा-

वनारूपनिश्चयप्राणस्य विनाशकारणभूता रागादिपरिणतिनिश्चयहिंसा हिंसा भण्यते रागाद्युत्पत्ते-

क्रियाओंमें प्रवृत्ति है वह सब निरंतर शुद्धोपयोगरूप संयमकी घातनेवाली हिंसा ही है

इसलिये मुनिको यत्नसे ही रहना योग्य है ॥ १६ ॥ आगे अन्तरङ्ग बहिरङ्गके भेदसे

संयमके घातके भी दो भेद हैं यह दिखाते हैं;—[ जीवः ] दूसरा जीव, [ प्रियतां

वा ] अथवा मरै [ जीवतु वा ] अथवा जीवित रहे [ अयताचारस्य ] जिस

मुनिका आचार यत्नपूर्वक नहीं है उसके [ हिंसा ] हिंसा [ निश्चिता ] निश्चित

है क्योंकि [ समितिपु ] पांचो समितियोंमें [ प्रयतस्य ] यत्नपूर्वक प्रवृत्तिकरने-

वाले मुनिके [ हिंसामात्रेण ] बाह्यमें जीवके घातके होनेमात्रसे [ बन्धः ] बन्ध

[ नास्ति ] नहीं होता ॥ भावार्थ—हिंसा दो प्रकार है एक अन्तरङ्ग दूसरी बहि-

रङ्ग, ज्ञानप्राणकी घात करनेवाली अशुद्धोपयोगरूप प्रवृत्तिको 'अन्तरङ्ग हिंसा' कहते हैं ।

बाह्यजीवके प्राणोंका घात करनेको 'बहिरङ्ग हिंसा' कहते हैं । इन दोनोंमें अन्तरङ्गहिंसा

बलवती है । क्योंकि बाह्यमें दूसरे जीवका घात हो या न हो किन्तु यदि मुनिके यत्न-

रहित हलनचलनादि क्रिया हो तो उस मुनिके यत्नरहित आचारसे अवश्यमेव उपयो-

गकी चंचलता होती है । अतएव अशुद्धोपयोगके होनेसे आत्माके चैतन्य प्राणका घात

अथ को नाम छेद इत्युपदिशति;—

अपयत्ता वा चरिया सयणासणटाणचंकमादीसु ।

समणस्स सच्चकालं हिंसा सा संततत्ति मदा ॥ १६ ॥

अप्रयता वा चर्या शयनासनस्थानचङ्गमणादिपु ।

श्रमणस्य सर्वकालं हिंसा सा सन्ततेति मता ॥ १६ ॥

अशुद्धोपयोगो हि छेदः, शुद्धोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य छेदनात् तस्य हिंसनात् । स एव च हिंसा । अतः श्रमणस्याशुद्धोपयोगाविनाभाविनी, शयनासनस्थानचङ्गमणाद्विषय-

ममत्वं न कर्त्तव्यमिति ॥ १५ ॥ एवं संक्षेपेणाचाराश्रयनादिकथिततपोधनविहारव्याख्यानमुष्य-  
त्वेन चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ शुद्धोपयोगभावनाप्रतिबन्धकछेदं कथयति;—मदा मता  
सम्मता । का? हिंसा शुद्धोपयोगलक्षणश्रामण्यछेदकारणभूता हिंसा । कथंभूता । संततियत्ति  
सन्तता निरन्तरेति । का हिंसा मता । चरिया चर्या चेष्टा यदि चेत् । कथंभूता । अपयत्ता वा  
अप्रयत्ता वा निःकषायस्वसंविच्चिरूपप्रयत्नरहिता संक्षेपसहितेत्यर्थः । केषु विषयेषु । सयणासण-  
टाणचंकमादीसु शयनासनस्थानचङ्गमणस्याप्यापतपश्चरणादिषु । कस्य । समणस्स श्रमणस्य  
तपोधनस्य । क? सच्चकाले सर्वकाले । अयमत्रार्थः—बाह्यव्यापाररूपाः शत्रवस्तावत्पूर्वमेव

भी सम्बन्ध करनेका निषेध है ॥ १५ ॥ आगे शुद्धोपयोगरूप यत्नत्वका मुनिके कौनसा  
भंग है इस बातको बताते हैं;—[ वा ] अथवा [ श्रमणस्य ] मुनिके [ शयना-  
सनस्थानचङ्गमणादिषु ] सोने बैठने खड़ेहोने चलने आदि अनेक क्रियाओंमें  
[ वा ] जो [ अप्रयता ] यत्नरहित [ चर्या ] प्रवृत्ति होती है [ सा ] वह [ स-  
र्वकालं ] हमेशा [ संतता ] अखण्डित [ हिंसा ] चैतन्य प्राणोंका विनाश कर-  
नेवाली हिंसा है [ इति ] इसप्रकार [ मता ] वीतराग सर्वज्ञदेवने कही है ॥  
भावार्थ—संयमका घात ही अशुद्ध उपयोग है क्योंकि मुनिपद शुद्धोपयोगरूप है ।  
अशुद्धोपयोगसे मुनिपदका नाश होता है और अशुद्धोपयोगका होना यही हिंसा है,  
क्योंकि अशुद्धोपयोगके होनेसे शुद्धोपयोगरूप आत्मीक भावप्राणका नाश होता है अतः  
सभसे बड़ी हिंसा ज्ञानदर्शनरूप शुद्धोपयोगके घातसे ही होती है । वह अशुद्धोपयोग  
मुनिके निरंतर उस समय ही समझना चाहिये जिस समय मुनि सोना बैठना चलना  
इत्यादि क्रियाओंमें यत्नपूर्वक प्रवृत्ति नहीं करते । यत्नके विना मुनिकी क्रिया अट्टाईस  
मूलगुणकी धाविनी है । यत्न उसही समयमें नहीं होता जिस समयमें उपयोगकी वं-  
चलता होती है, यदि उपयोगकी वंचलता न हो तो यत्न अवश्य हो । इसलिये उप-  
योगकी जो निश्चलता है वही शुद्धोपयोग है । यत्नरहित क्रियामें भंग नहीं होता और  
यत्नरहित क्रियासे भंग होता है इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि मुनिकी जो यत्नरहित

अयताचारः श्रमणः पट्स्वपि कायेषु बन्धक इति मतः ।

चरति यतं यदि नित्यं कमलमिव जले निरुपलेपः ॥ १८ ॥

यतस्तदविनाभाविना अप्रयताचारत्वेन प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावः पट्कायप्राणव्यप-  
रोपप्रत्ययबन्धप्रसिद्ध्या हिंसक एव स्यात् । यतश्च तद्विना भाविना प्रयताचारत्वेन प्रसि-  
द्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावः परप्रत्ययबन्धलेशस्याप्यभावाज्जलदुर्ललितं कमलमिव निरुपलेपत्व-

जन्तुघातेपि यावतांशेन स्वस्वभावचलनरूपा रागादिपरिणतिलक्षणभावार्हिंसा तावतांशेन बन्धो  
भवति, न च पादसंघट्टमात्रेण तस्य तपोधनस्य रागादिपरिणतिलक्षणभावार्हिंसा नास्ति । ततः कर-  
णाद्वन्धोऽपि नास्तीति ॥ १॥२॥ अथ निश्चयार्हिंसारूपोन्तरङ्गछेदः सर्वथा प्रतिषेध्य इत्युपदिशति;—

अयदाचारो निर्मलात्मानुभूतिभावनालक्षणप्रयत्नरहितत्वेन अयताचारः प्रयत्नरहितः ।  
स कः । समणो श्रमणस्तपोधनः छस्सुवि कायेसु बधकरोत्ति मदो पट्स्वपि कायेषु बधकरो  
हिंसाकर इति मतः सम्मतः कथितः । चरदि आचरति वर्त्तते । कथं यथा भवति । जदं  
यतं यत्नपरं जदि यदिचेत् णिच्चं नित्यं सर्वकालं तदा कमलं व जले णिरुवलेवो  
कमलमिव जले निरुपलेप इति । एतावता किमुक्तं भवति—शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणशुद्धोपयोग-  
परिणतपुरुषः पद्मजीवकुले लोके विचरन्नपि यद्यपि बहिरङ्गद्रव्यार्हिंसामात्रमस्ति तथापि

हैं;—[ अयताचारः ] जिसके यत्नपूर्वक आचार क्रिया नहीं ऐसा [ श्रमणः ] जो  
मुनि वह [ पट्स्वपि ] छहू [ कायेषु ] पृथिवी आदि कायोंमें [ बन्धकः ] बन्ध-  
का करनेवाला है [ इति ] ऐसा [ मतः ] सर्वज्ञदेवने कहा है । [ यदि ] यदि  
[ नित्यं ] हमेशह [ यतं ] यतिक्रियामें यत्नका [ चरति ] आचरण करता है  
[ तदा ] तो वह मुनि [ जले ] जलमें [ कमलम् ] कमलकी [ इव ] तरह  
[ निरुपलेपः ] कर्मबन्धरूप लेपसे रहित होता है ॥ भावार्थ—जिससमय उपयोग  
रागादिभावसे दूषित होता है उस समय अवश्यमेव यति क्रियामें शिथिल होकर गु-  
णोंमें यत्नरहित होता है । जहां यत्नरहित क्रिया होती है वहां अवश्यमेव अशुद्धोपयो-  
गका अस्तित्व है । यत्नरहितक्रियासे पट्कायकी विराधना होती है । इससे अशुद्धोपयोगी  
मुनिके हिंसकभावसे बन्ध होता है । जब मुनिका उपयोग रागादिभावसे रंजित न हो  
तब अवश्यही यतिक्रियामें सावधान होता हुआ यत्नसे रहता है उस समय शुद्धोपयो-  
गका अस्तित्व होता है । और यत्नपूर्वक क्रियासे जीवकी विराधनाका इसके अंश भी  
नहीं है । अतएव अहिंसकभावसे कर्मलेपसे रहित है । और यदि यत्न करते हुए भी  
कदाचित् परजीवका घात होजाय तोभी शुद्धोपयोगरूप अहिंसकभावके अस्तित्वसे  
कर्मलेप नहीं लगता । जिसप्रकार कमल यद्यपि जलमें डूबा रहता है तथापि अपने  
अस्पृश्यस्वभावसे निलेप ही है, उसीतरह यह मुनिभी होता है । इसलिये जिन २  
भावोंसे शुद्धोपयोगरूप अन्तरङ्ग संयमका सर्वथा घात हो उन भावोंका निषेध है और अ-



प्राणव्यपरोपसद्भावेपि घन्धाप्रसिद्ध्या सुनिश्चितहिंसाऽभावप्रसिद्धेश्चान्तरङ्ग एव छेदो बली-  
यान् न पुनर्वहिरङ्गः । एवमप्यन्तरङ्गछेदायतनमात्रत्वाद्बहिरङ्गछेदोऽभ्युगम्येतैव ॥ १७ ॥

अथ सर्वथान्तरङ्गछेदः प्रतिषेध्य इत्युपदिशति;—

अयदाचारो समणो छस्सुवि कायेसु बंधगोत्ति मदो ।

चरदि जदं जदि णिच्चं कमलं व जले णिरुवलेवो ॥ १८ ॥

बहिरङ्गनिमित्तभूतः परजीवघातो व्यवहारहिंसेति द्विधा हिंसा ज्ञातव्या । किन्तु विशेषः—बहि-  
रङ्गहिंसा भवतु मा भवतु स्वस्वभावनारूपनिश्चयप्राणघाते सति निश्चयहिंसा नियमेन भवतीति ।  
ततः कारणात्सैव मुख्येति ॥ १७ ॥ अथ तमेवार्थं दृष्टान्तदार्ष्टान्ताभ्यां दृढयति;—

उच्चालियम्हि पाए इरियासमिदस्स णिग्गमत्थाए ।

आवाधेज्ज कुलिंगं मरिज्ज तं जोगमासेज्ज ॥ १ ॥

ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये ।

मुच्छापरिग्गहोच्चिय अज्झप्पमाणदो दिट्ठो ॥ २ ॥ जुम्मं ।

उच्चालियम्हि पाए उक्लिप्ते चालिते सति पादे । कस्य । इरियासमिदस्स ईर्यास-  
मितितपोधनस्य । कः ? णिग्गमत्थाए विवक्षितस्यानानिर्गमस्थाने आवाधेज्ज आवाधेत  
पीड्येत । स कः । कुलिंगं सूक्ष्मजन्तुः न केवलमावाधेत मरिज्ज त्रियतां वा । किं कृत्वा ।  
तं जोगमासेज्ज तं पूर्वोक्तं पादयोगं पादसंघट्टनमाश्रित्य प्राप्येति । ण हि तस्स तण्णि-  
मित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये न हि तस्य तन्निमित्तो बन्धः सूक्ष्मोऽपि देशितः  
समये तस्य तपोधनस्य तन्निमित्तं सूक्ष्मजन्तुघातनिमित्तो बन्धः सूक्ष्मोऽपि स्तोकोऽपि नैव दृष्टः  
समये परमागमे । दृष्टान्तमाह—मुच्छापरिग्गहोच्चिय मूर्च्छापरिग्रहश्चैव अज्झप्पमाणदो  
दिट्ठो अघ्यातं दृष्टमिति । अयमत्रार्थः—“मूर्च्छा परिग्रहः” इति सूत्रे यथाघ्यात्मानुसारेण  
मूर्च्छारूपरागादिपरिणामानुसारेण परिग्रहो भवति न च बहिरङ्गपरिग्रहानुसारेण तथात्र सूक्ष्म-  
होता है इसीलिये हिंसा अवश्यमेव है । और यदि मुनि यत्नसे पंचसमितियोंमें प्रवृत्ति  
करै तो वह मुनि उपयोगकी निश्चलतासे शुद्धोपयोगरूप संयमका रक्षक होता है । इस-  
लिये घाहमें कदाचित् दूसरे जीवका घात भी हो तब भी अन्तरङ्ग अहिंसक भावके  
बलसे घन्ध नहीं होता । इसलिये शुद्धोपयोगरूप संयमकी घातनेवाली अन्तरङ्ग हिंसा ही  
फलवती है । अन्तरङ्गहिंसासे अवश्यही घन्ध होता है । किन्तु बाह्यहिंसासे घन्ध होता  
भी है और नहीं भी होता है । यदि यत्न करनेपर भी बाह्य हिंसा होजाय तो घन्ध नहीं  
होता । और जो यत्न न हो तो अवश्य ही बाह्यहिंसा घन्धका कारण होती है । और बाह्य  
हिंसाका जो निषेध किया है सो भी अन्तरङ्गहिंसाके निवारण करनेके लिये ही किया है ।  
इसलिये अन्तरङ्गहिंसा त्याग्य है और शुद्धोपयोगरूप अहिंसकभाव उपादेय है ॥ १७ ॥  
आगे सर्वथा अन्तरङ्ग शुद्धोपयोगरूप संयमका घात निषेध करने योग्य है यह कहते

अयताचारः श्रमणः पट्स्वपि कायेषु बन्धक इति मतः ।

चरति यतं यदि नित्यं कमलमिव जले निरुपलेपः ॥ १८ ॥

यतस्तदविनाभाविना अप्रयताचारत्वेन प्रसिद्धयदशुद्धोपयोगसद्भावः पट्कायप्राणव्यप-  
रोपप्रत्ययबन्धप्रसिद्ध्या हिंसक एव स्यात् । यतश्च तद्विना भाविना प्रयताचारत्वेन प्रसि-  
द्धयदशुद्धोपयोगसद्भावः परप्रत्ययबन्धलेशस्याप्यभावाज्जलदुर्ललितं कमलमिव निरुपलेपत्व-

जन्तुघातेपि यावतांशेन स्वस्वभावचलनरूपा रागादिपरिणतिलक्षणभावहिंसा तावतांशेन बन्धो  
भवति, न च पादसंवृष्टमात्रेण तस्य तपोधनस्य रागादिपरिणतिलक्षणभावहिंसा नास्ति । ततः कर-

णाद्वन्धोऽपि नास्तीति ॥ १२ ॥ अथ निश्चयहिंसारूपोन्तरङ्गछेदः सर्वथा प्रतिषेध इत्युपदिशति;—  
अयदाचारो निर्मलात्मानुभूतिभावनालक्षणप्रयत्नरहितत्वेन अयताचारः प्रयत्नरहितः ।

स कः । समणो श्रमणस्तपोधनः छस्सुवि कायेसु वधकरोत्ति मदो पट्स्वपि कायेषु वधकरो  
हिंसाकर इति मतः सम्मतः कथितः । चरदि आचरति वर्त्तते । कथं यथा भवति । जदं

यतं यत्नपरं जदि यदिचेत् णिच्चं नित्यं सर्वकालं तदा कमलं व जले णिरुवलेवो  
कमलमिव जले निरुपलेप इति । एतावता किमुक्तं भवति—शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणशुद्धोपयोग-

परिणतपुरुषः पद्मजीवकुले लोके विचरन्नपि यद्यपि बहिरङ्गद्रव्याहिंसामात्रमस्ति तथापि  
है;—[ अयताचारः ] जिसके यत्नपूर्वक आचार क्रिया नहीं ऐसा [ श्रमणः ] जो

मुनि वह [ पट्स्वपि ] छहू [ कायेषु ] पृथिवी आदि कायोंमें [ बन्धकः ] बन्ध-  
का करनेवाला है [ इति ] ऐसा [ मतः ] सर्वज्ञदेवने कहा है । [ यदि ] यदि

[ नित्यं ] हमेशह [ यतं ] यतिक्रियामें यत्नका [ चरति ] आचरण करता है  
[ तदा ] तो वह मुनि [ जले ] जलमें [ कमलम् ] कमलकी [ इव ] तरह

[ निरुपलेपः ] कर्मबन्धरूप लेपसे रहित होता है ॥ भावार्थ—जिससमय उपयोग  
रागादिभावसे दूषित होता है उस समय अवश्यमेव यति क्रियामें शिथिल होकर गु-

णोंमें यत्नरहित होता है । जहां यत्नरहित क्रिया होती है वहां अवश्यमेव अशुद्धोपयो-  
गका अस्तित्व है । यत्नरहितक्रियासे पट्कायकी विराधना होती है । इससे अशुद्धोपयोगी

मुनिके हिंसकभावसे बन्ध होता है । जब मुनिका उपयोग रागादिभावसे रंजित न हो  
तब अवश्यही यतिक्रियामें सावधान होता हुआ यत्नसे रहता है उस समय शुद्धोपयो-

गका अस्तित्व होता है । और यत्नपूर्वक क्रियासे जीवकी विराधनाका इसके अंश भी  
नहीं है । अतएव अहिंसकभावसे कर्मलेपसे रहित है । और यदि यत्न करते हुए भी

कदाचित् परजीवका घात होजाय तोभी शुद्धोपयोगरूप अहिंसकभावके अस्तित्वसे  
कर्मलेप नहीं लगता । जिसप्रकार कमल यद्यपि जलमें डूबा रहता है तथापि अपने  
अस्पृश्यस्वभावसे निर्लेप ही है, उसीतरह यह मुनिभी होता है । इसलिये जिन २  
भाषोंसे शुद्धोपयोगरूप अन्तरङ्ग संयमका सर्वथा घात हो उन भाषोंका निषेध है और अ-

प्रसिद्धेरहिंसक एव स्यात् । ततस्तैस्तैः सर्वैः प्रकारैरशुद्धोपयोगरूपोन्तरङ्गछेदः प्रतिषिद्धो  
 यैर्यैस्तदायतनमात्रभूतः परप्राणव्यपरोपरूपो बहिरङ्गच्छेदो दूरादेव प्रतिषिद्धः स्यात् ॥१८॥  
 अथैकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वादुपधितद्वत्प्रतिषेध इत्युपदिशति;—

हृददि च ण हृददि बंधो मदे हि जीवेऽथ कायचेष्टाम् ।  
 बंधो ध्रुवमुवधीदो इदि समणा छंडिया सव्वं ॥ १९ ॥

भवति वा न भवति बन्धो मृते हि जीवेऽथ कायचेष्टायाम् ।

बन्धो ध्रुवमुपधेरिति श्रमणास्त्यक्तवन्तः सर्वम् ॥ १९ ॥

यथा हि कायव्यापारपूर्वकस्य परप्राणव्यपरोपस्याशुद्धोपयोगसद्भावासद्भावाभ्यामनैका-  
 न्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमनैकान्तिकमिष्टं, न खलु तयोपधेः, तस्य सर्वथा तदविनाभावित-  
 प्रसिद्धयदैकान्तिकाशुद्धोपयोगसद्भावस्यैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमैकान्तिकमेव । अत एव

निश्चयहिंसा नास्ति । ततः कारणाच्छुद्धपरमात्मभावनादलेन निश्चयहिंसेव सर्वतात्पर्येण  
 परिहर्त्तव्येति ॥ १८ ॥ अथ बहिरङ्गजीवघाते बन्धो भवति न भवति वा परिग्रहे सति  
 नियमेन भवतीति प्रतिपादयति;—हृददि च ण हृददि बंधो भवति वा न भवति बन्धः  
 कस्मिन्सति मदं हि जीवे मृते सत्यन्यजीवे । अथ अहो । कस्यां सत्याम् ? कायचेष्टं हि  
 कायचेष्टायाम् । तर्हि कथं बन्धो भवति । बंधो ध्रुवमुवधीदो बन्धो भवति ध्रुवं निश्चितं ।  
 कस्मादुपधेः परिग्रहात्सकाशादिति हेतोः समणा छंडिया सव्वं श्रमणा महाश्रमणाः  
 सर्वज्ञाः पूर्वं दीक्षाकाले शुद्धबुद्धैकस्वभावं निजात्मानमेव परिग्रहं कृत्वा शेषं समस्तं बाह्या-  
 म्यन्तरपरिग्रहं छर्दितवन्तः । एवं ज्ञात्वा शेषतपोधनैरपि निजपरमात्मपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा

न्तरङ्ग संयमके घातका कारण परजीवकी बाधारूप बहिरङ्ग संयमका भी घात सर्वथा त्याज्य  
 है ॥१८॥ आगे सर्वथा अन्तरङ्ग संयमका घातक होनेसे मुनिको परिग्रहका सर्वथा निषेध  
 करते हैं;—[अथ] आगे अर्थात् मुनिको परिग्रहसे संयमका घात दिखाते हैं कि [कायचे-  
 ष्टायां] मुनिकी हलन चलन क्रियाके होनेसे [ जीवे ] प्रस स्थावर जीवके [ मृते  
 सति ] मरणपर [ हि ] निश्चयसे [ बन्धः ] कर्मलेप [ भवति ] होता है [ वा ]  
 अथवा [ न ] नहीं भी [ भवति ] होता है । किन्तु [ उपधितः ] परिग्रहसे  
 [ बन्धः ] बन्ध [ ध्रुवं ] निश्चयसे होता ही है । [ इति ] ऐसा जानकर [ श्र-  
 मणाः ] महामुनि अरहंत देव [ सर्वे ] समस्तही परिग्रहको पहलेही [ त्यक्तवन्तः ]  
 छोड़ते हुए ॥ **प्रार्थना**—मुनिके हलनचलनादि क्रियासे परजीवका जो घात होता  
 है उस घातमे मुनिके शरीरका बन्ध नहीं होता, और नहीं भी होता है  
 यहां अनेकान्त है एक नि नहीं । क्योंकि य  
 नहीं होता । इसलिये बाह्य णिपातसे बन्ध  
 बन्ध होता भी है और नहीं होता है ।

भगवन्तोऽर्हन्तः परमाः श्रमणाः स्वयमेव सर्वमेवोपधिं प्रतिपिद्धवन्तः । अत एव चापरै-  
रप्यन्तरङ्गच्छेदवत्तदनान्तरीयकत्वात्प्रागेव सर्व एवोपधिः प्रतिपेध्यः । “वक्तव्यमेव किल  
यत्तदशेषमुक्तमेतावतैव यदि चेतयतेऽत्र कोपि । व्यामोहजालमतिदुस्तरमेव नूनं निश्चेत-  
नस्य वचसामतिविस्तरेपि” ॥ १९ ॥

अथान्तरङ्गच्छेदप्रतिषेध एवायमुपधिप्रतिषेध इत्युपदिशति;—

ण हि गिरवेक्खो चाओ ण ह्वदि भिक्खुस्स आसवविसुद्धी ।  
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिओ ॥ २० ॥

न हि निरपेक्षस्यागो न भवति भिक्षोरास्रवविशुद्धिः ।

अविशुद्धस्य च चित्ते कथं नु कर्मक्षयो विहितः ॥ २० ॥

शेषः सर्वोऽपि परिग्रहो मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च त्यजनीय इति । अत्रेदमुक्तं भवति—  
शुद्धचेतन्यरूपनिश्चयप्राणे रागादिपरिणामरूपनिश्चयहिंसया पातिते सति नियमेन बन्धो  
भवति । परजीवघाते पुनर्भवति न भवति नियमो नास्ति, परद्रव्ये ममत्वरूपमूर्च्छापरिग्रहेण तु  
नियमेन भवत्येवेति ॥ १९ ॥ एवं भावहिंसाव्याख्यानमुत्पत्यत्वेन पञ्चमस्थले गाथापट्टं गतम् ।  
इति पूर्वोक्तक्रमेण ‘एवं पणमिय सिद्धे’ इत्यायं कविशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेनोत्सर्गचारित्रव्या-  
ख्याननामा “प्रथमोऽन्तराधिकारः” समाप्तः । अतः परं चारित्रस्य देशकालापेक्षयापहतसंयमरू-

और नहीं भी होय परन्तु यदि मुनि परिग्रहका ग्रहण करै तो बन्ध होय भी नहीं भी  
होय ऐसा नहीं है किन्तु निश्चयसे बन्ध होता है । क्योंकि परिग्रहके ग्रहणसे सर्वथा  
अशुद्धोपयोग होता है । अतः अन्तरङ्गसंयमका घात होनेसे बन्ध निश्चित है । अन्तरङ्ग  
अभिलाषाके विना परिग्रहका ग्रहण कदाचित् नहीं होता, अन्तरङ्ग भावके विना शरी-  
रकी क्रियासे यत्न करते हुए परजीवका घात हो भी जाय, परन्तु परिग्रहका ग्रहण  
अन्तरङ्गभाव विना शरीरकी चेष्टासे कदाचित् नहीं होता । इसलिये ऐसा जानकर ही  
भगवान् वीतरागदेव परिग्रहका सर्वथा त्याग करते हुए । और दूसरे मुनियोंको भी यही  
चाहिये कि वे भी समस्त परिग्रहका त्याग करैँ । शुद्धोपयोगरूप अन्तरङ्ग संयमका घात  
करो या परिग्रहका ग्रहण करो ये दोनों समान हैं । संयमके घातक दोनों हैं । इसलिये  
मुनिको चाहिये कि जिस प्रकार अन्तरङ्ग संयमके घातका निषेध करै उसही प्रकार  
परिग्रहको सबसे पहले छोड़ दे । बहुत कहाँतक कहें जो समझनेवाला है वह थोड़ेहीमें  
समझजाता है और जो समझनेवाला न होय तो उसको जितना वचनका विस्तार दि-  
खायाजाय वह सब ही मोहका समूह अपार बाग्जाल होता है समझता किसीप्रकार  
भी नहीं ॥१९॥ आगे अन्तरङ्गभावसे जो घाह्य परिग्रहका त्याग है वह अन्तरङ्ग शुद्धो-  
पयोगरूप संयमके घातका निषेधक नहीं है ऐसा उपदेश करते हैं;—यदि [निरपेक्षः]  
परिग्रहकी अपेक्षासे सर्वथा रहित [त्यागः] परिग्रहका त्याग [न] न होय तो [हि] नि-

प्रसिद्धेरहिंसक एव स्यात् । ततस्तैस्तैः सर्वैः प्रकारैरशुद्धोपयोगरूपोन्तरङ्गछेदः प्रतिषेधो  
यैर्यस्तदायतनमात्रभूतः परप्राणव्यपरोपरूपो बहिरङ्गछेदो दूरादेव प्रतिषिद्धः स्यात् ॥१८॥

अथैकान्तिकान्तरङ्गछेदत्वादुपधिस्तद्व्यतिषेध्य इत्युपदिशति;—

हवदि व ण हवदि बंधो मदे हि जीवेऽथ कायचेद्वम्भि ।

बंधो ध्रुवमुवधीदो इदि समणा छंडिया सव्वं ॥ १९ ॥

भवति वा न भवति बन्धो मृते हि जीवेऽथ कायचेष्टायाम् ।

बन्धो ध्रुवमुपधेरिति श्रमणास्त्यक्तवन्तः सर्वम् ॥ १९ ॥

यथा हि कायव्यापारपूर्वकस्य परप्राणव्यपरोपस्याशुद्धोपयोगसद्भावासद्भावाभ्यामनैका-  
न्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमनैकान्तिकमिष्टं, न खलु तथोपधेः, तस्य सर्वथा तदविनाभावित्व-  
प्रसिद्ध्यदैकान्तिकाशुद्धोपयोगसद्भावस्यैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमैकान्तिकमेव । अत एव

निश्चयहिंसा नास्ति । ततः कारणाच्छुद्धपरमात्मभावनावलेन निश्चयहिंसैव सर्वतात्पर्येण  
परिहर्त्तव्येति ॥ १८ ॥ अथ बहिरङ्गजीवघाते बन्धो भवति; न भवति वा परिग्रहे सति

नियमेन भवतीति प्रतिपादयति;—हवदि व ण हवदि बंधो भवति वा न भवति बन्धः

कस्मिन्सति मदं हि जीवे मृते सत्यन्यजीवे । अथ अहो । कस्यां सत्याम् ? कायचेद्वं हि

कायचेष्टायाम् । तर्हि कथं बन्धो भवति । बंधो ध्रुवमुवधीदो बन्धो भवति ध्रुवं निश्चितं ।

कस्मादुपधेः परिग्रहात्सकाशादिति हेतोः समणा छंडिया सव्वं श्रमणा महाश्रमणाः

सर्वज्ञाः पूर्वं दीक्षाकाले शुद्धबुद्धैकस्वभावं निजात्मानमेव परिग्रहं कृत्वा शेषं समस्तं बाह्या-

भ्यन्तरपरिग्रहं छर्दितवन्तः । एवं ज्ञात्वा शेषतपोधनैरपि निजपरमात्मपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा

न्तरङ्गसंयमके घातका कारण परजीवकी वाधारूप बहिरङ्गसंयमका भी घात सर्वथा त्याज्य

हे ॥१८॥ आगे सर्वथा अन्तरङ्गसंयमका घातक होनेसे मुनिको परिग्रहका सर्वथा निषेध

करते हैं;—[अथ] आगे अर्थात् मुनिको परिग्रहसे संयमका घात दिखाते हैं कि[कायचे-

ष्टायां] मुनिकी हलन चलन क्रियाके होनेसे [ जीवे ] त्रस स्थावर जीवके [ मृते

सति ] मरनेपर [ हि ] निश्चयसे [ बन्धः ] कर्मलेप [ भवति ] होता है [ वा ]

अथवा [ न ] नहीं भी [ भवति ] होता है । किन्तु [ उपधितः ] परिग्रहसे

[ बन्धः ] बन्ध [ ध्रुवं ] निश्चयसे होता ही है । [ इति ] ऐसा जानकर [ श्र-

मणाः ] महासुनि अरहंत देव [ सर्व ] समस्ताही परिग्रहको पहलेही [ त्यक्तवन्तः ]

छोड़ते हुए ॥-भावार्थ—मुनिके हलनचलनादि क्रियासे परजीवका जो घात होता

है उस घातसे मुनिके सर्वथा बन्ध नहीं होता, होता भी है और नहीं भी होता है

यहां अनेकान्त है एक नियम नहीं । क्योंकि यदि अन्तरङ्गशुद्धोपयोग है तो बन्ध

नहीं होता । इसलिये याह्यपरप्राणघातसे शुद्ध अशुद्ध उपयोगके होने या न होनेमे

बन्ध होता भी है और नहीं भी होता है । मुनिके परजीवके घातसे बन्ध होव भी

ङ्छेदस्य प्रतिषेधं प्रयोजनमपेक्ष्योपधेर्विधीयमानः प्रतिषेधोन्तरङ्गच्छेदप्रतिषेध एव  
स्यात् ॥ २० ॥

अथैकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधिविस्तरेणोपदिशति;—

किञ्च तस्मिन् अत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स ।

तथ परदव्वम्मि रदो कथंमप्पाणं पसाधयदि ॥ २१ ॥

शिष्टवैराग्यपूर्वकपरिग्रहस्यागो भवति तदा चित्तशुद्धिर्भवत्येव ख्यातिपूजात्मनिमित्तस्यागो तु न  
भवति ॥ २० ॥

अथ तमेव परिग्रहस्यागं दृश्यति;—

गेह्णदि व चेलखंडं भायणमत्थित्तिभणिदमिह सुत्ते ।

जदि सो चत्तालंबो हवदि कंहं वा अणारंभो ॥ १ ॥

वत्थक्खंडं दुद्धियभायणमण्णं च गेह्णदि णियदं ।

विज्जदि पाणारंभो विक्खेवो तस्स चित्तम्मि ॥ २ ॥

गेह्णइ विधुणइ धोवइ सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता

पत्थं च चेलखंडं विभेदि परदो य पालयदि ॥ ३ ॥ विसेसयं ।

गेह्णदि व चेलखंडं गृह्णाति वा चेलखण्डं वस्त्रखण्डं भायणं भिक्षाभाजनं वा अत्थित्ति  
भणिदं अस्तीति भणितमास्ते । क । इह सुत्ते इह विवक्षितागमसूत्रे जदि यदि चेत् ? सो  
चत्तालंबो हवदि कंहं निरालम्बनपरमात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् स पुरुषो बहिर्द्रव्यालम्बन-  
रहितः कथं भवति न कथमपि वा अणारंभो निःक्रियनिरारम्भनिजात्मतत्त्वभावनारहि-  
तत्वेन निरारम्भो वा कथं भवति किन्तु सारम्भ एव, इति प्रथमगाथा । वत्थक्खंडं दुद्धिय-  
भायणं वस्त्रखण्डं दुग्धिकाभाजनं अण्णं च गेह्णदि अन्यच्च गृह्णाति कम्बलमृदुशयनादिकं  
यदि चेत् । तदा किं भवति । णियदं विज्जदि पाणारंभो निजशुद्धचैतन्यलक्षणप्राणवि-  
नाशरूपो वा नियतं प्राणारम्भः प्राणवधो विद्यते न केवलं प्राणारम्भः विक्खेवो तस्स  
चित्तम्मि अविक्षिप्तचित्तपरमयोगरहितस्य परिग्रहपुरुषस्य विक्षेपस्तस्य विद्यते चित्ते  
गमतीति । इति द्वितीयागाथा । गेह्णइ स्वशुद्धात्मग्रहणशून्यः सन् गृह्णाति किमपि बहिर्द्रव्यं  
विधुणइ कर्मधूलिं विहाय बहिरङ्गधूलिं विधूनीति विनाशयति । धोवइ निर्मलपरमात्मत-  
त्त्वमलजनकरागादिमलं विहाय बहिरङ्गमलं धौति प्रक्षालयति सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता  
निर्विकल्पस्थानात्पेन संसारनदीशोपणमकुर्वन् शोषयति शुष्कं करोति यदं तु यत्परं तु

नहीं वहां केवलपदकी प्राप्ति कहाँसे होवे । इसलिये जो कोई अशुद्धोपयोगरूप असंयम  
भावको छोड़ना चाहे वह पुरुष वाह्य परिग्रहका सर्वथा त्याग करे, तब उस पुरुषके  
अन्तरङ्ग संयमके घातका निषेध अवश्य होता है ॥ २० ॥ आगे यह कहते हैं  
कि सर्वथा अन्तरङ्ग संयमका घात परिग्रहसे ही है;—[ तस्मिन् ] उस परिग्रहके

न खलु बहिरङ्गसङ्गसद्भावे तुपसद्भावे तण्डुलगताशुद्धत्वस्यैवाशुद्धोपयोगरूपस्यान्तरङ्ग-  
च्छेदस्य प्रतिषेधसद्भावे च न शुद्धोपयोगमूलस्य केवलस्योपलम्भः । ततोशुद्धोपयोगस्यान्तर-

पेणापवादव्याख्यानार्थं पाठक्रमेण त्रिशद्गाथाभिर्द्वितीयोन्तराधिकारः प्रारभ्यते ॥ तत्र चत्वारि-  
स्थलानि भवन्ति, तस्मिन्प्रथमस्थले निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्थापनामुद्द्यत्वेन 'ण हि णिरवेक्खो चागो'  
इत्यादि गाथापञ्चकम् । अत्र टीकायां गाथात्रयं नास्ति । तदनन्तरं सर्वसावयप्रत्याख्यानल-  
क्षणसामायिकसंयमसमर्थानां यतीनां संयमशौचज्ञानोपकरणनिमित्तमपवादव्याख्यानमुद्द्यत्वेन  
'छेदो जेण ण विज्जदि' इत्यादि सूत्रत्रयम् । तदनन्तरं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणप्रधानत्वेन 'पे-  
च्छदि ण हि इह लोणं' इत्याद्येकादश गाथा भवन्ति । ताश्चामृतचन्द्रटीकायां न सन्ति ।  
ततः परं सर्वोपेक्षासंयमसमर्थस्य तपोधनस्य देशकालोपेक्षया किञ्चित्संयमसाधकशरीरस्य निर-  
वद्याहारसहकारिकारणं ग्राह्यमिति पुनरप्यपवादविशेषव्याख्यानमुद्द्यत्वेन 'उव्वरणं जिण-  
मग्गं' इत्याद्येकादशगाथा भवन्ति । अत्र टीकायां गाथाचतुष्टयं नास्ति । एवं मूलसूत्राभिप्रा-  
येण त्रिशद्गाथाभिः टीकापेक्षया पुनर्द्वादशगाथाभिः द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका ।  
तथाहि—अथ भावशुद्धिपूर्वकत्रहिरङ्गपरिग्रहपरित्यागे कृते सति अभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागः  
कृत एव भवतीति निर्दिशति;—ण हि णिरवेक्खो चागो न हि निरपेक्षस्यागः यदि चेत्  
परिग्रहत्यागः सर्वथा निरपेक्षो न भवति किन्तु किमपि ध्वजपात्रादिकं ग्राह्यमिति भवती  
मण्यते तर्हि हे शिष्य ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसोही न भवति भिक्षोराशयविशुद्धिः  
तदा सापेक्षपरिणामे सति भिक्षोस्तपोधनस्य चित्तशुद्धिर्न भवति । अविशुद्धस्स हि चित्ते  
शुद्धात्मभावनारूपशुद्धिरहितस्य तपोधनस्य चित्ते मनसि हि स्फुटं कर्हं तु कम्मक्खओ  
विहिओ कथं तु कर्मक्षयो विहितः उचितो न कथमपि । अनेनैतदुक्तं भवति—यथा बहि-  
रङ्गतुपसद्भावे सति तण्डुलस्याभ्यन्तरशुद्धिं कर्तुं नायाति तथा विद्यमानेऽविद्यमाने वा बहिरङ्ग-  
परिग्रहेऽभिलाषे सति निर्मलशुद्धात्मानुभूतिरूपां चित्तशुद्धिं कर्तुं नायाति । यदि पुनर्वि-

श्रयसे [ भिक्षोः ] मुनिके [ आशयविशुद्धिः ] चित्तकी निर्मलता [ न ] नहीं  
[ भवति ] होती है [ च ] और [ चित्ते ] ज्ञानदर्शनोपयोगरूप परिणामोंमें [ अ-  
विशुद्धस्य ] जो समल है उस मुनिके [ कथं ] किसप्रकार [ तु ] भला [ कर्म-  
क्षयः ] समस्त कर्मका नाश [ विहितः ] हो सकता है । नहीं हो सकता ॥ भा-  
वार्थ—जो मुनिके याह्य परिग्रह तुसमात्र भी हो तो अन्तरङ्गमें शुद्धोपयोगरूप संय-  
मका घात अवश्य होता है उतने ही परिग्रहसे अशुद्धभाव अवश्य होते हैं । जिसप्रकार  
चावलके ऊपर तुसके होनेसे चावलमें अवश्य आरक्त मल होता है उसही प्रकार  
मुनिके किंचित्तमात्र भी याह्य परिग्रहके होनेसे अभ्यन्तरमें निश्चयसे अशुद्धभाव होते  
हैं । जिस मुनिके कुछ भी परिग्रह है उसके शुद्धोपयोग नहीं होता, जहां शुद्धोपयोग

ङ्छेदस्य प्रतिषेधं प्रयोजनमपेक्ष्योपधेर्विधीयमानः प्रतिषेधोन्तरङ्गच्छेदप्रतिषेध एव  
सात् ॥ २० ॥

अथैकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधिविस्तरेणोपदिशति;—

किथ तम्मि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स ।

तथ परदव्वम्मि रदो कथमप्पाणं पसाधयदि ॥ २१ ॥

शिष्टवैराग्यपूर्वकपरिग्रहत्यागो भवति तदा चित्तशुद्धिर्भवत्येव ख्यातिपूजालाभनिमित्तत्यागे तु न  
भवति ॥ २० ॥

अथ तमेव परिग्रहत्यागं दृश्यति;—

गेह्हादि व चेलखंडं भायणमत्थित्तिभणिदमिह सुत्ते ।

जदि सो चत्तालंबो ह्वदि कहं वा अणारंभो ॥ १ ॥

वत्थक्खंडं दुद्धियभायणमण्णं च गेह्हादि णियदं ।

विज्जदि पाणारंभो विकखेवो तस्स चित्तम्मि ॥ २ ॥

गेह्हाइ विधुणइ धोवइ सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता

पत्थं च चेलखंडं विभेदि परदो य पालयदि ॥ ३ ॥ विसेसयं ।

गेह्हादि व चेलखंडं गृह्णाति वा चेलखण्डं वस्त्रखण्डं भायणं भिक्षाभाजनं वा अत्थित्ति  
भणिदं अस्तीति भणितमास्ते । क । इह सुत्ते इह विवक्षितागमसूत्रे जदि यदि चेत् ? सो  
चत्तालंबो ह्वदि कहं निरालम्बनपरमात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् स पुरुषो बहिर्द्व्यालम्बन-  
रहितः कथं भवति न कथमपि वा अणारंभो निःक्रियनिरारम्भनिजात्मतत्त्वभावनारहि-  
तत्वेन निरारम्भो वा कथं भवति किन्तु सारम्भ एव, इति प्रथमगाथा । वत्थक्खंडं दुद्धिय-  
भायणं वस्त्रखण्डं दुग्धिकाभाजनं अण्णं च गेह्हादि अन्यच्च गृह्णाति कम्बलमृदुशयनादिकं  
यदि चेत् । तदा किं भवति । णियदं विज्जदि पाणारंभो निजशुद्धचैतन्यलक्षणप्राणधि-  
नागरूपो वा नियतं प्राणारम्भः प्राणवधो विद्यते न केवलं प्राणारम्भः विकखेवो तस्स  
चित्तम्मि अविक्षितचित्तपरमयोगरहितस्य परिग्रहपुरुषस्य विक्षेपस्तस्य विद्यते चित्ते  
गमसीति । इति द्वितीयगाथा । गेह्हाइ स्वशुद्धात्मग्रहणशून्यः सन् गृह्णाति किमपि बहिर्द्व्यं  
विधुणइ कर्मघूर्णं विहाय बहिरङ्गघूर्णं विधूनोति विनाशयति । धोवइ निर्मलपरमात्मत-  
त्त्वमलजनकरागादिमलं विहाय बहिरङ्गमलं धौति प्रक्षालयति सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता  
निर्विकल्पघ्ननातपेन संसारनदीशोषणमकुर्वन् शोषयति शुष्कं करोति यदं तु यत्परं तु

नहीं वहां केवलपदकी प्राप्ति कहाँसे होवे । इसलिये जो कोई अशुद्धोपयोगरूप अमंयम  
भावको छोड़ना चाहे वह पुरुष याह्य परिग्रहका सर्वथा त्याग करे, तब उस पुरुषके  
अन्तरङ्ग संयमके घातका निषेध अवश्य होता है ॥ २० ॥ आगे यह कहते हैं  
कि सर्वथा अन्तरङ्ग संयमका घात परिग्रहसे ही है;—[ तस्मिन् ] उस परिग्रहके



कथं तस्मिन्नास्ति मूर्च्छा आरम्भो वा असंयमस्तस्य ।

तथा परद्रव्ये रतः कथमात्मानं प्रसाधयति ॥ २१ ॥

उपधिसद्भावे हि ममत्वपरिणामलक्षणया मूर्च्छायास्तद्विषयकर्मप्रक्रमपरिणामलक्षणस्या-  
रम्भस्य शुद्धात्मरूपहिंसनपरिणामलक्षणस्यासंयमस्य वावश्यं भावित्वात्ततोपधिविद्वितीयस्य  
परद्रव्यरतत्वेन शुद्धात्मद्रव्यप्रसाधकत्वाभावाच्च ऐकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधेरवधार्यत  
एव । इदमत्र तात्पर्यमेवंविधत्वमुपधेरवधार्यं स सर्वथा संन्यस्तव्यः ॥ २१ ॥

अथ कस्यचित्कचित्कदाचित्कथंचित्कश्चिदुपधिरप्रतिपिद्धोप्यस्तीत्यपवादमुपदिशति;—

छेदो जेण ण विज्झदि गहणविसग्गेषु सेवमाणस्स ।

समणो तेणिह वट्ठु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २२ ॥

यथा भवति । किं कृत्वा । आतपे निक्षिप्य । किं तत् । पर्यं च चेलखंडं पात्रं वस्त्रखण्डं  
वा विभेदि निर्भयशुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् विभेति भयं करोति । कस्मात्तकाशात् ?  
परदो य परतश्चौरादेः पालयदि परमात्मभावनां न पालयन्न रक्षयन्परद्रव्यं किमपि पालय-  
तीति तृतीया गाथा ॥ १ । २ । ३ ॥ अथ सपरिग्रहस्य नियमेन चित्तशुद्धिर्नश्यतीति विस्त-  
रेणाह्याति;—किह तस्मिन् णत्थि मुच्छा परद्रव्यममत्वरहितंचित्तमत्कारपरिणतेर्विसदृश-  
मूर्च्छा कथं नास्ति अपि त्वस्येव । क्व ? तस्मिन् परिग्रहाकाङ्क्षितपुरुषे आरंभो वा मनोवचन-  
कायक्रियारहितपरमचैतन्यप्रतिबन्धक आरम्भो वा कथं नास्ति किन्त्वस्येव असंजमो तस्य  
शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणसंयमो वा कथं नास्ति किन्त्वस्येव तस्य सपरिग्रहस्य तह परद्रव्य-  
स्मि रदो तथैव निजात्मद्रव्यात्परद्रव्ये रतः कहमप्पाणं पसाहयदि स तु सपरिग्रह-  
पुरुषः कथमात्मानं प्रसाधयति ? न कथमपीति ॥ २१ ॥ एवं श्वेताम्बरमतानुसारं शिष्यसम्बो-

होनेपर [ मूर्च्छा ] ममत्व परिणाम [ वा ] अथवा उस परिग्रहकेलिये [ आरम्भः ]  
उद्यमसे क्रियाका आरम्भ और [ तस्य ] उस ही मुनिके [ असंयमः ] शुद्धात्मा-  
चरणरूप संयमका घात [ कथं ] किसप्रकार [ नास्ति ] न होय अवश्य ही होय  
[ तथा ] उसही प्रकार जिसके परिग्रह है वह मुनि [ परद्रव्ये ] निजरूपसे भिन्न  
परद्रव्यरूप परिग्रहमें [ रतः ] रागी होकर [ कथं ] किसतरह [ आत्मानं ] अ-  
पने शुद्ध स्वरूपका [ प्रसाधयति ] एकामतासे अनुभव करसकता है ? नहीं कर सकता  
भावार्थ—जिसके परिग्रह होता है उसके अवश्यही ममत्वभाव होते हैं । उस परि-  
ग्रहके निमित्तसे आरम्भ भी होता है जहां ममता और आरम्भ होता है वहां  
शुद्धोपयोगरूप आत्मीक प्राणकी हिंसा होती है जहां हिंसा होय वही असंयमी  
होय । और भी परिग्रही मुनिको यड़ा दोष है, परिग्रह परद्रव्य है जो परद्रव्यमें रत  
होता है उसके शुद्धात्मद्रव्यकी सिद्धिका अभाव होता है शुद्धात्मद्रव्यकी सिद्धि मुनि-  
पदका मूल है जहां यह नहीं वहां मुनिपद नहीं । इसलिये इस कथनका यह अभिप्राय  
है कि परिग्रह सर्वथा नागने योग्य है ॥ २१ ॥ आगे किसी मुनिके किसी एक फाल्दमें

छेदो येन न विद्यते ग्रहणविसर्गेषु सेवमानस्य ।

श्रमणस्तेनेह वर्ततां कालं क्षेत्रं विज्ञाय ॥ २२ ॥

आत्मद्रव्यस्य द्वितीयपुद्गलद्रव्याभावात्सर्व- एवोपधिः प्रतिपिद्ध इत्युत्सर्गः । अयं तु मिश्रकालक्षेत्रवशात्कश्चिदप्रतिपिद्ध इत्यपवादः । यदा हि श्रमणः सर्वोपधिप्रतिषेधमास्थाय परममुपेक्षासंयमं प्रतिपत्तुकामोपि विशिष्टकालक्षेत्रवशावसन्नशक्तिर्न प्रतिपत्तुं क्षमते तदाप- कृत्य संयमं प्रतिपद्यमानस्तद्दहिरङ्गसाधनमात्रमुपधिमातिष्ठते । स तु तथा स्थीयमानो न खलूपधित्वाच्छेदः, प्रत्युत छेदप्रतिषेध एव । यः किलाशुद्धोपयोगाविनाभावी स छेदः ।

धनार्थं निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्यापनमुद्यत्वेन प्रथमस्थले गाथापञ्चकं गतम् अथ कालापेक्षया परमोपेक्षासंयमशक्त्यभावे सत्याहारसंयमशौचज्ञानोपकरणादिकं किमपि ग्राह्यमित्यपवादमुपदि- शतिः—छेदो जेण ण विज्जदि छेदो येन न विद्यते । येनोपकरणेन शुद्धोपयोगलक्षण- संयमस्य छेदो विनाशो न विद्यते । कयोः ? ग्रहणविसर्गेषु ग्रहणविसर्गयोः यस्योपकरणस्या- न्यवस्तुनो वा ग्रहणे स्वीकारे विसर्जने । किं कुर्वतः तपोधनस्य । सेवमाणस्स तदुपकरणं सेवमानस्य समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता श्रमणस्तेनोपकरणेनेह लोके

किसी एक तरहसे कोई एक परिग्रह अत्याज्य भी है ऐसा अपवादमार्ग दिखलाते हैं;—[ सेवमानस्य ] परिग्रहको सेवनेवाले मुनिके [ ग्रहणविसर्गेषु ] ग्रहण करनेमें अथवा त्यागनेमें [ येन ] जिस परिग्रहकर [ छेदः ] शुद्धोपयोगरूप संयमका घात [ न विद्यते ] नहीं हो [ तेन ] उस परिग्रहकर [ श्रमणः ] मुनि [ कालं क्षेत्रं ] काल और क्षेत्रको [ विज्ञाय ] जानकर [ इह ] इस लोकमें [ वर्ततां ] प्रवर्तों (रही) कोई हानि नहीं है ॥ भावार्थ—उत्सर्ग मार्ग वह है कि जहांपर सब परिग्रहका नि- पेध किया है क्योंकि आत्माके एक अपने भावके सिवाय परद्रव्यरूप दूसरा पुद्गल- भाव नहीं है इसकारण उत्सर्गमार्ग परिग्रह रहित है, और यह जो विशेषरूप अपवाद- मार्ग है वह काल क्षेत्रके वश किसी एक परिग्रहको ग्रहण करता है इसलिये अपवाद- भेदरूप है । यही दिखलाते हैं—जिस समय कोई एक मुनि सब परिग्रहको त्यागकर परम वीतराग संयमको प्राप्त होना चाहता है वही मुनि किसी एक कालकी विशेष- तासे अथवा क्षेत्रके विशेषसे हीनशक्ति होता है तब उस वीतराग संयम वशाको नहीं धारण करसकता इसलिये सरागसंयम अवस्थाको अंगीकार करता है और उस अव- स्थाका वाह्यसाधन परिग्रह ग्रहण करता है उस परिग्रहको ग्रहणकर तिष्ठते हुए मुनिके उस परिग्रहसे संयमका घात नहीं होता । संयमका घात वहां होता है जहांपर कि मुनिपदका घातक अशुद्धोपयोग होता है । यह परिग्रह तो संयमके घातके दूर करनेके लिये है । मुनिपदकी सहकारी कारण शरीर है और उस शरीरकी प्रवृत्ति आहार- नीहारके ग्रहण त्यागसे होती है उसमें संयमके घातके निषेधकेलिये अंगीकार करते

कथं तस्मिन्नास्ति मूर्च्छा आरम्भो वा असंयमस्तस्य ।

तथा परद्रव्ये रतः कथमात्मानं प्रसाधयति ॥ २१ ॥

उपधिसद्भावे हि ममत्वपरिणामलक्षणाया मूर्च्छायास्तद्विषयकर्मप्रक्रमपरिणामलक्षणस्या-  
रम्भस्य शुद्धात्मरूपहिंसनपरिणामलक्षणस्यासंयमस्य वावश्यं भावित्वात्ततोपधिविधिव्यस्य  
परद्रव्यरतत्वेन शुद्धात्मद्रव्यप्रसाधकत्वाभावाच्च ऐकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधेवधार्यत  
एव । इदमत्र तात्पर्यमेवंविधत्वमुपधेवधार्यं स सर्वथा संन्यस्तव्यः ॥ २१ ॥

अथ कस्यचित्कचित्कदाचित्कथंचित्कश्चिदुपधिरप्रतिपिद्भोप्यस्तीत्यपवादमुपदिशति;—

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेषु सेवमाणस्स ।

समणो तेणिह वट्टु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २२ ॥

यथा भवति । किं कृत्वा । आतपे निक्षिप्य । किं तत् । पर्यं च चेलखंडं पात्रं वस्त्रखण्डं  
वा विभेदि निर्भयशुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् विभेति । भयं करोति । कस्मात्सकाशात् ?  
परदो य परतश्चौरादेः पालयदि परमात्मभावनां न पालयन्न रक्षयन्परद्रव्यं किमपि पालय-  
तीति तृतीया गाथा ॥ १ । २ । ३ ॥ अथ सपरिग्रहस्य नियमेन चित्तशुद्धिर्नश्यतीति विल-  
रेणाख्याति;—किह तस्मिन्नास्ति मुच्छा परद्रव्यममत्वरहितचिन्मत्कारपरिणतेर्विसदृश-  
मूर्च्छा कथं नास्ति अपि त्वस्येव । क ? तस्मिन् परिग्रहाकाङ्क्षितपुरूपे आरंभो वा मनोवचन-  
कायक्रियारहितपरमचैतन्यप्रतिबन्धक आरम्भो वा कथं नास्ति किन्त्वस्येव असंजमो तस्य  
शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणासंयमो वा कथं नास्ति किन्त्वस्येव तस्य सपरिग्रहस्य तह परद्रव्य-  
म्भि रदो तथैव निजात्मद्रव्यात्परद्रव्ये रतः कहमप्पाणं पसाहयदि स तु सपरिग्रह-  
पुरुषः कथमात्मानं प्रसाधयति ? न कथमपीति ॥ २१ ॥ एवं श्वेताम्बरमतानुसारशिष्यसम्बो-

होनेपर [ मूर्च्छा ] ममत्व परिणाम [ वा ] अथवा उस परिग्रहकेलिये [ आरम्भः ]

उद्यमसे क्रियाका आरम्भ और [ तस्य ] उस ही मुनिके [ असंयमः ] शुद्धात्मा-  
चरणरूप संयमका घात [ कथं ] किसप्रकार [ नास्ति ] न होय अवश्य ही होय  
[ तथा ] उसही प्रकार जिसके परिग्रह है वह मुनि [ परद्रव्ये ] निजरूपसे भिन्न  
परद्रव्यरूप परिग्रहमें [ रतः ] रागी होकर [ कथं ] किसतरह [ आत्मानं ] अ-  
पने शुद्ध स्वरूपका [ प्रसाधयति ] एकाग्रतासे अनुभव करसकता है ? नहीं कर सकता  
भावार्थ—जिसके परिग्रह होता है उसके अवश्यही ममत्वभाव होते हैं । उस परि-  
ग्रहके निमित्तसे आरम्भ भी होता है जहां ममता और आरम्भ होता है वहां  
शुद्धोपयोगरूप आत्मीक प्राणकी हिंसा होती है जहां हिंसा होय वही असंयमी  
होय । और भी परिग्रही मुनिको षडा दोष है, परिग्रह परद्रव्य है जो परद्रव्यमें रत  
होता है उसके शुद्धात्मद्रव्यकी सिद्धिका अभाव होता है शुद्धात्मद्रव्यकी सिद्धि मुनि-  
पदका मूल है जहां यह नहीं वहां मुनिपद नहीं । इसलिये इस कथनका यह अभिप्राय  
है कि परिग्रह सर्वथा त्यागने योग्य है ॥ २१ ॥ आगे किसी मुनिके किसी एक कालमें

अयोत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवाद इत्युपदिशति:—

किं किञ्चणत्ति तक्कं अपुणव्भवकामिणोय देहेपि ।

संगत्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा ॥ २४ ॥

किं किञ्चनमिति तर्कः अपुनर्भवकामिनोय देहेपि ।

संग इति जिनवरेन्द्रा अप्रतिकर्मत्वमुद्दिष्टवन्तः ॥ २४ ॥

अत्र श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिपिध्यमानेत्यन्तमुपात्तदेहेपि परद्रव्यत्वात्प-  
रिग्रहोऽयं न नामानुग्रहार्हः किंतूपेक्ष्य एवेत्यप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तो भगवन्तोऽर्हदेवाः ।  
अथ तत्र शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसंभावनरसिकस्य पुंसः शेषोऽन्योऽनुपात्तः परिग्रहो वराकः  
किं नाम स्यादिति व्यक्त एव हि तेषामाकूतः । अतोऽवधार्यते उत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न  
पुनरपवादः । इदमत्र तात्पर्यं वस्तुधर्मत्वात्परमनैर्ग्रन्थ्यमेवावलम्ब्यम् ॥ २४ ॥

णमेव प्राहं न च तद्विपरीतमधिकं वेत्यभिप्रायः ॥ २३ ॥ अथ सर्वसङ्गपरित्याग एव श्रेष्ठः  
शेषमशक्यानुष्ठानमिति प्ररूपयति:—किं किञ्चणत्ति तक्कं किं किञ्चनमिति तर्कः किं कि-  
ञ्चनं परिग्रह इति तर्को विचारः क्रियते तावत् । कस्य ? अपुणव्भवकामिणो अपुनर्भवका-  
मिनः अनन्तज्ञानादिचतुष्टयात्ममोक्षामिलापिणः अथ अहो देहोपि देहोऽपि संगोत्ति सङ्गः  
परिग्रह इति हेतोः जिणवरिंदा जिनवरेन्द्राः कर्तारः णिप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा निःप्रतिकर्म-  
त्वमुपदिष्टवन्तः । शुद्धोपयोगलक्षणपरमोपेक्षासंयमत्रलेन देहेपि निःप्रतीकारित्वं कथितवन्त  
इति । ततो ज्ञायते मोक्षसुखामिलापिणां निश्चयेन देहादिसर्वसङ्गपरित्याग एवोचितोऽन्यस्तूप-

उत्सर्गमार्गही वस्तुका धर्म है अपवादमार्ग नहीं ऐसा उपदेश करते हैं:—[ अथ ]  
अहो देखो कि [ अपुनर्भवकामिनः ] मोक्षके अभिलाषी मुनिके [ देहेपि ] देहके  
होनेपरभी [ संगः ] परिग्रह है [ इति ] ऐसा जानकर [ जिनवरेन्द्राः ] सर्वज्ञ  
वीतरागदेव [ अप्रतिकर्मत्वं ] ममत्वभावसहित शरीरकी क्रियाके त्यागका [ उद्दि-  
ष्टवन्तः ] उपदेश करते हुए, तब उस मुनिके [ किं ] क्या [ किञ्चन ] अन्यभी  
कुछ परिग्रह है [ इति ] ऐसा [ तर्कः ] बढ़ाही विचार होता है ॥ भावार्थ—जिस  
मार्गमें मुनिपदका सहकारी शरीरभी परद्रव्यरूप परिग्रह जानकर आदर करने  
योग्य नहीं है वहभी ममताभावसे रहित होकर त्यागने योग्य है और भगवंतदेवने  
ममताकर आहार विहारमें प्रवृत्ति होनेको मनै किया है तो उस मार्गमें शुद्धात्म रसके  
आस्वादी मुनिके अन्य परिग्रह विचारा कैसे बनसकता है ऐसा उन अरहंत देवका  
प्रगट अभिप्राय है । इससे यह बात सिद्ध होती है कि उत्सर्ग निःपरिग्रह मार्ग है  
वही वस्तुका धर्म है । परिग्रह रहनेसे अपवाद मार्ग वस्तुका धर्म नहीं है । इससे यह  
अभिप्राय निकला कि उत्सर्गमार्गही वस्तुका धर्म है इसलिये परम निर्मन्थ पदवी अ-

अयं तु श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुभूताहारनिर्हारादिग्रहणविसर्जनविषयच्छेद-  
प्रतिषेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाविनाभूतत्वाच्छेदप्रतिषेध एव स्यात् ॥ २२ ॥

अथाप्रतिषिद्धोपधिस्वरूपमुपदिशति;—

अप्पडिकुट्टं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।

मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदिवियप्पं ॥ २३ ॥

अप्रतिकुष्टमुपधिमप्रार्थनीयमसंयतजनैः ।

मूर्च्छादिजननरहितं गृह्णातु श्रमणो यद्यप्यल्पम् ॥ २३ ॥

यः किलोपधिः सर्वथा बन्धासाधकत्वादप्रतिकुष्टः संयमादन्यत्रानुचितत्वादसंयतज-  
नाप्रार्थनीयो रागादिपरिणाममन्तरेण धार्यमाणत्वान्मूर्च्छादिजननरहितश्च भवति स खल्व-  
प्रतिषिद्धः । अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरूपादेयो न पुनरल्पोपि यथोदितविपर्यस्त-  
स्वरूपः ॥ २३ ॥

वर्त्ततां । किं कृत्वा । कालं क्षेत्रं च विज्ञायेति । अयमत्र भावार्थः—कालं पञ्चमकालं शीतोष्णा-  
दिकालं वा क्षेत्रं भरतक्षेत्रं मानुपजाङ्गलादिक्षेत्रं वा विज्ञाय येनोपकरणेन स्वसंघित्तिलक्षणभाव-  
संयमस्य बहिरङ्गद्रव्यसंयमस्य वा छेदो न भवति तेन वर्तत इति ॥ २२ ॥ अथ पूर्वसूत्रोदि-  
तौपकरणस्वरूपं दर्शयति;—अप्पडिकुट्टं उवधिं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसहकारिकारणत्वेना-  
प्रतिषिद्धमुपधिसुपकरणरूपोपधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणस्स अप्रार्थनीयं निर्विकारात्मो-  
पलम्बितलक्षणभावसंयमरहितस्यासंयतजनस्यानभिलषणीयम् । मुच्छादिजणणरहियं परमात्म-  
द्रव्यविलक्षणबहिर्द्रव्यमत्वस्वरूपमूर्च्छारक्षणार्जनसंस्कारादिदोषजननरहितम् । गेण्हदु समणो ज-  
दिवि अप्पं गृह्णातु श्रमणो यमप्यल्पं पूर्वोक्तमुपकरणोपधिं यद्यप्यल्पं तथापि पूर्वोक्तोचितलक्ष-

हं । इसकारण अशुद्धोपयोगमयी जो संयमका घात है उसको दूर करनेवाला परिग्रह  
है इसलिये घातक नहीं है ॥ २२ ॥ आगे जिस परिग्रहका मुनिकेलिये निषेध नहीं  
है उसका स्वरूप दिखलाते हैं;—[ श्रमणः ] अपवादमार्गी मुनि [ उपधिं ] ऐसे  
परिग्रहको [ गृह्णातु ] ग्रहण करो कुछभी दोष नहीं है । जो परिग्रह [ अप्रतिकुष्टं ]  
बंधको नहीं करता [ असंयतजनैः ] संयमरहितजनोंकर [ अप्रार्थनीयं ] प्रा-  
र्थना करनेके योग्य नहीं है [ मूर्च्छादिजननरहितं ] ममता आरंभ हिंसादिक-  
भावोंकी उत्पत्तिकर रहित है और वह [ यद्यपि ] यद्यपि [ अल्पं ] थोड़ा है ॥  
भावार्थ—जिस परिग्रहको असंयमी ग्रहण नहीं कर सकते और जिससे रागादि-  
भाव विना ग्रहण होनेसे मूर्च्छादिभाव नहीं होते ऐसे परिग्रहका मुनिको निषेध नहीं  
है किंतु ग्रहण करने योग्य है । और जो इससे विपरीत परिग्रह है वह थोड़ा होनेपरभी  
ग्रहण योग्य नहीं है जैसा कुछ मुनिके योग्य है वही ग्रहण योग्य है ॥ २३ ॥ आगे

अथोत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवाद इत्युपदिशति;—

किं किञ्चणत्ति तक्कं अपुणवभवकामिणोध देहेपि ।

संगत्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा ॥ २४ ॥

किं किञ्चनमिति तर्कः अपुनर्भवकामिनोथ देहेपि ।

संग इति जिनवरेन्द्रा अप्रतिकर्मत्वमुद्दिष्टवन्तः ॥ २४ ॥

अत्र श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमानेत्यन्तमुपात्तदेहेपि परद्रव्यत्वात्प-  
रिग्रहोऽयं न नामानुग्रहार्हः किंतूपेक्ष्य एवेत्यप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तो भगवन्तोऽर्हद्देवाः ।  
अथ तत्र शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसंभावनरसिकस्य पुंसः शेषोऽन्योऽनुपात्तः परिग्रहो वराकः  
किं नाम स्यादिति व्यक्त एव हि तेपामाकूतः । अतोऽवधार्यते उत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न  
पुनरपवादः । इदमत्र तात्पर्यं वस्तुधर्मत्वात्परमनैर्ग्रन्थ्यमेवावलम्ब्यम् ॥ २४ ॥

णमेव ग्राह्यं न च तद्विपरीतमधिकं वेत्यभिप्रायः ॥ २३ ॥ अथ सर्वसङ्गपरित्याग एव श्रेष्ठः  
शेषमशक्यानुष्ठानमिति प्ररूपयति;—किं किञ्चणत्ति तक्कं किं किञ्चनमिति तर्कः किं कि-  
ञ्चनं परिग्रह इति तर्को विचारः क्रियते तावत् । कस्य ? अपुणवभवकामिणो अपुनर्भवका-  
मिनः अनन्तज्ञानादिचतुष्टयात्ममोक्षाभिलाषिणः अथ अहो देहोवि देहोऽपि संगोत्ति सङ्गः  
परिग्रह इति हेतोः जिणवरिंदा जिनवरेन्द्राः कर्तारः णिप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा निःप्रतिकर्म-  
त्वमुपदिष्टवन्तः । शुद्धोपयोगलक्षणपरमोपेक्षासंयमत्रलेन देहेपि निःप्रतीकारित्वं कथितवन्त  
इति । ततो ज्ञायते मोक्षसुखाभिलाषिणां निश्चयेन देहादिसर्वसङ्गपरित्याग एवोचितोऽन्यस्तूप-

उत्सर्गमार्गही वस्तुका धर्म है अपवादमार्ग नहीं ऐसा उपदेश करते हैं;—[ अथ ]  
अहो देखो कि [ अपुनर्भवकामिनः ] मोक्षके अभिलाषी मुनिके [ देहेपि ] देहके  
होनेपरभी [ संगः ] परिग्रह है [ इति ] ऐसा जानकर [ जिनवरेन्द्राः ] सर्वज्ञ  
वीतरागदेव [ अप्रतिकर्मत्वं ] ममत्वभावसहित शरीरकी क्रियाके त्यागका [ उद्दि-  
ष्टवन्तः ] उपदेश करते हुए, तब उस मुनिके [ किं ] क्या [ किञ्चन ] अन्यभी  
कुछ परिग्रह है [ इति ] ऐसा [ तर्कः ] बड़ाही विचार होता है ॥ भावार्थ—जिस  
मार्गमें मुनिपदका सहकारी शरीरभी परद्रव्यरूप परिग्रह जानकर आदर करने  
योग्य नहीं है वहभी ममताभावसे रहित होकर त्यागने योग्य है और भगवन्तदेवने  
ममताकर आहार विहारमें प्रवृत्ति होनेको मनै किया है तो उस मार्गमें शुद्धात्म रसके  
आस्वादी मुनिके अन्य परिग्रह विचारा कैसे बनसकता है ऐसा उन अरहन्त देवका  
प्रगट अभिप्राय है । इससे यह बात सिद्ध होती है कि उत्सर्ग निःपरिग्रह मार्ग है  
वही वस्तुका धर्म है । परिग्रह रहनेसे अपवाद मार्ग वस्तुका धर्म नहीं है । इससे यह  
अभिप्राय निकला कि उत्सर्गमार्गही वस्तुका धर्म है इसलिये परम निर्मन्थ पदवी अ-

अथ केपवादविशेषा इत्युपदिशति;—

उचयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं ।

गुरुवयणंपि य विणओ सुत्तज्झयणं च पणत्तं ॥ २५ ॥

उपकरणं जिनमार्गे लिङ्गं यथाजातरूपमिति भणितम् ।

गुरुवचनमपि च विनयः सूत्राध्ययनं च प्रज्ञप्तम् ॥ २५ ॥

चार एवेति ॥ २४ ॥ एवमपवादव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम्-। अर्धकादश-  
गाथापर्यन्तं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणमुल्लेख्यत्वेन व्याख्यानं करोति । तद्यथा—श्वेताश्वरमतानुसारी  
शिष्यः पूर्वपक्षं करोति;—

पेच्छदि ण हि इह लोणं परं च समणिददेसिदो धम्मो ।

धम्मग्ग्हि तग्ग्हि कग्ग्हा वियप्पियं लिंगमित्थीणं ॥ १ ॥

पेच्छदि ण हि इह लोणं निरुपरागनिजचैतन्यनिलोपलब्धिभावनाविनाशकं ह्यतिपूजा-  
लाभरूपं प्रेक्षते न च हि स्फुटं इह लोकं । न च केवलमिह लोकं परं च स्वात्मप्राप्तिरूपं  
मोक्षं विहाय स्वर्गभोगप्राप्तिरूपं परं च परलोकं च नेच्छति । स कः । समणिददेसिदो  
धम्मो श्रमणेन्द्रदेशितो धर्मः जिनेन्द्रोपदिष्ट इत्यर्थः । धम्मग्ग्हि तग्ग्हि कग्ग्हा धर्मे तस्मिन्-  
कस्मात् वियप्पियं विकल्पितं निर्ग्रन्थलिङ्गाद्वत्प्रारणनेन पृथक्कृतं । किं । लिंगं सावरणचिह्नं ।  
कासां सम्बन्धि । इत्थीणं स्त्रीणामिति पूर्वपक्षगाथा ॥ १ ॥ अथ परिहारमाह;—

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा ।

तग्ग्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिंगमित्थीणं ॥ २ ॥

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा निश्चयतः स्त्रीणां नरकादि-  
गतिविलक्षणानन्तमुखादिगुणस्वभावा तेनैव जन्मना सिद्धिर्न दृष्टा न कथिता । तग्ग्हा तप्प-  
डिरूवं तस्मात्कारणाप्रतियोग्यं सावरणरूपं वियप्पियं लिंगमित्थीणं निर्ग्रन्थलिङ्गात्पृथक्त्वेन  
विकल्पितं क्रथितं लिङ्गं प्रारणसहितं चिह्नं । कासां । स्त्रीणामिति ॥ २ ॥ अथ स्त्रीणां मोक्ष-  
प्रतिबन्धकं प्रमादबाहुल्यं दर्शयति;—

पइडीपमादमइया एतासिं वित्ति भासिया पमदा ।

तग्ग्हा ताओ पमदा पमादवहुलोत्ति णिदिट्ठा ॥ ३ ॥

पइडीपमादमइया प्रकृत्या स्वभावेन प्रमादेन निर्वृत्ता प्रमादमयी । का कर्त्री भवति । ए-  
दासिं वित्ति एतासां स्त्रीणां वृत्तिः परिणतिः भासिया पमदा तत एष नाममालायां प्रमदाः  
पलंघनं करने योग्य है ॥ २४ ॥ आगे अपवाद मार्गके फौनसे भेद है उनको दिख-  
लाते हैं;—[ जिनमार्गे ] सर्वज्ञ वीतरागदेव कथित निर्ग्रन्थ मोक्षमार्गमें [ उपक-  
रणं ] मुनिके उपकारि परिपद [ इत्थि ] इसप्रकार [ भणितं ] कहे हैं कि  
[ यथाजातरूपं लिङ्गं ] जैसा मुनिका स्वरूप चाहिये वैसाही शरीरके द्रव्यलिङ्गका

यो हि नामाप्रतिषिद्धोस्मिन्नुपधिरपवादः स खलु निखिलोपि श्रामण्यपर्यायसहकाः  
रिकारणत्वेनोपकारकारकत्वादुपकरणभूत एव न पुनरन्यः । तस्य तु विशेषः सर्वाहार्यव-

प्रमदासंज्ञा भणिता भासिताः द्वियः । तम्हा ताओ पमदा यत एव प्रमदा संज्ञास्ताः  
द्वियः तस्मात्त एव पमादबहुलोत्ति णिद्धिद्धा निःप्रमादपरमात्मतत्त्वभावनाविनाशकप्रमाद-  
बहुला इति निर्दिष्टाः ॥ ३ ॥ अथ तासां मोहादिबाहुल्यं दर्शयति;—

संति धुवं पमदाणं मोहपदोसा भयं दुगुञ्छा य ।

चित्ते चित्ता माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं ॥ ४ ॥

संति धुवं पमदाणं सन्ति विद्यन्ते धुवं निश्चितं प्रमदानां स्त्रीणां । के ते । मोहपदोसा-  
भयं दुगुञ्छा य मोहादिरहितानन्तसुखादिगुणस्वरूपमोक्षकारणप्रतिबन्धकाः मोहप्रद्वेषभयदुगु-  
ञ्छापरिणामाः चित्ते चित्ता माया कौटिल्यादिरहितपरमनोधादिपरिणतेः प्रतिपक्षभूताः चित्ते  
मनसि चित्रा विचित्रा माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं तत एव तासामव्यावाधसुखाद्यनन्त-  
गुणाधारभूतं निर्वाणं नास्तौल्यभिप्रायः ॥ ४ ॥ अथैतदेव दृश्यति;—

ण विणा वट्टदि णारी एकं वा तेसु जीवलोयमिह ॥

ण हि संउडं च गत्तं तम्हा तासिं च संवरणं ॥ ५ ॥

ण विणा वट्टदि णारी न विना वर्त्तते नारी एकं वा तेसु जीवलोयमिह तेषु नि-  
दोपिपरमाःमध्यानविधातकेषु पूर्वोक्तदोषेषु मध्ये जीवलोके त्वेकमपि दोषं विहाय ण हि संउडं  
च गत्तं न हि स्फुटं संवृतं गात्रं च शरीरं तम्हा तासिं च संवरणं तत एव च तासां  
संवरणं वस्त्रावरणं क्रियत इति ॥ ५ ॥ अथ पुनरपि निर्वाणप्रतिबन्धकदोषान्दर्शयति;—

चित्तस्सावो तासिं सित्थिल्लं अत्तवं च पक्खलणं ।

विज्जदि सहसा तासु अ उप्पादो सुहममणुआणं ॥ ६ ॥

विज्जदि विद्यते तासु च स्त्रीषु । किं ? चित्तस्साओ चित्तस्त्वः निःकामात्मतत्त्वसंबित्ति-  
विनाशकचित्तस्य कामोद्रेकेण स्ववो रागसार्द्रभावः तासिं तासां स्त्रीणां सित्थिल्लं शिथिलस्य  
भावः शैथिल्यं तद्भवमुक्तियोग्यपरिणामविषये चित्तदाढ्याभावः सत्त्वहीनपरिणाम इत्यर्थः । अत्त-  
वं च पक्खलणं ऋतौ भवमार्त्तवं प्रस्खलनं रक्तस्रवणं सहसा श्रुतिं मासे मासे दिनत्रयपर्यन्तं  
चित्तशुद्धिविनाशको रक्तस्रवो भवतीत्यर्थः उप्पादो सुहममणुआणं उत्पाद उत्पत्तिः सूक्ष्म-

होना । एक तो यह परिग्रह है । [ गुरुवचनं अपि ] उत्वके उपदेशक गुरुके वचन-  
रूप पुद्गलोंका ग्रहण एक यह भी परिग्रह है [ च ] और [ विनयः ] जो कोई  
शुद्धात्माके अनुभवी महामुनि हैं उनकी विनयमें प्रवर्त होनेरूप द्रव्यमनके पुद्गल  
यहभी परिग्रह है [ च ] और [ सूत्राध्ययनं ] वचनात्मक सिद्धान्तोंका पढ़ना  
यहभी परिग्रह [ प्रज्ञप्तं ] कहा है ॥ भावार्थ—जिस परिग्रहका अपवाद मार्गमें



अथ केपवादविशेषा इत्युपदिशति;—

उचयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं ।

गुरुवयणंपि य विणओ सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं ॥ २५ ॥

उपकरणं जिनमार्गे लिङ्गं यथाजातरूपमिति भणितम् ।

गुरुवचनमपि च विनयः सूत्राध्ययनं च प्रज्ञप्तम् ॥ २५ ॥

चार एवेति ॥ २४ ॥ एवमपवादव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथैकादश-  
गाथापर्यन्तं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति । तद्यथा—श्वेताश्वरमतानुसारी  
शिष्यः पूर्वपक्षं करोति;—

पेच्छदि ण हि इह लोगं परं च समणिददेसिदो धम्मो ।

धम्ममिह तमिह कम्हा वियप्पियं लिंग मित्थीणं ॥ १ ॥

पेच्छदि ण हि इह लोगं निरुपरागनिजचैतन्यनित्योपलब्धिभावनाविनाशकं ख्यातिपूजा-  
लाभरूपं प्रेक्षते न च हि स्फुटं इह लोकं । न च केवलमिह लोकं परं च स्वात्मप्राप्तिरूपं  
मोक्षं विहाय स्वर्गभोगप्राप्तिरूपं परं च परलोकं च नेच्छति । स कः । समणिददेसिदो  
धम्मो श्रमणेन्द्रदेशितो धर्मः जिनेन्द्रोपदिष्ट इत्यर्थः । धम्ममिह तमिह कम्हा धर्मे तस्मिन्  
कस्मात् वियप्पियं विकल्पितं निर्ग्रन्थलिङ्गाद्वस्त्रप्रावरणेन पृथक्कृतं । किं । लिंगं सावरणचिह्नं ।  
कासां सम्बन्धि । इत्थीणं स्त्रीणामिति पूर्वपक्षगाथा ॥ १ ॥ अथ परिहारमाह;—

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा ।

तम्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिंगमित्थीणं ॥ २ ॥

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा निश्चयतः स्त्रीणां नरकादि-  
गतिविलक्षणानन्तसुखादिगुणस्वभावा तैरेव जन्मना सिद्धिर्न दृशा न कथिता । तम्हा तप्प-  
डिरूवं तस्मात्कारणाप्रतियोग्यं सावरणरूपं वियप्पियं लिंगमित्थीणं निर्ग्रन्थलिङ्गात्पृथक्त्वेन  
विकल्पितं कथितं लिङ्गं प्रावरणसहितं चिह्नं । कासां । स्त्रीणामिति ॥ २ ॥ अथ स्त्रीणां मोक्ष-  
प्रतिबन्धकं प्रमादबाहुल्यं दर्शयति;—

पइडीपमादमइया एतासिं वित्ति भासिया पमदा ।

तम्हा ताओ पमदा पमादबहुलोत्ति णिदिट्ठा ॥ ३ ॥

पइडीपमादमइया प्रकृत्या स्वभावेन प्रमादेन निर्दत्ता प्रमादमयी । का कर्त्री भवति । ए-  
दासिं वित्ति एतासां स्त्रीणां वृत्तिः परिणतिः भासिया पमदा तत एष नाममालायां प्रमदाः  
बलंघन करने योग्य है ॥ २४ ॥ आगे अपवाद मार्गके कौनसे भेद हैं उनको दिख-  
एते हैं;—[ जिनमार्गे ] सर्वश चीतरागदेव कथित निर्ग्रन्थ मोक्षमार्गमें [ उपक-  
रणं ] मुनिके उपकारी परिषद [ इत्ति ] इसप्रकार [ भणिदं ] कहे हैं कि  
[ यथाजातरूपं लिङ्गं ] जैसा मुनिका स्वरूप चाहिये वैसाही शरीरके द्रव्यलिङ्गका

धनशुद्धात्मतत्त्वघोतनसमर्थश्रुतज्ञानसाधनीभूतशब्दात्मसूत्रपुद्गलाश्च शुद्धात्मतत्त्वव्यञ्जक-  
दर्शनादिपर्यायतत्परिणतपुरुषविनीतताभिप्रायवर्तकचित्तपुद्गलाश्च भवन्ति । इदमत्र ता-

दीक्षितः साधुः कथं वन्द्यो भवति । सैव प्रथमतः किं न वन्द्या भवति साधोः । किन्तु भव-  
न्मते महितीर्थकरः स्त्रीति कथ्यते नदप्ययुक्तम् । तीर्थकरा हि सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिपोडशभा-  
वनाः पूर्वभवे भावयित्वा पश्चाद्भवन्ति । सम्यग्दृष्टेः स्त्रीवेदकर्मणो बन्ध एव नास्ति कथं स्त्री  
भविष्यतीति । किं च यदि महितीर्थकरो वान्यः कोऽपि वा स्त्रीभूत्वा निर्वाणं गतः तर्हि स्त्री-  
रूपप्रतिमाराधना किं न क्रियते भवद्भिः । यदि पूर्वोक्तदोषाः सन्तः स्त्रीणां तर्हि सीतारुक्मिणी-  
कुन्तीद्रौपदीसुभद्राप्रभृतयो जिनदीक्षां गृहीत्वा विशिष्टतपश्चरणेन कथं पोडशस्वर्गं गता  
इति चेत् ? परिहारमाह—तत्र दोषो नास्ति तस्मात्स्वर्गादागस्य पुरुषवेदेन मोक्षं यास्यन्त्यग्रे ।  
तद्भवमोक्षो नास्ति भवान्तरे भवतु को दोष इति । इदमत्र तात्पर्यं—स्वयं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यं  
परं प्रति विवादो न कर्तव्यः । कस्मात् ? विवादे रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति ततश्च शुद्धात्मभावना  
नश्यतीति ॥ ८ ॥ अधोपसंहाररूपेण स्थितपक्षं दर्शयति;—

तम्हा तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिदिहं ।

कुलरूववओजुत्ता समणीओ तस्समाचारा ॥ ९ ॥

तम्हा यस्मात्तद्भवे मोक्षो नास्ति तस्मात्कारणात् तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं  
णिदिहं तत्प्रतिरूपं वस्त्रप्रावरणसहितं लिङ्गं चिह्नं लाञ्छनं तासां स्त्रीणां जिनवैरैः सर्वज्ञैर्नि-  
दिष्टं कथितम् । कुलरूववओजुत्ता समणीओ लोकदुगुञ्जारहितत्वेन जिनदीक्षायोग्यं  
कुलं भण्यते । अन्तरङ्गनिर्विकारचित्तशुद्धिज्ञापकं बहिरङ्गनिर्विकारं रूपं भण्यते । शरीरभङ्गरहितं  
वा अतिबालवृद्धशुद्धिवैकल्यरहितं वयो भण्यते । तैः कुलरूपवयोभिर्युक्ताः कुलरूपवयoyुक्ता  
भवन्ति । काः श्रामण्यर्जिकाः । पुनरपि किंविशिष्टाः ? तस्समाचारा तासां स्त्रीणां योग्य-  
स्तयोग्य आचारशास्त्रविहितसमाचार आचरणं यासां तास्तस्समाचारा इति ॥ ९ ॥ अथेदानीं  
पुरुषाणां दीक्षाग्रहणे वर्णव्यवस्थां कथयति;—

वण्णेषु तीसु एको कल्लाणंगो तयोसहो वयसा ।

सुमुहो कुंछारहिदो लिंगगहणे हवदि जोग्गो ॥ १० ॥

वण्णेषु तीसु एको वर्णेषु त्रिभेदकः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवर्णेष्वेकः कल्लाणंगो कल्याणाङ्ग  
आरोग्यः तयोसहो वयसा तपःसहः तपःक्षमः । केन ? अतिवृद्धबालत्वरहितवयसा सुमुहो  
निर्विकाराम्यन्तरपरमचैतन्यपरिणतिविशुद्धिज्ञापकं गमकं बहिरङ्गनिर्विकारं मुखं यस्य मुखावयव-

लिंगस्वरूप काययोग संबंधी पुद्गल, एक तो यह उपकरण है । और शुद्धात्मतत्त्वके  
प्रकाशक जो वचनात्मक पुद्गल हैं उनको गुरुके पाससे मुनवा है तथा जो अनादि  
अनेत शुद्धात्मतत्त्वका प्रगट करनेवाला श्रुतज्ञान है उसके वचनस्वरूप जो सूत्रपुद्गल  
हैं उनको पढता है ये भी उपकरण हैं, और जिन महापुरुष मुनीश्वरोंके ज्ञानादि

जितसहजरूपोपेक्षितयथाजातरूपत्वेन बहिरङ्गलिङ्गभूताः कायपुद्गलाः श्रूयमाणतत्कालबो-  
धकगुरुगीर्यमाणात्मतच्चद्योतकसिद्धोपदेशवचनपुद्गलास्तथाधीयमाननित्यबोधकानादिनि-

लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणामिति ॥ ६ ॥ अथोत्पत्तिस्थानानि कथयति;—

लिंगं हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकखपदेसेसु ।

भणिदो सुहुमुप्पादो तासिं कह संजमो होदि ॥ ७ ॥

लिंगं हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकखपदेसेसु स्त्रीणां लिङ्गे योनिप्रदेशे स्तनान्तरे  
नाभिप्रदेशे कक्षप्रदेशे च भणिदो सुहुमुप्पादो एतेषु स्थानेषु सूक्ष्ममनुष्यादिजीवोत्पादो भ-  
णितः । एते पूर्वोक्तदोषाः पुरुषाणां किं न भवन्तीति चेत् ? एवं न वक्तव्यं स्त्रीषु बाहुल्येन  
भवन्ति । नचास्तिवमात्रेण समानत्वं । एकस्य विपकणिकास्ति द्वितीयस्य च विपं सर्वतोऽस्ति  
किं समानत्वं भवति ? किन्तु पुरुषाणां प्रथमसंहननबलेन दोषविनाशको मुक्तियोग्यविशेषसं-  
यमोऽस्ति । तासिं कह संजमो होदि ततः कारणात्तासां कथं संयमो भवतीति ॥ ७ ॥

अथ स्त्रीणां तद्भवमुक्तियोग्यां सकलकर्मनिर्जरां निषेधयति;—

जदि दंसणेण सुद्धा सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता ।

घोरं चरदि व चरियं इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा ॥ ८ ॥

जदि दंसणेण सुद्धा यद्यपि दर्शनेन सम्भक्त्वेन शुद्धाः सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता  
एकादशाङ्गसूत्राध्ययनेनापि संयुक्ता घोरं चरदि व चरियं घोरं पक्षोपत्रासनासोपवासादि चरति  
वा चारित्रं इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा तथापि स्त्रीजनस्य तद्भवकर्मक्षययोग्या सकलनिर्जरा  
न भणितेति भावः । किंच यथा प्रथमसंहननाभावात्स्त्री सप्तमनरकं न गच्छति तथा निर्वाण-  
मपि “पुंवेदं वेदंता पुरिसा जे खवगसेडिमारूढा । सेसोदयेणवि तहा शाणुवजुत्ता य तेदु सि-  
ज्जति” इति गाथाकथितार्थाभिप्रायेण भावस्त्रीणां कथं निर्वाणमिति चेत् ? तासां भावस्त्रीणां  
प्रथमसंहननमस्ति द्रव्यस्त्रीवेदाभावात्तद्भवमोक्षपरिणामप्रतिबन्धकतीव्रकामोद्रेकोऽपि नास्ति । द्रव्य-  
स्त्रीणां प्रथमसंहननं नास्तीति कस्मान्नागमे कथितमास्त इति चेत् ? तत्रोदाहरणगाथा-  
“अंतिमतिगसंघडणं णियमेण य कम्मभूमिमहिलणं । आदिमतिगसंघडणं णथिति जिणेहि णि-  
दिदं ॥ १ ॥” अथ मतं—यदि मोक्षो नास्ति तर्हि भवदीयमते किमर्थमर्जिकानां महाप्रतारोप-  
णम् ? परिहारमाह—तद्रूपचारेण कुलव्यवस्थानिमित्तम् । नचोपचारः साक्षाद्भवितुमर्हति अग्नि-  
यत् शूलैः देवदत्त इत्यादिवत् । तथाचोक्तम्—मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः  
प्रवर्तते । किन्तु यदि तद्भवे मोक्षो भवति स्त्रीणां तर्हि शतवर्षदीक्षिताया अर्जिकाया अशदिने

बलवन्ते नहीं किया गया है वह सभी परिग्रह यति अवस्थाको सहायक है इसलिये उप-  
हाते हैं;—[य, परिग्रह नहीं है । उम मुनिके योग्य परिग्रहके भेद इसप्रकार हैं कि  
रणं ] मुनिके उपदेष्टकमे रहित महाज (स्वाभाषिक) सुंदर यथाजातरूप याव द्रव्य-  
[ यथाजातरूपं लिङ्गं ] कर्मभूमिदिशानामपि । आदिमसंघटनप्रथं नास्तीति जिनेनिर्दिश्यम् ।

धनशुद्धात्मतत्त्वघोतनसमर्थश्रुतज्ञानसाधनीभूतशब्दात्मसूत्रपुद्गलाश्च शुद्धात्मतत्त्वव्यञ्जक-  
दर्शनादिपर्यायतत्परिणतपुरुषविनीतताभिप्रायवर्तकचित्तपुद्गलाश्च भवन्ति । इदमत्र ता-

दीक्षितः साधुः कथं वन्द्यो भवति । सैव प्रथमतः किं न वन्द्या भवति साधोः । किन्तु भव-  
न्मते महितीर्थकरः स्त्रीति कथयते नदप्ययुक्तम् । तीर्थकरा हि सम्प्रदर्शनविशुद्ध्यादिपोडशभा-  
वनाः पूर्वभवे भावयित्वा पथाद्भवन्ति । सम्प्रगृष्टेः स्त्रीवेदकर्मणो वन्ध एव नास्ति कथं स्त्री  
भविष्यतीति । किं च यदि महितीर्थकरो वान्यः कोऽपि वा स्त्रीभूत्वा निर्वाणं गतः तर्हि स्त्री-  
रूपप्रतिमाराधना किं न क्रियते भवद्भिः । यदि पूर्वोक्तदोषाः सन्तः स्त्रीणां तर्हि सीतारुक्मिणी-  
कुन्तीद्रौपदीसुभद्राप्रभृतयो जिनदीक्षां गृहीत्वा विशिष्टतपश्चरणेन कथं पोडशसर्गे गता  
इति चेत् ? परिहारमाह—तत्र दोषो नास्ति तस्मात्स्वर्गादागत्य पुरुषवेदेन मोक्षं यास्यन्त्यग्रे ।  
तद्भवमोक्षो नास्ति भवान्तरे भवतु को दोष इति । इदमत्र तात्पर्यं—स्वयं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यं  
परं प्रति विवादो न कर्तव्यः । कस्मात् ? विवादे रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति ततश्च शुद्धात्मभावना  
नश्यतीति ॥ ८ ॥ अधोपसंहाररूपेण स्थितपक्षं दर्शयति;—

तम्हा तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिद्धिं ।

कुलरूववओजुत्ता समणीओ तस्समाचारा ॥ ९ ॥

तम्हा यस्मात्तद्भवे मोक्षो नास्ति तस्मात्कारणात् तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं  
णिद्धिं तत्प्रतिरूपं वस्त्रप्रावरणसहितं लिङ्गं चिह्नं छाञ्चनं तासां स्त्रीणां जिनवैरैः सर्वज्ञैर्नि-  
र्दिष्टं कथितम् । कुलरूववओजुत्ता समणीओ लोकदुग्ज्जारहितत्वेन जिनदीक्षायोग्यं  
कुलं भण्यते । अन्तरङ्गनिर्विकारचित्तशुद्धिज्ञापकं बहिरङ्गनिर्विकारं रूपं भण्यते । शरीरभङ्गरहितं  
वा अतिबालवृद्धबुद्धिवैकल्यरहितं वयो भण्यते । तैः कुलरूपवयोभिर्युक्ताः कुलरूपवयoyुक्ता  
भवन्ति । काः श्रामण्यर्जिकाः । पुनरपि किंविशिष्टाः ? तस्समाचारा तासां स्त्रीणां योग्य-  
स्तयोग्य आचारशास्त्रविहितसमाचार आचरणं यासां तास्तस्समाचारा इति ॥ ९ ॥ अथेदानीं  
पुराणां दीक्षाग्रहणे वर्णव्यवस्थां कथयति;—

वण्णेषु तीसु एक्को कल्लाणंगो तवोसहो वयसा ।

सुमुहो कुञ्जारहिदो लिंगगहणे हवदि जोगो ॥ १० ॥

वण्णेषु तीसु एक्को वर्णेषु त्रिवेकः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवर्णेष्वेकः कल्लाणंगो कल्याणाङ्ग  
आरोम्यः तवोसहो वयसा तपःसहः तपःक्षमः । केन ? अतिबृद्धबालत्वरहितवयसा सुमुहो  
निर्विकाराम्यन्तरपरमचैतन्यपरिणतिविशुद्धिज्ञापकं गमकं बहिरङ्गनिर्विकारं मुखं यस्य मुखावयव-

लिंगस्वरूप काययोग संबंधी पुद्गल, एक तो यह उपकरण है । और शुद्धात्मतत्त्वके  
प्रकाशक जो वचनात्मक पुद्गल हैं उनको गुरुके पाससे मुनवा है तथा जो अनादि  
अनंत शुद्धात्मतत्त्वका प्रगट करनेवाला श्रुतज्ञान है उसके वचनस्वरूप जो सूत्रपुद्गल  
हैं उनको पहना है ये भी उपकरण हैं, और जिन महापुरुष सुनीश्वरोंके ज्ञानादि

त्पर्यं कायवद्वचनमनसी अपि न वस्तुधर्मः ॥ २५ ॥

अथाप्रतिपिद्धशरीरमात्रोपधिपालनविधानमुपदिशति;—

इह लोग गिरावेक्खो अप्पडिचट्ठो परम्मि लोयम्मि ।

जुत्ताहारविहारो रह्दिक्खसाओ हवे समणो ॥ २६ ॥

भङ्गरहितं वा स भवति सुमुखः कुञ्जारहिदो लोकमध्ये दुराचाराद्यपवादरहितः लिंगग्रहणे हवदि जोग्गो एवं गुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति । यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि ॥ १० ॥ अथ निश्चयनयाभिप्रायं कथयति;—

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहि णिदिट्ठो ।

सेसं भंगेण पुणो ण होदि सल्लेहणाअरिहो ॥ ११ ॥

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहि णिदिट्ठो यो स्तत्रयनाशः स भङ्गो जिन-  
वैरिर्निर्दिष्टः । विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्प्रज्ञानज्ञानानुष्ठानरूपो—योऽसौ नि-  
श्चयरत्नत्रयस्वभावस्तस्य विनाशः स एव निश्चयेन नाशो भङ्गो जिनवैरिर्निर्दिष्टः सेसं भंगेण  
पुणो शेषभङ्गेन पुनः शेषखण्डमुण्डवातवृषणादिभङ्गेन ण होदि सल्लेहणाअरिहो न-  
भवति सल्लेखनार्हः लोकदुगुञ्छाभयेन निर्ग्रन्थरूपयोग्यो न भवति । कौपीनग्रहणेन तु भावना-  
योग्यो भवतीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥ एवं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगोथामिस्तु-  
तीयं स्थलं गतम् । अथ पूर्वोक्तस्योपकरणरूपापवादव्याख्यानस्य विशेषविवरणं करोति;—इदि  
भणिदं कथितम् । किम् ? उचयरणं उपकरणं । क ? जिणमग्गे जिनोक्तमोक्षमार्गं । किमुपकर-  
णम् ? लिंगं शरीराकारपुद्गलपिण्डरूपं द्रव्यलिङ्गम् । किं विशिष्टम् ? जहजादरूवं यथाजात-  
रूपं यथाजातशब्देनात्र व्यवहारेण सङ्गपरित्यागयुक्तं निश्चयेनाभ्यन्तरेण शुद्धबुद्धैकस्वभावं पर-  
मात्मस्वरूपं गुरुवचनं पि य गुरुवचनमपि निर्बिकारपरमचिज्ज्योतिःस्वरूपपरमात्मतत्त्वप्रतिबो-  
धकं सारभूतं सिद्धोपदेशरूपं गुरुपदेशवचनं । न केवलं गुरुपदेशवचनं सुत्तजंझयणं च  
आदिमध्यान्तवर्जितजातिजरामरणरहितनिजाम्ब्रव्यप्रकाशकसूत्राध्ययनं च परमागमवाचनमि-  
त्यर्थः । णिदिट्ठं उपकरणरूपेण निर्दिष्टं कथितम् । विणओ स्वकीयनिश्चयरत्नत्रयशुद्धिनिश्चय-  
विनयः तदाधारपुरुषेषु भक्तिपरिणामो व्यवहारविनयः । उभयोऽपि विनयपरिणाम उपकरणं  
भवतीति निर्दिष्टः । अनेन किमुक्तं भवति—निश्चयेन चतुर्विधमेवोपकरणम् । अन्यदुपकरणं  
व्यवहार इति ॥ २५ ॥ अथ युक्ताहारविहारलक्षणतपोधनस्य स्वरूपमाख्याति;—इहलोगगिरा-  
भाव प्रगट्ठ हुर हैं उनमें विनयरूप परिणत हुर जो चित्त पुद्गल हैं ये भी उपकरण है ।  
इससे यह बात सिद्ध हुई कि मुनिको जैसे शरीरमें ममताभावका निषेध है उसीतरह  
वचन मनका भी निषेध है क्योंकि ये भी वस्तुके धर्म नहीं हैं इसलिये लाज्य हैं  
इनमें ही अपवादमार्गी मुनि कहलाने हैं उत्तममार्गी इनमें रहित है ॥ २५ ॥ आगे  
मुनिके निषेध नहीं किया जो शरीरमात्र परिमट्ठ उसके पालनेकी विधि पतलाते हैं;—

इह लोके निरापेक्ष अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके ।

युक्ताहारविहारो रहितकपायो भवेत् श्रमणः ॥ २६ ॥

अनादिनिधनैकरूपशुद्धात्मतत्त्वपरिणतत्वादखिलकर्मपुद्गलविषाकात्यन्तविविक्तस्वभाव-  
त्वेन रहितकपायत्वात्तदात्ममनुष्यत्वेपि समस्तमनुष्यव्यवहारवहिर्भूतत्वेनेह लोकनिरापेक्ष-  
त्वात्तथा भविष्यदमर्त्यादिभावानुभूतितृष्णाशून्यत्वेन परलोकाप्रतिबद्धत्वाच्च परिच्छेद्या-  
र्थोपलम्भप्रसिद्ध्यर्थप्रदीपपूरणोत्सर्पणस्थानीयाम्यां शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भप्रसिद्ध्यर्थतच्छरीर-  
संभोजनसंचलनाभ्यां युक्ताहारविहारो हि स्यात् श्रमणः । इदमत्र तात्पर्यं—यतो हि  
रहितकपायः ततो न तच्छरीरानुरागेण दिव्यशरीरानुरागेण वाहारविहारयोरयुक्त्या प्रवर्तते ।  
शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसाधकश्रामण्यपर्यायपालनायैव केवलं युक्ताहारविहारः स्यात् ॥ २६ ॥

वेक्खो इहलोकनिरापेक्षः टङ्कोत्कीर्णज्ञायककत्वभावनिजात्मसंवित्तिविनाशकल्यातिरूजालाभरू-  
पेहलोककाङ्क्षारहितः अप्पडिवंधो परम्मि लोयम्मिह अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके तपश्चरणे  
कृते दिव्यदेवस्त्रीपरिवारादिभोगा भवन्तीति, एवंविधपरलोके प्रतिबद्धो न भवति युक्ताहारवि-  
हारो हवे युक्ताहारविहारो भवेत् । स कः । समणो श्रमणः । पुनरपि कथंभूतः । रहितक-  
साओ निःकपायस्वरूपसंवित्त्ववष्टंभवलेन रहितकपायश्चेति । अयमत्र भावार्थः—योसौ इहलोक-  
परलोकनिरापेक्षत्वेन निःकपायत्वेन च प्रदीपस्थानीयशरीरे तैलस्थानीयं ग्रासमात्रं दत्वा घटप-  
टादिप्रकाश्यपदार्थस्थानीयं निजपरमात्मपदार्थमेव निरीक्षते स एव युक्ताहारविहारो भवति

[ श्रमणः ] जो मुनि है वह [ इह लोके निरापेक्षः ] इस लोकमें विषयोंकी अ-  
भिलाषारहित हुआ [ परस्मिन् लोके ] परलोकमें अर्थात् होनेवाली देवादिपर्या-  
योंमें [ अप्रतिबद्धः ] अभिलाषाकर नहीं बंधा हुआ [ रहितकपायः ] राग-  
द्वेषभावरूपकपायोंकर रहित होता हुआ [ युक्ताहारविहारः ] योग्य आहार  
विहारमें [ भवेत् ] प्रवृत्ति करता है अयोग्यको छोड़ता है ॥ भावार्थ—मुनीश्वरने  
अपना स्वरूप अनादि अनंत पुद्गलसे उत्पन्न हुए भावोंसे भिन्न जान लिया है इसलिये  
कर्मके उदयसे जो मिली हुई मनुष्यादि पर्याय है उसमें आत्मसुद्धि नहीं करता  
अर्थात् अपनी नहीं मानता, और कपायोंसे रहित है इसलिये मनुष्य संबंधिनी क्रिया-  
ओंसे रहित है उसे इस लोकमें पंचेन्द्री विषयोंकी वांछा नहीं है, तथा आगामी का-  
लके देवादिगतिके दिव्यसुखोंके भोगनेकी वांछासे रहित है इसवास्ने परलोककीभी  
अभिलाषाकर बंधा हुआ नहीं है । जैसे घटपटादि पदार्थोंके देखनेकेलिये दीपकमें  
तेल डालते हैं और बत्ती आदिकभी संभालते हैं उसीप्रकार शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्तिके  
लिये शरीरको भोजनसे तथा चलनादि क्रियासे योग्य आहार विहार क्रियामें प्रवृत्त  
करता है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि मुनीश्वर कपायभावोंसे रहित हैं इसलिये  
अपने वर्तमान शरीरके अनुरागसे प्रवृत्ति नहीं करते किंतु शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धिके-

त्यर्थं कायवद्वचनमनसी अपि न वस्तुधर्मः ॥ २५ ॥

अथाप्रतिपिद्धशरीरमात्रोपधिपालनविधानमुपदिशति;—

इह लोग णिरावेक्खो अप्पडिच्चो परम्मि लोयम्मि ।

उत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ॥ २६ ॥

भङ्गरहितं वा स भवति सुमुखः कुंछारहिदो लोकमध्ये दुराचाराद्यपवादरहितः लिंगगहणे हवदिं जोग्गो एवं गुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति । यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि ॥ १० ॥ अथ निश्चयनयाभिप्रायं कथयति;—

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहि णिहिद्वो ।

सेसं भंगेण पुणो ण होदि सल्लेहणाअरिहो ॥ ११ ॥

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहि णिहिद्वो यो रत्नत्रयनाशः स भङ्गो जिन-  
वैरैर्निर्दिष्टः । विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपो -योऽसौ नि-  
श्चयरत्नत्रयस्वभावस्तस्य विनाशः स एव निश्चयेन नाशो भङ्गो जिनवैरैर्निर्दिष्टः सेसं भंगेण  
पुणो शेषभङ्गेन पुनः शेषखण्डमुण्डवातवृषणादिभङ्गेन ण होदि सल्लेहणाअरिहो न  
भवति सल्लेखनार्हः लोकदुगुञ्छाभयेन निर्ग्रन्थरूपयोग्यो न भवति । कौपीनग्रहणेन तु भावना-  
योग्यो भवतीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥ एवं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथाभिस्तृ-  
तीयं स्थलं गतम् । अथ पूर्वोक्तस्योपकरणरूपापवादव्याख्यानस्य विशेषविवरणं करोति;—इदि  
भणिदं कथितम् । किम् ? उच्यरणं उपकरणं । क ? जिणमग्गे जिनोक्तमोक्षमार्गं । किमुपकर-  
णम् ? लिंगं शरीराकारपुद्गलपिण्डरूपं द्रव्यलिङ्गम् । किं विशिष्टम् ? जहजादरूवं यथाजात-  
रूपं यथाजातशब्देनात्र व्यवहारेण सङ्गपरित्यागयुक्तं निश्चयेनाभ्यन्तरेण शुद्धबुद्धैकस्वभावं पर-  
मात्मस्वरूपं गुरुवयणं पि य गुरुवचनमपि निर्विकारपरमचिज्ज्योतिःस्वरूपपरमात्मतत्त्वप्रतिबो-  
धकं सारभूतं सिद्धोपदेशरूपं गुरुपदेशवचनं । न केवलं गुरुपदेशवचनं सुत्तज्ज्ञयणं च  
आदिमध्यान्तवर्जितजातिजरामरणरहितनिजात्मद्रव्यप्रकाशकसूत्राध्ययनं च परमागमवाचनमि-  
त्यर्थः । णिहिद्वं उपकरणरूपेण निर्दिष्टं कथितम् । विणओ स्वकीयनिश्चयरत्नत्रयशुद्धिनिश्चय-  
विनयः तदाधारपुरुषेषु भक्तिपरिणामो व्यवहारविनयः । उभयोऽपि विनयपरिणाम उपकरणं  
भवतीति निर्दिष्टः । अनेन किमुक्तं भवति—निश्चयेन चतुर्विधमेवोपकरणम् । अन्यदुपकरणं  
व्यवहार इति ॥ २५ ॥ अथ सुक्ताहारविहारलक्षणतपोधनस्य स्वरूपमाख्यातिः;—इहलोगणिरा-  
भाव प्रगट्ट हए हँ उनमें विनयरूप परिणत हए जो चित्त पुद्गल हँ ये भी उपकरण है ।  
इससे यह बात सिद्ध हुई कि मुनिको जैसे शरीरमें ममताभावका निषेध है उसीतरह  
वचन मनका भी निषेध है क्योंकि ये भी वस्तुके धर्म नहीं हैं इसलिये लाज्य हैं  
इससे ही अपवादमार्गी मुनि कहलाते हैं उत्सर्गमार्ग इनसे रहित है ॥ २५ ॥ आगे  
मुनिके निषेध नहीं किया जो शरीरमात्र परिग्रह उसके पालनेकी विधि बतलाते हैं;—

वलीयस्त्वात् इति कृत्वा ये तं स्वयमनशनस्वभावं भावयन्ति श्रमणाः । तत्प्रतिपिद्धये चैषणादोषशून्यमन्यद्वैक्षं चरन्ति । ते किलाहरन्तोप्यनाहरन्त इति युक्ताहारत्वेन स्वभावपरभावप्रत्ययप्रतिबन्धाभावात्साक्षादनाहारा एव भवन्ति । एवं स्वयमविहारस्वभावत्वात्समितिशुद्धविहारत्वाच्च युक्तविहारः साक्षादविहार एव स्यात् इत्यनुक्तमपि गम्येतेति ॥ २७ ॥

अथ कुतो युक्ताहारत्वं सिद्ध्यतीत्युपदिशति;—

केवलदेहो समणो देहेण ममेत्ति रहितपरिकम्मो ।

आउत्तो तं तवसा अणिगूहं अप्पणो सत्ति ॥ २८ ॥

केवलदेहः श्रमणो देहेन ममेति रहितपरिकर्मा ।

आयुक्तवांस्तं तपसा अनिगूहन्नात्मनः शक्तिम् ॥ २८ ॥

यतो हि श्रमणः श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेन केवलदेहमात्रस्योपधेः प्रसङ्गाप्र-

अह अथ अहो ते समणा अणाहारा ते अनशनादिगुणविशिष्टाः श्रमणा आहारग्रहणेऽप्यनाहारा भवन्ति । तथैव च निःक्रियपरमात्मानं ये भावयन्ति पञ्चसमितिसहिता विहरन्ति च विहारा भवन्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥ अथ तदेवानाहारकत्वं प्रकारान्तरेण प्राह;—केवलदेहो केवलदेहोऽन्यपरिग्रहरहितो भवति । स कः कर्त्ता । समणो निन्दाप्रशंसादिसमचित्तः श्रमणः । तर्हि किं देहे ममत्वं भविष्यति ? नैवं देहेचि ममत्तरहियपरिकम्मो देहेऽपि ममत्वरहितपरिकर्मा “ममत्ति परिवज्जामि णिम्ममत्ति उवट्ठिदो । आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वो-

[ अनाहाराः ] आहार ग्रहणसे रहितही हैं ऐसा मानना चाहिये ॥ भावार्थ—जो महामुनीश्वर हैं उन्होंनेभी अपना स्वरूप सदाकाल समस्त परद्रव्यरूप पुद्गलके ग्रहणसे रहित जान लिया है इसलिये भोजन करनेकी तृष्णासे रहित हैं ये ही उनके अंतरंग अनशन नामा तप है । ऐसे निराहार आत्मस्वभावके भावनेवाले मुनि जो शरीरकी स्थितिके निमित्त आहारभी लेते हैं तो सब दोषोंसे रहित शुद्ध अन्नको लेते हैं इसलिये वे मुनि आहार ग्रहण करते हुएभी नहीं लेनेवालेही माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने एक तो अपना स्वभाव निराहार समझ रक्खा है और जो आहार लेते हैं तो रागी होकर नहीं लेते इसलिये बंध नहीं होता । इसकारण निराहार ही मानने । और इसी-तरह चलनादि क्रियारूप विहार कर्मको भी निजस्वभाव नहीं मानता है, और जो विहारकर्म करताभी है तो ईर्यासमितिकी शुद्धिसे योग्य विहार करता है । इसलिये विहारक्रिया करने परभी अविहारी मानना चाहिये ॥ २७ ॥ आगे योग्य आहार कि-मसे होता है यह कहते हैं;—[ श्रमणः ] मुनि [ केवलदेहः ] एक शरीरमात्र परिग्रहवाला होता हुआ और [ देहे ] देहके होनेपर भी उसमें [ न मम ] यह मेरा नहीं है [ इति ] इसप्रकार [ रहितपरिकर्मा ] देहमबंधी अयोग्य आहार वि-



अथ युक्ताहारविहारः साक्षादनाहारविहार एवेत्युपदिशति;—

जस्स अणेसणमप्पा तंपि तवो तप्पडिच्छगा समणा ।

अण्णं भिक्खमणेसणमथ ते समणा अणाहारा ॥ २७ ॥

यस्यानेपण आत्मा तदपि तपः तत्प्रत्येपकाः श्रमणाः ।

अन्यद्वैक्षमनेपणमथ ते श्रमणा अनाहाराः ॥ २७ ॥

स्वयमनशनस्वभावत्वादेयणादोपशून्यभैक्ष्यत्वाच्च युक्ताहारः साक्षादनाहार एव स्यात् । तथाहि—यस्य सकलकालमेव सकलपुद्गलाहरणशून्यमात्मानमवबुद्धमानस्य सकलानशनतृष्णाशून्यत्वात्स्वयमनशन एव स्वभावः । तदेव तस्यानशनं नाम तपोऽन्तरङ्गस्य पुनरभ्यः शरीरपोषणनिरत इति ॥ २६ ॥ अथ पञ्चदशप्रमादैस्तपोधनः प्रमत्तो भवतीति प्रतिपादयति;—

कोहादिएहि चउविहि विकहाहि तहिंदियाणमत्थेहिं ।

समणो हवदि पमत्तो उवजुत्तो णेहणिदाहिं ॥ १ ॥

हवदि क्रोधादिपञ्चदशप्रमादरहितचिन्मत्कारमात्रात्मतत्त्वभावनाच्युतः सन् भवति । स कः कर्त्ता । समणो सुखदुःखादिसमचित्तः श्रमणः । किंविशिष्टो भवति । पमत्तो प्रमत्तः प्रमादी । कैः कृत्वा । कोहादि हि चउविहि चतुर्भिरपि क्रोधादिभिः विकहाहि स्त्रीभक्तचोराजकंधाभिः तहिंदियाणमत्थेहिं तथैव पञ्चेन्द्रियाणामर्थैः स्वर्शादिविषयैः । पुनरपि किरूपः । उवजुत्तो उपयुक्तः परिणतः । काभ्याम् ? णेहणिदाहिं स्नेहनिद्राम्यामिति ॥ १ ॥ अथ युक्ताहारविहारतपोधनस्वरूपमुपदिशति;—जस्स यस्य मुनेः सम्बन्धी अप्पा आत्मा । किंविशिष्टः ? अणेसणं स्वकीयशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नमुखामृताहारेण तृप्तत्वान्न विद्यते एषणमाहाराकाङ्क्षा यस्य स भवत्यनेपणः । तंपि तवो तस्य तदेव निश्चयेन निराहारात्मभावनारूपमुवासलक्षणं तपः तं पडिच्छगा समणा तत्प्रत्येपकाः श्रमणाः तन्निधयोपवासलक्षणं तपः प्रतीच्छन्ति तत्प्रत्येपकाः श्रमणाः । पुनरपि किं येषां । अण्णं निजपरमात्मतत्त्वादित्यद्विन्नं हेयं । किं । अणेसणं अन्नस्याहारस्यैषणं वाञ्छानेपणम् । कथंभूतं ? भिक्खं भिक्षार्या भवं भैक्ष्यं

लिये मुनिपदवी पालनेके निमित्त केवल योग्यआहारमें प्रवर्तित होते हैं ॥ २६ ॥ आगे कहते हैं कि योग्य आहार विहार करनेपर भी मुनिको साश्रान् आहार विहारमें रहित मानना चाहिये;—[ यस्य आत्मा ] जिस मुनिका जीव [ अनेपणः ] अपने स्वभावकर परद्रव्यके ग्रहणसे रहित निराहारी है [ तत् ] वही आत्माका निराहार स्वभाव [ अपि ] निधयसे [ तपः ] अंतर्ग तप है । [ तत्प्रत्येपकाः श्रमणाः ] उक्त निराहार आत्मस्वभावकी सिद्धिके वांछक जो महागुनि हैं वे [ अनेपणं ] आहारके दोषोंसे रहित [ अन्यत् भैक्ष्यं ] अन्य भिक्षाकेविषयं शुद्ध अन्नको ग्रहण करते हैं [ अथ ] इमीलियं ग्रहण करते हुए भी [ ते श्रमणाः ] ये महागुनि

वलीयस्त्वात् इति कृत्वा ये तं स्वयमनशनस्वभावं भावयन्ति श्रमणाः । तत्प्रतिपिद्ध्ये चैषणादोपशून्यमन्यद्भैक्षं चरन्ति । ते किलाहरन्तोप्यनाहरन्त इति युक्ताहारत्वेन स्वभावपरभावप्रत्ययप्रतिघन्धाभावात्साक्षादनाहारा एव भवन्ति । एवं स्वयमविहारस्वभावत्वात्समितिशुद्धविहारत्वाच्च युक्तविहारः साक्षादविहार एव स्यात् इत्यनुक्तमपि गर्भ्येतेति ॥ २७ ॥

अथ कुतो युक्ताहारत्वं सिद्ध्यतीत्युपदिशति;—

केवलदेहो समणो देहेण ममेत्ति रहिदपरिकम्मो ।

आउत्तो तं तवसा अणिगूहं अप्पणो सत्ति ॥ २८ ॥

केवलदेहः श्रमणो देहेन ममेति रहितपरिकर्मा ।

आयुक्तवांस्तं तपसा अनिगूहन्नात्मनः शक्तिम् ॥ २८ ॥

यतो हि श्रमणः श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेन केवलदेहमात्रस्योपधेः प्रसङ्गाप्र-

अह अथ अहो ते समणा अणाहारा ते अनशनादिगुणविशिष्टाः श्रमणा आहारग्रहणेऽप्यनाहारा भवन्ति । तथैव च निःक्रियपरमात्मानं ये भावयन्ति पञ्चसमितिसहिता विहरन्ति च विहारा भवन्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥ अथ तदेवानाहारकत्वं प्रकारान्तरेण प्राह;—केवलदेहो केवलदेहोऽन्यपरिग्रहरहितो भवति । स कः कर्त्ता । समणो निन्दाप्रशंसादिसमचित्तः श्रमणः । तर्हि किं देहे ममत्वं भविष्यति ? नैवं देहेवि ममत्तरहियपरिकम्मो देहेऽपि ममत्तरहितपरिकर्मा “ममत्ति परिवज्जामि णिम्ममत्ति उवड्ढिदो । आलंघणं च मे आदा अवसेसाइं वो-

[ अनाहाराः ] आहार ग्रहणसे रहितही हैं ऐसा मानना चाहिये ॥ भावार्थ—जो महामुनीश्वर हैं उन्होंनेभी अपना स्वरूप सदाकाल समस्त परद्रव्यरूप पुद्गलके ग्रहणसे रहित जान लिया है इसलिये भोजन करनेकी तृष्णासे रहित हैं ये ही उनके अंतरंग अनशन नामा तप है । ऐसे निराहार आत्मस्वभावके भावनेवाले मुनि जो शरीरकी स्थितिके निमित्त आहारभी लेते हैं तो सब दोषोंसे रहित शुद्ध अन्नको लेते हैं इसलिये वे मुनि आहार ग्रहण करते हुएभी नहीं लेनेवालेही माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने एक तो अपना स्वभाव निराहार समझ रक्खा है और जो आहार लेते हैं तो रागी होकर नहीं लेते इसलिये बंध नहीं होता । इसकारण निराहार ही मानने । और इसी-तरह चलनादि क्रियारूप विहार कर्मको भी निजस्वभाव नहीं मानता है, और जो विहारकर्म करताभी है तो ईर्ष्यासमितिकी शुद्धिसे योग्य विहार करता है । इसलिये विहारक्रिया करने परभी अविहारी मानना चाहिये ॥ २७ ॥ आगे योग्य आहार कि-ससे होता है यह कहते हैं;—[ श्रमणः ] मुनि [ केवलदेहः ] एक शरीरमात्र परिग्रहवाला होता हुआ और [ देहे ] देहके होनेपर भी उसमें [ न मम ] यह मेरा नहीं है [ इनि ] इसप्रकार [ रहिनपरिकर्मा ] देहबंधी अयोग्य आहार वि-

तिपेधकत्वात्केवलदेहत्वे सत्यपि देहे “किं किंचन” मित्यादिप्राक्तनसूत्रद्योतितपरमेश्वराभिप्रायपरिग्रहेण न नाम ममायं ततो नानुग्रहार्हः किंतूपेक्ष्य एवेति परित्यक्तमस्तसंस्कारत्वाद्द्रहितपरिकर्मा स्यात् । ततस्तन्ममत्वपूर्वकानुचिताहारग्रहणाभावाद्युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत् । यतश्च समस्तामप्यात्मशक्तिं प्रकटयन्नन्तरसूत्रोदितेनानशनस्वभावलक्षणेन तपसा तं देहं सर्वारम्भेणाभियुक्तवान् स्यात् । तत आहारग्रहणपरिणामात्मकयोगध्वंसाभावाद्युक्तस्यैवाहारेण च युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत् ॥ २८ ॥

अथ युक्ताहारस्वरूपं विस्तरेणोपदिशति;—

एकं खलु तं भक्तं अप्पड्ढिपुण्णोदरं जघा लद्धं ।

चरणं भिक्खवेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं ॥ २९ ॥

सरे ॥ १ ॥” इति श्लोककथितक्रमेण देहेऽपि ममत्वरहितः आजुत्तो तं तवसा आयुक्तवान् आयोजितवांस्तं देहं तपसा । किं कृत्वा । अणिगूहिय अनिगूह्य प्रच्छादनमकृत्वा । काम् ? अप्पणो सत्ति आत्मनः शक्तिमिति । अनेन किमुक्तं भवति—यः कोऽपि देहाच्छेषपरिग्रहं त्यक्त्वा देहेऽपि ममत्वरहितस्तथैव तं देहं तपसा योजयति स नियमेन युक्ताहारविहारो भवतीति ॥ २८ ॥ अथ युक्ताहारत्वं विस्तरेणोपदिशति;—एकं खलु तं भक्तं एककाल एव खलु हि स्फुटं स भक्त आहारो युक्ताहारः कस्मादेकभक्तेनैव निर्विकल्पसमाधिसेहकारिकारणभूतशरार क्रियासे रहित हुआ तथा [ आत्मनः शक्ति ] अपने धिरताभावस्वरूप बलको [ अनिगूह्य ] नहीं छिपाता हुआ अर्थात् प्रगट करता हुआ [ तं ] उस देहको [ तपसा ] अनशनरूप तपस्यामें [ आयुक्तवान् ] लगाता है ॥ भावार्थ—मुनिके अन्य परिग्रह परमाणुमात्रभी नहीं किंतु मुनिअवस्थाका सहकारी कारण एकला देहमात्र परिग्रह है वह किसीप्रकार जत्रदस्तीसे भी दूर नहीं किया जासकता है । इसलिये मुनिके केवल शरीरमात्र परिग्रहका निषेध नहीं है । और यद्यपि मुनिके शरीर है तौभी उस शरीरमें ममताभाव नहीं करते । तथा “किं किंचिणत्ति त्थं” ऐसी पहले गाथा कही गई है उममें सर्वज्ञ वीतरागका अभिप्राय यह है कि परिग्रह सर्वथा त्याज्य है ऐसा ज्ञानके भगवंतकी आज्ञाको ग्रहणकर शरीरमें ममताभावसे रहित होता है, देहके संभालनेमें प्रवृत्त नहीं होता, ममत्व बुद्धिकर अयोग्य आहारको ग्रहण नहीं करता. इस कारण मुनिके योग्यआहारकी मिद्धि होती है । उस शरीरको अयोग्य आहारमें पोषण नहीं करना यथाशक्ति तपस्यामेंही लगाता है । सारांश यह निकला कि मुनिके अनरग वीतराग भावका बल है इसलिये सब आरंभकर शरीरको उममें लगाना है जो कभी आहारभी लेता है तो योग्य लेता है इसलिये धैर्याग्यके बलमें योग्य आहारकी मिद्धि है ॥ २८ ॥ आगे योग्य आहारका स्वरूप विस्तरमें दिगलाने है [ म भक्तः ] वह शुद्ध आहार [ खलु ] निभयकर [ एकः ]

एकः खलु स भक्तः अप्रतिपूर्णादरो यथालब्धः ।

भिक्षाचरणेन दिवा न रसापेक्षो न मधुमांसः ॥ २९ ॥

एककाल एवाहारो युक्ताहारः, तावतैव श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरस्य धारण-  
त्वात् । अनेककालस्तु शरीरानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न  
युक्तः । शरीरानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य अप्रतिपूर्णादर एवाहारो युक्ताहारः तस्यै-  
वाप्रतिहतयोगत्वात् । प्रतिपूर्णादरस्तु प्रतिहतयोगत्वेन कथंचित् हिंसायतनीभवन् न  
युक्तः । प्रतिहतयोगत्वेन न च युक्तस्य यथालब्ध एवाहारो युक्ताहारः तस्यैव विशेषप्रि-

रोरस्थितिसम्भवात् । स च कथंभूतः ? अप्पडिपुण्णोदरं यथाशक्या न्यूनोदरः जहालब्धं  
यथालब्धो न च स्वेच्छालब्धः चरणं भिक्षुत्वेन भिक्षाचरणेनैव लब्धो न च स्वपाकेन दिवा  
दिवैव न च रात्रौ । ण रसावेक्खं रसापेक्षो न भवति किन्तु सरसविरसादौ समचित्तः  
ण मधुमंसं अमधुमांसः अमधुमांस इत्युपलक्षणेन आचारशास्त्रकथितपिण्डशुद्धिक्रमेण संम-  
स्तायोग्याहाररहित इति । एतावता किमुक्तं भवति ? एवंविशिष्टविशेषणयुक्त एवाहारस्तापोध-

एक काल ( वक्त ) ग्रहण किया जाता है तब योग्य आहार होता है । और वह योग्य  
आहार [ अप्रतिपूर्णादरः ] नहीं पूर्ण होता है पेट जिससे ऐसा होता है [ यथा-  
लब्धः ] जैसा कुछ मिले वैसाही अंगीकार करने योग्य है [ भिक्षाचरणेन ]  
भिक्षापृत्ति कर लेना योग्य है [ दिवा ] दिनमेंही लेने योग्य है [ न रसापेक्षः ]  
जिस आहारमें मिष्ट स्निग्धादि रसकी इच्छा न हो ऐसा तथा [ मधुमांसः न ]  
शहत और मांसादि अयोग्य वस्तुएं जिसमें नहीं हैं ॥ भावार्थ—मुनिको एकही बार  
आहार करना चाहिये क्योंकि मुनिपर्यायका सहायक शरीर है उस शरीरकी स्थिति  
एकवार आहार लेनेसे होजाती है इसलिये एक वक्त लेना योग्य है, और जो शरीरके  
अनुरागसे बार बार लेवे तो वह प्रमाद दशाकर द्रव्यभाव हिंसाका कारण होता है,  
इसवास्ते बार २ लेना अयोग्य है एकही काल लेना उचित है । और एक बारभी  
शरीरके अनुरागसे जो लिया जावे तो वहभी अयोग्य है संयमकी सिद्धिका कारण  
शरीरकी स्थितिके निमित्त जो लेना है वह योग्य है । और एक बारभी पेट भरके  
आहार लेना है वहभी अयोग्य है क्योंकि बहुत आहारसे योगकी शिथिलता हो-  
नेपर प्रमाददशा होजाती है वही हिंसाका कारण है इसलिये उदरभरके भोजन क-  
रना योग्य नहीं है ऊनोदर रहना ठीक है, और शरीरके अनुरागकर जो पेटभर भी  
न लिया जाय तो भी वह योग्य आहार नहीं है संयमका साधन शरीरकी स्थितिके  
निमित्तही ऊनोदर रहना ठीक है । जैसा कुछ मिले वैसाही अंगीकार करे ऐसा नहीं  
कि अपनेलिये करावे इसलिये यथालब्ध आहार ठीक है और यथालब्ध आहारभी  
जो विशेष इन्द्रियस्वादके अनुरागसे किया जावे तो वह हिंसाका म्यान होता है इस-

तिपेधकत्वात्केवलदेहत्वे सत्यपि देहे “किं किंचन” मित्यादिप्राक्तनसूत्रद्योतितपरमेश्वरा-  
भिप्रायपरिग्रहेण न नाम ममायं ततो नानुग्रहार्हः किंतूपेक्ष्य एवेति परित्यक्तसमस्तसं-  
स्कारत्वाद्द्रवितपरिकर्मा स्यात् । ततस्तन्ममत्वपूर्वकानुचिताहारग्रहणाभावाद्युक्ताहारत्वं  
सिद्ध्येत् । यतश्च समस्तामप्यात्मशक्तिं प्रकटयन्ननन्तरसूत्रोदितेनानशनस्वभावलक्षणेन  
तपसा तं देहं सर्वारम्भेणाभियुक्तवान् स्यात् । तत आहारग्रहणपरिणामात्मकयोगध्वं-  
साभावाद्युक्तस्यैवाहारेण च युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत् ॥ २८ ॥

अथ युक्ताहारस्वरूपं विस्तरेणोपदिशति:—

एकं खलु तं भक्तं अप्पडिपुण्णोदरं जघा लद्धं ।

चरणं भिक्खवेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं ॥ २९ ॥

सरे ॥ १ ॥” इति श्लोककथितक्रमेण देहेऽपि ममत्वरहितः आजुत्तो तं तवसा आयुक्त-  
वान् आयोजितवांस्तं देहं तपसा । किं कृत्वा । अणिगूहिय अनिगूह्य प्रच्छादनमकृत्वा ।  
काम् ? अप्पणो सत्तिं आत्मनः शक्तिमिति । अनेन किमुक्तं भवति—यः कोऽपि देहाच्छेप-  
रिग्रहं त्यक्त्वा देहेऽपि ममत्वरहितस्तथैव तं देहं तपसा योजयति स नियमेन युक्ताहारविहारो  
भवतीति ॥ २८ ॥ अथ युक्ताहारत्वं विस्तरेणाख्याति:—एकं खलु तं भक्तं एककाल एव खलु  
हि स्फुटं स भक्त आहारो युक्ताहारः कस्मादेकभक्तेनैव निर्विकल्पसमाधिसहकारिकारणभूतश-  
हार क्रियासे रहित हुआ तथा [ आत्मनः शक्ति ] अपने थिरताभावस्वरूप व-  
लको [ अनिगूह्य ] नहीं छिपाता हुआ अर्थात् प्रगट करता हुआ [ तं ] उस देहको  
[ तपसा ] अनशनरूप तपस्यामें [ आयुक्तवान् ] लगाता है ॥ भावार्थ—मु-  
निके अन्य परिग्रह परमाणुमात्रभी नहीं किंतु मुनिअवस्थाका सहकारी कारण एकला  
देहमात्र परिग्रह है वह किमीप्रकार जवरदस्तीसे भी दूर नहीं किया जासकता है ।  
इमलिये मुनिके केवल शरीरमात्र परिग्रहका निषेध नहीं है । और यद्यपि मुनिके  
शरीर है तौभी उस शरीरमें ममताभाव नहीं करते । तथा “किं किंचिन्ति तर्हं”  
ऐसी पहले गाथा कही गई है उममें सर्वह वीतरागका अभिप्राय यह है कि परिग्रह  
मर्वधा व्याज्य है गेमा जानके भगवंतकी आज्ञाको ग्रहणकर शरीरमें ममताभावसे  
रहित होता है, देहके संभालनेमें प्रवृत्त नहीं होता, ममत्व बुद्धिकर अयोग्य आहारको  
ग्रहण नहीं करना. इस कारण मुनिके योग्यआहारकी सिद्धि होती है । उस शरीरको  
अयोग्य आहारमें पोषण नहीं करना यथाशक्ति तपस्यामेंही लगाता है । सारांश यह  
निकला कि मुनिके अतग्न वीतराग भावका बल है इमलिये सब आरंभकर शरी-  
रको उममें लगाना है जो कभी आहारभी लेता है तो योग्य लेता है इसलिये पैरा-  
ग्यके बलमें योग्य आहारकी सिद्धि है ॥ २८ ॥ आगे योग्य आहारका स्वरूप विन्ता-  
रमें दिग्गाने है [ म भक्तः ] वह शुद्ध आहार [ खलु ] निभयकर [ एकः ]

अथोत्सर्गापवादमैत्रीसौस्थित्यमाचरणस्योपदिशति;—

वालो वा वुहो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा ।

चरियं चरउ सजोग्गं मूलच्छेदं जधा ण हवदि ॥ ३० ॥

वालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतो वा पुनर्गानो वा ।

चर्यां चरतु स्वयोग्यां मूलच्छेदो यथा न भवति ॥ ३० ॥

वालवृद्धश्रान्तग्लानेनापि संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न य-  
थास्य तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमेवाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गः । वालवृद्ध-

अथ विशेषेण मांसदूपणं कथयति;—

पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु मंसपेसीसु ।

संचत्तियमुववादो तज्जादीणं णिगोदाणं ॥ १ ॥

जो पक्कमपक्कं वा पेसी मंसस्स खादि पासदि वा ।

सो किल णिहणदि पिंडं जीवाणमणेगकोडीणं ॥ २ ॥ जुम्मं ।

भणित इत्यध्याहारः । स कः । उववादो व्यक्थारनयेनोत्पादः । किंविशिष्टः । संचत्तियं  
सान्ततिको निरन्तरः । केपां सम्बन्धी । णिगोदाणं निश्चयेन शुद्धयुद्धैकस्वभावानामनादिनि-  
धनत्वेनोत्पादव्ययरहितानामपि निगोदजीवानाम् । पुनरपि कथंभूतानाम् ? तज्जादीणं तद्वर्ण-  
तद्रन्धतद्रसतत्पर्शत्वेन तज्जातीनां मांसजातीनाम् । कास्वधिकरणभूतासु ? मंसपेसीसु मांसपे-  
शीषु मांसखण्डेषु । कथंभूतासु । पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु पकासु चामासु  
च विपच्यमानास्विति प्रथमगाथा । जो पक्कमपक्कं वा यः कर्त्ता पक्कामपक्कां वा पेसीं  
पेसीं खण्डं । कस्य ? मंसस्स मांसस्य खादि निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नसुखसुधाहारमलभमानः  
सन् खादति भक्षति पासदि वा स्पर्शति वा सो किल णिहणदि पिंडं स कर्त्ता किल  
लोकोक्त्या परमागमोक्त्या वा निहन्ति पिण्डम् । केपाम् ? जीवाणं जीवानां । कतिसंख्योपे-

जो लेना है वह अयोग्य है ॥ २९ ॥ आगे उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्गमें जो  
मैत्रीभाव होवे तब मुनिके आचारकी स्थिरता होसकती है इसलिये इन दोनोंमें मैत्री-  
भाव दिखलाते हैं;—[ वालो वा ] बालक हो [ वा ] अथवा [ वृद्धः ] बुढ़ा हो  
[ वा ] अथवा [ श्रमाभिहतः ] तपस्यासे खिन्न ( दुःखी ) हुआ हो [ वा पुनः ]  
अथवा [ ग्लानः ] रोगकर पीड़ित होवे ऐसा मुनि [ यथा मूलच्छेदः ] जिस-  
तरह मूलसंयमका घात [ न भवति ] नहीं हो इसतरहका [ स्वयोग्यां ] अपनी  
शक्तिके अनुसार [ चर्यां ] आचरण [ चरतु ] करो ॥ भावार्थ—उत्सर्गमार्ग  
वहां है जहांपर मुनि, बाल वृद्ध खेद रोग इन चार अवस्थाओंकर सहित हो परंतु शुद्धा-  
त्मतत्त्वके साधनेवाले संयमका भंग ( नाश ) जिसतरह न हो उसतरह अति कठिन  
अपने योग्य आचरणको करो वहीं उत्सर्गमार्ग है । और जहांपर बालादि दशायुक्त

यत्त्वलक्षणानुरागशून्यत्वात् । अयथा लब्धस्तु विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः । विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य भिक्षाचरणेनैवाहारो युक्ताहारः तस्यैवारम्भशून्यत्वात् । अभैक्षचरणेन त्वारम्भ-संभवात्प्रसिद्धहिंसायतनत्वेन न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य दिवस एवाहारो युक्ताहारः तदेव सम्यगवलोकनात् । अदिवसे तु सम्यगवलोकनाभावादनिवार्यहिंसायतनत्वेन न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य अरसापेक्ष एवाहारो युक्ताहारस्तस्यैवान्तःशुद्धिसुन्दरत्वात् । रसापेक्षस्तु अन्तर-शुद्ध्या प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः । अन्तरशुद्धिसेवकत्वेन न च युक्तस्य अमधुमांस एवाहारो युक्ताहारः तस्यैवाहिंसायतनत्वात् । समधुमांसस्तु हिंसायतनत्वान्न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य मधुमांसमत्र हिंसायतनोपलक्षणं तेन समस्तहिंसायतनशून्य एवाहारो युक्ताहारः ॥ २९ ॥

नानां युक्ताहारः । कस्मादिति चेत् ? चिदानन्दैकलक्षणनिश्चयप्राणरक्षणभूता रागादिविकल्पोपाधिरहिता या तु निश्चयनयेनाहिंसा तत्साधकरूपा बहिरङ्गपरजीवप्राणव्यपरोपणनिवृत्तिरूपा द्रव्याहिंसा च सा द्विविधापि तत्र युक्ताहारे सम्भवति । यस्तु तद्विपरीतः स युक्ताहारो न भवति । कस्मादिति चेत् ? तद्विलक्षणभूताया द्रव्यरूपाया हिंसाया सद्भावादिति ॥ २९ ॥

कारण निषेध योग्य है, यदि संयमसाधक शरीरकी स्थितिके निमित्त लिया जावे तो वह योग्य है । भिक्षाकर जो आहार लिया जावे तो आरंभ नहीं करना पड़ता और यदि भिक्षाकर नहीं लिया जावे तो हिंसाका कारण आरंभ अवश्य होता है । इसलिये वह निषिद्ध है भिक्षावृत्ति योग्य है तथा रागभावसे अंतरंगकी अशुद्धताकर भिक्षावृत्तिसेभी ग्रहण करना अयोग्य आहार कहा जाता है । संयमसाधक शरीरकी स्थितिके लिये भिक्षा कर लेना योग्य है । दिनमें अच्छीतरह दिखलाई देता है दयाका पालन होता है इसलिये दिनका आहार योग्य है । रात्रिमें अच्छीतरह नहीं दिखलाई देता है इसकारण अवश्य हिंसा होती है इसलिये रात्रिभोजन निषिद्ध है, और दिनका भी आहार सरस परिणामोंसे करना अयोग्य है संयमसाधनके निमित्त योग्य है । जो आहार सरस होगा उससे अवश्य अंतरंग अशुद्ध होगा ऐसा होनेपर हिंसाका कारण होजायगा इसलिये सरस आहार योग्य नहीं नीरस आहार योग्य है । मधुमांसयुक्त आहार हिंसाका स्थानक है इसलिये निषेध किया गया है इनसे रहित आहार योग्य है और जिन वस्तुओंमें मधुमांसका दोष लगता हो तथा हिंसा होती होवे ऐसी वस्तुओंका आहार योग्य नहीं है निःपाप आहार योग्य है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो आहार एक वक्त लिया जावे पेट भरके न लिया जावे भिक्षावृत्तिमें युक्त यथा लब्ध दिनमें नीरस मांसादि दोषरहित लिया जावे वह आहार योग्य है इसमें अन्यरीतिमें

अथोत्सर्गपवादमैत्रीसौस्थित्यमाचरणस्योपदिशति;—

वालो वा वृद्धो वा समभिहृतो वा पुणो गिलाणो वा ।

चरियं चरउ सजोग्गं मूलच्छेदं जधा ण ह्वदि ॥ ३० ॥

वालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतो वा पुनर्ग्लानो वा ।

चर्यां चरतु स्वयोग्यां मूलच्छेदो यथा न भवति ॥ ३० ॥

वालवृद्धश्रान्तग्लानेनापि संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न य-  
थास्य तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमेवाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गः । वालवृद्ध-

अथ विशेषेण मांसदूपणं कथयति;—

पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु मंसपेसीसु ।

संचत्तियमुववादो तज्जादीणं णिगोदाणं ॥ १ ॥

जो पक्कमपक्कं वा पेसी मंसस्स खादि पासदि वा ।

सो किल णिहणदि पिंडं जीवाणमणेगकोडीणं ॥ २ ॥ जुम्मं ।

भणित इत्यध्याहारः । स कः । उववादो व्यक्हारनयेनोत्पादः । किंविशिष्टः । संचत्तियं  
सान्ततिको निरन्तरः । केषां सम्बन्धी । णिगोदाणं निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावानामनादिनि-  
धनत्वेनोत्पादव्ययरहितानामपि निगोदजीवानाम् । पुनरपि कथंभूतानाम् ? तज्जादीणं तद्वर्ण-  
तद्वन्धतद्रसतत्स्पर्शत्वेन तज्जातीनां मांसजातीनाम् । कास्वधिकरणभूतासु ? मंसपेसीसु मांसपे-  
शीषु मांसखण्डेषु । कथंभूतासु । पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु पक्कासु चामासु  
च विपच्यमानास्त्विति प्रथमगाथा । जो पक्कमपक्कं वा यः कर्त्ता पक्कामपक्कां वा पेसीं  
पेसीं खण्डं । कस्य ? मंसस्स मांसस्य खादि निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नमुखसुधाहारमलभमानः  
सन् खादति भक्षति पासदि वा स्पर्शति वा सो किल णिहणदि पिंडं स कर्त्ता किल  
लोकोत्तया परमागमोत्तया वा निहन्ति पिण्डम् । केषाम् ? जीवाणं जीवानां । कत्तिसंख्योपे-

जो लेना है वह अयोग्य है ॥ २९ ॥ आगे उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्गमें जो  
मैत्रीभाव होवे तब मुनिके आचारकी स्थिरता होसकती है इसलिये इन दोनोंमें मैत्री-  
भाव दिखलाते हैं;—[ वालो वा ] वालक हो [ वा ] अथवा [ वृद्धः ] बुढ़ा हो  
[ चा ] अथवा [ श्रमाभिहतः ] तपस्यासे खिन्न ( दुःखी ) हुआ हो [ वा पुनः ]  
अथवा [ ग्लानः ] रोगकर पीड़ित होवे ऐसा मुनि [ यथा मूलच्छेदः ] जिस-  
तरह मूलसंयमका घात [ न भवति ] नहीं हो इसतरहका [ स्वयोग्यां ] अपनी  
शक्तिके अनुसार [ चर्यां ] आचरण [ चरतु ] करो ॥ भावार्थ—उत्सर्गमार्ग  
वहां है जहांपर मुनि, वाल वृद्ध खेद रोग इन चार अवस्थाओंकर सहित हो परंतु शुद्धा-  
त्मतत्त्वके साधनेवाले संयमका भंग ( नाश ) जिसतरह न हो उसतरह अति कठिन  
अपने योग्य आचरणको करो वहीं उत्सर्गमार्ग है । और जहांपर वालादि दशायुक्त



यत्त्वलक्षणानुरागशून्यत्वात् । अयथा लब्धस्तु विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः । विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य भिक्षाचरणेनैवाहारो युक्ताहारः तस्यैवारम्भशून्यत्वात् । अभैक्षचरणेन त्वारम्भ-संभवात्प्रसिद्धहिंसायतनत्वेन न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य दिवस एवाहारो युक्ताहारः तदेव सम्यगवलोकनात् । अदिवसे तु सम्यगवलो-कनाभावादनिवार्यहिंसायतनत्वेन न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य अरसापेक्ष एवाहारो युक्ताहारस्तस्यैवान्तःशुद्धिसुन्दरत्वात् । रसापेक्षस्तु अन्तर-शुद्ध्या प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः । अन्तरशुद्धिसेवकत्वेन न च युक्तस्य अमधुमांस एवाहारो युक्ताहारः तस्यैवाहिंसायतनत्वात् । समधुमांसस्तु हिंसायतनत्वान्न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य मधुमांसमत्र हिंसायतनोपल-क्षणं तेन समस्तहिंसायतनशून्य एवाहारो युक्ताहारः ॥ २९ ॥

नानां युक्ताहारः । कस्मादिति चेत् ? चिदानन्दैकलक्षणनिश्चयप्राणरक्षणभूता रागादिविकल्पो-पाधिरहिता या तु निश्चयनयेनाहिंसा तत्साधकरूपा बहिरङ्गपरजीवप्राणव्यपरोपणनिवृत्तिरूपा द्रव्याहिंसा च सा द्विविधापि तत्र युक्ताहारे सम्भवति । यस्तु तद्विपरीतः स युक्ताहारो न भवति । कस्मादिति चेत् ? तद्विलक्षणभूताया द्रव्यरूपाया हिंसाया सद्भावादिति ॥ २९ ॥

कारण निषेध योग्य है, यदि संयमसाधक शरीरकी स्थितिके निमित्त लिया जावे तो वह योग्य है । भिक्षाकर जो आहार लिया जावे तो आरंभ नहीं करना पड़ता और यदि भिक्षाकर नहीं लिया जावे तो हिंसाका कारण आरंभ अवश्य होता है । इसलिये वह निषिद्ध है भिक्षावृत्ति योग्य है तथा रागभावसे अंतरंगकी अशुद्धताकर भिक्षावृत्तिसेभी ग्रहण करना अयोग्य आहार कहा जाता है । संयमसाधक शरीरकी स्थितिके लिये भिक्षा कर लेना योग्य है । दिनमें अच्छीतरह दिखलाई देता है दयाका पालन होता है इसलिये दिनका आहार योग्य है । रात्रिमें अच्छीतरह नहीं दिखलाई देता है इस-कारण अवश्य हिंसा होती है इसलिये रात्रिभोजन निषिद्ध है, और दिनका भी आहार सराग परिणामोंसे करना अयोग्य है संयमसाधनके निमित्त योग्य है । जो आहार सरस होगा उससे अवश्य अंतरंग अशुद्ध होगा ऐसा होनेपर हिंसाका कारण होजा-यगा इसलिये सरस आहार योग्य नहीं नीरस आहार योग्य है । मधुमांसयुक्त आ-हार हिंसाका स्थानक है इसलिये निषेध किया गया है इनसे रहित आहार योग्य है और जिन वस्तुओंमें मधुमांसका दोष लगता हो तथा हिंसा होती होवे ऐसी वस्तु-ओंका आहार योग्य नहीं है निःपाप आहार योग्य है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो आहार एक यत्न लिया जाये पेट भरके न लिया जाये भिक्षावृत्तिमें युक्त यथा लब्ध दिनमें नीरस मांसादि दोषरहित लिया जाये वह आहार योग्य है इससे अन्यरीतिमें

ग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्धाचरणमाचरता संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमथाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गसापेक्षोपवादः । अतः सर्वथोत्सर्गोपवादमैत्र्या सौख्यित्यमाचरणस्य विधेयम् ॥ ३० ॥

कथंचित्परस्परसापेक्षभावं स्थापयन् चारित्रस्य रक्षां दर्शयति;—चरदि चरत्याचरति । किं । चरियं चारित्रमनुष्ठानम् । कथंभूतं । सजोगं स्वयोग्यमवस्थायोग्यम् । कथं यथाभवति । मूलच्छेदो जथा ण ह्वदि मूलच्छेदो यथा न भवति । स कः कर्त्ता चरति । वालो वा बुद्धो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा वालो वा बुद्धो वा श्रमाभिहतः पीडितः श्रमाभिहतो वा ग्लानो व्याधिस्यो वेति । तद्यथा—उत्सर्गोपवादलक्षणं कथ्यते तावत्स शुद्धात्मनः सकाशादन्यद्वाह्याम्यन्तरपरिग्रहरूपं सर्वं त्याज्यमित्युत्सर्गो 'निश्चयनयः' सर्वपरित्यागः परमोपेक्षासंयमो धीतरागचारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः । तत्रासमर्थः पुरुषः शुद्धात्मभावनासहकारिभूतं किमपि प्रासुकाहारज्ञानोपकरणादिकं गृह्णातीयपवादो 'व्यवहारनय' एकदेशपरित्यागस्तथाचापद्धतसंयमः सरागचारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः । तत्र शुद्धात्मभावनानिमित्तं सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गं दुर्द्धरानुष्ठाने प्रवर्त्तमानस्तपोधनः शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथा छेदो विनाशो न भवति तथा किमपि प्रासुकाहारादिकं गृह्णातीयपवादसापेक्ष उत्सर्गो मण्यते । यदा पुनरपवादलक्षणेऽपहृतसंयमे प्रवर्त्तते तथापि शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथोच्छेदो विनाशो न भवति तथोत्सर्गसापेक्षत्वेन प्रवर्त्तते । तथा प्रवर्त्तत इति कोऽर्थः ? यथा संयमविराधना न भवति तथेत्यु-

उत्सर्गमार्गसे मैत्रीभाव करना योग्य है । जो अपवादमार्गी रोगादिकसे पीडित हुआ शरीरकी रक्षाकेलिये जघन्यही आचरण करनेमें प्रवृत्त होगा तो वह प्रमादी हुआ उत्कृष्ट संयमको नहीं पा सकेगा जघन्य संयमका भी नाश करेगा । इसलिये अपवादमार्गीको उत्सर्गमार्गसे मैत्रीभाव रखना योग्य है । वही मैत्रीभाव दिखलाते हैं—वाल वृद्ध खेद रोग इन दशाओंकर यद्यपि मुनि पीडित है तौमी शुद्धात्मतत्त्वका साधनेवाला जो संयम है उसका नाश जिसतरह न हो उसप्रकार अतिकठिन आचरणको आचरे परंतु वही मुनि जिसतरह संयमका कारण शरीरका नाश न हो उसप्रकार अपने योग्य कोमल आचरणभी आचरे । ऐसा मुनि अपवादमार्गीकी अपेक्षासहित उत्सर्गमार्गी कहा जाता है । तथा वालवृद्ध खेद रोग इन अवस्थाओंकर सहित मुनि संयमका साधन शरीरका जिसतरह नाश न हो उसतरह अपने योग्य कोमल आचरणको आचरता है परंतु वही मुनि जिसतरह शुद्धात्मतत्त्वका साधक संयमका नाश न हो उसीप्रकार अतिकठोर आचरणको आचरे तो वह उत्सर्गमार्गीकी अपेक्षा लियेहुए अपवादमार्गी है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि उत्सर्ग और अपवाद इन दोनों मार्गोंमें जो परस्पर मैत्रीभाव होवे तो मुनिके आचारकी स्थिरता अच्छीतरह होसकती है ॥ ३० ॥ आगे

श्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वेवाचरणमाचरणीयमित्यपवादः । बालवृद्धश्रान्तग्लानेन संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथास्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमाचरणमाचरता शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात् तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वप्याचरणमाचरणीयमित्यपवादसापेक्ष उत्सर्गः । बालवृद्धश्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथास्यात्तथा बालवृद्धश्रान्त-

तानाम् ? अणेगकोडीणं अनेककोटीनामिति । अत्रेदमुक्तं भवति—शेषकन्दमूलाद्याहारः केचनानन्तकाया अप्यग्निपक्वाः सन्तः प्रासुका भवन्ति मांसं पुनरनन्तकायं भवति तथैव चाग्निपकमपकं पच्यमानं वा प्रासुकं न भवति । तेन कारणेनाभोज्यमभक्षणायमिति ॥ १ । २ ॥ अथ पाणिगताहारः प्रासुकोप्यन्यस्मै न दातव्य इत्युपादिशति;—

अप्पडिकुट्टं पिंडं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स ।

दत्ता भोत्तुमजोग्गं भुत्तो वा होदि पडिकुट्टो ॥ ३ ॥

अप्पडिकुट्टं पिंडं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स अप्रतिकुट्ट आगमाविरुद्ध आहारः पाणिगतो हस्तगतो नैव देयो न दातव्योऽन्यस्मै दत्ता भोत्तुमजोग्गं दत्त्वा पश्चाद्भोक्तुमयोग्यं भुत्तो वा होदि पडिकुट्टो कथंचित् भुत्तो वा भोजनं कृतवान् तर्हि प्रतिकुट्टो भवति प्रायश्चित्तयोग्यो भवतीति । अयमत्र भावः—हस्तगताहारं योऽस्तावन्त्यस्मै न ददाति तस्य निर्मोहत्मतत्त्वभावनारूपं निर्मोहत्वं ज्ञायत इति ॥ ३ ॥ अथ निश्चयव्यवहारसंज्ञयोरुत्सर्गापवादयोः

हुआ शुद्धात्मतत्त्वके साधनेवाले संयमका तथा संयमका साधक शरीरका नाश जिसतरह न हो उसतरह अपनी शक्तिके अनुसार कोमल आचरण करो ऐसा संयम पाले वहां अपवादमार्ग है । इसतरह मुनिमार्गके दो भेद हैं । उत्सर्ग अवस्थामें कैसा ही रोगादि दशाकर पीड़ित हो अपने अतिकठोर आचरण करै संयमको पाले, अपवाद अवस्थामें जो रोगादि अवस्थाकर पीड़ा हो तो शरीरकी रक्षा करै कोमल आचारमें प्रवर्तै संयमको पाले । इसतरह 'कठिन कोमल' दो प्रकार मुनिके मार्ग हैं । जो इन दोनों मार्गोंमें आपसमें विरोध होवे जैसे कि उत्सर्गमार्गी अपवाद अवस्थाको न धारण करे और अपवादमार्गी उत्सर्ग अवस्थाको न धारण करे तो मुनिसे संयम नहीं पलसफता, क्योंकि जो उत्सर्गमार्गी कठोरही आचरण करे रोगादि अवस्थाके बशसे जघन्यदशारूप अपवादमार्गको न धारण करे तो शरीरके नाशसे संयमका नाश करेगा । इसलिये उत्सर्गमार्गीको अपवादमार्गसे मैत्रीभाव रखना योग्य है और अपवादमार्गीको

ग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्धाचरणमाचरता संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलमूलस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमथाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गसापेक्षोपवादः । अतः सर्वथोत्सर्गोपवादमैत्र्या सौस्थित्यमाचरणस्य विधेयम् ॥ ३० ॥

कथंचित्परस्परसापेक्षभावं स्थापयन् चारित्रस्य रक्षां दर्शयति;—चरदि चरत्याचरति । किं । चरियं चारित्रमनुष्ठानम् । कथंभूतं । सजोगं स्वयोग्यमवस्थायोग्यम् । कथं यथाभवति । मूलच्छेदो जथा ण ह्यदि मूलच्छेदो यथा न भवति । स कः कर्त्ता चरति । वालो वा बुद्धो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा वालो वा बुद्धो वा श्रमाभिहतः पीडितः श्रमाभिहतो वा ग्लानो व्याधिस्यो वेति । तद्यथा—उत्सर्गोपवादलक्षणं कथ्यते तावत्स शुद्धात्मनः सकाशादन्यद्वाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरूपं सर्वं त्याज्यमित्युत्सर्गो 'निश्चयनयः' सर्वपरित्यागः परमोपेक्षासंयमो वीतरागचारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः । तत्रासमर्थः पुरुषः शुद्धात्मभावनासहकारिभूतं किमपि प्रासुकाहारज्ञानोपकरणादिकं गृह्णातीत्यपवादो 'व्यवहारनय' एकदेशपरित्यागस्तथाचापहतसंयमः सरागचारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः । तत्र शुद्धात्मभावनानिमित्तं सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गं दुर्द्धरानुष्ठाने प्रवर्त्तमानस्तपोधनः शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथा छेदो विनाशो न भवति तथा किमपि प्रासुकाहारादिकं गृह्णातीत्यपवादसापेक्ष उत्सर्गो भण्यते । यदा पुनरपवादलक्षणेऽपहतसंयमे प्रवर्त्तते तथापि शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथोच्छेदो विनाशो न भवति तथोत्सर्गसापेक्षत्वेन प्रवर्त्तते । तथा प्रवर्त्तत इति कोऽर्थः? यथा संयमविराधना न भवति तथेत्यु-

उत्सर्गमार्गसे मैत्रीभाव करना योग्य है । जो अपवादमार्गी रोगादिकसे पीडित हुआ शरीरकी रक्षाकेलिये जघन्यही आचरण करनेमें प्रवृत्त होगा तो वह प्रमादी हुआ उत्कृष्ट संयमको नहीं पा सकेगा जघन्य संयमका भी नाश करेगा । इसलिये अपवादमार्गीको उत्सर्गमार्गसे मैत्रीभाव रखना योग्य है । वही मैत्रीभाव दिखलाते हैं—वाल वृद्ध खेद रोग इन दशाओंकर यद्यपि मुनि पीडित है तौभी शुद्धात्मतत्त्वका साधनेवाला जो संयम है उसका नाश जिसतरह न हो उसप्रकार अतिकठिन आचरणको आचरे परंतु वही मुनि जिसतरह संयमका कारण शरीरका नाश न हो उसप्रकार अपने योग्य कोमल आचरणभी आचरे । ऐसा मुनि अपवादमार्गीकी अपेक्षासहित उत्सर्गमार्गी कहा जाता है । तथा वालवृद्ध खेद रोग इन अवस्थाओंकर सहित मुनि संयमका साधन शरीरका जिसतरह नाश न हो उसतरह अपने योग्य कोमल आचरणको आचरता है परंतु वही मुनि जिसतरह शुद्धात्मतत्त्वका साधक संयमका नाश न हो उसीप्रकार अतिकठोर आचरणको आचरे तो वह उत्सर्गमार्गीकी अपेक्षा लियेहुए अपवादमार्गी है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि उत्सर्ग और अपवाद इन दोनों मार्गोंमें जो परस्पर मैत्रीभाव होवे तो मुनिके आचारकी स्थिरता अच्छीतरह होसकती है ॥ ३० ॥ आगे

अथोत्सर्गापवादविरोधदौस्थ्यमाचरणस्योपदिशति;—

आहारे च विहारे देशं कालं समं खमं उपधिं ।

जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥ ३१ ॥

आहारे वा विहारे देशं कालं श्रमं क्षमासुपधिम् ।

ज्ञात्वा तान् श्रमणो वर्तते यच्चल्पलेपी सः ॥ ३१ ॥

अत्र क्षमाग्लानत्वहेतुरुपवासः । बालवृद्धत्वाधिष्ठानं शरीरमुपधिः, ततो बालवृद्ध-  
श्रान्तग्लाना एव त्वाकृष्यन्ते । अथ देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेना-  
हारविहारयोः प्रवर्तमानस्य मृद्धाचरणप्रवृत्तत्वादल्पो लेपो भवत्येव तद्वरमुत्सर्गः । देशकाल-  
ज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्तमानस्य वृद्धाचरणप्रवृत्तत्वा-

त्सर्गसापेक्षोपवाद इत्यभिप्रायः ॥ ३० ॥ अथापवादनिरपेक्षमुत्सर्गं तथैवोत्सर्गनिरपेक्षमपवादं  
च निषेधयंश्चारित्ररक्षणाय व्यतिरेकद्वारेण तमेवार्थं द्रष्टव्यति;—चट्टदि वर्त्तते । स कः कर्त्ता ।  
समणो शत्रुमित्रादिसमचित्तः श्रमणः यदि । किम् ? जदि अप्पलेवी सो यदि चेदल्पलेपी  
स्तोकसावद्यो भवति । कयोर्विषययोर्वर्तते । आहारे च विहारे तपोधनयोग्याहारविहारयोः ।  
किं कृत्वा । पूर्वं जाणित्ता ज्ञात्वा । कान् कर्मतापन्नान् ? देशं कालं समं खमं उपधिं  
देशं कालं मार्गादिश्रमं क्षमं क्षमतामुपवासादिविषये शक्ति उपधिं बालवृद्धश्रान्तग्लानसम्बन्धिनं  
शरीरमात्रोपधिं परिग्रहमिति पञ्च देशादीन् तपोधनाचरणसहकारिभूतानिति । तथाहि—पूर्वक-  
थितक्रमेण तावदुर्द्धरानुष्ठानरूपोत्सर्गो वर्त्तते । तत्र च प्रासुकाहारादिग्रहणनिमित्तमल्पलेपं दृष्ट्वा

उत्सर्गं अपवादमार्गं इन दोनोंमें जो आपसमें विरोध हो तो मैत्रीभाव न होवे उसके  
न होनेसे आचारकी स्थिरता नहीं होसकती यह कहते हैं;—[ स श्रमणः ] वह  
अपवादमार्गी अथवा उत्सर्गमार्गी मुनि [ यदि ] जो [ अल्पलेपी ] थोड़े कर्म बंध-  
कर लिप्त होता है तो [ देशं ] क्षेत्र [ कालं ] शीत उष्णादिकाल [ श्रमं ] मार्गा-  
दिकका खेद [ क्षमां ] उपवासादि करनेकी शक्ति [ उपधिं ] और बालवृद्ध  
रोगादि अवस्थायुक्त शरीररूप परिग्रह [ तान् ] इन पांचोंको [ ज्ञात्वा ] अच्छी-  
तरह जानकर [ आहारे ] मुनियोग्य आहारक्रियामें [ वा ] अथवा [ विहारे ]  
हलन चलनादि क्रियामें [ वर्त्तते ] प्रवृत्त होता है ॥ भावार्थ—जो परमविवेकी  
उत्सर्गी अथवा अपवादी मुनि इन देशआदि पांच भेदोंको जानकर जिस क्रियामें  
कर्मबंध थोड़ा हो और संयमका भंग न हो ऐसी आहार क्रियामें प्रवर्त्ते तो दोष नहीं  
है क्योंकि संयमकी रक्षानिमित्त जिसतरह शरीरका नाश न हो उसप्रकार कठोर  
अथवा कोमल क्रियामें प्रवर्त्तता है । इसबाद्ले देश कालका जाननेवाला उत्सर्गमार्गी  
मुनि पाठ पृद्ध रोग अथवाओंके कारण आहारविहारमें प्रवृत्त होता है, कोमल  
क्रियाको आपरता है और अल्पकर्मबंध भी जिसमें होता है ऐसी अपवाद अवस्थाको

दल्प एव लेपो भवति तद्वरमपवादः । देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपभयेनाप्रवर्तमानस्यातिकर्कशाचरणीभूयाक्रमेण शरीरं पातयति । सुरलोकं प्राप्योद्धान्तसमस्तसंयमासृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति । तन्न श्रेयानपवादनिरपेक्ष उत्सर्गः । देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपत्वं विगणय्य यथेष्टं प्रवर्तमानस्य सृष्टाचरणीभूय संयमं विराध्यासंयतजनसमानीभूतस्य तदात्वे तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति तन्न श्रेयानुत्सर्गनिरपेक्षोपवादः । अतः सर्वथोत्सर्गापवादविरोधदौस्थ्यमाचर-

यदि न प्रवर्तते तदा आर्त्तघ्नानसङ्केशेन शरीरत्यागं कृत्वा पूर्वकृतपुण्येन देवलोके समुत्पद्यते । तत्र संयमामात्रान्महान् लेपो भवति । ततः कारणादपवादनिरपेक्षमुत्सर्गं त्यजति । शुद्धात्मभावनासाधकमल्पलेपं बहुलाभमपवादसापेक्षमुत्सर्गं स्वीकरोति तथैव च पूर्वसूत्रोक्तक्रमेणापहतसंयमशब्दवाच्येऽपवादे प्रवर्तते तावत्प्रवर्तमानः सन् यदि कथंचिदौषधपथ्यादिसावधभयेन व्याधिव्यथादिप्रतीकारमकृत्वा शुद्धात्मभावनां न करोति तर्हि महान् लेपो भवति । अथवा प्रतीकारे

धारता हुआ उत्सर्गमुनि बहुत अच्छा है, जो कि शरीररक्षा करके भी संयमका भंग नहीं होने देता है । और देशकालादिका जाननेवाला अपवादमार्गी मुनि, बाल वृद्ध खेद रोग अवस्थाओंके वश आहार विहार क्रियामें प्रवर्तता हुआ कोमल आचरणोंको आचरता है प्रमादी हुआ अति कोमल आचरणकर संयमका नाश भी नहीं करता है । जहांपर संयमका नाश हुआ जानता है वहां कठोर क्रिया भी करता है, अतिशिथिल भी नहीं होता । शरीरकी रक्षा करके संयमको पालता है अल्पबंध भी होता है ऐसी उत्सर्ग अवस्थाको लिये हुए अपवादमार्गी मुनि बहुत अच्छा है जो कि संयमको भी पालता है और शरीरको भी ढिगने नहीं देता । तथा देशकालादिका जाननेवाला उत्सर्गमुनि, बाल वृद्ध रोग खेद अवस्थाओंके होनेपर जो अल्पकर्म बंधके भयसे कोमल आचारको नहीं आचरण करे, आहार विहार क्रियामें नहीं प्रवर्तें और मनमें यह जाने कि मैं इस उत्कृष्ट उत्सर्ग संयमको धारण करता हूं मुझको जघन्यदशास्वरूप अपवाद संयम योग्य नहीं है तथा जो हीन अवस्थाको धारण करूंगा तो बंध होगा ऐसा जानकर उत्कृष्ट ही आचारका आचरण करे तो वह मुनि अतिकठोर तप करके शरीरका नाशकर देवलोकेमें जाके उत्पन्न होता है वहां संयमरूप अमृतका वमन ( उल्टी ) करता है, क्योंकि देवपद तपस्याका कारण नहीं है । इसलिये वहांपर वही जीव महाकर्मबंधसे लिप्त होता है । इसकारण जो उत्सर्गमार्गी अपवाद मार्गसे मैत्रीभाव नहीं करता तो वह उत्सर्गमार्गी अच्छा नहीं है, जो कि शरीरका नाशकर संयमका नाश करता है । तथा जो देशकालादिका जाननेवाला अपवाद मुनि, बालवृद्ध खेद रोग अवस्थाओंके होनेपर आहार विहारमें प्रवृत्ति करे और मनमें यह समझे कि सिद्धान्तोंमें कहा है कि जो अल्प-

अथोत्सर्गापवादविरोधदौस्थ्यमाचरणस्योपदिशति;—

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उपधिं ।

जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥ ३१ ॥

आहारे वा विहारे देशं कालं श्रमं क्षमामुपधिम् ।

ज्ञात्वा तान् श्रमणो वर्तते यथल्पलेपी सः ॥ ३१ ॥

अत्र क्षमाग्लानत्वहेतुरुपवासः । बालवृद्धत्वाधिष्ठानं शरीरमुपधिः, ततो बालवृद्ध-  
श्रान्तग्लाना एव त्वाकृष्यन्ते । अथ देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेना-  
हारविहारयोः प्रवर्तमानस्य मृद्धाचरणप्रवृत्तत्वादल्पो लेपो भवत्येव तद्वरमुत्सर्गः । देशका-  
लज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्तमानस्य वृद्धाचरणप्रवृत्तत्वा-

त्सर्गसापेक्षोपवाद इत्यभिप्रायः ॥ ३० ॥ अथापवादनिरपेक्षमुत्सर्गं तथैवोत्सर्गनिरपेक्षमपवादं  
च निषेधयंश्चारित्ररक्षणाय व्यतिरेकद्वारेण तमेवार्थं द्रढयति;—वट्टदि वर्तते । स कः कर्ता ।  
समणो शत्रुमित्रादिसमचित्तः श्रमणः यदि । किम्? जदि अप्पलेवी सो यदि चेदल्पलेपी  
स्तोकसावयो भवति । कयोर्विषययोर्वर्तते । आहारे य विहारे तपोधनयोग्याहारविहारयोः ।  
किं कृत्वा । पूर्वं जाणित्ता ज्ञात्वा । कान् कर्मतापन्नान्? देसं कालं समं खमं उपधिं  
देशं कालं मार्गादिश्रमं क्षमं क्षमतामुपवासादिविषये शक्तिं उपधिं बालवृद्धश्रान्तग्लानसम्बन्धिने  
शरीरमात्रोपधिं परिग्रहमिति पञ्च देशादीन् तपोधनाचरणसहकारिभूतानिति । तथाहि—पूर्वक-  
थितक्रमेण तावदुद्धरानुष्ठानरूपोत्सर्गं वर्तते । तत्र च प्रासुकाहारादिग्रहणनिमित्तमल्पलेपं दृष्ट्वा

उत्सर्ग अपवादमार्गं इन दोनोंमें जो आपसमें विरोध हो तो मैत्रीभाव न होवे उसके  
न होनेसे आचारकी स्थिरता नहीं होसकती यह कहते हैं;—[ स श्रमणः ] वह  
अपवादमार्गी अथवा उत्सर्गमार्गी मुनि [ यदि ] जो [ अल्पलेपी ] थोड़े कर्म बंध-  
कर लिप्त होता है तो [ देशं ] क्षेत्र [ कालं ] शीत उष्णादिकाल [ श्रमं ] मार्गा-  
दिकका खेद [ क्षमां ] उपवासादि करनेकी शक्ति [ उपधिं ] और बालवृद्ध  
रोगादि अवस्थायुक्त शरीररूप परिग्रह [ तान् ] इन पांचोंको [ ज्ञात्वा ] अच्छी-  
तरह जानकर [ आहारे ] मुनियोग्य आहारक्रियामें [ वा ] अथवा [ विहारे ]  
हलन चलनादि क्रियामें [ वर्तते ] प्रवृत्त होता है ॥ भावार्थ—जो परमविवेकी  
उत्सर्गी अथवा अपवादी मुनि इन देशआदि पांच भेदोंको जानकर जिस क्रियामें  
कर्मबंध थोड़ा हो और संयमका भंग न हो ऐसी आहार क्रियामें प्रवर्ते तो दोष नहीं  
है क्योंकि संयमकी रक्षानिमित्त जिसतरह शरीरका नाश न हो उसप्रकार कठोर  
अथवा फोमल क्रियामें प्रवर्तता है । इसवासे देश कालका जाननेवाला उत्सर्गमार्गी  
मुनि घाट वृद्ध रोग अवस्थाओंके कारण आहारविहारमें प्रवृत्त होता है, फोमल  
क्रियाको आपरता है और अल्पकर्मबंध भी जिसमें होता है ऐसी अपवाद अवस्थाको

एकाग्रगतः श्रमणः एकाग्रं निश्चितस्य अर्थेषु ।

निश्चितीरागमत आगमचेष्टा ततो ज्येष्ठा ॥ ३२ ॥

श्रमणो हि तावदैकाग्रगत एव भवति । एकाग्रं तु निश्चितार्थस्यैव भवति । अर्थ-  
निश्चयस्त्वागमादेव भवति । तत आगम एव व्यापारः प्रधानतरः न चान्या गतिरस्ति ।  
यतो न खल्वागममन्तरेणार्था निश्चेतुं शक्यन्ते तस्यैव हि त्रिसमयप्रवृत्तत्रिलक्षणसकल-  
पदार्थसार्थयाथात्म्यावगमसुस्थितान्तरङ्गगंभीरत्वात् । न चार्थनिश्चयमन्तरेणैकाग्रं सि-  
द्धेत् यतोऽनिश्चितार्थस्य कदाचिन्निश्चिकीर्पाकुलितचेतसः समंततो दोलायमानस्यात्यन्त-  
तरलतया कदाचिच्चिकीर्पाज्वरपरवशस्य विश्वं स्वयं सिसृक्षोर्विश्वव्यापारपरिणतस्य प्रतिक्षण-

त्रिंशद्गाथाभिः स्थलचतुष्टयेनापवादनामा “द्वितीयान्तराधिकारः” समाप्तः । अतः परं चतुर्दशगा-  
थापर्यन्तं श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाधिकारः कथ्यते । तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति, तेषु प्रथमतः  
आगमाम्बासमुल्यत्वेन ‘एयगमणो’ इत्यादि यथाक्रमेण प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम् । तदनन्तरं  
भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूपमेव मोक्षमार्ग इति व्याख्यानरूपेण ‘आगमपुत्रा दिष्टी’ इत्यादि द्वितीय-  
स्थले सूत्रचतुष्टयम् । अतःपरं द्वयभावसंयमकथनरूपेण ‘चागो य अणारंभो’ इत्यादि तृतीयस्थले  
गाथाचतुष्टयम् । तदनन्तरं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गोपसंहारमुल्यत्वेन ‘मञ्जुदिवा’ इत्यादि चतु-  
र्थस्थले गाथाद्वयम् । एवं स्थलचतुष्टयेन तृतीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—

रूप मोक्षमार्ग है इसकारण एकता है उस मोक्षमार्गका मूलसाधन जिन प्रणीत आगम  
है इसलिये प्रथमही सिद्धान्तकी प्रवृत्ति दिखलाते हैं;—[ एकाग्रगतः ] जो ज्ञान-  
दर्शन चारित्रकी स्थिरताको प्राप्त हुआ है वह [ श्रमणः ] मुनि कहलाता है और  
[ अर्थेषु निश्चितस्य ] जीव अजीवादि पदार्थोंका निश्चय ज्ञानवालेके [ एकाग्रं ]  
स्थिरभाव होता है तथा [ आगमनः निश्चितः ] सर्वज्ञ वीतरागप्रणीत सिद्धान्तसे  
पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होता है [ ततः ] इसकारण [ आगमचेष्टा ] सिद्धान्तके  
अभ्यासकी प्रवृत्ति [ ज्येष्ठा ] प्रधान है ॥ भावार्थ—मुनि वही है जिसके ज्ञान-  
दर्शन चारित्र स्थिर हुए हैं और जो जीव, संशय विमोह विभ्रमसे रहित होकर जी-  
वादि पदार्थोंको जानता है श्रद्धान करता है उसके एकाग्रता होती है तथा जो भगवंत  
प्रणीत आगमका अभ्यास करे तो यथार्थ सय पदार्थोंका ज्ञाता देखनेवाला होता है  
इसकारण पहले मोक्षमार्गको सिद्धान्तके पठनकी प्रवृत्ति करनी योग्य है । सिद्धान्त-  
विना यथार्थ पदार्थोंका निश्चय नहीं किया जाता । त्रिकालवर्ती उत्पादव्यय प्रौढ्यसहित  
द्रव्यगुणपर्यायलक्षणवाले सकल पदार्थोंके समूहका यथार्थ ज्ञान अकेले उस आगमसे ही  
होता है, उसी ज्ञानकर अंतरंग स्थिरतासे गंभीर होता है इसलिये आगमहीसे पदार्थोंका  
निश्चय होता है । जिसके पदार्थोंका निश्चय न हो वह पुरुष निश्चय स्वरूपमें आकुलचित्त  
हुआ स्थिरभावको नहीं धारण करसकता सय जगह ढांवांढोल रहता है । अत्यंत



णस्य प्रतिषेध्यं तदर्थमेव सर्वधानुगम्यश्च परस्परसापेक्षोत्सर्गापवादविजृम्भितवृत्तिः स्याद्वादः । “इत्येवं चरणं पुराणपुराणपुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरैरुत्सर्गादपवादतश्च विचरद्ब्रह्मीः पृथग्भूमिकाः । आक्रम्य क्रमतो निवृत्तित्तुलां कृत्वा यतिः सर्वतश्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम्” ॥ ३१ ॥ इत्याचरणप्रज्ञापनं समाप्तम् ।

अथ श्रामण्यापरनाम्नो मोक्षमार्गस्यैकाग्रलक्षणस्य प्रज्ञापनं तत्र तन्मूलसाधनभूते प्रथममागम एव व्यापारयति;—

एयग्गदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु ।

णिच्छित्ती आगमदो आगमचेट्ठा तदो जेट्ठा ॥ ३२ ॥

प्रवर्त्तमानोऽपि हरीतकीव्याजेन गुडभक्षणवदिन्द्रियसुखलाम्पव्येन संयमविराधनां करोति तदापि महान् लेपो भवति । ततः कारणादुत्सर्गनिरपेक्षमपवादं त्यक्त्वा शुद्धात्मभावनारूपं शुभोपयोगरूपं वा संयममविराधयन्नौपधपथ्यादिनिमित्तोत्पन्नात्पसावद्यमपि बहुगुणराशिमुत्सर्गसापेक्षमपवादं स्वीकरोतीत्यभिप्रायः ॥ ३१ ॥ एवं ‘उच्यरणं जिणमग्गे’ इत्याद्येकादशगाथाभिरपवादस्य विशेषविवरणरूपेण चतुर्थस्थलं व्याख्यातम् । इति पूर्वोक्तक्रमेण हि ‘णिरवेकखो जोगो’ इत्यादि

बंध भी होवे तौभी रोग खेदादि दशाओंके होनेपर वह मुनि कोमल आचारमें प्रवृत्ति करे तो दोष नहीं है ऐसा जानकर जो अति शिथिल ( आलसी ) होके खेच्छाचारी हुआ आहार विहारमें प्रवर्त्ते तो वह संयमका नाशकर असंयमीके समान होवे उस समय मुनिके तपका अभाव है ऐसी अवस्थामें महान् कर्म बंधकर लिप्त होता है । इसलिये जो अपवादमार्गी उत्सर्ग अवस्थासे मैत्रीभाव लिए हुए न होवै तो वह अपवादमार्गी अच्छा नहीं है । इसकारण उत्सर्ग अपवादमें जो विरोध होवे तो मुनिके संयमकी स्थिरता न हो । इसलिये उत्सर्ग अपवादमें मैत्रीभाव योग्य है । भगवानका मत अनेकान्त है जिसतरह संयमकी रक्षा होवे उसतरह प्रवर्त्ते, ‘ऐसा नहीं है कि संयमका नाश हो अथवा मत होउ परंतु अपनी एक अवस्थाको नहीं छोड़ना’ ऐसा जिनमार्ग नहीं है जिनमार्ग तो ऐसा है कि कहीं अकेला अपनाद ही है, कहीं अकेला उत्सर्ग ही है, कहीं उत्सर्गलिये अपवाद है और अपवाद लिये उत्सर्ग है जिसतरह संयम रहै उसीतरह अपवादमें विरोधरहित होवे । जो महापुरुष हैं उन्होंने उत्सर्ग अपवाद्रूप नानातरहकी भूमिका क्रमसे अंगीकार की है । उसके बाद उत्कृष्ट दशाको प्राप्त होकर समस्त क्रियाकांडमे निवृत्त हुए हैं । पश्चात् सामान्य विशेषस्वरूप चैतन्यरूप जो निजतत्त्व उसमें स्थिर होरहे हैं । इसी क्रमसे अन्य भव्यजीव भी स्वरूपमें शुभ रहते ॥ ३१ ॥ इसप्रकार आचारविधि पूर्ण हुई । आगे एकामतारूप मोक्षमार्गका स्वरूप कहते हैं, इस मोक्षमार्गका दूसरा नाम मुनीश्वर पदभी है चाहे कोई मुनीश्वर कहे अथवा मोक्षमार्ग कहे नाम मात्र भेद है परंतुभेद नहीं है । मुनि जो है वह ज्ञान दर्शन चारित्र-

त्यनुभूतिवृत्तिस्वरूपसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतिप्रवृत्तदृशिज्ञप्तिवृत्तिरूपात्मतत्त्वैकाग्र्याभावात् शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपं श्रामण्यमेव न स्यात् । अतः सर्वथा मोक्षमार्गापरनाम्नः श्रामण्यस्य सिद्धये भगवदहर्त्सर्वज्ञोपज्ञे प्रकटानेकान्तकेतने शब्दब्रह्मणि निष्णातेन मुमुक्षुणा भवितव्यम् ॥ ३२ ॥

अथागमहीनस्य मोक्षाख्यं कर्मक्षपणं न संभवतीति प्रतिपादयति;—

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि ।

अविजाणंतो अत्थे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू ॥ ३३ ॥

आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं विजानाति ।

अविजानन्नर्थान् क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुः ॥ ३३ ॥

न खल्वागममन्तरेण परात्मज्ञानं परमात्मज्ञानं वा स्यात्, न च परात्मज्ञानशून्यस्य परमात्मज्ञानशून्यस्य वा मोहादिद्रव्यभावकर्मणां ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां वा क्षपणं स्यात् । तथाहि—न तावन्निरागमस्य निरवधिभवापगाप्रवाहवाहिमहामोहमलमलीमसस्यास्य ज-

भवति । तथाहि—जीवभेदकर्मभेदप्रतिपादकागमाभ्यासाद्भवति न केवलमभ्यासात्तथैवागमपदे सारभूताच्चिदानन्दैकपरमात्मतत्त्वप्रकाशकादध्यात्माभिधानात्परमागमाच्च पदार्थपरिच्छित्तिर्भवति आगमचेष्टा तदो जेष्टा ततः कारणादेव मुक्तलक्षणागमपरमागमे च चेष्टा प्रवृत्तिः ज्येष्ठा प्रशस्येत्यर्थः ॥ ३२ ॥ अथागमपरिज्ञानहीनस्य कर्मक्षपणं न भवतीति प्ररूपयति;— आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं वा विजानाति अविजाणंतो अट्ठे अविजानन्नर्थान्परमात्मादिपदार्थान् खवेदि कम्माणि किह भिक्खू क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुर्न कथमपि इति । इतो विस्तरः—“गुणजीवा-

किसतरह हो संके ? नहीं होता । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है ऐसा जो यह मुनिपद है उसकी सिद्धिके निमित्त अर्हंत सर्वज्ञ कथित प्रगट अनेकान्त ध्वजासहित ब्रह्मरूप सिद्धांत मुक्तिवांछक पुरुषोंकर आदर करने योग्य है । सिद्धान्तके अभ्याससे पदार्थोंका निश्चय होता है उस निश्चयसे एकाग्रता होती है उस एकाग्रतासे मुनिपद होता है, मुनिपद और मोक्षमार्ग एक है । इसकारण मोक्षाभिलाषीको आगम अभ्यास करना उचित है ॥ ३२ ॥ आगे आगमकर जो रहित है उसके मोक्षरूप कर्मोंकी क्षपणा ( क्षय ) नहीं होती यह कहते हैं;—[ आगमहीनः श्रमणः ] सिद्धांतकर रहित मुनि [ आत्मानं ] नोकर्म द्रव्यकर्म भावकर्मसे रहित शुद्ध जीवद्रव्यको और [ परं ] पर शरीरादि द्रव्य भाव कर्मोंको [ नैव ] निश्चयकर नहीं [ विजानाति ] जानता है, और [ अर्थान् ] जीव अजीवादि पदार्थोंको [ अविजानन् ] नहीं जानता हुआ [ भिक्षुः ] मुनि [ कर्माणि ] द्रव्यभावरूप समस्त कर्मोंका [ कथं ] कैसे [ क्षपयति ] नाश कर सकता है ॥ भावार्थ—जिम जी-

विजृम्भमाणक्षोभतया कदाचिद्बुभुक्षाभावितस्य विश्वं स्वयं भोग्यतयोपादाय रागद्वेषदोषकल्मापितचित्तवृत्तेरिष्टानिष्टविभागेन प्रवर्तितद्वैतस्य प्रतिवस्तुपरिणममानस्यात्यन्तविसंस्थुलतया कृतनिश्चयस्य निःक्रियनिर्भोगं युगपदापीतविश्वमप्यविश्वतयैकं भगवन्तमात्मानमपश्यतः सततं वैयग्र्यमेव स्यात् । न चैकाग्र्यमन्तरेण श्रामण्यं सिद्ध्येत्, यतो नैकाग्र्यस्यानेकमेवेदमिति पश्यतस्तथाप्रत्ययाभिनिविष्टस्यानेकमेवेदमिति जानतस्तथानुभूतिभावितस्यानेकमेवेदमितिप्रत्यर्थविकल्पव्यावृत्तचेतसा संततं प्रवर्तमानस्य तथा वृत्तिदुःस्थितस्य चैकात्मप्रती-

अथैकाग्र्यगतः श्रमणो भवति । तच्चैकाग्र्यमागमपरिज्ञानादेव भवतीति प्रकाशयति;—**एयग्गगदो समणो** एकाग्र्यगतः श्रमणो भवति । अत्रायमर्थः—जगद्वयकालत्रयवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयपरिच्छित्तिसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानलक्षणनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपमैकाग्र्यं भण्यते । तत्र गतस्तन्मयत्वेन परिणतः श्रमणो भवति । **एयग्ग णिच्छिदस्स** एकाग्र्यं पुनर्निश्चितस्य तपोधनस्य भवति । केषु । अत्येसु-टङ्कोत्कीर्णज्ञापकैकस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतिष्वर्थेषु णिच्छिच्ची आगमदो सा च पदार्थनिश्चितिरागतो

चंचल भावकर कभी कर्तृत्व ज्वरके आवेशसे पराधीन हुआ तीन लोकका आप कर्ता होता है संपूर्ण परभावोंके उत्पन्न करनेकी इच्छासे समस्त द्रव्योंके व्यापाररूप परिणमन करता है और समय समयमें अहंताबुद्धिसे क्षोभभावकर हवासे क्षोभित समुद्रकी तरह क्षोभित हुआ कभी भोगनेकी इच्छा करता है, समस्त त्रैलोक्यका भोक्ता अपनेको मानता है सबको भोग्य जानता है कि यह मेरी वस्तु है मैं इसका भोगनेवाला हूं । और रागद्वेष भावोंकर कलंकित ( मलीन ) चित्त होता है इष्ट अनिष्ट वस्तुओंमें द्विविधभेद मानकर प्रवर्तता है हरएक वस्तुमें आत्म बुद्धिकर परिणमता है अत्यंत शिथिल भावकर बहिर्मुख हुआ परमें आत्माका निश्चय करता है । और वह अकर्ता अभोक्ता अपनी ज्ञानशक्तिकर एकही समय समस्त लोकालोकका पीनेवाला ( जाननेवाला ) और अपने स्वरूपसे एक है ऐसे भगवंत आत्माको देखता जानता नहीं है हमेशा चंचलतासे छेदायुक्त रहता है । इसकारण पदार्थोंके निश्चयविना एकाग्रता नहीं होती इसीसे पदार्थोंका निश्चय करना योग्य है । एकाग्रता विना मुनिपदकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि वह स्वरूपको पर उपाधिकर अनेकरूप देखता है अनेकतारूप प्रतीतिके आवेशसे अनेकरूप जानता है अनेकही स्वरूप देखता है । अनेकरूप अनुभव करता है कि मेरा स्वरूप अनेक है सब परभावोंसे रहित एक स्वरूपको देखता जानता अनुभवता नहीं है, इसीलिये हरएक पदार्थमें निरंतर आत्मभावसे प्रवर्तता है संकल्प विकल्परूप चित्तकी प्रवृत्ति धारण करता है । इसप्रकार एकाग्रताविना अधिर दुक्षित हुआ पुरुष अपने एक स्वरूपके अनुभवकी प्रवृत्तिकर ज्ञानदर्शन धारिरूप आत्मतत्त्वकी एकाग्रताको कैसे पासफता है । जहांपर एकाग्रता न हो वहां शुद्धात्मतत्त्वअनुभवरूप यतिपद

त्यनुभूतिवृत्तिस्वरूपसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतिप्रवृत्तदृशिज्ञप्तिवृत्तिरूपात्मतत्त्वैकाग्र्याभावात् शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपं श्रामण्यमेव न स्यात् । अतः सर्वथा मोक्षमार्गापरनाम्नः श्रामण्यस्य सिद्धये भगवदहर्त्सर्वज्ञोपज्ञे प्रकटानेकान्तकेतने शब्दब्रह्मणि निष्पातेन मुमुक्षुणा भवितव्यम् ॥ ३२ ॥

अथागमहीनस्य मोक्षाख्यं कर्मक्षपणं न संभवतीति प्रतिपादयति;—

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि ।

अविजाणंतो अत्थे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू ॥ ३३ ॥

आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं विजानाति ।

अविजानन्नर्थान् क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुः ॥ ३३ ॥

न खल्वागममन्तरेण परात्मज्ञानं परमात्मज्ञानं वा स्यात्, न च परात्मज्ञानशून्यस्य परमात्मज्ञानशून्यस्य वा मोहादिद्रव्यभावकर्मणां ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां वा क्षपणं स्यात् । तथाहि—न तावन्निरागमस्य निरवधिभवापगाप्रवाहवाहिमहामोहमलमलीमसस्यास्य ज-

भवति । तथाहि—जीवभेदकर्मभेदप्रतिपादकागमाम्यासाद्भवति न केवलमभ्यासात्तथैवागमपदे सारभूताधिदानन्दैकपरमात्मतत्त्वप्रकाशकादध्यात्माभिधानात्परमागमाच्च पदार्थपरिच्छित्तिर्भवति आगमचेद्वा तदो जेद्वा ततः कारणादेव मुक्तलक्षणआगमपरमागमे च चेष्टा प्रवृत्तिः ज्येष्ठा प्रशस्येत्यर्थः ॥ ३२ ॥ अथागमपरिज्ञानहीनस्य कर्मक्षपणं न भवतीति प्ररूपयति;—

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं वा विजानाति अविजाणंतो अट्ठे अविजानन्नर्थान्परमात्मादिपदार्थान् खवेदि कम्माणि किह भिक्खू क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुर्न कथमपि इति । इतो विस्तरः—“गुणजीवा-

किसतरह हो संके ? नहीं होता । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है ऐसा जो यह मुनिपद है उसकी सिद्धिके निमित्त अर्हत सर्वज्ञ कथित प्रगट अनेकान्त ध्वजासहित ब्रह्मरूप सिद्धांत मुक्तिवांछक पुरुषोंकर आदर करने योग्य है । सिद्धान्तके अभ्याससे पदार्थोंका निश्चय होता है उस निश्चयसे एकाग्रता होती है उस एकाग्रतासे मुनिपद होता है, मुनिपद और मोक्षमार्ग एक है । इसकारण मोक्षाभिलाषीको आगम अभ्यास करना उचित है ॥ ३२ ॥ आगे आगमकर जो रहित है उसके मोक्षरूप कर्मोंकी क्षपणा ( क्षय ) नहीं होती यह कहते हैं;—[ आगमहीनः श्रमणः ] सिद्धांतकर रहित मुनि [ आत्मानं ] नोकर्म द्रव्यकर्म भावकर्मसे रहित शुद्ध जीवद्रव्यको और [ परं ] पर शरीरादि द्रव्य भाव कर्मोंको [ नैव ] निश्चयकर नहीं [विजानाति] जानता है, और [ अर्थान् ] जीव अजीवादि पदार्थोंको [ अविजानन् ] नहीं जानता हुआ [ भिक्षुः ] मुनि [ कर्माणि ] द्रव्यभावरूप समस्त कर्मोंका [ कथं ] कैसे [ क्षपयति ] नाश कर सकता है ॥ भावार्थ—जिम जी-

गतः पीतोन्मत्तकस्येवावकीर्णविवेकस्याविविक्तेन ज्ञानज्योतिषा निरूपयतोप्यात्मात्मप्रदेश-  
निश्चितशरीरादिद्रव्येषूपयोगमिश्रितमोहरागद्वेषादिभावेषु च स्वपरनिश्चायकागमोपदेशपूर्व-  
कस्वानुभवाभावादयं परोऽयमात्मेति ज्ञानं सिद्ध्येत् । तथाच त्रिसमयपरिपाटीप्रकटित-  
विचित्रपर्यायप्राग्भारागाधगम्भीरस्वभावं विश्वमेव ज्ञेयीकृत्य प्रतपतः परमात्मनिश्चायका-  
गमोपदेशपूर्वकस्वानुभवाभावात् ज्ञानस्वभावस्यैकस्य परमात्मनो ज्ञानमपि न सिद्ध्येत् ।  
परात्मपरमात्मज्ञानशून्यस्य तु द्रव्यकर्मारब्धैः शरीरादिभिस्तत्प्रत्ययैर्मोहरागद्वेषादिभावैश्च  
सहैक्यमाकलयतो वध्यघातकविभागाभावान्मोहादिद्रव्यभावकर्मणां क्षपणं न सिद्ध्येत् ।

पञ्चती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य । उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा” इति  
गाथाकथिताद्यागममजानन् तथैव “भिण्णउ जेण ण जाणियउ णियदेहपरमत्थु । सो  
अदउ अवरदाहं किं वादरिसइपत्थु” इति दोहकसूत्रकथिताद्यागमपदसारभूतमध्यात्मशास्त्रं  
चाजानन् पुरुषो रागादिदोपरहिताव्यावाधसुखादिगुणस्वरूपनिजात्मद्रव्यस्य भावकर्मशब्दा-  
भिधेयै रागादिनानाविकल्पजालैर्निश्चयेन कर्मभिः सह भेदं न जानाति तथैव कर्मारि-  
विध्वंसकत्वकीयपरमात्मतत्त्वस्य ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभिरपि सह पृथक्त्वं न वेत्ति । तथा  
चाशरीरलक्षणशुद्धात्मपदार्थस्य शरीरादिनोकर्मकर्मभिः सहान्यत्वं न जानाति । इत्थंभूत-

वको सिद्धान्तका ज्ञान न हो और आगमके पढ़ने सुननेरूप अभ्याससे रहित होवै  
उसको अपना और परका ज्ञान नहीं होता और निर्विकल्परूप परमात्माकाभी ज्ञान  
नहीं होता है । उसीको दिखलाते हैं—अनंत संसाररूप नदीका बढानेवाला जो यह महा-  
मोह है उससे कलंकी (मलीन) हुए जगतजीव हैं वे भगवंतप्रणीत आगमविना विवेकसे  
रहित हैं जैसे धतूरेको पीकर उन्मत्त (बावला) हुआ मनुष्य करने योग्य और अकार्यको  
नहीं जानता उसतरह अनजान हो रहे हैं, पर और आत्माको एक स्वरूप देखते हैं  
जानते हैं शरीरादि परद्रव्यमें और उपयोगसे मिले हुए रागद्वेष मोहभावोंमें एकता मा-  
नते हैं । स्वपरभेदका कारण जो सिद्धांत उसके उपदेशसे जिसके आत्माका अनुभव  
नहीं हुआ है इसकारण उसके यह आत्मा है यह पर है ऐसे भेदविज्ञानकी सिद्धि नहीं  
होती और निर्विकल्प समाधिकर एक परमात्मज्ञानकी भी सिद्धि नहीं होती । वह  
परमात्मा तीन कालसंबंधी अनंत नानाप्रकार पर्यायोंसहित लोक अलोकरूप समस्त  
ज्ञेयको एक समयमें जानकर प्रकाशमान है ऐसे केवलज्ञानस्वभावरूप आत्माको नहीं  
जानता है । जो परमात्माके भेद विज्ञानकर शून्य है और परमात्मज्ञानकर शून्य है  
यह पुरुष द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे आत्माको एक (मिला हुआ) मानता है ऐसा  
नहीं समझता कि ये कर्म आत्माके घातक हैं आत्मा इनमें घाता जाता है इसीलिये  
आत्माके म्यभाव नहीं हैं ऐसा भेद नहीं जानता और समस्त विकल्पोंमें रहित होके  
स्वरूपको नदी अनुभवता सो घतलाइये कि एंमे जीवके गोद आदिक द्रव्यभावकर्मोंका

तथाच ज्ञेयनिष्ठतया प्रतिवस्तु पातोत्पातपरिणतत्वेन ज्ञप्तेरासंसारत्परिवर्तमानायाः परमात्मनिष्ठत्वमन्तरेणानिर्वायपरिवर्ततया ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां क्षणमपि न सिद्ध्येत् । अतः कर्मक्षणार्थिभिः सर्वथागमः पर्युपास्यः ॥ ३३ ॥

अथागम एवैकश्चक्षुर्मोक्षमार्गमुपसर्पतामित्यनुशास्तिः—

आगमचक्षू साहू इन्द्रियचक्षूणि सव्वभूदाणि ।

देवा य ओहिचक्षू सिद्धा पुण सव्वदो चक्षू ॥ ३४ ॥

आगमचक्षुः साधुरिन्द्रियचक्षूषि सर्वभूतानि ।

देवाश्चावधिचक्षुपः सिद्धाः पुनः सर्वतश्चक्षुपः ॥ ३४ ॥

इह तावद्भगवन्तः सिद्धा एव शुद्धज्ञानमयत्वात्सर्वतश्चक्षुपः शेषाणि तु सर्वाण्यपि भूतानि मूर्तद्रव्यावसक्तदृष्टित्वादिन्द्रियचक्षूषि, देवास्तु सूक्ष्मत्वविशिष्टमूर्तद्रव्यग्राहित्वादभेदज्ञानाभावाद्देहस्थमपि निजशुद्धात्मानं न रोचते । समस्तरागादिपरिहारेण न च भावयति । ततश्च कथं कर्मक्षयो भवति न कथमपीति । ततः कारणान्मोक्षार्थिना परमागमाभ्यास एव कर्त्तव्य इति तात्पर्यार्थः ॥ ३३ ॥ अथ मोक्षमार्गार्थिनामागम एव दृष्टिरित्याख्यातिः—आगमचक्षू शुद्धात्मादिपदार्थप्रतिपादकपरमागमचक्षुषो भवन्ति । के ते । साहू निश्चयरत्नत्रयाधारेण निजशुद्धात्मसाधकाः साधवः इन्द्रियचक्षूणि निश्चयेनातीन्द्रियामूर्त्तिकेवलज्ञानादिगुणस्वरूपाण्यपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशादिन्द्रियाधीनत्वेनेन्द्रियचक्षूषि भवन्ति । कानि कर्तृणि ।

क्षय किस तरहसे होवे ? नहीं हो सकता । और वहीं जीव अपनी भूलसे पर ज्ञेयोंमें तिष्ठता है हर एक पदार्थमें ग्रहण और त्यागसे राग द्वेषभावरूप परिणमन करता है इसलिये उस जीवका ज्ञान अनादि कालसे उलटा हो रहा है परमात्मस्वरूपमें स्थिर नहीं होता । ऐसे जीवके अथिर शुद्धक्षयोपशमरूप ज्ञानकर्मकी भी क्षणमा नहीं होती जो कि भेदविज्ञानकर शून्य है और परमात्मज्ञानकर शून्य है । इसकारण अज्ञानीके द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म अथिर ज्ञानकर्म इनका नाश नहीं होता । इसलिये इन कर्मोंके क्षयके निमित्त आगमका अभ्यास योग्य है ॥ ३३ ॥ आगे मोक्षमार्गी जीवोंके एक सिद्धांतही नेत्र है यह कहते हैं,—[ साधुः ] मुनि [ आगमचक्षुः ] सिद्धांतरूपी नेत्रोंवाला होता है अर्थात् मुनिके मोक्षमार्गकी सिद्धिके निमित्त आगम नेत्र होते हैं [ सर्वभूतानि ] समस्त संसारी जीव [ इन्द्रियचक्षूषि ] मनसहित स्पर्शनादि छह इन्द्रियोंरूप चक्षुवाले हैं अर्थात् संसारी जीवोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंके जाननेकेलिये इन्द्रियही नेत्र हैं [ च ] और [ देवाः ] चार तरहके देव [ अवधिचक्षुपः ] अवधिज्ञानरूप नेत्रोंवाले हैं अर्थात् देवताओंके सूक्ष्म मूर्त्तिक द्रव्य देखनेको अवधिज्ञान नेत्र हैं लेकिन वह अवधिज्ञान इन्द्रियज्ञानसे विशेष नहीं क्योंकि अवधि मूर्तद्रव्यको ग्रहण करता है और इन्द्रिय नेत्रही मूर्त्तिकको ग्रहण करता है इससे इन

वधिचक्षुषः । अथ च तेपि रूपिद्रव्यमात्रदृष्टत्वेनेन्द्रियचक्षुष्योऽविशिष्यमाणा इन्द्रियचक्षुष एव । एवमभीषु समस्तेष्वपि संसारिषु मोहोपहततया ज्ञेयनिष्ठेषु सत्सु ज्ञाननिष्ठत्वमूलशुद्धात्मतत्त्वसंवेदनसाध्यं सर्वतश्चक्षुस्त्वं न सिद्ध्यचेत् । अथ तत्सिद्ध्ये भगवन्तः श्रमणा आगमचक्षुषो भवन्ति । तेन ज्ञेयज्ञानयोरन्योन्यसंवलनेनाशक्यविवेचनत्वे सत्यपि स्वपरविभागमारचय्य निर्भिन्नमहामोहाः सन्तः परमात्मानमवाप्य सततं ज्ञाननिष्ठा एवावतिष्ठन्ते । अतः सर्वमप्यागमचक्षुषैव मुमुक्षूणां द्रष्टव्यम् ॥ ३४ ॥

अथागमचक्षुषा सर्वमेव दृश्यत एवेति समर्थयति;—

सर्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपञ्जाएहिं चित्तेहिं ।

जाणंति आगमेण हि पेच्छित्ता तेवि ते समणा ॥ ३५ ॥

सर्वे आगमसिद्धा अर्था गुणपर्यायैश्चित्रैः ।

जानन्त्यागमेन हि दृष्ट्वा तानपि ते श्रमणाः ॥ ३५ ॥

आगमेन तावत्सर्वाण्यपि द्रव्याणि प्रमीयन्ते, अविशिष्टतर्कणस्य सर्वद्रव्याणामविरु-

सब्धभूदाणि सर्वभूतानि सर्वसंसारिजीवा इत्यर्थः देवावि ओहिचक्खू देवा अपि सूक्ष्ममूर्त्तपुद्गलद्रव्यविषयावधिचक्षुषः सिद्धा पुण सब्बदो चक्खू सिद्धाः पुनः शुद्धबुद्धैकस्वभावजीवाजीवलोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयसर्वप्रदेशचक्षुष इति । अनेन किमुक्तं भवति सर्वशुद्धात्मप्रदेशे लोचनोत्पत्तिनिमित्तं परमागमोपदेशादुत्पन्नं निर्विकारं मोक्षाधिभिः स्वसंवेदनज्ञानमेव भावनीयमिति ॥ ३४ ॥ अथागमलोचनेन सर्वं दृश्यत इति प्रज्ञापयति;—  
सर्वे आगमसिद्धा सर्वेऽप्यागमसिद्धा आगमेन ज्ञाताः । के ते । अत्था विशुद्धज्ञान-

दोनोंमें समानता है [ पुनः ] तथा [ सिद्धाः ] अष्टकर्मरहित सिद्ध भगवान् [ सर्वतः चक्षुषः ] सब ओरसे नेत्रोंवाले हैं ॥ भावार्थ—संसारमें जितने संसारी जीव हैं वे सब अज्ञानकर आच्छादित हैं इसकारण परज्ञेय पदार्थोंमें मोहित हैं ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मज्ञानसे रहित हैं इससे इनके अतीन्द्रिय सबका देखनेवाला नेत्र नहीं है सर्वदर्शी तो एक सिद्ध भगवान् हैं, उस सिद्धपदकी प्राप्तिके निमित्त जो मोक्षमार्गी महामुनि हैं वे आगमनेत्रके धारक होते हैं उस आगमनेत्रसे स्वरूप पररूपका भेद करते हैं । यद्यपि ज्ञेय ज्ञानकी परस्पर एकता हो रही है भेद नहीं किया जाता है तौभी आगमनेत्रके घलसे लक्षणभेद जुदे २ किये जाते हैं इस भेदविज्ञानकी शक्तिकर प्राणी महामोहको जीतता है पीछे परमात्मतत्त्वको पाता है तब निरंतर अनंतज्ञानमें तिष्ठता है । इसलिये सर्वदर्शी सिद्धपदका साधक आगमको जानकर मुक्तिके इच्छुक महामुनि सबको आगमनेत्रकर देखते हैं आगम यद्वा नेत्र है ॥ ३४ ॥ आगे आगम नेत्रकर सब देखा जाता है यह घात दृष्ट करते हैं;—[ सर्वे अर्थाः ] सभी जीव अजीवादि पदार्थ हैं वे [ चित्रैः ] नानाप्रकारके [ गुणपर्यायैः ] गुण पर्या-

दत्त्वात् । विचित्रगुणपर्यायविशिष्टानि च प्रतीयन्ते, सहक्रमप्रवृत्तानेकधर्मव्यापकानेकान्तमयत्वेनैवागमस्य प्रमाणत्वोपपत्तेः । अतः सर्वेऽर्था आगमसिद्धा एव भवन्ति । अथ ते श्रमणानां ज्ञेयत्वमापद्यन्ते स्वयमेव, विचित्रगुणपर्यायविशिष्टसर्वद्रव्यव्यापकानेकान्तात्मकश्रुतज्ञानोपयोगीभूय विपरिणमनात् । अतो न किञ्चिदप्यागमचक्षुषामदृश्यं स्यात् ॥ ३५ ॥

अथागमज्ञानतत्पूर्वतत्त्वार्थश्रद्धानतदुभयपूर्वसंयतत्वानां यौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति;—

आगमपुत्र्वा दिद्वी ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स ।

णत्थित्ति भणइ सुत्तं असंजदो ह्वदि किध समणो ॥ ३६ ॥

दर्शनस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतयोऽर्थाः । कथं सिद्धाः । गुणपञ्जएहि चित्तेहि विचित्रगुणपर्यायैः सह । जाणंति जानन्ति । कान् । तेवि तान् पूर्वोक्तार्थगुणपर्यायान् । किञ्चत्वा पूर्वं । पेच्छित्ता दृष्ट्वा ज्ञात्वा । केन ? आगमेण य आगमेनैव । अयमत्रार्थः—पूर्वमागमं पठित्वा पश्चाज्जानन्ति ते समणा ते श्रमणा भवन्तीति । अत्रेदं भणितं भवति—सर्वे द्रव्यगुणपर्यायाः परमागमेन ज्ञायन्ते । कस्मात् ? आगमस्य परोक्षरूपेण केवलज्ञानसमानत्वात्, पश्चादागमाधारेण स्वसंवेदनज्ञाने जाते स्वसंवेदनज्ञानबलेन केवलज्ञाने च जाते प्रत्यक्षा अपि भवन्ति । ततः कारणादागमचक्षुषा परंपरया सर्वे दृश्यं भवतीति ॥ ३५ ॥ एवमागमाम्यासकथनरूपेण प्रथमस्थले सूत्रचतुष्टयं गतम् । अथागमपरिज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-

योंकर [ आगमसिद्धाः ] सिद्धांतमें सिद्ध हैं [ तान् अपि ] गुण पर्यायोंसहित उन पदार्थोंकोभी [ ते श्रमणाः ] वे मोक्षमार्गी महामुनि [ हि ] निश्चयकर [ आगमेन दृष्ट्वा ] सिद्धांत नेत्रसे देखकर [ जानन्ति ] जानते हैं ॥ भाचार्य—जितने जीव अजीवादि पदार्थ हैं उनके गुणपर्यायोंके भेदसे जो स्वरूप है वह अनादि निधन सिद्धान्तमें अच्छीतरह सिद्ध किया है अर्थात् सिद्धांतमें द्रव्यगुणपर्यायका स्वरूप यथार्थ कहा है किसी तर्क ( न्याय ) से खंडित नहीं होता अविरोधरूप है । सहभावी गुण और क्रमवर्ती पर्याय इन दो भेदोंकर द्रव्यमें जो अनंतधर्म हैं उन स्वरूप अनेकान्तको आगम कहा है इससे प्रमाण है, क्योंकि नाना प्रकारके गुणपर्याय सहित सब द्रव्योंके अनेकान्तस्वरूपका कहनेवाला है । ऐसे आगम नेत्रकर महामुनि सकल पदार्थोंके स्वरूपको देखते हैं जानते हैं । सब पदार्थ ज्ञेय हैं महामुनि ज्ञाता हैं द्रव्यश्रुत आगमको जानकर भावश्रुत ज्ञानके उपयोगी होकर परिणमे हैं इसकारण महामुनि आगमके बलसे सबको देखते हैं इसीलिये आगम नेत्रकर कुछभी अन दीखता नहीं रहता । इसकारण मोक्षाभिलाषीको अभ्यास करना योग्य है ॥ ३५ ॥ आगे सिद्धांतका ज्ञान और उस सिद्धांतके अनुसार श्रद्धान और ज्ञान श्रद्धान संयुक्त संयम ये तीनों जो



वधिचक्षुषः । अथ च तेपि रूपिद्रव्यमात्रदृष्टत्वेनेन्द्रियचक्षुष्योऽविशिष्यमाणा इन्द्रियचक्षुष एव । एवममीषु समस्तेष्वपि संसारिषु मोहोपहततया ज्ञेयनिष्ठेषु सत्सु ज्ञाननिष्ठत्वमूलशुद्धात्मतत्त्वसंवेदनसाध्यं सर्वतश्चक्षुस्त्वं न सिद्ध्येत् । अथ तत्सिद्धये भगवन्तः श्रमणा आगमचक्षुषो भवन्ति । तेन ज्ञेयज्ञानयोरन्योन्यसंचलनेनाशक्यविवेचनत्वे सत्यपि स्वपरविभागमारचय्य निर्भिन्नमहामोहाः सन्तः परमात्मानमवाप्य सततं ज्ञाननिष्ठा एवावतिष्ठन्ते । अतः सर्वमप्यागमचक्षुषैव मुमुक्षूणां द्रष्टव्यम् ॥ ३४ ॥

अथागमचक्षुषा सर्वमेव दृश्यत एवेति समर्थयति;—

सव्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जाएहिं चित्तेहिं ।

जाणंति आगमेण हि पेच्छित्ता तेवि ते समणा ॥ ३५ ॥

सर्वे आगमसिद्धा अर्था गुणपर्यायैश्चित्रैः ।

जानन्त्यागमेन हि दृष्ट्वा तानपि ते श्रमणाः ॥ ३५ ॥

आगमेन तावत्सर्वाण्यपि द्रव्याणि प्रमीयन्ते, अविशिष्टतर्कणस्य सर्वद्रव्याणामविरु-

सव्वभूदाणि सर्वभूतानि सर्वसंसारिजीवा इत्यर्थः देवाचि ओहिचक्खू देवा अपि सूक्ष्ममूर्त्तपुद्गलद्रव्यविपयावधिचक्षुषः सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू सिद्धाः पुनः शुद्धबुद्धैकस्वभावजीवाजीवल्लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयसर्वप्रदेशचक्षुष इति । अनेन किमुक्तं भवति सर्वशुद्धात्मप्रदेशे लोचनोत्पत्तिनिमित्तं परमागमोपदेशादुत्पन्नं निर्विकारं मोक्षाधिभिः स्वसंवेदनज्ञानमेव भावनीयमिति ॥ ३४ ॥ अथागमलोचनेन सर्वे दृश्यत इति प्रज्ञापयति;—  
सव्वे आगमसिद्धा सर्वेऽप्यागमसिद्धा आगमेन ज्ञाताः । के ते । अत्था विशुद्धज्ञान-

दोनोंमें समानता है [ पुनः ] तथा [ सिद्धाः ] अष्टकर्मरहित सिद्ध भगवान् [ सर्वतः चक्षुषः ] सब ओरसे नेत्रोंवाले हैं ॥ भावार्थ—संसारमें जितने संसारी जीव हैं वे सब अज्ञानकर आच्छादित हैं इसकारण परज्ञेय पदार्थोंमें मोहित हैं ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मज्ञानसे रहित हैं इससे इनके अतीन्द्रिय सबका देखनेवाला नेत्र नहीं है सर्वदर्शी तो एक सिद्ध भगवान् हैं, उस सिद्धपदकी प्रातिके निमित्त जो मोक्षमार्गी महामुनि हैं वे आगमनेत्रके धारक होते हैं उस आगमनेत्रसे स्वरूप पररूपका भेद करते हैं । यद्यपि ज्ञेय ज्ञानकी परस्पर एकता हो रही है भेद नहीं किया जाता है तौभी आगमनेत्रके घलसे लक्षणभेद जुदे २ किये जाते हैं इस भेदविज्ञानकी शक्तिकर प्राणी महामोहको जीतता है पीछे परमात्मतत्त्वको पाता है तब निरंतर अनंतज्ञानमें तिष्ठता है । इसलिये सर्वदर्शी सिद्धपदका साधक आगमको जानकर मुक्तिके इच्छुक महामुनि सबको आगमनेत्रकर देखते हैं आगम यद्वा नेत्र है ॥ ३४ ॥ आगे आगम नेत्रकर सब देखा जाता है यह बात दृढ करते हैं;—[ सर्वे अर्थाः ] सभी जीव अजीवादि पदार्थ हैं वे [ चित्रैः ] नानाप्रकारके [ गुणपर्यायैः ] गुण पर्या-

सिद्ध्येत् । अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं नि-  
यम्येत ॥ ३६ ॥

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति;—

ण हि आगमेण सिद्ध्यति सद्वहणं यदि ण अत्थि अत्येसु ।

सद्वहमाणो अत्ये असंजदो वा ण णिब्वादि ॥ ३७ ॥

न ह्यागमेन सिद्ध्यति श्रद्धानं यदि नास्त्यर्थेषु ।

श्रद्धान अर्थानसंयतो वा न निर्वाति ॥ ३७ ॥

श्रद्धानशून्येनागमजनितेन ज्ञानेन तदविनाभाविना श्रद्धानेन च संयमशून्येन न ता-  
वत्सिद्ध्यति । तथाहि—आगमवलेन सकलपदार्थान् विस्पष्टं तर्कयन्नपि यदि सकलपदार्थ-

ज्ञानरूपमात्मानं जानन्नपि सम्यग्दृष्टिर्न भवति ज्ञानी च न भवति तद्व्याभावे सति  
पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषपङ्गीववधव्यावर्त्तोपि संयतो न भवति । ततः स्थितमेतत् पर-  
मागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वत्रयमेव मुक्तिकारणमिति ॥ ३६ ॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थ-

श्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्याभावे मोक्षो नास्तीति व्यवस्थापयति;—ण हि आगमेण  
सिद्ध्यति आगमजनितपरमात्मज्ञानेन न सिद्ध्यति सद्वहणं यदि वि णत्थि अत्येसु  
श्रद्धानं यदि च नास्ति परमात्मादिपदार्थेषु । सद्वहमाणो अत्ये श्रद्धानो वा  
चिदानन्दैकस्वभावनिजपरमात्मादिपदार्थान् । असंजदो वा ण णिब्वादि विषयकपायाधीनत्वे-

विना संयमभावकी कैसे सिद्धि होवे ? किसीतरह नहीं । जिसके संयमकी सिद्धि न हुई

उसके निश्चित एकाप्रतारूप मोक्षमार्गनामा मुनि पदकीभी सिद्धि नहीं होती । इसलिये

आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इन तीनोंकी एकता जब होवे तभी मोक्षमार्गकी

सिद्धि होती है ॥ ३६ ॥ आगे आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इन तीनोंकी

एकता हो तभी मोक्षमार्ग होवे यह कहते हैं;—[ यदि ] जो [ अर्थेषु ] जीवाजी-

वादि पदार्थोंमें [ श्रद्धानं ] रुचिरूप प्रतीति [ नास्ति ] नहीं है तो [ आगमेन

हि ] सिद्धान्तके जाननेसे भी [ न सिद्ध्यति ] नहीं मुक्त होता [ वा ] अथवा

[ अर्थान् ] जीवाजीवादिक पदार्थोंका [ श्रद्धानः अपि ] श्रद्धान करता हुआ भी

जो [ असंयतः ] असंयमी होवे तो वह [ न ] नहीं [ निर्वाति ] मुक्त होता ॥

भावार्थ—यद्यपि आगमके बलसे सब पदार्थोंको विशेष रूपसे जानता है परंतु सकल

पदार्थोंके जाननेसे प्रतिबिंबित निर्मल ज्ञानाकार आत्मा जैसा है उसको उसीप्रकार न

जाने, वैसाही श्रद्धान न करे और जैसा कुछ कहा है वैसाही जो न अनुभवे तो पर-

क्षेपमें मग्न हुआ अज्ञानी जीव अकेले आगमके जाननेसे ही श्रद्धान विना ज्ञानी कैसे

हो सकता है ? किसी प्रकारभी नहीं । यदि आगमको जाने और तत्त्वार्थका श्रद्धान

करे तभी ज्ञानी होसकता है अन्यप्रकार नहीं । यद्यपि आगम सकल पदार्थोंको प्रगट

आगमपूर्वा दृष्टिर्न भवति यस्येह संयमस्तस्य ।

नास्तीति भणति सूत्रमसंयतो भवति कथं श्रमणः ॥ ३६ ॥

इह हि सर्वस्यापि स्यात्कारकेतनागमपूर्विकया तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणया दृष्ट्या शून्यस्य स्वपरविभागाभावात् कायकपायैः सहैक्यमध्यवसतो निरुद्धविषयाभिलाषतया पृथ्वीनि-  
कायघातिनो भूत्वा सर्वतोपि कृतप्रवृत्तेः सर्वतो निवृत्त्यभावात्तथा परमात्मज्ञानाभावाद्  
ज्ञेयचक्रमाक्रमणनिर्मलज्ञप्तिताया ज्ञानरूपात्मतत्त्वैकाग्र्यप्रवृत्त्यभावाच्च संयम एव न तावत्  
सिद्धोत् । असिद्धसंयमस्य तु सुनिश्चितैकाग्र्यगतत्वरूपं मोक्षमार्गापरनामश्रामण्यमेव न

तदुभयपूर्वकसंयतत्वत्रयस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति;—आगमपुत्र्वा दिष्टी ण हवदि ज-  
स्तेह आगमपूर्विका दृष्टिः सम्यक्त्वं नास्ति यस्येह लोके संजमो तस्त णत्थि संयमस्तस्य  
नास्ति इदि भणदि इत्येवं भणति कथयति । किं कर्तुं । सुत्तं सूत्रमागमः असंजदो होदि  
किह समणो असंयतः सन् श्रमणस्तपोधन कथं भवति न कथमपीति । तथाहि—यदि  
निर्दोषिनिजपरमात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वं नास्ति तर्हि परमागमबलेन विशदैक-

एक कालमें होंगे तो मोक्षमार्ग होता है ऐसा निश्चय करते हैं;—[ इह ] इस लोकमें  
[ यस्य ] जिस जीवके [ आगमपूर्वा ] पहले अच्छीतरह सिद्धान्तको जानकर  
[ दृष्टिः ] सम्यग्दर्शन [ न भवति ] नहीं हो [ तस्य ] तो उसके [ संयमः ]  
मुनिकी क्रियारूप आचार [ नास्ति ] नहीं होता [ इति ] यह बात [ सूत्रं ] जि-  
नप्रणीत सिद्धांत [ भणति ] कहता है [ असंयतः ] और जिसके संयमभाव नहीं  
है वह पुरुष [ कथं ] कैसे [श्रमणः] मुनि [भवति] होसकता है? नहीं हो सकता ॥  
भावार्थ—जिस पुरुषके प्रथमही आगमको जानकर पदार्थोंका श्रद्धान न हुआ हो उस  
पुरुषके संयमभावभी नहीं होता यह निश्चय है और जिसके संयम नहीं हैं वह मुनि  
नहीं कहा जाता । जिसके आगमको जानकर श्रद्धान हुआ हो वही मुनि कहलाता है अ-  
न्यथा नहीं कहा जाता इसी कथनको विशेष कर दिखलाते हैं—ज्ञानदर्शन चारित्रका जो  
एक ही वार होना उसको मोक्षमार्ग कहते हैं क्योंकि जो जीव अनेकांत ध्वजाकर वि-  
राजमान आगमज्ञानके अनुसार श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनसे रहित है उसके भेद विज्ञा-  
नके अभावसे स्वपरका भेद नहीं होता, कपाय परिणामोंसे एकताका अध्यास होता है  
घटांपर रागद्वेष मोहभावसे विषयाभिलाषाका निरोध नहीं होता इन्द्रियें विषयोंमें प्रव-  
र्ततीं है पट्काय जीवोंकी हिंसा होती है अटकसे रहित हुआ यथेच्छाचारी होता है  
सर्व स्यागरूप मुनिव्रत नहीं होता उसीप्रकार निर्विकल्प समाधिकर परमात्मज्ञानभी  
नहीं होता और ज्ञेय पदार्थोंमें प्रवर्तनेवाली स्वच्छंद ज्ञानप्रवृत्तिउसे स्वरूपमें एकाग्रता-  
भावकर ज्ञानप्रवृत्तिका अभाव है । इसकारण ऐसे जीवके आगमज्ञानपूर्वक श्रद्धान-

सिद्ध्येत् । अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं नि-  
यम्येत ॥ ३६ ॥

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति;—

ण हि आगमेण सिद्ध्यति सद्वहणं यदि ण अत्थि अत्थेसु ।

सद्वहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिञ्वादि ॥ ३७ ॥

न ह्यागमेन सिद्ध्यति श्रद्धानं यदि नास्त्यर्थेषु ।

श्रद्धानं अर्थानसंयतो वा न निर्वाति ॥ ३७ ॥

श्रद्धानशून्येनागमजनितेन ज्ञानेन तदविनाभाविना श्रद्धानेन च संयमशून्येन न ता-  
वत्सिद्ध्यति । तथाहि—आगमवलेन सकलपदार्थान् विस्पष्टं तर्कयन्नपि यदि सकलपदार्थ-

ज्ञानरूपमात्मानं जानन्नपि सम्यग्दृष्टिर्न भवति ज्ञानी च न भवति तद्व्याभावे सति  
पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषपट्जीववधव्यावर्त्तोपि संयतो न भवति । ततः स्थितमेतत् पर-  
मागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वत्रयमेव मुक्तिकारणमिति ॥ ३६ ॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थ-  
श्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्याभावे मोक्षो नास्तीति व्यवस्थापयति;—ण हि आगमेण  
सिद्ध्यति आगमजनितपरमात्मज्ञानेन न सिद्ध्यति सद्वहणं यदि वि णत्थि अत्थेसु  
श्रद्धानं यदि च नास्ति परमात्मादिपदार्थेषु । सद्वहमाणो अत्थे श्रद्धानो वा  
चिदानन्दैकस्वभावनिजपरमात्मादिपदार्थान् । असंजदो वा ण णिञ्वादि विषयकपायाधीनत्वे-

विना संयमभावकी कैसे सिद्धि होवे? किसीतरह नहीं । जिसके संयमकी सिद्धि न हुई  
उसके निश्चित एकाग्रतारूप मोक्षमार्गनामा मुनि पदकीभी सिद्धि नहीं होती । इसलिये  
आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इन तीनोंकी एकता जब होवे तभी मोक्षमार्गकी  
सिद्धि होती है ॥ ३६ ॥ आगे आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इन तीनोंकी  
एकता हो तभी मोक्षमार्ग होवे यह कहते हैं;—[ यदि ] जो [ अर्थेषु ] जीवाजी-  
वादि पदार्थोंमें [ श्रद्धानं ] रुचिरूप प्रतीति [ नास्ति ] नहीं है तो [ आगमेन  
हि ] सिद्धान्तके जाननेसे भी [ न सिद्ध्यति ] नहीं मुक्त होता [ वा ] अथवा  
[ अर्थान् ] जीवाजीवादिक पदार्थोंका [ श्रद्धानः अपि ] श्रद्धान करता हुआ भी  
जो [ असंयतः ] असंयमी होवे तो वह [ न ] नहीं [ निर्वाति ] मुक्त होता ॥  
भावार्थ—यद्यपि आगमके बलसे सब पदार्थोंको विशेष रूपसे जानता है परंतु सकल  
पदार्थोंके जाननेसे प्रतिविवित निर्मल ज्ञानाकार आत्मा जैसा है उसको उसीप्रकार न  
जाने, वैसाही श्रद्धान न करे और जैसा कुछ कहा है वैसाही जो न अनुभवे तो पर-  
शेयमें मग्न हुआ अज्ञानी जीव अकेले आगमके जाननेसे ही श्रद्धान विना हानी कैसे  
हो सकता है? किसी प्रकारभी नहीं । यदि आगमको जाने और तत्त्वार्थका श्रद्धान  
करे तभी हानी होसकता है अन्यप्रकार नहीं । यद्यपि आगम सकल पदार्थोंको प्रगट

ज्ञेयाकारकरम्बितविशदकैकज्ञानाकारमात्मानं न तथा प्रत्येति तदा यथोदितात्मनः श्रद्धान-  
शून्यतया यथोदितमात्मानमननुभवन् कथं नाम ज्ञेयनिमग्नो ज्ञानविमूढोज्ञानी स्यात् । अज्ञा-  
निनश्च ज्ञेयद्योतको भवन्नप्यागमः किं कुर्यात् । ततः श्रद्धानशून्यादागमात्नास्ति सिद्धिः ।  
किंच—सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदकैकज्ञानाकारमात्मानं श्रद्धधानोप्यनुभवन्नपि  
यदि स्वस्मिन्नेव संयम्य न वर्तयति तदानादिमोहरागद्वेषवासनोपजनितपरद्रव्यचङ्कमण-  
स्वैरिण्याश्चिद्वृत्तेः स्वस्मिन्नेव स्थानान्निर्वासननिःकम्पैकतत्त्वमूर्च्छितदृष्ट्यभावात्कथं नाम  
संयतः स्यात् । असंयतस्य च यथोदितात्मतत्त्वप्रतीतिरूपं श्रद्धानं यथोदितात्मतत्त्वानु-  
भूतिरूपं ज्ञानं वा किं कुर्यात् । ततः संयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धिः ।  
अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटेतैव ॥ ३७ ॥

नासंयतो वा न निर्वाति निर्वाणं न लभत इति । तथाहि—यथा प्रदीपसहितपुरुषस्य कूपपतनप्रस्तावे  
कूपपतनान्निवर्त्तनं मम हितमिति निश्चयरूपं श्रद्धानं यदि नास्ति तदा प्रदीपः किं करोति न  
किमपि । तथा जीवस्यापि परमागमाधारेण सकलपदार्थज्ञेयाकारकरावलम्बितविशदकैकज्ञानरूपं  
स्वात्मानं जानतोऽपि ममात्मैवोपादेय इति निश्चयरूपं यदि श्रद्धानं नास्ति तदास्य प्रदीपस्थानीय  
भागमः किं करोति न किमपि । यथा वा स एव प्रदीपसहितपुरुषः स्वकीयपौरुषवलेन कू-  
पपतनाद्यदि न निवर्त्तते तदा तस्य श्रद्धानं प्रदीपो दृष्टिर्वा किं करोति न किमपि । तथायं  
जीवः श्रद्धानज्ञानसहितोऽपि पौरुषस्थानीयचारित्रवलेन रागादिविकल्परूपादसंयमाद्यदि न नि-  
वर्त्तते तदा तस्य श्रद्धानं ज्ञानं वा किं कुर्यान्न किमपीति । अतः एतदायाति परमागमज्ञान-  
तत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां मध्ये द्वयेनैकेन वा निर्वाणं नास्ति किन्तु त्रयेणेति ॥ ३७ ॥ एवं

करता है तौभी अज्ञानीको कुछ कार्यकारी नहीं होसकता क्योंकि अज्ञानी श्रद्धानसे  
रहित है इसलिये उसको आगमसे कुछ फलकी सिद्धि नहीं होती । यद्यपि सकल ज्ञेय  
पदार्थोंकर प्रतिविवित निर्मल ज्ञानाकार आत्माका कोई श्रद्धानभी करता है कोई जीव  
अनुभवभी करता है तौभी वही जीव अपनेमें जो संयम भावधर निश्चल होके नहीं प्रवर्त्तें  
तो उस संयमीके जैसा कुछ कहा है वैसाही आत्मतत्त्वकी प्रतीतिरूप श्रद्धान क्या करे  
और यथार्थ आत्मतत्त्वकी अनुभूतिरूप ज्ञानभी संयम भावविना क्या करे क्योंकि  
यह जीव अनादि फालसे लेकर रागद्वेष मोहकी वासनासे परमें लगा हुआ है इस-  
कारण इस जीवकी अशुद्धचेतनारूप व्यभिचारिणी स्त्री परभावोंमें रमती है अपने  
आत्मीकरममें मग्न नहीं होती । परवासनासे रहित निष्कंप एक आत्मीक तत्त्वमें  
संयमभाव विना स्थिरता नहीं होती इसलिये संयम भावरहित श्रद्धानसे वा ज्ञानमें  
मोक्ष नहीं होती जय आगमज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयमभाव इन चीनोंकी एकता  
हो सभी मोक्षमार्ग होता है ऐसा वात्पर्यं मनज्ञाना ॥ ३७ ॥ आगे आगमज्ञान, तत्त्वार्थ-

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येप्यात्मज्ञानस्य मोक्षमार्गसाधकतमत्वं द्योतयति;—

जं अण्णाणी कम्मं खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं ।

तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेइ उस्सासमेत्तेण ॥ ३८ ॥

यदज्ञानी कर्म क्षपयति भवशतसहस्रकोटिभिः ।

तज्ज्ञानी त्रिभिर्गुप्तः क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण ॥ ३८ ॥

यदज्ञानी कर्म क्रमपरिपाठ्या बालतपोवैचित्र्योपक्रमेण च पच्यमानमुपात्तरागद्वेषतया सुखदुःखादिविकारभावपरिणतः पुनरारोपितसंतानं भवशतसहस्रकोटिभिः कथंचन निस्तरति, तदेव ज्ञानी स्यात्कारकेतनागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यातिशयप्रसादासादि-

भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गस्थापनमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । किंच वहिरात्मावस्थान्तरात्मावस्थापरमात्मावस्था मोक्षावस्थात्रयं तिष्ठति । अत्रस्थात्रयेऽनुगताकारद्रव्यं तिष्ठति । एवं परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायात्मको जीवपदार्थः । तत्र मोक्षकारणं चिन्त्यते । मिथ्यात्वरागादिरूपा वहिरात्मावस्था तावदशुद्धा मुक्तिकारणं न भवति । मोक्षावस्था शुद्धात्मफलभूता साक्षात्प्रे तिष्ठति । एताभ्यां द्वाभ्यां भिन्ना यान्तरात्मावस्था सा मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धा यथा सूक्ष्मनिगोतज्ञाने शेषावरणे सत्यपि क्षयोपशमज्ञानावरणं नास्ति तथात्रापि केवलज्ञानावरण सत्यप्येकदेशक्षयोपशमज्ञानापेक्षया नास्त्यावरणम् । यावतांशेन निरावरणरागादिरहितत्वेन शुद्धा च तावतांशेन मोक्षकारणं भवति तत्र शुद्धपारिणामिकभावरूपं परमात्मद्रव्यं ध्येयं भवति तच्च तस्मादन्तरात्मावस्थानावस्थाविशेषात्कथंचिद्विन्नम् । यदैकान्तेनाभिन्नं भवति तदा मोक्षेऽपि ध्यानं प्राप्नोति, अथवास्य ध्यानपर्यायस्य विनाशे सति तस्य पारिणामिकभावस्यापि विनाशः प्राप्नोति । एवं वहिरात्मान्तरात्मपरमात्मकथनरूपेण मोक्षमार्गो ज्ञातव्यः । अथ परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां मेलापकेऽपि यदभेदरत्नत्रयात्मकं निर्विकल्पसमाधिलक्षणमात्मज्ञानं निश्चयेन तदेव मुक्तिकारणमिति प्रतिपादयति;—जं अण्णाणी कम्मं खवेइ निर्विकल्पसमाधिरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकविशिष्टभेदज्ञानाभावादज्ञानी जीवो यत्कर्म क्षपयति । काभिः कर्मभूताभिः । भवसयसहस्सकोडीहिं भवशतसहस्रकोटिभिः तण्णाणी-तिहि गुत्तो तत्कर्म ज्ञानी जीवस्त्रिगुप्तिगुप्तः सन् खवेइ उस्सासमेत्तेण क्षपयत्युच्छ्वासमात्रे-

श्रद्धान और संयमभाव इस रत्नत्रयकी एकताके होनेपरभी आत्मज्ञानको मुख्यरूप मोक्षमार्गका साधक दिखलाते हैं;—[ अज्ञानी ] परमात्मज्ञानरहित पुरुष [ घत्-कर्म ] जो ज्ञानावरणादि अनेक कर्म [ भवशतसहस्रकोटीभिः ] सौ हजार कोड़ (अनेक) पर्यायोकर [ क्षपयति ] क्षय करता है [ त्रिभिर्गुप्तः ] मनवचनकायकी क्रियाओंके निरोधकर स्वरूपमें लीन [ ज्ञानी ] परमात्मभावका अनुभवी ज्ञाता [ तत् ] उन ज्ञानावरणादि असंख्यात लोकमात्र कर्मोंको [ उच्छ्वासमात्रेण ]

ज्ञेयाकारकरम्बितविशदकज्ञानाकारमात्मानं न तथा प्रत्येति तदा यथोदितात्मनः श्रद्धान-  
शून्यतया यथोदितमात्मानमनुभवन् कथं नाम ज्ञेयनिमग्नो ज्ञानविमूढोज्ञानी स्यात् । अज्ञा-  
निनश्च ज्ञेयद्योतको भवन्नप्यागमः किं कुर्यात् । ततः श्रद्धानशून्यादागमान्नास्ति सिद्धिः ।  
किंच—सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदकज्ञानाकारमात्मानं श्रद्धानोप्यनुभवन्नपि  
यदि स्वस्मिन्नेव संयम्य न वर्तयति तदानादिमोहरागद्वेषवासनोपजनितपरद्रव्यचङ्कमण-  
स्त्रैरिण्याश्चिद्वृत्तेः स्वस्मिन्नेव स्थानान्निर्वासननिःकम्पैकतत्त्वमूर्च्छितदृष्ट्यभावात्कथं नाम  
संयतः स्यात् । असंयतस्य च यथोदितात्मतत्त्वप्रतीतिरूपं श्रद्धानं यथोदितात्मतत्त्वानु-  
भूतिरूपं ज्ञानं वा किं कुर्यात् । ततः संयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धिः ।  
अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य भोक्षमार्गत्वं विघटेतैव ॥ ३७ ॥

नासंयतो वा न निर्वाति निर्वाणं न लभत इति । तथाहि—यथा प्रदीपसहितपुरुषस्य कूपपतनप्रस्तावे  
कूपपतनान्निवर्तनं मम हितमिति निश्चयरूपं श्रद्धानं यदि नास्ति तदा प्रदीपः किं करोति न  
किमपि । तथा जीवस्यापि परमागमाधारेण सकलपदार्थज्ञेयाकारकरावलम्बितविशदकज्ञानरूपं  
स्वात्मानं जानतोऽपि ममात्मैवोपादेय इति निश्चयरूपं यदि श्रद्धानं नास्ति तदास्य प्रदीपस्थानीय  
आगमः किं करोति न किमपि । यथा वा स एव प्रदीपसहितपुरुषः स्वकीयपौरुषबलेन कू-  
पपतनाद्यदि न निवर्त्तते तदा तस्य श्रद्धानं प्रदीपो दृष्टिर्वा किं करोति न किमपि । तथायं  
जीवः श्रद्धानज्ञानसहितोऽपि पौरुषस्थानीयचारित्र्यबलेन रागादिविकल्परूपादसंयमाद्यदि न नि-  
वर्त्तते तदा तस्य श्रद्धानं ज्ञानं वा किं कुर्यात् किमपीति । अतः एतदायाति परमागमज्ञान-  
तत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां मध्ये द्वयेनैकेन वा निर्वाणं नास्ति किन्तु त्रयेणेति ॥ ३७ ॥ एवं

करता है तौभी अज्ञानीको कुछ कार्यकारी नहीं होसकता क्योंकि अज्ञानी श्रद्धानसे  
रहित है इसलिये उसको आगमसे कुछ फलकी सिद्धि नहीं होती । यद्यपि सकल ज्ञेय  
पदार्थोंकर प्रतिबिंबित निर्मल ज्ञानाकार आत्माका कोई श्रद्धानभी करता है कोई जीव  
अनुभवभी करता है तौभी वही जीव अपनेमें जो संयम भावधर निश्चल होके नहीं प्रवर्त्ते  
तो उस संयमीके जैसा कुछ कहा है वैसाही आत्मतत्त्वकी प्रतीतिरूप श्रद्धान क्या करे  
और यथार्थ आत्मतत्त्वकी अनुभूतिरूप ज्ञानभी संयम भावविना क्या करे क्योंकि  
यह जीव अनादि कालसे लेकर रागद्वेष मोहकी वासनासे परमें लगा हुआ है इस-  
कारण इस जीवकी अशुद्धचेतनारूप व्यभिचारिणी स्त्री परभावोंमें रमती है अपने  
आर्त्मीकरसमें मग्न नहीं होती । परवासनासे रहित निष्कंप एक आर्त्मीक तत्त्वमें  
संयमभाव विना स्थिरता नहीं होती इसलिये संयम भावरहित श्रद्धानसे वा ज्ञानमें  
मोह नहीं होती जब आगमज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयमभाव इन तीनोंकी एकता  
हो तभी मोक्षमार्ग होता है ऐसा तात्पर्य ममज्ञाना ॥ ३७ ॥ आगे आगमज्ञान, तत्त्वार्थ-

परमाणुप्रमाणं वा मूर्च्छा देहादिकेषु यस्य पुनः ।

विद्यते यदि स सिद्धिं न लभते सर्वागमधरोपि ॥ ३९ ॥

यदि करतलामलकीकृतसकलागमसारतया भूतभवद्भावि च खोचितपर्यायविशिष्टम-  
शेषद्रव्यजातं जानन्तमात्मानं जानन् श्रद्धावानः संयमयंश्चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयत-  
त्वानां यौगपद्येपि मनाञ्चोहमलोपलिसत्वात् यदा शरीरादिमूर्च्छापरक्ततया निरुपरागोपयो-  
गपरिणतं कृत्वा ज्ञानात्मानमात्मानं नानुभवति तदा तावन्मात्रमोहमलकलङ्ककीलिकाकी-  
लितैः कर्मभिरत्रिमुच्यमानो न सिद्ध्यति । अत आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-  
संयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥ ३९ ॥

संयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिंचित्करमित्युपदिशति;—परमाणुप्रमाणं वा मुच्छा देहादिषु  
जस्त पुणो विज्जदि जदि परमाणुमात्रं वा मूर्च्छा देहादिषु विषयेषु यस्य पुरुषस्य पुनर्वि-  
द्यते यदि चेत्? सो सिद्धिं ण लहदि स सिद्धिं मुक्तिं न लभते । कथंभूतः । सच्चागम-  
धरोपि सर्वागमधरोपीति । अयमत्रार्थः—सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्ये सति  
यस्य देहादिविषये स्तोत्रममत्वं विद्यते तस्य पूर्वसूत्रोक्तं निर्विकल्पसमाधिदक्षणं निश्चयरत्न-

आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इनकी एकताभी अकार्यकारी है ऐसा कहते  
हैं;—[ यस्य ] जिस पुरुषके [ पुनः ] फिर [ परमाणुप्रमाणं वा ] परमाणु-  
वरावरभी अतिसूक्ष्म [ देहादिकेषु ] शरीरादि परद्रव्योंमें [ मूर्च्छा ] मग्नताभाव  
[ यदि ] जो [ विद्यते ] मौजूद है तो [ सः ] वह पुरुष उतनेही मोह कलंककर  
[ सर्वागमधरोपि ] द्वादशांगका पाठी होता हुआभी [ सिद्धिं ] मोक्षको [ न ]  
नहीं [ लभते ] पाता ॥ भावार्थ—जैसे हाथमें निर्मल स्फटिकका मणिका अंतर  
वाहिरसे अच्छा दीखता है उसीतरह जिन पुरुषोंने समस्त आगमका रहस्य जान लिया  
है और उसी आगमके अनुसार त्रिकाल संबंधी सकल पर्यायसहित संपूर्ण द्रव्योंके  
जाननेवाले आत्माको वे जानते हैं श्रद्धान करते हैं और आचरण करते हैं। इसीतरह जिस  
पुरुषके आगमज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान संयम इन रत्नत्रयकी एकताभी हुई है परंतु वही  
पुरुष जो किसी कालमें शरीरादि परद्रव्योंमें रागभावमलकर मलीन हुआ ज्ञानस्वरूप  
आत्माको वीतराग उपयोग भावरूप नहीं अनुभव करता है तो वही पुरुष उतनेही  
सूक्ष्म मोहकलंककर कीलित कर्मोंसे नहीं छूटता मुक्त नहीं होता । इससे यह बात  
सिद्ध हुई कि वीतराग निर्विकल्प समाधिकर आत्मज्ञानसे शून्य पुरुषके आगमज्ञान  
तत्त्वार्थश्रद्धान-संयमभावोंकी एकताभी कार्यकारी नहीं है जो आत्मज्ञानसहित हो तभी  
मोक्षका साधक होसके इसकारण आत्मज्ञान मोक्षका मुख्य साधन है ॥ ३९ ॥ आगे



तशुद्धज्ञानंमयात्मकत्वानुभूतिलक्षणज्ञानित्वसद्भावात्कायवाङ्मनःकर्मापरमप्रवृत्तत्रिगुप्तत्वात्  
प्रचण्डोपक्रमपच्यमानमपहंस्तितरागद्वेषतया दूरनिरस्तसमस्तसुखदुःखादिविकारः पुनरना-  
रोपितसन्तानमुच्छ्वासमात्रेणैव लीलयैव पातयति । अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वे  
यौगपद्येप्यात्मज्ञानमेव मोक्षमार्गसाधकतममनुमन्तव्यं ॥ ३८ ॥

अथात्मज्ञानशून्यस्य सर्वांगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिंचित्करमि-  
त्यनुशास्ति;—

परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिष्वेषु जस्त पुणो ।

विज्जदि जदि सो सिद्धि ण लहदि सच्चागमधरोवि ॥ ३९ ॥

पेति । तद्यथा—वर्हिर्विषये परमाणुभ्यासबलेन यत्सम्पक्परिज्ञानं तथैव श्रद्धानं व्रताद्यनुष्ठानं  
चेति त्रयं तत्रयाधारेणोत्पन्नं सिद्धजीवविषये सम्पक्परिज्ञानं श्रद्धानं तद्गुणस्मरणानुकूलमनुष्ठानं  
चेति त्रयं तत्रयाधारेणोत्पन्नं विशदाखण्डैकज्ञानाकारे स्वशुद्धात्मनि परिच्छित्तिरूपं सविकल्पज्ञानं  
स्वशुद्धात्मोपादेयभूतरुचिविकल्परूपं सम्पददर्शनम् तत्रैवात्मनि रागादिविकल्पनिवृत्तिरूपं सवि-  
कल्पचारित्रमिति त्रयम् । तत्रयप्रसादेनोत्पन्नं यन्निर्विकल्पसमाधिरूपं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं विशि-  
ष्टस्वसंवेदनज्ञानं तदभावादज्ञानी जीवो बहुभयकोटिभिर्व्यक्तकर्म क्षपयति तत्कर्म ज्ञानी जीवः  
पूर्वोक्तज्ञानगुणसद्भावात् त्रिगुप्तिगुप्तः सन्मुच्छ्वासमात्रेण लीलयैव क्षपयतीति । ततो ज्ञायते पर-  
माणुमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां सद्भावेऽप्यभेदरत्नत्रयरूपस्य स्वसंवेदन-  
ज्ञानस्यैव प्रधानत्वमिति ॥ ३८ ॥ अथ पूर्वसूत्रोक्तात्मज्ञानरहितस्य सर्वांगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-

एकं उव्वासमात्र (थोडे) कालमेंही [ क्षपयति ] क्षय कर देता है ॥ भावार्थ—अ-  
ज्ञानी जीव क्रियाकांडकी परिपाटीकर अनेक प्रकार अज्ञानतपके बलसे जो कर्म क्षय  
करता है उसी कर्मके उदयसे रागद्वेष भावोंकर सुखदुःखादि विकारभावोंरूप परिण-  
मता है पश्चात् नवीन बंधकर संतान बढाता है इसकारण अनेक सौ हजार कोटि  
पर्यायोंमेंभी कर्मोंका क्षय नहीं करता मुक्त नहीं होता, अज्ञानीके कर्मकी निर्जरा बंध-  
का ही कारण है । और ज्ञानी जो है वह स्याद्वाद ध्वजाकर चिन्हित आगमका जानना,  
तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयमभाव इन तीन रत्नत्रयभावोंकी अधिकताके प्रसादसे अंगी-  
कार कीगई शुद्ध ज्ञानमयी आत्मतत्त्वकी अनुभूति उसरूप ज्ञानके होनेसे मनबचन  
फायकी क्रियाके निरोधसे स्वरूपमें गुप्त है इसकारण वह ज्ञानी अपनी ज्ञान वैराग्यकी  
शक्तिके बलसे एक क्षणमें बिनाही यत्नके अपनी लीलाही कर असंख्यात लोकमात्र  
कर्मोंको क्षय करहालता है, कर्मके उदयमें रागद्वेष मोहभावोंसे रहित है इसलिये इष्ट  
अनिष्ट पदार्थोंके संयोगसे सुखदुःख विकारको नहीं धारण करता इसीकारण नूतन बंध-  
का कर्ता नहीं है संसारकी संतानका उच्छेदक है सद्दजही मुक्त होता है । इससे यह  
तात्पर्य जानना कि आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इनकी एकताके होनेपरभी  
आत्मज्ञानहीको मोक्षके सापनेकी णपिकता है ॥ ३८ ॥ आगे आत्मज्ञानरूप्य पुरुषके

परमाणुप्रमाणं वा मूर्च्छा देहादिकेषु यस्य पुनः ।

विद्यते यदि स सिद्धिं न लभते सर्वागमधरोपि ॥ ३९ ॥

यदि करतलामलकीकृतसकलागमसारतया भूतभवद्भावि च खोचितपर्यायविशिष्टम-  
शेषद्रव्यजातं जानन्तमात्मानं जानन् श्रद्धानः संयमयंश्चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयत-  
त्वानां यौगपद्येपि मनाद्बोहमलोपलितत्वात् यदा शरीरादिमूर्च्छोपरक्ततया निरुपरागोपयो-  
गपरिणतं कृत्वा ज्ञानात्मानमात्मानं नानुभवति तदा तावन्मात्रमोहमलकलङ्ककीलिकाकी-  
लितैः कर्मभिरविमुच्यमानो न सिद्ध्यति । अत आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-  
संयतत्वयौगपद्यमप्यकिञ्चित्करमेव ॥ ३९ ॥

संयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिञ्चित्करमित्युपदिशति;—परमाणुप्रमाणं वा मुच्छा देहादिषु  
जस्य पुणो विज्जदि जदि परमाणुमात्रं वा मूर्च्छा देहादिषु विषयेषु यस्य पुरुषस्य पुनर्वि-  
द्यते यदि चेत्? सो सिद्धिं ण लहदि स सिद्धिं मुक्तिं न लभते । कथंभूतः । सव्यागम-  
धरोवि सर्वागमधरोपीति । अयमत्रार्थः—सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्ये सति  
यस्य देहादिविषये स्तोत्रममत्वं विद्यते तस्य पूर्वसूत्रोक्तं निर्विकल्पसमाधिदक्षिणं निश्चयरत्न-

आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इनकी एकताभी अकार्यकारी है ऐसा कहते  
हैं;—[ यस्य ] जिस पुरुषके [ पुनः ] फिर [ परमाणुप्रमाणं वा ] परमाणु-  
वरावरभी अतिसूक्ष्म [ देहादिकेषु ] शरीरादि परद्रव्योंमें [ मूर्च्छा ] ममताभाव  
[ यदि ] जो [ विद्यते ] मौजूद है तो [ सः ] वह पुरुष उतनेही मोह कलंककर  
[ सर्वागमधरोपि ] द्वादशांगका पाठी होता हुआभी [ सिद्धिं ] मोक्षको [ न ]  
नहीं [ लभते ] पाता ॥ भावार्थ—जैसे हाथमें निर्मल स्फटिकका मणिका अंतर  
वाहिरसे अच्छा दीखता है उसीतरह जिन पुरुषोंने समस्त आगमका रहस्य जान लिया  
है और उसी आगमके अनुसार त्रिकाल संबंधी सकल पर्यायसहित संपूर्ण द्रव्योंके  
जाननेवाले आत्माको वे जानते हैं श्रद्धान करते हैं और आचरण करते हैं। इसीतरह जिस  
पुरुषके आगमज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान संयम इन रत्नत्रयकी एकताभी हुई है परंतु वही  
पुरुष जो किसी कालमें शरीरादि परद्रव्योंमें रागभावमलकर मलीन हुआ ज्ञानस्वरूप  
आत्माको वीतराग उपयोग भावरूप नहीं अनुभव करता है तो वही पुरुष उतनेही  
सूक्ष्म मोहकलंककर कीलित कर्मोंसे नहीं छूटता मुक्त नहीं होता । इससे यह बात  
सिद्ध हुई कि वीतराग निर्विकल्प समाधिकर आत्मज्ञानसे शून्य पुरुषके आगमज्ञान  
तत्त्वार्थश्रद्धान-संयमभावोंकी एकताभी कार्यकारी नहीं है जो आत्मज्ञानसहित हो तभी  
मोक्षका साधक होसकै इसकारण आत्मज्ञान मोक्षका मुख्य साधन है ॥ ३९ ॥ आगे

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं साधयति;—

पञ्चसमिदो तिगुत्तो पंचेदियसंबुडो जिदकसाओ ।

दंसणणाणसमग्गो समणो सो संजदो भणिदो ॥ ४० ॥

पञ्चसमितस्त्रिगुप्तः पञ्चेन्द्रियसंबृतो जितकपायः ।

दर्शनज्ञानसमग्रः श्रमणः स संयतो भणितः ॥ ४० ॥

यः खल्वनेकान्तकेतनागमज्ञानबलेन सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकार-  
मात्मानं श्रद्धधानोऽनुभवंश्चात्मन्येव नित्यनिश्चलां वृत्तिमिच्छन् समितिपञ्चकाङ्क्षितप्रवृ-  
त्तिप्रवर्तितसंयमसाधनीकृतशरीरपात्रः क्रमेण निश्चलनिरुद्धपञ्चेन्द्रियद्वारतया समुपरतका-  
यवाङ्मनोव्यापारो भूत्वा चिद्भूतेः परद्रव्यचङ्गमणनिमित्तमत्यन्तमात्मना सममन्योन्यसं-

त्रयात्मकं स्वसंवेदनज्ञानं नास्तीति ॥ ३९ ॥ अथ द्रव्यभावसंयमस्वरूपं कथयति;—

चागो य अणारंभो विसयविरागो खओ कसायाणं ।

सो संजमोत्ति भणिदो पव्वज्जाए विसेसेण ॥ १ ॥

चागो य निजशुद्धात्मपरिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहनिवृत्तिसत्यागः अणारंभो निःकि-  
यनिजशुद्धात्मद्रव्ये स्थित्वा मनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिरनारम्भः विसयविरागो निर्विषय-  
स्वात्मभावनोत्थसुखे तृप्तिं कृत्वा पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषत्यागो विषयविरागः । खओ कसायाणं  
निःकपायशुद्धात्मभावनाबलेन क्रोधादिकपायत्यागः कपायक्षयः । सो संजमोत्ति भणिदो  
स एवं गुणविशिष्टः संयम इति भणितः । पव्वज्जाए विसेसेण सामान्येनापि तावदिदं  
संयमलक्षणं प्रव्रज्यायां तपश्चरणावस्थायां विशेषेणेति । अत्राभ्यन्तरशुद्धा संवित्तिर्भावसंयमो  
बहिरङ्गनिवृत्तिश्च द्रव्यसंयम इति ॥ १ ॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां त्रयाणां यत्स-  
विकल्पं यौगपद्यं तथा निर्विकल्प्यात्मज्ञानं चेति द्वयोः सम्भवं दर्शयति;—पञ्चसमिदो व्यव-  
हारेण पञ्चसमितिभिः समितः संबृतः पञ्चसमितः निश्चयेन तु स्वस्वरूपे सम्पगितो गतः

जिसके आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभावकी एकता है, आत्मज्ञानकी एकता है  
उस पुरुषका स्वरूप कहते हैं;—[ स श्रमणः ] वह महामुनि [ संयतः ] संयमी  
[ भणितः ] भगवंतदेवने कहा है जो कि [ पञ्चसमितः ] ईर्यादि पांच समिति-  
योंको पालता है [ त्रिगुप्तः ] तीन योगोंके निरोधसे तीन गुप्तिवाला है [ पञ्चेन्द्रि-  
यसंबृतः ] पांच इन्द्रियोंको रोकनेवाला [ जितकपायः ] कपायोंको जीतनेवाला  
और [ दर्शनज्ञानसमग्रः ] दर्शन ज्ञानसे परिपूर्ण है ॥ भावार्थ—जो पुरुष स्वा-  
द्धारूप आगमसे सकल श्रेयाकारकर प्रतिर्विषित निर्मल ज्ञानस्वरूप आत्माको जानता है  
भद्धान करता है, अनुभवता है, अपनेमें निश्चल वृत्तिको चाहता है, जिसने पांच समितिके  
आपरणसे स्वेच्छाचार वृत्तिको रोककर अपना शरीर संयमका माधन किया है, क्रमसे  
निश्चल होके पंचेन्द्रियका निरोध किया है, जिसके मनवचनकायकर कपाय दूर हुए

वलनादेकीभूतमपि स्वभावभेदपरत्वेन निश्चित्यात्मनैव कुशलो मल्ल इव सुनिर्भरं निष्पीड्य निष्पीड्य कपायचक्रमक्रमेण जीवं त्याजयति, स खलु सकलपरद्रव्यशून्योपि विशुद्धदृशि-  
ज्ञसिमात्रस्वभावभूतावस्थापितात्मतत्त्वोपजातनित्यनिश्चलवृत्तितया साक्षात्संयत एव स्यात् ।  
तस्यैव चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं सिद्ध्यति ॥ ४० ॥

अथास्य सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतस्य कीदृग्ल-  
क्षणमित्यनुशास्ति;—

समसत्तुबंधुवर्गो समसुहृदुक्खोपसंसणिंदसमो ।

समलोड्ढुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥ ४१ ॥

समशत्रुवन्धुवर्गः समसुखदुःखः प्रशंसानिदासमः ।

समलोष्ठकाञ्चनः पुनर्जीवितमरणे समः श्रमणः ॥ ४१ ॥

संयमः सम्यग्दर्शनज्ञानपुरःसरं चारित्रं, चारित्रं धर्मः, धर्मः साम्यं साम्यं मोहक्षोभविहीनः

परिणतः समितः तिगुत्तो व्यवहारेण मनोवचनकायनिरोधत्रयेण गुप्तः त्रिगुप्तः निश्चयेन  
स्वरूपे गुप्तः परिणतः पंचेंद्रियसंउडो व्यवहारेण पञ्चेन्द्रियविषयव्यावृत्त्या संवृत्तः पञ्चेन्द्रिय-  
संवृत्तः निश्चयेन वातीन्द्रियसुखस्वादरतः जियकसाओ व्यवहारेण क्रोधादिकपायजयेन जित-  
कपायः निश्चयेन चाकपायात्मभावनारतः दंसणणाणसमग्गो अत्र दर्शनशब्देन निजशु-  
द्धात्मश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं ग्राह्यम् । ज्ञानशब्देन तु स्वसंवेदनज्ञानमिति ताभ्यां समग्रो  
दर्शनज्ञानसमग्रः समणो सो संजदो भणिदो स एवं गुणविशिष्टः श्रमणः संयत इति  
भणितः । अत एतदायातं व्यवहारेण यद्बहिर्विषये व्याख्यातं कृतं तेन सविकल्पं सम्यग्दर्श-  
नज्ञानचारित्रत्रयं यौगपद्यं ग्राह्यम् । अभ्यन्तरव्याख्यानेन तु निर्विकल्पात्मज्ञानं ग्राह्यमिति  
सविकल्पयौगपद्यं निर्विकल्पात्मज्ञानं च घटत इति ॥ ४० ॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्व-  
लक्षणेनविकल्पत्रययौगपद्येन तथा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च युक्तो योऽसौ संयतस्तस्यैकं लक्ष-

हैं जिन कपायोंसे यह चैतन्यवृत्ति परद्रव्यमें गमन करती है और जो कपाय आत्माके  
साथ परस्पर मिलनेसे एकताको धारण करते हैं उन कपायशत्रुओंको निश्चयकर अपनेसे  
जुदे जान उनको एकही वार अपने ज्ञानकी अधिकतासे चूर २ करडाला है जैसे प्रवीण  
मल्ल अपने शत्रुमल्लको मसल्लि २ कर प्राणरहित करदेता है उसीतरह विनाश किया है  
ऐसा वह महामुनि सुभट सब परद्रव्यसे रहित हुआ ज्ञानदर्शन चारित्रकी स्थिरतासे  
साक्षात् संयमी है और उसी मुनिके आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमकी एकता है तथा  
आत्मज्ञानकी एकता है ॥ ४० ॥ आगे आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभावका एकत्व  
और आत्मज्ञानका एकत्व जिस मुनीको सिद्ध हुआ है वह जिन लक्षणोंसे मालूम होता  
है उनको दिखाते हैं—[ श्रमणः ] समताभावमें लीन महामुनि है वह [ समश-  
त्रुवन्धुवर्गः ] शत्रु कुटुंबके लोक इनमें समानभाववाला है [ समसुहृदुःखः ]

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं साधयति;—

पंचसमिदो तिगुत्तो पंचेदियसंवुडो जिदकसाओ ।

दंसणणाणसमग्गो समणो सो संजदो भणिदो ॥ ४० ॥

पञ्चसमितस्त्रिगुप्तः पञ्चेन्द्रियसंवृतो जितकपायः ।

दर्शनज्ञानसमग्रः श्रमणः स संयतो भणितः ॥ ४० ॥

यः खल्वेनेकान्तकेतनागमज्ञानचलेन सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकार-  
मात्मानं श्रद्धानोऽनुभवंश्चात्मन्येव नित्यनिश्चलां वृत्तिमिच्छन् समितिपञ्चकाङ्क्षितप्रवृ-  
त्तिप्रवर्तितसंयमसाधनीकृतशरीरपात्रः क्रमेण निश्चलनिरुद्धपञ्चेन्द्रियद्वारतया समुपरतका-  
यवाञ्छनोव्यापारो भूत्वा चिद्धृत्तेः परद्रव्यचङ्कमणनिमित्तमत्यन्तमात्मना समन्योन्यसं-

त्रयात्मकं स्वसंवेदनज्ञानं नास्तीति ॥ ३९ ॥ अथ द्रव्यभावसंयमस्वरूपं कथयति;—

चागो य अणारंभो विसयविरागो खओ कसायाणं ।

सो संजमोत्ति भणिदो पव्वज्जाए विसेसेण ॥ १ ॥

चागो य निजशुद्धात्मपरिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहनिवृत्तित्स्यागः अणारंभो निःक्रि-  
यनिजशुद्धात्मद्रव्ये स्थित्वा मनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिरनारम्भः विसयविरागो निर्विषय-  
स्वात्मभावनोत्यसुखे तृप्ति कृत्वा पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषत्यागो विषयविरागः । खओ कसायाणं  
निःकपायशुद्धात्मभावनावलेन क्रोधादिकपायत्यागः कपायक्षयः । सो संजमोत्ति भणिदो  
स एवं गुणविशिष्टः संयम इति भणितः । पव्वज्जाए विसेसेण सामान्येनापि तावदिदं  
संयमलक्षणं प्रव्यायां तपश्चरणावस्थायां विशेषेणेति । अत्राभ्यन्तरशुद्धा संवित्तिर्भावसंयमो  
वहिरङ्गनिवृत्तिश्च द्रव्यसंयम इति ॥ १ ॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां त्रयाणां यत्स-  
विकल्पं यौगपद्यं तथा निर्विकल्पात्मज्ञानं चेति द्वयोः सम्भवं दर्शयति;—पंचसमिदो व्यव-  
हारेण पञ्चसमितिभिः समितः संवृतः पञ्चसमितः निश्चयेन तु स्वस्वरूपे सम्पगतो गतः

जिसके आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभावकी एकता है, आत्मज्ञानकी एकता है  
उस पुरुषका स्वरूप कहते हैं;—[ स श्रमणः ] वह महामुनि [ संयतः ] संयमी  
[ भणितः ] भगवंतदेवने कहा है जो कि [ पञ्चसमितः ] ईर्ष्यादि पांच समिति-  
योंको पालता है [ त्रिगुप्तः ] तीन योगोंके निरोधसे तीन गुप्तिवाला है [ पञ्चेन्द्रि-  
यसंवृतः ] पांच इन्द्रियोंको रोकनेवाला [ जितकपायः ] कपायोंको जीतनेवाला  
और [ दर्शनज्ञानसमग्रः ] दर्शन ज्ञानसे परिपूर्ण है ॥ भावार्थ—जो पुरुष स्वा-  
द्धारूप आगमसे सकल ज्ञेयाकारकर प्रतिविकृत निर्मल ज्ञानस्वरूप आत्माको जानता है  
ध्यान करता है, अनुभवता है, अपनेमें निश्चल वृत्तिको चाहता है, जिसने पांच समितिके  
आचरणसे स्वेच्छाचार वृत्तिको रोककर अपना शरीर संयमका साधन किया है, क्रमसे  
निश्चल होके पंचेन्द्रियका निरोध किया है, जिसके मनवचनकायकर कपाय दूर हुए

अथेदमेव सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतत्वमे-  
काग्र्यलक्षणश्रामण्यापरनाम मोक्षमार्गत्वेन समर्थयति;—

दंसणणाणचरित्तोसु तीसु जुगवं समुट्टिदो जो दु ।

एयग्गदोत्ति मदो सामणं तस्स परिपुणं ॥ ४२ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रेषु त्रिषु युगपत्समुत्थितो यस्तु ।

एकाग्रगत इति मतः श्रामण्यं तस्य परिपूर्णम् ॥ ४२ ॥

ज्ञेयज्ञानतृत्त्वं तथाप्रतीतिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण ज्ञेयज्ञानतृत्त्वतथानुभूतिलक्षणेन  
ज्ञानपर्यायेण ज्ञेयज्ञानतृप्तियान्तरनिवृत्तिसूत्र्यमाणद्रष्टृज्ञानतृत्त्ववृत्तिलक्षणेन चारित्रपर्यायेण  
च त्रिभिरपि यौगपद्येन भाव्यभावकभावविवृम्भितातिनिर्भरेतेतरसंवलनचलादङ्गाङ्गिभावेन

॥ ४१ ॥ अथ यदेवसंयततपोधनस्य साम्यलक्षणं भणितं तदेव श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गो  
भण्यत इति प्ररूपयति;—दंसणणाणचरित्तोसु तीसु जुगवं समुट्टिदो जो दु  
दर्शनज्ञानचारित्रेषु त्रिषु युगपत्सम्यगुपस्थित उच्यते यस्तु कर्ता एयग्गदोत्ति मदो  
स एकाग्रगत इति मतः सम्मतः सामणं तस्स पडिपुणं श्रामण्यं चारित्रं  
यतित्वं तस्य परिपूर्णमिति । तथाहि—भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मम्यः शेषपुद्गलादिपञ्चद्रव्येभ्योऽपि  
भिन्नं सहजशुद्धनित्यानन्दैकत्वभावं ममसम्बन्धि यदात्मद्रव्यं तदेव ममोपादेयमितिरुचिरूपं  
'सम्यग्दर्शनम्' तत्रैव परिच्छित्तिरूपं सम्यग्ज्ञानं तस्मिन्नेव स्वरूपे निश्चलानुभूतिलक्षणं चारित्रं

आगे पूर्णं सिद्ध हुई जो यह आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभावकी एकता और आ-  
त्मज्ञानकी एकता यही एकाग्रतारूप मोक्षमार्ग है इसीका दूसरानाम मुनिपदवी है यह  
कहते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ दर्शनज्ञानचारित्रेषु ] सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान स-  
म्यक्चारित्र [ त्रिषु ] इन तीन भावोंमें [ युगपत् ] एक ही समय [समुत्थितः]  
अच्छीतरह उच्यते हुआ प्रवर्ततां है वह [ एकाग्रगतः ] एकाग्रताको प्राप्त है [ इति  
मतः ] ऐसा कहा है [ तु ] और [ तस्य ] उसी पुरुषके [ श्रामण्यं ] यतिपद  
[ परिपूर्णं ] पूर्ण हुआ जानना ॥ भावार्थ—ज्ञेयज्ञायकतत्त्वकी यथावत्प्रतीतिका होना  
सम्यग्दर्शन है, ज्ञेयज्ञायकका यथार्थ जानलेना सम्यग्ज्ञान है और अन्यक्रियासे निवृत्त  
होके दर्शनस्वरूप आत्मामें प्रवृत्ति 'चारित्र' कहा जाता है । इन तीनोंही भावोंका आत्मा  
भावक है ये भाव्य हैं इन भाव्यभावोंके वढनेसे अति परिपूर्ण परस्पर मिलाप है आत्मा  
अंगी है ये तीनों भाव अंग हैं अंगअंगीकी एकता है । इसप्रकार एकभावको परिणत  
हुए आत्माके स्वरूपमें लीन होनेरूप जो संयमभाव है वह यद्यपि सम्यग्दर्शनज्ञानचा-  
रित्रके भेदकर अनेक है तथापि एकस्वरूपही है । जैसे आम तथा इमली आदिका घना-  
याहुआ 'पना' मिष्ट खट्टा घरपरा मुगंधद्रव्यआदिके भेदसे अनेक है तथापि सबको  
मिलकर एक पर्याय धारण करता है इससे एक है उसीप्रकार वह संयम यद्यपि रत्नत्र-

आत्मपरिणामः । ततः संयतस्य साम्यं लक्षणं । तत्र शत्रुबन्धुवर्गयोः सुखदुःखयोः प्रश-  
सान्दिन्दयोः लोष्टकाञ्चनयोर्जीवितमरणयोश्च समं । अयं मम परोऽयं स्वः, अयमा-  
ह्लादोऽयं परितापः, इदं ममोत्कर्षणमिदमपकर्षणमयं ममाकिञ्चित्कर इदमुपकारकमिदं ममा-  
त्मधारणमयमत्यन्तविनाश इति मोहाभावात् सर्वत्राप्यनुदितरागद्वेषद्वैतस्य सततमपि विशु-  
द्धदृष्टिज्ञप्तिस्वभावमात्मानमनुभवतः शत्रुबन्धुसुखदुःखप्रशंसान्दिन्दालोष्टकाञ्चनजीवितमर-  
णानि निर्विशेषमेव ज्ञेयत्वेनाक्रम्य ज्ञानात्मन्यात्मन्यचलितवृत्तेर्यत्किल सर्वतः साम्यं  
तत्सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यस्य संयतस्य लक्षणमालक्ष-  
णीयम् ॥ ४१ ॥

गमित्युपदिशति । इत्युपदिशति कोऽर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति । एवं प्रश्नोत्तरपात-  
निकाप्रस्तावे कापि कापि यथासंभवमिति शब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः—स श्रमणः संयतस्तपोधनो  
भवति । यः किं विशिष्टः । शत्रुबन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्टकाञ्चनजीवितमरणेषु समः  
समचित्तः इति । ततः एतदायाति । शत्रुबन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्टकाञ्चनजीवितमरण-  
समताभावनापरिणतनिजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्ननिर्वि-  
कारपरमाह्लादैकलक्षणसुखाभूतपरिणतित्स्वरूपं यत्परमसाम्यं तदेवपरमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-  
संयतत्वानां यौगपद्येन तदा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च परिणततपोधनस्य लक्षणं ज्ञातव्यमिति

सुख और दुःख जिसके समान हैं [ प्रशंसानिन्दासमः ] बड़ाई और दोषकथन  
इन दोनोंमें समान है [ समलोष्टकाञ्चनः ] लोहा और सोना जिसके समान हैं  
और [ जीवितमरणे समः ] प्राणधारण और प्राणत्याग इन दोनोंमें भी समान है ॥  
भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानयुक्त जो चारित्र्य है उसको संयम कहते हैं वही धर्म  
है और उसीका नाम साम्यभाव भी है । मोहक्षोभसे रहित जो आत्माका परिणाम वह  
साम्यभाव है इससे संयमीका लक्षण साम्यभाव है । शत्रुमित्र सुखदुःख स्तुतिनिन्दा सोना  
लोहा जीवनमरण इत्यादि इष्ट अनिष्ट विषयोंमें मुनिके भेद नहीं है समताभाव है । यह  
मेरा है यह पर है यह आनंद है यह दुःख है यह मुझको उत्तम है यह मुझको हीन है  
यह उपकारी है यह छुछ नहीं यह जीवन है यह मेरा विनाश है इत्यादि जो अनेक  
विकल्प हैं वे मोहके अभावसे मुनिके नहीं होते इसलिये महासुनि रागद्वेषसे रहित है  
सदाकाल निर्मलज्ञानदर्शनमयी आत्माको अनुभवते हैं, सब इष्ट अनिष्ट विषयोंको ज्ञेय-  
रूप जानते हैं रागी होके कर्ता नहीं हैं स्वरूपमें समस्त संकल्पविकल्पोंसे रहित होके  
निश्चल तिष्ठे हुए हैं ऐसे मुनिके जो समताभाव है यही महासुनिका लक्षण है इसी ल-  
क्षणसे मुनिके आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इनकी एकता और आत्मज्ञानकी  
पक्वता सिद्ध हुई जानपड़ती है इसलिये समभाव मुनिका प्रगट लक्षण है ॥ ४१ ॥

मुह्यति वा रज्यति वा द्वेष्टि वा द्रव्यमन्यदासाद्य ।

यदि श्रमणोऽज्ञानी वध्यते कर्मभिर्विविधैः ॥ ४३ ॥

यो हि न खलु ज्ञानात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति सोऽवश्यं ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति । तदासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानाद्भ्रष्टः स्वयमज्ञानीभूतो मुह्यति वा रज्यति वा द्वेष्टि वा तथाभूतश्च वध्यत एव न तु विमुच्यते । अत अनैकाग्र्यस्य न मोक्षमार्गत्वं सिद्ध्येत् ॥ ४३ ॥

अथैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वमवधारयन्नुपसंहरति;—

अन्त्येसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुपयादि ।

समणो जदि सो णियदं खवेदि कम्माणि विविधाणि ॥ ४४ ॥

अर्थेषु यो न मुह्यति न हि रज्यति नैव दोषमुपयाति ।

श्रमणो यदि स नियतं क्षपयति कर्माणि विविधानि ॥ ४४ ॥

यस्तु ज्ञात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति स न ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति । तदनासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानाद्भ्रष्टः स्वयमेव ज्ञानीभूतस्तिष्ठन्न मुह्यति न रज्यति न द्वेष्टि

मोक्षाभावं दर्शयति;—मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्यमण्णमासेज्ज जदि मुह्यति वा रज्यति वा द्वेष्टि वा यदि चेत् ? । किं कृत्वा । द्रव्यमन्यदासाद्य प्राप्य । स कः । समणो श्रमणस्तपोधनः । तदा काले अण्णाणी अज्ञानी भवति । अज्ञानी सन् चग्गदि कम्मेहि विविहेहिं वध्यते कर्मभिर्विविधैरिति । तथाहि—यो निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेनैकाग्रो भूत्वा स्वात्मानं न जानाति तस्य चित्तं वहिर्निर्गम्येषु गच्छति । ततश्चिदानन्दैकनिजस्वभावाद्भ्युतो भवति । ततश्च रागद्वेषमोहैः परिणमति तत्परिणमन् बहुविधकर्मणा वध्यत इति । ततः कारणान्मोक्षार्थिभिरेकाप्रत्वेन स्वस्वरूपं भावनीयमित्यर्थः ॥ ४३ ॥ अथ निजशुद्धात्मनि योऽसावेकाग्रस्तस्यैव मोक्षो भवतीत्युपदिशति;—अट्टेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि

द्रव्यं ] आत्मासे मित्त परद्रव्यको [ आसाद्य ] अंगीकार कर [ मुह्यति वा ] मोहको प्राप्त होता है [ रज्यति वा ] अथवा रागी होता है [ वा द्वेष्टि ] अथवा द्वेषी होता है तो वह अज्ञानी मुनि [ विविधैः ] अनेकतरहके [ कर्मभिः ] ज्ञानाचरणदिकर्मोंसे [ वध्यते ] बंध जाता है ॥ भावार्थ—जो कोई ज्ञानस्वरूप आत्माको एकाम होकर नहीं चिंतता है वह अवश्य ही परद्रव्यको स्वीकार करता है और परद्रव्यमें लगाहुआ ज्ञानस्वरूप आत्मासे भ्रष्ट होता है । अज्ञानी हुआ रागी द्वेषी मोही होता है ऐसा होनेपर कर्मोंसे बंधता है मुक्त नहीं होता । इसलिये जो एकामताकर रहित है उसके मोक्षमार्गकी सिद्धि नहीं है ॥ ४३ ॥ आगे जो एकामताको प्राप्त है उसीके मोक्षमार्ग है ऐसा कहकर व्याख्यानको संकोच करते हैं;—[यः ] जो ज्ञानस्वरूप आत्माका जाननेवाला [ श्रमणः ] मुनि [ यदि ] यदि [ अर्थेषु ] परस्वरूपपदार्थोंमें [ न मुह्यति ] मोही नहीं होता [ न हि रज्यति ] निश्चयकर रागी नहीं



परिणतस्यात्मनो यदात्मनिष्ठत्वे सति संयतत्वं तत्पानकवदनेकात्मकस्यैकस्यानुभूयमानता-  
यामपि समस्तपरद्रव्यपरावर्तत्वादभिव्यक्तैकाग्र्यलक्षणश्रामण्यापरनामा मोक्षमार्ग एवाव-  
गन्तव्यः । तस्य तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन  
व्यवहारनयेनैकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वाद्द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन विश्वस्यापि भेदा-  
भेदात्मकत्वात्तदुभयमिति प्रमाणेन प्रज्ञप्तिः । “इत्येवं प्रतिपत्तुराशयवशादेकोप्यनेकीभवंक्षै-  
लक्षण्यमथैकतामुपगतो मार्गोपवर्गस्य यः । दृष्टज्ञातृनिवद्धवृत्तिमचलं लोकस्तमास्कन्दता-  
दास्कन्दत्यचिराद्विकाशमतुलं येनोल्लसन्त्याश्रितेः ॥ ४२ ॥

अथानैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति;—

मुञ्ज्झदि वा रज्ज्जदि वा दुस्सदि वा द्धवमण्णमासेज्ज ।

जदि समणो अण्णणी वज्ज्झदि कम्महिं विविहेहिं ॥ ४३ ॥

चेत्युक्तस्वरूपं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं पानकवदनेकमप्यभेदनयेनैकं यत् तत्सविकल्पावस्थायां  
व्यवहारेणैकाग्र्यं भण्यते । निर्विकल्पसमाधिकाले तु निश्चयेनेति तदेव च नामान्तरेण परम-  
साम्यमिति तदेव परमसाम्यं पर्यायनामान्तरेण शुद्धोपयोगलक्षणः श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गो  
ज्ञातव्य इति । तस्य तु मोक्षमार्गस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वा-  
त्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन निर्णयो भवति । एकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधा-  
नेन निश्चयनयेन निर्णयो भवति । समस्तवस्तुसमूहस्यापि भेदाभेदात्मकत्वान्निश्चयव्यवहारमोक्ष-  
मार्गद्वयस्यापि प्रमाणेन निश्चयो भवतीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ एवं निश्चयव्यवहारसंयमप्रतिपादन-  
मुद्द्यत्वेन तृतीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथ यः स्वशुद्धात्मन्येकाग्रो न भवति तस्य

यकर भेद लिये हुए है तौभी तीनों भावोंका एक संयमरूप पर्याय है इसलिये एकरूप  
है एकरूप संयमभाव सब परद्रव्यसे रहित है प्रगट एकाग्रतारूप मुनिपद है और यही  
मोक्षमार्ग जानना । उस मोक्षमार्गको जो दर्शनज्ञान चारित्र ऐसे भेदकर कहना है यह  
भेदस्वरूप-पर्यायकी विवक्षाकर व्यवहारनयसे है और एकाग्रतारूप मोक्षमार्ग ऐसा जो  
कथन है वह अभेदस्वरूप द्रव्यार्थककी विवक्षाकर निश्चयनयसे जानना । जितने कुछ  
पदार्थ संसारमें हैं वे सब भेद अभेदस्वरूप हैं । इसलिये भेदकर कहना वह व्यवहार है  
और अभेदकर कहना वह निश्चय है इन दोनोंकी सिद्धि प्रमाणसे होती है । यह मोक्ष-  
मार्ग निश्चयकर एक है व्यवहारकर अनेक होजाता है ज्ञान दर्शन चारित्र इन तीन  
भेदोंको लिए हुए यद्यपि अनेक है तौभी एकाग्रताकर एक है । ऐसा एक अनेकस्वरूप  
यह मोक्षमार्ग ज्ञातापुरुषोंके विचारसे सिद्ध हुआ है । ऐसे मोक्षमार्गको हे जगन्मूके  
भव्यजीयो ! तुम अंगीकार करो जिससे कि यह चिदानन्द अपने अनंत प्रकाशको प्राप्त  
होये ॥ ४२ ॥ आगे जिसके एकाग्रता नहीं है उसके मोक्षमार्ग भी नहीं यह कहते  
हैं;—[ यदि ] जो [ अज्ञानी ] आत्मज्ञानसे रहित [ श्रमणः ] मुनि [ अन्यत्

तत्सुविशुद्धशिञ्जित्स्वभावात्मतत्त्ववृत्तिरूपां शुद्धोपयोगभूमिकामधिरोहं न क्षमन्ते । ते तदुपकण्ठनिविष्टाः कपायकुण्ठीकृतशक्तयो नितान्तमुत्कण्ठुलमनसः श्रमणाः किं भवेयुर्न वेत्यत्राभिधीयते । “धम्मेण परिणदप्पा” इति स्वयमेव निरूपितत्वादस्ति तावच्छुभोपयोगस्य धर्मेण सहैकार्थसमवायः । ततः शुभोपयोगिनोपि धर्मसद्भावाद्भवेयुः श्रमणाः किन्तु तेषां शुद्धोपयोगिभिः समं समकाष्ठत्वं न भवेत्, यतः शुद्धोपयोगिनो निरस्तसमस्त-

पसंहारमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथ शुभोपयोगिनां शास्त्रवच्चाह्वयवहारेण श्रमणत्वं व्यवस्थापयति;—संति विद्यन्ते । कः समयमिह समये परमागमे । के सन्ति । समणा श्रमणास्तपोधनाः । किंविशिष्टाः । सुद्धुवज्जुत्ता शुद्धोपयोगयुक्ता शुद्धोपयोगिन इत्यर्थः सुहोपज्जुत्ता य न केवलं शुद्धोपयोगयुक्ताः शुभोपयोगयुक्ताश्च । चकारोत्र अन्वयार्थे गौणार्थे ग्राह्यः । तत्र दृशन्तः । यथा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावाः सिद्धजीवा एव जीवा भण्यन्ते व्यवहारेण चतुर्गतिपरिणता अशुद्धजीवाश्च जीवा इति तथा शुद्धपयोगिनां मुख्यत्वं शुभोपयोगिनां तु चकारसमुच्चयव्याख्यानेन गौणत्वम् । कस्माद्रौणत्वजातमिति चेत् ? तेषुवि सुद्धुपज्जुत्ता अणासवा सासवा सेसा तेष्वपि मध्ये शुद्धोपयोगयुक्ता अनासवाः शेषाः सासवा इति यतः कारणात् । तद्यथा—निजशुद्धात्मभावनावलेन समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितत्वाच्छुद्धोपयोगिनो निरासवा एव शेषा-

आगे शुभोपयोगका कथन करते हुए पहले शुभोपयोगीको मुनिपदवीसे जघन्य दिखलाते हैं;—[ समये ] परमागममें [ श्रमणाः ] मुनि [ शुद्धोपयुक्ताः ] शुद्धोपयोगी [ च ] और [ शुभोपयुक्ताः ] शुभोपयोगी इसतरह दोप्रकारके [ भवन्ति ] होते हैं [ तेषु अपि ] उन दोतरहके मुनियोंमें भी [ शुद्धोपयुक्ताः ] शुद्धोपयोगी महामुनि [ अनासवाः ] कर्मके आस्रवसे रहित हैं [ शेषाः ] बाकी जो शुभोपयोगी मुनि हैं वे [ सासवाः ] आस्रवभावसहित हैं ॥ भावार्थ—जो जीव यतिपरिणतिकी प्रतिज्ञा करके भी कपायके अंशके उदयसे सब परद्रव्योंसे निवृत्त होकेभी निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभावकर आत्मतत्त्वकी प्रवृत्तिरूप शुद्धोपयोग भूमिकाके ऊपर चढ़नेको असमर्थ हैं शुद्धोपयोगी महामुनिके समीपवर्ती हैं और जिनकी कपायके उदयसे शक्ति क्षीण होरही है जिनका मन चंचल है ऐसे शुभोपयोगी मुनि मुनि होसकते हैं कि नहीं? ऐसा क्षिप्यका प्रश्न है उसका उत्तर यह है कि “धम्मेण परिणदप्पा” इत्यादि गाथामें हम समाधान कर आये हैं । शुभोपयोगका धर्मके साथ एकार्थसमवाय है । एकार्थसमवाय उसे कहते हैं कि जहां आत्मामें ज्ञानदर्शनपरिणति है और रागपरिणति भी है इसतरह एक आत्मापदार्थमें दोनोंका समवाय है इसकारण शुभोपयोगीके भी धर्मका अस्तित्व है इसीलिये शुभोपयोगीभी परमागममें मुनि कहे हैं परंतु इतना विशेष है कि, शुभोपयोगी शुद्धोपयोगीकी दशाकी समानता नहीं है-क्योंकि शुद्धोपयोगी समस्तकपायोंसे रहित है निरास्रव है और शुभोपयोगी कपायअंशसे रहित नहीं है इसके कपायका अंश जीवित

तथाभूतः सन् मुच्यत एव न तु वध्यते । अत एकाग्र्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं सिद्धेत् ॥४४॥  
इति मोक्षमार्गप्रज्ञापनम् । अथ शुभोपयोगप्रज्ञापनम् ।

तत्र शुभोपयोगिनः श्रमणत्वेनान्वाचिनोति;—

समणा सुदुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य ह्येति समयम्मि ।

तेसुचि सुदुवउत्ता अणासवा सासवा सेसा ॥ ४५ ॥

श्रमणाः शुद्धोपयुक्ताः शुभोपयुक्ताश्च भवन्ति समये ।

तेष्वपि शुद्धोपयुक्ता अनासवाः सासवाः शेषाः ॥ ४५ ॥

ये खलु श्रामण्यपरिणतिं प्रतिज्ञायामि जीवितकपायकणतया समस्तपरद्रव्यनिवृत्तिप्रवृ-

णोव दोसमुवयादि अर्थेषु बहिःपदार्थेषु यो न मुह्यति न रज्यति हि स्फुटं नैव द्वेषमुपयाति  
जदि यदि चेत् सो समणो स श्रमणः णियदं निश्चितं खवेदि विविहाणि कम्माणि  
क्षपयति कर्माणि विविधानि इति । अथ विशेषः—योऽसौ दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपपाचप-  
ध्यानत्यागेन निजस्वरूपं भावयति तस्य चित्तं बहिःपदार्थेषु न गच्छति ततश्च बहिःपदार्थे  
चिन्ताभावान्निर्विकारचिच्चमत्कारमात्राद्भ्युतो न भवति । तदच्यवनेन च रागाद्यभावाद्विधक-  
र्माणि विनाशयतीति । ततो मोक्षार्थना निश्चलचित्तेन निजात्मनि भावना कर्त्तव्येति । इत्थं  
वीतरागचारित्रव्याख्यानं श्रुत्वा केचन वदन्ति—सयोगिकेवल्लिनामप्येकदेशेन चारित्रं, परिपूर्ण-  
चारित्रं पुनरयोगिचरमसमये भविष्यति तेन कारणेनेदानीमस्माकं सम्यक्त्वभावनया भेदज्ञान-  
भावनया च पूर्यते चारित्रं पश्चाद्भविष्यतीति नैवं वक्तव्यम् । अभेदनयेन ध्यानमेव चारित्रं  
तच्च ध्यानं केवल्लिनामुपचारेणोक्तं चारित्रमप्युपचारेणेति । यत्पुनः समस्तरागादिविकल्पजाल-  
रहितं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकं वीतरागद्वन्द्वस्यचारित्रं तदेव कार्यकारीति ।  
कस्मादिति चेत्? तेनैव केवलज्ञानं जातस्तस्माच्चारित्रे तात्पर्यं कर्त्तव्यमिति भावार्थः । किंच  
उत्सर्गव्याख्यानकालेऽपि श्रामण्यं व्याख्यातमत्र पुनरपि किमर्थमिति परिहारमाह—तत्र सर्व-  
परित्यागलक्षण उत्सर्ग एव मुख्यत्वेन च मोक्षमार्गः अत्र तु श्रामण्यं व्याख्यानमस्ति परं किन्तु  
श्रामण्यं मोक्षमार्गो भवतीति मुख्यत्वेन विशेषोऽस्ति ॥ ४४ ॥ एवं श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गो-

होता और [ द्वेषं ] द्वेषभावको भी [ नैव उपयाति ] नहीं प्राप्त होता [ सः ]

यह मुनि [ नियतं ] निश्चित एकाग्रताकर सहित हुआ [ विविधानि ] अनेकप्रकार-  
के [ कर्माणि ] ज्ञानावरणादि कर्मोंको [ क्षपयति ] क्षय करता है ॥ भावार्थः—  
जो पुरुष ज्ञानस्वरूप आत्माको एकाग्रताकर चितवन करता है यह क्षेत्ररूप परद्रव्यको  
अंगीकार नहीं करता परको त्यागकर ज्ञानस्वरूप आत्मामें लीन होजाता है यहां आ-  
पही ज्ञानी हुआ मोही रागी द्वेषी नहीं होता ऐसी वीतराग अवस्थाकर मुक्त होता  
है । कर्मोंसे नहीं बंधता । इसलिये जो मुनि एकामभावको प्राप्त है उसको ही मोक्षमा-  
र्गकी निदिष्टि है संदेह नहीं है ॥ ४४ ॥ इसप्रकार मोक्षमार्गाधिकार संपूर्ण हुआ ।

तत्सुविशुद्धशिक्षितस्वभावात्मतत्त्ववृत्तिरूपां शुद्धोपयोगभूमिकामधिरोहं न क्षमन्ते । ते तदुपकण्ठनिविष्टाः कपायकुण्ठीकृतशक्तयो नितान्तमुत्कण्ठुलमनसः श्रमणाः किं भवेयुर्न वेत्यत्राभिधीयते । “धम्मेण परिणदप्पा” इति स्वयमेव निरूपितत्वादस्ति तावच्छुभोपयोगस्य धर्मेण सहैकार्थसमवायः । ततः शुभोपयोगिनोपि धर्मसद्भावाद्भवेयुः श्रमणाः किन्तु तेषां शुद्धोपयोगिभिः समं समकाष्ठत्वं न भवेत्, यतः शुद्धोपयोगिनो निरस्तसमस्त-

पसंहारमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथ शुभोपयोगिनां शास्त्रवत्त्वाद्ब्रह्मवहारेण श्रमणत्वं व्यवस्थापयति;—संति विद्यन्ते । कः समयमिह समये परमागमे । के सन्ति । समणा श्रमणास्तपोधनाः । किंविशिष्टाः । सुदुवजुत्ता शुद्धोपयोगयुक्ता शुद्धोपयोगिन इत्यर्थः सुहोप-जुत्ता य न केवलं शुद्धोपयोगयुक्ताः शुभोपयोगयुक्ताश्च । चकारोत्र अन्वयार्थे गौणार्थे ग्राह्यः । तत्र दृष्टान्तः । यथा निश्चयेन शुद्धयुद्धैकस्वभावाः सिद्धजीवा एव जीवा भण्यन्ते व्यवहारेण चतुर्गतिपरिणता अशुद्धजीवाश्च जीवा इति तथा शुद्धोपयोगिनां मुख्यत्वं शुभोपयोगिनां तु चकारसमुच्चयव्याख्यानेन गौणत्वम् । कस्माद्गौणत्वजातमितितेत् ? तेषुवि सुदुपजुत्ता अणासवा सासवा सेसा तेष्वपि मध्ये शुद्धोपयोगयुक्ता अनासवाः शेषाः सासवा इति यतः कारणात् । तद्यथा—निज-शुद्धात्मभावनावलेन समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्पपरहितत्वाच्छुद्धोपयोगिनो निरासवा एव शेषा-

आगे शुभोपयोगका कथन करते हुए पहले शुभोपयोगीको मुनिपदवीसे जघन्य दिखलाते हैं;—[ समये ] परमागममें [ श्रमणाः ] मुनि [ शुद्धोपयुक्ताः ] शुद्धोपयोगी [ च ] और [ शुभोपयुक्ताः ] शुभोपयोगी इसतरह दोप्रकारके [ भवन्ति ] होते हैं [ तेषु अपि ] उन दोतरहके मुनियोंमें भी [ शुद्धोपयुक्ताः ] शुद्धोपयोगी महामुनि [ अनासवाः ] कर्मके आस्रवसे रहित हैं [ शेषाः ] बाकी जो शुभोपयोगी मुनि हैं वे [ सासवाः ] आस्रवभावसहित हैं ॥ भावार्थ—जो जीव यति-परिणतिकी प्रतिज्ञा करके भी कपायके अंशके उदयसे सब परद्रव्योंसे निवृत्त होकेभी निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभावकर आत्मतत्त्वकी प्रवृत्तिरूप शुद्धोपयोग भूमिकाके ऊपर चढ़नेको असमर्थ हैं शुद्धोपयोगी महामुनिके समीपवर्ती हैं और जिनकी कपायके उदयसे शक्ति क्षीण होरही है जिनका मन चंचल है ऐसे शुभोपयोगी मुनि मुनि होसकते हैं कि नहीं? ऐसा शिष्यका प्रश्न है उसका उत्तर यह है कि “धम्मेण परिणदप्पा” इत्यादि गायामें हम समाधान कर आये हैं । शुभोपयोगका धर्मके साथ एकार्थसमवाय है । एकार्थसमवाय उसे कहते हैं कि जहां आत्मामें ज्ञानदर्शनपरिणति है और रागपरिणति भी है इसतरह एक आत्मापदार्थमें दोनोंका समवाय है इसकारण शुभोपयोगीके भी धर्मका अस्तित्व है इसीलिये शुभोपयोगीभी परमागममें मुनि कहे हैं परंतु इतना विशेष है कि, शुभोपयोगी शुद्धोपयोगीकी दशाकी समानता नहीं है-क्योंकि शुद्धोपयोगी समस्तकपायोंसे रहित है निरास्रव है और शुभोपयोगी कपायअंशसे रहित नहीं है इसके कपायका अंश जीवित

कपायत्वाद्नास्त्वा एव । इमे पुनरनवकीर्णकपायकणत्वात्सास्त्वा एव । अतएव च शुद्धो-  
पयोगिभिः समममी न समुचीयन्ते केवलमन्वाचीयन्त एव ॥ ४५ ॥

अथ शुभोपयोगिश्रमणलक्षणमासूत्रयतिः—

अरहंतादिसु भक्ती वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु ।

विज्जदि जदि सामण्णे सा सुहजुत्ता भवे चरिया ॥ ४६ ॥

अर्हदादिषु भक्तिर्वत्सलता प्रवचनाभियुक्तेषु ।

विद्यते यदि सामान्ये सा शुभयुक्ता भवेचर्या ॥ ४६ ॥

सकलसंगसंन्यासात्मनि श्रामण्ये सत्यपि कपायलवावेशवशात् स्वयं शुद्धात्मवृत्तिमा-  
त्रेणावस्थातुमशक्तस्य परेषु शुद्धात्मवृत्तिमात्रेणावस्थितेष्वर्हदादिषु शुद्धात्मवृत्तिमात्रावस्थि-  
तिप्रतिपादकेषु प्रवचनाभियुक्तेषु च भक्त्या वत्सलतया च प्रचलितस्य तावन्मात्ररागप्रव-

शुभोपयोगिनो मिथ्यात्वविषयकपायरूपाशुभास्त्रनिरोधेऽपि पुग्यास्त्रवसहिता इति भावः ॥४५॥  
अथ शुभोपयोगिश्रमणानां लक्षणमाख्यातिः—सा सुहजुत्ता ह्ये चारिया सा चर्या शुभ-  
युक्ता भवेत् । कस्य । तपोधनस्य । कथंभूतस्य । समस्तरागादिविकल्परहितपरमसमाधौ स्थातु-  
मशक्यस्य । यदि किम् ? विज्जदि जदि विद्यते यदि चेत् । क ? सामण्णे श्रामण्ये चारित्रे ।  
किं विद्यते ? अरहंतादिसु भक्ती अनन्तगुणयुक्तेष्वर्हत्सिद्धेषु गुणानुरागयुक्ता भक्तिः वच्छलदा  
वत्सलस्य भावो वत्सलता वात्सल्यं विनयोऽनुकूलवृत्तिः । केषु विषयेषु ? पवयणाहिजुत्तेसु  
प्रवचनाभियुक्तेषु । प्रवचनशब्देनात्रागमो भण्यते संवो वा तेन प्रवचनेनाभियुक्ताः प्रवचनाभि-  
युक्ता आचार्योपाध्यायसाधवस्तेष्विति । एतदुक्तं भवति—स्वयं शुद्धोपयोगलक्षणे परमसामयिके  
स्थातुमसमर्थस्यान्येषु शुद्धोपयोगफलभूतकेवलज्ञानेन परिणतेषु तथैव शुद्धोपयोगाराधकेषु च

है सास्त्रव है । इसलिये शुद्धोपयोगीके वरावर नहीं है जघन्य है ॥ ४५ ॥ आगे शुभो-  
पयोगी मुनिका लक्षण कहते हैं;—[ यदि ] जो [ श्रामण्ये ] मुनि अवस्थामें  
[ अर्हदादिषु भक्तिः ] अरहंतादि पंचपरमेष्ठियोंमें अनुराग और [ प्रवचनाभि-  
युक्तेषु ] परमागमकर युक्त शुद्धात्मस्वरूपके उपदेशक महामुनियोंमें [ वत्सलता ]  
प्रीति अर्थात् जिसतरह गौ अपने बछरेमें अनुरागिणी होती है उसीतरह [ विद्यते ]  
प्रवर्ते तो [ सा ] वह [ शुभयुक्ता ] शुभरागकर संयुक्त [ चर्या ] आचारकी  
प्रवृत्ति [ भवेत् ] होती है ॥ भावार्थ—जो मुनि समस्त परिप्रदके त्याग  
करनेसे मुनि अवस्थाकीभी प्राप्त है परंतु कपाय अंशके उदय वशासे आप शुद्धात्मामें  
स्थिर होनेको अशक्त है तो वह मुनि, जो शुद्धात्मस्वरूपके उपदेशा हैं उनमें भक्तिसे  
प्रीतिकर प्रवर्तता है उस मुनिके इतनीही रागप्रवृत्तिकर परद्रव्यमें प्रवृत्ति होती है  
और वह शुद्धात्मतत्त्वकी स्थिरतासे पलित होना है । ऐसे मुनिके शुभोपयोगरूप पारि-  
प्रभाव जानना । ये ही पंच परमेष्ठियोंमें भक्ति सेवा प्रीति शुभोपयोगी मुनीश्वरका

र्तितपरद्रव्यप्रवृत्तिसंवलितशुद्धात्मवृत्तेः शुभोपयोगि चारित्रं स्यात् । अतः शुभोपयोगिश्र-  
मणानां शुद्धात्मानुरागयोगि चारित्रत्वलक्षणम् ॥ ४६ ॥

अथ शुभोपयोगिश्रमणानां प्रवृत्तिमुपदर्शयति;—

वंदणमंसणेहिं अबुद्धाणानुगमणपडिवत्ती ।

समणेसु समावणओ ण णिंदिया रायचरियम्मि ॥ ४७ ॥

वन्दननमस्करणाभ्यामभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिः ।

श्रमणेषु श्रमापनयो न निन्दिता रागचर्यायाम् ॥ ४७ ॥

शुभोपयोगिनां हि शुद्धात्मानुरागयोगिचारित्रतया समाधिगतशुद्धात्मवृत्तिषु श्रमणेषु  
वन्दननमस्करणाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता श्रमापनयनप्र-  
वृत्तिश्च न द्रुष्येत् ॥ ४७ ॥

अथ शुभोपयोगिनामेवैवंविधाः प्रवृत्तयो भवन्तीति प्रतिपादयति;—

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं ।

चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य ॥ ४८ ॥

याऽसौ भक्तिस्तच्छुभोपयोगिश्रवणानां लक्षणमिति ॥ ४६ ॥ अथ शुभोपयोगिनां शुभप्रवृत्ति  
दर्शयति;—ण णिंदिदा नैव निषिद्धा । क? रायचरियम्मि शुभरागचर्यायां सरागचा-  
रित्रावस्थायाम् । का न निन्दिता? वंदणमंसणेहिं अबुद्धाणानुगमणपडिवत्ती  
वन्दननमस्काराभ्यां सहाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः । समणेसु समावणओ श्रमणेषु  
श्रमापनयः रत्नत्रयभावनाभिघातकश्रमस्य खेदस्य विनाश इति । अनेन किमुक्तं भवति—शुद्धो-  
पयोगसावके शुभोपयोगे स्थितानां तपोधनानां इत्थंभूताः शुभोपयोगप्रवृत्तयो रत्नत्रयाराधक-  
स्वरूपेषु विषये युक्ता एव विहिता एवेति ॥ ४७ ॥ अथ शुभोपयोगिनामेवैत्थंभूताः प्र-

लक्षण प्रगट है ॥ ४६ ॥ आगे शुभोपयोगी मुनीश्वरकी प्रवृत्ति दिखलाते हैं;—[ राग-  
चर्यायां ] सरागचारित्र अवस्थामें जो शुभोपयोगी मुनि हैं उनको [ श्रमणेषु ] शुद्ध-  
स्वरूपमें थिर ऐसे महामुनियोंमें [ श्रमापनयः ] अतिष्ठ वस्तुके संयोगसे हुआ जो  
खेद उसका दूर करना और [ वन्दननमस्काराभ्यां ] गुणानुवादरूप स्तुति और  
नमस्कारसहित [ अभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिः ] आते हुए देखके उठकर खड़ा  
हो जाना पीछे २ चलना ऐसी प्रवृत्तिकी सिद्धि [ न निन्दिता ] निषेधरूप नहीं की-  
गई है ॥ भावार्थ—शुभोपयोगी मुनि जो महामुनीश्वरोंकी स्तुति करे नमस्कार करे  
उनको देखकर उठके खड़ा हो और पीछे २ चले इत्यादि विनयपूर्वक प्रवर्तें तो योग्य  
है निषेध नहीं है और जो महामुनिके स्थिरताके घातक कभी उपसर्गादिसे खेद हुआ  
हो तो उसके दूर करनेको वैयावृत्ति क्रियाभी निषेधरूप नहीं है शुद्धात्मभावकी  
थिरताके लिये योग्य है खेदके नाश होनेपर मुनिके समाधि होती है इसलिये योग्य है  
॥ ४७ ॥ आगे शुभोपयोगियोंके ही ऐसी प्रवृत्तियां होती हैं यह कहते हैं;—[ हि ]

दर्शनज्ञानोपदेशः शिष्यग्रहणं च पोषणं तेषाम् ।

चर्या हि सरागाणां जिनेन्द्रपूजोपदेशश्च ॥ ४८ ॥

अनुजिघृक्षापूर्वकदर्शनज्ञानोपदेशप्रवृत्तिः शिष्यसंग्रहणप्रवृत्तिस्तत्पोषणप्रवृत्तिर्जिनेन्द्रपू-  
जोपदेशप्रवृत्तिश्च शुभोपयोगिनामेव भवन्ति न शुद्धोपयोगिनाम् ॥ ४८ ॥

अथ सर्वा एव प्रवृत्तयः शुभोपयोगिनामेव भवन्तीत्यवधारयति;—

उवकुणदि जोवि णिच्चं चाहुव्वण्णस्स समणसंघस्स ।

कायविराधणरहिदं सोवि सरागप्पधाणो से ॥ ४९ ॥

उपकरोति योपि नित्यं चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य ।

• कायविराधनरहितं सोपि सरागप्रधानः स्यात् ॥ ४९ ॥

वृत्तयो भवन्ति न च शुद्धोपयोगिनामिति प्ररूपयति;—दंसणणाणुवदेसो दर्शनं मूढत्रया-  
दिरहितं सम्यक्त्वं ज्ञानं परमागमोपदेशः तयोरुपदेशो दर्शनज्ञानोपदेशः सिस्सग्गहणं च पो-  
सणं तेसिं रत्तत्रयाराधनाशिक्षाशीलानां शिष्याणां ग्रहणं स्वीकारस्तेषामेव पोषणमशनशयनादि-  
चिन्ता चरिया हि सरागाणं इत्थंभूता चर्या चारित्रं भवति हि स्फुटं । केषां । सरागाणां  
धर्मानुरागचारित्रसहितानाम् । न केवलमित्यंभूता जिणिंदपूजोवदेसो य यथासम्भवं जिने-  
न्द्रपूजादिधर्मोपदेशश्चेति । ननु शुभोपयोगिनामपि कापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते शुद्धो-  
पयोगिनामपि कापि काले शुभोपयोगभावना दृश्यते । श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्ध-  
भावना दृश्यते तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति । परिहारमाह—युक्तमुक्तं भवता परं किन्तु  
ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते । यद्यपि कापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभो-  
पयोगिन एव भण्यन्ते । येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि कापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्ते तथापि  
शुद्धोपयोगिन एव । कस्मात् ? बहुपदस्य प्रधानत्वादात्मननिम्ब्रवनवदिति ॥ ४८ ॥ अथ  
काश्चिदपि या प्रवृत्तयस्ताः शुभोपयोगिनामेवेति नियमति;—उवकुणदि जो वि णिच्चं

निश्चयकर [ सरागाणां ] शुभोपयोगी मुनियोंकी [ चर्या ] यह क्रिया है जो कि,  
[ दर्शनज्ञानोपदेशः ] सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानका उपदेश देना [ शिष्यग्रहणं ]  
शिष्यशाखाओंका संग्रह करना [ च तेषां पोषणं ] और उन शिष्योंका समाधान  
करना [ च ] और [ जिनेन्द्रपूजोपदेशः ] भगवान् वीतरागकी पूजाका उपदेश  
देना इत्यादि ॥ भावार्थ—पूर्व कहीं जो क्रिया वे शुभोपयोगी मुनिके होती हैं शुद्धो-  
पयोगीयोंके नहीं होतीं क्योंकि शुद्धोपयोगी वीतराग हैं और शुभोपयोगी सराग हैं इस-  
लिये इनके धर्मानुरागसे ऐसी इच्छा होती है कि जीव धर्मको ग्रहण करे तो बहुत अच्छा  
है ऐसा जानकर ज्ञानदर्शनका उपदेश देते हैं शिष्योंको रखते हैं पोषने हैं भगवानकी  
भक्तिका उपदेश करते हैं ऐसी शुभोपयोगी मुनिकी क्रिया है ॥४८॥ आगे समस्त ही धैया-  
वृत्त्यादिक क्रिया शुभोपयोगियोंके भी नहीं होती यह कहने हैं;—[ यः अपि ] जो मुनि

प्रतिज्ञातसंयमत्वात् पट्कायविराधनरहिता या काचनापि शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्योपकारकरणप्रवृत्तिः सा सर्वापि रागप्रधानत्वात् शुभोपयोगिनामेव भवति न कदाचिदपि शुद्धोपयोगिनाम् ॥ ४९ ॥

अथ प्रवृत्तेः संयमविरोधित्वं प्रतिपेधयति;—

जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो ।

ण ह्वदि ह्वदि अगारी धम्मो सो सावयाणं से ॥ ५० ॥

यदि करोति कायखेदं वैयावृत्त्यर्थमुद्यतः श्रमणः ।

न भवति भवत्यगारी धर्मः स श्रावकाणां स्यात् ॥ ५० ॥

यो हि परेषां शुद्धात्मवृत्तित्राणाभिप्रायेण वैयावृत्त्यप्रवृत्त्या स्वस्य संयमं विराधयति स

चाडव्वणणस्स समणसंघस्स उपकरोति योऽपि नित्यं कस्य चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य । अत्र श्रमणशब्देन श्रमणशब्दवाच्या ऋषिमुनियत्यनगारा ग्राह्याः । “देशप्रत्यक्षवित्केवलमृदि हमुनिः स्यादपिः प्रसूतर्द्धिरारूढः श्रोणिगुग्मेऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुवर्गः । राजा ब्रह्मा च देवपरम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्तिप्राप्तो बुद्ध्यौपधीशो वियदयनपटुर्विश्वेदी क्रमेण ॥ १ ॥” ऋषय ऋद्धिप्राप्तास्ते चतुर्विधा राजब्रह्मदेवपरमऋषिभेदात् । तत्र राजर्षयो विक्रियाक्षीणर्द्धिप्राप्ता भवन्ति । ब्रह्मर्षयो बुद्ध्यौपधर्द्धियुक्ता भवन्ति । देवर्षयो गगनगमनर्द्धिसम्पन्ना भवन्ति परमर्षयः केवलिनः केवलज्ञानिनो भवन्ति मुनयः अवधिमनःपर्ययकेवलिनश्च । यतय उपशमकक्षपकश्रेण्यारूढाः । अनगाराः सामान्यसाधवः । कस्मात् ? सर्वेषां सुखदुःखादिविषये समतापरिणामोऽस्तीति । अथवा श्रमणधर्मानुकूलश्रावकादिचातुर्वर्णसंघः । कथं यथा भवति । कायविराहणरहिदं स्वत्वभावनास्वरूपं स्वकीयशुद्धचैतन्यलक्षणं निश्चयप्राणं रक्षन् परकीयपट्कायविराधनारहितं यथा भवति सो वि सरागप्पधाणो से सोऽपीत्थंभूतस्तपोधनो धर्मानुरागचारित्रसहितेषु मध्ये प्रधानः श्रेष्ठः स्यादित्यर्थः ॥ ४९ ॥ अथ वैयावृत्त्यकालेऽपि स्वकीयसंय-

निश्चयसे [ नित्यं ] सदाकाल [ चातुर्वर्ण्यस्य ] चार प्रकारके [ श्रमणसंघस्य ] सुनीश्वरोंके संघका [ कायविराधनरहितं ] पट्कायजीवोंकी विराधनारहित [ उपकरोति ] यथायोग्य वैयावृत्त्यादिक कर उपकार करता है [ सोपि ] वह भी चतुर्विध संघका उपकारी मुनि [ सरागप्रधानः ] सरागधर्म है प्रधान जिसके ऐसा शुभोपयोगी [ स्यात् ] होता है ॥ भावार्थ—जो चारतरहके संघका उपकारी होता है वह एक शुद्धात्माके आचरणकी रक्षाके लिये होता है । चतुर्विधसंघ शुद्धात्माका आचरण करता है इससे उसकी रक्षाकेलिये वह ऐसा उपकार करता है जिसमें कि पट्कायकी विराधना ( हिंसा ) न होवे क्योंकि यह मुनि भी संयमी है इसलिये अपना संयम भी रखता है उपकार करता है इसकारण यह संयमी शुभोपयोगी है, शुद्धोपयोगियोंके ऐसी क्रिया नहीं होती ॥ ४९ ॥ आगे ऐसी वैयावृत्त्यादिकक्रिया नहीं करे जो कि अपने संय-



गृहस्थधर्मानुप्रवेशात् श्रामण्यात् प्रच्यवते । अतो या काचन प्रवृत्तिः सा सर्वथा संयमावि-  
रोधेनैव विधातव्या । प्रवृत्तावपि संयमस्यैव साध्यत्वात् ॥ ५० ॥

अथ प्रवृत्तेर्विषयविभागे दर्शयति;—

जोण्हणं गिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं ।

अणुकंपयोवयारं कुब्बदु लेवो यदिवियप्पं ॥ ५१ ॥

जैनानां निरपेक्षं साकारानाकारचर्यायुक्तानाम् ।

अनुकम्पयोपकारं करोतु लेपो यद्यप्यल्पः ॥ ५१ ॥

या किलानुकम्पापूर्विका परोपकारलक्षणा प्रवृत्तिः साखल्वनेकान्तमैत्रीपवित्रितचित्तेषु

मविराधनाकर्त्तव्येत्युपदिशति;—जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चथमुज्जदो यदि चेत  
करोति कायखेदं पट्कायविराधनां । कथंभूतः सन् । वैयावृत्त्यर्थमुद्यतः समणो ण हवदि  
तदा श्रमणस्तपोधनो न भवति । तर्हि किं भवति ? हवदि अगारी अगारी गृहस्थो भवति ।  
कस्मात् । धम्मो सो सावयाणं से पट्कायविराधनां क्त्वा, योऽसौ धर्मः स श्रावकाणां स्यात्  
न च तपोधनानामिति । इदमत्र तात्पर्यम्—योऽसौ स्वशरीरपोषणार्थं शिष्यादिमोहेन वा सावयं  
नेच्छति तस्येदं व्याख्यानं शोभते यदि पुनरन्यत्र सावयमिच्छति वैयावृत्त्यादिस्वकीयावस्थापोष्ये  
धर्मकार्ये नेच्छति तदा तस्य सम्पत्त्वमेव नास्तीति ॥ ५० ॥ अथ यद्यप्यल्पलेपो भवति परोप-  
कारे तथापि शुभोपयोगिभिर्धर्मोपकारः कर्त्तव्य इत्युपदिशति;—कुब्बदु करोतु । स कः  
कर्त्ता । शुभोपयोगी पुरुषः । कं करोतु । अणुकंपओवयारं अनुकम्पासहितोपकारं दयास-

मकी विरोधिनी होवे यह कहते हैं;—[ वैयावृत्त्यर्थं उद्यतः ] अन्य मुनीश्वरोंकी  
सेवाकेलिये उद्यमवान् हुआ जो शुभोपयोगी मुनि वह [ यदि ] जो [ कायखेदं ]  
पट्कायकी विराधनारूप हिंसाको [ करोति ] करता है तो वह [ श्रमणः ] अपने  
संयमका धारक मुनि [ न भवति ] नहीं होता किं तु [ अगारी भवति ] गृहस्थ  
होता है क्योंकि [ सः ] वह जीवकी विराधनायुक्त वैयावृत्त्यादिक्रिया [ श्रावकाणां ]  
ग्रहवासी श्रावकोंका [ धर्मः ] धर्म [ स्यात् ] है ॥ भावार्थ—जो कोई सरागचा-  
रित्री मुनि अन्य मुनीश्वरोंकी शुद्धात्माचरणकी रक्षाकेलिये वैयावृत्त्य क्रियाकर अपनेमें  
विराधना करता है वह गृहस्थधर्मको करता है मुनिपदसे गिरता है क्योंकि हिंसास-  
हित गृहस्थका धर्म है, इसलिये शुद्धोपयोगी मुनिके संयमका घात न होवे इसतरह से-  
वादि क्रियामें प्रवर्तता है क्योंकि अन्यकी सेवामें जो प्रवर्तता है वह भी संयमकी  
ही वृद्धिके लिये । इसकारण संयमका घात करना योग्य नहीं है ॥ ५० ॥ आगे परो-  
पकार प्रवृत्ति किसकी करे यह भेद दिखलाते हैं;—[ साकारानाकारचर्यायु-  
क्तानां ] धारक मुनिकी आचार क्रिया सहित जो [ जैनानां ] जिनमार्गानुमारी  
धारक मुनि हैं उनका [ निरपेक्षं ] पत्रकी अभिष्टाया रक्षित होके [ अनुकम्पया ]

शुद्धेषु जैनेषु शुद्धज्ञानदर्शनप्रवृत्तवृत्तितया साकारानाकारचर्यायुक्तेषु शुद्धात्मोपलम्भेतर-  
सकलनिरपेक्षतयैवाल्पलेपाप्यप्रतिपिद्धा न पुनरल्पलेपेति सर्वत्र सर्वथैवाप्रतिपिद्धा, तत्र  
तथा प्रवृत्त्याशुद्धात्मवृत्तित्राणस्य परात्मनोरनुपपत्तेरिति ॥ ५१ ॥

अथ प्रवृत्तेः कालविभागं दर्शयति;—

रोगेण वा ह्युधाए तण्हणया वा समेण वा रूढं ।

देहा समणं साधू पडिवज्जदु आदसत्तीए ॥ ५२ ॥

रोगेण वा क्षुधया तृष्णया वा श्रमेण वा रूढम् ।

दृष्ट्वा श्रमणं साधुः प्रतिपद्यतामात्मशक्त्या ॥ ५२ ॥

यदा हि समधिगतशुद्धात्मवृत्तेः श्रमणस्य तत्प्रच्यावनहेतोः कस्याप्युपसर्गस्योपनिपातः

हितं धर्मवात्सल्यम् । यदि किम्? लेवो जदि वियप्पो “सावयलेशो बहुपुण्यराशौ” इति  
इति दृष्टान्तेन यद्यल्पलेपः स्तोकसावयं भवति । केपां करोतु । जेण्हाणं निक्षयव्यवहारमो-  
क्षमार्गपरिणतजैनानाम् । कथम् । गिरवेक्खं निरपेक्षं शुद्धात्मभावनाविनाशकद्वयातिपूजाळाभ-  
वाञ्छारहितं यथा भवति । कथंभूतानां जैनानाम्? सागारणगारचरियजुत्तार्णं सागारा-  
नागारचर्यायुक्तानां श्रावकतपोधनाचरणसहितानामित्यर्थः ॥ ५१ ॥ कस्मिन्प्रस्तावे वैयावृत्त्यं  
कर्त्तव्यमित्युपदिशति;—पडिवज्जदु प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु । कया । आदसत्तीए स्वशक्त्या  
स कः कर्त्ता । साहू रत्तत्रयभावनया स्वात्मानं साधयतीति साधुः । कम्? समणं जीवितम-  
रणादिसमपरिणतत्वाच्छ्रमणस्तं श्रमणम् दिट्ठा दृष्ट्वा । कथंभूतं । रूढं रूढं व्याप्तं पीडितं

दयाभावसे [ उपकारं ] उपकार अर्थात् यथायोग्य सेवादिक क्रिया [ करोतु ] शु-  
भोपयोगी करो कोई दोष नहीं [ यद्यपि ] लेकिन इस शुभाचारकर [ अल्पलेपः ]  
थोड़ासा शुभकर्म बंधता है परंतु तोभी दोष नहीं है ॥ भावार्थ—जो यह दया-  
भावकर परोपकाररूप प्रवृत्ति कही है वह अनेकान्तसे पवित्र है चित्त जिनका ऐसे  
उत्तम जैनी यति श्रावकोंमें करनी योग्य है शुद्धात्मकी प्राप्तिसे अन्य समस्त शुभफलकी  
वांछासे रहित सहजही जो अल्पकर्म लेप भी है तोभी अच्छा है और जो शुद्धात्माकी  
प्राप्तिसे रहित मिथ्यादृष्टि हैं उनकी सेवादिक निषेध की गई है । जो उनकी सेवादिक-  
कर थोड़ाभी कर्मबंध है तोभी निषेध है क्योंकि उन मिथ्यादृष्टियोंकी सेवासे न तो  
अपनेको शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्ति है और न उनके शुद्धात्मतत्त्वकी रक्षा है दोनों जगह  
धर्मकी वृद्धि नहीं है इससे उसका निषेध है ॥ ५१ ॥ आगे किस समय धर्मात्माओंके  
वैयावृत्त्यादिक क्रिया होती है यह कहते हैं;—[ साधुः ] शुभोपयोगी मुनि [ रोगेण ]  
रोगकर [ वा ] अथवा [ क्षुधया ] भूखकर [ वा ] अथवा [ तृष्णया ] प्यासकर  
[ वा ] अथवा [ श्रमेण ] परीसहादिकके खेदकर [ रूढं ] पीडित हुए [ श्रमणं ]  
महामुनीश्वरको [ दृष्ट्वा ] देखकर [ आत्मशक्त्या ] अपनी शक्तिके अनुसार [ प्र-

गृहस्थधर्मानुप्रवेशात् श्रामण्यात् प्रच्यवते । अतो या काचन प्रवृत्तिः सा सर्वथा संयमावि-  
रोधेनैव विधातव्या । प्रवृत्तावपि संयमस्यैव साध्यत्वात् ॥ ५० ॥

अथ प्रवृत्तेर्विषयविभागे दर्शयति;—

जोषुह्राणं गिरवेकखं सागारणगारचरियजुत्ताणं ।

अणुकंपयोचयारं कुव्वदु लेवो यदिवियप्पं ॥ ५१ ॥

जैनानां निरपेक्षं साकारानाकारचर्यायुक्तानाम् ।

अनुकम्पयोपकारं करोतु लेपो यद्यप्यल्पः ॥ ५१ ॥

या किलानुकम्पापूर्विका परोपकारलक्षणा प्रवृत्तिः साखल्वनेकान्तमैत्रीपवित्रितचित्तेषु

मविराधनाकर्तव्येत्युपदिशति;—जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो यदि चेत्  
करोति कायखेदं पट्कायविराधनां । कथंभूतः सन् । वैयावृत्त्यर्थमुद्यतः समणो ण हवदि  
तदा श्रमणस्तपोधनो न भवति । तर्हि किं भवति ? हवदि अगारी अगारी गृहस्थो भवति ।  
कस्मात् । धम्मो सो सावयाणं से पट्कायविराधनां कृत्वा योऽसौ धर्मः स श्रावकाणां स्यात्  
न च तपोधनानामिति । इदमत्र तार्प्यम्—योऽसौ स्वशरीरोपपणार्थं शिष्यादिमोहेन वा सावयं  
नेच्छति तस्येदं व्याख्यानं शोभते यदि पुनरन्यत्र सावयमिच्छति वैयावृत्त्यादिस्वकीयावस्थायोग्ये  
धर्मकार्ये नेच्छति तदा तस्य सम्यक्त्वमेव नास्तीति ॥ ५० ॥ अथ यद्यल्पलेपो भवति परोप-  
कारे तथापि शुभोपयोगिभिर्धर्मोपकारः कर्तव्य इत्युपदिशति;—कुव्वदु करोतु । स कः  
कर्ता । शुभोपयोगी पुरुषः । कं करोतु । अणुकंपओचयारं अनुकम्पासहितोपकारं दयास-

मकी विरोधिनी होवे यह कहते हैं;—[ वैयावृत्त्यर्थ उद्यतः ] अन्य मुनीश्वरोंकी  
सेवाकेलिये उद्यमवान् हुआ जो शुभोपयोगी मुनि वह [ यदि ] जो [ कायखेदं ]  
पट्कायकी विराधनारूप हिंसाको [ करोति ] करता है तो वह [ श्रमणः ] अपने  
संयमका धारक मुनि [ न भवति ] नहीं होता किं तु [ अगारी भवति ] गृहस्थ  
होता है क्योंकि [ सः ] वह जीवकी विराधनायुक्त वैयावृत्त्यादिक्रिया [ श्रावकाणां ]  
ग्रहवासी श्रावकोंका [ धर्मः ] धर्म [ स्यात् ] है ॥ भावार्थ—जो कोई सरागचा-  
रित्री मुनि अन्य मुनीश्वरोंकी शुद्धात्माचरणकी रक्षाकेलिये वैयावृत्त्य क्रियाकर अपनेमें  
विराधना करता है वह गृहस्थधर्मको करता है मुनिपदसे गिरता है क्योंकि हिंसास-  
हित गृहस्थका धर्म है, इसलिये शुद्धोपयोगी मुनिके संयमका घात न होवे इसतरह से-  
वादि क्रियामें प्रवर्तता है क्योंकि अन्यकी सेवामें जो प्रवर्तता है वह भी संयमकी  
ही वृद्धिके लिये । इसकारण संयमका घात करना योग्य नहीं है ॥ ५० ॥ आगे परो-  
पकार प्रवृत्ति किसकी करे यह भेद दिखलते हैं;—[ साकारानाकारचर्यायु-  
क्तानां ] भावक मुनिकी आचार क्रिया महित जो [ जैनानां ] जिनमार्गानुसारी  
भावक मुनि हैं उनका [ निरपेक्षं ] फलकी अभिलाषा रहित होके [ अनुकम्पया ]

समधिगतशुद्धात्मवृत्तीनां ग्लानगुरुवालवृद्धश्रमणानां वैयावृत्त्यनिमित्तमेव शुद्धात्मवृ-  
त्तिशून्यजनसंभाषणं प्रसिद्धं न पुनरन्यनिमित्तमपि ॥ ५३ ॥

अथैवमुक्तस्य शुभोपयोगस्य गौणमुख्यविभागं दर्शयति;—

एसा पसत्थभूता समणाणं वा पुणो घरत्थाणं ।

चरियां परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं ॥ ५४ ॥

एसा प्रशस्तभूता श्रमणानां वा पुनर्गृहस्थानाम् ।

चर्यां परेति भणिता तथैव परं लभते सौख्यम् ॥ ५४ ॥

एवमेव शुद्धात्मानुरागयोगिप्रशस्तचर्यारूप उपवर्णितः शुभोपयोगः तदयं शुद्धात्मप्र-  
काशिकां समस्तविरतिमुपेयुषां कषायकणसद्भावात्प्रवर्तमानः शुद्धात्मवृत्तिविरुद्धरागसंगत-  
त्वाद्गौणः श्रमणानां, गृहिणां तु समस्तविरतेरभावेन शुद्धात्मप्रकाशनस्याभावात्कषायस-

पयोगिनां वैयावृत्त्यं करोति तदाकाले तद्वैयावृत्त्यनिमित्तं लौकिकजनैः सह सम्भाषणं करोति  
न शेषकाल इति भावार्थः ॥ ५३ ॥ एवं गाथापञ्चकेन लौकिकव्याख्यानसम्बन्धिप्रथमस्य उं ग-  
तम् । अथायं वैयावृत्त्यादिलक्षणशुभोपयोगस्तपोधनैर्गौणवृत्त्या श्रावकैस्तु मुख्यवृत्त्या कर्त्तव्य इत्या-  
ख्यातिः—भणिदा भणिता कथिता । का कर्मतापन्ना? चरिया चारित्रमनुष्ठानम् । किं वि-  
शिष्टा । एसा एसा प्रत्यक्षीभूता । पुनश्च किरूपा? पसत्थभूता प्रशस्तभूता धर्मानुरागरूपा ।  
केषां सम्बन्धिनी । समणाणं वा श्रमणानां वा पुणो घरत्थाणं गृहस्थानां वा पुनरियमेव  
चर्यां परेत्ति परा सर्वोच्छेति ताएव परं लहदि सोक्खं तथैव शुभोपयोगचर्यया परंप-  
रया मोक्षमुखं लभते गृहस्थ इति । तथाहि—तपोधनाः शेषतपोधनानां वैयावृत्त्यं कुर्वाणा-  
सन्तः कायेन किमपि निरवशवैयावृत्त्यं कुर्वन्ति । वचनेन धर्मोपदेशं च । शेषमौपधानपाना-  
दिकं गृहस्थानामधीनं तेन कारणेन वैयावृत्त्यरूपो धर्मो गृहस्थानां मुख्यः तपोधनानां गौणः ।  
द्वितीयं च कारणं निर्विकारचिच्चमत्कारभावनाप्रतिपक्षभूतेन विषयकषायनिमित्तोत्पन्नेनार्त्तरीद्रघ्यान-

तो उन मुनियोंकी वैयावृत्त्यकेलिये उन लोगोंसे वचनालाप करनेका निषेध नहीं है  
अन्यकार्यके लिये निषेध है ॥ ५३ ॥ आगे शुभोपयोग किसके गौण है और किसके  
मुख्य है यह दिखलाते हैं;—[ एसा ] यह [ प्रशस्तभूता ] शुभरागरूप [ चर्या ]  
आचारप्रवृत्ति [ श्रमणानां ] मुनीश्वरोंके होती है [ वा पुनः ] और [ गृहस्था-  
नां ] श्रावकोंके [ परा ] उत्कृष्ट होती है [ इति भणिता ] ऐसी परमागममें कही  
गई है [ तथा एव ] उसी शुभरागरूप आचार प्रवृत्तिकर श्रावक [ परं सौख्यं ]  
उत्कृष्ट मोक्ष सुखको [ लभते ] परंपराकर पाता है ॥ भावार्थ—शुद्धात्मानमें अनु-  
रागरूप जो शुभाचार है वह शुद्धात्माकी प्रकाशनेवाली महाविरतिको प्राप्त मुनीश्वरोंके  
कषाय अंशके उदयसे गौणरूप प्रवर्तता है क्योंकि यह शुभाचार शुद्धात्माके आचरणके  
विरोधी रागके संघर्षसे होता है, और श्रावकके यह शुभाचार मुख्य है क्योंकि गृहस्थके

स्यात् स शुभोपयोगिनः स्वशक्त्या प्रतिचिकीर्षी प्रवृत्तिकालः । इतरस्तु स्वयं शुद्धात्म-  
वृत्तेः समधिगमनाय केवलनिवृत्तिकाल एव ॥ ५२ ॥

अथ लोकसंभाषणप्रवृत्तिं सनिमित्तविभागं दर्शयति;—

वेज्ञावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालबुद्धसमणाणं ।

लोगिगज्जणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोवज्जुदा ॥ ५३ ॥

वैयावृत्त्यनिमित्तं ग्लानगुरुबालबुद्धश्रमणानाम् ।

लौकिकजनसंभाषा न निन्दिता वा शुभोपयुता ॥ ५३ ॥

फदर्थितम् । केन ? रोगेण वा अनाकुलत्वलक्षणपरमात्मनो विलक्षणेनाकुलत्वोत्पादकेन रोगेण  
व्याधिविशेषेण वा छुहाए शुधयां तण्हाए वा तृषया वा समेण वा मार्गोपवासादिश्रमेण  
वा । अत्रेदं तात्पर्यम्—स्वभावनाविघातकरोगादिप्रस्तावे वैयावृत्त्यं करोति शेषकाले स्वकी-  
यानुष्ठानं करोतीति ॥ ५२ ॥ अथ शुभोपयोगिनां तपोधनवैयावृत्त्यनिमित्तं लौकिकसंभाषणवि-  
षये निषेधो नास्तीत्युपदिशति;—ण णिंदिदा शुभोपयोगितपोधनानां न निन्दिता न निषिद्धा ।  
का कर्मतापन्ना । लोगिगज्जणसंभासा लौकिकजनैः सह संभाषा वचनप्रवृत्तिः सुहोवज्जु-  
दा वा अथवा सापि शुभोपयोगयुक्ता भण्यते । किमर्थं न निषिद्धा ? वेज्ञावच्चनिमित्तं  
वैयावृत्त्यनिमित्तम् । केषां वैयावृत्त्यम् ? गिलाणगुरुबालबुद्धसमणाणं ग्लानगुरुबालबुद्धश्र-  
मणानाम् । अत्र गुरुशब्देन स्थूलकायो भण्यते अथवा पूज्यो वा गुरुरिति । तथाहि—यदा  
कोऽपि शुभोपयोगयुक्त आचार्यः सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगिनां वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धो-

तिपद्यतां ] वैयावृत्त्यादिक क्रिया करो । यही सेवादिकका समय जानना ॥ भा-  
वार्थ—जो मुनि अच्छीतरह शुद्धस्वरूपमें लीन हुए हैं उनके किसीएक संयोगसे स्व-  
रूपसे चलायमान होनेका कारण कोईएक उपसर्ग आगया हो तो वह शुभोपयोगी  
मुनिका वैयावृत्त्यादिकका काल है । उस समय ऐसा कार्य करै जो उनका उपसर्ग  
दूर होके स्वरूपमें स्थिरता हो । इससे अन्य जो शुभोपयोगियोंका काल है वह अपने  
शुद्धात्मस्वरूपके आचरणके निमित्त है सेवादिकके निमित्त नहीं । वे मुनि उससमय  
ध्यानादिकमें प्रवर्तते हैं ॥ ५२ ॥ आगे शुभोपयोगियोंके वैयावृत्त्यादिककेलिये अज्ञानी  
लोकोंसे भी बोलना पड़ता है ऐसा भेद दिखलाते हैं;—[ ग्लानगुरुबालबुद्धश्रम-  
णानां ] रोगपीडित, पूज्य आचार्य, घरसोंमें छोटे, और घरसोंमें बड़े ऐसे चार तर-  
हके मुनियोंकी [ वैयावृत्त्यनिमित्तं ] सेवाके लिये [ शुभोपयुक्ता ] शुभभावोंकर  
सहित [ लौकिकजनसंभाषा वा ] अज्ञानी चारित्रशुद्ध जीवोंसे वचनकी प्रवृत्ति  
करनी (बोलना) भी [ न निन्दिता ] निषेधित नहीं की गई है ॥ भावार्थ—जो  
धर्मात्मा मुनि हैं वे अज्ञानी लोकोंसे वचनालाप नहीं करते हैं परंतु किसी समय उन  
लोकोंसे बोलनेसे जो महामुनीश्वरोंका उपसर्ग दूर होजायेगा ऐसा माह्वम पड़ जाय

शुभोपयोगस्य पात्रवैपरीत्यात्फलवैपरीत्यं कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यं भावित्वात् ॥५५॥

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये दर्शयति;—

छद्मुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो ।

ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि ॥ ५६ ॥

छद्मस्थविहितवस्तुषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः ।

न लभते अपुनर्भावं भावं सातात्मकं लभते ॥ ५६ ॥

शुभोपयोगस्य सर्वज्ञव्यवस्थापितवस्तुषु प्रणिहितस्य पुण्योपचयपूर्वकोपुनर्भावोपलम्भः किल फलं, तच्च कारणवैपरीत्याद्विपर्यय एव । तत्र छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं

पुण्यबन्धो भवति परंपरया निर्वाणं च । नो चेत्पुण्यबन्धमात्रमेव ॥ ५५ ॥ अथ कारणवैपरीत्यात्फलमपि विपरीतं भवति तमेवार्थं दृढयति;—ण लहदि न लभते । स कः कर्त्ता? व-यणियमज्झयणझाणदाणरदो व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः । केपु विपयेषु? यानि व्रतादीनि? छद्मुमत्थविहिदवत्थुसु छद्मस्थविहितवस्तुषु अल्पज्ञानिपुरुषव्यवस्थापितपात्रभूतवस्तुषु । इत्थंभूतः पुरुषः कं न लभते । अपुणब्भावं अपुनर्भवशब्दवाच्यं मोक्षं । तर्हि किं लभते । भावं सादप्पगं लहदि भावं सातात्मकं लभते । भावशब्देन सुदेवमनुष्यत्वपर्यायो ग्राह्यः । स च कथंभूतः । सातात्मकः सद्बोधोदयरूप इति । तथाहि—ये केचन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं न जानन्ति पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति ते छद्मस्थशब्देन गृह्यन्ते न च गणधरदेवादयः । तैः छद्मस्थैरज्ञानिभिः शुद्धात्मोपदेशशून्यैर्ये दीक्षितास्तानि छद्मस्थविहितवस्तूनि भण्यन्ते । तत्पात्रसंसर्गेन यद्ब्रतनियमाध्ययनदानादिकं करोति तदपि शु-

पात्रके भेदकर विपरीत फलकोभी देता है जिसतरहका पुरुष खराब अच्छा होता है वहां वैसे फलको उत्पन्न करता है कारणके भेदसे कार्यमें भेद अवश्य होजाता है॥५५॥ आगे कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता दिखलाते हैं;—[ छद्मस्थविहितवस्तुषु ] अज्ञानी जीवोंकर अपनी बुद्धिसे कल्पित देव गुरु धर्मादिक पदार्थोंमें [ व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः ] जो पुरुष व्रत नियम पठन ध्यान दानादि क्रियाओंमें लीन है वह पुरुष [ अपुनर्भावं ] मोक्षको [ न ] नहीं [ लभते ] पाता किंतु [ सातात्मकं भावं ] पुन्यरूप उत्तम देवमनुष्यपदवीको [ लभते ] पाता है ॥ भावार्थ—सर्वज्ञवीतरागकर स्थापित देव गुरु धर्मादिकमें जो शुभोपयोगरूपभाव निश्चल होते हैं उनका फल साक्षात् पुन्य है परंपरा मोक्ष है और येही शुभोपयोग कारणकी विपरीततासे विपरीत होता है और विपरीत फलको करता है यही दिखलाते हैं—जिन अज्ञानी जीवोंने देव गुरु धर्मादिक वस्तु स्थापित कीं हैं वे कारण विपरीत हैं उनमें व्रत नियम पठन पाठन ध्यान दानादिककर अति प्रीतिसे लगनेरूप जो शुभोपयोग है उसकर मोक्षकी प्राप्ति नहीं है कणकेबिना अकेले पयाल (बुस)की तरह पुन्यरूप

द्वावात्प्रवर्तमानोपि स्फटिकसंपर्केणार्कतेजस इवैधसां रागसंयोगेनाशुद्धात्मनोऽनुभवात्क-  
मतः परमनिर्वाणसौख्यकारणत्वाच्च मुख्यः ॥ ५४ ॥

अथ शुभोपयोगस्य कारणवैपरीत्यात् फलवैपरीत्यं साधयति;—

रागो पसत्थभूदो चत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं ।

णाणाभूमिगदाणि हि वीयाणिव सस्सकालम्मि ॥ ५५ ॥

रागः प्रशस्तभूतो वस्तुविशेषेण फलति विपरीतम् ।

नानाभूमिगतानि हि वीजानीव सस्यकाले ॥ ५५ ॥

यथैकेपामपि वीजानां भूमिवैपरीत्यान्निष्पत्तिवैपरीत्यं तथैकस्यापि प्रशस्तरागलक्षणस्य

द्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रितनिश्चयधर्मस्यावकाशो नास्ति वैयावृत्त्यादिधर्मेण दुर्घ्यानवञ्चना  
भवति तपोधनसंसर्गेण निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गोपदेशलाभो भवति । ततश्च परंपर्या निर्वाणं  
लभत इत्यभिप्रायः ॥ ५४ ॥ एवं शुभोपयोगितपोधनानां शुभानुष्ठानकथनमुख्यतया गाथाष्ट-  
केन द्वितीयखण्डं गतम् । इत ऊर्द्धं गाथापट्टपर्यन्तं पात्रापात्रपरीक्षामुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति ।  
अथ शुभोपयोगस्य पात्रभूतवस्तुविशेषात्फलविशेषं दर्शयति;—फलदि फलति फलं ददाति ।  
स कः । रागो रागः । कथंभूतः । पसत्थभूदो प्रशस्तभूतो दानपूजादिरूपः । किं फलति ?  
विवरीदं विपरीतमन्यादृशं भिन्नभिन्नफलम् । केन कारणभूतेन । चत्थुविसेसेण जघन्यमध्य-  
मोत्कृष्टभेदभिन्नपात्रभूतवस्तुविशेषेण । अत्रार्थे दृष्टान्तमाह—णाणाभूमिगदाणिह वीजाणिव  
सस्सकालम्मिह नानाभूमिगतानीह वीजानि इव सस्यकाले धान्यनिष्पत्तिकाल इति । अयम-  
त्रार्थः—यथा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभूमिवशेन तान्येव वीजानि भिन्नभिन्नफलं प्रयच्छन्ति तथा स  
एव वीजास्थानीयशुभोपयोगो भूमिस्थानीयपात्रभूतवस्तुविशेषेण भिन्नभिन्नफलं ददाति । तेन  
किं सिद्धम् । यदा पूर्वसूत्रकथितन्यायेन सम्यक्त्वपूर्वकः शुभोपयोगो भवति तदा सुखवृत्त्या

महाविरतिका तो अभाव है इसलिये शुद्धात्माचरणकी धिरताके प्रकाशका अभाव है इसी-  
कारण फपायोंके उदयसे मुख्य है । यह शुभोपयोग रागके संयोगसे गृहस्थके शुद्धा-  
त्माके अनुभवसे परंपरा-मोक्षका कारण होता है । जैसे स्फटिकमणिके संबंधसे ईंधनमें  
सूर्यसे आग परंपराकर प्रगट होती है उसीप्रकार गृहस्थके यह शुभोपयोग परंपरा  
मोक्षका कारण है ॥ ५४ ॥ आगे इस शुभोपयोगके कारणकी विपरीततासे फलकी  
विपरीतता सिद्ध होती है;—[ प्रशस्तभूतः ] शुभरूप [ रागः ] रागभाव अर्थात्  
शुभोपयोग [ चत्थुविशेषेण ] पुरुषके भेदकर [ विपरीतं ] विपरीतकार्यको  
[ फलति ] फलता है जैसे [ सस्यकाले ] खेतीके समयमें [ नानाभूमिगतानि ]  
नानाप्रकारकी खोटी भूमिमें ढाढे हुए [ हि ] निश्चयसे [ वीजानि इव ] वीजधान्य  
विपरीत फलको करते हैं वसंतरह ॥ भावार्थ—कोई कोई भूमियां ऐसी खराब हैं कि  
जिनमें उपजनेकेलिये योग्यता अत्र खराब होजाता है वसीतरह यह शुभोपयोग

शुभोपयोगस्य पात्रवैपरीत्यात्फलवैपरीत्यं कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यं भावित्वात् ॥५५॥

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये दर्शयति;—

छद्मुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो ।

ण लहदि अपुणव्भावं भावं सादप्पगं लहदि ॥ ५६ ॥

छद्मस्यविहितवस्तुषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः ।

न लभते अपुनर्भावं भावं सातात्मकं लभते ॥ ५६ ॥

शुभोपयोगस्य सर्वज्ञव्यवस्थापितवस्तुषु प्रणिहितस्य पुण्योपचयपूर्वकोपुनर्भावोपलम्भः किल फलं, तत्र कारणवैपरीत्याद्विपर्यय एव । तत्र छद्मस्यव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं

पुण्यबन्धो भवति परंपरया निर्वाणं च । नो चेत्पुण्यबन्धमात्रमेव ॥ ५५ ॥ अथ कारणवैपरीत्यात्फलमपि विपरीतं भवति तमेवार्थं दृढयति;—ण लहदि न लभते । स कः कर्ता? च-यणियमज्झयणझाणदाणरदो व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः । केषु विषयेषु? यानि व्रतादीनि? छद्मुमत्थविहिदवत्थुसु छद्मस्यविहितवस्तुषु अल्पज्ञानिपुरुषव्यवस्थापितपात्रभूतवस्तुषु । इत्थंभूतः पुरुषः कः न लभते । अपुणव्भावं अपुनर्भवशब्दवाच्यं मोक्षं । तर्हि किं लभते । भावं सादप्पगं लहदि भावं सातात्मकं लभते । भावशब्देन सुदेवमनुष्यत्वपर्यायो ग्राह्यः । स च कथंभूतः । सातात्मकः सद्देवोदयरूप इति । तथाहि—ये केचन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं न जानन्ति पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति ते छद्मस्यशब्देन गृह्यन्ते न च गणधरदेवादयः । तैः छद्मस्यैरज्ञानिभिः शुद्धात्मोपदेशशून्यैरे दीक्षितास्तानि छद्मस्यविहितवस्तूनि भण्यन्ते । तत्पात्रसंसर्गेन यद्गतनियमाध्ययनदानादिकं करोति तदपि शु-

पात्रके भेदकर विपरीत फलकोभी देता है जिसतरहका पुरुष खराब अच्छा होता है वहां वैसे फलको उत्पन्न करता है कारणके भेदसे कार्यमें भेद अवश्य होजाता है ॥५५॥ आगे कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता दिखलाते हैं;—[ छद्मस्यविहितवस्तुषु ] अज्ञानी जीवोंकर अपनी बुद्धिसे कल्पित देव गुरु धर्मादिक पदार्थोंमें [ व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः ] जो पुरुष व्रत नियम पठन ध्यान दानादि क्रियाओंमें लीन है वह पुरुष [ अपुनर्भावं ] मोक्षको [ न ] नहीं [ लभते ] पाता किंतु [ सातात्मकं भावं ] पुन्यरूप उत्तम देवमनुष्यपदवीको [ लभते ] पाता है ॥ भावार्थ—सर्वज्ञवीतरागकर स्थापित देव गुरु धर्मादिकमें जो शुभोपयोगरूपभाव निश्चल होते हैं उनका फल साक्षात् पुन्य है परंपरा मोक्ष है और येही शुभोपयोग कारणकी विपरीततासे विपरीत होता है और विपरीत फलको करता है यही दिखलाते हैं—जिन अज्ञानी जीवोंने देव गुरु धर्मादिक वस्तु स्थापित कीं हैं वे कारण विपरीत हैं उनमें व्रत नियम पठन पाठन ध्यान दानादिककर अति प्रीतिसे लगनेरूप जो शुभोपयोग है उसकर मोक्षकी प्राप्ति नहीं है फणकेविना अकेले पयाल (गुस)की तरह पुन्यरूप



तेषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतत्वप्रणिहितस्य शुभोपयोगस्यापुनर्भावशून्यकेवलपुण्याप-  
सदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं तत्कुदेवमनुजत्वम् ॥ ५६ ॥

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये एव व्याख्याति;—

अविदिदपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु पुरिसेसु ।

जुष्टं कदं व दत्तं फलदि कुदेवेसु मणुजेसु ॥ ५७ ॥

अविदितपरमार्थेषु च विषयकपायाधिकेषु पुरुषेषु ।

जुष्टं कृतं वा दत्तं फलति कुदेवेषु मनुजेषु ॥ ५७ ॥

यानि हि छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं ये खलु शुद्धात्मपरिज्ञानशून्यतया-  
नवासशुद्धात्मवृत्तितया चाविदितपरमार्था विषयकपायाधिकाः पुरुषाः तेषु शुभोपयोगा-  
त्मकानां जुष्टोपकृतदत्तानां या केवलपुण्यापसदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं तत्कुदेवमनुजत्वम् ॥ ५७ ॥

अथ कारणवैपरीत्यात् फलमविपरीतं न सिद्ध्यतीति श्रद्धापयति;—

जदि ते विसयकसाया पावत्ति परूविदा व सत्थेसु ।

कह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा गित्थारगा होंति ॥ ५८ ॥

द्धात्मभावनानुकूलं न भवति ततः कारणान्मोक्षं न लभते सुदेवमनुष्यत्वं लभत इत्यर्थः ॥ ५६ ॥  
अथ सम्यक्व्रतरहितपात्रेषु भक्तानां कुदेवमनुजत्वं भवतीति प्रतिपादयति;—फलदि फलति ।  
केषु? कुदेवेषु मणुजेसु कुत्सितदेवेषु मनुजेषु । किं कर्तुं । जुष्टं जुष्टं सेवा कृता कदं व कृतं  
वा किमपि वैयावृत्त्यादिकम् । दत्तं दत्तं किमप्याहारादिकम् । केषु? पुरुसेसु पुरुषेषु पात्रेषु ।  
किंविशिष्टेषु? अविदिदपरमत्थेसु अ अविदितपरमार्थेषु च परमात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानशून्येषु ।  
पुनरपि किं रूपेषु? विसयकसायादिगेषु विषयकपायाधिकेषु विषयकपायाधीनत्वेन निर्वि-  
षयशुद्धात्मस्वरूपभावनारहितेषु इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ अथ तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढयति;—

फल होता है वह फल उत्तम देवता उत्तम मनुष्यगतिरूप जानना ॥ ५६ ॥ आगे  
कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता फिर भी दिखलाते हैं;—[ अविदितपर-  
मार्थेषु ] नहीं जाना है शुद्धात्मपदार्थ जिन्होंने [ च ] और [ विषयकपायाधि-  
केषु ] इन्द्रियोंके विषय तथा क्रोधादिकपाय जिनके अधिक हैं ऐसे [ पुरुषेषु ] अ-  
ज्ञानी मनुष्योंकी [ जुष्टं ] बहुत प्रीतिकर सेवा करना [ कृतं ] दृढ़ चार्की करना  
[ वा ] अथवा [ दत्तं ] उनको आहारादिकका देना है वह [ कुदेवेषु ] नीच देवोंमें  
[ मनुजेषु ] नीचमनुष्योंमें [ फलति ] फलता है ॥ भावार्थ—जिन अज्ञानी  
छद्मस्थजीवोंने विपरीत गुरु स्थापन किये हैं वे कारणविपरीत हैं आत्माके जानने बिना  
और आपरण बिना परमार्थज्ञानसे रहित हैं तथा विषयकपायोंके सेवनेवाले हैं । ऐसे  
गुरुओंकी सेवा भक्ति करना वैयावृत्त्यका करना और आहारादिकका देना इन क्रिया-  
ओंसे जो पुण्य होता है उसका फल नीचदेव और नीचमनुष्य होना है ॥ ५७ ॥

यदि ते विषयकपायाः पापमिति प्ररूपिता वा शास्त्रेषु ।  
कथं ते तत्प्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारका भवन्ति ॥ ५८ ॥

विषयकपायास्तावत्यापमेव तद्वन्तः पुरुषा अपि पापमेव तद्रक्ता अपि पापानुरक्तत्वात्  
पापमेव भवन्ति । ततो विषयकपायवन्तः स्वानुरक्तानां पुण्यानुयायिनः कल्पन्ते कथं पुनः  
संसारनिस्तारणाय । ततो न तेभ्यः फलमविपरीतं सिद्ध्येत् ॥ ५८ ॥

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं दर्शयति;—

उपरतपावो पुरिसो समभावो धम्मिगोसु सव्वेसु ।  
गुणसमिद्धिदोवसेवी हवदि स भागी सुमग्गस्स ॥ ५९ ॥

उपरतपापः पुरुषः समभावो धार्मिकेषु सर्वेषु ।  
गुणसमितितोपसेवी भवति स भागी सुमार्गस्य ॥ ५९ ॥

उपरतपापत्वेन सर्वधर्मिमध्यस्थत्वेन गुणग्रामोपसेवित्वेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यौ-

अदि ते विसयकसाया पावत्ति परूचिदा य सत्थेसु यदि च ते विषयकपायाः पाप-  
मिति प्ररूपिताः शास्त्रेषु किह ते तं पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति कथं ते तत्प्र-  
तिबद्धा विषयकपायप्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारकाः संसारोत्तारका दात्तूणां ? न कथमपीति । एत-  
दुक्तं भवति—विषयकपायास्तावत्यापस्वरूपास्तद्वन्तः पुरुषा अपि पापा एव ते च स्वकीयमक्तानां  
दात्तूणां पुण्यविनाशका एवेति ॥ ५८ ॥ अथ पात्रभूततपोधनलक्षणं कथयति;—उपरत-

आगे कारणकी विपरीततासे उत्तम फलकी सिद्धि नहीं होती यह कहते हैं,—[ यदि ]  
जो [ ते ] वे [ विषयकपायाः ] स्पर्शआदिक पांच विषय क्रोधादि चार कपाय  
[ शास्त्रे ] सिद्धांतमें [ पापं ] पापरूप हैं [ इति प्ररूपिताः ] ऐसे कहे गये हैं  
[ वा ] तो [ तत्प्रतिबद्धाः ] उन विषयकपायोंसे युक्त [ ते पुरुषाः ] वे पापी  
पुरुष अपने भक्तोंके [ कथं ] किसतरह [ निस्तारकाः ] तारनेवाले [ भवन्ति ]  
हो सकते हैं? नहीं होसकते ॥ भावार्थ—विषय कपाय ये दोनों संसारमें बड़ेभारी  
पाप हैं जो जीव विषय-कपायोंकर पापी हैं और अपनेको गुरु मानते हैं अपने भक्तोंको  
पुण्यात्मा कहते हैं वे पापी संसारके तारनेवाले कैसे कहलाये जासकते हैं । उनसे  
उत्तम फल कैसे सिद्ध होसकता है? किसीतरह भी नहीं, क्योंकि संसारमें विषय  
कपाय महापाप हैं । इसलिये विषय कपायवाले तरन तारन नहीं होसकते ॥५८॥ आगे  
उत्तम फलका कारण उत्तम पात्र दिखलाते हैं;—[ सः ] वह [ पुरुषः ] परममुनि  
[ सुमार्गस्य ] रत्नत्रयकी एकतासे एकाग्रतारूप मोक्षमार्गका [ भागी ] सेवनेवाला  
पात्र [ भवति ] होता है । जोकि [ उपरतपापः ] समस्त विषयकपायरूप पापोंसे  
रहित हो [ सर्वेषु ] सभी [ धार्मिकेषु ] धर्मोंमें [ समभावः ] समदृष्टि हो

गपद्यपरिणतिनिवृत्तैकाग्र्यात्मकसुमार्गभागी स श्रमणः स्वयं परस्य मोक्षपुण्यायतनत्वाद-  
विपरीतकारणं कारणमविपरीतं प्रत्येयम् ॥ ५९ ॥

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं व्याख्याति;—

असुभोवयोगरहिदा सुहुवज्जुत्ता सुहोवज्जुत्ता वा ।

णित्थारयन्ति लोमं तेषु पसत्थं लहदि भत्तो ॥ ६० ॥

अशुभोपयोगरहिताः शुद्धोपयुक्ता शुभोपयुक्ता वा ।

निस्तारयन्ति लोकं तेषु प्रशस्तं लभते भक्तः ॥ ६० ॥

यथोक्तलक्षणा एव श्रमणा मोहद्वेषाप्रशस्तरागोच्छेदादशुभोपयोगवियुक्ताः सन्तः  
सकलकपायोदयविच्छेदात् कदाचित् शुद्धोपयुक्ताः प्रशस्तरागविपाकात्कदाचिच्छुभोप-  
युक्ताः स्वयं मोक्षायतनत्वेन लोकं निस्तारयन्ति तद्भक्तिभावानां प्रवृत्तप्रशस्तभावा भवन्ति  
परे च पुण्यभाजः ॥ ६० ॥

पापत्वेन सर्वधार्मिकसमदर्शित्वेन गुणप्रामसेवकत्वेन च स्वस्य मोक्षकारणत्वात्परेषां पुण्यकार-  
णत्वाच्चेत्यंभूतगुणयुक्तः पुरुषः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यलक्षणनिश्चयमोक्षमार्गस्य भाजनं  
भवतीति ॥ ५९ ॥ अथ तेषामेव पात्रभूततपोधनानां प्रकारान्तरेण लक्षणमुपलक्षयति;—  
शुद्धोपयोगशुभोपयोगपरिणतपुरुषाः पात्रं भवन्तीति । तथा—निर्विकल्पसमाधिबलेन शुभा-  
शुभोपयोगद्वयरहितकाले कदाचिद्वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धोपयोगयुक्ताः कदाचित्पुनर्मोहद्वेषा-  
शुभरागरहितकाले सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगयुक्ताः सन्तो भव्यलोकं निस्तारयन्ति, तेषु च  
भव्यो भक्तो भव्यवरपुण्डरीकः प्रशस्तफलभूतं स्वर्गं लभते परंपरया मोक्षं चेति भावार्थः

अर्थात् अनंतनयस्वरूप अनेक धर्मोंमें पक्षपाती नहीं हो मध्यस्थ हो और [ गुणस-  
मितितोपसेवी ] ज्ञानादि अनेक गुणोंके समूहका सेवनेवाला हो ॥ भावार्थ—पूर्वोक्त  
गुणोंसहित ऐसे महापुरुष मुनि तरन तारन समर्थ हैं आप और दूसरेको पुण्य और  
मोक्ष देनेके ठिकाने हैं । ऐसा यह उत्तमपात्र उत्तम फलका कारण समझना ॥ ५९ ॥  
आगे फिर भी उत्तम फलका उत्तमकारण दिखलाते हैं;—[ अशुभोपयोगरहिताः ]  
खोटे रागरूप मोहद्वेषभावोंसे रहित हुए ऐसे [ शुद्धोपयुक्ताः ] सकल कपायोंके  
उदयके अभावसे कोई शुद्धोपयोगी [ वा ] अथवा [ शुभोपयुक्ताः ] उत्तम रागके  
उदयसे कोई शुभोपयोगी इसतरह दोनों प्रकारके मुनि [ लोकं ] उत्तम भव्य जीवोंको  
[ निस्तारयन्ति ] तारते हैं । [ तेषु ] उन दोनों तरहके मुनियोंका [ भक्तः ]  
सेषक महापुरुष [ प्रशस्तं ] उत्तमस्थानको [ लभते ] पाता है । भावार्थ—ये  
उत्तम मुनि आप मोक्षके ठिकाने हैं इसलिये जगतके उद्धार करनेवाले हैं जो इन मुनि-  
योंकी भक्ति करता है वह उत्तमभावोंसहित होता है और जो अनुमोदना करता है

अथाविपरीतफलकारणाविपरीतकारणसमुपासनप्रवृत्तिं सामान्यविशेषतो विधेयतया सूत्रद्वैतेनोपदर्शयति;—

दिष्ट्वा पगदं वत्थू अब्भुट्टाणप्पधाणकिरियाहिं ।

वट्टु तदो गुणादो विसेसिदब्बोत्ति उवदेशो ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा प्रकृतं वस्त्वभ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः ।

वर्ततां ततो गुणाद्विशेषितव्य इति उपदेशः ॥ ६१ ॥

श्रमणानामात्मविशुद्धिहेतौ प्रकृते वस्तुनि तदनुकूलक्रियाप्रवृत्त्या गुणातिशयाधानम-  
प्रतिषिद्धम् ॥ ६१ ॥

अब्भुट्टाणं महणं उवासणं पोसणं च सक्कारं ।

अंजलिकरणं पणमं भणिदं इह गुणाधिगाणं हि ॥ ६२ ॥

॥ ६० ॥ एवं पात्रापात्रपरीक्षाकथनमुख्यतया गाथापञ्चकेन तृतीयस्थलं गतम् । इत ऊर्द्ध-  
आचारकथितक्रमेण पूर्वं कथितमपि पुनरपि दृढीकरणार्थं विशेषेण तपोधनसमाचारं कथ-  
यति । अथाभ्यागततपोधनस्य दिनत्रयपर्यन्तं सामान्यप्रतिपत्तिं तदनन्तरं विशेषप्रतिपत्तिं  
दर्शयति;—वट्टु वर्त्तताम् । स कः । अत्रत्य आचार्यः । किं कृत्वा । दिष्ट्वा दृष्ट्वा । किं ।  
वरथुं तपोधनभूतं पात्रं वस्तु । किं विशिष्टम्? पगदं प्रकृतं अभ्यन्तरनिर्हारागशुद्धात्मभाव-  
नाज्ञापकत्रहिरङ्गनिर्ग्रन्थनिर्विकाररूपम् । काभिः कृत्वा वर्त्तताम्? अब्भुट्टाणप्पधाणकिरि-  
याहिं अभ्यागतयोग्याचारविहिताभिरभ्युत्थानादिक्रियाभिः तदो गुणादो ततो दिनत्रयानन्तरं  
गुणाट्टणविशेषात् विसेसिदब्बोत्ति तेन आचार्येण स तपोधनो रत्नत्रयभावनावृद्धिकारण-  
क्रियाभिर्विशेषितव्यः? इदि उवदेशो इत्युपदेशः सर्वज्ञगणधरदेवादीनामिति ॥ ६१ ॥ अथ  
तमेव विशेषं कथयति, भणिदं भणितं कथितं इह अस्मिन्नर्थे । केषां सम्बन्धी । गुणाधि-

यह भी पुण्यफलको भोगता है ॥ ६० ॥ आगे जो उत्तम फलके कारण उत्तम पात्र हैं  
उनकी सेवा सामान्य विशेषताकर दो गाथाओंसे दिखलाते हैं;—[ ततः ] इसकारण  
जो उत्तम पुरुष हैं वे [ प्रकृतं ] उत्तम [ वस्तु ] पात्रको [ दृष्ट्वा ] देखकर [ अ-  
भ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः ] आता हुआ देखके उठ खड़ा होना इत्यादि उत्तम  
पात्रकी क्रियाओंकर [ वर्त्ततां ] प्रवर्त्तों । क्योंकि [ गुणात् ] उत्तमगुण होनेसे [ विशे-  
षितव्यः ] आदर विनयादिकर विशेषकरना योग्य है [ इति ] ऐसा [ उपदेशः ]  
भगवंतदेवका उपदेश है ॥ भावार्थ—भगवंतकी ऐसी आज्ञा है कि जो ज्ञानादि-  
गुणोंसे अधिक हो उसका आदर विनय करना धर्मात्माओंको योग्य है । इसलिये  
धर्मात्माओंको उत्तमपात्रकी विनयादि क्रिया अवश्य करनी चाहिये ॥ ६१ ॥ आगे  
विनयादि क्रियाको विशेषपनेसे कहते हैं;—[ इह ] इसलोकमें [ हि ] निश्चयकर  
[ गुणाधिकानां ] अपनेसे अधिक गुणसहित महापुरुषोंके लिये [ अभ्युत्थानं ]

गपद्यपरिणतिनिवृत्तैकाग्र्यात्मकसुमार्गभागी स श्रमणः स्वयं परस्य मोक्षपुण्यायतनत्वाद-  
विपरीतकारणं कारणमविपरीतं प्रत्येयम् ॥ ५९ ॥

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं व्याख्याति;—

अशुभोवयोगरहिदा सुदुवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा ।

णित्थारयन्ति लोकं तेषु पसत्थं लहदि भक्तो ॥ ६० ॥

अशुभोपयोगरहिताः शुद्धोपयुक्ता शुभोपयुक्ता वा ।

निस्तारयन्ति लोकं तेषु प्रशस्तं लभते भक्तः ॥ ६० ॥

यथोक्तलक्षणा एव श्रमणा मोहद्वेषाप्रशस्तरागोच्छेदादशुभोपयोगवियुक्ताः सन्तः  
सकलकपायोदयविच्छेदात् कदाचित् शुद्धोपयुक्ताः प्रशस्तरागविपाकात्कदाचिच्छुभोप-  
युक्ताः स्वयं मोक्षायतनत्वेन लोकं निस्तारयन्ति तद्भक्तिभावानां प्रवृत्तप्रशस्तभावा भवन्ति  
परे च पुण्यभाजः ॥ ६० ॥

पापत्वेन सर्वधार्मिकसमदर्शित्वेन गुणप्राप्तसेवकत्वेन च स्वस्य मोक्षकारणत्वात्परेषां पुण्यकार-  
णत्वाच्चेत्यंभूतगुणयुक्तः पुरुषः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यलक्षणनिश्चयमोक्षमार्गस्य भाजनं  
भवतीति ॥ ५९ ॥ अथ तेषामेव पात्रभूततपोधनानां प्रकारान्तरेण लक्षणमुपलक्षयति;—  
शुद्धोपयोगशुभोपयोगपरिणतपुरुषाः पात्रं भवन्तीति । तथा—निर्विकल्पसमाधिवलेन शुभा-  
शुभोपयोगद्वयरहितकाले कदाचिद्वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धोपयोगयुक्ताः कदाचित्पुनर्मोहद्वेषा-  
शुभरागरहितकाले सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगयुक्ताः सन्तो भव्यलोकं निस्तारयन्ति, तेषु च  
भव्यो भक्तो भव्यवरपुण्डरीकः प्रशस्तफलभूतं स्वर्गं लभते परंपरया मोक्षं चेति भावार्थः

अर्थात् अनंतनयस्वरूप अनेक धर्मोंमें पक्षपाती नहीं हो मध्यस्थ हो और [ गुणस-  
मितितोपसेवी ] ज्ञानादि अनेक गुणोंके समूहका सेवनेवाला हो ॥ भावार्थ—पूर्वोक्त  
गुणोंसहित ऐसे महापुरुष मुनि तरन तारन समर्थ हैं आप और दूसरेको पुण्य और  
मोक्ष देनेके ठिकाने हैं । ऐसा यह उत्तमपात्र उत्तम फलका कारण समझना ॥ ५९ ॥  
आगे फिर भी उत्तम फलका उत्तमकारण दिखलाते हैं;—[ अशुभोपयोगरहिताः ]  
सोटे रागरूप मोहद्वेषभावोंसे रहित हुए ऐसे [ शुद्धोपयुक्ताः ] सकल कपायोंके  
उदयके अभावसे कोई शुद्धोपयोगी [ चा ] अथवा [ शुभोपयुक्ताः ] उत्तम रागके  
उदयसे कोई शुभोपयोगी इसतरह दोनों प्रकारके मुनि [ लोकं ] उत्तम भव्य जीवोंको  
[ निस्तारयन्ति ] तारते हैं । [ तेषु ] उन दोनों तरहके मुनियोंका [ भक्तः ]  
सेवक महापुरुष [ प्रशस्तं ] उत्तमस्थानको [ लभते ] पाता है । भावार्थ—ये  
उत्तम मुनि आप मोक्षके ठिकाने हैं इसलिये जगतके उद्धार करनेवाले हैं जो इन मुनि-  
योगी भक्ति करता है यह उत्तमभावोंसहित होता है और जो अनुमोचना करता है

सूत्रार्थवैशारद्यप्रवर्तितसंयमतपःस्वतत्त्वज्ञानानामेव श्रमणानामभ्युत्थानादिकाः प्रवृत्तयोप्रतिपिद्धा इतरेषां तु श्रमणाभासानां ताः प्रतिपिद्धा एव ॥ ६३ ॥

अथ कीदृशः श्रमणाभासो भवतीत्याख्यातिः—

ण ह्वदि समणोत्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि ।

जदि सहहृदि ण अत्थे आदपघाणे जिणक्खादे ॥ ६४ ॥

न भवति श्रमण इति मत संयमतपःसूत्रसंप्रयुक्तोपि ।

यदि श्रद्धत्ते नार्थानात्मप्रधानान् जिनाख्यातान् ॥ ६४ ॥

आगमज्ञोपि संयतोपि तपःस्थोपि जिनोदितमनन्यार्थनिर्भरं विश्वं खेनात्मना ज्ञेयत्वेन निष्पीतत्वादात्मप्रधानमश्रद्धधानः श्रमणाभासो भवति ॥ ६४ ॥

तर्हि स्लोकचारित्राणां किमर्थमागमे वन्दनादिनिषेधः कृत इति चेत्? अतिप्रसङ्गनिषेधार्थमिति ॥ ६३ ॥ अथ श्रमणाभासः कीदृशो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददातिः—ण ह्वदि समणो स श्रमणो न भवति इदि मदो इति मतः सम्मतः । कः आगमे । कथंभूतोऽपि ? संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि संयमतपःश्रुतैः संप्रयुक्तोऽपि सहितोऽपि । यदि किम्? जदि सहहृदि ण यदि चेन्मूढत्रयादिपञ्चविंशतिसम्यक्त्वमलरहितः सन् न श्रद्धत्ते न रोचते न मन्यते । कान्? अत्थे पदार्थान् । कथंभूतान् । आदपघाणे निर्दोषिपरमात्मप्रमृतीन् । पुनरपि कथं-

है ॥ भावार्थ—इतनी पूर्वोक्त उत्तम क्रियायें अपनेसे गुणोंकर उत्कृष्ट पुरुषोंकी करनी योग्य हैं ॥ ६२ ॥ आगे जो असलमें मुनि तो नहीं हैं लेकिन मुनिसे मालूम पड़ते हैं ऐसे द्रव्यलिंगी मुनियोंकी आदर विनयादिक सब क्रियाओंका निषेध है यह कहते हैं;— [ श्रमणैः ] उत्तम मुनियोंकर [ हि ] निश्चयसे [ सूत्रार्थविशारदाः ] परमागमके अर्थमें चतुर और [ संयमतपोज्ञानाख्याः ] संयम तपस्या ज्ञान इत्यादिगुणोंकर पूर्ण ऐसे [ श्रमणाः ] महामुनि [ अभ्युन्थेयाः ] खड़े होके सामने जाकर आदर करने योग्य हैं [ उपासेयाः ] सेवने योग्य हैं और [ प्रणिपतनीया ] नमस्कार करने योग्य हैं ॥ भावार्थ—जो मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकर सहित हैं उन्हींकी पूर्वोक्त विनयादि क्रिया करनी योग्य है और जो द्रव्यलिंगी श्रमणाभास मुनि हैं उनकी विनयादि करना योग्य नहीं है ॥ ६३ ॥ आगे श्रमणाभास मुनि कैसा होता है यह कहते हैं;—[ संयमतपःसूत्रसंप्रयुक्तोपि ] संयम तपस्या सिद्धांत इनकर सहित होनेपर भी [ यदि ] जो मुनि [ जिनाख्यातान् ] सर्वज्ञवीतराग कथित [ आत्मप्रधानान् ] सब ज्ञेयोंके जाननेसे आत्मा है मुख्य जिनमें ऐसे [ अर्थान् ] जीवादिक पदार्थोंका [ न श्रद्धत्ते ] नहीं श्रद्धान करता तो वह मिथ्यादृष्टि [ श्रमणः ] उत्तम मुनि [ न भवति ] नहीं होसकता [ इति मतः ] ऐसा यह श्रमणाभास-

अभ्युत्थानं ग्रहणमुपासनं पोषणं च सत्कारः ।

अञ्जलिकरणं प्रणामो भणितमिह गुणाधिकानां हि ॥ ६२ ॥

श्रमणानां स्वतोधिकगुणानामभ्युत्थानग्रहणोपासनपोषणसत्काराञ्जलिकरणप्रणामप्रवृत्तयो न प्रतिषिद्धाः ॥ ६२ ॥

अथ श्रमणाभासेषु सर्वाः प्रवृत्तीः प्रतिषेधयति;—

अब्भुट्ठेया समणा सुत्तत्थविसारदा उवासेया ।

संजमतवणाणड्ढा पणिचदणीया हि समणेहिं ॥ ६३ ॥

अभ्युत्थेयाः श्रमणाः सूत्रार्थविशारदा उपासेयाः ।

संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीयां हि श्रमणैः ॥ ६३ ॥

गाणं हि गुणाधिकतपोधनानां हि स्फुटम् । किं भणितम् ? अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सत्कारं अञ्जलिकरणं पणमं अभ्युत्थानग्रहणोपासनपोषणसत्काराञ्जलिकरण-प्रणामादिकम् । अभिमुखगमनमभ्युत्थानम्, ग्रहणं स्वीकारः, उपासनं शुद्धामभावनासहकारिकारणनिमित्तं सेवा, तदर्थमेवाशनशयनादिचिन्ता पोषणम्, भेदाभेदरत्नत्रयगुणप्रकाशनं सत्कारः, बद्धाञ्जलिनमस्कारोऽञ्जलिकरणम्, नमोस्त्वितिवचनव्यापारः प्रणाम इति ॥ ६२ ॥ अथाभ्यागतानां तदेवाभ्युत्थानादिकं प्रकारान्तरेण निर्दिशति;—अब्भुट्ठेया यद्यपि चारित्र-गुणेनाधिका न भवन्ति तपसा वा तथापि सम्यग्ज्ञानगुणेन ज्येष्ठत्वाच्छ्रुतविनयार्थमभ्युत्थेयाः अभ्युत्थेया अभ्युत्थानयोग्या भवन्ति । के ते । समणा निर्ग्रन्थाचार्याः । किं विशिष्टाः । सुत्त-त्थविसारदा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वप्रभृत्यनेकान्तात्मकपदार्थेषु वीतरागसर्वज्ञप्र-णीतमार्गेण प्रमाणनयनिक्षेपैर्विचारचतुरश्वेतसः सूत्रार्थविशारदाः । न केवलमभ्युत्थेयाः उवा-सेया परमचिञ्जोतिःपरमात्मपदार्थपरिज्ञानार्थमुपासेयाः परमभक्त्या सेवनीयाः । संजमत-वणाणड्ढा पणिचदणीया हि संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीयाः हि स्फुटम् बहिरङ्गेन्द्रिय-संयमप्राणसंयमबलेनाभ्यन्तरे स्वशुद्धात्मनि यत्नपरत्वं संयमः । बहिरङ्गानशनादितपोबलेनाभ्य-न्तरे परद्रव्येच्छानिरोधेन च स्वस्वरूपे प्रतपनं-त्रिजयनं तपः । बहिरङ्गपरमागमाभ्यासेनाभ्य-न्तरे स्वसंवेदनज्ञानं सम्यग्ज्ञानम् । एवमुक्तलक्षणैः संयमतपोज्ञानैराढ्याः परिपूर्णा ययासम्भवं प्रतिवन्दनीयाः । कैः ? समणेहिं श्रमणैरिति । अत्रेदं तात्पर्यम्—ये बहुश्रुता अपि चारित्रा-धिका न भवन्ति तेऽपि परमागमाभ्यासनिमित्तं यथायोग्यं वन्दनीयाः । द्वितीयं च कारणं—ते सम्यक्त्वे ज्ञाने च पूर्वमेव दृढतराः अस्य तु नवतरतपोधनस्य सम्यक्त्वे ज्ञाने चापि दार्ढ्यं नास्ति सामने आने ह्युप देसकर उठके राहा होके सामने जाना [ ग्रहणं ] बहुत आदरसे आहये २ ऐमे उत्तमवचनोंकर अंगीकार [ उपासनं ] सेवा करना [ पोसणं ] भक्षणानादिकर पोषना [ सत्कारं ] गुणोंकी प्रशंसाकर उत्तम वचन कहना [ अञ्ज-लिकरणं ] विनयमे हाथ जोड़ना [ च ] और [ प्रणामं ] नमस्कार करना योग्य

अथ श्रामण्येनाधिकं हीनमिवाचरतो विनाशं दर्शयति;—

गुणदोधिगस्स चिणयं पडिच्छगो जोवि होमि समणोत्ति ।

होञ्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी ॥ ६६ ॥

गुणतोऽधिकस्य विनयं प्रत्येपको योपि भवामि श्रमण इति ।

भवन् गुणाधरो यदि स भवत्यनन्तसंसारी ॥ ६६ ॥

श्रुतानां श्रतफलं नास्ति तपोधनानां तपःफलं चेति ॥ ६५ ॥ अत्राह शिष्यः—अपवादव्या-  
ख्यानप्रस्तात्रे शुभोपयोगो व्याख्यातः पुनरपि किमर्थं अत्र व्याख्यानं कृतमिति । परिहारमाह—  
युक्तमिदं भवदीयवचनं किन्तु तत्र सर्वस्यागलक्षणोत्सर्गव्याख्याने कृते सति तत्रासमर्थतपोधनैः  
फालापेक्षया किमपि ज्ञानसंयमशौचोपकरणादिकं ग्राह्यमित्यपवादव्याख्यानमेव मुख्यम् ।  
अत्र तु यथा भेदनयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपश्चरणरूपा चतुर्विधाराधना भवति ।  
सैवाभेदनयेन सम्यक्चचारित्ररूपेण द्विधा भवति । तत्राप्यभेदविवक्षया पुनरेकैव वीतरागचा-  
रित्राराधना । तदा भेदनयेन सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपस्त्रिविधमोक्षमार्गो भवति ।  
स एवाभेदनयेन श्रामण्यापरमोक्षमार्गनामा पुनरेक एव सचाभेदरूपो मुख्यवृत्त्या 'एय-  
ग्गमदो समणो' इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः पूर्वमेव व्याख्यातः । अयं तु भेदरूपो मुख्य-  
वृत्त्या शुभोपयोगरूपेणेदानीं व्याख्यातो नास्ति पुनरुक्तदोष इति । एवं समाचारवि-  
शेषविशरणरूपेण चतुर्थस्थले गाथाष्टकं गतम् । अथ स्वयं गुणहीनः सन्नपरेषां गुणा-  
धिकानां योऽसौ विनयं वाञ्छति तस्य गुणविनाशं दर्शयति;—स होदि अणंत-  
संसारी स कथंचिदनन्तसंसारे सम्भवति । यः किं करोति? पडिच्छगो जो दु प्रत्येपको  
यस्तु अभिलापकोऽपेक्षक इति । कम् । विणयं वन्दनादिविनयम् । कस्य सम्बन्धिनम् । गुण-  
दोधिगस्स बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयगुणाम्यामधिकस्यान्यतपोधनस्य । केन कृत्वा । होमि समणोत्ति  
अहमपि श्रमणो भवामीत्यभिमानेन गर्वेण । यदि किम्? होञ्जं गुणाधरो जदि निश्चयव्यव-  
हाररत्नत्रयगुणाम्यां हीनः स्वयं यदि चेद्भवतीति । अयमत्रार्थः—यदि चेद्गुणाधिकेभ्यः सका-  
शाद्गर्वेण पूर्वं विनयवाञ्छा करोति पश्चाद्विवेकत्रलेनात्मनिन्दां करोति तदानन्तसंसारी न भवति

चारित्री होता है ॥ ६५ ॥ आगे जो यतिपनेसे उरकृष्ट है उसको जो अपनेसे हीन आचरे  
वह अनन्तसंसारी है यह दिखलाते हैं;—[ यः ] जो गुनि [ अहं श्रमणः ] में  
यती [ भवामि ] हूं [ इति ] ऐसे अभिमानसे [ गुणतः अधिकस्य ] ज्ञान-  
संयमादिगुणोंकर उरकृष्ट महामुनियोंसे [ विनयं ] आदरको [ प्रत्येपकः ] चाहता  
है वह [ यदि ] जो [ गुणाधरः ] गुणोंको नहीं धारण करनेवाला [ भवन् ]  
हुआ संता [ सः ] झूठे गर्वका करनेवाला वह [ अनन्तसंसारी ] अनन्तसंसारका  
भोगनेवाला [ भवति ] होता है ॥ भावार्थ—जो कोई महामुनिके पाससे अपना-  
विनय चाहता है और क्या हुआ जो यह गुणोंसे अधिक है मैं भी तो यति हूं, ऐसा



अथ श्रामण्येन सममननुमन्यमानस्य विनाशं दर्शयति;—

अवचददि सासणत्थं समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि ।

किरियासु णाणुमण्णदि हवदि हि सो णट्ठचारित्तो ॥ ६५ ॥

अपचदति शासनस्यं श्रमणं दृष्ट्वां प्रद्वेषतो यो हि ।

क्रियासु नानुमन्यते भवति हि स नष्टचारित्रः ॥ ६५ ॥

श्रमणं शासनस्यमपि प्रद्वेषादपचदतः क्रियांस्वननुमन्यमानस्य च प्रद्वेषकपायितत्त्वाच्चारित्रं नश्यति ॥ ६५ ॥

भूतान् । जिणक्खादे वीतरागसर्वज्ञेनाख्यातान् दिव्यध्वनिना प्रणीतान् गणधरदेवैर्ग्रन्थ-  
विरचितानित्यर्थः ॥ ६४ ॥ अथ मार्गस्थश्रमणदूपणे दोषं दर्शयति;—अवचददि अपचदति  
दूपयत्यपवादं करोति । स कः ? जो हि यः कर्त्ता हि स्फुटम् । कम् ? समणं श्रमणं तपो-  
धनम् । कथंभूतम् । सासणत्थं शासनस्यं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्थम् । कस्मात् । पदो-  
सदो निर्दोषिपरमात्मभावनाविळक्षणात् प्रद्वेषात्कपायात् । किं कृत्वा पूर्वं ? दिट्ठा दृष्ट्वां अप-  
चदते । न केवलं अपचदते ? णाणुमण्णदि नानुमन्यते । कासु विपयासु ? किरियासु  
यथायोग्यं वन्दनादिक्रियासु हवदि हि सो भवति हि स्फुटं सः । किं विशिष्टः । णट्ठचा-  
रित्तो कथंचिदतिप्रसङ्गान्नष्टचारित्रो भवतीति । तथाहि—मार्गस्थतपोधनं दृष्ट्वा यदि कथं-  
चिन्मात्सर्यवशाद्दोषग्रहणं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवति स्फुटं पश्चादात्मनिन्दां कृत्वा वर्त्तते  
तदा दोषो नास्ति कालान्तरे वा निवर्त्तते तथापि दोषो नास्ति । यदि पुनस्तत्रैवानुबन्धं कृत्वा  
तीव्रकपायवशादतिप्रसङ्गं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवतीत्ययं भावार्थः । बह्दुश्रुतैरल्पश्रुतत-  
पोधनानां दोषो न ग्राह्यस्तैरपि तपोधनैः किमपि पाठमात्रं गृहीत्वा तेषां दोषो न ग्राह्यः किन्तु  
किमपि सारपदं गृहीत्वा स्वयं भावनेन कर्त्तव्या । कस्मादिति चेत् ? रागद्वेषोत्पत्तौ सत्यां बह-

मुनि सिद्धांतोंमें महापुरुषोंने कहा है ॥ भावार्थ—जो सिद्धांतका जाननेवालाभी है  
संयमी तपस्वीभी है लेकिन सर्वज्ञप्रणीत जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान नहीं करता इसीसे  
वह श्रमणाभास कहा जाता है ॥ ६४ ॥ आगे यथार्थ मुनिपदसहित मुनिकी जो क्रिया  
विनयादि नहीं करता वह चारित्रसे रहित है ऐसा दिखलाते हैं;— [ यः ] जो मुनि  
[ शासनस्यं ] भगवंतकी आज्ञाओं प्रवृत्त [ श्रमणं ] उत्तममुनिको [ दृष्ट्वा ] देख-  
कर [ प्रद्वेषतः ] द्वेषभावसे [ हि ] निश्चयकर [ अपचदति ] अनादरकर बुराई  
करता है [ क्रियासु ] और पूर्वोक्त विनयादि क्रियाओंमें [ न अनुमन्यते ] नहीं  
प्रसन्न होता [ सः ] वह द्वेषी अविनयी मुनि [ हि ] निश्चयसे [ नष्टचारित्रः ]  
चारित्र रहित [ भवति ] है ॥ भावार्थ—जो कोई मुनि दूसरे जिनमार्गी मुनिको  
देखकर द्वेषभावसे निंदा करता है निरादर करता है वह कपायमात्रोंकी परिणतिसे नष्ट-

अथ श्रामण्येनाधिकं हीनमिवाचरतो विनाशं दर्शयति;—

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जोवि होमि समणोत्ति ।

होज्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी ॥ ६६ ॥

गुणतोऽधिकस्य विनयं प्रत्येपको योपि भवामि श्रमण इति ।

भवन् गुणाधरो यदि स भवत्यनन्तसंसारी ॥ ६६ ॥

श्रुतानां श्रतफलं नास्ति तपोधनानां तपःफलं चेति ॥ ६५ ॥ अत्राह शिष्यः—अपवादव्या-  
ख्यानप्रस्तावे शुभोपयोगो व्याख्यातः पुनरपि किमर्थं अत्र व्याख्यानं कृतमिति । परिहारमाह—  
युक्तमिदं भवदीयवचनं किन्तु तत्र सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गव्याख्याने कृते सति तत्रासमर्थतपोधनैः  
फालापेक्षया किमपि ज्ञानसंयमशौचोपकरणादिकं ग्राह्यमित्यपवादव्याख्यानमेव मुख्यम् ।  
अत्र तु यथा भेदनयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपश्चरणरूपा चतुर्विधाराधना भवति ।  
सैशभेदनयेन सम्यक्चारित्ररूपेण द्विधा भवति । तत्राप्यभेदविवक्षया पुनरेकैव धीतरागचा-  
रित्राराधना । तदा भेदनयेन सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपत्रिविधमोक्षमार्गो भवति ।  
स एवाभेदनयेन श्रामण्यापरमोक्षमार्गनामा पुनरेक एव सचाभेदरूपो मुख्यवृत्त्या 'एय-  
ग्गदो समणो' इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः पूर्वमेव व्याख्यातः । अयं तु भेदरूपो मुख्य-  
वृत्त्या शुभोपयोगरूपेणेदानीं व्याख्यातो नास्ति पुनरुक्तदोष इति । एवं समाचारवि-  
शेषविवरणरूपेण चतुर्थस्थले गाथाष्टकं गतम् । अथ स्वयं गुणहीनः सन्नपरेषां गुणा-  
धिकानां योऽसौ विनयं वाञ्छति तस्य गुणविनाशं दर्शयति;—स होदि अणंत-  
संसारी स कथंचिदनन्तसंसारे सम्भवति । यः किं करोति? पडिच्छगो जो दु प्रत्येपको  
यस्तु अभिलापकोऽपेक्षक इति । कम् । विणयं वन्दनादिविनयम् । कस्य सम्बन्धिनम् । गुण-  
दोधिगस्स बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयगुणाम्यामधिकस्यान्यतपोधनस्य । केन कृत्वा । होमि समणोत्ति  
अहमपि श्रमणो भवामीत्यभिमानेन गर्वेण । यदि किम्? होज्जं गुणाधरो जदि निश्चयव्यव-  
हाररत्नत्रयगुणाम्यां हीनः स्वयं यदि चेद्भवतीति । अयमत्रार्थः—यदि चेट्टुणाधिकेभ्यः सका-  
शाद्गर्वेण पूर्वं विनयवाञ्छा करोति पश्चाद्विवेकबलेनात्मनिन्दां करोति तदानन्तसंसारी न भवति

चारित्री होता है ॥ ६५ ॥ आगे जो यत्तिपनेसे उत्कृष्ट है उसको जो अपनेसे हीन आचरे  
वह अनंतसंसारी है यह दिखलाते हैं;—[ यः ] जो गुनि [ अहं श्रमणः ] मैं  
यती [ भवामि ] हूं [ इति ] ऐसे अभिमानसे [ गुणतः अधिकस्य ] ज्ञान-  
संयमादिगुणोंकर उत्कृष्ट महामुनियोंसे [ विनयं ] आदरको [ प्रत्येपकः ] चाहता  
है वह [ यदि ] जो [ गुणाधरः ] गुणोंको नहीं धारण करनेवाला [ भवन् ]  
हुआ संता [ सः ] झूठे गर्वका करनेवाला वह [ अनंतसंसारी ] अनंतसंसारका  
भोगनेवाला [ भवति ] होता है ॥ भावार्थ—जो कोई महामुनिके पाससे अपना-  
विनय चाहता है और क्या हुआ जो यह गुणोंसे अधिक है मैं भी तो यति हूं ऐसा

स्वयं जघन्यगुणः सन् श्रमणोऽहमपीत्यवलेपात्परेषां गुणाधिकानां विनयं प्रतीच्छन्  
श्रामण्यावलेपवशात् कदाचिदनन्तसंसार्यपि भवति ॥ ६६ ॥

अथ श्रामण्येनाधिकस्य हीनं सममिवाचरतो विनाशं दर्शयति;—

अधिगगुणा सामण्ये वदन्ति गुणाधरेहिं किरियासु ।

जदि ते मिच्छुवजुत्ता ह्वन्ति पबभट्टचारित्ता ॥ ६७ ॥

अधिकगुणाः श्रामण्ये वर्तन्ते गुणाधरैः क्रियासु ।

यदि ते मिथ्योपयुक्ता भवन्ति प्रभृष्टचारित्राः ॥ ६७ ॥

स्वयमधिकगुणा गुणाधरैः परैः सह क्रियासु वर्तमाना मोहादसम्यगुपयुक्तत्वाच्चारित्रा-  
ङ्गश्यन्ति ॥ ६७ ॥

अथासत्संगं प्रतिषेध्यत्वेन दर्शयति;—

यदि पुनस्तत्रैव मिथ्याभिमानेन ख्यातिपूजाज्जामार्थं दुराग्रहं करोति तथा भवति । अथवा यदि  
कालान्तरेऽप्यात्मनिन्दां करोति तथापि न भवतीति ॥ ६६ ॥ अथ स्वयमधिकगुणाः सन्तो  
गुणाधरैः सह वन्दनादिक्रियासु वर्तन्ते तदा गुणविनाशं दर्शयति;—वदन्ति वर्तन्ते प्रवर्तन्ते  
जदि यदि चेत् । क वर्तन्ते ? किरियासु वन्दनादिक्रियासु । कैः सह गुणाधरेहिं गुणा-  
धैर्गुणरहितैः । स्वयं कथंभूताः सन्तः । अधिगगुणा अधिकगुणाः । क? सामण्ये श्रामण्ये  
चारित्रे ते मिच्छुपजुत्ता ह्वन्ति ते कथंचिदिति प्रसङ्गान्मिथ्यात्वप्रयुक्ता भवन्ति । न केवलं मि-  
थ्यात्वप्रयुक्ताः पबभट्टचारित्ता प्रभृष्टचारित्राश्च भवन्ति । तथाहि—यदि बहुश्रुतानां पार्श्वे ज्ञानादि-  
गुणवृद्धयर्थं स्वयं चारित्रगुणाधिका अपि वन्दनादिक्रियासु वर्तन्ते तदा दोषो नास्ति । यदि पुनः केवलं  
ख्यातिपूजाज्जामार्थं वर्तन्ते तदातिप्रसङ्गाद्दोषो भवति । इदमत्र तात्पर्यम्—वन्दनादिक्रियासु वा  
तत्त्वविचारार्थं वा यत्र रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति तत्र सर्वत्र दोष एव । ननु भवदीयकल्पनीयमागमे  
नास्ति । नैवम् । आगमः सर्वोऽपि रागद्वेषपरिहारार्थं एव परं किन्तु ये । केचनोत्सर्गापवादरूपेणागम-  
नयविभागं न जानन्ति त एव रागद्वेषी कुर्वन्ति न चान्य इति ॥ ६७ ॥ इति पूर्वोक्तक्रमेण 'एयगगदो'

अहंकार भी करता है वह संसारमें भटकता है । इसकारण अपनेसे बड़ोंका विनय  
करना योग्य है ॥ ६६ ॥ आगे आप यतिपनेसे उत्कृष्ट हुआ जो गुणहीनकी विनया-  
दिक करता है तो उसके चारित्रका नाश होजाता है यह दिखलाते हैं;—[ यदि ]  
जो [ श्रामण्ये ] यतिपनेमें [ अधिकगुणाः ] उत्कृष्ट गुणवाले महामुनि हैं वे  
[ गुणाधरैः ] गुणोंकर रहित हीन मुनियोंके साथ [ क्रियासु ] विनयादि क्रियामें  
[ वर्तन्ते ] प्रवर्तते हैं तो [ ते ] वे उत्कृष्टमुनि [ मिथ्योपयुक्ताः ] मिथ्याभावों-  
कर सहित हुए [ प्रभृष्टचारित्राः ] चारित्रभृष्ट [ भवन्ति ] होजाते हैं ॥ आ-  
द्यार्थः—जो अपनेसे हीनगुणोंवालेका विनय आदर करते हैं वे अज्ञानी हुए संयमका  
नाश करते हैं ॥ ६७ ॥ आगे शुभमंगलिका निषेध करते हैं;—[ निमित्तस्यत्रार्थपदः ]

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि ।

लोगिगजणसंसर्गं ण जहदि जदि संजदो ण ह्वदि ॥ ६८ ॥

निश्चितसूत्रार्थपदः समितकपायस्तपोधिकश्चापि ।

लौकिकजनसंसर्गं न जहाति यदि संयतो न भवति ॥ ६८ ॥

यतः सकलस्यापि विश्वाचकस्य सहस्रक्षमणः शब्दब्रह्मणस्तद्वाच्यस्य सकलस्यापि सह-  
क्षमणो विश्वस्य च युगपदनुस्यूततदुभयज्ञेयाकारतयाधिष्ठानमृतस्य सहस्रक्षमणो ज्ञानृतत्वस्य  
निश्चयनयान्निश्चितसूत्रार्थपदत्वेन निरुपरागोपयोगत्वात् समितकपायत्वेन बहुशोऽभ्यस्तनि-  
ष्कम्पोपयोगत्वात्तपोधिकत्वेन च सुष्ठु संयतोपि सप्तार्चिःसंगतं तोयमिवावश्यं भाविविकार-

इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाभिधानस्तृतीयान्तराधिकारः  
समाप्तः । अथानन्तरं द्वात्रिंशद्गाथापर्यन्तं पञ्चभिः स्थलैः शुभोपयोगाधिकारः कथ्यते । तत्रादौ  
लौकिकसंसर्गनिषेधमुख्यत्वेन 'णिच्छिदसुत्तःथपदो' इत्यादिपाठक्रमेण गाथापञ्चकम् । तदनन्तरं  
सरागसंयमापरनामशुभोपयोगस्वरूपकथनप्रधानत्वेन 'समणा सुहुपउत्ता' इत्यादि सूत्राष्टकम् ।  
ततश्च पात्रापात्रपरीक्षाप्रतिपादनरूपेण 'रागो पसत्थमूदो' इत्यादि गाथापट्टम् । ततः परमा-  
चारादिविहितक्रमेण पुनरपि संक्षेपरूपेण समाचारव्याख्यानप्रधानत्वेन 'दिट्ठापगदं वत्थु' इत्यादि  
सूत्राष्टकम् । ततः परं पञ्चरत्नमुख्यत्वेन 'जे अयथा गहिदत्था' इत्यादि गाथापञ्चकम् । एवं  
द्वात्रिंशद्गाथाभिः स्थलपञ्चकेन चतुर्थान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा अथ लौकिकसंसर्ग  
प्रतिषेधयति;—णिच्छिदसुत्तत्थपदो निश्चितानि ज्ञातानि निर्णोतान्यनेकान्तस्वभावनिजशु-  
द्धात्मादिपदार्थप्रतिपादनानि सूत्रार्थपदानि येन स भवति निश्चितसूत्रार्थपदः समिदकसाओ  
परत्रिपये क्रोधादिपरिहारेण तथाभ्यन्तरे परमोपशमभावपरिणतनिजशुद्धात्मभावनायत्नेन च  
शमितकपायः । तओधिगो चावि अनशनादिवहिरङ्गितपोत्रलेन तथैवाभ्यन्तरे शुद्धात्मभाव-  
नाविषये प्रतिपन्नाद्विजयनाच्च तपोऽधिकश्चापि सन् स्वयं संयतः कर्त्ता लोगिगजणसंसर्गं  
ण चयदि जदि लौकिकाः स्वेच्छाचारिणस्तेषां संसर्गो लौकिकसंसर्गस्तं न लजति यदिचेत्  
संजदो णविदि तर्हि संयतो न भवतीति । अयमत्रार्थः—स्वयं भावितात्मापि यद्यसंभृतजनसंसर्गं

निश्चय करलिये हैं सिद्धांत और जीवादिपदार्थ जिसने [ समितकपायः ] जिसने  
कपायोंको शांत किया है [ च ] और जो [ तपोऽधिकः अपि ] तपस्याकर उत्कृष्ट  
है तो भी [ यदि ] जो [ लौकिकजनसंसर्गं ] चारित्र्य श्रृष्ट अज्ञानी मुनियोंकी  
संगति [ न जहाति ] नहीं छोड़ता है तो वह [ संयतः ] संयमी मुनि [ न भ-  
वति ] नहीं होसकता ॥ भावार्थ—जो भगवत्प्रणीत शब्द ब्रह्मका जाननेवाला है,  
आत्मवचको जानता है, बहुत अभ्यासकर निष्कंप उपयोगी है और तपकी अधि-  
कतासे उत्कृष्ट संयमी भी है इत्यादि अनेक गुणोंकर युक्त है तौ भी लौकिक मुनिकी  
जो संगति नहीं छोड़े तो संयमी नहीं होसकता । जैसे आगके संबंधसे उत्तम शीतल

त्वात् लौकिकसंगदसंयत एव स्यात्तत्स्तत्संगः सर्वथा प्रतिषेध्य एव ॥ ६८ ॥

अथ लौकिकलक्षणमुपलक्षयति;—

णिग्गंथं पञ्चइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्महिं ।

सो लोगिगोदि भणिदो संजमतवसंपजुत्तोवि ॥ ६९ ॥

निर्ग्रन्थं प्रव्रजितो वर्तते यथैहिकैः कर्मभिः ।

स लौकिक इति भणितः संयमतपःसंप्रयुक्तोपि ॥ ६९ ॥

प्रतिज्ञातपरमनैर्ग्रन्थ्यप्रव्रज्यत्वादुदूढसंयमतपोभारोपि मोहबहुलतया श्लथीकृतशुद्धचेतन-  
व्यवहारो मुहुर्मुन्यव्यवहारेण व्याधूर्णमानत्वादैहिककर्मानिवृत्तौ लौकिक इत्युच्यते ॥ ६९ ॥

न त्यजति तदातिपरिचयादप्रिसङ्गतं जलमिव विकृतिभावं गच्छतीति ॥ ६८ ॥ अथानुकम्पा-  
लक्षणं कथ्यते;—

तिसिदं व भुक्खिदं वा दुहिदं दट्टण जो हि दुहिदमणो ।

पडिवज्जदि तं किञ्चया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥ १ ॥

तिसिदं व भुक्खिदं वा दुहिदं दट्टण जो हि दुहिदमणो पडिवज्जदि  
तृपितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा दट्टण कमपि प्राणिनं यो हि स्फुटं दुःखितमनाः सन्  
प्रतिपद्यते स्वीकरोति । कं कर्मतापन्नं । तं प्राणिनम् । कया ? किञ्चया रूपया दयापरिणामेन  
तस्सेसा होदि अणुकंपा तस्य पुरुषस्यैवा प्रत्यक्षीभूता शुभोपयोगरूपानुकम्पा दया भव-  
तीति । इमां चानुकम्पां ज्ञानी स्वस्थभावनामविनाशयन् संक्लेशपरिहारेण करोति । अज्ञानी पुनः  
संक्लेशेनापि करोतीत्यर्थः । अथ लौकिकलक्षणं कथयति;—णिग्गंथो पञ्चइदो वट्टादिपरि-  
प्रहरहितत्वेन निर्ग्रन्थोऽपि दीक्षाप्रहणेन प्रव्रजितोऽपि वट्टदि जदि वर्तते यदि चेत् । कैः ?  
एहिगेहि कम्महिं ऐहिकैः कर्मभिः भेदाभेदारत्नत्रयभावनाशकैः एषातिपूजालाभनिमित्तैर्ज्योति-  
पमद्यवादिवैदिकामिरेहिकजीवनोपायकर्मभिः सो लोगिगोत्ति भणिदो स लौकिको व्यावहा-  
रिक इति भणितः । किं विशिष्टोऽपि संजमतवसंपजुदो चावि द्रव्यरूपसंयमतपोभ्यां संयु-

जल अवश्य गर्भं विकारको धारण करता है उसीतरह कुसंगतिसे अवश्य नाश होता  
है । इसलिये कुसंगति त्यागने योग्य है ॥ ६८ ॥ जागे लौकिकमुनिकालक्षणं कहते  
हैं;—[नैर्ग्रन्थ्यं प्रव्रजितः] निर्ग्रन्थ मुनिपदको धारणकर दीक्षित हुआ मुनि [यदि]  
जो [ ऐहिकैः ] इस लोकसंबंधी [ कर्मभिः ] संसारी कर्म ज्योतिष वैद्यक मंत्रयं-  
दिकोंकर [ वर्तते ] प्रवर्तते तो [ सः ] वह भृष्टमुनि [ संयमतपःसंप्रयुक्तोपि ]  
संयम तपस्याकर सहित हुआ भी [ लौकिकः ] लौकिक [ इति ] ऐसे नामसे  
[ भणितः ] कहा है ॥ भावार्थ—यद्यपि निर्ग्रन्थ दीक्षाकी प्रतिज्ञा की है संयमतप-  
स्याका भार भी लिया है लेकिन जो मोहकी अधिकतासे शुद्धचेतनाव्यवहारको शिथिल  
करता है, 'मं मनुष्यं हं' ऐसे अभिमानकर घूम रहा है और इसलोकसंबंधी कर्मोंसे

अथ सत्सङ्गं विधेयत्वेन दर्शयति;—

तस्मात् समं गुणादो समणो समणं गुणोहिं वा अहियं ।

अधिवसदु तस्मिन् णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं ॥ ७० ॥

तस्मात्समं गुणात् श्रमणः श्रमणं गुणैर्वाधिकम् ।

अधिवसतु तत्र नित्यं इच्छति यदि दुःखपरिमोक्षम् ॥ ७० ॥

यतः परिणामस्वभावत्वेनात्मनः सत्तार्थिःसंगतं तोयमिवावश्यं भाविविकारत्वालौकिक-  
कसंगात्संयतोप्यसंयत एव स्यात् । ततो दुःखमोक्षार्थिना गुणैः समोऽधिको वा श्रमणः

कथापीत्यर्थः ॥ ६९ ॥ अथोत्तमसंसर्गः कर्तव्य इत्युपदिशति;—तस्माद्दीनसंसर्गाद्गुण-

हानिर्भवति तस्मात्कारणात् अधिवसदु अधिवसतु तिष्ठतु । स कः कर्ता । समणो श्रमणः ।

क ? तस्मिन् तस्मिन्नधिकरणभूते णिच्चं नित्यं सर्वकालम् । तस्मिन्कुत्र ? समणं श्रमणे लक्षण-

वशादधिकरणे कर्म पठ्यते । कथंभूते श्रमणे ? समं समे समाने । कस्मात् । गुणादो बाह्या-

म्यन्तरत्नत्रयलक्षणगुणात् । पुनरपि कथंभूते ? अहियं वा स्वस्मादधिके वा । कैः ? गुणोहिं

मूलोत्तरगुणैः । यदि किम् ? इच्छदि जदि इच्छति वाञ्छति यदि चेत् । कम् ? दुक्खप-

रिमोक्खं स्वात्मोत्थसुखविलक्षणानां नारकादिदुःखानां मोक्षं दुःखपरिमोक्षमिति । अथ विस्तरः—

यथाग्निंसंयोगाज्जलस्य शीतलगुणविनाशो भवति तथा व्याघ्रहारिकजनसंसर्गात्संयतस्य संयमगुण-

विनाशो भवतीति ज्ञात्वा तपोधनः कर्त्ता समगुणं गुणाधिकं वा तपोधनमाश्रयति तदास्य तपो-

धनस्य यथा शीतलभाजनसहितशीतलजलस्य शीतलगुणरक्षा भवति तथा समगुणसंसर्गाद्गुणरक्षा

रहित नदीं हुआ ऐसा भ्रष्टमुनि लौकिक कहलाता है । ऐसैकी संगति मुनिको त्यागने

योग्य है ॥ ६९ ॥ आगे अच्छी संगति करनी चाहिये ऐसा दिखलाते हैं;—[तस्मात्]

इसकारणसे अर्थात् आगेके संबंधसे जलकीतरह मुनिभी लौकिककी कुसंगतिसे असंयमी

होजाता है इससे कुसंगतिको त्यागकर [श्रमणः] उत्तम मुनि [यदि] जो [दुःख-

परिमोक्षं] दुःखसे मुक्त हुआ (छटना) [इच्छति] चाहता है तो [गुणात्

समं] गुणोंसे अपने समान [वा] अथवा [गुणैः अधिकं] अपनेसे गुणोंमें

अधिक [श्रमणम्] श्रमणको [तत्र] इन दोनोंकी संगतिमें [अधिवसतु]

निवास करो ॥ भावार्थ—जो मोक्षाभिलाषी मुनि है उसको चाहिये कि यातो गुणों-

कर अपने समान हो या अधिक हो ऐसे दोनोंकी संगति करे अन्यकी न करे । जैसे

शीतलघरके कौनोंमें शीतलजलके रखनेसे शीतलगुणकी रक्षा होती है वह जल अतिशी-

तल होजाता है वरफमिश्रीकी संगतिसे अधिक शीतल होजाता है उसीतरह गुणाधिक

पुरुषकी संगतिसे गुण बढ़ते हैं इसलिये सत्संगति करनी योग्य है । मुनिको चाहियेकि

पहली अवस्थामें तो पूर्व कहीहुई शुभोपयोगसे उत्पन्न प्रवृत्तिको स्वीकार करे पीछे क्र-

श्रमणेन नित्यमेवाधिवसनीयः तथास्य शीतापवरककोणनिहितशीततोयवत्समगुणसंगाद्गुण-  
रक्षा शीततरतुहिनशर्करासंपृक्तशीततोयवत् गुणासंगात् गुणवृद्धिः ॥ ७० ॥ “इत्यध्यास  
शुभोपयोगजनितां काञ्चित्प्रवृत्तिं यतिः सम्यक् संयमसौष्ठवेन परमां कामन्निवृत्तिं क्रमात् ।  
हेलाक्रान्तसमस्तवस्तुविसरप्रस्ताररम्योदयां ज्ञानानन्दमयीं दशामनुभवत्वेकान्ततः शाश्व-  
तीम्” ॥ इति शुभोपयोगप्रज्ञापनम् । अथ पञ्चरत्नम् । “तत्रस्यास्य शिख-  
ण्डिमण्डनमिव प्रद्योतयत्सर्वतो द्वैतीयीकमथार्हतो भगवतः संक्षेपतः शासनम् । व्याकुर्व-  
जगतो विलक्षणपथां संसारमोक्षस्थितिं जीयात्संप्रति पञ्चरत्नमनघं सूत्रैरिमैः पञ्चभिः” ॥

अथ संसारतत्त्वमुद्घाटयति;—

जे अजधागहिदत्था एदे तच्चत्ति णिच्छिदा समये ।

अचंतफलसमिद्धं भ्रमन्ति तेतो परं कालं ॥ ७१ ॥

ये अयथागृहीतार्था एते तत्वमिति निश्चिताः समये ।

अत्यन्तफलसमृद्धं भ्रमन्ति ते अतः परं कालम् ॥ ७१ ॥

ये स्वयमविवेकतोऽन्यथैव प्रतिपद्यार्थानित्यमेव तत्त्वमिति निश्चयमारचयन्तः सततं

भवति । यथा च तस्यैव जलस्य कर्पूरशर्करादिशीतलद्रव्यनिक्षेपे कृते सति शीतलगुणवृद्धिर्भवति  
तथा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयगुणाधिकसंसर्गाद्गुणवृद्धिर्भवतीति सूत्रार्थः ॥ ७० ॥ इतःपरं  
पञ्चमस्थले संक्षेपेण संसारस्वरूपस्य मोक्षस्वरूपस्य च प्रतीत्यर्थं पञ्चरत्नभूतगाथापञ्चकेन व्या-  
ख्यानं करोति—तद्यथा—अथ संसारस्वरूपं प्रकटयति;—अत्यन्तफलसमृद्धं भ्रमन्ति न विद्यते-  
ऽन्त इत्यन्तं ते परं कालं द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपञ्चप्रकारसंसारपरिभ्रमणरहितशुद्धात्मस्वरूपभाव-  
नाच्युताः सन्तः परिभ्रमन्ति । कम् । परं कालं अनन्तकालम् । कथंभूतम् । नारकादिदुःख-

प्रकाशनेवाली केवलज्ञानानन्दमयी अविनाशी अवस्थाको सब तरहसे पाकर अपने अर्ती-  
द्रिय सुखको अनुभवो ॥ ७० ॥ इसप्रकार यह शुभोपयोगका अधिकार पूर्ण हुआ  
आगे पंचरत्नोंको पांच गाथाओंसे कहते हैं । यह पंचरत्न इस सिद्धांतका मुकुट है और  
भगवंतके अनेकांतमतको संक्षेपसे कहता है और संसारमोक्षकी स्थितिको प्रगट करता  
है इसलिये यह पंचरत्न जयवंत होवे । संसारतत्त्व १ मोक्षतत्त्व २ मोक्षतत्त्वका सा-  
धन ३ मोक्षतत्त्वसाधन सर्वमनोरथस्थानकथन ४ और शिष्यजनोंको शास्त्रपठनका लाभ  
५ ये पांच रत्न हैं । आगे पांचोंमेंसे प्रथमही संसारतत्त्वको कहते हैं;—[ ये ] जो  
पुरप [ समये ] जिनमतमें द्रव्यालिंग अवस्था धारणकर तिष्ठते भी हैं लेकिन [अय-  
थागृहीतार्थाः] अन्यथा पदार्थोंका स्वरूप ग्रहण करते हुए [ एते तत्त्वं ] जो  
पदार्थ हमने जानलिये हैं येही वस्तुका स्वरूप है [ इति ] ऐसा निध्यापना मानकर  
[ निश्चिताः ] निश्चय कर बैठे हैं [ ते ] ऐसे वे श्रमणामास मुनि [ अतः ] इस वर्त-  
मानकालसे आगे [अत्यन्तफलसमृद्धं] अनंतभ्रमणरूपी फलकर पूर्ण [ परं कालं ]

समुपचीयमानमहामोहमलमलीमसमानसतया नित्यमज्ञानिनो भवन्ति ते खलु समये स्थिता अप्यनासादितपरमार्थश्रामण्यतया श्रमणाभासाः सन्तोऽनन्तकर्मफलोपभोगप्राग्भयंकर-  
मनन्तकालमनन्तभवान्तरपरावर्तैरनवस्थितवृत्तयः संसारतत्त्वमेवावबुध्यताम् ॥ ७१ ॥

अथ मोक्षतत्त्वमुदघाटयति;—

अजधाचारविजुक्तो जघत्थपदणिच्छिदोपसंतप्पा ।

अफले चिरं ण जीवदि इह सो संपुण्णसामण्णो ॥ ७२ ॥

अयथाचारवियुक्तो यथार्थपदनिश्चितोपशान्तात्मा ।

अफले चिरं न जीवति इह स संपूर्णश्रामण्यः ॥ ७२ ॥

यद्विलोकचूलिकायमाननिर्मलविवेकदीपिकालोकशालितया यथावस्थितपदार्थनिश्चयनि-

रूपात्यन्तफलसमृद्धं । पुनरपि कथंभूतम्? अतो वर्त्तमानकाळात्परं भाविनमिति । अयमत्रार्थः—  
इत्थंभूतसंसारपरिभ्रमणपरिणतपुरुषा एवाभेदेन संसारस्वरूपं ज्ञातव्यमिति ॥ ७१ ॥ अथ मो-  
क्षस्वरूपं प्रकाशयति;—अजधाचारविजुक्तो निश्चयव्यवहारपञ्चाचारभावनापरिणतत्वादयथा-  
चारवियुक्तः विपरीताचाररहित इत्यर्थः । जघत्थपदणिच्छिदो सहजानन्दैकत्वभाविनजपर-  
मात्मादिपदार्थपरिज्ञानसहितत्वाद्यथार्थपदनिश्चितः पसंतप्पा विशिष्टपरमोपशमभावपरिणतनि-  
जात्मद्रव्यभावनासहितत्वात्प्रशान्तात्मा जो यः कर्त्ता सो संपुण्णसामण्णो स सम्पूर्णश्राम-

अनंतकालपर्यंत [भ्रमन्ति] भटकते हैं ॥ भावार्थ—ये अज्ञानी मुनि मिथ्याबुद्धिसे पदां-  
र्थका श्रद्धान नहीं करते हैं अन्यकी अन्यकल्पना करते हैं और हमेशा महामोहमलकरं चि-  
त्तकी मलिनतासे अविवेकी हैं यद्यपि द्रव्यालोकको धारण कर रहे हैं तौभी परमार्थमुनिप-  
नेको नहीं प्राप्त हुए हैं जो मुनिके समान मालूम पडते हैं वे अनंतकालतक अनंतपरावर्त-  
नकर भयानक कर्मफलको भोगते हुए भटकते हैं । इसलिये वे श्रमणाभास मुनि संसारतत्त्व  
जानने चाहिये दूसरा कोई संसार नहीं है, जो जीव मिथ्याबुद्धि लिये हुए हैं वेही जीव  
संसार हैं ॥७१॥ आगे मोक्षतत्त्वको प्रगट करते हैं;—[अयथाचारवियुक्तः] जो पुरुष  
मिथ्या आचरणसे रहित है अर्थात् यथावत् स्वरूपाचरणमें प्रवर्तता है [ यथार्थपद-  
निश्चितः ] जैसा कुछ पदार्थोंका स्वरूप है वैसाही निश्चल श्रद्धान करलिया है [ प्रशां-  
न्तात्मा ] और रागद्वेषसे रहित है ऐसा [ सः ] वह पुरुष [ संपूर्णश्रामण्यः ]  
संपूर्ण मुनिपदवीसहित हुआ [ इह ] इस [ अफले ] फलरहित संसारमें [ चिरं ]  
बहुत कालतक [ न जीवति ] प्राणोंको नहीं धारणकरता है थोड़ेकालतक ही रहता  
है ॥ भावार्थ—त्रिलोकका चूडामणिरत्नसमान निर्मल विवेकरूपी दीपकके प्रकाशकर  
जिस महामुनिने यथावत् पदार्थोंका निश्चय किया है और एक अपने ही स्वरूपको मु-  
ख्यपनेसे आचरता है विपरीत आचरणसे रहित हुआ सदाकाल ज्ञानी है ऐसा परिपूर्ण  
मुनिपदवीका धारक महामुनि पूर्वबंधे समस्त कर्मफलोंकी निर्जरा करता है नवीनकर्म-



वर्तितौत्सुक्यस्वरूपमन्धरसततोपशान्तात्मा सन् स्वरूपमेकमेवामिमुख्येन चरन्नयथाचार-  
विशुक्तो नित्यं ज्ञानी स्यात् स खलु संपूर्णश्रामण्यः साक्षात् श्रमणो हेलावकीर्णसकलप्रा-  
क्तनकर्मफलत्वादिनिष्पादितनूतनकर्मफलत्वाच्च पुनः प्राणधारणदन्यमनास्कन्दन् द्वितीयभा-  
वपरावर्ताभावान् शुद्धस्वभावावस्थितवृत्तिर्मोक्षतत्त्वमवबुध्यताम् ॥ ७२ ॥

अथ मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वमुद्घाटयति;—

सम्मं धिदिदपदत्था चत्ता उवहिं वहित्थमज्झत्थं ।

विसयेसु णावसत्ता जे ते सुद्धत्ति णिदिट्ठा ॥ ७३ ॥

सम्यग्विदितपदार्थास्त्यक्त्वोपधिं वहित्थमध्यस्थम् ।

विषयेषु नावसक्ता ये ते शुद्धा इति निर्दिष्टाः ॥ ७३ ॥

अनेकान्तकलितसकलज्ञातृज्ञेयतत्त्वयथावस्थितस्वरूपपाण्डित्यशौण्डाः सन्तः समस्तव-  
हिरङ्गान्तरङ्गसङ्गसङ्गतिपरित्यागविविक्तान्तश्चकचकायमानानन्तशक्तिचैतन्यभास्वरात्मतत्त्व-

प्यः सन् चिरं ण जीवदि चिरं बहुतरकालं न जीवति न तिष्ठति अफले शुद्धात्मसंवित्ति-  
समुत्पन्नसुखाभृतरसास्वादरहितत्वेनाफले संसारे । किं ? शीघ्रं मोक्षं गच्छतीति । अयमत्र भावार्थः—  
इत्थंभूतमोक्षतत्त्वपरिणत पुरुषएवाभेदेन मोक्षस्वरूपं ज्ञातव्यमिति ॥ ७२ ॥ अथ मोक्षकार-  
णमाख्याति;—सम्मं धिदिदपदत्था संशयविपर्ययानध्यवसायरहितानन्तज्ञानादिस्वभावनिज-  
परमात्मपदार्थप्रभृतिसमस्तवस्तुविचारचतुरचित्चातुर्थ्यप्रकाशमानसातिशयपरमविवेकज्योतिषा स-  
म्यग्विदितपदार्थाः । पुनरपि किं रूपाः ? विसयेसु णावसत्ता पञ्चेन्द्रियविषयाधीनरहितत्वेन  
निजात्मतत्त्वभावनारूपपरमसमाधिसंजातपरमानन्दैकलक्षणसुखसुधारसास्वादानुभवनफलेन विप-  
येषु मनागप्यनासक्ताः । किं कृत्वा । पूर्वं स्वस्वरूपपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा चत्ता त्यक्त्वा । कम् ?  
उवहिं उपधिं परिग्रहं । किं विशिष्टम् ? वहित्थमज्झत्थं वहित्थं क्षेत्रायनेकविधं मध्यस्थं

बंध फलका उत्पन्न करनेवाला नहीं होता इससे फिर संसारीक प्राणोंके धारणकरनेकी  
दीनताको नहीं करता । जिसके दूसरी पर्यायका अभाव है ऐसा यह शुद्धस्वरूपमें स्थित  
मुनि है वही तुम मोक्षतत्त्व जानो अन्य मोक्ष नहीं । जो परद्रव्यसे मुक्त हुआ स्वरूपमें  
लीन है वही जीव मुक्त है ॥ ७२ ॥ आगे मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व दिखलाते हैं;—  
[ ये ] जो जीव [ सम्यग् ] यथार्थ [ विदितपदार्थाः ] समस्ततत्त्वोंको जानते  
हैं तथा [ वहित्थमध्यस्थं ] बाह्य और अंतरंग रागादि [ उपधिं ] परिग्रहको  
[ त्यक्त्वा ] छोड़कर [ विषयेषु ] पांच इन्द्रियोंके स्पर्शादिविषयोंमें [ न अव-  
सक्ताः ] नहीं लीन हैं [ ते ] वे जीव [ शुद्धाः ] निर्मल भगवंत मोक्षतत्त्वके साधन  
हैं [ इति ] ऐसे [ निर्दिष्टाः ] कहे गये हैं ॥ भावार्थ—जो अनेकांतपने महित  
सकल शेष शायकतत्त्वोंके यथार्थजाननेमें प्रवीण हैं, समस्त बाह्यअंतर परिग्रहका त्याग-  
कर दैदीप्यमान हुए हैं, अनंतज्ञानशक्तिपर विराजमान आत्मतत्त्वजिनके पटमें है, इ-

स्वरूपाः स्वरूपगुप्तसुप्तकल्पान्तस्तत्त्ववृत्तितया विषयेषु मनागप्यासक्तिमनासादयन्तः समस्तानुभाववन्तो भगवन्तः शुद्धा एवासंसारघटितविकटकर्मकाटविघटनपटीयसाध्य-वसायेन प्रकटीक्रियमाणानुदानावमोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वमवबुध्यताम् ॥ ७३ ॥

अथ मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वं सर्वमनोरथस्थानत्वेनाभिनन्दयति;—

सुद्धस्स य सामण्यं भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं ।

सुद्धस्स य णिव्वाणं सोच्चिय सिद्धो णमो तस्स ॥ ७४ ॥

शुद्धस्य च श्रामण्यं भणितं शुद्धस्य दर्शनं ज्ञानम् ।

शुद्धस्य च निर्वाणं स एव सिद्धो नमस्तस्मै ॥ ७४ ॥

यत्तावत्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्ययौगपद्यप्रवृत्तैकाग्र्यलक्षणं साक्षान्मोक्षमार्गभूतं श्रामण्यं

गिथ्यात्वादिचतुर्दशभेदभिन्नम् । जे एवं गुणविशिष्टाः ये महात्मानः ते सुद्धत्ति णिद्धिटा ते शुद्धात्मानः शुद्धोपयोगिनः सिद्ध्यन्ति इति निर्दिष्टाः कथिताः । अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति—इत्थंभूता परमयोगिन एवाभेदेन मोक्षमार्गा इत्यवबोद्धव्याः ॥ ७३ ॥ अथ शुद्धोपयोगलक्षणमोक्षमार्गं सर्वमनोरथस्थानत्वेन प्रदर्शयति;—भणियं भणितं । किं? सामण्यं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यैकाग्र्यशुभ्रिन्नादिसमभावपरिणतिरूपं साक्षान्मोक्षकारणं यच्छ्रामण्यम् । तत्तावत्कस्य? सुद्धस्स य शुद्धस्य च शुद्धोपयोगिन एव सुद्धस्स दंसणं णाणं त्रैलोक्योदरविवर-घर्त्तित्रिकालविषयसमस्तवस्तुगतानन्तर्धर्मैकसमयसामान्यविशेषपरिच्छित्तिसमर्थं दर्शनज्ञानद्वयं तच्छुद्धस्यैव सुद्धस्स य णिव्वाणं अव्यावाधानन्तसुखादिगुणाधारभूतं पराधीनरहितत्वेन स्वायत्तं यन्निर्वाणं तच्छुद्धस्यैव सोच्चिय सिद्धो यो लौकिकमायाजनरसदिग्धिजयमन्नयन्नादिसिद्ध-विलक्षणस्वशुद्धात्मोपलम्भलक्षणटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावो ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मरहितत्वेन सम्य-

न्द्रियके विषयोंमें किसीसमय भी आसक्त नहीं होते, स्वरूपमें ऐसे लीन हैं कि मानों सुखसे सोरहे हैं इसलिये विषयोंसे रहित हैं, संसारमें लगे कर्मरूप किवाटोंके उचाड़ने-को जिन्होंने अपनी शक्ति प्रगट की है और महाप्रभावसहित हैं ऐसे शुद्धजीव हैं वे मोक्षतत्त्वके साधक जानने चाहिये ॥ ७३ ॥ आगे मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व सर्व मनोवांछित अर्थोंका स्थान है यह दिखलाते हैं;—[ शुद्धस्य ] जो परमवीतरागभावको प्राप्त हुआ मोक्षका साधक परमयोगीश्वर है उसके [ श्रामण्यं ] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्यकी एकताकर एकाग्रतालिये हुए साक्षात् मोक्षमार्गरूप यतिपद [ भणितं ] कहा है [ च ] और [ शुद्धस्य ] उसी शुद्धोपयोगी मोक्षसाधक मुनीश्वरके [ दर्शनं ज्ञानं ] अतीत अनागत वर्तमान अनंतपर्याय सहित सकलपदार्थोंको सामान्यविशेष-ताकर देखना जानना भी कहा है [ च ] तथा [ शुद्धस्य ] उसी शुद्धोपयोगी मोक्ष-मार्गी मुनीश्वरके [ निर्वाणं ] निरावरण अनंतज्ञानदर्शन सुखवीर्यसहित परमनिर्मल मोक्षअवस्था भी है [ स एव ] वही शुद्ध मोक्षसाधन [ सिद्धः ] टंकोत्कीर्ण परम

वर्तितौसुंक्ष्मस्वरूपमन्थरसततोपशान्तात्मा सन् स्वरूपमेकमेवाभिमुख्येन चरन्नयथाचार-  
वियुक्तो नित्यं ज्ञानी स्यात् स खलु संपूर्णश्रामण्यः साक्षात् श्रमणो हेलावकीर्णसकलप्रा-  
क्तनकर्मफलत्वादिनिष्पादितनूतनकर्मफलत्वाच्च पुनः प्राणधारणदन्यमनास्कन्दन् द्वितीयभा-  
वपरावर्ताभावान् शुद्धस्वभावावस्थितवृत्तिर्मोक्षतत्त्वमवबुध्यताम् ॥ ७२ ॥

अथ मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वमुद्घाटयति;—

सम्मं विदिदपदत्था चत्ता उवहिं वहित्थमज्झत्थं ।

विसयेसु णावसत्ता जे ते सुद्धत्ति णिदिट्ठा ॥ ७३ ॥

सम्यग्विदितपदार्थास्त्यक्त्वोपधिं वहिस्समध्यस्सम् ।

विपयेषु नावसत्ता ये ते शुद्धा इति निर्दिष्टाः ॥ ७३ ॥

अनेकान्तकलितसकलज्ञातृज्ञेयतत्त्वयथावस्थितस्वरूपपाण्डित्यशौण्डाः सन्तः समस्तव-  
हिरङ्गान्तरङ्गसङ्गसङ्गतिपरित्यागविविक्तान्तश्चकचकायमानानन्तशक्तिचैतन्यभास्वरात्मतत्त्व-

ण्यः सन् चिरं ण जीवदि चिरं बहुतरकाळं न जीवति न तिष्ठति अफले शुद्धात्मसंवित्ति-  
समुत्पन्नसुखाभूतरसास्वादादरहितत्वेनाफले संसारे । किं ? शीघ्रं मोक्षं गच्छतीति । अयमत्र भावार्थः—  
इत्थंभूतमोक्षतत्त्वपरिणत पुरुषंप्रवाभेदेन मोक्षस्वरूपं ज्ञातव्यमिति ॥ ७२ ॥ अथ मोक्षकार-  
णमाह्याति;—सम्मं विदिदपदत्था संशयविपर्ययानध्यवसायरहितानन्तज्ञानादित्त्वभावनिज-  
परमात्मपदार्थप्रवृत्तिसमस्तवस्तुविचारचतुरचित्तचातुर्यप्रकाशमानसातिशयपरमविवेकज्योतिषा स-  
म्यग्विदितपदार्थाः । पुनरपि किं रूपाः ? विसयेसु णावसत्ता पञ्चेन्द्रियविपयाधीनरहितत्वेन  
निजामतत्त्वभावनारूपपरमसमाधिसंजातपरमानन्दैकलक्षणसुखसुधारसास्वादानुभवनफलेन विप-  
येषु मनागप्पनासक्ताः । किं कृत्वा । पूर्वं स्वस्वरूपपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा चत्ता त्यक्त्वा । कम् ?  
उवहिं उपधिं परिग्रहं । किं विशिष्टम् ? वहित्थमज्झत्थं वहिस्सं क्षेत्राद्यनेकविधं मध्यस्सं

बंध फलका उत्पन्न करनेवाला नहीं होता इससे फिर संसारीक प्राणोंके धारणकरनेकी  
दीनताको नहीं करता । जिसके दूसरी पर्यायका अभाव है ऐसा यह शुद्धस्वरूपमें स्थित  
मुनि है वही तुम मोक्षतत्त्व जानो अन्य मोक्ष नहीं । जो परद्रव्यसे मुक्त हुआ स्वरूपमें  
लीन है वही जीव मुक्त है ॥ ७२ ॥ आगे मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व दिखलाते हैं;—  
[ ये ] जो जीव [ सम्यग् ] यथार्थ [ विदितपदार्थाः ] समस्ततत्त्वोंको जानते  
हैं तथा [ वहिस्समध्यस्सं ] बाह्य और अंतरंग रागादि [ उपधिं ] परिग्रहको  
[ त्यक्त्वा ] छोड़कर [ विपयेषु ] पांच इन्द्रियोंके स्पर्शादिविपर्ययोंमें [ न अव-  
सत्ताः ] नहीं लीन हैं [ ते ] वे जीव [ शुद्धाः ] निर्मल भगवंत मोक्षतत्त्वके साधन  
हैं [ इति ] ऐसे [ निर्दिष्टाः ] कहे गये हैं ॥ भावार्थ—जो अनेकान्तपने सहित  
सफल शेष शायफतत्त्वोंके यथार्थज्ञाननेमें प्रवीण हैं, समस्त बाह्यअंतर परिग्रहका त्याग-  
कर दैदीप्यमान हुए हैं, अनंतज्ञानशक्तिपर विराजमान आत्मतत्त्वजिगमे पटमें है, इ-

यित्वेन सकलार्थसार्थात्मकस्य प्रवचनस्य सारभूतं भूतार्थस्वसंवेद्यदिव्यज्ञानानन्दस्वभावम-  
नुभूतपूर्वं भगवन्तमात्मानमवाप्नोति ॥ ७५ ॥ गाथासमाप्तिः ॥

इति तत्त्वदीपिकायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां प्रवचनसारवृत्तौ चरणानुस-  
चिकाचूलिकानामकतृतीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ ३ ॥

त्मादिपदार्थानां तत्साध्यस्य निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्य च तथैव तत्त्वार्थश्चद्वानलक्षणसम्पदर्शनस्य  
तद्विषयभूतानेकान्तात्मकपरमात्मादिद्रव्याणां तेन व्यवहारसम्पक्त्वेन साध्यस्य निजशुद्धात्मरुचि-  
रूपनिश्चयसम्पक्त्वस्य तथैव च व्रतसमितिगुल्याद्यनुष्ठानरूपस्य सरागचारित्रस्य तेनैवसाध्यस्य  
स्वशुद्धात्मनिश्चलानुभूतिरूपस्य वीतरागचारित्रस्य च प्रतिपादकत्वात्प्रवचनसाराभिधेयम् ।  
कथंभूतः सः शिष्यजनः? सागारणगारचरियया जुक्तो सागारानागारचर्यया युक्तः ।  
अभ्यन्तररत्नत्रयानुष्ठानमुपादेयं कृत्वा बहिरङ्गरत्नत्रयानुष्ठानं सागारचर्यां श्रावकचर्यां । बहि-  
रङ्गरत्नत्रयाधारेणाम्यन्तररत्नत्रयानुष्ठानमनागारचर्यां प्रमत्तसंयतादितपोधनचर्यैर्लथः ॥ ७५ ॥  
इति गाथापञ्चकेन पञ्चरत्नसंज्ञं पञ्चमस्यलं व्याख्यातम् । एवं 'गिच्छिदसुत्तत्यपदो' इत्यादि  
द्वात्रिंशद्गाथाभिः स्थलपञ्चकेन शुभोपयोगाभिधानश्चतुर्थान्तराधिकारः समाप्तः ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ पूर्वोक्तक्रमेण 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्याद्येक-  
विंशतिगाथाभिरुत्सर्गाधिकारः । 'ण हिणिरवेक्खो चागो' इत्यादि त्रिंशद्गाथाभिरपवादाधिकारः ।  
ततः परं 'एयग्गदो समणो' इत्यादिचतुर्दशगाथाभिः श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाधिकारः ।  
ततोऽप्यनन्तरं 'गिच्छिदसुत्तत्यपदो' इत्यादिद्वात्रिंशद्गाथाभिः शुभोपयोगाधिकारश्चेत्यन्तराधि-  
कारचतुष्टयेन सप्तनवतिगाथाभिश्चरणानुयोगचूलिका नामा तृतीयो महाधिकारः समाप्तः ॥३॥

सिद्धांतका रहस्यभूत परमात्मभावको [ प्राप्नोति ] पाता है ॥ भावार्थ—जो कोई  
शिष्यजन निर्मल ज्ञानदर्शनमें स्थिर होके श्रावक अथवा यतिभावको प्राप्त हुआ संक्षेप  
विस्ताररूप अर्थोकर गर्भित श्रुतज्ञानको पहले यथावत् ( जैसेका तैसा ) जानकर आ-  
त्माको अनुभवता हुआ इस भगवत्प्रणीत उपदेशको समझता है वह पुरुष सकलपदार्थोंका  
सूचक इस प्रवचनसिद्धान्तका सारभूत स्वसंवेदनज्ञानगम्य सच्चिदानंद पूर्व नहीं अनुभव  
किया हुआ ऐसे भगवंत आत्माको पाता है ॥ ७५ ॥

इति श्री पांडे हेमराजकृत श्रीप्रवचनसारसिद्धांतकी बालावबोधभाषापाटीकामें चा-  
रित्रका अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

तच्च शुद्धस्यैव । यच्च समस्तभूतभवद्भाविव्यतिरेककरम्बितानन्तवस्त्वन्वयात्मकविश्वसामान्यविशेषप्रत्यक्षप्रतिभासात्मकं दर्शनं ज्ञानं च तत् शुद्धस्यैव । यच्च निःप्रतिविजृम्भितसहजज्ञानानन्दमुद्रितदिव्यस्वभावं निर्वाणं तत् शुद्धस्यैव । यच्च टङ्कोत्कीर्णपरमानन्दावस्थासुस्थितात्मस्वभावोपलम्भगम्भीरो भगवान् सिद्धः स शुद्ध एव । अलं वाग्विस्तारेण, सर्वमनोरथस्थानस्य मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वस्य शुद्धस्य परस्परमङ्गाङ्गिभावपरिणतभाव्यभावकभावत्वात्प्रत्यस्तमितस्वपरविभागो भावनमस्कारोऽस्तु ॥ ७४ ॥

अथ शिष्यजनं शास्त्रफलेन योजयन् शास्त्रं समापयति;—

बुद्ध्यदि सासणमेयं सागारणगारचरियया जुत्तो ।

जो सो पवयणसारं लहुणा कालेण पप्पोदि ॥ ७५ ॥

बुध्यते शासनमेतत् साकारानाकारचर्यया युक्तः ।

यः स प्रवचनसारं लघुना कालेन प्राप्नोति ॥ ७५ ॥

यो हि नाम सुविशुद्धज्ञानदर्शनमात्रस्वरूपव्यवस्थितवृत्तिसमाहितत्वात् साकारानाकारचर्यया युक्तः सन् शिष्यवर्गः स्वयं समस्तशास्त्रार्थविस्तरसंक्षेपात्मकश्रुतज्ञानोपयोगपूर्वकानुभावेन केवलमात्मानमनुभवन् शासनमेतदुच्यते स खलु निरवधित्रिसमयप्रवाहावस्था-

वत्वाद्यद्युणान्तर्भूतानन्तगुणसहितसिद्धो भगवान् स चैव शुद्ध, एवं णमो तस्स निर्दोषिनिजपरमात्मन्याराध्वाराधकसम्बन्धलक्षणो भावनमस्कारोऽस्तु तस्यैव । अत्रैतदुक्तं भवति—अस्य मोक्षकारणभूतशुद्धोपयोगस्य मध्ये सर्वेष्टमनोरथा लभ्यन्त इति मत्वा शेषमनोरथपरिहारे तत्रैव भावना कर्तव्येति ॥ ७४ ॥ अथ शिष्यजनं शास्त्रफलं दर्शयन् शास्त्रं समापयति;—पप्पोदि प्राप्नोति सो शिष्यजनः कर्त्ता । कम्? पवयणसारं प्रवचनसारशब्दवाच्यं निजपरमात्मानम् । केन? लहुणा कालेण स्तोककालेन । यः किं करोति? बुद्ध्यदि यः शिष्यजनो बुध्यते जानाति । किम्? सासणमेयं शास्त्रमिदम् । किं नाम? पवयणसारं सम्यग्ज्ञानस्य तस्यैव ज्ञेयभूतपरमा-

आनन्द अवस्थाकर धिररूप निरावरणदशाको प्राप्त परब्रह्मरूप साक्षात् सिद्ध, है [ तस्मै ]

ऐसे सर्वमनोरथके ठिकाने मोक्षसाधन शुद्धोपयोगीको [ नमः ] हमारा भावनमस्कार होवे ॥ भावार्थ—बहुत विस्तार कहांतक कहाजाय यह जो मोक्षतत्त्वका साधन शुद्धोपयोगी महामुनि है वह सब मनोवांछित कार्योंका स्थान है क्योंकि इस दशाके होनेपर सब मनोरथ पूर्ण होते हैं इससे यह मोक्षमार्ग है इसीके अनंतज्ञान दर्शन हैं इसीको मोक्ष है और यही साक्षात् सिद्ध है जो सब उत्तम अवस्थायें हैं उनरूप यही मानना चाहिये ॥ ७४ ॥ आगे शिष्यजनोंको शास्त्रका फल दिखलाकर शास्त्रकी समाप्ति करते हैं;—[ यः ] जो पुरुष [ साकारानाकारचर्यया युक्तः ] धावक और मुनिकी क्रियाकर संयुक्त हुआ [ एतत् शासनं ] यह भगवंतप्रणीत उपदेश [ बुध्यते ] समझता है [ सः ] यह [ लघुना कालेन ] थोड़ेही कालमें [ प्रवचनसारं ]

नयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् युगप-  
त्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैरवक्तव्यम् ६ । अस्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालव-  
र्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्त-  
रालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-  
भावैर्युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्तित्ववदवक्तव्यम् ७ । नास्तित्वावक्तव्यनयेनान-  
योमयागुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्य-  
गुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् पर-  
द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च नास्तित्ववदवक्तव्यम् ८ । अस्तित्वना-  
स्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखानयोमयागुणकार्मु-

शुद्धगुणानामाधारभूतम् । तदेवाशुद्धसद्भूतव्यवहारनयेनाशुद्धस्पर्शरसगन्धवर्णाधारभूतव्युत्पादि-  
स्कन्धवन्मतिज्ञानादिविभावगुणानामाधारभूतम् । अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन व्युत्पादि-  
स्कन्धसंश्लेशबन्धस्थितपुद्गलपरमाणुवत्परमौदारिकशरीरे वीतरागसर्वज्ञवद्वा विवक्षितैकदेहस्थितम्  
उपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन काष्ठासनाद्युपधिष्टदेवदत्तवत्समवशरणस्थितवीतरागसर्वज्ञवद्वा विव-

वही आत्मा अवक्तव्यनयकर एक ही समय स्वचतुष्टयपरचतुष्टयकर अवक्तव्य है, जैसे  
वही वाण स्वपरचतुष्टयकर अवक्तव्य सधता है । वही आत्मा अस्तिअवक्तव्यनयकर स्व-  
चतुष्टयकर और एकही वार स्वपरचतुष्टयकर अस्तिअवक्तव्यरूप वाणके दृष्टांतसे समझ-  
लेना । नास्तिअवक्तव्यनयकर वही आत्मा परद्रव्यक्षेत्रकालभावोंकर और एकही समय  
स्वपरचतुष्टयकर नास्तिअवक्तव्यरूप वाणके दृष्टांतसे जानलेना । अस्तिनास्तिअवक्तव्यन-  
यकर वही आत्मा स्वचतुष्टयकर परचतुष्टयकर और एकही वार स्वपरचतुष्टयकर वाण-  
की तरह अस्तिनास्तिअवक्तव्यरूप सिद्ध होता है । विकल्पनयकर वही आत्मा भेद लिये  
हुए है, जैसे एकपुरुष कुमार बालक जवान वृद्धभेदोंसे सविकल्प होता है । अविकल्प-  
नयकर वही आत्मा अभेदरूप है, जैसे वही पुरुष अभेदरूप है । नामनयकर वही आत्मा  
शब्दब्रह्मसे नाम लेके कहा जाता है । स्थापनानयकर वही आत्मा पुद्गलका सहारा लेकर  
स्थापित किया जाता है । जैसे मूर्तिकपदार्थकी स्थापना है । द्रव्यनयकर वही आत्मा  
अतीत अनागतपर्यायकर कहाजाता है जैसे श्रेणिकराजा तीर्थकरमहाराज हैं । भावन-  
यकर वही आत्मा जिस भावरूप परिणमता है उसभावसे तन्मय होजाता है, जैसे पुरुषाधीन  
स्त्री त्रिपरीतसंभोगमें प्रवर्तती हुई उस पर्यायरूप होती है उसीप्रकार आत्मा वर्तमा-  
नपर्यायरूप होता है । सामान्यनयकर अपने समस्त पर्यायोंमें व्यापी है, जैसे हारका  
सूत सब मोतियोंमें व्यापी है । विशेषनयकर वही द्रव्य एकपर्यायकर कहा जाता है,  
जैसे उस हारका एक मोती सब हारोंमें अव्यापी है । नित्यनयकर ध्रौव्यरूप है, जैसे  
नट यद्यपि अनेक स्वांग रखता है, तौ भी नट एक है उसीतरह नित्य है । अनित्यनय-

ननु कोयमात्मा कथं चावाप्यत इति चेत् ? अभिहितमेतत् पुनरप्यभिधीयते । आत्मा हि तावच्चैतन्यसामान्यव्याप्तानन्तधर्मादिष्वेकं द्रव्यमनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येकश्रुतज्ञानलक्षणप्रमाणपूर्वकस्वानुभवप्रमीयमाणत्वात् । तच्च द्रव्यनयेन पटमात्रवचिन्मात्रम् ? । पर्यायनयेन तन्तुमात्रवद्दर्शनज्ञानादिमात्रम् २ । अस्तित्वनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्तित्ववत् ३ । नास्तित्वनयेनानयोमयागुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्नास्तित्ववत् ४ । अस्तित्वनास्तित्वनयेनायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् क्रमतः स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्तित्वनास्तित्ववत् ५ । अवक्तव्यनयेनायोमया-

अत्राह शिष्यः । परमात्मद्रव्यं यद्यपि पूर्वं बहुधा व्याख्यातम् । तथापि संक्षेपेण पुनरपि कथ्यतामिति भगवानाह—केवलज्ञानाद्यनन्तगुणानामाधारभूतं यत्तदात्मद्रव्यं भण्यते । तस्य च नयैः प्रमाणेन च परीक्षा क्रियते । तद्यथा—एतावत् शुद्धनिश्चयेन निरुपाधिस्फटिकवत्समस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितं, तदेवाशुद्धनिश्चयनयेन सोपाधिस्फटिकवत्समस्तरागादिविकल्पोपाधिसहितम्, शुद्धसद्भूतव्यवहारनयेन शुद्धस्पर्शरसगन्धवर्णानामाधारभूतपुद्गलपरमाणुवत्केवलज्ञानादि-

जो कोई यह प्रश्न करे कि यह आत्मा कैसा है और इसकी प्राप्ति किसतरह होती है तो उसका समाधान पहले भी कर आये हैं और फिर भी तात्पर्यरूपसे कहते हैं—यह आत्मा चैतन्यरूप अनंतधर्मात्मक एक द्रव्य है, वे अनंतधर्म अनंतनयोंकर जाने जाते हैं, अनंतनयरूप श्रुतज्ञान है । उस श्रुतज्ञानप्रमाणसे अनंतधर्मस्वरूप आत्मा जाना जाता है इसकारणनयोंकर वस्तु दिखलाई जाती है । वही आत्मा द्रव्याधिकनयकर चिन्मात्र है, जैसे वस्त्र एक है । और पर्यायाधिकनयकर वही आत्मा ज्ञानदर्शनादिरूपसे अनेकस्वरूप है, जैसे वही वस्त्र सूतके तंतुओंकर अनेक है । वही आत्मा अस्तित्वनयकर स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावोंकर अस्तित्वरूप है, जैसे लोहेका वाण अपने द्रव्यादि चतुष्टयकर अस्तित्वरूप है, उसमें लोहा तो द्रव्य है, वह धनुष और डोराके बीचमें रहता है इससे वह वाणका क्षेत्र है, जो साधनेका समय है वह काल है और निशानके सामने है वह भाव है इसतरह अपने चतुष्टयकर लोहमई वाण अस्तित्वरूप है उसीप्रकार स्वचतुष्टयकर आत्मा अस्तित्वरूप है । वही आत्मा नास्तित्वनयकर परद्रव्यक्षेत्रकालभावकर नास्तित्वरूप है, जैसे वही लोहमई वाण परचतुष्टयकर लोहमयी नहीं है, धनुष और डोराके बीचमें नहीं है, साधनेका समय अन्य नहीं है और निशानके सामने नहीं है ऐसे वही लोहमई वाण परचतुष्टयनयकर नास्तित्वरूप है उसीप्रकार परचतुष्टयकर आत्मा नहीं है । वही आत्मा अस्तिनास्तित्वनयकर स्वचतुष्टयपरचतुष्टयकर क्रमसे अस्तिनास्तिरूप है, जैसे वही वाण स्वचतुष्टयपरचतुष्टयकी क्रम विवक्षासे अस्तिनास्तिरूप होता है ।

नयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् युगप-  
त्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैरवक्तव्यम् ६ । अस्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालव-  
र्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्त-  
रालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-  
भावैर्युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्तित्ववदवक्तव्यम् ७ । नास्तित्वावक्तव्यनयेनान-  
योमयागुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्य-  
गुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् पर-  
द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च नास्तित्ववदवक्तव्यम् ८ । अस्तित्वना-  
स्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखानयोमयागुणकार्मु-

शुद्धगुणानामाधारभूतम् । तदेवाशुद्धसद्भूतव्यवहारनयेनाशुद्धस्पर्शरसगन्धवर्णाधारभूतब्रह्मणुकादि-  
स्कन्धवन्मतिज्ञानादिविभावगुणानामाधारभूतम् । अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन व्युत्पादि-  
स्कन्धसंश्लेशबन्धस्थितपुद्गलपरमाणुवत्परमौदारिकशरीरे वीतरागसर्वज्ञवद्वा विवक्षितैकदेहस्थितम्  
उपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन काष्ठासनाद्युपविष्टदेवदत्तवत्समवशरणस्थितवीतरागसर्वज्ञवद्वा विव-

वही आत्मा अवक्तव्यनयकर एक ही समय स्वचतुष्टयपरचतुष्टयकर अवक्तव्य है, जैसे  
वही वाण स्वपरचतुष्टयकर अवक्तव्य सधता है । वही आत्मा अस्तिअवक्तव्यनयकर स्व-  
चतुष्टयकर और एकही वार स्वपरचतुष्टयकर अस्तिअवक्तव्यरूप वाणके दृष्टांतसे समझ-  
लेना । नास्तिअवक्तव्यनयकर वही आत्मा परद्रव्यक्षेत्रकालभावोंकर और एकही समय  
स्वपरचतुष्टयकर नास्तिअवक्तव्यरूप वाणके दृष्टांतसे जानलेना । अस्तिनास्तिअवक्तव्यन-  
यकर वही आत्मा स्वचतुष्टयकर परचतुष्टयकर और एकही वार स्वपरचतुष्टयकर वाण-  
की तरह अस्तिनास्तिअवक्तव्यरूप सिद्ध होता है । विकल्पनयकर वही आत्मा भेद लिये  
हुए है, जैसे एकपुरुष कुमार बालक जवान वृद्धभेदोंसे सविकल्प होता है । अविकल्प-  
नयकर वही आत्मा अभेदरूप है, जैसे वही पुरुष अभेदरूप है । नामनयकर वही आत्मा  
शब्दब्रह्मसे नाम लेके कहा जाता है । स्थापनानयकर वही आत्मा पुद्गलका सहारा लेकर  
स्थापित किया जाता है । जैसे मूर्तिकपटार्थकी स्थापना है । द्रव्यनयकर वही आत्मा  
अतीत अनागतपर्यायकर कहाजाता है जैसे श्रेणिकराजा तीर्थकरमहाराज हैं । भावन-  
यकर वही आत्मा जिस भावरूप परिणमता है उसभावसे तन्मय होजाता है, जैसे पुरुपाधीन  
स्त्री विपरीतसंभोगमें प्रवर्तती हुई उस पर्यायरूप होती है उसीप्रकार आत्मा वर्तमान-  
पर्यायरूप होता है । सामान्यनयकर अपने समस्त पर्यायोंमें व्यापी है, जैसे हारका  
सूत सब मोतियोंमें व्यापी है । विशेषनयकर वही द्रव्य एकपर्यायकर फटा जाता है,  
जैसे उस हारका एक मोती सब हारोंमें अव्यापी है । नित्यनयकर ध्रौव्यरूप है, जैसे  
नट यद्यपि अनेक स्थांग रखता है तौ भी नट एक है उसीतरह नित्य है । अनित्यनय-



कान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थालक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्तित्वनास्तित्ववदचक्षव्यम् ९ । विकल्पनयेन शिशुकुमारस्थविरैकपुरुषवत्सविकल्पम् १० । अविकल्पनयेनैकपुरुषमात्रवदविकल्पम् ११ । नामनयेन तदात्मवत् शब्दब्रह्मामासि १२ । स्थापनानयेन मूर्तित्ववत्सकलपुद्गलालम्बि १३।द्रव्यनयेन माणवकश्रेष्ठिश्रमणपार्थिववदनागतातीतपर्यायोद्भासि १४ । भावनयेन पुरुषायितप्रवृत्तयोपिद्वत्तदात्वपर्यायोद्भासि १५ । सामान्यनयेन हारस्त्रनदामसूत्रवद्भापि १६ । विशेषनयेन तदेकमुक्ताफलवदव्यापि १७ । नित्यनयेन नटद्युवदवस्थायि १८ । अनित्यनयेन रामरावणवदनवस्थायि १९ । सर्वगतनयेन विस्फा-

क्षितैकग्रामगृहादिस्थितम् । इत्यादि परस्परसापेक्षानेकनयैः प्रमीयमाणं व्यवहियमाणं क्रमेण मेचकस्वभावविवक्षितैकधर्मव्यापकत्वादेकस्वभावं भवति । तदेव जीवद्रव्यं प्रमाणेन प्रमीयमाणं मेचकस्वभावानामनेकधर्माणां युगपद्वापकचित्रपटवदनेकस्वभावं भवति । एवं नयप्रमाणाभ्यां तत्त्वविचारकाले योसौ परमात्मद्रव्यं जानाति स निर्विकल्पसमाधिप्रस्तावे निर्विकारस्वसंवेदनज्ञाने-

कर वही द्रव्य अवस्थान्तरकर अनवस्थित है जैसे नट रामरावणादिके स्वांगकर अन्यका अन्य होजाता है । सर्वगतनयकर सकलपदार्थवर्ती है, जैसे खुलीआंख समस्त घटपटादि पदार्थोंमें प्रवर्तती है । असर्वगतनयकर अपनेमें ही प्रवृत्ति करता है, जैसे चंद किया हुआ नेत्र अपनेमें ही मौजूद रहता है । शून्यनयकर केवल एक ही शोभायमान है, जैसे शून्यघर एक ही है । अशून्यनयकर अनेकोंसे मिलाहुआ शोभता है, जैसे अनेकलोकोंसे भरी हुई नाव शोभती है । ज्ञानज्ञेयके अमेदकथनरूपनयकर एक है, जैसे अनेक ईधनरूप परिणत हुई आग एक है । ज्ञानज्ञेयके भेदकथनरूपनयकर अनेक है, जैसे आरसी (दर्पण) अपने अनेक घटपटादि पदार्थोंके प्रतिबिंबसे अनेकरूप होती है । नियतनयकर अपने निश्चितस्वभावको लियेहुए है, जैसे जल अपने सहजस्वभावकर शीतलता लिए होता है । अनियतनयकर अनिश्चितस्वभाव है, जैसे पानी आगके संबंधसे उष्ण होजाता है । स्वभावनयकर किसीका बनायाहुआ नहीं होता, जैसे स्वभावकर कांटा बिना बनाया हुआ तीखा (पैना) होता है । अस्वभावनयकर संभाला हुआ होता है, जैसे लोहेका वाण बनानेसे तीखा होता है । फालनयकर फालके आधीन सिद्धी होती है, जैसे मीमकाल ( गर्मी ) के अनुसार ढालका आम सहजमें पकजाता है । अफालनयकर फालके आधीन सिद्धि नहीं है, जैसे घासकी गर्मसे पालमें आम पकजाता है । पुरुषाकारनयसे यज्ञसे सिद्धि होती है, जैसे शहदके उत्पन्नकरनेकेलिये फाटके छेदमें एक मधुमाखी रखते हैं उस मक्षिकाके शब्दसे दूमरी शहदकी मक्षियां आकर आप मधुपत्ता करती हैं इसवरह यज्ञसे भी शहदकी सिद्धि होती है उसीप्रकार यज्ञसे भी द-

रिताक्षचक्षुर्वत्सर्ववर्ति २० । असर्वगतनयेन मीलिताक्षचक्षुर्वदात्मवर्ति २१ । शून्यनयेन शून्यागारवत्केवलोल्लासि २२ । अशून्यनयेन लोकाक्रान्तनौवन्मिलितोल्लासि २३ । ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयेन महादिन्धनभारपरिणतधूमकेतुवदेकम् २४ । ज्ञानज्ञेयद्वैतनयेन परप्रतिविम्बः संपृक्तदर्पणवदनेकम् २५ । नियतिनयेन नियमितौष्यवह्निवन्नियतस्वभावभासि २६ । अनियतिनयेन नियत्यनिमित्तौष्यपानीयवदनियतस्वभावभासि २७ । स्वभावनयेनानिशिततीक्ष्णकण्टकवत्संस्कारानर्थक्यकारि २८ । अस्वभावनयेनायस्कारनिशिततीक्ष्णविशिखवत्संस्कारसार्थक्यकारि २९ । कालनयेन निदावदिवसानुसारिपच्यमानसहकारफलवत्समयायत्तसिद्धिः ३० । अकालनयेन कृत्रिमोष्मपाच्यमानसहकारफलवत्समयानायत्तसिद्धिः ३१ । पुरुषकारनयेन पुरुषकारोपलब्धमधुकुक्कुटीकपुरुषकारवादिवधत्तसाध्यसिद्धिः ३२ । दैवनयेन पुरुषकारवादिदत्तमधुकुक्कुटीगर्भलब्धमाणिक्यदैववादिदत्तसाध्यसिद्धिः ३३ ।

नापि जानातीति ॥ पुनरप्याह शिष्यः—ज्ञातमेवात्मद्रव्यं हे भगवन्निदानीं तस्य प्राप्त्युपायः कथ्यताम् ? भगवानाह—सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपामेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाशुपाधिरहितपरमानन्दैकलक्षणसुखामृत्तरसा-

व्यकी सिद्धि होती है । दैवनयकर विना यत्र भी साध्यकी सिद्धि होती है, जैसे यत्र किया था शहतकेलिये परंतु दैवसंयोगसे उस मधुलत्तामें माणिकरत्नकी प्राप्ति होगई इसतरह यत्रविनाभी सिद्धि होती है । ईश्वरनयकर पराधीन हुआ भोगता है, जैसे पंथीबालक धायके आधीन हुआ खानपान क्रिया करता है । अनीश्वरनयकर स्वाधीन-भोक्ता है, जैसे स्वेच्छाचारी सिंह मृगोंको विदारणकर खानपानक्रिया करता है । गुणनयकर गुणोंका ग्रहण करनेवाला है, जैसे उपाध्यायकर सिखाया हुआ कुमार गुणप्राही होता है । अगुणनयकर केवल साक्षीभूत है गुणप्राही नहीं है, जैसे अध्यापककर सिखलाये हुए कुमारका रक्षक पुरुष गुणप्राही नहीं होता । कर्तानयकर रागादिपरिणामोंका कर्ता है, जैसे रंगरेज रंगका करनेवाला होता है । अकर्तानयकर रागादिपरिणामोंका करनेवाला नहीं है साक्षीभूत है, जैसे रंगरेज जब अनेक रंग करता है तत्र कोई तमाशा देखनेवाला तमाशा ही देखता है कर्ता नहीं होता । भोक्तानयकर सुखदुःखका भोक्ता है; जैसे हित, अहित पथ्यको लेता हुआ रोगी सुखदुःखको भोगता है । अभोक्तानयकर भोक्ता नहीं है केवल साक्षीभूत है; जैसे हित, अहितपथ्यको भोगनेवाले रोगीका तमाशा देखनेवाला धन्वन्तरिवैद्यका नौकर साक्षीभूत है । क्रियानयकर क्रियाकी प्रधानतासे सिद्धि होती है, जैसे किसी अंधेने महाकष्टकर किसी पापाणके संभेको पाकर अपना माथा फोड़ा वहांपर उस अंधेके मस्तकमें जो लोहीका विकार था वह दूर होगया इस कारण आखें खुल गईं और उसजगह उसने खजाना पाया इसप्रकार क्रियाकष्टकर भी वस्तुकी प्राप्ति होती है । ज्ञाननयकर विवेककी ही प्रधानतासे

कान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्त-  
 रालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थालक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-  
 भावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्तित्वनास्तित्ववदवक्तव्यम्  
 ९ । विकल्पनयेन शिशुकुमारस्थविरैकपुरुषवत्सविकल्पम् १० । अविकल्पनयेनै-  
 कपुरुषमात्रवदविकल्पम् ११ । नामनयेन तदात्मवत् शब्दब्रह्मामर्शि १२ । स्थापनानयेन  
 मूर्तित्ववत्सकलपुद्गलालम्बि १३ । द्रव्यनयेन माणवकश्रेष्ठिश्रमणपार्थिववदनागतातीतपर्यायो-  
 द्भासि १४ । भावनयेन पुरुषायितप्रवृत्तयोषिद्वत्तदात्वपर्यायोद्भासि १५ । सामान्यनयेन  
 हारस्वदामसूत्रवद्भासि १६ । विशेषनयेन तदेकमुक्ताफलवदव्यापि १७ । नित्यनयेन  
 नटद्युवदवस्थायि १८ । अनित्यनयेन रामरावणवदनवस्थायि १९ । सर्वगतनयेन विस्फा-

क्षितैकग्रामगृहादिस्थितम् । इत्यादि परस्परसापेक्षानेकनयैः प्रमीयमाणं व्यवहियमाणं क्रमेण  
 मेचकस्वभावविवक्षितैकधर्मव्यापकत्वादेकस्वभावं भवति । तदेव जीवद्रव्यं प्रमाणेन प्रमीयमाणं  
 मेचकस्वभावानामनेकधर्मणां युगपद्वापकचित्रपटवदनेकस्वभावं भवति । एवं नयप्रमाणान्यां  
 तत्त्वविचारकाले योसौ परमात्मद्रव्यं जानाति स निर्विकल्पसमाधिप्रस्तावे निर्विकारस्वसंवेदनज्ञाने-

कर वही द्रव्य अवस्थान्तरकर अनवस्थित है जैसे नट रामरावणादिके स्वांगकर अन्यका  
 अन्य होजाता है । सर्वगतनयकर सकलपदार्थवर्ती है, जैसे खुलीआंख समस्त घटपटादि  
 पदार्थोंमें प्रवर्तती है । असर्वगतनयकर अपनेमें ही प्रवृत्ति करता है, जैसे बंद किया  
 हुआ नेत्र अपनेमें ही मौजूद रहता है । शून्यनयकर केवल एक ही शोभायमान है, जैसे  
 शून्यघर एक ही है । अशून्यनयकर अनेकोंसे मिलाहुआ शोभता है, जैसे अनेकलोकोंसे  
 भरी हुई नाव शोभती है । ज्ञानज्ञेयके अभेदकथनरूपनयकर एक है, जैसे अनेक ईधन-  
 रूप परिणत हुई आग एक है । ज्ञानज्ञेयके भेदकथनरूपनयकर अनेक है, जैसे आरसी  
 ( दर्पण ) अपने अनेक घटपटादि पदार्थोंके प्रतिविंबसे अनेकरूप होती है । नियतनय-  
 कर अपने निश्चितस्वभावको लियेहुए है, जैसे जल अपने सहजस्वभावकर शीतलता  
 लिए होता है । अनियतनयकर अनिश्चितस्वभाव है, जैसे पानी आगके संबंधसे उष्ण  
 होजाता है । स्वभावनयकर किसीका बनायाहुआ नहीं होता, जैसे स्वभावकर कांटा  
 बिना बनाया हुआ तीखा ( पैना ) होता है । अस्वभावनयकर संभाला हुआ होता है,  
 जैसे लोहेका घाण बनानेसे तीखा होता है । कालनयकर कालके आधीन सिद्धी होती  
 है, जैसे ग्रीष्मकाल ( गर्मी ) के अनुसार ढालका आम सहजमें पकजाता है । अकाल-  
 नयकर कालके आधीन सिद्धि नहीं है, जैसे घासकी गर्मासे पालमें आम पकजाता है ।  
 पुरुपाकारनयसे यज्ञसे सिद्धि होती है, जैसे शहतके उत्पन्नकरनेकेलिये काठके छेद्रमें  
 एक मधुमाखी रखते हैं उस मक्षिकाके शब्दसे दूसरी शहतकी मक्खियां आकर आप  
 मधुछ्छा करती हैं इसतरह यज्ञसे भी शहतकी सिद्धि होती है उसीप्रकार यज्ञसे भी द्र-

रिताक्षचक्षुर्वत्सर्ववर्ति २० । असर्वगतनयेन मीलिताक्षचक्षुर्वदात्मवर्ति २१ । शून्यनयेन शून्यागारवत्केवलोद्भासि २२ । अशून्यनयेन लोकाक्रान्तनौवन्मिलितोद्भासि २३ । ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयेन महदिन्धनभारपरिणतधूमकेतुवदेकम् २४ । ज्ञानज्ञेयद्वैतनयेन परप्रतिविम्बसंपृक्तदर्पणवदनेकम् २५ । नियतिनयेन नियमितौष्ण्यवह्विन्नियतस्वभावभासि २६ । अनियतिनयेन नियत्यनिमित्तौष्ण्यपांनीयवदनियतस्वभावभासि २७ । स्वभावनयेनानिशिततीक्ष्णकण्टकवत्संस्कारानर्थक्यकारि २८ । अस्वभावनयेनायस्कारनिशिततीक्ष्णविशिखवत्संस्कारसार्थक्यकारि २९ । कालनयेन निदाघदिवसानुसारिपच्यमानसहकारफलवत्समयायत्तसिद्धिः ३० । अकालनयेन कृत्रिमोष्मपाच्यमानसहकारफलवत्समयानायत्तसिद्धिः ३१ । पुरुषकारनयेन पुरुषकारोपलब्धमधुकुक्कुटीकपुरुषकारवादिवघ्नसाध्यसिद्धिः ३२ । दैवनयेन पुरुषकारवादित्तमधुकुक्कुटीगर्भलब्धमाणिक्यदैववादिवदयत्नसाध्यसिद्धिः ३३ ।

नापि जानातीति ॥ पुनरप्याह शिष्यः—ज्ञातमेवात्मद्रव्यं हे भगवन्निदानीं तस्य प्राप्त्युपायः कथ्यताम् ? भगवानाह—सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहितपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसा-

व्यकी सिद्धि होती है । दैवनयकर बिना यत्न भी साध्यकी सिद्धि होती है, जैसे यत्न किया था शहतकेलिये परंतु दैवसंयोगसे उस मधुछत्तामें माणिकरत्नकी प्राप्ति होगई इसतरह यत्नबिनाभी सिद्धि होती है । ईश्वरनयकर पराधीन हुआ भोगता है, जैसे पंथीवालक धायके आधीन हुआ खानपान क्रिया करता है । अनीश्वरनयकर स्वाधीन-भोक्ता है, जैसे स्वेच्छाचारी सिंह मृगोंको विदारणकर खानपानक्रिया करता है । गुणनयकर गुणोंका ग्रहण करनेवाला है, जैसे उपाध्यायकर सिखाया हुआ कुमार गुणप्राही होता है । अगुणनयकर केवल साक्षीभूत है गुणप्राही नहीं है, जैसे अध्यापककर सिखलाये हुए कुमारका रक्षक पुरुष गुणप्राही नहीं होता । कर्तानयकर रागादिपरिणामोंका कर्ता है, जैसे रंगरेज रंगका करनेवाला होता है । अकर्तानयकर रागादिपरिणामोंका करनेवाला नहीं है साक्षीभूत है, जैसे रंगरेज जब अनेक रंग करता है तत्र कोई तमाशा देखनेवाला तमाशा ही देखता है फर्ता नहीं होता । भोक्तानयकर सुखदुःखका भोक्ता है; जैसे हित, अहित पथ्यको लेता हुआ रोगी सुखदुःखको भोगता है । अभोक्तानयकर भोक्ता नहीं है केवल साक्षीभूत है; जैसे हित, अहितपथ्यको भोगनेवाले रोगीका तमाशा देखनेवाला धन्वन्तरिवैद्यका नौकर साक्षीभूत है । क्रियानयकर क्रियाकी प्रधानतासे सिद्धि होती है, जैसे किसी अंधेने महाकष्टकर किसी पापाणके खंभेको पाकर अपना माथा फोड़ा वहांपर उस अंधेके मस्तकमें जो लोहीका विकार था वह दूर होगया इस कारण आखें खुल गईं और उसजगह उसने खजाना पाया, इसप्रकार क्रियाकष्टकर भी वस्तुकी प्राप्ति होती है । ज्ञाननयकर विवेककी ही प्रधानतासे

कान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थालक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्तित्वनास्तित्ववदवक्तव्यम् ९ । विकल्पनयेन शिशुकुमारस्थविरैकपुरुषवत्सविकल्पम् १० । अविकल्पनयेनैकपुरुषमात्रवदविकल्पम् ११ । नामनयेन तदात्मवत् शब्दब्रह्मादर्शि १२ । स्थापनानयेन मूर्तित्ववत्सकलपुद्गलालम्बि १३ । द्रव्यनयेन माणवकश्रेष्ठिश्रमणपार्थिववदनागतातीतपर्यायोद्भासि १४ । भावनयेन पुरुषायितप्रवृत्तयोपिद्वत्तदात्वपर्यायोद्भासि १५ । सामान्यनयेन हारस्नग्दामसूत्रवद्वापि १६ । विशेषनयेन तदेकमुक्ताफलवदव्यापि १७ । नित्यनयेन नटञ्चुवदवस्थायि १८ । अनित्यनयेन रामरावणवदनवस्थायि १९ । सर्वगतनयेन विस्फाः

क्षितैकप्रामगृहादिस्थितम् । इत्यादि परस्परसापेक्षानेकनयैः प्रमीयमाणं व्यवहियमाणं क्रमेण मेचकस्वभावविवक्षितैकधर्मव्यापकत्वादेकस्वभावं भवति । तदेव जीवद्रव्यं प्रमाणेन प्रमीयमाणं मेचकस्वभावानामनेकधर्मणां युगपद्वापकचित्रपटवदनेकस्वभावं भवति । एवं नयप्रमाणाभ्यां तत्त्वविचारकाले योसौ परमात्मद्रव्यं जानाति स निर्विकल्पसमाधिप्रस्तावे निर्विकारस्वसंवेदनज्ञाने-

कर वही द्रव्य अवस्थान्तरकर अनवस्थित है जैसे नट रामरावणादिके स्वांगकर अन्यका अन्य होजाता है । सर्वगतनयकर सकलपदार्थवर्ती है, जैसे खुलीआंख समस्त घटपटादि पदार्थोंमें प्रवर्तती है । असर्वगतनयकर अपनेमें ही प्रवृत्ति करता है, जैसे बंद किया हुआ नेत्र अपनेमें ही मौजूद रहता है । शून्यनयकर केवल एक ही शोभायमान है, जैसे शून्यघर एक ही है । अशून्यनयकर अनेकोंसे मिलाहुआ शोभता है, जैसे अनेकलोकोंसे भरी हुई नाव शोभती है । ज्ञानज्ञेयके अभेदकथनरूपनयकर एक है, जैसे अनेक ईधनरूप परिणत हुई आग एक है । ज्ञानज्ञेयके भेदकथनरूपनयकर अनेक है, जैसे आरसी ( दर्पण ) अपने अनेक घटपटादि पदार्थोंके प्रतिविवसे अनेकरूप होती है । नियतनयकर अपने निश्चितस्वभावको लियेहुए है, जैसे जल अपने सहजस्वभावकर शीतलता लिए होता है । अनियतनयकर अनिश्चितस्वभाव है, जैसे पानी आगके संबंधसे उष्ण होजाता है । स्वभावनयकर किसीका बनायाहुआ नहीं होता, जैसे स्वभावकर कांटा बिना बनाया हुआ तीखा ( पैना ) होता है । अस्वभावनयकर संभाला हुआ होता है, जैसे लोहेका वाण बनानेसे तीखा होता है । कालनयकर कालके आधीन सिद्धी होती है, जैसे म्रीष्मकाल ( गर्मी ) के अनुसार ढालका आम सहजमें पकजाता है । अकालनयकर कालके आधीन सिद्धि नहीं है, जैसे घासकी गर्मसे पालमें आम पकजाता है । पुरुषाकारनयसे यज्ञसे सिद्धि होती है, जैसे शहूतके उत्पन्नकरनेकेलिये काठके छेदमें एक मधुमाखी रखते हैं उस मक्षिकाके शब्दसे दूसरी शहूतकी मक्खियां आकर आप मधुछत्ता करती हैं इसतरह यज्ञसे भी शहूतकी सिद्धि होती है उसीप्रकार यज्ञसे भी द-

रिताक्षचक्षुर्वत्सर्ववर्ति २० । असर्वगतनयेन मीलिताक्षचक्षुर्वदात्मवर्ति २१ । शून्यनयेन शून्यागारवत्केवलोद्भासि २२ । अशून्यनयेन लोकाक्रान्तनौवन्मितोद्भासि २३ । ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयेन महदिन्धनभारपरिणतधूमकेतुवदेकम् २४ । ज्ञानज्ञेयद्वैतनयेन परप्रतिविम्बसंपृक्तदर्पणवदनेकम् २५ । नियतिनयेन नियमितौष्यवह्निवन्नित्यतस्वभावभासि २६ । अनियतिनयेन नियत्यनिमित्तौष्यपांणीयवदनियतस्वभावभासि २७ । स्वभावनयेनानिशिततीक्ष्णकण्टकवत्संस्कारानर्थक्यकारि २८ । अस्वभावनयेनायस्कारनिशिततीक्ष्णविशिखवत्संस्कारसार्थक्यकारि २९ । कालनयेन निदाघदिवसानुसारिपच्यमानसहकारफलवत्समयायत्तसिद्धिः ३० । अकालनयेन कृत्रिमोष्मपाच्यमानसहकारफलवत्समयानायत्तसिद्धिः ३१ । पुरुषकारनयेन पुरुषकारोपलब्धमधुकुक्कुटीकपुरुषकारवादिबद्धसाध्यसिद्धिः ३२ । दैवनयेन पुरुषकारवादिदत्तमधुकुक्कुटीगर्भलब्धमाणिक्यदैववादिबद्धसाध्यसिद्धिः ३३ ।

नापि जानातीति ॥ पुनरप्याह शिष्यः—ज्ञातमेवात्मद्रव्यं हे भगवन्निदानीं तस्य प्राप्स्युपायः कथ्यताम् ? भगवानाह—सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्प्रज्ञानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहितपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसा-

व्यकी सिद्धि होती है । दैवनयकर बिना यत्न भी साध्यकी सिद्धि होती है, जैसे यत्न किया था शहतकेलिये परंतु दैवसंयोगसे उस मधुछत्तामें माणिकरत्नकी प्राप्ति होगई इसतरह यत्नबिनाभी सिद्धि होती है । ईश्वरनयकर पराधीन हुआ भोगता है, जैसे पंथीवालक धायके आधीन हुआ खानपान क्रिया करता है । अनीश्वरनयकर स्वाधीन-भोक्ता है, जैसे खेच्छाचारी सिंह मृगोंको विदारणकर खानपानक्रिया करता है । गुणनयकर गुणोंका ग्रहण करनेवाला है, जैसे उपाध्यायकर सिखाया हुआ कुमार गुणप्राही होता है । अगुणनयकर केवल साक्षीभूत है गुणप्राही नहीं है, जैसे अध्यापककर सिखलाये हुए कुमारका रक्षक पुरुष गुणप्राही नहीं होता । कर्तानयकर रागादिपरिणामोंका कर्ता है, जैसे रंगरेज रंगका करनेवाला होता है । अकर्तानयकर रागादिपरिणामोंका करनेवाला नहीं है साक्षीभूत है, जैसे रंगरेज जब अनेक रंग करता है तब कोई तमाशा देखनेवाला तमाशा ही देखता है कर्ता नहीं होता । भोक्तानयकर सुखदुःखका भोक्ता है; जैसे हित, अहित पथ्यको लेता हुआ रोगी सुखदुःखको भोगता है । अभोक्तानयकर भोक्ता नहीं है केवल साक्षीभूत है; जैसे हित, अहितपथ्यको भोगनेवाले रोगीका तमाशा देखनेवाला धन्वन्तरिवैद्यका नौकर साक्षीभूत है । क्रियानयकर क्रियाकी प्रधानतासे सिद्धि होती है, जैसे किसी अंधेने महाकष्टकर किसी पापाणके खंभेको पाकर अपना माथा फोड़ा वहांपर उस अंधेके मस्तकमें जो लोहीका विकार था वह दूर होगया इस कारण आखें खुल गईं और उसजगह उसने खजाना पाया इसप्रकार क्रियाकष्टकर भी वस्तुकी प्राप्ति होती है । ज्ञाननयकर विवेककी ही प्रधानतासे

ईश्वरनयेन धात्रीहठावलेह्यमानपान्थवालकवत्पारतन्व्यभोक्तृ ३४ । अनीश्वरनयेन स्वच्छ-  
न्ददारितकुरङ्गकण्ठीरववत्स्वातन्व्यभोक्तृ ३५ । गुणिनयेनोपाध्यायविनीयमानकुमारकव-  
द्गुणग्राहि ३६ । अगुणिनयेनोपाध्यायविनीयमानकुमारकाध्यक्षवत् केवलमेव साक्षि ३७ ।  
कर्तृनयेन रत्नकवद्रागादिपरिणामकर्तृ ३८ । अकर्तृनयेन स्वकर्मप्रवृत्तरत्नकाध्यक्षवत्केवल-  
मेव साक्षि ३९ । भोक्तृनयेन हिताहितान्नभोक्तृव्याधितवत्सुखदुःखादिभोक्तृ ४० । अभो-  
क्तृनयेन हिताहितान्नभोक्तृव्याधिताध्यक्षधन्वन्तरिचरवत् केवलमेव साक्षि ४१ । क्रिया  
नयेन स्थाणुभिन्नमूर्द्धजातदृष्टिलब्धनिधानान्यन्धवदनुष्ठानप्राधान्यसाध्यसिद्धिः ४२ ।  
ज्ञाननयेन चणकमुष्टिकीतचिन्तामणिगृहकोणवाणिजवद्विवेकप्राधान्यसाध्यसिद्धिः ४३ ।  
व्यवहारनयेन बन्धकमोचकपरमाण्वन्तरसंयुज्यमानपरमाणुवद्वन्धमोक्षयोर्द्वैतानुवर्ति ४४ ।  
निश्चयनयेन केवलवध्यमानमुच्यमानबन्धमोक्षोचितस्निग्धरूक्षत्वगुणपरिणतपरमाणुवद्वन्ध-

स्वादानुभवमलभमानः सन् पूर्णमासीदिवसे जलकल्लोलक्षुभितसमुद्र इव रागद्वेषमोहकल्लोलैर्वाव-  
दस्वस्वरूपेण क्षोभं गच्छत्ययं जीवस्तावत्कालं निजशुद्धात्मानं न प्राप्नोति इति । स एव वीत-  
रागसर्वज्ञप्रणीतोपदेशवत् एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियतंज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुलरूपेन्द्रियपटुत्व-

वस्तुकी सिद्धि होती है, जैसे किसी रत्नके परीक्षक पुरुषने किसी अज्ञानी दीनपुरुषके  
हाथमें चिन्तामणिरत्न देखा तब उस दीनपुरुषको खुलाकर अपने घरके कोनेमेंसे एक  
चनेकी मूठीको देकर उसके बदले चिन्तामणिरत्न लेलिया उसीप्रकार क्रियाकष्टके बिना  
ही वस्तुकी सिद्धि होती है । व्यवहारनयकर यह आत्मा बंधमोक्षावस्थाकी द्विविधामें प्रव-  
र्तता है, जैसे एक परमाणू दूसरे परमाणुसे बंधता है और खुलता है उसीप्रकार यह  
आत्मा बंधमोक्षअवस्थाको पुद्गलके साथ धारण करता है । निश्चयनयकर परद्रव्यसे बंध-  
मोक्षावस्थाकी द्विविधाको नहीं धारण करता केवल अपने ही परिणामसे बंधमोक्षअव-  
स्थाको धरता है, जैसे अकेला परमाणू बंधमोक्षअवस्थाके योग्य अपने स्निग्धरूक्षगुण  
परिणामको धरता हुआ बंध मोक्षअवस्थाको धारण करता है । अशुद्धनयकर यह आत्मा  
उपाधिजन्यस्वभावको लिये हुए है, जैसे एक मट्टी, घड़ा सरवा आदि अनेकभेद लिये  
हुए होती है ४६ । शुद्धनयकर उपाधिरहित अभेदस्वभावरूप है, जैसे भेदभावरहित  
केवल श्रुतिका होती है ४७ । इत्यादि अनंतनयोंसे वस्तुकी सिद्धि होती है । वस्तु अने-  
कतरह वचनविलासकर दिखलाई जाती है जितने वचन हैं उतनेही नय हैं जितने नय  
हैं उतने ही मिथ्यावाद हैं । जो एक नयको सर्वथा मानें तो मिथ्यावाद होता है और  
जो कथंचित् मानाजाय वो यथार्थ अनेकांतरूप सर्वश्वचन होता है इसलिये एकांत-  
पनेका निषेध है । एकही वार वस्तु अनेकनयकर सिद्ध करते हैं । यह आत्मा नय  
और प्रमाणकर जानाजाता है, जैसे एक समुद्र जय जुदे २ नदीयोंके जलसे मिद्ध  
क्रिया जावे तब गंगा यमुना आदिके सफेद नीलादि जलोंके भेदकर एक एक स्वभावको

भोक्षयोरद्वैतानुवर्ति ४५ । अशुद्धनयेन घटशरावविशिष्टमृण्मात्रवत्सोपाधिस्वभावं ४६ । शुद्धनयेन केवलमृण्मात्रवन्निरुपाधिस्वभावं ४७ । तदुक्तं—“ जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा । जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया ॥ ” “ परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा । जइणाणं पुण वयणं सम्मं खु कइंचि वयणादो ॥ ” एवमनया दिशा प्रत्येकमनन्तधर्मव्यापकानन्तनयैर्निरूप्यमाणमुदन्वद्वदन्तरालमिलद्धवलनीलगाङ्गयामुनोदभारवदनन्तधर्माणां परस्परमतद्भावमात्रेणाशक्यविवेचनत्वादेमेचकस्वभावैकधर्मव्यापकैकधर्मित्वाद्यथोदितैकान्तात्मात्मद्रव्यं । युगपदनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येकश्रुतज्ञानलक्षणप्रमाणेन निरूप्यमाणं तु समस्ततरङ्गिणीपयःपूरसमवायात्मकैकमकराकरवदनन्तधर्माणां वस्तुत्वेनाशक्यविवेचनत्वान्मेचकस्वभावानन्तधर्मव्याप्येकधर्मित्वात् यथोदितानेकान्तात्मात्मद्रव्यं स्यात्कारश्रीवासवश्यैर्नयौधैः पश्यन्तीत्यं चेत् प्रमाणेन चापि पश्यन्त्येव, प्रस्फुटानन्तधर्मस्वात्मद्रव्यं शुद्धचिन्मात्रमन्तः । इत्यभिहित-

निर्व्याध्यायुष्यवरवुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसंयमविषयसुखनिवर्तनक्रोधादिकपायव्यावर्तनादिपरंपरादुर्लभान्यपि कथंचित्काकतालीयन्यायेनावाप्य सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावनिजपधारता है उसीप्रकार यह आत्मा नयोंकी अपेक्षा एक एक स्वरूपको धारण करता है । और जैसे बही समुद्र अनेक नदियोंके जलोंकर एकही है भेद नहीं अनेकांतरूप एक वस्तु है उसीप्रकार यह आत्मा प्रमाणकी विवक्षाकर अनंतस्वभावमय एक द्रव्य है । इसप्रकार एक अनेकस्वरूप नय प्रमाणकर सिद्धि होती है, नयोंसे एकस्वरूप दिखलाया जाता है प्रमाणसे अनेकस्वरूप दिखलाये जाते हैं । इसप्रकार स्यात्पदकी शोभाकर गार्भतनयोंके स्वरूपकर और अनेकांतरूप प्रमाणकर अनंतधर्मसंयुक्त शुद्धचिन्मात्र वस्तुका जो पुरुष निश्चय श्रद्धान करते हैं वे साक्षात् आत्मस्वरूपके अनुभवी होते हैं । इसप्रकार इस आत्मद्रव्यका स्वरूप कहा । आगे उस आत्माकी प्राप्तिका उपाय दिखलाते हैं—यह आत्मा अनादिकालसे लेकर पुद्गलीकर्मके निमित्तसे मोहरूपी मदिरा (शराव) के पीनेसे मदोन्मत्त हुआ घूमता है और समुद्रकी तरह अपनेमें विकल्पतरंगोंकर महाक्षोभित है । क्रमसे प्रवृत्त हुए अनंत इंद्रियज्ञानके भेदोंकर सदाकाल पलटता रहता है एकरूप नहीं अज्ञानभावकर पररूप बाह्यपदार्थोंमें आत्मबुद्धिकर मैत्रीभाव करता है आत्मविवेककी शिथिलताकर सर्वथा बहिर्मुख हुआ है वारंवार पुद्गलीकर्मके उपजानेवाले रागद्वेषभावोंकी द्वैततामें प्रवर्त रहा है । ऐसे आत्माको शुद्ध चिदानंद परमात्माकी प्राप्ति फहांसे होसकती है । यदि यही आत्मा अखंडज्ञानके अभ्याससे अनादि पुद्गलीकर्मकर उत्पन्न किया जो मिथ्यामोह उसको अपना घातक जानकर भेदविज्ञानद्वारा अपनेसे जुदाकरके केवल आत्मस्वरूपकी भावनासे निश्चल ( थिर ) होवे तो अपने स्वरूपमें निस्तरंग समुद्रकी तरह निष्कंप हुआ तिष्ठता है । एकहीवार व्याप्तहुए जो अ-



मात्मद्रव्यमिदानीमेतदचासिप्रकारोऽभिधीयते—अस्य तावदात्मनो नित्यमेवानादिपौद्गलिकं  
 कर्मनिमित्तमोहभावनानुभावघूर्णितात्मवृत्तितया तोयाकरस्यैवात्मन्येव क्षुभ्यतः क्रमप्रवृत्ता-  
 भिरनन्ताभिर्ज्ञप्तिव्यक्तिभिः परिवर्तमानस्य ज्ञप्तिनिमित्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु  
 प्रवृत्तमैत्रीकस्य शिथिलतात्मविवेकतयात्यन्तबहिर्मुखस्य पुनः पौद्गलिककर्मनिर्मापकराग-  
 द्वेपद्वैतमनुवर्तमानस्य दूरत एवात्मावाप्तिः । अथ यदा त्वयमेव प्रचण्डकर्मकाण्डोच्चण्डीकृ-  
 ताखण्डज्ञानकाण्डत्वेनानादिपौद्गलिककर्मनिर्मितस्य वध्यघातकविभागज्ञानपूर्वकविभागकर-  
 णात् केवलात्मभावानुभावनिश्रलीकृतवृत्तितया तोयाकर इवात्मन्येवातिनिःप्रकम्पस्तिष्ठन्  
 युगपदेव व्याप्यानन्ता ज्ञप्तिव्यक्तीरवकाशाभावाच्च जातु विवर्तते, तदास्य ज्ञप्तिव्यक्तिनिमि-  
 त्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु न नाम मैत्री प्रवर्तते । ततः सुप्रतिष्ठितात्मविवेकतया-  
 त्यन्तमन्तर्मुखीभूतः पौद्गलिककर्मनिर्मापकरागद्वेपद्वैतानुवृत्तिदूरीभूतो दूरत एवानुभूतपूर्वम-  
 पूर्वज्ञानानन्दस्वभावं भगवन्तमात्मानमवाप्नोति । अवाप्नोत्वेव ज्ञानानन्दात्मानं जगदपि

रमात्मतत्त्वसम्बन्धश्चद्वानुज्ञानानुचरणरूपामेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहित-  
 परमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादानुभवलाभे सत्यमावास्यां दिवसे जलकल्लोलक्षोभरहितसमुद्र इव  
 नन्तज्ञानकी शक्तिके भेद उनकर पलटता नहीं है । अपनी ज्ञानशक्तियोंकर बाह्य पररूप  
 क्षेयपदाधोमें मैत्रीभाव नहीं करता है । निश्चल आत्मज्ञानकी विवेकताकर अत्यंत स्वरू-  
 पके संमुख हुआ है । पुद्गलकर्मबंधके कारण रागद्वेषकी द्विविधासे दूर रहता है । ऐसा  
 जो परमात्माका आराधक पुरुष है वही पूर्व नहीं अनुभव किये हुए और ज्ञानानन्द  
 स्वभाव ऐसे परब्रह्मको पाता है । आपही साधक है आपही साध्य है अवस्थाके भेदसे  
 साध्यसाधक भेद हैं । यह संपूर्ण जगत भी ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मभावको प्राप्त होवै ।  
 और आनन्दरूपअमृतजलके प्रवाहकर पूर्ण बहती हुई इस केवलज्ञानरूपीनदीमें जो आ-  
 त्मतत्त्व मग्न होरहा है, जो समस्त ही लोकालोकके देखनेको समर्थ है, ज्ञानकर प्रधान  
 है, जो तत्त्व अमूल्य उत्तम महारत्नकी तरह अतिशोभायमान है उस आत्मतत्त्वको  
 स्याद्वादरूपी जिनेश्वरके मतको स्वीकार करके हे जगतके भव्यजीवो ! तुम अंगीकार करो  
 जिससे कि परमानन्दसुखको प्राप्त होवै । इसप्रकार इस कुंदकुंदाचार्यकृत प्रवचनसा-  
 रमें यह चरणानुयोग पूर्ण हुआ । यह अनादिनिधन शब्दप्रज्ञा अपने अर्थरसकर  
 गर्भित है किसी पुरुषकर इसका अर्थ किया हुआ नहीं होसकता, आपही अर्थशक्तिकर  
 प्रवर्तता है । इसलिये ऐसा कोई नहीं समझलेना कि प्रवचनसारका अर्थ मैंने किया है  
 यह तो स्वतःसिद्ध ही है । हे भव्यो ! निर्मल ज्ञानकलाके प्रकाशसे अनेकांत विद्याको  
 निश्चयकर धारणकरके एक परमात्मतत्त्वको पाकर परमानन्दरूप होवै । जो महाबु-  
 द्विबंत हुए हैं वे भी तत्त्वके कथनसमुद्रके पारगामी नहीं हुए, और जो थोड़ाबहुत तत्त्वका  
 कथन किया है वह सब तत्त्वकी अनन्ततामें इसतरह समागया है **कुल कथा**

परमात्मानमिति ॥ भवति चात्र श्लोकः—“आनन्दामृतपूरनिर्भरवहक्केवल्यकलोलिनी-  
निर्मग्नं जगदीक्षणक्षममहासंवेदनश्रीमुखम् । स्यात्काराङ्गजिनेशशासनवशादासादयन्तूलसत्त्वं  
तत्त्वं वृतजात्यरत्नकिरणप्रस्पष्टमिष्टं जन्तः” ॥ व्याख्येयं किल विश्वमात्मसहितं व्याख्यातु  
गुम्फे गिरां व्याख्यातामृतचन्द्रसूरिरिति मा मोहाजनो बलगतु । बलत्वद्य विशुद्धबोधि-  
कलया स्याद्वादविद्याबलात् लब्धैकं सकलात्मशाश्वतमिदं स्वं तत्त्वमव्याकुलः ॥ १ ॥ इति  
गदितमनीचैस्तत्त्वमुच्चावचं यच्चितितदपि किला भूकल्पमशौ हुतस्य । अनुभवतु तदुच्चैश्चि-  
च्चिदेवाद्य यस्मादपरमिह न किञ्चित्त्वमेकं परं चित् ॥ २ ॥

समाप्तं नन्द्यापि ता टीका ।

रागद्वेषमोहकलोलक्षोभरहितप्रस्तावे यथा निजशुद्धात्मतत्त्वे स्थिरो भवति तथा तदैव निजशुद्धात्म-  
स्वरूपं प्राप्नोति ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ एवं पूर्वोक्तक्रमेण “एस सुरासुर” इत्याद्येकोत्तर-  
शतगाथापर्यन्तं सम्यग्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं “तम्हा तस्स णमाइं” इत्यादि त्रयोदशोत्तरशत-  
गाथापर्यन्तं ज्ञेयाधिकारापरनामसम्पक्त्वाधिकारः, तदनन्तरं “तवसिद्धे णयसिद्धे” इत्यादि  
सप्तनवतिगाथापर्यन्तं चारित्र्याधिकारश्चेति महाधिकारत्रयेणैकादशाधिकत्रिशतगाथाभिः प्रवचन-  
सारप्राभृतं समाप्तम् ॥

समाप्तं नन्द्यापि ता टीका ।

ही नहीं, जैसे आगमें होमकरनेको वस्तु कितनी ही डालो कुछ नहीं रहती उसीप्रकार  
तत्त्वमें सब कथन समाजाता है । इसकारण परमात्मतत्त्व वचनसे नहीं कहा जासकता  
केवल अनुभवगम्य है, इससे हे भव्यो! चिन्मात्रवस्तुको अनुभवो क्योंकि इसलोकमें  
दूसरी उत्तमवस्तु कोई नहीं है । इसलिये श्रीअमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि चिदानंद  
परमात्मतत्त्व हमेशा घटमें ( अंतरंगमें ) प्रकाश करो ॥

समाप्ता इयं चालग्रोधिनी भाषाटीका ।

मात्मद्रव्यमिदानीमेतदवाप्तिप्रकारोऽभिधीयते—अस्य तावदात्मनो नित्यमेवानादिपौद्गलिक-  
कर्मनिमित्तमोहभावनानुभावघूर्णितात्मवृत्तितया तोयाकरस्येवात्मन्येव क्षुभ्यतः क्रमप्रवृत्ता-  
भिरनन्ताभिर्ज्ञप्तिव्यक्तिभिः परिवर्तमानस्य ज्ञप्तिनिमित्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु  
प्रवृत्तमैत्रीकस्य शिथिलतात्मविवेकतयात्यन्तवर्हिमुखस्य पुनः पौद्गलिककर्मनिर्मापकराग-  
द्वेषद्वैतमनुवर्तमानस्य दूरत एवात्मावाप्तिः । अथ यदा त्वयमेव प्रचण्डकर्मकाण्डोच्चण्डीकृ-  
ताखण्डज्ञानकाण्डत्वेनानादिपौद्गलिककर्मनिर्मितस्य बध्यघातकविभागज्ञानपूर्वकविभागकर-  
णात् केवलतात्मभावानुभावनिश्चलीकृतवृत्तितया तोयाकर इवात्मन्येवातिनिःप्रकम्पस्तिष्ठन्  
युगपदेव व्याप्यानन्ता ज्ञप्तिव्यक्तीरवकाशाभावान्न जानु विवर्तते, तदास्य ज्ञप्तिव्यक्तिनिमि-  
त्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु न नाम मैत्री प्रवर्तते । ततः सुप्रतिष्ठितात्मविवेकतया-  
त्यन्तमन्तर्मुखीभूतः पौद्गलिककर्मनिर्मापकरागद्वेषद्वैतानुवृत्तिदूरीभूतो दूरत एवानुभूतपूर्वम-  
पूर्वज्ञानानन्दस्वभावं भगवन्तमात्मानमवाप्नोति । अवाप्नोत्वेव ज्ञानानन्दात्मानं जगदपि

रमात्मतत्त्वसम्यक्प्रद्वानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहित-  
परमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादानुभवलाभे सत्यमावास्यां दिवसे जलकल्लोलक्षोभरहितसमुद्र इव

नन्तज्ञानकी शक्तिके भेद उनकर पलटता नहीं है । अपनी ज्ञानशक्तियोंकर बाह्य पररूप  
ज्ञेयपदार्थोंमें मैत्रीभाव नहीं करता है । निश्चल आत्मज्ञानकी विवेकताकर अत्यंत स्वरू-  
पके संमुख हुआ है । पुद्गलकर्मबंधके कारण रागद्वेषकी द्विविधासे दूर रहता है । ऐसा  
जो परमात्माका आराधक पुरुष है वही पूर्व नहीं अनुभव किये हुए और ज्ञानानंद  
स्वभाव ऐसे परब्रह्मको पाता है । आपही साधक है आपही साध्य है अवस्थाके भेदसे  
साध्यसाधक भेद हैं । यह संपूर्ण जगत भी ज्ञानानंदस्वरूप परमात्मभावको प्राप्त होवौ ।  
और आनंदरूपअमृतजलके प्रवाहकर पूर्ण बहती हुई इस केवलज्ञानरूपीनदीमें जो आ-  
त्मतत्त्व मग्न होरहा है, जो समस्त ही लोकालोकके देखनेको समर्थ है, ज्ञानकर प्रधान  
है, जो तत्त्व अमूल्य उत्तम महारत्नकी तरह अतिशोभायमान है उस आत्मतत्त्वको  
स्याद्वादरूपी जिनेश्वरके मतको स्वीकार करके हे जगतके भव्यजीवो ! तुम अंगीकार करो  
जिससे कि परमानंदसुखको प्राप्त होवौ । इसप्रकार इस कुंदकुंदाचार्यकृत प्रवचनसा-  
रमें यह चरणानुयोग पूर्ण हुआ । यह अनादिनिधन शब्दग्रह अपने अर्थरसकर  
गर्भित है किसी पुरुषकर इसका अर्थ किया हुआ नहीं होसकता, आपही अर्थशक्तिकर  
प्रवर्तता है । इसलिये ऐसा कोई नहीं समझलेना कि प्रवचनसारका अर्थ मैंने किया है  
यह तो स्वतःसिद्ध ही है । हे भव्यो ! निर्मल ज्ञानकलाके प्रकाशसे अनेकांत विद्याको  
निश्चयकर धारणकरके एक परमात्मतत्त्वको पाकर परमआनंदरूप होवौ । जो महाबु-  
द्धिवंत हुए हैं वे भी तत्त्वके कथनसमुद्रके पारगामी नहीं हुए, और जो थोड़ाबहुत तत्त्वका  
कथन किया है वह सब तत्त्वकी अनंततामें इसतरह समागया है मानो कुछ कहा

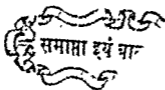
परमात्मानमिति ॥ भवति चात्र श्लोकः—“आनन्दामृतपूरनिर्भरवहत्कैवल्यकलोलिनी-  
निर्मग्नं जगदीक्षणक्षममहासंवेदनश्रीमुखम् । स्यात्काराङ्गजिनेशशासनवशादासादयन्तूलसत्त्वं  
तत्त्वं वृत्तजात्यरत्नकिरणप्रस्पष्टमिष्टं जनाः” ॥ व्याख्येयं किल विश्वमात्मसहितं व्याख्यातु  
गुम्फे गिरां व्याख्यातामृतचन्द्रसूरिरिति मा मोहाजनो वल्गतु । वल्गत्वघ विशुद्धबोधि-  
कल्या साद्वादविद्यावलात् लब्धैकं सकलात्मशाश्वतमिदं स्वं तत्त्वमव्याकुलः ॥ १ ॥ इति  
गदितमनीचैस्तत्त्वमुच्चावचं यच्चितितदपि किला मूलल्पमग्नौ हुतस्य । अनुभवतु तदुच्चैश्चि-  
धिदेवाद्य यस्मादपरमिह न किञ्चित्त्वमेकं परं चित् ॥ २ ॥

नमासंयं नन्दशपिका टीका ।

रागद्वेषमोहकल्लोडक्षोभरहितप्रस्तावे यथा निजशुद्धात्मतत्त्वे स्थिरो भवति तथा तदैव निजशुद्धात्म-  
स्वरूपं प्राप्नोति ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ एवं पूर्वोक्तक्रमेण “एस मुरामुर” इत्याद्येकोत्तर-  
शतगाथापर्यन्तं सम्यग्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं “तम्हा तस्स णमाई” इत्यादि त्रयोदशोत्तरशत-  
गाथापर्यन्तं ज्ञेयाधिकारापरनामसम्पत्त्याधिकारः, तदनन्तरं “तवसिद्धे णयसिद्धे” इत्यादि  
सप्तनवतिगाथापर्यन्तं चारित्र्याधिकारश्चेति महाधिकारत्रयेणकादशाधिकत्रिशतगाथाभिः प्रयचन-  
सारप्राप्तं समाप्तम् ॥

ही नहीं, जैसे आगमें होमकरनेको वस्तु कितनी ही डालो कुछ नहीं गूँधी उचलती है।  
तत्त्वमें सब कथन समाजाता है । इसकारण परमात्मतत्त्व यचनमें  
केवल अनुभवगम्य है, इससे हे भव्यो! चिन्मात्रयग्नको  
दूसरी उत्तमवस्तु कोई नहीं है । इसलिये श्रीअमृत  
परमात्मतत्त्व हमेशा घटमें ( अंतरंगमें ) प्रकाश



## अथ टीकाकारस्य प्रशस्तिः ।

नाथान्वयं नमस्कृत्य भव्यसारङ्गवार्मुचम् । संग्रहामि प्रशस्तिं हि नानाशब्दविरा-  
जिताम् ॥ १ ॥ मुक्तिश्रीर्यस्य कान्ता प्रसभमखिलं त्रोटितं कर्मवन्धं येन ध्यानेन पुष्टं  
निखिलभवतरुं पातु वो नेमिनाथः । ज्ञानाक्षिर्ज्ञानमूर्तिः सकलमुनिजनैः सेव्यमानो यतीन्द्रो  
भव्यानां यो हि चिन्त्यः सकलगुणनिधिर्देवनाथो जितारिः ॥ २ ॥ विक्रमादित्यराज्ये-  
स्मिंश्चतुर्दशपरे शते । नवपञ्चा युते किंनु गोपाद्रौ देवपत्तने ॥ ३ ॥ अनेकभूभुक्पदपद्म-  
लभस्तस्मिन्निवासी ननु पाररूपः । शृङ्गारहारो भुवि कामिनीनां भूभुक् प्रसिद्धः श्रीवीर-  
मेद्रः ॥ ४ ॥ मदनारिगृहं तत्र भदविध्वंसनक्षमम् । वैदूर्यघटितं मन्ये किं देवैश्चात्र  
निर्मितम् ॥ ५ ॥ ननु शक्रसादेशेन धनदेनात्र निर्मितम् । कंसतालैश्च घण्टाद्यैर्ब्रूते  
यत्स्वर्गिभिः सह ॥ ६ ॥ कामिन्यो यत्र गायन्ति नृत्यन्ति हि स्वभावतः । पठन्ति  
विदुषः पाठं निरवद्यं कृते मुदः ॥ ७ ॥ श्रीकाष्ठसंधे जगति प्रसिद्धे महद्गुणौघे त्रयमा-  
थुरान्वये । सदासदाचारविचारदक्षे गणे सुरम्ये वरपुष्कराख्ये ॥ ८ ॥ मुनीश्वरोऽभून्नय-  
सेनदेवः कृशाष्टकर्मा यशसां निवासः । पट्टे तदीये मुनिरश्वसेन आसीत्सदा ब्रह्मणि  
दत्तचेताः ॥ ९ ॥ पट्टे तदीये शुभकर्मनिष्ठोप्यनन्तकीर्तिर्गुणरत्नवाद्धिः । मुनीश्वरोऽभूजिन-  
शासनेन्दुस्तत्पट्टधारी भुवि क्षेमकीर्तिः ॥ १० ॥ पट्टे तदीये ननु हेमकीर्तिस्तपःप्रभानिर्जित-  
भानुभानुः । रत्नत्रयालङ्कृतधर्ममूर्तिर्यतीश्वरोऽभूजगति प्रसिद्धः ॥ ११ ॥ यतिपपादकुशे-  
शयपद्मदः परमधर्मधरः किमु भूधरः । न हि जडः किं नगः खलु चन्द्रमा न हि विद्युः

## अथ टीकाकारस्य प्रशस्तिः ।

अज्ञानतमसा लितो मार्गो रत्नत्रयात्मकः । तत्प्रकाशसमर्थाय नमोऽस्तु कुमुदेन्दवे ॥ १ ॥  
सूरिः श्रीवीरसेनाख्यो मूलसंधेपि सत्तपाः । नैर्प्रन्थ्यपदवीं भजे जातरूपधरोपि यः ॥ २ ॥ ततः  
श्रोसोमसेनोऽभूद्गुणी गुणगणाश्रयः । तद्विनेयोस्ति यस्तस्मै जयसेनतपोभृते ॥ ३ ॥ शीघ्रं बभूव  
माह ? साधुः सदा धर्मरतो वदान्यः । सूनुस्ततः साधुमहीपतिर्यस्तस्मादयं चारुभटस्तनूजः ॥ ४ ॥

## अथ भाषाकारकी प्रशस्तिः ।

दोहा—मूलप्रयकरता भए, कुंदकुंद मतिमान ।

अश्रुतचंद्र टीकाकरी, देवभाषपरवान ॥ १ ॥

जैसो फरता मूलकौ, तैसो टीकाकार ।

छातें अतिसुंदर सरस, वरतै प्रवचनसार ॥ २ ॥

सफलतरुवरफासिनी, तत्त्वदीपिकानाम ।

टीका सरसुतदेवकी, यह टीका अभिराम ॥ ३ ॥

स कलङ्कविवर्जितः ॥ १२ ॥ पारावारो हि लोके यो जनानिमिपसेवितः । देवकीर्तिमुनिः  
साक्षात्परं क्षारविवर्जितः ॥ १३ ॥ व्याख्यायैव गुरुः साक्षात्पशुधर्मविनिर्गतः । पद्मकी-  
र्तिमुनिर्भाति परं रागविवर्जितः ॥ १४ ॥ दिग्म्वरोऽमृद्भुवि मेरुपर्वतः सुर्वणवर्णैः किमु-  
सोप्यजङ्गमः । सरित्पतिः किं जलक्षारवर्जितो नक्षत्रराजः स कलङ्कनिर्गतः ॥ १५ ॥  
प्रतापचन्द्रो हि मुनिप्रधानः स्वव्याख्यया रक्षितसर्वलोकः । नियन्त्रितात्मीयमनोविहङ्गो  
विवादिभूभृत्कुलिशो नितान्तम् ॥ १६ ॥ गुणरत्नैरकूपारो भवभ्रमणशङ्कितः । हेमचन्द्रो  
यतिः साक्षात्परं ग्राहविवर्जितः ॥ १७ ॥ ग्लानः साम्यं रत्नसानोः स्थिरत्वं भानोः सूर्यः  
सूर्यकारोश्च रूपम् । गम्भीरत्वं पयोधेः प्रसभमखिलं त्यागमेवं वलेश्च 'संगृहीत्वा विधात्रा  
किमुत निजबलास्थापितोयं धर्मचन्द्रो' लक्ष्मीणो ज्ञानदक्षो विबुधमुनिजनानन्दकारी स्वभा-

यः संततं सर्वविदः सपर्यायार्थक्रमाराधनया करोति । स श्रेयसे प्राभृतनामग्रन्थपुष्टात्पितुर्भक्तिवि-  
लोपमीरुः ॥ ५ ॥ श्रीमन्निभुवनचन्द्रं निजमतवाराशितायना चन्द्रम् । प्रणमामि कामनामप्रबल-  
महापर्वतैकशतधारम् ॥ ६ ॥ जगत्समस्तसंसारिजीवाकारणबन्धवे । सिधवे गुणरत्नानां नमस्त्रि-

### चौपाई

बालबोध यह कीनी जैसे । सो तुम सुनहु कहुं मैं तैसे ॥  
नगर आगरेमें हितकारी । कुमरपाल ज्ञाता अविकारी ॥ ४ ॥  
तिन विचार जियमें इहकीनी । जो भापा इह होइ नवीनी ॥  
अल्पबुद्धि भी अरथ बखानैं । अगम अगोचर पद पहिचानैं ॥ ५ ॥  
यह विचार मनमें तिन राखी । पांडे हेमराजसों भाखी ॥  
आगें राजमहनें कीनी । समयसारभाषा रसलीनी ॥ ६ ॥  
अब जो प्रवचनकी है भाषा । तौ जिनधर्म बधै वृषसाखा ॥  
तातें करहु बिलंब न कीजे । परमभावना अंगफल लीजे ॥ ७ ॥  
दोहा—अवनीपति चंद्रहिं चरण, सुयणकमल विहसंत ।

साहजिहांदिनकर उदै, अरिगणतिमिर नसंत ॥ ८ ॥

सोरठा—निज सुबोध अनुसार, ऐसे हित उपदेशसों ।

रची भाष अविचार, जयवंती प्रगट हु सदा ॥ ९ ॥

हेमराज हितआनि, भविकजीवके हित भंणी ।

जिनघर आन प्रमानि, भाषा प्रवचनकी करी ॥ १० ॥

वात् ॥ १८ ॥ पद्मकीर्तिमुनेः शिष्यो गुणरत्नमहोनिधिः । ब्रह्मचारी हरीराजः शीलव्रत-  
विभूषितः ॥ १९ ॥ इति प्रशस्तिः ।

शुभनेन्द्रे ॥ ७ ॥ त्रिभुवनचन्द्रं चन्द्रं नौमि महासंयमोत्तमं शिरसा । यस्योदयेन जगतां स्वान्त-  
तमोराशिच्छन्तनं कुरुते ॥ ८ ॥ इति प्रशस्तिः ।

दोहा—सत्रहसै नव उत्तरं, भाषमाससित पाख ।

पंचमि आदितवारको, पूरनकीनी भाख ॥ ११ ॥

पद्सदस्र सत्ततीन है, संख्या ग्रंथप्रमान ।

विदुपविवेकविचारिकरि, सुणि ज्यो पुरुषप्रधान ॥ १२ ॥

इसप्रकार प्रशस्ति पूर्ण हुई ।

